तत्त्वार्थ-रामायण

[श्रीराम-कथा का गुजराती से हिन्दी अनुवाद]

प्रवक्ता

पूज्यपाद श्रीरामचन्द्र केशव डोंगरेजी महाराज

प्रकाशक :-

भारतीय ग्रामोद्योग वस्त्र भण्डार

दादी शेठ अग्यारी लेन बम्बई. २

नम्र निवेनन

तत्वार्थ-रामायण के गुजराती सस्करण का हिन्दी अनुवाद पूर्ण प्रकाशित होकर आपके हाथ मे है। परमपूज्य डोगरेजी महाराज गुजरात की एक अमूल्य निधि है। महापुरुष एवं समर्थ कथावाचक के रूप मे वे समग्र भारत मे अद्वितीय है। अहमदाबाद, बम्बई एवं दिल्ली जैसे महानगरो मे पूज्य महाराजजी की कथा-श्रवण के लिये लाखो भक्त श्रोताओ की भीड एकत्र होती है। उनके श्रीमुख से प्रवाहित अमृत वाणी को सुनना एक सौभाग्य का विषय है। परमपूज्य महाराजश्री केवल कथा ही नही करते, अपितु भावलीला-वर्णन मे समाधिस्थ होकर अर्वाचीन शुकदेव की तरह भक्ति-भावना की गगा प्रवाहित करते है। रामायण की कथा करते समय तो वे साक्षात् गोस्वामी तुलसीदासजी ही प्रतीत होते हैं—ऐसी अन्य महापुरुषो एवं श्रोताओ की अनुभूति है। पूज्य महाराजजी की कथा का श्रवण एव पठन बारम्बार करने पर भी श्रोताओ के हृदय मे कथानुभूति की उत्कट इच्छा पुन-पुन उत्पन्न होती है और इसीलिये रामायण एव भागवत की कथा को अनेको बार प्रत्यक्ष श्रवण करने पर भी उन पुस्तको की मांग सतत रहा करती है।

भक्तो की इस इच्छापूर्ति के लिए महाराजजी की आज्ञा से 'तत्वार्थ-रामायण' तथा 'भागवत-रसामृत' नाम की दो पुस्तको का प्रकाशन करवाया है। इन पुस्तको मे पू० महाराजश्री की रामायण एव भागवत कथाओ की रसमयी वाणी का सकलन किया गया है। इन्हे पढने पर भक्त पाठकों को ऐसा अनुभव होता है मानों वे इस कथन का श्रवण पू० महाराजश्री की प्रेमासक्ति-भक्तिमयी वाणी से ही प्रत्यक्ष कर रहे हों।

श्री डोगरे जी महाराज के प्रति हम अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करते है कि इस ग्रन्थरत्न के प्रकाशन के लिए उनका शुभाशीर्वाद प्राप्त हुआ है। तथा प्रस्तुत सस्करण के प्रकाशन के अवसर पर हम सद्विचार परिवार, अहमदाबाद तथा हनुमान् प्रसाद पोद्दार स्मारक समिति का भी आभार व्यक्त करते हैं।

गुजराती की मूल पुस्तको का सरल हिन्दी अनुवाद सेवा मे प्रस्तुत है आशा है पाठकगण भक्तिभाव से इसका पठन करके ग्रन्थ का रसामृत पान करेंगे।

निवेदन है कि प्रस्तुत सस्करण मे यदि मुद्रण सम्बन्धी कोई भूल हो तो सुधी पाठक क्षमा करेंगे तथा ब्योरेवार उसकी सूचना हमे देंगे, जिससे आगामी संस्करणो में सुधारा जा सके।

भारतीय ग्रामोद्योग परिवार।

प्रकाशक | मानस प्रकाशन
मानस मन्दिर, देशबन्धु गुप्ता रोड, करौल बाग, नई दिल्ली-५

मूल्य | तीस रुपया

मुद्रक | मुद्रक : रूबी प्रिन्टिग प्रेस
दिल्ली-६ दूरभाष न० ५२४७०५

ग्रन्थ प्राप्ति स्थान —गर्ग एण्ड कम्पनी ४८४, खारी बावली, दिल्ली-६
गर्ग कम्पनी बुकसेलर, पुल सदर बाजार, दिल्ली-६

॥ श्री हरिः ॥

प्रस्तावना

भारतवर्ष के अक्षय ज्ञान-कोष हमारे धर्म-ग्रन्थो यथा—गीता, रामायण, भागवत, उपनिषदादि तथा अन्यान्य धार्मिक साहित्य को लोकभाषा मे वहुत सस्ते मूल्य पर जन-जन के हाथो मे पहुचाने के लिए गृहस्थसत श्रद्धेय भाई जी श्रोहनुमानप्रसादजी पोद्दार ने 'कल्याण' एव गीताप्रेस के माध्यम से अद्वितीय कार्य किया है। भक्ति भाव के प्रचार-प्रसार के लिए भगवन्नाम-सकीर्तन-जप, श्रीराधाष्टमी महामहोत्सव तथा अन्यान्य आध्यात्मिक अनुष्ठान अपने जीवनकाल मे श्रीपोद्दारजी करते ही रहे। ऐसे परम-भागवत के उन्मुक्त ज्ञानवितरण एव सेवा-आदर्शन को मूर्त्त करने के लिए स्थापित 'हनुमानप्रसाद पोद्दार स्मारक समिति' ने श्रद्धेय श्रीभाईजी की परम्परा का निर्वाह करने की भावना से परमपूज्य संतप्रवर श्रीडोगरेजी महाराज के 'श्रीमद्-भागवत-रहस्य' एव तत्वार्थ रामायण व अन्य ग्रन्थो के प्रकाशन का निश्चय किया है। प्रेमाश्रसिक्त नेत्र गद्गद-कण्ठ, द्रवित-चित्त एवं भाव समाधि-निमग्न श्रद्धेय श्रीडोगरेजी महाराज 'अर्वाचीन शुक' के समान अपनी पीयूषवर्षिणी कथा का आस्वादन अहमदावाद एव बम्बई जैसे महानगरो के लाखो-लाखों श्रोताओ को गत कई वर्षो से कराते आ रहे हैं। हमारे विशाल देश में इतस्तत. फैले हुए अन्यान्य भावुक भक्त भी इस अमृत-निर्झर मे मज्जन एव अवगाहन कर सकें, इस पवित्र उद्देश्य को सामने रखकर श्रद्धेय श्रीमहाराजजी द्वारा गुजराती भाषा मे लिखित ग्रन्थ 'तत्वार्थ रामायण' का हिन्दी-रूपान्तर प्रकाशित किया जा रहा है।

ग्रन्थ के मखमली शिल्प के विशिष्ट संस्करण का मूल्य इस उद्देश्य से अधिक रखा गया है कि उससे प्राप्त अतिरिक्त धन का सदुपयोग 'हनुमान प्रसाद पोद्दार स्मारक-समिति' द्वारा संचालित 'हनुमानप्रसाद पोद्दार कैंसर अस्पताल' के रोगियो को विशेष सुविधाएं प्रदान करने मे किया जा सके। इस कैंसर अस्पताल के सहायतार्थ परमपूज्य श्रीडोगरेजी महाराज ने बम्बई मे श्रीमद्भागवत की कथा श्रवण करने की स्वीकृति प्रदान कराने की जो महती अनुकम्पा की है, उनके लिए समिति के सभी न्यासी एव सदस्य भावभरे हृदय से उनके प्रति नतमस्तक है।

विनीत—
विष्णुहरि डालमिया
अध्यक्ष
हनुमानप्रसाद पोद्दार स्मारक समिति

गीतावाटिका, गोरखपुर

हनुमानप्रसाद पोद्दार स्मारक समिति

(एक परिचय)

सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक हिन्दी पवित्र 'कल्याण' के प्रवर्तक सम्पादक, गीताप्रेस (गोरखपुर) के कर्णधार सतप्रवर परमश्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार अध्यात्म एव सेवा के मूर्तिमान स्वरूप थे। पिछले ६० वर्षो से देशवासी उनके दिव्य जीवन एवं अमृतवाणी से प्रेरणा ग्रहण करते रहे है। भारतोय युग-चेतना के प्रतीक के रूप मे देशवासियो के हृदय मे श्रीपोद्दारजी के प्रति आन्तरिक श्रद्धा एव आत्मीयता है। उन्ही निष्काम कर्मयोगी एव परमभागवत श्रीपोद्दारजी की पावन स्मृति मे सचालित सस्था है—'हनुमानप्रसाद पोद्दार स्मारक समिति'। समिति के प्रमुख उद्देश्य है—जन-जन में आध्यात्मिक चेतना का जागरण एवं आर्त्तनारायण की सेवा।

श्रीराधाकृष्ण साधना-केन्द्र

आध्यात्मिक चेतना का लक्ष्य लेकर श्रद्धेय श्रीभाईजी के भागवत जीवनदर्शन के अनुरूप तथा उनके द्वारा निर्दिष्ट साधना-प्रणाली के अनुसार भगवत्प्रम, भगवद्विश्वास, देवी-सम्पदा आदि आध्यात्मिक गुणो के सुदृढ आधार पर जीवन-निर्माण करने की प्रेरणा देने वाले शाश्वत प्रकाश-स्तम्भ के रूप मे पूज्यवर की पावन स्मृति मे उनकी तपस्यास्थली गीतावाटिका, गोरखपुर में एक भव्य 'साधना-मन्दिर' निर्माणाधीन है। यह साधना-केन्द्र उत्तर भारत को नागर शैली में सगमरमर पत्थर से निर्मित होगा और इसमे गर्भगृह, प्रदक्षिणापथ, अर्द्धमण्डप, तोरणद्वार आदि होंगे। साधना-केन्द्र का क्षेत्रफल लगभग दस हजार वर्ग फुट होगा तथा इसके शिखर की ऊंचाई ध्वज सहित ७६ फुट होगी। इसके निर्माण मे कम से कम ४० लाख रुपये का व्यय अनुमानित है। प्रसन्नता की बात है कि सभी क्षेत्रो के श्रद्धालु बहिन-भाइयो से इस पुनीत कार्य मे उदार सहयोग प्राप्त हो रहा है।

समाधि–मन्दिर

गीतावाटिका में पूज्य श्रीभाईजी की अन्तिम विश्रामस्थली पर उनकी पावन-स्मृति को सजीव रखने के लिए ११ लाख रुपयो की लागत से एक भव्य समाधि-मन्दिर का निर्माण सम्पन्न हो चुका है। सहस्रो श्रद्धालु बहिन-भाई प्रतिदिन अपने श्रद्धासुमन अर्पित कर उससे आध्यात्मिक प्रेरणा ग्रहण करते हैं।

कैंसर अस्पताल

'वैष्णव जन तो तेने कहिये, जे पीर पराई जाणे रे'—भक्त नरसी मेहता का यह पद वैष्णवता की कसौटी है। परपीड़ा-निवारण के लिए सतत प्रयत्नशील रहना ही मानवता का मूलमंत्र है। परदुःख कातर परमश्रद्धेय श्रीभाईजी भी आजीवन दूसरों के कष्ट दूर करने में लगे रहे। वैष्णवता की कसौटी में श्रीपोद्दारजी खरे उतरे। सर्वथा अहंकारशून्य, परहितनिरत श्रीपोद्दारजी अपने को ईश्वर के यत्र के रूप में तथा चराचरजगत् को भगवत्स्वरूप में अनुभव

करते थे—'मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगत।' यही हेतु है कि पीड़ित मानवता की सेवा के समय उनके समक्ष 'नर' नहीं, 'नारायण' उपस्थित रहते थे।

श्रीपोद्दारजी का पार्थिव शरीर कैंसरग्रस्त होकर ही पंचतत्व में विलीन हुआ था। अतः समिति ने निश्चय किया कि आर्त्तनारायण के मूक अर्चक श्रीपोद्दारजी की पावन स्मृति में एक कैंसर अस्पताल का निर्माण किया जाए।

उत्तरप्रदेश के पूर्वाञ्चल की जनता आर्थिक दृष्टि से सर्वथा विपन्न है। अतएव कैंसर जैसे सर्वाधिक व्ययसाध्य रोग की सर्वसुलभ चिकित्सा के अभाव में कैंसरग्रस्त रोगियों को असहाय होकर मृत्यु का ही वरन करना पड़ता है। अत· समिति ने निश्चय किया है कि इसके द्वारा संचालित कैंसर अस्पताल में निदान, औषधि, शैय्या-सुविधा की ऐसी व्यवस्था की जाय कि अर्थाभाव के कारण किसी को भी निराश होकर न लौटना पड़े।

भारत सरकार द्वारा नियोजित 'कैंसर असेसमेन्ट कमेटी' की जांच के अनुसार—

"भारत में प्रतिवर्ष ५ लाख व्यक्ति इस रोग से मरते हैं। कैंसर के रोगियों की संख्या मे प्रतिदिन ८०० व्यक्ति के हिसाव से वृद्धि हो रही है। ये तथ्य निश्चित सूचना के आधार पर दिये गये है। इनसे कही अधिक ऐसे व्यक्ति देश के सुदूर क्षेत्रों में होंगे, जो रोग का निदान हुए विना ही इस रोग से मर जाते है।".

'विश्व स्वास्थ्य-संगठन' के कैंसर चिकित्सा एवं शोध-निर्देशक प्रो० फोल्के एडसमायर के अनुसार—'विश्व मे प्रतिवर्ष ५ प्रतिशत से भी अधिक वार्षिक दर से कैंसर रोगी बढ़ रहे हैं।'

नि.संदेह इस शताब्दी के अन्त तक इस रोग का प्रसार देश की जनता और स्वास्थ्य-अधिकारो के लिए एक दुर्वह समस्या उत्पन्न कर सकता है।

ऐसे भीषण रोग से ग्रस्त रोगियों की सेवा की आवश्यकता एवं उससे होने वाले महान् पुण्य के सम्बन्ध मे जो कुछ भी कहा जाय, थोड़ा है।

कैंसर जैसे दु.साध्य रोग पीड़ित मानवता की सेवा के लिए स्मारक समिति अन्यान्य कार्यक्रमो के साथ भाईजी की तपस्यास्थली गीतावाटिका (गोरखपुर) के पार्श्व में लगभग ६ एकड़ भूमि पर २०० शय्याओं से सुसज्जित 'हनुमान प्रसाद पोद्दार कैंसर अस्पताल' के निर्माण के लिए कृतासंकल्प है।

इस अस्पताल मे यथासंभव चिकित्सा की सभी प्रमुख पद्धतियों से उपचार की व्यवस्था रहेगी यथा—ऐलोपैथी, आयुर्वेद, होमियोपैथी एवं प्राकृतिक चिकित्सा। ऐलोपैथी पद्धति के तीन अग होंगे—

रेडियोथिरेपी, कीमोथिरेपी एवं सर्जरी

कैंसर अस्पताल के रेडियोथिरेपी प्रखण्ड के नवीन भवन का निर्माण सम्पन्न हो चुका है। उत्तर प्रदेश सरकार ने भी उक्त निर्माण-कार्य में सहयोग-हेतु १० लाख रुपये की राशि प्रदान की है।

रेडियोथिरेपी प्रखण्ड के कोवाल्ट चेम्बर में टेलीथिरेपी चिकित्सा हेतु भारत सरकार द्वारा प्रदत्त १० लाख रुपये की राशि से प्राप्त कोवाल्ट-६०-गामारेक्स और संयन्त्र की स्थापना हो चुकी है तथा श्रीभाईजी की ६१ वीं जयंती (१४ सितम्बर १९८२) से कोवाल्ट टेलीथिरेपी चिकित्सा आरम्भ कर दी गई है। कैंसर अस्पताल पर १९६६ से अब तक लगभग ४७ लाख

रुपये व्यय हो चुके है। वर्तमान मूल्यों के अनुसार इस समय समिति की परिसम्पतियां लगभग एक करोड़ है।

हमारी प्राचीन चिकित्सा पद्धति आयुर्वेद के माध्यम से भी कैसर उपचार को सुलभ बनाने के उद्देश्य से कैसर अस्पताल का आयुर्वेद विभाग भी प्रारम्भ से ही कार्यरत है।

कैसर जैसे दुःसाध्य रोग के लिए पूर्ण आधुनिक उपकरणो से सज्जित अस्पताल का निर्माण एव चिकित्सा दोनो ही अत्यधिक अर्थसाध्य कार्य है। इस वृहद् योजना में लगभग ५ करोड़ रुपये का व्यय अनुमानित है। ३ करोड रुपया अनावर्ती-व्यय अस्पताल-निर्माण तथा उनका यन्त्रादि साज-सज्जा मे व्यय होगा एव २ करोड़ रुपया अक्षय-निधि के रूप मे सगृहीत किया जायेगा, जिसके ब्याज से अस्पताल का आवर्ती व्यय सुचारू रूप से निरन्तर चलता रहे।

ऐसी विशाल व्यय साध्य योजना को बिना व्यापक जन सहयोग के कार्यान्वित कर पाना असम्भव है। अतएव इसके कार्यान्वियन के लिए सभी का हार्दिक सहयोग, सहानुभूति तथा आर्थिक योगदान अपेक्षित है।

श्रीपोद्दारजी सार्वभौम व्यक्ति थे, उनकी समाज के साथ एकात्मता स्थापित हो चुकी थी। उनके कार्यों के लिए भारतीय जनता उनकी चिरऋणी रहेगी। उन महान् आत्मा की स्मृति में सचालित कैसरग्रस्त जनता की सेवा की इस योजना को साकार रूप देना मानवता का पुनीत कर्तव्य है। परन्तु यह तभी सम्भव होगा, जबकि सतप्त मानवता की निष्काम सेवा के लिए हम सभी सचेष्ट हो।

हमे पूर्ण विश्वास है कि पीड़ित मानवता के कष्ट-निवारण के इस महायज्ञ मे आप भी अपनी ओर से अधिक-से-अधिक सहयोग प्रदान कर पुण्य के भागी बनेंगे। इतना ही नही, अपने स्वजनो, मित्रो, पडोसियो आदि को भी इस महान् सेवाकार्य में सहयोग प्रदान करने के लिए प्रेरित करेंगे।

यह स्मरणीय है कि 'स्मारक समिति' एक रजिस्टर्ड संस्था है तथा उसे धारा ८० जी तथा १० (२३ सी) के अन्तर्गत आयकर की छूट प्राप्त है। आयकर की धारा ३५ सी सी (१) (२) एव ३५ सी सी (२ ए) के अन्तर्गत विशेष छूट प्राप्त हो सके, इसके लिए भी प्रयत्न चल रहा है।

यह तो सर्वविदित ही है पू० श्रीभाईजी ने अपने जीवनकाल मे समाज के सबसे निर्बल तथा उपेक्षित वर्ग तथा—कुष्ट रोगियो, अधो, मूक-बधिरो तथा विपदा ग्रस्त आर्तप्राणियो की सेवा के लिए अथक प्रयास किए। और इ। सेवाओं के लिए कतिपत सस्थाओं को भी जन्म दिया। आर्तप्राणियों की दयनीय स्थिति एवं उनके निवारणार्थ आरम्भ किए गए सेवाकार्य की सूचना यदा-कदा 'कल्याण' मे प्रकाशित होते ही देश के कोने-कोने में प्रचुर मात्रा मे आर्थिक सहायता पहुंचनी प्रारम्भ हो जाती थी। हमे विश्वास है कि उन्ही सबके श्रद्धेय श्रीभाईजी की पावन स्मृति मे दुःखी तथा आर्तकैसर रोगियों के उपचार के लिए स्थापित इस अस्पताल को उत्कृष्ट चिकित्सा केन्द्र बनाने के लिए सहृदय बन्धु उदारतापूर्वक सहायता प्रेषित करेंगे।

परमेश्वर प्रसाद फोगला

महामंत्री—

गीतावाटिका, गोरखपुर

हनुमानप्रसाद पोद्दार स्मारक समिति

अनुक्रमणिका

(तत्वार्थ-रामायण)

श्री हंसराज बच्छराज नाहटा
सरदारशहर निवासी
द्वारा
जैन विश्व भारती, लाडनू
को सप्रेम भेंट –

श्रीरामचन्द्र केशव डोंगरे शास्त्री

* श्रीरामचन्द्राय नमः *

श्रीरामः शरणं समस्तजगतां रामं विना का गती
रामेण प्रतिहन्यते कलिमलं रामाय कार्यं नमः ।
रामात् त्रस्यति कालभीमभुजगो रामस्य सर्वं भजे
रामे भक्तिरखण्डिता भवतु मे रामः त्वमेवाश्रयः ॥

तत्वार्थ-रामायण

(१)

मानव-जीवनका लक्ष्य

परमात्मा श्रीरामका दर्शन करनेसे मनुष्य जीवन सफल होता है। श्रीराम सब सद्गुणोंके भण्डार हैं। जो श्रीरामजीकी सेवा करते है, जो श्रीरामजीके सद्गुणोंको जीवनमें उतारते है, जिसका जीवन श्रीरामजी जैसा बनता है, वह जीव रामजीका दर्शन कर सकता है। रामजीकी सेवा बिना श्रीरामजीके दर्शन नही कर सकता। परमात्माके दर्शन परमात्माकी प्राप्ति यही मानव जीवनका लक्ष्य है, इसीमें मानव-जीवनकी सफलता है।

मनुष्यको जीवनका लक्ष्य पता नही है। मानवको ज्ञान नहीं है कि इस जीवनमें मेरा क्या कर्त्तव्य है ? मुझे क्या करना चाहिये और मै क्या कर रहा हूँ ? मेरे जीवनका लक्ष्य क्या है और मै कहाँ जा रहा हूँ।

खाना-पीना, खेलना और वंश-वृद्धि करना, क्या यही मानव जीवनका लक्ष्य है ? ये सब तो पशु भी करते है। आहार-विहारका ज्ञान पशुओंको भी होता है। पशु भी भोग भोगते हैं। मानव केवल भोगोके पीछे पागल बने तो पशु और मानवमे भेद क्या है? मानवका एक विशिष्ट लक्ष्य है प्रभुकी प्राप्ति करना, आत्माको परमात्मामे लीन कर देना।

मनुष्यको जीवनमे कोई लक्ष्य अवश्य निश्चित करना चाहिये। जिसके जीवनमें कोई ध्येय नही, वह जीवन बिना नाविककी नाव जैसा है। जो ध्येय निश्चित किया है, उस ध्येयको सिद्ध करनेके लिए साधन करो। मानव-शरीर भोगोके लिए नही मिला। मानव-शरीर तो भजन करके परमात्माको प्राप्त करनेके लिए मिला है। मनुष्यका अवतार परमात्माकी आराधना करनेके लिए है, तप करनेके लिए है। मानव-देह श्रीरामके दर्शन प्राप्त करानेका साधन है। परमात्माके दर्शनके लिए जो साधन नही करता, मानव-शरीर प्राप्त होने पर जो परमात्माकी भक्ति नही करता, वह मनुष्य नही अपितु पशु समान है।

अरे जिसको हमने ' बन्दर ' कहकर निष्कृष्ट समझा है, उस बानरमें जितना सद्गुण और संयम नियम है, उतना मनुष्यमे कहाँ है ? वानर चाहे जितना भूखा रह जाता है

तो भी रामफल अथवा सीताफल नही खाता है। कारण, इन फलोंके साथ इसके आराध्य-देवका नाम जुड़ा हुआ है। अपने आराध्यदेवके प्रति ऐसी भक्ति और जिह्वापर इतना संयम पशुकी गिनतीमें आने वाले बानरमें है। परन्तु अपनेको तो धर्मादिको भी खा जानेमे सङ्कोच नही होता, तो फिर वानर और मनुष्यमे श्रेष्ठ कौन ? जिसके जीवनमें संयम नही, जिसके जीवनमें प्रभु-भक्तिका कोई नियम नही, उसका जीवन निरर्थक है।

यह जीव अनेक जन्मोंसे संसारमें भ्रमण करता चला आ रहा है। अनेक जन्मोंमे इसने संसारके सम्पूर्ण सुख भोगे है। ये सुख तो पशु-पक्षी भी भोगते हैं। इन्द्रियजन्य सुख पशु-पक्षी और मनुष्यको एक-सा ही है। मनुष्यको श्रीखण्ड खानेमें जो सुख मिलता है, वही सूअरको बिष्ठा खानेमें मिलता है। मनुष्यको गद्दे‌पर लोटनेमें जो सुख मिलता है, वही सुख गधेको धूलमें लोटनेमें मिलता है। पशु-पक्षी भी बालकोंको जन्म देते है। चकला-चकली भी मकान बनाकर रहते हैं। कबूतर-कबूतरी भी घूमने-फिरने जाते है। संसारका बहुत-सा व्यवहार मानवसे इतर जीव भी भोगते है।

केवल मनुष्यमें ऐसी विशिष्टता है कि यदि वह निश्चय करे तो मनका, बुद्धिका सदुपयोग करके निरन्तर परमात्माकी भक्ति कर सकता है। भक्ति मनुष्यके सिवाय कोई नही कर सकता। भक्ति मनुष्य-शरीरमे ही सम्भव है। भगवानके नाम-जपका आनन्द केवल मनुष्यको ही मिलता है। कबूतर अथवा बिल्लीको मिलना सम्भव नही। पशुओंको अपने स्वरूपकी खबर नहीं। वे अपने स्वरूपको नही जानते, तो भगवानको कैसे जान सकते है ? मनुष्य ही भगवानको जान-पहचान सकता है।

मानव समझ सकता है कि यह पाप है और यह पुण्य है। पाप छोडना तथा निरंतर भक्ति करना, यह बुद्धि मनुष्यमें ही है। पशु पाप छोड़ सकता नही। पशु-योनि पापका फल भोगनेके लिए ही है। बिल्ली अनेक चूहोंको मारती है, परन्तु उसको पाप लगता नही। बाघ-सिंह अनेक जीवोंकी हिंसा करते हैं फिर भी इनके माथे पाप नही लगता। कारण ये तो पापका फल दुःख भोगते है। कोई मनुष्य यदि जीवकी हिसा करे तो उसको पाप होता है। पशु-पक्षी हिंसा करे, वह पापकी गिनतीमें नही। कारण, पशु योनिमें अतिशय अज्ञानता है। पशुओंमें इतनी बड़ी अज्ञानता होती है कि तीन वर्ष पीछे वह माताको भी भूल जाते हैं तथा याद नही रहती कि यह हमारी माँ है और यह हमारा पिता है।

पाप और पुण्य यह मनुष्य-शरीर द्वारा ही होते है। पाप छोड़ना और सतत पुण्य करना यह बुद्धि परमात्माने मनुष्यको दी है। मानव सावधान रहे तो पाप छोड़ सकता है, मानव निश्चय करे तो सतत भक्ति भी कर सकता है। प्रभुने ज्ञान और बुद्धि जो मनुष्यको दी है वह पशुओंको नही दी। आने वाले कलकी चिन्ता मनुष्य करता है, पशु करता नहीं, कर सकता भी नहीं।

मनुष्यका शरीर परमात्माने अत्यन्त कृपा करके दिया है। जो मनुष्य इसको प्राप्त करके अपनी इन्द्रियोको वशमे नही रखता उसका जीवन अत्यन्त शोचनीय है। यह शरीर ससारके विषय-भोगोंको भोगनेको नही मिला। यह शरीर परमात्माके कार्यके लिए मिला है। यह अनित्य शरीर नित्य परमात्माकी प्राप्ति करा सकता है।

भगवानने कहा है कि मैंने अनेक प्रकारके शरीरोका निर्माण किया है, परन्तु उन सबमे मनुष्य-शरीर मुझको अत्यन्त प्रिय है। बुद्धिमान एकाग्रचित्तसे इस शरीरमें ईश्वरका साक्षात् अनुभव कर सकता है। मनुष्य-शरीर ज्ञान तथा भक्ति प्राप्त करनेका साधन होनेसे सर्वश्रेष्ठ है। मनुष्य-शरीर सब फलोका मूल है तथा सब पुरुषार्थोंका साधन है। करोडों उपायोसे भी इसको प्राप्त करना दुर्लभ है।

इस उत्तम नौकारूपी शरीरके कर्णधार गुरु हैं तथा परमात्माकी कृपारूपी अनुकूल वायु द्वारा ही इसको गति प्राप्त है। इतना होनेपर इस मनुष्यदेहरूपी नौका को प्राप्त करके भी जो मनुष्य भवसागरसे नही तर पाता, वह **निश्चय** ही आत्महत्या करने वाला है।

रामायणमे रामजीने जगतको ज्ञान **दिया है** कि—

बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रन्थन्हि गावा॥
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहि परलोक सँवारा॥

सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोस लगाइ॥

आकर चारि लच्छ चौरासी। जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी॥
फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा॥
कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥
नर तनु भव बारिधि कहुँ बेरो। सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो॥
करन धार सद्गुरु दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा॥

जो न तरै भवसागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निन्दक मन्दमति आत्माहन गति जाइ॥

मनुष्य-देह देकर तो परमात्माने जीवके ऊपर कृपा ही की है। अब जीवको स्वयं अपने ऊपर कृपा करनी बाकी है।

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।

मानव स्वयं अपना मित्र भी हो सकता है अथवा शत्रु भी हो सकता है। जिसके जीवनका कोई लक्ष्य नहीं, अथवा लक्ष्यका ज्ञान होनेपर भी जो उसको प्राप्त करनेका साधन नहीं करता, वह स्वयं अपना नाश करता है, उसका पतन होता है। श्रीरामके दर्शनके लिए जो साधन नही करता उसे अन्तकालमें बहुत पश्चाताप होता है। श्रीरामके दर्शनोंसे ही शान्ति प्राप्त होती है। श्रीरामके बिना आराम मिलता नहीं।

परमात्माका दर्शन मनुष्य-शरीरमें ही प्राप्त होना सम्भव है। मनुष्योंसे इतर किसीको श्रीरामका दर्शन होता नहीं। स्वर्गमें स्थित देवता लोग अपने द्वारा बहुत-सा सुख भोगते हैं, परन्तु उनको भी रामका दर्शन नही होता। इसलिए अत्यन्त सुख भोगनेपर भी उनको शान्ति नही मिलती। स्वर्गमें पुण्योंका नाश होता है। देवता किये हुए पुण्योका फल अर्थात् सुख भोगते है। पशु-पक्षी किये हुए पापका फल भोगते है। देवता लोग तप नही कर सकते। पशु भी तप नहीं कर सकते। मनुष्य ही केवल एक ऐसा भाग्यशाली है जो विवेकपूर्वक भोगोंको भी भोग सकता है एवं भक्तिमय जीवन व्यतीत कर भगवानको भी प्राप्त कर सकता है।

स्वर्गमें तो देवता लोग सुख भोगनेके लिए एक ओर तो अपने संचित पुण्योंका नाश कर रहे हैं और दूसरी ओर कोई नया पुण्य कर भी नही सकते। घरमें आमदनी एक पैसे की न हो, अपितु रोज घरका खर्चा हो तो घरमें शान्ति रहती नही।

स्वर्गमें नया पुण्य प्राप्त नही होता, कारण कि स्वर्गमे देवता लोग भक्ति नही कर सकते। भक्ति तो भारतवर्षमें तथा मनुष्य-शरीरमें सम्भव है। भारतभूमि भक्तिभूमि है। भारतीय वही है जिसका मन भक्तिमे रमण करता है, जिसको भक्तिमें आनन्द आता है। भा शब्दका अर्थ है ज्ञान। ज्ञान-भक्तिमें रमण करनेवाला जो देश है उसको भारत कहा जाता है। स्वर्ग तो भोगभूमि है, वहाँ भक्ति सम्भव नहीं।

इस भूमण्डलपर भक्तिमें भारतदेश श्रेष्ठ है। भारत अध्यात्मवादी देश है, ब्रह्मविद्याकी भूमि है, भक्तिकी भूमि है। भारतमें भगवानके जितने अवतार हुए उतने किसी अन्य देशमें नहीं हुए। इसी कारणसे देवता लोग भी भारतदेशमे उत्पन्न मनुष्योंकी महिमा गाते हुए भागवतमें एक स्थानपर कहते है—

अहो अमीषां किमकारिशोभनं प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः।
यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे मुकुन्द सेवौपयिकं स्पृहा हि नः॥

अहा! इन मनुष्योंने क्या पुण्य किया है कि इनके ऊपर हरि प्रसन्न हुए हैं, जिससे हरि-सेवाके निमित्त योग्य मनुष्य जन्म इनको भारतभूमिमे प्राप्त हुआ है। हमारी भी ऐसी ही अभिलाषा है।

देवताओकी भी ऐसी इच्छा होती है कि भगवान कृपा करके हमको भारतमें जन्म दे। स्वर्गमे सबको एक समान सुख नही मिलता। स्वर्गमें पुण्योके न्यूनाधिक अनुसार सुखमें विषमता रहती है। विषमता यह बडा दुख है। स्वर्गमे स्थित देवताओंको भय रहता है कि एक दिन हमारा पतन होनेवाला है। देवताओके पुण्य पूर्ण हो तब मनुष्य बनते हैं तथा मनुष्य पाप करे तो पशु बनता है। इसलिए देवता ऐसी इच्छा रखते हैं कि हमारा पुण्य क्षय हो तो भगवान कृपा करके हमको भारत-भूम्मिमे कोई वैष्णवके घरमें जन्म दें तो उस जन्ममें प्रभुकी सेवा-स्मरण और भक्तिमय जीवन व्यतीत करे, श्रीराम तथा श्रीकृष्णका दर्शन करके कृतार्थ होवे।

मानव-समाजको श्रीरामजीने ज्ञान दिया है।

एहि तन कर फल विषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अन्त दुखदाई॥
नर तनु पाइ विषय मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ विष लेहीं॥

यह मनुष्य-शरीर विषय भोगोके लिए नही मिला। विषय-सुख तो पलमात्रके लिए ही स्वर्ग-सुख जैसा है और अन्तमे तो इसमें दुख ही दुख है। मनुष्य-शरीर प्राप्त करके भी जो मनुष्य विषय-भोगोमें लगा रहता है, वह तो अमृत देकर बदलेमें विष ले रहा है।

मनुष्य-शरीर पुण्य करनेके लिए मिला है, यह परमात्माकी आराधना करनेके लिए है, यह परमात्माके दर्शन करनेके लिए है। परमात्माके दर्शनसे बहुत शान्ति प्राप्त होती है। परमात्माके दर्शनका आनन्द जिसको मिला है उसके मनके ऊपर सांसारिक दुखों-का बहुत असर नही होता। तुम भी नित्य नियमसे दर्शन करते रहो।

(२)

सर्वमय ईश्वर

तुम मन्दिरमें दर्शन करने जाते हो, ठीक है परन्तु मन्दिरमें दर्शन करनेसे परमात्माकी भक्ति प्राप्त हुई ऐसा नहीं मानते। कितने ही लोग नित्य एक बार मन्दिरमें जाकर दर्शन करते हैं और मानते हैं कि हम दर्शन कर आये। कितने ही लोग दर्शन करने दो-तीन बार मन्दिरमें जाते हैं और पीछे उनको अभिमान होता है कि हम तो तीन बार दर्शन करने जाते हैं। भगवान कहते हैं बेटा, तू दिनमें तीन बार दर्शन करने आता है, परन्तु तुझको ज्ञान नहीं कि मैं तो चौबीस घण्टे तेरे दर्शन करता हूँ।

ईश्वर प्रत्येक जीवको चौबीस घण्टे निहारता है। ऐसा एक भी क्षण नहीं कि जब भगवान इस जीवको न देखता हो। परमात्मा हमको देखे इसमें कोई विशेष लाभ नहीं, तुम परमात्माको देखो, परमात्माका दर्शन करो तो जीवन सफल होगा।

मन्दिरमें भगवानके दर्शन किये, वे साधारण दर्शन थे। साधारण दर्शनसे शान्ति भी साधारण मिलती है। मन्दिरमें दर्शन करनेसे आनन्द तो होता ही है परन्तु यह आनन्द कायम नही रहता। तुम मन्दिरसे बाहर आते हो तो क्या आनन्द टिकता है? मन्दिरमें-से बाहर तो क्या, परन्तु मन्दिरके भीतर ही यदि बहुत भीड़ हो और कदाचित् उस भीड़में धक्का लग जाय तो मन्दिरमें ही भगवानका दर्शन करते-करते ही मनुष्य शान्ति गवाँ देता है, दर्शन करता-करता अकड़ जाता है। कोई-कोई तो ऐसा होता है कि दर्शन करते-करते उसको क्रोध हो जाता है कि इसने मुझे धक्का मारा।

शास्त्रमे ऐसा लिखा है कि ठाकुरजीके सन्मुख क्रोध नहीं करे, अरे! ऊँची आवाजमें बोले भी नहीं। ठाकुरजीका सुन्दर स्वरूप अति कोमल है। कोई बहुत ऊंचे स्वरसे बोले तो ठाकुरजीको परिश्रम होता है। मन्दिरमें ऊँचे स्वरसे बोलना अपराध है, पाप है। मन्दिरमे परमात्माका दर्शन करते हुए भी मनुष्यकी आनन्द-शान्ति कायम नही रह पाती, तो फिर मन्दिरसे बाहर आनेके बाद कहाँसे दिखाई देगी?

साधारण दर्शन करनेवालेको तो मन्दिरमें भगवानका स्वरूप मात्र दीख पाता है, प्रत्यक्ष परमात्मा नहीं दीखते। मन्दिरके सिंहासनमें ठाकुरजी विराजे हुए हैं। वे मूर्त्ति नही, परन्तु साक्षात् भगवान् विराजे है। तुमको मन्दिरमें प्रत्यक्ष परमात्मा दीखते है कि प्रभुका स्वरूप, प्रभुकी मूर्त्तिमात्र दीखती है।

मन्दिरमें भगवानके दर्शन करो। ठाकुरजीके सन्मुख खड़े होकर ऐसी भावना करो कि ये मूर्त्ति नहीं, साक्षात् भगवान् विराजे है। अपने परमात्माके मैं दर्शन कर रहा हूँ,

अपने मालिककी मैं वन्दना कर रहा हूँ। ठाकुरजीकी आँखोंमे प्रेम भरा हुआ है। ठाकुरजी मुझे प्रेमसे देख रहे है। मुझे देखकर मेरे भगवान (होठो)मे धीरे-धीरे हँस रहे हैं। आज मेरे मालिक बहुत प्रसन्न दिखलाई देते हैं। अब मैं भगवानका हो गया हूँ, मैं वैष्णव हो गया हूँ। मेरे भगवानकी मेरे ऊपर बहुत कृपा हुई, जिससे मैं सब छोड़कर रामकथा-श्रवण करनेको बैठ सका हूँ, आज मेरे प्रभुने मुझे यह सुयोग दिया है। मेरे प्रभुके मेरे ऊपर अनन्त उपकार हैं। इस रीतिसे परमात्माके उपकारोंका स्मरण करते-करते दर्शन करो। दर्शन करनेमे भगवानके प्रति हृदय थोड़ा पिघले, आंख सजल होवे तो दर्शनमें आनन्द आवे।

परन्तु जिसके हृदयमें भावना नही, जिसका हृदय शुष्क है, जिसके हृदयमे प्रभु-प्रेम नही, भगवत्भावमें जिसका हृदय पिघला नही, उसे तो मन्दिरमे परमात्मा दीखता नहीं, एक मूर्त्तिमात्र दीखती है।

मन्दिरमें परमात्माके दर्शन करो यह ठीक है, परन्तु इतने मात्रसे भक्ति परिपूर्ण नही होती। मन्दिरमे जिस भावनासे दर्शन करते हो, उसी प्रकार प्रत्येक मानवमें ऐसी भावना रखो कि मैं जिस देवताकी सेवा करता हूँ, पूजा करता हूँ, जिस परमात्माके नामका जप करता हूँ, वह मेरा भगवान केवल सिंहासनपर बैठा है, ऐसा नही। यह तो प्रत्येक मानव-शरीरमें विराजे हुए है, सबमे विराजे हुए हैं। ईश्वर सबके आधार है। ईश्वर सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापक है, ऐसा भाव बुद्धिमे दृढ हो तो प्रेम बढे।

मानवके शरीरमे ईश्वर विराजता न हो तो मानव बोल नही सकता। अन्दर विराजे हुए प्रभु मनुष्यको बोलनेकी शक्ति देते हैं। तुम शान्तिसे कथा सुनते हो। तुमको सुननेकी शक्ति कौन देता है? अन्दर विराजे हुए भगवान सुननेकी शक्ति देते है। बैठे होते हुए भी बिचारे बहुतसे मनुष्य कुछ भी नही सुन सकते। इन्द्रियोंको शक्ति देनेवाले ईश्वर हैं। जो भगवान मन्दिरमें विराजते हैं, वही परमात्मा प्रत्येक मानव-शरीरमें रहकर मन, बुद्धि और इन्द्रियोंको प्रकाशित करते हैं। प्रत्येकके अन्दर चैतन्यरूप प्रभु विराजे हुए है।

> योऽन्तः प्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्तां
> सञ्जीवयत्यखिलशक्तिधरः स्वधाम्ना।
> अन्यांश्च हस्तचरणश्रवणत्वगादीन्
> प्राणान् नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम्॥

मन्दिरमें दर्शन करनेके पश्चात् तुमको कोई मनुष्य दीखे तो उसके शरीरको मत देखो, उसमें विराजे हुए ईश्वरको देखो। यह जवान है, यह बूढ़ा है, यह काला है, यह गोरा है, यह स्त्री है, यह पुरुष है, ऐसे भावसे देखोगे तो सम्भव है कि तुम्हारी आँख बिगड़ जावे,

तुम्हारा मन बिगड़ जाये। मन्दिरमें जो भगवान विराजे हैं वे ही इन सबके शरीरमें है ऐसा सतत अनुसन्धान रखो।

जिसे दूसरेमें ईश्वर न दीखे, उसे मूर्तिमें भी ईश्वर नहीं दीखता। मूर्तिमें भगवद्-भाव स्थिर करना है परन्तु जो बोलते-चलते भगवानमें भाव सिद्ध न कर सके, वह मूर्तिमें भाव स्थिर नही कर सकता। सृष्टि उत्पन्न करके प्रभुने प्रत्येक पदार्थमें प्रवेश किया है। वह प्रवेश न करे, तब तक सृष्टि बेकार है। अतः ईश्वर सबमें है।

श्रीराम इस फूलमें भी विराजे है। रास्तेमें फूल पडा हुआ दीखे तो तुम उस फूलके ऊपर पाँव रखकर क्या आगे बढ़ोगे? तुम बहुत सावधान होकर पग रखोगे कि जिससे तुम्हारा पग फूलके ऊपर न पड़े। कोई लौकिक दृष्टि रखता हो तो उसे फूल और पत्थरमें क्या वह दीखेगा? पत्थर जड़ है, फूल भी जड़ है परन्तु फूलके ऊपर पग रखनेमें तुमको संकोच होता है, फूलमें तुमको कुछ दीखता है। तुमको ऐसा लगता है कि मैं जिस देवकी सेवा-पूजा करता हूँ वह परमात्मा सुगन्ध-रूपमे इस फूलमें विराजे हैं।

पगमें जूती हो तो काँटेको पग तले रौंदना परन्तु फूलके ऊपर पग रखना, यह कुछ कठिन है। वैष्णवको फूलमे परमात्माके दर्शन होते है इससे वह फूलके ऊपर पग नही रखता

सनातन धर्म तो यहाँ तक कहता है कि जड़ वस्तुमें भी ईश्वर है। ज्ञानी महा-पुरुष जड़ पदार्थमें परमात्माकी सत्ताका अनुभव करते हैं। कितने ही लोग यह समझते है कि ईश्वर तो सातवें माले बैठा है और वहाँसे सबको देखता रहता है परन्तु यह मान्यता ठीक नही। तुम जहाँ हो, वही तुम्हारा भगवान भी है। भगवान तुमको देखता है परन्तु तुम परमात्माके दर्शन नही करते। प्रत्येक जड़ वस्तुमें भी परमात्मा विराजे हुए हैं। वैष्णव प्रातः-काल उठनेके बाद धरती माताकी वन्दना करके पग रखते है। धरती माँकी प्रार्थना करते हुए कहते है—

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे॥

हे धरती माता! मुझे तुम्हारे ऊपर पग रखनेमें बहुत सङ्कोच होता है, तुम तो मेरे भगवानकी शक्ति हो।

भगवान श्रीनारायण! ये भू-देवी अर्थात् धरतीदेवीके पति है। श्रीनारायण त्रिपति कहलाते है। त्रिपतिका अर्थ है तीन देवी—श्रीदेवी, भू-देवी और लीलादेवीके पति।

अपने गुजरातमें जिस प्रकार द्वारिकानाथ विराजते हैं, उसी प्रकार दक्षिण भारत-में श्रीबालाजी महाराज विराजते हैं। द्वारिकानाथ चतुर्भुज है और बालाजी महाराज भी चतुर्भुज हैं। शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म जिनके हाथोंमें हैं। गुजरात-सौराष्ट्रके श्रीमालिकदेव

श्रीद्वारिकानाथ हैं। दक्षिण भारतके मालिकदेव श्रीवेंकटेश श्रीबालाजी महाराज हैं। दक्षिण-के लोग वर्षमे एक-आध बार अवश्य श्रीबालाजी महाराजके दर्शन करने जाते है। चतुर्भुज नारायणका यह बालाजी स्वरूप अति दिव्य है, अति सुन्दर है। दर्शनसे मन अघाता नहीं, ऐसा अलौकिक स्वरूप है। बालाजी महाराजका नाम है त्रिपति बालाजी महाराज। मूल संस्कृत शब्द त्रिपतिका अपभ्रंश तिरुपति हो गया। लोग इसे तिरुपति बालाजी कहते है।

भगवान श्रीनारायण भू-देवी अर्थात् पृथ्वीदेवीके पति हैं। इससे वैष्णव कहते हैं कि ये धरती माता हमारी माँ है। धरतीपर पग रखनेसे पहले वैष्णव धरतीकी वन्दना करते हैं। कोई लौकिक दृष्टि रखने वाला हो तो ऐसा मानेगा कि इस पत्थर और जमीनको पग लगनेसे क्या लाभ है? यह पत्थर नहीं, यह मिट्टी नही, यह जमीन नही, यह तो परमात्माकी शक्ति है। इसके आधारपर सब कोई टिके हुए है। यह सबका धारण-पोषण करती है।

चेतन परमात्मा सर्वव्यापक है, सबमें विराजे हुए है।

पानीमे भी परमात्मा है। पानीमें जो मिठास है, वह ठाकुरजीका स्वरूप है। गीताजीमें प्रभुने आज्ञा की है कि अर्जुन!

पुण्योगन्धः पृथिव्यां च।

पृथ्वीमें गन्धस्वरूप मैं ही हूँ, और रसोऽहमप्सु कौन्तेय। जलमे रसरूप मैं ही हूँ, मैं ही तृप्ति करता हूँ। किसीको अतिशय प्यास लगी हो, उसको तुम कहो कि तुझे हजार-दो-हजार रुपया देता हूँ पर पानी नही दूंगा तो कहेगा कि तुम्हारा रुपया मुझे नही चाहिए, मुझे तो पानी ही चाहिए। अतिशय प्यास लगी है तो पैसा या सोना-चाँदीसे मनुष्यकी तृप्ति नही होगी, पानीसे ही होगी। पानीमे मिठासरूपमे, रसरूपमें परमात्मा ही विराजे हैं। पानी जड़ नही, पानीमें परमात्मा है, ऐसा विश्वास अत्यन्त तृषा लगनेपर सभीको होता है।

जड़ वस्तुमें भी परमात्माकी सत्ता दृढ है। किसी जड़ वस्तुका भी तिरस्कार करना, यह प्रभुका ही अपमान करने जैसा पाप है। एक ही ठिकाने परमात्माका दर्शन करे, यह तो साधारण वैष्णव माना जाता है—

सर्वभूतेषु यः पश्येत् भगवद्भावमात्मनः।
भूतानि भगवत्यात्मन्येप भागवतोत्तमः॥

उत्तम वैष्णव वह है जो जड़-चेतन सबमे अपने इष्टदेवका दर्शन करता है। सबमें श्रीराम-कृष्णके दर्शन करता है। प्रत्येक मानवमे भगवद्भाव दृढ करता है। सबमें भगव-द्भावनाकी दृष्टिसे देखनेकी टेंव पडे तो ही मन पवित्र रहता है। समय ऐसा आया है कि मनको पवित्र रखना बहुत कठिन हो गया। पढ़े-लिखोंका मन बिगड़ता है और बेपढ़े-

लिखोंका भी बिगड़ता है । संसारके व्यवहारमें रहकर मनको पवित्र रखना, यह असत्य जैसा है । तुम्हें मनको पवित्र रखना हो तो सबको भगवद्भावसे देखनेकी चेष्टा करो । ऐसा भाव रखो कि ये सब परमात्माके ही स्वरूप है । मुझे किसीके शरीरकी आवश्यकता नही, मैं किसीके शरीरको देखूँ भी नही । मै किसीके शरीरका चिन्तन भी करूँ नही । कोई चमड़ी काली हो, किसीकी गोरी हो, उससे क्या ? मुझे क्या लाभ ? मैं तो वैष्णव हूँ । मुझे तो परमात्माकी जरूरत है । प्रत्येक शरीरमे मेरे भगवान विराजते है ।

आँखोंमें प्रभुको रखकर जगतको देखो । इस रीतिसे जो देखता है, उसको जगत रामरूप दीखता है । तुलसीदासजी महाराजको जगतमे सीतारामके सिवाय और कोई दीखता न था । तुलसीदासजोको जगतमे कोई स्त्रीरूप दीखती न थी, कोई पुरुषरूप दीखता न था । संसारमे किसी भी स्त्रीमे इनको सीता माताका ही दर्शन होता था । महाराज सीतारामजीकी नित्य सेवा करो, स्मरण करो । जगतके स्त्री-पुरुषोमे श्रीसीतारामजीकी भावना दृढ करो ।

सीयराम मय सब जग जानी । करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी ॥

जगत्के स्त्री-पुरुषोंमे श्रीसीतारामजीकी भावना दृढ करो । जगत्की प्रत्येक स्त्रीमें श्रीसीताजीके दर्शनका अभ्यास करो । प्रत्येक पुरुषमें परमात्मा श्रीरामको देखो । मन्दिरमें भगवानके दर्शन करते है, वह साधारण दर्शन है । प्रत्येक मनुष्यमें परमात्माके जो दर्शन है, उन्हें असाधारण दर्शन कहते है । ऐसे असाधारण दर्शन करो, जिससे मनकी शान्ति कायम रहे । तुम सबमें भगवानके दर्शन करनेका अभ्यास करो तो एक दिन ऐसा आयेगा, जिससे तुम्हारे अन्दर विराजे हुए भगवान तुमको दीखने लगेगे । अन्दर विराजमान परमात्माका जिसको बराबर दर्शन हुआ है, उसकी शान्ति किसी दिन भी भङ्ग नही होती ।

मन्दिरमें विराजे हुए भगवानके दर्शनोंसे आनन्द तो होता है परन्तु वहाँके दर्शन चौबीस घण्टे खुले रहते नही । मन्दिरमें विराजे ठाकुरजी तो शयन भी करते है । ठाकुरजीके शयन करनेके उपरान्त तुम किसके दर्शन करोगे ? जो केवल बाहरी भगवानके दर्शनोंका आधार रखता है, परन्तु जिसे अन्दरके भगवानका दर्शन नही होता, उसे प्रभुका वियोग सहना पड़ता है । बाहर दर्शन करने वालेको थोड़े समय दर्शनका आनन्द देकर परमात्मा अन्तर्धान हो जाते है, परन्तु जिसे अन्दरके परमात्मा दीखते है, जिसे आत्मस्वरूपमें परमात्माके दर्शन होते है, उसे किसी भी दिन प्रभुका वियोग नही होता । प्रभुका वियोग, यही भारी रोग है । इस रोगकी औषधि है प्रत्येकमें प्रभुके दर्शनका अभ्यास । जिसे प्रत्येकमें प्रभु दीख पड़ें, प्रत्येकमें आत्मवत्भाव जागे, वे प्रभुका नित्य सान्निध्य अनुभव करते हैं ।

प्रत्येकमें प्रभुके दर्शन करते-करते ज्ञानी महापुरुषोंको ऐसी तन्मयता हो जाती है कि उनको स्वयंमे भी परमात्मा दीखने लगते हैं। वे ऐसा अनुभव करते है कि जो प्रभु वैकुण्ठमें विराजते है, वे प्रत्येक जड़-चेतनमें भी है और वे मुझमें भी सतत विलास करते है। ज्ञानी महापुरुष परमात्माका सतत दर्शन करते है। उनको प्रभुका वियोग होता नहीं और इससे उनका आनन्द स्थायी टिकता है।

बड़े-बड़े साधु-महात्माओंके पास कुछ भी रहता नही, परन्तु उनकी शान्ति भङ्ग कभी होती नही। ये सतत आनन्दमें मस्त रहते है। इसका एक ही कारण है कि ये जानते हैं कि इस जगत्का जो मालिक है, जो लक्ष्मीका पति है, जो सर्वेश्वर है, वह स्वयं हमारे हृदयमे है। अरे, लक्ष्मी हाथ आवे तो मनुष्य बहुत सुख मानता है तो लक्ष्मीपति जिसके हाथमे आवे तो उसका सुख कितना होगा? कितने ही लोग ऐसा समझते हैं कि मेरे पास लाख रुपये है। मुझे तनिक भी बाधा आवेगी नही, भले ही कुछ भी हो जाय। लक्ष्मी होनेसे ही मनुष्य इतना निश्चिन्त हो जाता है तो लक्ष्मीपतिका सान्निध्य जिसको सतत होता है, उसकी शान्ति कैसी होगी? लक्ष्मीसे मिलनेवाला आनन्द क्षणिक है। यह कायम रहता नही। जो आत्मस्वरूपमे लक्ष्मीपतिको देखते हैं, परमात्माकी झांकी करते है, उनका आनन्द कायम रहता है। बाहर दर्शन करते-करते तन्मयतासे लीन होकर जो अन्तर्दर्शन करते है, जो आत्मस्वरूपमें परमात्माका दर्शन करते हैं, वे ही संसारसे तरते है।

लोटेमें पानी हो तो तुम उसे बाहर कर सकते हो। परन्तु लोटेके अन्दर जो शून्य आकाश है, उसे कौन बाहर कर सकता है। आकाश सर्वत्र व्याप्त है, परमात्म-तत्त्व भी अन्दर-बाहर सर्वत्र व्याप्त है। ज्ञानी पुरुष उसका सतत अनुभव करते हैं। आत्मस्वरूपमें, परमात्माका दर्शन, इसीको अपरोक्ष दर्शन कहते हैं। गोपीजन श्रीकृष्णके अपरोक्ष दर्शनमें इतनी तन्मय हो जाती थी कि श्रीकृष्णवियोगसे व्याकुल हुई सखीसे कहने लगती 'अरी सखी! तू कृष्णको ढूंढने कहाँ दौडती है, 'मैं ही श्रीकृष्ण हूँ।' गोपियोको श्रीकृष्णका सतत संयोग है और उससे गोपियाँ आनन्द-स्वरूप है।

अपरोक्ष दर्शनसे बहुत शान्ति मिलती है, बहुत आनन्द मिलता है। जीव कृतार्थ बनता है। मन्दिरमें दर्शन करो और पीछे प्रत्येक मनुष्यमें प्रभुके दर्शन करो। जितने मनुष्य दीखते हैं वे सब ही भगवानके अंश हैं, प्रत्येक जड़-चेतन वस्तुमें प्रभु विराजे हुए है। ऐसा भाव रखकर विवेकसे व्यवहार करो तो एक दिन तुमको अपने अन्दर परमात्माका दर्शन होगा।

गुजरातमें अपनेको कोई मिले तो प्रत्यक्षमें जय श्रीकृष्ण कही जाती है। काशी-अयोध्याकी तरफ ऐसी पद्धति है कि कोई भी मिले तो राम-राम कहते हैं। ये एक बार

राम बोलते नही, तीन बार राम बोलते नहीं परन्तु दो बार राम-राम बोलते है। ये दो बार राम क्यों बोलते हैं? एक बार नहीं, तीन बार नही, सिर्फ दो बार इससे क्या तात्पर्य? इसका एक कारण है। इसके पीछे ऐसी भावना है कि मुझको जो दीख पड़ता है वह मेरा राम है और मेरे अन्दर भी तेरा ही राम विराजा हुआ है। उन रामजीके प्रकाशसे मैं जगतको देख पाता हूँ। रामजी मुझे प्रकाश देते है। जो दीख पड़ता है, वह राम है तथा जो देखता है वह भी तत्त्व-दृष्टिसे रामजीका ही स्वरूप है। तुम मेरे अन्दर रामजीका दर्शन करो और मैं तुम्हारे अन्दर रामजीका दर्शन करूँ। ऐसी भावना परस्पर रखो तो बहुत शान्ति प्राप्त होगी।

तुम बहुतोंमें भगवानका दर्शन करो तो बहुत लोग तुममें भगवानका दर्शन करेंगे। वैष्णव तो वह है जिसके दर्शनसे भगवान याद आवे। वैष्णव तो वह है जिसको देखनेसे परमात्माका स्मरण आवे। तुम जिस मनुष्यके साथ व्यवहार करो, उस मनुष्यमे श्रीरामजीका दर्शन करते हुए बोलो, श्रीरामजीका दर्शन करके चलो। प्रत्येक मानवमें श्रीरामजी विराजे हुए है इसे याद रखकर व्यवहार करो तो तुम्हारा प्रत्येक व्यवहार ही भक्ति हो जाएगा। यह व्यवहार, व्यवहार नहीं रहेगा भक्ति बन जाएगा।

तुम्हारे घरमें नौकर भूल करे तो नौकरको धमका दो, परन्तु नौकरमें रामजी विराजे हैं, इसको भूलो नही। कितने ही मनुष्य ऐसे होते हैं कि लड़का भूल करे कुछ नहीं परन्तु नौकर भूल करे तो चले नहीं। लड़का घरमें मोटा नुकसान कर दे तो बाधा नही। अपनको जरा खोटा लगता नही, परन्तु नौकरसे थोड़ा-सा भी नुकसान हो जाय तो आँख निकालते और धमकाते है, तू कैसा है, तुझमें अक्ल नही। 'नौकरमें भी परमात्मा है' तुम्हे कोई ऐसा कहे कि तुममें अक्ल नहीं, तुम मूर्ख हो तो तुम्हें दुःख लगेगा।

ध्वनिसे उत्पन्न प्रतिध्वनि। तुम्हारी आत्माके प्रतिकूल लगे, वैसा व्यवहार दूसरेसे न करो।

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।

मेरे अन्दर जो राम विराजमान हैं, वे ही सबके शरीरमें भी है—ऐसा भाव सदैव रखो। प्रत्येकमें रामजीके दर्शन करते हुए व्यवहार करो तो व्यवहार शुद्ध होगा और व्यवहार शुद्ध होगा तो भक्तिमें आनन्द आएगा।

(३)

रामजीकी सेवा

भगवानको चन्दन-पुष्प अर्पण करना, इतने मात्रमें कोई भक्ति पूर्ण नही होती। यह तो भक्तिकी एक प्रक्रिया मात्र है। भक्ति तो तब होती है जब सबमें भक्ति-भाव जागता है। ईश्वर सबमें हैं। 'मैं जो कुछ भी करता हूँ, उस सबको ईश्वर देखते हैं' जो ऐसा अनुभव करता है, उसको कभी पाप नही लगता। उसका प्रत्येक व्यवहार भक्तिमय बनता है। वह अतिशुद्ध व्यवहार है और यही तो भक्ति है। जिसके व्यवहारमें दम्भ है, अभिमान है, कपट है, उसका व्यवहार शुद्ध नहीं। जिसका व्यवहार शुद्ध नही, उसे भक्तिमें आनन्द आता नही।

मानव, भक्ति करता है, परन्तु व्यवहार शुद्ध नही रखता। जिसका व्यवहार शुद्ध नही, वह मन्दिरमें भी भक्ति नही कर सकता जिसका व्यवहार शुद्ध है, वह जहाँ बैठा है, वही भक्ति करता है और वही उसका मन्दिर है। व्यवहार और भक्तिमे बहुत अन्तर नही है। अमुक समय व्यवहारका, अमुक समय भक्तिका, ऐसा विभाजन नही है। रास्ता चलते, गाड़ीमें यात्रा करते अथवा दुकानमें बैठकर धंधा करते, सर्वकालमे और सर्वस्थलमें सतत भक्ति करनी है।

बहुतसे लौकिक कार्योंसे विश्राम लेनेके बाद जो भी समय मिले, उसमें भक्ति करना यह मर्यादा भक्ति कही जाती है। मर्यादा भक्तिमें व्यवहार और भक्ति अलग-अलग होते हैं। परन्तु पुष्टि भक्तिमें व्यवहार और भक्ति अलग-अलग नही होते। एक ही होते हैं। भक्त बाजारमें शाक-भाजी लेने जाय, यह भी भक्ति है। उसका ऐसा भाव है कि 'मैं अपने ठाकुरजीके लिए शाक-भाजी लेने जाता हूँ'। प्रत्येक कार्यमें ईश्वरका अनुसंधान, इसे कहते है पुष्टि भक्ति।

प्रभुका स्मरण करते-करते घरका काम करो तो वह भी भक्ति है। यह घर ठाकुरजीका है। घरमें कचरा रहेगा तो ठाकुरजी नाराज होंगे। 'ऐसा मानकर झाडू देना भी भक्ति है। मेरे नारायण आरोगते हैं, ऐसी भावनासे किया हुआ भोजन भी भक्ति है। बहुत-सी बार माताओंको ऐसा लगता कि कुटुम्ब बहुत बड़ा है, जिससे सारा दिन रसोईघर-में ही चला जाता है। 'सेवा-पूजा कुछ हो नही पाती' परन्तु घरमे सबको भगवद्रूप मान-कर की हुई सेवा यह भी भक्ति है।

भक्ति करनेके लिए घर छोड़ने या व्यापार छोड़नेकी आवश्यकता नही। केवल अपने ही लिए कार्य करो, यह पाप है। घरके मनुष्योके लिए काम करो, यह व्यवहार है

और परमात्माके लिये काम करो, यह भक्ति है। कार्य तो एक ही है परन्तु इसके पीछे भावनामें बहुत फर्क है। महत्त्व क्रियाका नही, क्रिया के पीछे हेतु क्या है, भावना क्या है—यह महत्त्वपूर्ण है। मन्दिरमें एक मनुष्य बैठा-बैठा माला फेरे परन्तु विचार संसारका करे, दूसरा मनुष्य प्रभुका स्मरण करते-करते बुहारी करे तो उस माला करनेवालेसे यह बुहारी करनेवाला श्रेष्ठ है।

व्यवहार करो। व्यवहार करना खोटा नही परन्तु जो व्यवहार प्राप्त हुआ है, उसमें विवेककी आवश्यकता है। मनुष्यको सतत भक्तिमें आनन्द नहीं आता। अपने जैसे साधारण मनुष्यका मन पाँच-छः घण्टे परमात्माका ध्यान, सेवा-स्मरण करनेके उपरान्त कुछ और-और माँगने लगता है। निरन्तर मिठाई मिले तो मनमें अभाव होने लगता है, वैसे ही मनुष्यको सतत भक्ति करनेका अवसर मिलनेपर वह भक्ति नहीं कर सकता। भगवानमें-से उसका मन हट जाता है। शरीरको थकान होती है, वैसे ही मनको थकान होती है। पाँच-छः घण्टा सेवा-स्मरण करनेके उपरान्त मन थक जाता है। इसलिए दोनों प्रवृत्तियोंको ढूँढ़ता है। भक्तिके लिए प्रवृत्तियोंका निरन्तर त्याग करनेकी जरूरत नही है। प्रवृत्तियोंको सतत भक्ति बनाओ। भक्ति दो-तीन घण्टेकी नहीं, चौबीसों घण्टोंकी करो। अपनी प्रत्येक प्रवृत्तिको भक्तिमय बनाओ, भक्ति बनाओ।

बड़े-बड़े सन्त भी प्रारम्भमें धन्धा करते थे। सन्त यह धन्धा करते-करते ही भक्ति करते थे और प्रभुको प्राप्त करते थे।

नामदेव दर्जी था—गोरा कुम्हार घड़ा बनाता था—कबीरजी बुनकर थे—सेना भगत हजामतका काम करता था।

सन्त धन्धा करते, परन्तु सबमें प्रभुको देखते। ग्राहकमें भी परमात्माका अनुभव करते। प्रत्येक महापुरुषको अपने धन्धेमें-से ज्ञान मिला। प्राचीनकालमें महान् ज्ञानी ब्राह्मण भी वैश्यके घर सत्सङ्गके लिए जाते। जाजलि ऋषिकी कथा है। एक दिवस उनको आकाशवाणीसे आज्ञा हुई कि सत्सङ्ग करना हो तो जनकपुरमें तुलाधार वैश्यके यहाँ जाओ। जाजलि ऋषि तुलाधारके यहाँ गये।

तुलाधार उस समय दुकानमें काम कर रहे थे। जाजलिको देखकर उन्होंने पूछा क्या आकाशवाणी सुनकर आए हो ? जाजलिको महान् आश्चर्य हुआ कि वैश्य और इतना महान्। तुलाधारसे पूछा कि तुम्हारा गुरु कौन है।

तुलाधारने कहा, मेरा धंधा ही मेरा गुरु है। मैं अपने तराजूकी डंडी ठीक रखता हूं। किसीको कम नहीं तोलता, बहुत नफा नही लेता। मेरी दुकान पर आनेवाला ग्राहक प्रभुका अंश है, ऐसा मानकर व्यवहार करता हूँ। तराजूकी डंडीकी तरह अपनी

बुद्धिको ठीक रखता हूँ, टेढी होने नही देता। अपने माता-पिताको परमात्माका स्वरूप मानकर उनकी सेवा करता हूँ तथा धधा करता-करता मनमें मालिकका सतत स्मरण रखता हूँ।

धधा करनेमे ईश्वरको भूलो नही तो तुम्हारा धंधा ही भक्ति बन जाएगा। ठाकुरजीका दर्शन करनेमे यदि दुकान दीखे तो दुकानका काम-काज करनेमे भगवान क्यों न दीखे। कोई-कोई वैष्णव दुकानमें श्रीद्वारिकानाथजीका चित्र पधराते है यह ठीक है, परन्तु द्वारिकानाथ सदा हाजिर है, ऐसा समझकर व्यवहार करे, यह बहुत जरूरी है। जब तक देहका भान है तब तक व्यवहार तो करना ही पड़ेगा। व्यवहार करो परन्तु व्यवहार करते-करते परमात्मा सबमे विराजते है, यह भूलो मत। व्यवहारमे अपने धर्मको मत छोड़ो। जीवनमे धर्म ही मुख्य है। अन्य चीजे गौण है।

मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं रक्षोवधायैव न केवलं विभोः।

श्रीराम मानव-समाजको धर्मका शिक्षण देनेके लिए जगत्मे पधारे है। रामजीका प्राकट्य राक्षसोके संहारके लिए नहो हुआ। श्रीराम परमात्मा है, कालके भी काल है। श्रीराम संकल्प करे तो एक क्षणमे राक्षसोका तो क्या सारे ससारका प्रलय कर सकते है। श्रीराम लकाधीश रावणको मारनेके लिए नही आए। श्रीराम तो मानवमात्रमे रहनेवाले रावणका विनाश हो, ऐसे धर्मका शिक्षण देनेके लिए प्रकट हुए है।

रावण कौन है ? यह काम रावण है। यह क्रोध रावण है। यह मोह रावण है। प्रत्येक मानवको स्वयके अन्दर रहनेवाले इस रावणको धर्मका आचरण करके मारना है। जीवनमें धर्मके आचरणका आदर्श रामजीने जगतको बताया है। श्रीराम धर्मकी मूर्ति है। श्रीरामचन्द्रको धर्म पालनेकी आवश्यकता नही। राम तो ईश्वर हैं, ईश्वर होनेपर भी समाजको धर्मका शिक्षण देनेके लिए प्रभुने मर्यादाका पालन किया है।

जो धर्मकी मर्यादाका पालन करते है, उनका ही मन शुद्ध होता है। परमात्माकी आज्ञा समझकर जो धर्मकी मर्यादाका पालन करते है, उन्हीको भक्तिका रङ्ग लगता है। मानव भक्ति करे परन्तु धर्मका पालन न करे, तो उसका ज्ञान और भक्ति सफल नही होते। आजकल लोग मन्दिरमे बहुत जाते है। भक्ति बढ रही है, ऐसा दीखता है। पुस्तको द्वारा ज्ञानका प्रचार भी बहुत बढता हुआ मालूम पड़ता है। प्राचीन कालमें ऐसा बहुत ज्ञान नही था। प्राचीन कालमे तो ऐसा था कि जो तीन बार सन्ध्या करे, गायत्रीका जप करे, ब्रह्मचर्यका पालन करे, सद्गुरुकी सेवा करे, उसीको ज्ञान मिलता था।

आजकल तो सन्ध्या करनेकी जरूरत नही, गायत्री-जप करनेकी जरूरत नही, गुरुकी सेवा करनेकी जरूरत नही, आराम कुर्सीमे पडे-पड़े पुस्तके पढकर ही लोग ज्ञानी हो जाते है और पीछे ज्ञानकी अच्छी-अच्छी बाते करते हैं और धर्मका भाषण भी करते

हैं परन्तु इस ज्ञान-भक्तिसे मनुष्यको जो शान्ति मिलनी चाहिए, वह मिलती नहीं। उसका एक ही कारण है कि मानव धर्मको भूला हुआ है। वह धर्म-पालन करता नहीं, मर्यादा-पालन करता नहीं।

जिस प्रकार भोजनकी खाली बात करनेसे तृप्ति नहीं होती, उसी प्रकार ज्ञानकी केवल बातें करनेसे शान्ति प्राप्त होती नहीं। ज्ञानको जीवनमें उतारो तो शान्ति मिल सकती है। ज्ञानको जीवनमें उतारना अर्थात् धर्मका बराबर पालन करना। धर्मका फल है शान्ति, अधर्मका फल है अशान्ति। धर्मकी मर्यादाका पालन न करे उसको शान्ति मिलती नहीं। स्त्री, स्त्रीकी मर्यादामें रहे। पुरुष, पुरुषकी मर्यादामें रहे। मनुष्य जब मर्यादाका उल्लंघन करता है तभी अशान्ति आती है। उसकी ज्ञान-भक्ति बह जाती है।

ज्ञान और भक्ति धर्मानुकूल हों तो सार्थक होते हैं और तभी मनको शान्ति प्राप्त होती है। धर्मका भक्तिके साथ विरोध नहीं, भक्ति धर्म-मर्यादा-विरुद्ध हो तो वह भक्ति नहीं। परमात्माने जगतको बतलाया है कि कदाचित् तुम भक्ति न कर सको तो बाधा नहीं, परन्तु धर्म मत छोड़ो। जो सुधर्मका बराबर पालन करते है उन्हींको भक्तिका रङ्ग लगता है।

मनुष्य आकाशमें-से धरतीके ऊपर नहीं गिरा। इसका किसी कुलमें, गोत्रमें जन्म हुआ है। जन्मसे ही कुलधर्म, जातिधर्मका इसके ऊपर बन्धन पड़ जाता है। ज्ञान बढ़े, धन मिले, मान बढ़े, फिर भी अपना धर्म छोड़ना नहीं। अनेक बार मनुष्यको बहुत मान मिले तो अभिमानमें यह धर्मकी मर्यादाको भङ्ग कर देता है। ज्ञान बहुत बढ़ जाय तो यह ऐसा समझता है कि 'मुझे जँचे वैसा बर्ताव करूँ तो कोई बाधा नहीं। मैं तो बहुत बड़ा हूँ, बहुत विद्वान हूँ, बहुत ज्ञानी हूँ' ज्ञानी होकर भी जो धर्म पालता नहीं उसके ऊपर भगवान कोप करते हैं।

श्रुतिस्मृति ममैवाज्ञास्तदुल्लंघ्य वर्तते।
आज्ञोच्छेदी ममद्वेषी मद्भक्तोऽपि न वैष्णवः॥

भगवानको यह जरा भी सह्य नहीं होता। भगवान कहते हैं, मैंने तुझे संसारमें इसलिए ज्ञान नहीं दिया कि तू धर्मकी मर्यादाको तोड़। भगवान उसको बहुत सजा देते है। ज्ञानी वही है जो धर्मकी मर्यादामें रहे। कुछ लोग ऐसा समझते हैं कि आत्माको पुण्य नहीं, आत्माको पाप नहीं। आत्मा शुद्ध है, चेतन है, ब्रह्मरूप है। पाप और पुण्यके परे है, धर्म और अधर्मसे परे है। सिद्धान्त खोटा नहीं है परन्तु आत्मा जब तक देहमें है, देह साथ है, जब तक थोड़ा-सा भी देहका भान है तब तक धर्मकी बहुत ही आवश्यकता है। परमात्माका ध्यान-स्मरण करते हुए जो देह-भान भूलता है, वह धर्मकी मर्यादाको भंग

करे तो बाधा नही। ज्ञानी महापुरुष देहातीत दशामे रहते हैं। त्रिगुणातीत दशामे रहनेवाले महापुरुषोके लिए धर्मकी मर्यादाका वन्धन नही रहता। वे धर्मको नही छोडते, उनका धर्म छूट जाना है। परमात्मोके स्वरूपमे अतिशय तन्मयता ठहर जानेके कारण इनको शरीरका भान रहता नही। देहातीत ब्रह्म-स्वरूपमे स्थिर हो जानेसे वे जगतको भूल जाते है। उनका जगतका सम्बन्ध छूट जाता है, देहका सम्बन्ध छूट जाता है। जिस पुरुषके प्राण, इन्द्रिय मन और बुद्धिकी वृत्तियाँ सङ्कल्परहित हो जाती है, वे देहमे रहते हुए भी देहके गुणसे मुक्त ही है। देह-सम्वन्ध छूटे और ब्रह्म-सम्वन्ध हो जाये। पीछे धर्म छूटे तो बाधा नही।

परन्तु जब तक देहका सम्बन्ध है, जब तक खबर रहती है कि मैं यह हूँ, मैं वह हूँ, मैं पुरुष या स्त्री हूँ, जब तक यह देहाभिमान है, जव तक आत्मस्वरूपका ज्ञान हुआ नही है, तब तक धर्मकी बहुत जरूरत है।

भक्ति भी धर्मकी मर्यादामे रहकर करो। भक्तिमे अधर्म आवे तो भक्ति बिगडे। स्वधर्मका पालन करो। जब तक जगतका भान है, तब तक धर्म छोड़े, देहवान होते हुए, धर्मका त्याग करे, यह मोटा अपराध है। ऐसे ज्ञान और भक्ति परमात्माको सह्य नही होते।

आत्माका धर्म है—परमात्मासे मिलना, परमात्मा न मिले तब तक धर्म-पालन करना ही पडेगा। धर्म पालनेसे मन शुद्ध होता है, पाप नष्ट होते है और उसको परमात्माके दर्शन होने हैं, परमात्मा प्राप्त होते है। जिन महापुरुषोने परमात्माका साक्षात्कार किया है, उनको धर्म-पालन करनेकी जरूरत रहती नही, परंतु जगतको आदर्श बतानेके लिए वे धर्म पालते हैं। बड़ा कौन ? बड़ा वह है जो धर्मकी मर्यादाको तनिक भी भङ्ग नही करता। बहुनसे पढ़े-लिखे लोग सुबह सूर्यनारायणके सम्मुख खटियामे पड़े रहते है, सूर्योदय होनेके उपरान्त भी खटिया छोड़ते नही। सूर्यनारायणके सम्मुख खटियामे लेटनेके समान कोई पाप नही। सूर्यनारायण तुम्हारे घर आवे और तुम्हारे स्नान भी न हों, इसके समान क्या पाप हो सकता है। सूर्यनारायणके उगनेसे पहले स्नान करो। रामायणमे लिखा है कि रामजी महाराज सूर्य उगनेसे पहले स्नान करते थे। भगवान श्रीकृष्ण सूर्य उगनेसे पहले स्नान करते और सूर्यनारायणको अर्घ्य देते थे।

यह लाइट तुम जलाते हो, सरकार तुम्हारे पास उसका बिल भेजती है। अमुक दिनोंकी मोहलत देती है, उतने ही समयमे बिल भर देना पड़ता है, नही तो पीछे दण्ड होता है। आज तक सूर्यनारायणने किसीके घर बिल भेजा हो, ऐसा सुना नही। सूर्यनारायणके प्रकाशका तुम उपयोग करते हो, वदलेमे तुम सूर्यनारायणको क्या देते हो। दीपावलीमें तुम छुट्टी लेते हो, परन्तु दीपावलीके दो-चार दिन सूर्यनारायण छुट्टी ले ले तो तुम्हारी दीपावली कैसी हो। सूर्यनारायण कोई दिवस छुट्टी लेते नही। वे नित्यप्रति प्रकाश देते है। तुम्हारे

पाससे सूर्यनारायण और कुछ नही माँगते। केवल एक अपेक्षा रखते है कि मानव सूर्य उगनेसे पूर्व स्नान कर ले ।

किसी-किसीको बहुत ऊँचा ओहदा (पद) मिल जाय तो उसको ऐसा लगता है कि मैं बहुत बड़ा साहब हूँ, मुझसे कौन पूछने वाला है । भगवान कहते है, तू ऊपर आ। पीछे तुझको बतलाता हूँ । क्या मैंने तुझे इसलिए धनमान-पदवी दी है कि तू मेरी धर्मकी मर्यादाको भंग करे ?

कुछ लोग भक्तिका बहाना करते है कि मैं भक्ति करता हूँ, मैं चाहूँ जब उठूं तो कोई बाधा नही। क्या भक्ति ऐसे की जाती है ? भक्तिका बहाना करके धर्म छोड़े, धर्मकी मर्यादाको भंग करे, उसकी भक्ति भगवानको सहन नही होती। भक्तिका बहाना करके जो स्वेच्छाचारी जीवन जीता है, धर्मको एक तरफ उठाकर रख देता है, वह ईश्वर-को जरा भी सुहाता नहीं।

अपना सनातन धर्म अतिशय श्रेष्ठ है। अपनी धर्मकी मर्यादा छोड़ो नही, रातको देर तक जागो नही। दस-साढ़े-दस बजे सो जाओ। रात ग्यारह बजे पीछे जागते मत रहो और प्रातःकाल चार-साढ़े-चार बजे पीछे सोओ नही। कुछ लोग तो रात्रिके ऐसे राजा होते हैं कि ये रात्रिके बारह-एक बजे तक गप्प न मारें तो इनको नीद ही न आवे। पीछे सुबह छः-सात बजे उठते है। रामायण हमको राक्षसोंका लक्षण बताती है। एक लक्षण यह है कि राक्षस लोग रात साढ़े दस बजे पीछे जागते और सुबह चार बजे पीछे शय्या-पर सोते पड़े रहते है। इस स्थानपर कोई राक्षस हो, ऐसा मत समझो, तुम तो सब ऋषियोंकी तरह हो। अरे, राक्षसोंके क्या कोई दो-चार सीग होते है। रामायणके बताये हुए लक्षण जिनमें हों वे सब राक्षस है।

तुम नित्य-प्रति सूर्य उगनेसे पहले स्नान करो, तुम्हारा कल्याण होगा। तुम्हारे ऊपर सूर्यनारायणकी कृपा उतरेगी। सूर्यनारायण बुद्धि शुद्ध करते है। सूर्यनारायण आरोग्य प्रदान करते हैं। अपने भारतमें पहले इतना अधिक रोग नही था, आजकल रोगकी संख्या बहुत बढ़ गयी है, दवाखानेमें जहाँ देखो, वहाँ बहुत भीड़ दिखाई देती है। पहले भारतके लोग सूर्यनारायणकी उपासना करते थे। लोगोंमे संयम था। आज तो भोगोका साधन बढ़ गया है, विकार-वासनाएँ बढ़ गयी हैं। जीवन बहुत विलासी हो गया है। जीवनमें संयम रहा नही, सदाचार रहा नही, सूर्यनारायणकी उपासना रही नही, इससे रोग बढ़ गये है।

श्रीरामचन्द्रजी सूर्यवंशमें प्रकट हुए है। सूर्यनारायण तन-मन और बुद्धि तीनों को सुधारते है। सूर्य उगनेसे पहले स्नान करो, सूर्यनारायणको अर्घ्य दो। तुमको दूसरा कोई मन्त्र न आता हो तो ऐसा बोलो—श्रीसूर्यनारायणाय नमः।

सूर्यनारायण प्रत्यक्ष परमात्मा हैं। अन्य बहुतसे देवता प्रत्यक्ष दर्शन नही देते, परन्तु सूर्यनारायण प्रत्यक्ष दर्शन देते है। दूसरे बहुतसे देवता भावनासे दिखाई पड़ पाते है। 'यह गणपति है', 'यह हनुमानजी है' अपनेको ऐसी भावना रखनी पड़ती है। भावना न हो तो केवल मूर्त्ति दिखाई पड़ती है, परन्तु सूर्यनारायणमें भावना करनेकी जरूरत नहीं पड़ती।

धर्मकी मर्यादा-भङ्ग अर्थात् परमात्माकी आज्ञाका लोप। भगवानकी आज्ञाका लोप करनेवालेको भगवान कभी अपनाते नही। परमात्माकी आज्ञाको भंग करने वालेको बहुत सजा मिलती है। समुद्र इतना बड़ा है, परन्तु प्रभुने जो हद समुद्रको सौंपी है कि 'यहाँसे आगे तुम बढ़ना नही' उस मर्यादाका समुद्र बराबर पालन करता है। समुद्र भी मर्यादा छोड़ता नही, छोड़े तो जगतका प्रलय हो जाय। जगतको प्रकाश देनेवाले सूर्य और चन्द्र प्रभुकी आज्ञामें रहते हैं। एक मनुष्य ही ऐसा दुष्ट है कि उसका ज्ञान बढ़े, उसको बहुत मान मिले, बहुत धन मिले तो यह बहुत अकड़कर चलता है और अभिमानी बनकर परमात्माकी मर्यादा तोड़ता है। धर्म छोड़ता है।

स्वधर्मका पालन करना ही तो भक्ति है। प्रभुकी आज्ञाका पालन न करे और भगवानको फूलकी माला अर्पण करने जाय, ठाकुरजीके सम्मुख सामग्री पधरावे, उसको भगवान कहते हैं कि मैं तेरे हाथकी सामग्री नही लूंगा, तू मेरा कहा करता नही। जो स्वधर्मका त्याग करते हैं, उनकी सेवाको भगवान स्वीकार नही करते। भगवानको धर्म अतिशय प्रिय है। धर्मका रक्षण करनेके लिए ही तो परमात्मा जगतमे आते हैं।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

श्रीरामजी मर्यादापुरुषोत्तम हैं। रामजी एक भी मर्यादाको भंग करते नहीं, सनातन धर्मका दर्शन करना हो तो तुम रामजीका दर्शन करो। रामजीके चरित्रका मनन करो। सनातन धर्म जैसा धर्म दूसरा हुआ नही और होगा भी नही। सनातन धर्म ईश्वरका स्वरूप है। धर्म साधन भी है और साध्य भी है। सनातन धर्मकी विशिष्टता यह है कि वहाँ साध्य और साधन दोनों एक ही हैं। भक्ति एक साधन है और पीछे भक्ति साध्य बन जाती है। भक्ति भगवद्रूप होनेसे भक्ति और भगवान पृथक नहीं। धर्मानुकूल पवित्र जीवन कैसे व्यतीत किया जाय, यह जगतको रामजीने बताया है । सनातन धर्म रामजीका स्वरूप है।

रामो विग्रहवान् धर्मः।
धर्माची तुं मूर्त्ति, पाप पुण्य तुझें नाहिं।

पुरुषका आचरण श्रीराम जैसा होना चाहिए और स्त्रीका आचरण श्रीसीताजी जैसा होना चाहिए। श्रीसीतारामजी मानव-समाजको स्त्री-पुरुषोको स्वधर्मका तत्त्व समझाने-के लिए लीला करते है। आचरण रामजी जैसा होगा तो ही भक्ति सफल होगी। बहुतसे लोग भक्ति करते है, परन्तु उनका आचरण रामजी जैसा होता नही। आचरण रावण जैसा रखे और राम-रामका जप करे तो राम-नामका फल मिलता नही। तुम किसी देवता-की सेवा करो, कोई भी देवताको मानो, परन्तु तुमको रामजीकी सेवा तो करनी ही पड़ेगी।

मानवमात्रके लिये रामजीकी सेवा अनिवार्य है। परमात्मा श्रीकृष्णकी भक्ति करनेवाला कोई वैष्णव हो, उपासना करने वाला कोई शैव हो या कोई शाक्त हो, परंतु उसका आचरण तो श्रीरामजीका जैसा ही होना चाहिए। शिवजीकी पूजा करने वाला जो आचरण रामजीका जैसा रखे तो ही उसकी पूजा सफल होगी, भक्ति सफल होगी। श्रीराम-सेवा बिना रावण मरता नही। जगतमे जितने महापुरुषोंको शान्ति मिली है, उन सबको श्रीरामचद्रजीकी सेवा करनेसे ही मिली है। श्रीरामकी सेवासे ही शांति मिलती है। रामजीका एक-एक गुण जीवनमें उतारना, यही रामजीकी उत्तम सेवा है।

रामवद् व्यवहर्तव्यम्।

रामजीकी सेवा अर्थात् रामजीकी मर्यादाका पालन करना। चन्दन और पुष्पसे रामजीकी सेवा करो, तुम रामजीको फूलकी माला अर्पण करो अथवा भोग धरो, यह तो साधारण सेवा है। रामजी विचार करते है कि बेटा! फूल तो मेरा ही बनाया हुआ है, मेरा ही मुझको देता है।

फूल क्या किसी मनुष्यने उत्पन्न किया है? मनुष्य कागजका फूल बना सकता है परन्तु उसमे सुगन्ध उत्पन्न करनी उसको आती है क्या? मिट्टी प्रभुने उत्पन्न की, पानी प्रभुने उत्पन्न किया है, फूल प्रभुने उत्पन्न किया है। फूलमें सुगन्ध भी प्रभुने स्थापित की है। इस ससारमें जो भी कुछ है, उसके मालिक श्रीराम है। रामजीका तुम रामजीको अर्पण करो, यह ठीक है परंतु उससे श्रीरामजी विशेष प्रसन्न नही होते। रामजी कहते है कि 'बेटा! यह सब तो मेरा है, मैंने ही जो तुझे दिया है, उसको मुझे देनेवाला तू कौन होता है?'

मन्दिरमे बहुत सेवा करनेवाले कुछ लोग ऐसा समझते है कि मंदिर मै चलाता हूँ। भगवान् कहते है कि 'मूर्ख! तुझको बोलना तो आता नहीं, तू मेरा मदिर चलाता है परंतु तेरे घरको तो मै चलाता हूँ। तेरे शरीरको मै चलाता हूँ, तुझे खबर है?

इस जगतमें जो कुछ भी है, उसके मालिक परमात्मा है। मनुष्य तो शरीरका भी मालिक नही। फिर धनका मालिक तो हो ही कैसे सकता है। इस शरीरका मालिक क्या

जीव है ? यह तो परमात्माकी ही आज्ञा है कि जीवको शरीर छोड़ना ही पड़ेगा। परमात्माकी आज्ञा छोड़नेकी न मिले तब तक इस मकानमे रह सकते हो ।

आजकल तो ऐसा भी कायदा है कि किरायेके मकानमे किरायेदारको भी अधिकार प्राप्त हो जाता है । मालिकके कहनेपर भी वह मकान खाली करता नही , मकान छोड़ता ही नही । परन्तु यह कायदा तो यहीपर है । ऊपर यह कायदा लागू नही । ऊपरसे जैसे ही आदेश हुआ कि 'मकान छोड़ो' तो तुरन्त राम बोलो भाई राम—मकान छोड़ना ही पड़ेगा ।

मनुष्य तो शरीरका भी मालिक नही तो फिर धनका मालिक कैसे हो सकता है ? मालिक तो एक श्रीराम है । 'परमात्मा ही मालिक है, मेरा क्या है' मनुष्य यह समझता नही, इससे मारा-मारी करता है । कितने तो ऐसे होते है कि उनकी हदमें भिखारी बैठा हो और खाता हुआ हो तो भी उनको सहन नही होता । उससे कहता है कि चलो ! उठो यहाँसे यहाँ क्यो बैठा है, यह स्थान मेरा है । सब कुछ छातीसे बाँधकर अन्त समयमे साथ ले जाना है ? स्थान तुम्हारा है ? मालिक परमात्मा है । प्रभुने कृपा करके अपनेको यह बहुत दिया है, परमात्माका परमात्माको तुम अर्पण करो; यह ठीक है परन्तु उससे प्रभु विशेष प्रसन्न होते नही । परमात्माको प्रसन्न करनेकी इच्छा हो तो प्रभुकी आज्ञाका पालन करो ।

यह तो रामजीकी मोटी पूजा है । अरे, रामजीको जोरकी भूख लगे तो उनको पेटभर भोजन करानेकी शक्ति क्या मनुष्यमे है ? इसीलिए वेदमें ऐसा वर्णन आता है कि परमात्मा खाता नही । परमात्मा तो जगतका पोषण करता है, विश्वम्भर है । उसको तुम क्या देनेमे समर्थ हो । भगवानकी आज्ञाका पालन करो, यह परमात्माकी सच्ची सेवा है । धर्मका पालन करो । तुम बहुत भक्ति न करो तो भगवानको खोटा लगेगा नही, परन्तु तुम अपने धर्मका पालन नही करो तो भगवानको खोटा लगेगा । भगवानने मनुष्यको तन, मन, बुद्धि मर्यादाका पालन करनेके लिए दिये है ।

स्वेच्छाचार पतन करनेवाला है । जगतमे स्वेच्छाचार बहुत बढ गया है । आजकल छोकरोंको माँ-बापके अधीन रहना सहन नही होता । चाहे जब उठे, चाहे जो बोले, चाहे जिसके हाथका खाये, चाहे जहाँ जाये, यह भला नही अपितु मूर्खता है । लोग स्वतन्त्रताकी बहुत बाते करते है परन्तु सच्चा स्वतन्त्र तो वही है जो जितेन्द्रियं है । जब तक मनुष्य इन्द्रियोका गुलाम है, तबतक वह स्वतन्त्र नही । जो व्यसनी है वह क्या स्वतंत्र कहा जा सकता है ? व्यसनी तो जड़ पदार्थके अधीन है, परतन्त्र है । जिसका मन चञ्चल है वह परतन्त्र है । स्वतन्त्र वह है जिसकी बुद्धि परमात्मामे स्थिर हो गयी है । स्वेच्छा-

चार मनुष्यको पतनकी खाईमें गिराता है। सदाचार परमात्माके चरणोंमें ले जाता है। सदाचारके बिना कभी जीवन सफल रहता नही।

सदाचार अर्थात् शास्त्र-सम्मत आचार। क्या करना और क्या न करना, यह यदि अपने मनसे पूछोगे तो मन धोखा देगा। मनसे पूछना नही, शास्त्रसे पूछो, सन्तसे पूछो।

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥

मानवका जीवन शास्त्र-मर्यादाके अनुसार होना चाहिए। आजकल सुधरे हुए मनुष्य शास्त्रकी मर्यादा पालते नही। वे ऐसा समझते है कि 'मै बहुत भला हूँ सुधरा हुआ हूँ' सबेरे उठनेके बाद पहले हजामतका ही काम करता है। सुबह उठनेके बाद पहले हजामत-का काम करे तो क्या वह सुधरा हुआ कहा जाएगा ? अपने ऋषियोंने लिखा है कि मङ्गल-वारके दिन क्षौर-कर्म न करे। अपने ऋषि महान् बुद्धिमान थे, ज्ञानी थे। ध्यान रखो—तुम ऋषियोंके बालक हो। तुम्हारा जन्म किसी ऋषिके वंशमें हुआ है। ब्राह्मण ही ऋषि-बालक हों, ऐसा नही। क्षत्रिय और वैश्य भी ऋषियोंके बालक है।

'हमारे पूर्वज महान् ऋषि थे। उनको अच्छा लगे, ऐसा पवित्र जीवन मुझे व्यतीत करना है, मैं ऋषियोंका बालक हूँ'—ऐसा सदैव याद रखो। ऐसा सतत अनुसंधान रखनेके लिए ही तिलक होता है, कण्ठी होती है। गलेमें कण्ठी धारण करनेके पीछे जीवका ऐसा भाव होना चाहिए। यह शरीर मैं कृष्णार्पण करता हूँ। श्रीकृष्ण राजी रहें, उसी प्रकार शरीरका उपयोग करो।

जीवनमें संयम हो, सदाचार हो, सेवा हो, मर्यादाका बराबर पालन हो, तब ही जीवन सुधरता है। जो धर्मकी मर्यादामें रहते हैं उनके ही मनकी शुद्धि होती है। पुस्तक पढ़ने मात्रसे शब्द-ज्ञान ही बढ़ता है। तीर्थ-यात्रा करनेसे क्या मन शुद्ध होता है ? अरे, तीर्थ-यात्रा तो कौवा भी कर आता है। चारों धाममें कौवा फिरकर आ जाता है। तीर्थ-यात्रा करने मात्रसे मन शुद्ध होता नही। बहुत दान देनेसे क्या मन शुद्ध होता है ? श्रीमान लोग और राजा लोग बहुत दान देते है, यह ठीक है परन्तु उससे मन शुद्ध होता नही। मनका सदाचार, संयम, धर्मकी मर्यादाका सङ्ग हो तब ही मन शुद्ध होता है।

श्रीराम प्रत्येक लीला करते है, उसमें धर्मकी मर्यादाका पालन करते है। पापका भय मानते हैं। आजकलके लोगोंको पापका भय लगता ही नही। जिनको पापका भय नही उनका मन अशान्त ही रहता है। तुम किसी मनुष्यका भय रखो नहीं परन्तु दो वस्तुओं-का भय हमेशा रखो। पापका और ईश्वरका। ईश्वर किसीको मारता नही। मानवको मारता है उसका पाप। पापका भय सदा रखना, जिससे प्रभु नाराज न हों।

रामजीने पापका भय रखनेके लिए जगतको ज्ञान दिया है। विश्वामित्रजीने कहा कि 'इस अहिल्याका स्पर्श करो। गौतम ऋषिके शापसे अहिल्या पत्थर बन गयी है।' रामजी कहते है—'गुरुजी ! मैं किसी स्त्रीका स्पर्श करता नही। अगर स्पर्श करूँ तो मुझको पाप लगेगा' रामजी प्रत्येक लीलामें सावधान रहते है कि 'मुझको पाप न लगे।' रामजीकी प्रत्येक लीला मनुष्यके लिए अति उपयोगी है।

श्रीरामजीमें समस्त सद्‌गुण एकत्रित हुए हैं। श्रीराम अर्थात् जगतके समस्त दिव्य सद्‌गुणोंके भण्डार। यही तो श्रीराम है। रामजीकी मातृ-पितृ-भक्ति, रामजीका बन्धु-प्रेम, रामजीका संयम, रामजीका सदाचार, रामजीकी सरलता, रामजीका एकपत्नी-व्रत, रामजीका एक वचन, रामजीकी उदारता, रामजीकी शरणागत-वत्सलता, रामजी-की विनय, रामजीकी मधुर वाणी आदि सभी दिव्य सद्‌गुण रामजीमें एकत्रित हुए हैं।

---

(४)

श्रीरामकी मातृ-पितृ-भक्ति

श्रीरामकी मातृ-पितृ-भक्ति अलौकिक है। रामजी माता-पिताके अनन्य भक्त है। रामजीका ऐसा नियम था कि नित्य माता-पिताकी वन्दना करना और सदा माता-पिताकी आज्ञामे रहना। कितने ही लोग ऐसे होते हैं कि मन्दिरमें दर्शन करने जाते हैं, ठाकुरजीकी वन्दना करते है परन्तु घरके अन्दर वृद्ध माता-पिताको प्रणाम करते ही नही। एक भाईसे पूछा कि तुम हमारे पाँव छूते हो परन्तु घरमें बूढी माँके पाँव छूते हो कि नही ? उसने जवाब दिया कि महाराज पहले पाँव छूता था परन्तु बी ए. पास किया तबसे छोड़ दिया।

वह शिक्षा किस कामकी जिसको प्राप्त करनेके उपरान्त माता-पिताका वन्दन करने-में, माता-पिताकी सेवा करनेमें संकोच हो ? इससे तो यह मूर्ख रहे तो क्या बुराई ? विद्वान तो ऐसा होना चाहिए कि प्रभुमें प्रेम जागे, धर्ममे विश्वास बढ़े, माता-पिताकी, समाजकी, देशकी सेवा करनेकी भावना जगे। सबमे भगवद्‌भाव दृढ हो। अरे, जो माता-पिताकी सेवा करते नहीं, वे समाजकी और देशकी क्या सेवा कर सकते है ? वे भगवानकी क्या सेवा कर सकते हैं ? जो विद्या माँ-बापकी वन्दना करनेमे शर्म जगाये वह विद्या नही। बापकी सम्पत्ति लेनेमें शर्म या संकोच होता नही किंतु वन्दन करनेमें संकोच होता है, शर्म आती है। कितने ही तो बापसे कहते हैं 'बङ्गला हमारे नाम कर देना, नहीं तो पीछे बहुत उपाधि होती है' बापका सब कुछ लेते हैं किंतु बापकी सेवा करते नहीं।

कितने ही लोग माता-पिताका वन्दन तो करते है परन्तु उनकी आज्ञाका पालन नही करते । इस वन्दनका कोई अर्थ नही । वन्दनका अर्थ तो यह है कि 'मै तुम्हारे अधीन हूँ, अपना मस्तक और हाथ मै तुमको समर्पण करता हूँ, तुम्हारी इच्छाके अनुसार ही मैं कार्य करूँगा, तुम्हारी आज्ञामे रहूँगा, मैं तुम्हारा सेवक हूँ।' माथा है बुद्धिका प्रतीक और हाथ है क्रियाशक्तिके प्रतीक । मस्तकमें बुद्धि रहती है, हाथसे क्रिया होती है । वन्दन अर्थात् इन सबका समर्पण ।

माता-पिताकी आज्ञाका पालन करो । तुमको सुखी होना हो तब माता-पिताकी सेवा करो । शास्त्रमे तो ऐसा लिखा है कि जिसके माता-पिता जीवित न हो या साथ रहते न हों, तो चौबीस घण्टेमे एक बार माँको याद करे, पिताको यादकर वन्दन करे। अपने माता-पिताकी सेवा तुम करते हो तब वृद्धावस्थामे तुम्हारे बालक तुम्हारी सेवा करेंगे । माता-पिता, गुरु और अतिथि ये संसारमे प्रत्यक्ष चार देव है । उनकी सेवा करो ।

मातृदेवो भव । पितृदेवो भव । आचार्यदेवो भव । अतिथिदेवो भव ।

माताका नम्बर पहला है, पिताका नम्बर दूसरा है और गुरुका तीसरा है । माता-पिता ये परमात्माके प्रत्यक्ष स्वरूप है । माता-पितामे जिसका भगवद्भाव नहीं, उसे मन्दिर-मे, मूर्त्तिमें, किसी दिन भगवान दीखते नही । शास्त्रमे तो ऐसा लिखा है कि तुम कदाचित् परमात्माकी भक्ति न करो तो चल सकता है, परन्तु माता-पिताकी भक्ति-सेवा पहले करो । परमात्मा तो प्रत्यक्ष दीख पड़ते नही इसलिए प्रभुकी भक्ति करना बहुत कठिन है परन्तु माता-पिताकी भक्ति करने-योग्य है ।

तुम अपने वृद्ध माता-पिताकी सेवा न करो तो परमात्माको बहुत खोटा लगता है, प्रभु नाराज होते है । जगतमे कितने ही लोग ऐसे है कि अभिमानके आवेशमे ऐसा भी बोलने लगते है कि—मै धर्मको मानता नही, ईश्वरको मानता नही । ईश्वर कहाँ है ? ऐसे नालायकका पोषण भी ईश्वर करते है । नास्तिकको भी परमात्मा प्रकाश, पानी और पवन देते है । नास्तिक भी प्रभुकी सृष्टिमे ही रहता है । भगवानकी पूजा न करो तो भगवानको खोटा लगना नही परन्तु जो वृद्ध माता-पिताकी सेवा नही करता, वह भगवानको जरा भी सहन नही होता ।

कितने ही लोग मन्दिरमें पद-त्राण घिसने जाते है, परन्तु घरमें माता-पिताकी सेवा करने ही नहीं । इनका मुख भगवान देखते नही । भगवान कहते है 'यह मूर्ख है । मुझे मुँह दिखाने आया है ? धर्मवृद्ध माता-पिताका अपमान करता है, माता-पिताके सामने जबाब देता है और मुझे फूलकी माला अर्पण करने आया है ? इसके हाथकी फूलकी माला मैं देखना भी नहीं ।' भगवान तो उसीकी सेवाको स्वीकार करते है जो माता-पिताको परमात्मा

समझकर उनकी सेवा-पूजा करता है। तुम परमात्माकी पूजा न करो तो चले, परन्तु माता-पिताकी पूजा न करो तो नही चले।

माता-पिताकी सेवा महान् पुण्य है। अनेक यज्ञोके करनेवालेको जो पुण्य नही मिलता वह वृद्ध माता-पिताकी सेवा करनेवाली सन्तानको अनायास ही प्राप्त हो जाता है। माता-पिताकी अनन्य भावसे सेवा करने वालेके ऊपर परमात्मा बहुत कृपा करते है, इनके घर प्रत्यक्ष पधारते है। पुण्डरीककी कथा तुम जानते हो। पुण्डरीकने प्रभुकी सेवा नही की थी। ग्रन्थोमे लिखा है कि पुण्डरीकने परमात्माका स्मरण किया था। प्रभुकी सेवा नही की थी। पुण्डरीक स्मरण श्रीकृष्णका करता था और सेवा माता-पिताकी करता था। पुण्डरीक भगवानके दर्शन करने नही गया, पुण्डरीकके दर्शन करने भगवान स्वयं उनके घर पधारे थे। पुण्डरीककी मातृ-पितृ-भक्तिसे प्रसन्न होकर प्रत्यक्ष द्वारिकानाथ पुण्डरीकके घर आये थे। पुण्डरीक उस समय माता-पिताकी सेवा कर रहे थे। प्रभुने उनसे कहा कि 'मैं आया हूँ' पुण्डरीकने कहा—'महाराज मैं आपकी वन्दना करता हूँ। इस समय मैं माता-पिताकी सेवामे व्यस्त हूँ। माता-पिताकी सेवाके फलस्वरूप आप मिले हो, इसलिए माताकी सेवा प्रथम है। आप तनिक बाहर खडे रहो।'

माता-पिताकी सेवा करनेवालेमे इतनी शक्ति आती है कि वह ईश्वरको भी खड़े रहनेके लिए कह सकता है। प्रभुने थोड़ी परीक्षा की। पुण्डरीकसे बोले 'अनन्तकोटिब्रह्माण्ड-के अधिनायक लक्ष्मीके पति तेरे घर आये है' पुण्डरीकने कहा 'आप पधारे। यह बहुत अच्छी बात है। मैं आपका वन्दन करता हूँ, परन्तु इस समय आपकी सेवा करनेकी मुझे फुरसत नही।'

प्रभुने कहा, 'तू मेरी सेवा करता नही तो मैं यहाँसे चला जाऊँ।'

पुण्डरीकने कहा, 'आपकी मर्जी। भले ही आप जाओ।'

पुण्डरीकको विश्वास है कि मैंने माता-पिताकी सेवा छोडी नही। मैं माता-पिताकी सेवा करता हूँ। इसलिए भगवान भले ही चले जाये, परन्तु ठाकुरजीको वापिस यही आना ही पडेगा। पुण्डरीकने ठाकुरजीको उत्तर दिया 'भले ही आप जाओ, परन्तु आपको वापिस यही आना पड़ेगा। मैं माता-पिताकी ऐसी सेवा करता हूँ कि तुमको दौडते हुए वापिस यही आना पड़ेगा।'

श्रीकृष्ण जगतका आकर्षण करते है परन्तु माता-पिताकी सेवा करनेवाला तो परमात्माका भी आकर्षण करता है और कहता है 'आज जाओ तो वापिस फिर आना पडेगा।' प्रभू तो भक्तिके अधीन है। पुण्डरीकने प्रभुको खडे रहनेके लिए एक ईंट दे दी थी। भगवान ईंटके ऊपर खडे रहे और पुण्डरीककी प्रतीक्षा करते रहे। पुण्डरीकने माता-

पिताकी सेवाका काम छोड़ा नहीं। प्रतीक्षा करते हुए खड़े रहनेसे भगवानको थकान हुई तो कमरपर हाथ रखना पड़ा। आज भी पण्ढरपुरमें पाण्डुरङ्ग भगवान कमरपर हाथ रखे हुए ईंटपर खड़े हैं। माता-पिताकी सेवाकी यह महिमा है।

शास्त्रोंमें लिखा है कि मनुष्य-देह बहुत दुर्लभ है। 'दुर्लभो मानुषोदेहो।' कारण कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चारों पुरुषार्थ सिद्ध करनेवाला अपना यह मनुष्य-शरीर ही है और यह शरीर माता-पिताने दिया है। माता-पिताका यह ऋण माथेपर है। माता-पिताने बालकोंके लिए बहुत कष्ट सहन किए है परन्तु आजकल बहुतसे लोग स्त्रीका पक्ष लेकर माता-पिताका अपमान करते है। शास्त्र कहते है कि माता-पिताका अपमान करनेवाला कभी सुखी रहता नहीं।

रामजीका ऐसा नियम था कि माता-पिताको किसी दिन भी सम्मुख उत्तर दिया नहीं। वृद्धावस्थामें माता-पितासे कदाचित् कोई भूल हो जाय तो इनके सम्मुख उत्तर नहीं देना। उनका बारम्बार वन्दन करो, सम्मान करो और पीछे विवेकसे समझाओ। वृद्धको जो सम्मुख उत्तर देता है उसको शाप मिलता है। वृद्धका हृदय बहुत कोमल होता है। सम्मुख उत्तर मिलता है तो उनको ऐसा लगता है कि इसने हमारा अपमान किया है। तुम सुखी होना चाहो तो अपने माता-पिताको सम्मुख उत्तर न देना। कितने ही छोकरे तो माता-पितासे ऐसा कहते हैं कि 'तुमको कोई खबर नहीं, तुम कुछ न जानते हुए भी बोलते हो। मैं कहता हूँ, वैसा करो।' छोकरे ऐसा बोलते हैं तो माँ-बापको कैसा लगता है? तुमको अच्छा लगे चाहे न लगे, अपने माता-पिताकी आज्ञामें रहोगे तभी तुम्हारा कल्याण होगा।

तुमको भला न लगनेपर भी माता-पिताकी आज्ञाका पालन करो। रामायणका यही आदर्श है। तुमको भला न लगे, ऐसी आज्ञा भी तुम्हारे माता-पिता करे, तो भी तुम प्रभुमें विश्वास रखना, रामायणमें विश्वास रखना और भली न लगनेवाली आज्ञाका भी पालन करना तो तुम ईश्वरको अच्छे लगोगे।

रामायणमें लिखा है कि दशरथ महाराजने कभी रामजीको मुखसे नहीं कहा कि तुम वनमें जाओ। दशरथ महाराजकी जिह्वा कभी बोल सकती ही नहीं कि रामजी वनमें जाये। दशरथजीने स्पष्ट आज्ञा दी नही।-यह तो कैकेयीने कहा कि तुम्हारे पिताकी इच्छा है, आज्ञा है कि तुम वनमें जाओ। तब रामजी बोले कि मेरे पिताकी ऐसी इच्छा है तो पिताकी आज्ञाका पालन करना मेरा धर्म है—

अहं हि वचनाद् राज्ञः पतेयमपि पावके।
भक्षयेयं विषं तीक्ष्णं पतेयमपि चार्णवे॥

'पिताकी आज्ञासे मैं अग्निमें अथवा समुद्रमें कूद पड़नेको तैयार हूँ, जहर भी पी जानेको तैयार हूँ।'

रामजी माता-पिताका वन्दन करके वनमें चले जाते है।

थोड़ा विचार करो कि कैकेयीने राज्य भरतको भले ही दिया परन्तु रामजीको वनवास क्यों दिया ? रामजीने कोई अपराध किया नही। रामायणमें लिखा है कि एक बार नहीं, अनेक बार कैकेयीने अपने मुखसे कहा है कि 'श्रीराम निरपराध हैं। रामजीने कोई भूल नही की' तो भी कैकेयीने रामजीको वनवास दिया परन्तु रामजीने कैकेयीसे एक बार भी नही पूछा कि मुझे वनवास क्यों देती हो। माता-पिताकी आज्ञा है, प्रभुको खबर मिली तो तुरन्त उन्होने आज्ञाका पालन किया। राजा दशरथने प्रत्यक्ष आज्ञा दी नही। केवल कैकेयीके कहने मात्रसे ही रामजी, वनमें चले गये। कैकेयीकी आज्ञा अयोग्य है, अनुचित है, परन्तु रामजीने ऐसा विचार नही किया। रामजी तो मानते है कि मैं अपने माता-पिताके अधीन हूँ।

नास्ति शक्तिः पितुर्वाक्यं समतिक्रमितुं मम।

सर्वसमर्थ रामजी कहते है कि पिताजीकी आज्ञाका उल्लंघन करनेकी मुझमें शक्ति नही। श्रीरामचन्द्रजीकी-सी मातृ-पितृ-भक्ति करनेवाला जगतमें कोई दिखाई देता नही। ऐसा आदर्श जगतमे किसी जगह तुमको मिलेगा नही। रामचन्द्रजीकी मातृ-पितृ-भक्ति अनन्य है।

(५)

श्रीरामचन्द्रजीका बन्धु-प्रेम

रामजीका बन्धु-प्रेम भी अलौकिक है। ऐसा बन्धु-प्रेम भी तुमको जगतमें कहीं देखनेको नही मिलेगा। महाराज दशरथने जब रामजीका राज्याभिषेक करना निश्चित किया तो रामजीने लक्ष्मणसे कहा—

निमित्तमात्रमेवाहं कर्त्ता भोक्ता त्वमेव हि।
मम त्वं बहिः प्राणो नात्र कार्या विचारणा॥

और

जीवितं चापि राज्यं च त्वदर्थमभिकामये॥

लक्ष्मण! यह राज्य तुम्हारा है। इसके कर्ता-भोक्ता तुम ही हो। मैं तो निमित्त मात्र हूं। लक्ष्मण! तुम तो मेरे बाह्य प्राण हो। मेरी दूसरी अन्तरात्मा हो। यह जीवन और यह राज्य तुम्हारे ही लिए है।

रामजी वनमें पधारे तथा रामजीके पीछे-पीछे लक्ष्मण भी चल पड़े। इसमें क्या आश्चर्य है? थोड़ा विचार करो। कैकेयीने वनवास तो रामजीको दिया था; लक्ष्मण-जीको दिया नही। फिर भी रामजी वनमें पधारे तो लक्ष्मणजी माता-पिता और पत्नीका त्याग करके बड़े भाईके पीछे वनमे गये। रामजीका प्रेम ही ऐसा है कि राम-वियोगमें लक्ष्मण अयोध्यामें रह सकते ही नही। लक्ष्मण, पत्नीको छोड सकते है, माता-पिताका त्याग कर सकते है, राजमहलके सुखका त्याग कर सकते है परन्तु ये बड़े भाईको छोड नही सकते। राम-वियोग लक्ष्मणमे सहन हो सकता नही। जहाँ श्रीराम हैं वही लक्ष्मणजी हैं।

रामजीने खेल-कूदमे भी छोटे भाइयोंका दिल कभी नही दुखाया। खेलनेमे भी उन्होने कभी अपनी विजय नही की, जानबूझकर पराजय ही ली। रामजी ऐसी रीतिसे खेलते थे कि रामजीकी हार हो जाय और लक्ष्मण-भरतकी जीत हो। खेलमें भी कभी लक्ष्मण-भरतको उन्होंने नाराज नही किया। रामजी विचारते है कि 'भरत हमारा भाई है, मेरे भाईकी हार, मेरी हार है। मेरे भाईकी जीत मेरी जीत है। कौशल्यासे रामचन्द्रजी कहते है माँ! मेरा भाई भरत छोटा है परन्तु बहुत होशियार है। माँ! हम खेलते रहे तो मेरी हार हो गयी और मेरा भरत जीत गया। भरतजीकी आँख सजल हो जाती है और वे कौशल्या माँसे कहते हैं 'माँ! मेरे बड़े भाईका मेरे ऊपर बहुत प्यार है, इससे माँ! यह जान-बूझकर हार जाते हैं और मुझे जिता देते है।'

हारेहुँ खेल जितावहिं मोही।

रामजीने जगतको बन्धु-प्रेमका आदर्श बताया है। कैकेयीने जब कहा कि मैं भरतको राज्य देती हूँ, तुम वनमे जाओ तो छोटे भाई भरतको गद्दी मिलनेकी बातसे रामजीको बहुत आनन्द हुआ। रामजीने कैकेयीसे कहा 'माँ ! मुझे राजा नही बनना। मेरा भाई भरत गद्दीपर बैठे, मेरा भाई राजा बने, मेरा भाई बहुत सुखी हो। इसमे मैं बहुत राजी हूँ, मेरे भाईका सुख ही मेरा सुख है, भाईका दुख ही मेरा दुख है। माँ ! तुम्हारी आज्ञा हो तो चौदह वर्ष तो क्या, मैं आजीवन वनमें रहनेको तैयार हूँ।' जैसा प्रेम श्रीरामजीका है, वैसा ही प्रेम श्रीभरतजीका है। लोग तो कहते है कि रामजीके प्रेमसे भी भरतजीका प्रेम श्रेष्ठ है। भरतजीने मिला हुआ राज्य भी छोड दिया। भरतजी कहते हैं 'गद्दीके मालिक मेरे बड़े भाई है। मैं तो उनका सेवक हूँ।' गद्दी मिली परन्तु भरतजीने ली नही। गद्दीके ऊपर उन्होने रामजीकी चरणपादुका पधरा दी और भरतजी तप करते रहे। महात्मा तो यहाँ तक कहते हैं कि रामजीकी तपश्चर्यासे भरतजीकी तपश्चर्या महान् है। रामजी वनमे तप करे, इसमे क्या आश्चर्य है। भरतजी तो राजमहलमे तप करते है। वनमें तप करना सरल है, परन्तु राज्यमहलमें अथवा बँगलेमें तप करना बहुत कठिन है।

भरतजीका नियम था कि आँगनमे कोई साधु-ब्राह्मण या गरीब आता तो उसको बड़े प्रेमसे भोजन कराते परन्तु चौदह वर्ष तक उन्होने स्वय अन्न ग्रहण नही किया। भरतजीको ऐसा अनुचित लगता था कि मेरे बड़े भाई वनमे कन्द-मूल-फल खाते है और मैं भोजन करूँ ? भरतजीका प्रेम अति दिव्य है। रामजीकी सेवामे तो सीताजी और लक्ष्मणजी रहते है। भरतजी किसीकी सेवा लेते नही। रामजी वनमें कुशाकी शय्यापर शयन करते है। इधर भरतलालको बहुत नीद आती है तो धरतीके ऊपर ही शयन कर लेते हैं। भरतजी रामजीकी पादुकापर दृष्टि रखकर सतत जप करते रहते है। भरतजीकी तपश्चर्या अलौकिक है। भरतजीकी निष्ठा है कि मेरे श्रीराम घर पधारे, श्रीराम भोजन करे, मै उन्हें अपनी आँखोसे देखूँ, उसके पश्चात् ही मै भोजन करूँ।

तुम छोटे भाईपर बहुत प्रेम रखो तो वह भी तुम्हारे प्रति प्रेम रखेगा। तुम कपट करोगे तो एक दिन वह भी तुम्हारे साथ कपट करेगा। ईश्वर दोनो जगह एक ही है। ये शरीर अलग-अलग है परन्तु प्रत्येक शरीरमें रहनेवाला ईश्वर-तत्त्व एक ही है।

जगत्में रामराज्य कैसे होगा, यह तो परमात्मा जाने। आज तो रामराज्यके पहले सर्वत्र कामका साम्राज्य व्याप्त है। जब तक मनुष्यकी छातीपर काम और स्वार्थ चढे बैठे है तबतक रामराज्यकी सम्भावना नही, परन्तु तुम अपने घरमें अवश्य रामराज्य कर सकते हो। बड़ा भाई राम हो सकेगा तो छोटे भाई निश्चय ही भरत या लक्ष्मण हो

सकेंगे। तुम शुद्ध भावसे अपने भाईके साथ प्रेम करो तो तुम्हारा भाई भी वैसे ही शुद्ध भावसे तुम्हारे प्रति प्रेम रखेगा, परन्तु आजकल तो बड़ा भाई रावण जैसा होता है और छोटा भाई कुम्भकर्ण जैसा हो जाता है।

कितने ही लोग ऐसे होते हैं कि दूसरोंके साथ प्रेम करते है परन्त भाईको धोखा दे देते हैं। भाईके साथ कपट करते हैं।

परेषु मैत्री स्वजनेषु वैरं पश्यन्तु लोकाः कलिकौतुकानि।

कलियुगकी यह महिमा है। मनुष्य परायेके साथ प्रेम करता है परन्तु अपने भाईके साथ नहीं। पैसेके कारण अथवा किसी दूसरे कारणसे, अथवा बिना कारण ही मनुष्य भाई-भाईमें वैर खड़ा करता है। दूसरोंको धनका भोग देता है परन्तु भाईके लिए वह देनेको तैयार नही है।

एक गाँवमें ऐसा अनुभव हुआ। एक सेठ आये, मुझसे कहने लगे 'महाराज मुझे कोई ऐसा मन्त्र दो कि जिससे मेरी जीत हो।' सेठ बहुत उदार थे, बहुत दान-पुण्य करते थे। मैंने उनसे पूछा 'तुम्हारी क्या इच्छा है ? किसमे तुम अपनी जीत चाहते हो।'

सेठने कहा, 'मैंने दावा किया है; उसमें जीत हो ऐसी इच्छा है।'

मैंने पूछा, 'किसका दावा है ? किसके ऊपर है ?'

सेठने कहा 'मैंने भाईपर दावा किया है।' मुझे कहना पड़ा कि तुम्हारी बुद्धि बहुत बिगड़ी है। मेरे पास ऐसा कोई मन्त्र नहीं।

जो भाईके ऊपर दावा करता है, जो भाईके साथ कपट करता है, जिसको भाई-में भगवान दीखते नहीं, वह भगवानकी भक्ति क्यों करता है ? अरे ! भगवान तो प्रत्यक्ष दीखते नहीं, भगवानकी भावना रखनी पड़ती है। जो परमात्मा प्रत्यक्ष दीखता नहीं, उस परमात्माकी भक्ति करनी सहज नही, बहुत कठिन है परन्तु भाई तो प्रत्यक्ष दीखता है। प्रत्यक्ष दीखे उसको तो धोखा दे, उसके साथ तो कपट करे, तो वह अप्रत्यक्ष परमात्माकी सेवा-पूजा क्यों करता है ? और कदाचित् करता हो तो उसकी भक्ति भगवान स्वीकार करते नही।

जिसको घरमें रहकर भक्ति करनी है, वह तो घरके एक-एक जीवमें ईश्वरका भाव रखता है, 'घरमें जितने जीव है वे सब ही प्रभुके स्वरूप है। मेरा भाई भी भगवान-का अंश है। मेरे घरमें जो देव है, वे प्रभुके अंश है।' ऐसी साधना रखे तो भक्ति हो सकती है।

अपना सनातन धर्म तो यहाँ तक कहता है कि तेरे घरमे भिखारी आवे तो उसमें भी तू भगवानका दर्शन कर। अतिथिदेवो भव। भिखारीको तुच्छ न गिनो। भिखारी हल्का है ऐसा न मानो। भिखारी हल्का नही, वह भी भगवानका स्वरूप ही है। कितने ही लोग ऐसे होते हैं कि घरमे जो वस्तु बिगड जाय, सड़ जाय अथवा किसीको भाती न हो, उसे भिखारीको बुलाकर कृष्णार्पण कर देते है।

तुमको जो चीज सुहाती न हो उसको किसीको मत दो। भिखारी भी भगवानका अंश है। जब तुम दो, प्रभुका स्मरण करके दो, भगवद्भाव रखकर दो तो ही दान सार्थक होगा। दान लेनेवाला हल्का है, ऐसा समझकर दोगे तो वह दान सफल होगा नही।

भिखारी भीख माँगता नही। यह तो अपनेको देनेके लिए आता है—एक अमूल्य बोध। यह उपदेश देता है कि पूर्वजन्ममें मैंने किसीको दिया नही इसलिए मेरी यह दशा हुई है। इससे मैं दरिद्र हुआ हूँ। तुम यदि नही दोगे तो पीछे तुम्हारी भी यही दशा होगी।

भिखारीमें भी भगवद्भाव रखो। परमात्मा कभी दरिद्रनारायणके रूपमें, कभी साधुके रूपमें, कभी ब्राह्मणके रूपमें तो कभी दीन-दुखीके रूपमें कोई-न-कोई रूपमें एक-आध समय तो प्रत्येक जीवके पास आते हैं, परन्तु प्रभु जब मिलने आते हैं तो जीव गाफिल होता है। इससे प्रभुको सामने देखता भी नहीं। इससे भगवानको बहुत बुरा लगता है। ज्ञानी महापुरुष कहते हैं कि ईश्वरका कोई रूप नही। वैष्णव भक्त कहते है कि जगत मे जितने रूप दिखाई देते है वे सब भगवानके है। इस जगतमे जितने नाम-रूप है, जितने जीव है, वे सब ईश्वरके रूप है। ईश्वरका कोई एक निश्चित स्वरूप नही, इसलिए उनका रूप नही, ऐसा कहते है। ईश्वर अनेक रूप धारण करते है। परमेश्वर किसी भी स्वरूपमें आते है। इसलिए किसीका भी तिरस्कार न करो, किसीके प्रति कुभाव न रखो। सबमें भगवद्भाव रखे तभी व्यक्ति घरमे रहकर भक्ति कर सकता है।

सबको मान दो। कोई भी अपेक्षा रखे बिना जहाँ तक बने सबके साथ प्रेम करो। अपेक्षा रखकर किया हुआ प्रेम रुलाता है। स्वार्थभावसे प्रेम न करो 'सबमे हमारे भगवान विराजे हुए है' ऐसे निरपेक्ष, शुद्धभावसे सबके साथ प्रेम करो। सबको मान दो परन्तु प्रेम और मान माँगना कभी नही। मनुष्यका जन्म दूसरोको सुखी करनेके लिए है। बहुत-सी बार मनुष्य परोपकारमें शरीर घिसाता है, परन्तु उसको ऐसा लगता है कि लोगोंने मेरी कद्र नही की। अरे! लोगोने भगवानकी भी कद्र कहाँ की थी? रामराज्यमें रामकी कद्र लोगोंने की नही। कद्र कोई मनुष्य कर सकता नही। मानव स्वार्थी है परन्तु प्रभुको दृष्टिमें रखकर किए हुए सत्कर्मोंकी कद्र प्रभुके दरबारमें अवश्य होगी।

इस संसारसे कोई अपेक्षा रखना नही। मनुष्य मान माँगता है परन्तु मान देता नही। जिनकी ऐसी इच्छा होती है कि मुझे मान मिले, वे मान मिलने-लायक नही। सबको मान दो। मान-दान सबसे श्रेष्ठ है। किसीका तिरस्कार न करो। किसीका तनिक भी अपमान न करो। तुम सबके साथ शुद्ध भावसे प्रेम करोगे तो लोग भी तुम्हारे साथ प्रेम करेंगे। तुम किसी जीवको धोखा दोगे तो खूब याद रखो कि कोई जीव तुम्हारे साथ भी कपट करेगा। जो दूसरोको धोखा देता है वह किसी दिन संसारमें धोखा खाता है। जो किसीको भी धोखा देता नही वह किसी भी दिन धोखा खाता नहीं।

कपट करनेवालेके मनमें निरन्तर अशान्ति रहती है। व्यवहारमे छल-कपट बहुत बढ गया है। इसलिए मनुष्यकी शान्ति नष्ट हो गयी है। जिसका व्यवहार अतिशय शुद्ध होता है, उसके पास भले ही कोई भी न हो तो भी उसको शान्ति मिलती है। छल-कपट करनेसे थोडा लाभ हुआ, ऐसा कदाचित् तुमको लग सकता है परन्तु यह तुम्हारी भूल है। तुम इस प्रकार शान्ति गवाँ बैठोगे। पाप और पारा—इनको कोई पचा सकता नही। यह बाहर निकलकर आते ही हैं। पाप सदैव छिपता नही। भाईको धोखा दिया, किसीके साथ कपट किया तो यह आज नहीं तो दो-चार सालमें, किसी दिन तो अवश्य जाहिर हो जाएगा। तुम कल्याण चाहते हो, शान्ति चाहते हो तो धर्म पालो, धर्मकी मर्यादामें रहो। श्रीरामचन्द्र-जीने जगतमें धर्मका आचरण करके बताया है।

धर्म धुरीन भानुकुल भानू

श्रीराम मानव-कुलको धर्मका प्रकाश देनेवाले सूर्य है।

(६)

रामचन्द्रजीका औदार्य

श्रीराम गुणार्णव है—सब सद्‌गुणोके समुद्रके समान है। श्रीरामका एक-एक गुण-दिव्य है, अनन्य है। श्रीरामका एक अनुपम गुण है उदारता। श्रीराम अति उदार है। रामजीके समान कोई उदार हुआ नही, होगा भी नही। जगतमें जीव तो क्या, स्वर्गके देवता भी किसीको देते है तो अपने लिए कुछ रखकर देते है। श्रीरामचन्द्रजी जिसको देते है उसमे ऐसी चिन्ता करते नही कि मैं बहुत दूंगा तो मेरे पास क्या रहेगा। रामायणमें वर्णन आता है कि श्रीराम, रावणको अयोध्याका राज्य देनेको तैयार हो गये थे।

लङ्कामें रावणने विभीषणका बहुत अपमान किया। इस कारण विभीषणने जब लङ्काका त्याग किया तब एक क्षणके लिए उसके मनमे ऐसा सङ्कल्प हुआ कि आज तो भले ही मेरा अपमान हुआ है, लङ्का छोड़कर मुझे जाना पड़ रहा है परन्तु मैं रामजीकी शरण-में जाऊँगा तो मुझे लगता है कि रामजी रावणको मारनेके बाद मुझे ही लङ्काकी गद्दीपर बिठायेंगे। श्रीराम अति उदार है। इसलिए जब मैं लङ्कामे वापिस आऊंगा तो राजा बनकर आऊँगा। विभीषणजी रामजीकी शरणमें गये। श्रीराम तो अन्तर्यामी हैं। विभीषण-के अन्तरकी इच्छा जान गये। रामजीने लक्ष्मणजीको आज्ञा दी कि समुद्रका जल मँगाओ। वहाँ उन्होने समुद्रके किनारे ही विभीषणको लङ्काका राज्याभिषेक कर दिया।

सुग्रीवको यह सब सहन न हुआ। सुग्रीवने पीछे रामजीको उलाहना दिया कि महाराज! आपका स्वभाव बहुत जल्दबाजीका है। जल्दबाजी काम बिगाड़ती है। मै आपका सेवक हूँ परन्तु मैं सेनापति हूँ। युद्धके समय राजा स्वतन्त्र नही होता। युद्धके समय राजा सेनापतिके अधीन रहे, ऐसा राजनीति कहती है। मैं जो कहूँ, वही किया जाना चाहिए। आप इस तरह बहुत जल्दबाजी करोगे तो काम बिगड जाएगा। अभी तो आपको समुद्रके ऊपर सेतु-बन्धन करना है। लङ्कामें जाकर रावणके सङ्ग युद्ध करना है। रावण कोई साधारण लड़ाकू नही, महान् वीर है। इतनी बड़ी जल्दी करनेकी क्या जरूरत थी ? आज ही तो विभीषण शरणमें आया और आज ही आपने उसे लंकाके राज्यका अभिषेक कर कर दिया, यह योग्य नही।

प्रभुने मन्द हास्य किया और सुग्रीवसे कहा—'भाई अब तो जो हो गया सो हो गया। भले ही मैं जल्दबाज हूँ परन्तु विभीषणको लंकाका राज्य दे दिया सो दे दिया। अब तो उसमें फेरफार सम्भव नही।

सुग्रीवने कहा कि महाराज ! आपसे बड़ी भूल हुई है। आज तो विभीषण शरण-में आया है और आपने उसे लंकाका राज्य दे दिया है। सम्भव है कदाचित् दो-चार दिन पीछे रावणकी बुद्धि सुधरे और वह आपकी शरणमे आवे और सीताजीको समर्पण करे तो क्या करोगे ? लंकाका राज्य तो आज विभीषणको दे चुके हो, अब कल रावण शरणमें आवे तो कल आप रावणको क्या दोगे ? आपके पास क्या है ? क्या विभीषणको बादमे गद्दीसे उतारोगे ?

रामजीने सुग्रीवसे कहा—'भाई! मैं भूलता हूँ तब बहुत विचार करके भूलता हूँ। रामो द्विर्नाभिभाषते। राम एक-वचनी है, एक ही वचन बोलता है, बोलता है तो विचार कर बोलता है। अभी अयोध्याकी गद्दी खाली पड़ी है। पिताजीने यह गद्दी भरतको दी हुई है, परन्तु मेरा भाई भरत इसपर बैठा नही है। उसने मेरी पादुका उसपर स्थापित कर रखी है। भरत मेरे कहे-मे है। मैं उसको समझाऊँगा। मुझको राक्षसोके साथ कोई युद्ध करना नही है। मेरी ऐसी इच्छा नहीं कि मैं राक्षसोंका संहार करूँ। रावण शरणमें आवे तो मैं रावणको अयोध्याकी गद्दीपर बैठाकर अपने हाथसे उसका तिलक करूँगा और उसका राज्याभिषेक करूँगा और मैं सम्पूर्ण जीवन वनमें व्यतीत करूँगा।

जो आवशे रावण शरणागत करी हेत,
तो मारी अयोध्या आपीश एने वैभव राज समेत,
हुं करीश तप वनमां जाई, राज करशे रावणराय,
पण विभीषणने जे लङ्का आपी ते मिथ्या नव थाय !

श्रीराम तो रावणको अयोध्याका राज्य देनेको तैयार हो, गये है। प्रभु जिसको देते है तो जीवनी और योग्यताका भी बहुत विचार करते नही। अति उदार होनेसे भगवान रामजी बहुत देते है। रामजी जैसी उदारता जगतमें कही भी नही।

तुलसिदास सब भाँति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो।
तौ भजु राम काम सब पूरन करहिं कृपानिधि तेरो ॥

(७)

श्रीरामचन्द्रजीका संयम

श्रीरामचन्द्रजीके तीन व्रत हैं। रामजी एकवचनी हैं, एकवाणी हैं, एकपत्नी-व्रतधारी है। रामजीने जिस तरह एक-वचनीयव्रतका सम्पूर्ण पालन किया उसी प्रकार एक-पत्नीव्रतका भी सम्पूर्ण पालन किया है। शास्त्रमें एकपत्नीव्रतकी बहुत बड़ी महिमा लिखी है। जिस स्त्रीके साथ अथवा जिस पुरुषके साथ, देव ब्राह्मण और अग्निको साक्षीमें रखकर विवाह हुआ हो। उस एक स्त्रीमे अथवा एक पुरुषमें काम-भाव रखकर धर्मकी मर्यादामे रहकर जो काम-सुख भोगता है, जिसका मन एक जगह स्थिर है, एकमे ही जो काम केन्द्रित करता है तथा अन्य सब स्त्री-पुरुषोको निष्काम भावसे, सीतारामजीकी भावनासे भगवद्‌भावसे देखता है, वह गृहस्थ होता हुआ भी साधु है। वह काम-सुख भोगनेपर भी ब्रह्मचारी है।

बिगड़े हुए मनको एक खूँटेसे बांधनेके लिए विवाह होता है, विवाह, कामका विनाश करनेके लिए है।

काम ईश्वरकी तरह सर्वव्यापक होनेकी इच्छा रखता है। सुन्दरता दिखाई दी कि काम उत्पन्न हुआ। इस काम-भावको एक जगह संकुचित करके, कामको भोगकर उसका विनाश करना—यह विवाहका प्रयोजन है। विवाहमें भोग मुख्य नहीं परन्तु त्याग मुख्य है। इसीसे तो विवाहको धार्मिक संस्कार कहा है और पत्नीको धर्मपत्नी कहा है, भोग-पत्नी नही कहा। कामका विकास नही परन्तु विनाश, यह दाम्पत्य-जीवनका आदर्श है।

तुलसीदास महाराजका चरित्र तुम जानते होगे। चरित्रमें लिखा है कि तुलसीदास महाराज पत्नीमें बहुत आसक्त थे। तुलसीदास महाराज पत्नीमे भले ही आसक्त होंगे, परन्तु महाराजका जिस स्त्रीके साथ विवाह हुआ था, उस एक ही- स्त्रीमें उनकी आसक्ति थी। जगतकी अन्य सब स्त्रियोंको वे मातृ-भावसे देखते थे। उनका मन पवित्र था, केवल पत्नीमें आसक्ति बहुत थी। पत्नीको पीहर भी नहीं जाने देते थे।

एक दिन पत्नीको मांके यहांसे बुलावा आया। मां बहुत याद करती थी। महाराज घरमें नही थे। सन्देश देकर महाराजकी पत्नी पीहर चली गयी। महाराज घर आए तो खबर मिली कि पत्नी पीहर गयी है। महाराजसे पत्नीका वियोग सहन नही हुआ। वे पत्नीसे मिलनेके लिये मध्यरात्रिमे ससुराल जा पहुँचे। चौमासे (वर्षा ऋतु) को

भयंकर रात्रि थी। नदीमें बाढ आ रही थी। शवको लकड़ी समझकर उसे पकड़कर नदी पार की। श्वसुरके मकानके पास आए। मकानमें प्रवेश करनेके लिए पेड़के ऊपर चढे। लटकते सर्पको डोरी समझ बैठे। उसके आधारसे मकानमें प्रवेश किया।

वेदान्तमें रज्जु-सर्पका दृष्टान्त बहुत प्रसिद्ध है। अन्धकारमें—अज्ञानमें मनुष्य डोरीको सर्प समझ बैठता है, मिथ्याको सत्य समझ लेता है। यहाँ तो अतिशय आसक्तिमें तुलसीदासजीको सर्पमें डोरी दीखी। तुलसीदास बहुत कष्ट सहन करके, सकट पार करके पत्नीके पास पहुँचे उसे आश्चर्य हुआ। उसने चेतावनी दी—

'हाड़ मांसकी देह मम तामें जितनी प्रीति।
तिसु आधी जो राम प्रति अवसि मिटहिं भव भीति॥

इस शरीरमें क्या सुन्दर है? शरीर तो हाड़-मांसका लोथड़ा है। इस शरीरसे मिलनेके लिए तुमने इतना कष्ट उठाया। इतनी आसक्ति मुझमें रखते हो। उससे आधी रामजीमें रखो तो तुम्हारा कल्याण हो जाए। जहाँ थोड़ा उपदेश किया कि तुलसीदासजीको ज्ञान हुआ। जितनी आसक्ति पत्नीमें थी उतनी प्रभुमें हो गयी। जो अनेकमें आसक्त है, वह किसी दिन भी भक्ति नही कर सकता।

मनको एक ही स्त्रीमें, एक ही पुरुषमे रखनेके लिए विवाह है। सुन्दर वस्तु देखते ही मन बिना कारण कूदने लगता है। मनको ऐसी कुटेव पड़ी हुई है कि सुन्दर वस्तु देखते ही यह उसके पीछे दौड़ता है, उसका चिन्तन करता है। अनेक बार मन ऐसा समझता है कि मैं जिसका चिन्तन करता हूँ, यह मुझे मिल नही सकेगी। फिर ऐसा विश्वास होनेपर भी मन उसीका चिन्तन करता है, पाप करता है।

सनातन धर्मकी यह मर्यादा है कि पुरुष बिना कारण किसी स्त्रीको तके नही और स्त्री पुरुषको देखे नही। आँखसे भले ही कोई दीख पड़े परन्तु मनसे किसीको न देखना। स्त्री, पुरुषका चिन्तन करे, पुरुष परस्त्रीका स्मरण करे, वह व्यभिचार जैसा ही पाप है। उसकी बहुत सजा मिलती है। कुछ लोग ऐसा समझते हैं कि शरीरसे पाप करे तो ही सजा मिलती है, मनसे पाप करे उसकी सजा मिलती नहीं। कारण कि मनका पाप कोई देख सकता नही। यह समझ खोटी है। मनसे किए हुए पापकी भी सजा होती है। सर्वशक्तिमान ईश्वर सबको देख रहा है। यह तो शरीरकी भी जानता है और मनकी भी जानता है। मनसे किए पापकी खबर जगतको भले ही न मिले परन्तु ईश्वरको अवश्य मिल जाती है। तनके और मनके पापोंको देखनेवाला और उसकी सजा देनेवाला ईश्वर बैठा है।

श्रीराम सदाचारकी मूर्त्ति है, संयमकी मूर्त्ति हैं। सयम कैसा होना चाहिए, यह तो रामजीने जगतको बताया है। आँखका संयम, जीभका संयम, कानका संयम—सर्वइन्द्रियोंका संयम रामजीने पालन करके बताया है। मनुष्यको सम्पत्ति थोड़ा सुख देती है, परन्तु इन्द्रियोंका संयम बहुत सुख देता है।

खूब ध्यानमें रखो कि तुम मालिक हो और इन्द्रियाँ नौकर है। तुम नौकरोंके अधीन हो या नौकर तुम्हारे अधीन है? तुम जहाँ जाते हो वहाँ नौकर आता है अथवा नौकर जहाँ जाता है वहाँ तुम जाते हो। मनुष्य बोलता है 'मेरी आँख, मेरी जीभ, मेरा मन' इसका अर्थ यह होता है कि मैं मालिक हूँ। आँख, जीभ, मन—ये मेरे सेवक हैं। इन्द्रियाँ नौकर है। तुम इन्द्रियोके अधीन रहोगे तो इन्द्रियाँ तुम्हारी शत्रु सिद्ध होंगी परन्तु इन्द्रियाँ तुम्हारे अधीन रहेगी तो वे मित्र बनी रहेंगी।

रामजी कभी किसी स्त्रीको आँख ऊँची कर देखते नही।

रामचन्द्रः परान् दारान् चक्षुषा नाभिवीक्षते।

रामचन्द्रजीका आँखका सयम अलौकिक है। आँखमें बहुत शक्ति होती है। आँखकी शक्तिको मनुष्य नष्ट कर देता है। शक्तिका दुरुपयोग ही पाप है। शक्तिका सदुपयोग ही पुण्य है। मानवकी इन्द्रियोमें प्रभुने बहुत शक्ति दी है परन्तु मनुष्य बहुलतासे उसका दुरुपयोग करता है। सनातन धर्मने मर्यादा बाँधी है कि पुरुष, परस्त्रीको और स्त्री, परपुरुषको आँख उठाकर देखे नही। खूब ध्यानमे रखना कि जिसे तुम आँखसे देखते हो वह तुम्हारे मनमें आता है। जिसे तुम आँखसे देखते हो, उसका चित्त तुम्हारे मनमे बस जाता है। कदाचित् तुम कहो कि 'महाराज! तुम कहते हो कि आँखसे देखनेसे उसका चित्र मनमें आता है तो क्या हम आँख बन्द करके चलें? आँखे बन्द रखे?'

आँखे बन्द रखोगे तो व्यवहार चलेगा नही। परन्तु दृष्टि-दृष्टिमे भेद है। दृष्टि दो प्रकारकी है—अपेक्षात्मक और उपेक्षात्मक। तुम्हारे घरसे यहाँ आनेमें रास्तेमे पड़ा हुआ कचड़ा दिखाई दिया होगा। उस कचड़ेके ऊपर तुम्हारी नजर तो गयी होगी परन्तु कचड़ेको तुम उपेक्षा भावसे देखते हो। इस जगतको महापुरुष ऐसे ही उपेक्षा भावसे देखते हैं। सन्तजन अपेक्षात्मक दृष्टि केवल ईश्वरमे रखते है। किसी स्त्री अथवा पुरुषको तुम अपेक्षा भावसे देखोगे कि यह बहुत सुन्दर है, इससे सुख मिलेगा तो इससे तुम्हारा मन बिगडेगा। कोई स्त्री सुन्दर नही, कोई पुरुष सुन्दर नही, सुन्दर तो श्रीराम हैं। जगत कदाचित् सुन्दर हो सके परन्तु जगतका सौन्दर्य बहुत टिकता नही। यह फूल हमको सुन्दर दीखता है। दो-चार घण्टे पीछे यह कुम्हला जाएगा। कुम्हलानेके पीछे क्या फूल सुन्दर लगता है? फूल जैसे कुम्हलाता है, उसी तरह समस्त जगत कुम्हलाता है। जगतमें केवल एक श्रीराम नही कुम्हलाते।

प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः ।
मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मञ्जुलमंगलप्रदा ॥

रामजीको कहा गया था कि आनेवाले कलमें तुम्हारा राज्याभिषेक होना है। यह सुनकर रामजी प्रसन्न हुए नहीं और राज्याभिषेकके मुहूर्तमें वनमें गये तो तनिक भी नाराज हुए नहीं। तुमको कोई कहे कि कल तुमको एक लाख रुपया मिलना है तो क्या तुम्हें रात्रिमें निद्रा आवेगी ? तुमको कोई भोजनके लिए निमन्त्रण दे कि आनेवाले कल हमारे यहाँ भोजन करने पधारना। बारह-एक बजे भूख लगे और तुम जीमने जाओ, उस समय निमन्त्रण देनेवाला हाथ जोड़कर कहे 'यहाँ तो सब पूरा हो गया। जयश्री कृष्ण ! अब तो घर पधारो।' तुम्हारी क्या दशा होगी। फोटो लेने लायक चेहरा हो जाएगा। मनमें विचार आवेगा कि मुझे भोजनका निमन्त्रण दिया था। अब मेरा अपमान किया है। छोटी-छोटी बातोंमें तुम्हारे मुखकी कान्ति बिगड़ उठती है अथवा कुम्हला जाती है। रामजीसे कहा गया कि तुमको कल पृथ्वीका राजा बनना है। वैसा सुनकर रामजीकी मुखश्रीमें वृद्धि नहीं हुई और राज्याभिषेकके मुहूर्तमें जब वनवास मिला तब उनकी मुखश्री कुम्हलाई नहीं।

श्रीराम सुन्दर हैं। श्रीरामजीका सौन्दर्य सदैव स्थायी रहनेवाला है। जगत सुन्दर नहीं। कदाचित् यह सुन्दर दीखे तो इसकी सुन्दरता स्थिर रहनेवाली नहीं। रामजी किसीपर दृष्टि डालते नहीं। कदाचित् किसी स्त्रीपर नजर जाय तो रामजी मातृ-भाव रखते हैं कि यह हमारी माँ है। प्रत्येक स्त्रीको जो मातृ-भावसे देखता है वह रामजीको सुहाता है। जगत्के स्त्री-पुरुषोंको काम-भावसे देखनेवाला ईश्वरको तनिक भी सुहाता नहीं।

तुम्हारी आँखमें काम है या राम है ? तुम जगतको काम-भावसे देखते हो या रामजीकी भावनासे देखते हो ? परमात्माने आँख तो सबको समान रूपसे ही दी है। धन देनेमें कदाचित् विषमता की हो परन्तु गरीब-श्रीमन्त सबको प्रभुने आँख तो एक समान ही दी हैं। भक्तिमें आँख मुख्य हैं। पापका आरम्भ आँखसे ही होता है और भक्तिका आरम्भ भी आँखसे ही होता है।

परमात्मा सुन्दर है, ऐसा जिसको विश्वास हो गया है वह भक्ति करता है और संसार सुन्दर है, ऐसा जो समझता है, वह पाप करता है। जगत खराब नहीं परन्तु वह बहुत सुन्दर भी नहीं। श्रीरामचन्द्रजी किसीपर भी दृष्टि नही डालते, बिना कारण किसीको तकते नहीं। रामजी प्रत्येक स्त्रीमें मातृ-भाव रखते है।

रामजी इतने अधिक शुद्ध है कि जो रामजीका स्मरण करता है वह भी शुद्ध हो जाता है। रामायण अनेक हैं। उसमें महापुरुषोंने अनेक रीतिसे रामजीका वर्णन किया है।

श्रीएकनाथ महाराजकी भावार्थ-रामायण बहुत मोटी है। अनेक रामायण शोधन करके एकनाथ महाराजने कथा की है। वाल्मीकि रामायण मोटे आकारकी है। वाल्मीकि रामायणमे चौबीस हजार श्लोक है और एकनाथ महाराजकी रामायणमें पैंतालीस हजार श्लोक है। बहुत मोटी रामायण हो गयी है। महाराजकी रामायण बहुत विस्तृत है। किष्किन्धाकाण्डमें महाराजको याद आया है कि इतनी रामायण मैंने श्रीहनुमानजीको सुनायी है। अब उसके पीछे श्रीरामजीकी प्रेरणासे यह कथा करता हूँ। युद्धकाण्डकी कथामें श्रीएकनाथ महाराजने वर्णन किया है।

लंकाका युद्ध चालू था। रावणके बड़े-बड़े महारथी युद्धमे मारे जा चुके थे। कुम्भकर्ण सोया हुआ था, तब युद्ध करनेके लिए रावणने उसको जगाया। कुम्भकर्णको खूब मदिरा पिलायी, खूब मांस खिलाया, कुम्भकर्ण रावणसे मिलने आया। उसने रावणसे पूछा मुझे क्यों जगाया है?

रावणने कहा, 'रामजीके साथ युद्ध करनेके लिए तुमको जगाया है।'

कुम्भकर्णने पूछा कि रामजीके साथ क्यो युद्ध हो रहा है? रावणने बहुत बातें की। कहा 'सीताजीके लिए युद्ध हो रहा है।'

कुम्भकर्णने रावणको समझाया 'लंकामे अनेकानेक देवगन्धर्व-कन्यायें हैं। फिर भी सीताजीकी चोरी करने क्यों गया? तुमने चोरी की। यह बहुत खोटा किया। यह तेरी भूल है। तू सीताको किसलिए लाया है?'

रावणने कहा 'लंकामे बहुत-सी देव-गन्धर्व-कन्याएँ तो है, परन्तु सीताजी जैसी एक भी नही। सीताजी अति सुन्दर हैं। इनकी तुलनामे कोई आ सके, ऐसी नही। इस कारणसे मैं सीतजीको ले आया हूँ।'

कुम्भकर्णने पूछा 'तू सीताजीको ले आया तो तेरी इच्छा पूरी हुई कि नही?'

रावणने कहा 'मेरी इच्छा पूरी होती नही। सीताजी महान् पतिव्रता है। वे आँख ऊँची करके किसीको सामने देखती भी नही।'

तब कुम्भकर्णने रावणको सलाह दी कि तू नकली राम बनकर सीताजीके पास जा।

रावणने कहा 'ऐसा मैंने करके देखा है। परन्तु कुम्भकर्ण! मैं तुमसे क्या कहूँ?'

कर्तुश्चेत्रसि रामरूपममलं दूर्वादलश्यामलम्।
तुच्छं ब्रह्मपदं परं परवधूसंगप्रसंगः कुतः॥

राम नुं रूप धरूँ त्यां तो एवा संकल्प आवे,
एवा संकल्प आवे रे, मारा मनडाने मूंझावे,
मने एवा संकल्प आवे ।
खोटा खोटो हुं ज्याँ राम बनूँ त्यां मने रामरुदामां आवे,
'काग' सीताजी मावड़ी भासे, मारू' रावण पणुं रिसावे,
मने एवा सकल्प आवे ॥

'कुम्भकर्ण ! जब-जब मैं नकली राम बनता हूँ तब मेरे मनमें काम रहता ही नहीं।'

रावण राक्षस है, मायावी है। उसमें ऐसी शक्ति है कि जिसका रूप धारण करना हो, उसका चिन्तन करे। उससे उसका रूप मिल सकता है। रामजीका रूप धारण करनेके लिए जब वह रामजीका चिन्तन करता है और नकली राम बनता है, तब-तब प्रत्येक स्त्रीमें उसका मातृभाव हो जाता है। परस्त्रीमें अतिशय कामभाव रखनेवाले राक्षसके मनमें तनिक भी काम रहता नहीं। रावणने तो यहाँ तक कहा है कि मैं रामजीका चिन्तन करता हूँ, रामजीका अनुकरण करता हूँ, नकली राम बनता हूँ तब-तब मन्दोदरीमें भी मेरा मातभाव हो जाता है।

नकली राममें ऐसी शक्ति है तो असली राममें कैसी होगी ?

रामजीका चरित्र अति शुद्ध है। रामजी सम्पूर्ण रूपसे एकपत्नीव्रतधारी हैं। दशरथ महाराजसे थोड़ी भूल हुई। दशरथ महाराजने अनेक स्त्रियोंके साथ विवाह किया था। उनके राज्यमें एक पुरुष अनेक स्त्रियोंके साथ विवाह कर सकता था। श्रीरामजीको यह अच्छा नही लगा। श्रीरामजीने यह रीति सुधारी। रामराज्यमें एक पुरुष एक ही स्त्रीके साथ विवाह कर सकता था, जगतकी अन्य प्रत्येक स्त्रीमें मातृभाव रखता था। रामजीको बहुपत्नीप्रथा योग्य लगी नही परन्तु मेरे पिताजीने भूलकी है, ऐसा रामजी कभी बोले नही। पिताजीकी भूल रामजीने बहुत विवेकसे, युक्तिसे सुधारी। मै एकपत्नीव्रतका पालन करूँगा। मेरी प्रजाभी एकपत्नी-व्रतका पालन करे।

बडोंकी कोई भूल हो तो वैसी भूलका पुत्र द्वारा किया जाना योग्य नहीं। बड़ोंके दोषका अनुकरण करना नही। पिताजी ब्याज खाते हों, इसलिए पुत्र भी खाय, यह बात उचित नहीं। पिताजी अथवा गुरुजी जो पवित्र आचरण करते हों उनका ही अनुकरण पुत्र अथवा शिष्यको करना चाहिए। गुरुजी तम्बाकू खाते हों इसलिए चेलाजी कहें कि

हम भी तम्बाकू खायेंगे क्योंकि गुरुजी खाते है, ऐसा कहना उचित नही। गुरुजी खाते हों तो भले ही खाये। गुरुजी बड़े है।

चार वर्ष तक गुरुकुलमें रहकर ब्रह्मचारीने वेदशास्त्रोका अध्ययन किया। आज विद्या परिपूर्ण करके विद्यार्थी घर जानेको तैयार हुआ है। अब तो गृहस्थाश्रममें प्रवेश करना है। उसने गुरुजीका वन्दन करके, उनकी आज्ञा लेते हुए कहा "अब मुझे अन्तिम उपदेश दो" तब गुरुजीने कहा "बेटा! अब तुझे घर जाकर विवाह करना है। मुझे आनन्द है परन्तु मेरा तुझे उपदेश है कि विवाह होनेके बाद याद रखना कि तेरी माँ परमात्मा है, तेरे पिता परमात्मा है।" ससारमे ऐसा दीखता है कि विवाह होनेके बाद छोकरोका माता-पिताके प्रति प्रेम धीरे-धीरे कम हो जाता है। कानमे मंत्र देनेवाला कोई मिले। उसके कारण नीयत बिगडने लगती है।

गुरुजी शिक्षा देते है "मातृदेवो भव, आचार्यदेवो भव। बेटा! तेरे गुरुजीका क्रम तीसरा है। चार वर्ष तक तू मेरे आश्रममे रहा है। मेरी कितनी ही भूले तूने देखी होगी। जीवमात्र भूल करता है। निर्दोष तो एक परमात्मा है। मैंने कोई भूल की हो, उस भूलको तू नही करना।"

यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि, नो इतराणि।
यान्यस्माकं सुचरितानि, तानि त्वयोपास्यानि ॥

मेरे जो पवित्र आचरण है उनका ही तुझे अनुकरण करना है। मैंने किसी समय क्रोध किया हो, मुझसे कोई पाप हुआ हो उसका अनुकरण तू करना नही।"

रामजीने पिताजीकी भूलका अनुकरण किया नही। रामजी एकपत्नीव्रतधारी है। रामराज्यमे प्रजा भी एकपत्नीव्रतधारी है।

श्रीरामचन्द्रजीकी सरलता

रामजीकी सरलता भी अद्वितीय है। रामजी अतिशय सरल हैं। श्रीराम तो रावणके साथ भी सरल हैं। रामायणमें वर्णन आता है—श्रीराम-रावणका भीषण युद्ध चल रहा है। उसमें युद्ध करते-करते रावण घायल हो जाता है। रावणका बख्तर टूट गया है, माथेका मुकुट गिर गया है, धनुषके टुकड़े हो गये हैं और रथके घोड़े मर गये हैं। रथ छिन्न-भिन्न हो गया है। रावण बहुत अकुलाया हुआ है। उसको इस समय बहुत थकान हुई है। रामजी उसको देख नही सके।

कृतं त्वया कर्म महत् सुभीमं हतप्रवीरश्च कृतस्त्वयाहम्।
तस्मात् परिश्रान्त इति व्यवस्य न त्वां शरैर्मृत्युवशं नयामि ॥
प्रयाहि जानामि रणार्दितस्त्वं प्रविश्य रात्रिंचरराज लंकाम्।
आश्वस्य निर्याहि रथी च धन्वी तदा बलं प्रेक्ष्यसि मे रथस्थः ॥

रामजीने रावणसे कहा—"तुमने मेरे प्रधान वीरोंको मारकर भयंकर काम किया है। तुम बहुत थक गये मालूम होते हो। इसलिए तुम्हें आज मारता नही। तुम घर जाकर आराम करो, भोजन करो, थकान उतारो। रथ और धनुषको फिरसे सजाओ। फिर आने वाले कल मैं तुम्हें देखूंगा।"

शत्रुके साथ इतनी सरलता किसीने दिखाई हो, ऐसा उदाहरण इतिहासमें मिलता नही। शत्रु घायल हो, उसी समय तो शत्रुको मारना होता है। ऐसा अवसर चूका नही जाता। राजनीति ऐसा ही कहती है परन्तु रावण जिस समय घायल है उस समय रामजी उसे मारते नही। श्रीरामजी तो उसके सम्मुख युद्ध बन्द करनेको कहते हैं। आराम करनेको कहते है। रावणको आश्चर्य हुआ। उसको ऐसा लगा कि लोग रामजीकी जितनी प्रशंसा करते है वह बहुत कम है। रावणका माथा तो झुका नही, परन्तु उसका हृदय नमित हो गया।

रावण दुष्ट है, अपराधी है, शत्रु है। उसपर भी रामजी उसके प्रति सरल हैं। श्रीकृष्ण, दुर्योधनके साथ सरल नही है। द्वारिकानाथ कौरवोंका विनाश करनेके लिए कपट भी करते है, ऐसा महाभारत में लिखा है। रामजीको तो कपट करना आता ही नही। ये तो बहुत सरल है।

सरल सुभाव छुआ छल नाहीं।

छल-कपट कैसा होता है, वह रामजी जानते नही। तुम साधु न हो सको तो कोई बात नही परन्तु सरल अवश्य बनो। जिसका हृदय बहुत सरल होता है उसके हृदयमे परमात्माका प्रवेश होता है। कपट करनेसे हृदय टेढ़ा होता है। थोडी अन्दर नजर डालकर देखो, तुम्हारा हृदय सरल है या बाँका है। आज पर्यन्त जगतमें कितनों-को तुमने धोखा दिया? कितने जीवोके साथ कपट किया ? मनुष्य जैसा कोई कुटिल नही और भगवान जैसा कोई भोला नही।

श्रीराम अति सरल है। यह जीव बहुत कपट करता है। पुत्र और भतीजा दोनो पास आवे तो कितने ही ऐसे होशियार होते है कि भतीजेको छोटा पेडा देते है और पुत्रको बड़ा पेडा देते है। कितने ही गीताजीका पाठ रोज करते है।

समत्वं योग उच्यते (और) समबुद्धिर्विशिष्यते।

परन्तु पुत्र और भतीजे—इन दोनोमे भी समता रखते नही। जहाँ सरलता है वही समता है। जहाँ समता है, वही ज्ञान टिकता है, वही परमात्मा विराजते है।

श्रीराम शत्रुके साथ भी सरल है और इसी कारणसे शत्रुओंको भी रामजी श्रेष्ठ लगते है। शत्रु भी उनका बखान करते है। घरके लोग बखान करे, उसमें क्या आश्चर्य है ? मित्र, मित्रका बखान करे, इसमे क्या आश्चर्य है ? शत्रु बखान करे, यह साधारण रीतिमे सभव नही। रामजीका बखान तो रावण भी करता है। रावणने ऐसा कहा है कि रामजीके समान कोई हुआ नही और होगा भी नही।

श्रीएकनाथ महाराजने भावार्थ रामायणमे वर्णन किया है कि श्रीराम-रावणका भयकर युद्ध चल रहा है। इन्द्रजीतने रावणसे कहा कि मैं शत्रुओका संहार करूँगा। रावणको हिम्मत बँधाकर इन्द्रजीत युद्ध करने गया। इन्द्रजीत और लक्ष्मणका भयकर युद्ध हुआ। युद्धमे लक्ष्मणजीने इन्द्रजीतकी भुजाका छेदन किया। वह भुजा इन्द्रजीतके आँगनमे जा पडी। इन्द्रजीतका छिन्न मस्तक उठाकर वानर रामजीके पास ले गये। इन्द्रजीतकी पत्नी सुलोचना महान् पतिव्रता स्त्री थी। आँगनमें आये पतिदेवके कटे हुए हाथको देखकर वह रोने लगी "ये युद्ध करने रणभूमिमे गये हुए है। मैंने यदि पति-व्रत-धर्मका बराबर पालन किया हो तो यह हाथ लिखकर मुझको बतावे कि क्या हुआ है।" तब हाथने लिखा—"लक्ष्मणजीके साथ युद्ध करते हुए मेरा मरण हुआ है। मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।" सुलोचनाने सतीधर्मके अनुसार अग्निमे प्रवेश करनेका निश्चय किया।

सुलोचना रावणका वन्दन करने गयी और कहा कि मुझे अग्निमे प्रवेश करना है, आप आज्ञा दो।

उस समय रावण पुत्र-वियोगमे रो रहा था। इन्द्रजीत जैसे अप्रतिम वीर युवा पुत्रकी मृत्यु होकर चुकी है और अभी पुत्रवधू अग्निमें प्रवेश करनेकी आज्ञा माँगती है। रावणका हृदय अतिशय भर आया। उसने सुलोचनासे कहा "पुत्री! मैं तुझसे और कोई बात तो कहता नही, अग्निमें प्रवेश करनेसे तुम्हारा मरण-मंगलमय होगा परन्तु तुम एक बार रामजीके दर्शन करो, रामजीका वन्दन करो। तुम्हारा जीवन और मरण दोनों सुधरेगे।"

सुलोचना अत्यन्त सुन्दर थी। अत्यन्त सुन्दर पुत्रवधूको कट्टर शत्रुके पास जानेके लिये रावणने कहा। उससे सुलोचनाको बहुत आश्चर्य हुआ। उसने रावणसे कहा "तुम मुझे शत्रुके घर भेजते हो? वहाँ मेरे साथ अन्याय हुआ तो?"

रावणने कहा—"मैंने रामजीके साथ वैर किया है परन्तु रामजी मुझे शत्रु मानते नही" रावणका रामजीके प्रति कितना विश्वास है? जवान योद्धा वीर पुत्र युद्धमें मृतक हुआ है और उस समय रावण रामजीकी प्रशंसा कर रहा है, पुत्र-वियोगमे रामजीकी स्तुति कर रहा है। उसने कहा "मुझे विश्वास है कि रामजीके दरबारमें अन्याय होता नही। रामजी तुझे माताके समान मानकर तुझको सम्मान देगे, तुम्हारी प्रशंसा करेगे। जहाँ एकपत्नीव्रतधारी रामजी है, जहाँ जितेन्द्रिय लक्ष्मणजी है, जहाँ बालब्रह्मचारी हनुमानजी विराजमान है, उस रामदरबारमे अन्याय नही। मेरा ऐसा विश्वास है कि रामजीके दर्शनसे ही जीवन सफल होता है। अग्निमें प्रवेश करनेके पहले रामजीके दर्शन कर लो।"

अतिसुन्दर पुत्रवधूको श्रीरामके पास जानेकी आज्ञा रावण देता है। सुलोचना रामचन्द्रजीके पास जाती है। प्रभुने सुलोचनाकी प्रशसा की है और कहा है कि यह दो वीर योद्धाओके बीचका युद्ध नही था। ये दो पतिव्रता स्त्रियोके बीचका युद्ध था। लक्ष्मणकी धर्मपत्नी उर्मिला महान् पतिव्रता हैं और यह सुलोचना भी महान पतिव्रता है। यह लक्ष्मण और इन्द्रजीतके मध्यका युद्ध नही था, उर्मिला और सुलोचनाके मध्यका युद्ध था, दो पतिव्रताओंका युद्ध था।

सुग्रीवने पूछा कि महाराज! सुलोचना महान् पतिव्रता है, ऐसा आप जोर देकर वर्णन कर रहे हो तो फिर इसके पतिका मरण क्यो हुआ?

रामजीने कहा—"सुलोचनाके पतिको कोई मार नही सकता था परन्तु उर्मिलाकी जीत हुई, उसका एक ही कारण है कि सुलोचनाके पतिने परस्त्रीमे कुभाव रखनेवाले रावणकी मदद की और उर्मिलाके पति परस्त्रीमे मातृभाव रखनेवालेके पक्षमें थे। इससे उर्मिलाका जोर अधिक था, नही तो सुलोचनाके पतिको कोई मार नही सकता था।"

सुलोचनाको रामदर्शन करनेमें आनन्द हुआ । प्रभुने उसके पतिका मस्तक उसको दिया। पतिदेवके मस्तकको देखकर सुलोचना रोने लगी । रामजीको दया आयी। रामजीने कहा, "बेटा ! रोओ नही। तू हमारी पुत्री है। तेरी इच्छा हो तो तेरे पतिको मैं जीवित कर दूँ। एक हजार वर्षकी आयु दे दूँ। तुम लकामे आनन्दसे राज्य करो। मैं यहीसे वापिस लौट जाऊँ। तू रोती है वह मुझे तनिक भी सहन नही।"

सुलोचनाको आश्चर्य हुआ । लोग रामजीके विषयमे जो वर्णन करते है, वह बहुत ही सामान्य करते हैं ?

राक्षसोंको भी रामजी भले लगते है, रामजीका वे बखान करते है तब फिर देवता और ऋषि रामजीका बखान करे, इसमें कोई आश्चर्य नही । रामजी अतिशय सरल है।

सरलशील साहिब सदा सीतापति सरस न कोय ॥

रामजीकी सरलताका वर्णन रामायणमे स्थान-स्थानपर आता है। जो अति सरल है उसीके हृदयमें रामजीका प्रवेश होता है। जैसा मनमे हो वैसा ही बोलो। मन वाणी और क्रियामे समान बनो। वही व्यक्ति रामजीको भला लगता है। भगवानने कहा है कि—

मोहि कपट छल छिद्र न भावा।

कपट करनेसे हृदय कुटिल होता है। दम्भ करनेसे हृदय कुटिल होता है। जो हृदय कुटिल है उस हृदयमे परमात्माका प्रवेश होता नही । परमात्माका प्रवेश हृदयमे करानेकी इच्छा हो तो हृदय बहुत सरल करो। सरल हृदयमे रमण करना परमात्माको सुहाता है। जिसका हृदय सरल है उसको कभी दूसरोंके दोष दीखते नहीं और कदाचित दीखे तो उसे घृणा आती नही। वह किसीका तिरस्कार करता नहीं। जिसका हृदय सरल है उसे अभिमानका स्पर्श होता नही । तुम अपने हृदयमे देखो। पाँच-दस क्षणके बाद अन्दर देखो। तुम्हारा हृदय बाँका तो नही रहता है। साधारण मनुष्य बाहर देखता है परन्तु अन्दर नजर डालता नही। जब तक मनुष्य संसारके साथ बहुत प्रेम करता है, तब तक उसकी दृष्टि बाहर होती है। जिसका हृदय बाँका है वह कदाचित् पैसा भले ही कमा सके परन्तु उसके हृदयमे परमात्मा आते नही।

श्रीरामजीकी प्रत्येक लीलामे सरलता है। जो अतिसरल है उसे किसीके दोष दीखते नही।

प्रभु तरु तर कपि डार पर।

रामजी महाराज वृक्ष-तले विराजते है और वानर वृक्षके ऊपर चढकर बैठते है। नियम तो ऐसा है कि मालिक ऊँचा बैठे और नौकर नीचे बैठे । यहाँ ये नौकर

बहुत ऊँचे बैठते थे और मालिक नीचे बैठता था। ये वानर डाली पर भी शान्तिसे बैठे तो कोई बाधा नहीं परन्तु वे तो वहाँ कूद-फाँद करते है परन्तु रामजीको तनिक भी बुरा लगता नही कि मैं बैठा हूँ और ये लोग मेरा सम्मान जानते नही। अति सरल को किसीका दोष दीखता नहीं, उनको किसी दिन भी बुरा लगता नही।

प्रभुने तो सभा में वानरोंकी प्रशंसा की है।

तुम्हरे बल मैं रावण मारयो।

रामचन्द्रजीने गुरु वशिष्ठजीसे कहा कि गुरुजी इन वानरोंने मेरी बहुत सहायता की है। उसीसे मैं रावणको मार सका। रामचन्द्र तो परमात्मा है। रामचन्द्रजी-की वानर क्या मदद कर सकते थे।

किं तस्य शत्रुहनने कपयः सहायाः।

परन्तु श्रीराम वानरोंका बखान करते है, सारा यश उनको देते है। रामजी वानरोंके साथ भी बहुत प्रेम करते है।

रामजीकी सरलताके अनेकों प्रसङ्ग है। रामायणमें केवटका अति सुन्दर प्रसङ्ग वर्णित है। वनवास लेकर श्रीरघुनाथजी प्रयागराजमें पधारे है। उस समय गङ्गाजी पार करनेके लिए उनको नौकाकी जरूरत पड़ती है। तुम प्रयागराज गये होगे। प्रयागराजमें आज भी कितने ही नाविक लोग ऐसा कहते है कि हम तो उसी केवटके वंशके है जिसने रामजीको नावमें बैठाकर गंगापार उतारा था। केवटके वंशमें हमारा जन्म हुआ है।

केवट श्रीराम, लक्ष्मण और जानकीजीको नावमें बैठाकर गङ्गाजीके सामनेके किनारेपर ले गया। केवटने इनको गङ्गापार उतारा है। गङ्गा-किनारे रेतीमें श्रीसीता-रामजी विराजे है। रामजीको आज संकोच हुआ है। उन्होंने ऐसा सोचा कि इस केवटको मैं क्या दूं? इसने मेरी सेवा की है, इसने हमको गङ्गापार उतारा है। श्रीराम बहुत संकोची हैं। किसीके उपकारको अथवा किसीकी थोड़ी भी सेवाको रामजी भूलते नहीं। आज तो श्रीराम तपस्वी बनकर वनमें पधारे हैं। वल्कल धारण किया है। पासमें कुछ भी तो नही। केवटको खाली हाथ विदाई देनेमें रामजीको बहुत संकोच हुआ। पहले केवट विदा लेने आया। उसने श्रीसीतारामजीको साष्टांग प्रणाम किया। प्रभुकी आँखें सजल हो गयीं। वे विचार करने लगे 'यह गरीब सेवा करता है, इसको कोई मजूरी दी नहीं उसपर भी साष्टाङ्ग वन्दन करता है। इसको खाली हाथ किस प्रकार विदा करूँ। मुझे इसे कुछ तो देना ही चाहिए। परन्तु……' श्रीरामजी केवटके सामने देख सकते नहीं। नजर धरतीमें लगी है।

श्रीसीताजी समझ गयीं कि प्रभुकी इसको कुछ देनेकी इच्छा है परन्तु पासमें कुछ भी नही है इससे संकोच हो रहा है। माताजीकी अंगुलीमें एक सुन्दर अँगूठी थी। सीताजीने यह अँगूठी अंगुलीसे उतारकर रामजीके हाथमें देते हुए कहा 'आप तनिक भी संकोच नही करे इसको इसे दे दीजिए।' रामजीने अँगूठी केवटको देनेका प्रयास किया। केवटने हाथ जोड़कर अँगूठी लेनेको मना किया। रामजीसे बोला, "महाराज मैं कोई पढ़ा-लिखा नहीं हूँ, अनपढ हूँ परन्तु मेरे पिताने खास करके कहा है कि 'कोई गरीब आवे, साधु आवे, ब्राह्मण आवे, तपस्वी आवे, इनसे कुछ भी लिए विना गङ्गापार उतारना' यह नियम मैंने सदैव पालन किया है। आप मेरी नावमे बैठे, मुझे आपकी सेवाका लाभ मिला, उससे आज मैं कृतार्थ हुआ हूँ। मुझे कुछ भी लेना नहीं है। आज आप राजाधिराज होकर पधारे नही है, तपस्वी होकर पधारे है। तपस्वीके पाससे मैं कुछ लेता नहीं।"

प्रभुने कहा 'भाई मैं तुझे मजूरी नही देता, प्रेमसे अपना प्रसाद देता हूँ। प्रसाद तो अवश्य लेना चाहिए। प्रसाद लेनेमें तुम मना करते हो यह ठीक नही। इसको प्रसाद मानकर ही तुमको लेना है।'

केवटने हाथ जोड़कर कहा, 'महाराज ! आपकी प्रसाद देनेकी इच्छा हो तो समय आवे तब दीजिएगा, मैं मना नही करूँगा। मेरे मालिक आज वनमें पधारे हैं, इसलिए आज मुझे प्रसाद भी लेना नही। मेरी ऐसी भावना है कि आपका चौदह वर्षका वनवास सुख-रूपसे परिपूर्ण हो और सीताजीके साथ आप अयोध्याके सिंहासनपर विराजें। आपका राज्याभिषेक हो, उस समय इस गरीबको जो कुछ भी आप देंगे, मै तुरन्त ही सिर चढ़ाकर लूँगा।

सो प्रसादु मैं सिर धरि लेवा।

परन्तु आज तो मैं प्रसाद भी नहीं लूँगा।

माताजीकी आँखे सजल हुईं। उनका हृदय द्रवित हो गया। कैसा इसका हृदय है ? कैसी इसकी भावना है ? केवटकी भावना है कि श्रीसीतारामजी सुवर्ण-सिंहासनपर विराजें और मैं दर्शन करूँ।

रामायणमे लिखा है कि चौदह वर्षका वनवास पूरा होनेके पश्चात् श्रीसीताराम-जी पुष्पक विमानमे बैठकर वापिस अयोध्या पधारे। अयोध्यामें जिस दिन पधारे वह मिती वैशाख सुदी पञ्चमी थी। लोगोंने बहुत आग्रह किया कि वैशाख सुदी सप्तमीके दिन ही राज्याभिषेक कर दिया जाय। इसलिए श्रीरामजी आए और तुरन्त ही दो दिनोंमें उनका राज्याभिषेक हो गया। इतने थोड़ेसे समयके कारण राज्याभिषेक-प्रसंगसे पहले केवट आ नहीं पाया। राज्याभिषेकका भारी दरबार भरा हुआ है। अनेक राजा लोग

आए हुए है। अनेक सेवक और भारी प्रजाजन भी वहाँ है। अत्यन्त भीड़ हो रही है। श्रीसीतारामजी सुन्दर सिहासनके ऊपर विराजे हुए है। सब लोग श्रीरामजीका दर्शन कर रहे है परन्तु रामजीकी आँखे किसीको ढूँढ़ रही है। श्रीरामजी चारों तरफ देख रहे है। सीताजीने पूछा 'आप किसको देख रहे हैं?' रामजीने कहा कि ये सब मेरे दर्शन करने आये हैं परन्तु जिसके दर्शनकी मेरी इच्छा है वह दीखता नही।

सीताजीने पूछा, 'ऐसा कौन है जिसके दर्शनकी आपकी इच्छा है।'

प्रभुने कहा, 'अपने मित्र केवटको देखनेकी मेरी इच्छा है। उसने कहा था कि राज्याभिषेक होगा तब मैं प्रसाद लूँगा।'

केवट मीत कहे सुख मानत।

केवटको मित्र कहनेमे रामजीको सुख होता है। आज रामजीको केवट याद आ रहा है। राज्याभिषेकके अतिशय सुखमय वातावरणमें भी रामजी केवटको भूले नही। जीवका स्वभाव है कि अतिशय सुखमे सब कुछ भूल जाता है। श्रीराम अतिशय सुखमे भी सावधान है।

श्रीरामचन्द्रजीने जगत्को ज्ञान दिया है कि दुःखमें किसीने यदि थोड़ा पानी भी दिया हो तो उसको कभी भूलना नही।

कदाचिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति।
न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया॥

किसीने थोड़ी भी सेवा की हो तो रामजी भूलते नही, अपकारको भूल जाते है। प्रभु अतिशय सरल है। जीव बारम्बार पाप करता है परन्तु परमात्मा उसको भूल जाते है। किसीका उपकार भूलना नही और किसीका अपकार याद रखना नही। तुम साधु-सन्त न बन सको तो कोई बाधा नही परन्तु हृदय सरल रखना।

राज्याभिषेक होनेके उपरान्त प्रभुने एक-एकका सम्मान किया है। केवट वहां नही था, इसलिए प्रभुने गुह राजाको आज्ञा दी 'तुम्हारे गाँवके केवटके लिए यह प्रसाद तुम ले जाना।' प्रभुने केवटके लिए प्रसाद भेजा, सुवर्ण-वस्त्र और आभूषण भी भेजे। श्रीरामके समान कोई हुआ नही।

रामायणमें तो लिखा है कि श्रीराम श्रीसीताजीके साथ सुवर्ण-सिहासनपर विराजे। उससे रामराज्यमें प्रजा बहुत ही सुखी हुई। रामराज्यमें प्रजाको जितना सुख मिला, वैसा सुख तो स्वर्गके देवताओंको भी दुर्लभ है। प्रजाको यहाँ तक सुख प्राप्त हुआ कि अगर किसीकी इच्छा न हो तो उसे काल भी नही पकड सकता था।

मृत्युश्चानिच्छकामाश्च याति रामे राजन्यधीक्षते ।

जिसकी मरनेकी इच्छा होती थी वही मरता था । रामराज्यमें काल भी हाथ जोड़कर खड़ा रहता था । रामराज्यमे सबकी इच्छाकी पूर्त्ति होती थी । तुलसीदास महाराजने रामराज्यका बहुत सुन्दर वर्णन किया है ।

रामराज बैठे त्रैलोका । हरषित भए गए सब सोका ॥
बयरु न कर काहू सन कोई । राम प्रताप विषमता खोई ॥

बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग ।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहिं भय सोक न रोग ॥

दैहिक दैविक भौतिक तापा । रामराज नहिं काहुहि ब्यापा ॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती । चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती ॥
अल्प मृत्यु नहिं कवनिउ पीरा । सब सुन्दर सब बिरुज सरीरा ॥
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना । नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना ॥
रामराज कर सुख सम्पदा । बरनि न सकइ फनीस-सारदा ॥
एक नारि व्रत रत सब झारी । ते मन बच क्रम पति हितकारी ॥

अयोध्याकी प्रजा बहुत भाग्यशाली है, बहुत सुखी रहती है । रामराज्यमें कोई मूर्ख नही, सब ज्ञानी है । वहाँ कोई भिखारी नही । अधर्मसे कमानेकी किसीकी इच्छा नही । सब मेहनत करते है । रामराज्यमें कोई विधवा नही, स्त्रीकी उपस्थितिमें पतिकी मृत्यु होती नही । माता-पिताकी उपस्थितिमें बालकका मरण होता नही । रामराज्यमें कोई आधि-व्याधिसे पीडित नही । शरीरके रोगको व्याधि कहते हैं और मनके रोगको आधि कहते हैं । सभी सदाचार और संयमसे पवित्र जीवन व्यतीत करते थे ।

श्रीरामचन्द्रजी प्रजाके सुखका अतिशय ध्यान रखते थे । आदर्श राजा कैसा होना चाहिए, वह रामजीने ही जगत्को बताया है । राजा स्वयंके सुख-दु.खका विचार करता नही, प्रजाके सुख-दु खकी ही चिन्ता करता है । प्रजाके सुखके लिए स्वयंके सुखको भी बाँट देता है । रामजीने तो कहा है कि—

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि ।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा ॥

प्रजाकी आराधनाके लिए आवश्यकता पड़नेपर सीताजीका भी त्याग कर सकूँ, ऐसा हूँ और सरासर ऐसा प्रसङ्ग आकर उपस्थित हो ही गया । उस समय श्रीरामजीने

स्वयंका अथवा श्रीसीताजीके सुखका किञ्चित् मात्र भी विचार किया नही। रामचन्द्रजीने प्रजाके रंजनको ही स्वयंका मुख्य कर्त्तव्य गिना है। रामराज्यमें रामजीने प्रजाको बहुत सुख दिया, परन्तु प्रजाने कभी रामजीके सुख-दुःखका विचार किया नही। श्रीसीतारामजीने बहुत ही सहन किया है। जो अतिशय सरल होता है, उसको लोग बहुत दुःख देते है। श्रीसीतारामजी अति सरल है, इससे उनको बहुत सहन करना पड़ा है।

---

(९)
श्रीसीता-त्याग

प्रभुने एक दिन सिपाहियोंको आज्ञा की, तुम गुप्त-रीतिसे अयोध्यामें फिरो और मेरे लिए लोग क्या बोलते है, उसे सुनो। माताजी सगर्भा है। माताजीने अगली रात्रिमें रामजीसे कहा था—"मेरी वनमें फिरनेकी इच्छा होती है।" सुबह प्रभुके कानमें खबर आ पहुँची—एक सेवकने आकर कहा—'महाराज लोग आपका तो बखान करते हैं। आपके लिए सही बोलते है, परन्तु माताजीके लिए बहुत खराब बोलते है। रावणके घरमे माताजी रही, इससे बहुत निन्दा करते हैं। माताजीके लिए जो इच्छा आवे, वही बोलते हैं। आपने इनको घरमें रखा, इस कारण आपकी भी निन्दा करते है।'

रामायणमें लिखा है कि लंका-युद्धके बाद सीता माताने अग्निमें प्रवेश किया, सभी देवता-ऋषि वहाँ आये। सबने कहा है—'श्रीसीताजी महान् पतिव्रता है' अग्निदेवने कहा है—

'एषा ते रामवैदेही पापमस्यां न विद्यते।'

सीताजीके स्मरणमात्रसे अपना हृदय पवित्र हो जाता है। फिर भी एक अधम जीव था, जिसने सीता माताकी निन्दा की। सही रीतिसे देखा जाय तो श्रीसीताजीकी जिसने निन्दा की, उसे फाँसीकी सजा देनी चाहिये। किसी राजाकी रानीके लिए खराब शब्द बोले तो खबर पड़े कि क्या आफत आती है। परन्तु श्रीराम बहुत सरल है। इससे उन्होंने निन्दा करनेवालेको सजा दी नही, स्वयं ही सहन करना निश्चित किया। रामजी जानते हैं कि यह खोटा कलंक है, सीताजी निर्दोष है। फिर भी उन्होने निश्चय किया कि कलंक दूर करनेके लिए सीताजीका त्याग करना ही पड़ेगा। रामचन्द्रजीने विचार किया

कि मेरी प्रजाको मेरे चरित्रके ऊपर शंका है, इसलिए उसे दूर करना ही चाहिये। राजाका यह कर्त्तव्य है। प्रजाको सुख देनेवाले चारित्र्यका आदर्श मुझे बताना है। मुझे जगत्‌को शब्दमे उपदेश करना नही, मुझे शुद्ध चरित्रसे ज्ञान देना है।

रामजी बहुत व्याख्यान देते नही, बहुत थोड़ा बोलते है। रामजी शब्दोसे ज्ञान देते नही, क्रियासे ज्ञान देते है। रामजीकी प्रत्येक क्रिया उपदेशमय है। प्रभुने लक्ष्मणजीको बुलाकर कहा—लक्ष्मण ! लोग चाहे जैसा बोलते है। तुम अपनी भाभीको रथमे बैठाकर घोर जगलमे छोड़ आओ।

लक्ष्मणजीको खूब गुस्सा आया। लक्ष्मणजीका सीताजीमे मातृभाव है। लक्ष्मणजीने पूछा—मेरी माँके लिए कौन ऐसे वचन निकालता है ? लक्ष्मणजी सीताजीकी निन्दा करनेवालेको सजा देनेके लिए तैयार हो गये।

रामजीने कहा—लक्ष्मण ! क्रोध करो नही, शान्त रहो। मैंने बहुत विचारपूर्वक यह निर्णय लिया है। तब लक्ष्मणजीने कहा—मेरे भाई ! यह काम मैं नही करूँगा। श्रीसीताजी मेरी माँ है। तुम यह काम किसी दूसरेको सौप दो।

रामजीने कहा—लक्ष्मण ! तुमको ही यह काम करना पड़ेगा। तुम्हारे सिवाय दूसरा कोई यह काम कर नही सकता। इसलिए बहुत बोलनेकी जरूरत नही। मेरी आज्ञाका पालन तुमको करना ही है।

लक्ष्मणजीको बहुत दुःख हुआ। ज्ञानी होना सरल है, योगी होना सरल है परंतु सेवक होना बहुत कठिन है। **सब ते सेवक धरम कठोरा**। जो मनको मारता है, स्वयंके सुखको मारता है, वही सेवा कर सकता है। सेवकको निरपेक्ष होना पड़ता है। सेवकको सेव्यके सुखका ही विचार करना पड़ता है। सेवक सुख भोगनेकी इच्छा करे तो वह बराबर सेवा नही कर सकता। सेवा वह कर सकता है जो आत्मसुखको त्याग देता है। सेवकको मन मारना पड़ता है। सेवकके कोई मन होता नही, सेवककी कोई निजी इच्छा होती नही। सेवकके लिए तो स्वामीकी इच्छा ही उसकी इच्छा।

लक्ष्मणजीको यह काम करना हो नही था परन्तु प्रभुकी आज्ञा हुई कि एक अक्षर भी तू मत बोल। इससे लक्ष्मणजीने मालिककी आज्ञाका पालन किया। परमात्माने श्रीसीताजीसे कुछ भी कहा नही। श्रीसीताजी ऐसा समझती रही कि मेरी वनमे घूमने जानेकी इच्छा हुई थी, इससे मुझे वनमे ले जानेकी आज्ञा प्रभुने लक्ष्मणजीको दी है। लक्ष्मणजी सीताजोको रथमे बैठाकर घोर जङ्गलमे ले जाते है।

वनमे लक्ष्मणजीका हृदय वशमे रहता नही। लक्ष्मणजी खूब रुदन करते हैं। माताजी रुदनका कारण पूछती है। तब लक्ष्मणजी कहते हैं—माँ ! मुझे कहनेमें बहुत दुःख

होता है, परन्तु अयोध्याके लोग जो इच्छा हो, वैसा बोलते है। इसलिए प्रभुने तुम्हारा त्याग किया है । माँ ! क्षमा करो, यह काम मुझे करना नही था परन्तु मैं तो सेवक हूँ ।

लक्ष्मणजी महान् बुद्धिमान् है । सीताजीसे कहते है—माँ ! तुम्हारे पिताजीके मित्र वाल्मीकि ऋषिका आश्रम पास ही है ।

आख्यातो वाल्मीकिनिकेतमार्गः ।

लक्ष्मणजी सीताजीको वहाँ छोड़कर अयोध्या वापस जाते है । अकेली छोड़ी हुई सीताजी बहुत रुदन करती हैं। वाल्मीकिजीके शिष्य उन्हे खबर देते है । वाल्मीकिजी दौड़े आते हैं, श्रीसीताजीको धैर्य देते है, उनको समझाते है—'बेटा, तुम्हारे पिता जनक मेरे मित्र हैं । तू मेरी पुत्री है, सब ठीक हो जायेगा ।' सीता माताको समझाकर वाल्मीकिजी आश्रममें ले आते हैं ।

चक्रवर्ती सार्वभौम राजा श्रीरामके दो बालकोंका जन्म वनमें एक ऋषिके आश्रममें होता है । इनके नाम पड़े है—लव और कुश ।

श्रीमद्भागवतकी रचना गङ्गाके किनारे हुई है, रामायणकी रचना तमसाके किनारे हुई है । वाल्मीकि ऋषिका आश्रम तमसा नदीके किनारे है । वाल्मीकि ऋषिने रामायणकी रचना करनेके बाद लव और कुशको रामायण पढ़ाई । रामायणके प्रधान वक्ता हैं—लव और कुश। रामायणकी पहली कथा श्रीरामजीके दरबारमें होती है और रामजीके दो बालक लव और कुश यह कथा करते हैं ।

समाज तो दुतरफा घूमता है । रामजीने सीताजीका त्याग किया, यह बहुतोंको सहन हुआ परन्तु किन्हींको सहन नहीं हुआ । जिनको यह सहन नही हुआ, वे कहते थे कि सीताजीका त्याग करनेकी जरूरत नही थी परन्तु ये केवल इतना ही कहकर रह गये । किसीने भी रामजीके पास जाकर नहीं कहा कि माताजीको घरमें बुला लो । माताजी घरमें नहीं पधारेंगी तब तक मैं पानी भी नही पिऊँगा । प्रजाने रामजीके सुखका तनिक भी विचार नहीं किया ।

बाधा उठायी केवल एक वशिष्ठजीने । अकेले रामजी सिंहासनके ऊपर बैठे यह उनको (वशिष्ठजीको) सहन नही हुआ । उन्होंने रामजीसे कहा—'यह बहुत बुरा हुआ । सिंहासनपर तुम एकाकी बैठते हो उसको देखकर मुझे बहुत दुःख होता है । सीताजीका त्याग किया, यह तुम्हारे योग्य नहीं । सीताजीको घरमें पधराओ । श्रीसीतारामजी सिंहासनपर विराजें, ऐसे दर्शन मैं करना चाहता हूँ ।'

रामजीने गुरुजीके चरण पकड़कर कहा—'आप इस विषयमें मुझे कुछ कहे नही, मैंने जो किया है, वह विचारपूर्वक किया है ।'

रामजीको यज्ञ करना है। यज्ञ समाजके आरोग्यका साधन है। प्रजाको एक आदर्श बताना है। रामजीने वशिष्ठजीसे सलाह पूछी। वशिष्ठजीने कहा—'अकेले पुरुषको अथवा अकेली स्त्रीको यज्ञ करनेका अधिकार नही। यज्ञ तो पति-पत्नी दोनो साथ बैठें तो ही हो सकता है। तुम सीताजीको पधराओ तो ही यज्ञ होगा।' रामजीने कहा—'सीताजीको नही पधराऊँ तो?' तब वशिष्ठजीने कहा—'तुम राजा हो। किसी राजकन्याके साथ दूसरा विवाह करो। पत्नीके बिना यज्ञ हो नही सकता। अकेले रामको यज्ञ करनेका अधिकार नही और राजाको यज्ञ तो अवश्य करना ही चाहिए, तुम दूसरा विवाह करो।' रामजी-ने कहा—'गुरुजी आप यह क्या कह रहे हो? जगत्‌की प्रत्येक स्त्री मेरी माँ है। अत मुझे दूसरा विवाह करना ही नही।'

वशिष्ठजीने कहा—'तुम दूसरा विवाह करते नही और सीताजीको पधराते नही। तुमको यज्ञ करनेका अधिकार नही।'

श्रीरामचन्द्रजीने युक्ति की। उन्होंने सीताजीकी सुन्दर सुवर्ण-मूर्त्ति बनवाई। बराबर सीताजीकी ही तरह सोनेकी मूर्त्ति बनवा ली गयी। श्रीराम जब यज्ञमें यजमान-आसनपर बैठे तो वे सीताजीकी मूर्त्तिको साथ लेकर बैठे।

(१०)

रामायण-कथा

वाल्मीकिजीको यज्ञका आमन्त्रण दिया गया। वाल्मीकिजी अपने दो शिष्य लव और कुशको लेकर अयोध्यामे आते हैं। यज्ञमे विश्रान्तिके समय लव-कुश रामायणकी कथा करते हैं।

रामायणकी कथा बहुत सुन्दर है और यह दो बालक असाधारण वक्ता हैं। कथा ऐसी सुन्दर करते है कि बड़े-बडे ऋषि-मुनि भी झूम उठते हैं। सब आश्चर्य व्यक्त करते है कि बालक कैसा सुन्दर बोलते हैं।

रामजीके कानमे बात आयी कि वाल्मीकिजीके कोई दो शिष्य है, बालक हैं और वे रामायणकी कथा बहुत सुन्दर करते हैं। रामजी उनको दरबारमें बुलाते है। रामजीके दरबारमें दो सुन्दर बालक श्रीराम-कथा करते हैं। रामायणमें लिखा है कि

रोज तीस-तीस सर्गकी कथा उन्होंने की है। चौबीस दिन कथा चली। लव-कुश रोज राम-कथाका वर्णन करते हैं और अयोध्याकी प्रजा सुनती है।

रामजी भी कथा सुनने बैठते हैं। मर्यादापुरुषोत्तमकी प्रत्येक लीलामें मर्यादा है। लव-कुश जिस समय राम-कथा करते हैं उस समय रामजी सिंहासन छोड़ देते हैं। वक्ताकी अपेक्षा श्रोताका आसन ऊँचा न हो, यह सनातन धर्मकी मर्यादा है। रामजीको कथा सुननेमें बहुत आनन्द आता है। रामजी बारम्बार लव-कुशको निहारते हैं। उन्होंने पीछे लक्ष्मणसे कहा—'लक्ष्मण ! इन बालकोंको देखनेमें मुझे बहुत आनन्द होता है। इनके श्रीअङ्गके लक्षण देखनेसे तो ऐसा लगता है कि ये कोई चक्रवर्ती सार्वभौम राजाके बालक हैं। **इमो युनि पार्थिव लक्षणौ एतौ।** लक्ष्मण ! इनसे मिलनेकी मेरी इच्छा होती है। ये कोमल बालक हैं, मुझे इनका सम्मान करना है।'

प्रभुने बालकोंके लिए वस्त्र-आभूपण मँगाये परन्तु लव-कुशने उन्हें लेनेकी मनाही की। लव-कुशने कहा—'हमारे गुरुजीकी आज्ञा नहीं। हम वाल्मीकि ऋषिके शिष्य है। गुरुजीने कहा है कि कोई कुछ दे तो लेना नहीं। हम तो वनमें रहनेवाले तपस्वी है। जङ्गलमें कन्द-मूलका सेवन करते हैं तथा वल्कल वस्त्र धारण करते हैं।'

वन्येन फलमूलेन निरतौ वनवासिनौ।
सुवर्णेन हिरण्येन किं करिष्यावहे वने॥

यह सोना-रुपया हमारे क्या कामका ? वस्त्र-आभूषणोंकी हमको क्या जरूरत ?

रामजीको आश्चर्य हुआ कि बालक किस प्रकार बोलते हैं। उन्होने लक्ष्मणजीसे कहा कि लक्ष्मण ! मुझे इन बालकोंका परिचय बताओ। ये वाल्मीकिजीके शिष्य हैं परन्तु इनके माता-पिता कौन हैं ? इनका कुल कौन-सा है ? लक्ष्मण ! इनको बुरा न लगे, इस प्रकार विवेकसे तुम पूछना।

लक्ष्मणजीने बहुत सम्मानके साथ लव-कुशके साथ बातें कीं और कहा कि महाराज रामजीको तुम्हारी कथामें बहुत आनन्द आता है। महाराजको तुम्हारा परिचय जाननेकी इच्छा है। आप कौन हो ?

तब बालकोने सभामें कहा कि हम वाल्मीकजी ऋषिके शिष्य है।

लक्ष्मणजीने कहा—'तुम वाल्मीकजीके शिष्य हो यह तो महाराज जानते है। परन्तु उनकी यह जाननेकी बहुत इच्छा है कि तुम्हारे माता-पिता कौन हैं।'

तब लव-कुशने जवाब दिया कि राजा रामचन्द्रजीका यह प्रश्न सनातन धर्मकी मर्यादाके विरुद्ध है। जिसने घर छोड़ा, जो घर छोड़कर साधु हुआ, जो गुरुकुलमें रहकर

ब्रह्मचर्यका पालन करके वेदाध्ययन करता है, वह घरका स्मरण करता नही। साधुको, ब्रह्मचारीको घरका स्मरण कराना पाप है। उनसे घरका परिचय पूछना योग्य नहीं। उनके गुरुदेवका परिचय पूछना योग्य है। हमारे गुरुदेव वाल्मीकिजी हैं। हमारे माता-पिता कोई भी हों, उनको जाननेकी राजा रामचन्द्रजीको क्या जरूरत ?

वाल्मीकि ऋषिने वर्णन किया है। लव-कुश राम-कथा करते है, वह राज्याभिषेक-पर्यन्त करते है। रामचन्द्रजीके राज्याभिषेक तक ही रामचरितका उन्होने वर्णन किया है। रामचन्द्रजीने लव-कुशसे कहा—'आगेका रामचरित सुननेकी हमारी इच्छा है।'

तब लव-कुश सभामें बोले—'गुरुजीकी हमको आज्ञा नहीं। राम-कथा तो राज्याभिषेक तक ही होती है। राज्याभिषेकके पीछेका रामचरित सभामें वर्णन करने योग्य नही।'

रामचन्द्रजीने नीचे दृष्टि की—'ये ठीक कहते हैं, इसमें क्या बुरी बात है ? आगेका रामचरित कहने योग्य है ही नही।'

लव-कुश वाल्मीकिके साथ आश्रममे वापिस आए। श्रीसीता माँका वन्दन करके बालकोने कहा—'माँ ! माँ ! हम गुरुजीके साथ अयोध्या गये थे। वहाँ एक बड़ा राजा है। उसका नाम राजा राम है। माँ ! उन्होने बड़ा यज्ञ किया है। राजा राम जब यज्ञमें बैठते है तो सोनेकी मूर्त्ति साथ लेकर बैठते है। माँ ! वह सोनेकी मूर्त्ति बिल्कुल तुम्हारी जैसी ही है। हमको तो ऐसा लगा कि हमारी माँ ही राम राजाके साथ बैठी हैं। माँ ! यह राजा राम कौन हैं ?'

सीताजीने जब सुना कि मेरी सोनेकी मूर्त्ति साथ लेकर रामजी यज्ञ करने बैठते है तो उन्हे बहुत आनन्द हुआ। सोचने लगी कि प्रभुने मेरा त्याग किया ही नही है। राजाने रानीका त्याग किया है, रामजीने सीताका त्याग किया नही।

प्रजाको शुद्ध चरित्रका आदर्श बतानेके लिए राजाने रानीका त्याग किया है। प्रभुने राजधर्मका आदर्श बताया है। रामजीने सीताजीका त्याग किया नही। श्रीसीता-रामजी तो साथ ही विराजते है। इनका तो नित्य संयोग है। वैष्णवजन सुवर्ण-सिंहासनपर विराजे हुए श्रीसीतारामजीके नित्य दर्शन करते हैं।

जगत्में रामजी जैसा महान् पुरुष कोई हुआ नही और भविष्यमे होना भी नही। रामजीको किससे उपमा दी जावे ? वाल्मीकि ऋषि रामजीकी कथा करने लगे तब उनको विचार हुआ कि मैं रामजीको किससे उपमा दूं ? श्रीरामजी किसके समान है ? वाल्मीकिजीने बहुत नजर दौड़ायी परन्तु उनको जगत्के इतिहासमे ऐसा कोई देव मिला

नहीं, कोई ऋषि मिला नही अथवा कोई महान् पुरुष भी मिला नही जिसकी उपमा रामजीको दी जा सके। श्रीवाल्मीकिजी थक गये और अन्तमें ऐसा बोले कि श्रीराम कैसे हैं? श्रीराम रामकी ही तरह है। श्रीराम जैसा दूसरा कोई मिलता ही नहीं कि जिसकी उपमा मैं रामजीको दे सकूँ। समुद्र कैसा है? भाई! समुद्र तो समुद्र जैसा ही है। **सागरः सागरोपमः।** समुद्रको जिस तरह अन्य किसीकी उपमा नहीं दी जा सकती इसी तरह श्रीरामचन्द्रजीको भी अन्य किसीकी उपमा दे सकते नहीं। जगतमें ऐसा कोई हुआ ही नही।

यो वा अनन्तस्य गुणाननन्तानतुक्रमिष्यन् स तु बालबुद्धिः।
रजांसि भूमेर्गणयेत्कथंचित् कालेन नैवाखिलशक्तिधाम्नः॥

अनन्त भगवानके अनन्त गुणोंका जो पार पानेकी इच्छा रखता है वह बालक-बुद्धिका है, अज्ञानी है। कदाचित् किसीकी सामर्थ्य हो तो पृथ्वीके रज-कणोंको भले ही गिन सके, परन्तु सर्वशक्तिमान श्रीभगवान्के गुणोंका पार कोई पा सकता नहीं।

रामजीके गुणोंका कौन वर्णन कर सकता है? रामजीके गुण अनन्त है, मनुष्यकी बुद्धि अल्प है।

भगवान शङ्कर माता पार्वतीजीको समझाते है—देवी मै राम-कथा कहता हूँ, रामजीका ध्यान धरता हूँ, 'श्रीराम श्रीराम श्रीराम' जप करता हूँ तिसपर भी रामजी कैसे हैं यह मैं भी बराबर जानता नहीं। रामजी अतर्क्य हैं। बल-बुद्धिसे परे है।

राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी। मत हमार अस सुनहु भवानी॥

रामजीके गुणोंका अन्त नहीं। जगतमें जितने दिव्य सद्गुण हैं। वे सब रामजीमें समाये हुए है।

राम नाम गुन चरित सुहाए। जनम करम अगनित श्रुति गाए॥
जथा अनन्त राम भगवाना। तथा कथा कीरति गुन नाना॥

पुरुषका जीवन रामजीकी तरह ही होना चाहिए। रामजीने पुरुषका धर्म जगतको समझाया है और सीताजीने स्त्री-धर्म समझाया है। धर्मका आदर्श जगतको बतानेके लिए ही श्रीसीतारामजी प्रकट हुए है।

भोगमें रोग बियोग संयोगमें, जोगमें काय कलेस कमायो।
त्यों 'पदमाकर' बेद पुरान पढ्यो, पढ़ि कै बहु बाद बढ़ायो॥
दौरयो दुरासमें दास भयो पै कहूँ बिसरामको धाम न पायो।
कायो ममायो सु ऐसे ही जीवन, हाय मैं रामको नाम न गायो॥

—•—

* श्रीजानकीवल्लभो विजयते *

सकलकुशलदात्रीं भक्तिमुक्तिप्रदात्रीं
त्रिभुवनजनयित्रीं दुष्टधीनाशयित्रीम् ।
जनकधरणिपुत्रीं दर्पिदर्पप्रहर्त्रीं
हरिहरविधिकर्त्रीं नौमि सद्भक्तभर्त्रीम् ।।

(११)

स्त्री-धर्म

श्रीसीताजीकी कथा अति दिव्य है। वाल्मीकि रामायण पढनेमे ऐसा लगता है कि वाल्मीकि ऋषि श्रीसीताजीके पक्षपाती है। श्रीसीताजीका चरित्र-वर्णन करनेमें श्रीवाल्मीकि-जी द्रवित हो गये है। वाल्मीकि ऋषिने तो रामायणमें ऐसा कहा है कि रामायणमे रामजी-की बहुत कथा नही, श्रीसीता माँका ही चरित्र मुख्य है। रामायणमे-से श्रीसीताजीका चरित्र निकाल दो तो रामायणमे कोई विशेष राम रहते ही नही।

कृत्स्नं रामायणं काव्यं सीतायाश्चरितं महत् ।

वाल्मीकिजीने तो ऐसा कहा नही कि रामायण रामचरित्र है। वाल्मीकिजी तो ऐसा कहते हैं कि रामायण सीताजीके चरित्रकी कथा है। वाल्मीकिजीने कहा है कि राम-चरित दिव्य है परन्तु सीताजीका चरित्र अति दिव्य है। रामायणमें सीताजीके दिव्य सद्गुणोका वर्णन है। श्रीसीताजीने आदर्श स्त्री-धर्म जगत्‌को अन्तिम रूपसे बताया है।

शास्त्रमे लिखा है कि पुत्र बहुत योग्य हो तो एक ही कुलका—पितृकुलका उद्धार कर सकता है परन्तु स्त्री बहुत योग्य हो, स्वधर्मका बराबर पालन करती हो तो वह पतिके तथा पिताके—दोनों कुलोको तार सकती है।

कितने ही लोग ऐसे होते हैं कि लडका उत्पन्न होता है तो बहुत प्रसन्न होते है और लड़की उत्पन्न होती है तो मानों अण्डीका तेल पी लिया है, ऐसा मुँह बनाते हैं। अरे, पुत्री क्या खोटी है ? पुत्र क्या कुछ अधिक कर देनेवाला होता है ? लोग ऐसी अपेक्षा रखते है कि छोकरा हो तो घरमे दीपक रहे। इस कलियुगके छोकरे तो माँ-बापके लिए नया दीपक रचते नही। छोकरा होना चाहिए, ऐसा आग्रह रखना नही। छोकरा कुछ अधिक कर देनेवाला नही।

शास्त्रमे ऐसा लिखा है कि स्त्री बहुत लायक हो तो पतिको सुधार सकती है परन्तु स्त्री लायक न हो तो पति उसको सुधार सकता नही। साधारण रीतिसे पुरुष कामान्ध होनेसे स्त्रीके अधीन ही रहता है। इसलिए पत्नी लायक हो तो वह पतिको युक्तिसे सुधार सकती है, पाप करनेसे विमुख कर सकती है और उसे कल्याणका मार्ग

समझा सकती है। लायक स्त्री पतिको भगवद्भजनमें लगाती है, सत्सङ्गकी तरफ ले जाती है, पतिके हाथसे सत्कर्म कराती है और उसे उसके धर्म और मोक्षका मार्ग बतलाती है।

स्त्री-धर्म अतिशय श्रेष्ठ है। स्त्री स्वधर्मका बराबेर पालन करे तो उसे घरमें ही मुक्ति मिलती है। स्त्रीको घर छोड़कर बाहर भटकनेकी आवश्यकता नही। स्त्री अगर बाहर भटके तो स्वेच्छाचारी बनती है और उसका पतन होता है। जो स्त्री घरमें रहकर गृहिणी-धर्म सँभालती है, उसको पवित्र रहनेकी अनुकूलता रहती है। पुरुषकी अपेक्षा स्त्रीको सिद्धि सुलभ है। शास्त्रमें लिखा है कि स्त्रीको प्रभुकी प्राप्ति जल्दी होती है। स्त्रीका हृदय स्नेहयुक्त और आर्द्र होता है। वह प्रभु-प्रेममें जल्दी पिघलती है। उसमें समर्पणकी भावना होती है। स्त्री घरके प्रत्येक जीवमें ईश्वरकी भावना रखकर, तन-मनसे सबकी सेवा करे और घरका काम करते-करते परमात्माका स्मरण करे तो बड़े-बड़े संन्यासियों और योगियोंको वनमें रहकर जो सिद्धि प्राप्त होती है, वह अनायास ही उसे घरमें रहकर मिल जाती है।

निर्वाहके निमित्त व्यवहार करते हुए पुरुषसे जाने-अनजानेमें पाप हो जाते हैं। यह पाप उसको अकेले ही भोगने पड़ते है। शास्त्रमें तो यहाँ तक लिखा है कि पैसा कमाता हुआ पुरुष जो कोई पाप करता है, उसमें स्त्रीका भाग नही होता परन्तु पति पुण्य करे, उसमें स्त्रीको भाग मिलता है। जो स्त्री पतिव्रता है, जो स्त्री पतिमें ईश्वरकी भावना रखकर उसकी सेवा करती है, उस स्त्रीको ही पतिके पुण्यमें भाग मिलता है। पतिदेवका कहना न माने, पतिका दिल दुखावे, ऐसी स्त्रीको पतिका पुण्य मिलता नही। पतिमें ईश्वर-भाव नही रखे, उस स्त्रीके यह लोक और परलोक दोनों बिगड़ते है।

पतिकी सेवा करना, यह स्त्रीका धर्म है। पति क्रोधी हो, रोगी हो, अशक्त हो तो भी उसमें ईश्वरकी भावना रखकर उसकी सेवा करनेसे स्त्रीको मुक्ति मिलती है। रामायणमें श्रीसीताजीने कहा है—

पतिशुश्रूषणाभार्यास्तपो नान्यद् विधीयते ।

स्त्रीके लिए पतिकी सेवा ही तप है। पतिव्रता स्त्री तो परमात्माकी भी माँ बन सकती है। स्त्रीमें ऐसी शक्ति है कि भगवानको बालक बना सकती है। पतिकी सेवासे चित्त-शुद्धि और चित्त-शुद्धिसे परमात्माकी प्राप्ति होती है। ऐसी स्त्रियोंको मन्दिरमें भी जानेकी जरूरत नही है।

स्त्री घरमें एक-एक जीवमे ईश्वरका भाव रखती है, सबकी सेवामें शरीर घिसती है। लायक स्त्री घरमें सबको सुखी करती है और अपने बालकोंको धर्मका शिक्षण देती है। यह इसकी बड़ी-से-बड़ी सेवा है। घरके लोग मेरी कद्र करेंगे—ऐसी तनिक भी

अपेक्षा रखती नही। कद्र तो ऊपर जानेके वाद होती है। कितने ही लोग काम खूब करते हैं, परन्तु घरमे इनसे वहुत सम्मानसे न बोला जाय तो इनका हृदय पीड़ित होता है कि मैंने इतना अधिक काम किया फिर भी इस तरह वोलते हैं। इस जीवको सम्मान करना आता ही नही। कोई मनुष्य मेरा सम्मान करे, ऐसी अपेक्षा रखना ही नही। कोई भी काम करो, परमात्माको नजरमे रखकर, प्रभुका स्मरण करते-करते करो तो हृदय पीड़ित होनेका प्रसंग ही नही आवेगा। तुम्हारे कामकी लोग प्रशंसा करे इसलिए नही, परन्तु उसके ऊपर प्रभु नजर करे, उससे परमात्मा राजी हों, ऐसी अपेक्षासे काम करोगे तो कभी निराश होनेका अवसर नही आवेगा। परमात्माको राजी करनेके लिए तुम अपना कर्त्तव्य सदैव निर्वाह करो, स्वधर्मका पालन करो। कोई मनुष्य राजी हो या न हो इससे क्या? यह राजी हो जानेसे तुमको क्या दे देता है और नाराज हो तो तुम्हारा क्या बिगाड़ने वाला है? मनमे सदैव स्मरण रखो कि मेरा सम्वन्ध ईश्वरके साथ है।'

---

(१२)
श्रीसीताजीकी मधुर वाणी

श्रीसीताजीने जगतको स्त्रीधर्म समझाया है। श्रीसीताजीमे सब ही सद्गुण एकत्रित हुए है। रामायणमें लिखा है कि रामजीको कभी-कभी क्रोध आ जाता है। राक्षसोंके साथ रामजी युद्ध करते है, उस समय उनकी आँखे लाल हो जाती हैं परन्तु सीता माँको जीवनमे कभी भी क्रोध आया नही। श्रीसीताजी जीवनमें कभी भी ऊँचे स्वरसे बोली नही। श्रीसीताजी अतिशय मधुर वोलती है। इनको कर्कश बोलना आता ही नहीं।

तुम्हारे घर कलह न हो, ऐसी इच्छा रखते हो तो भले ही कुछ भी हो जाय, कभी ऊँचे स्वरसे बोलना नही। कर्कश वाणीसे कलहका जन्म होता है। क्रोधकी बुरी उक्ति—यही कर्कश वाणी है। कर्कश वाणीमे-से विवाद उठता है और वाद-विवादमें फिर मारा-मारी होती है। सब पापोंकी मूल वाणी हैं। शरीरमे सब ठिकाने हाड़ है, एक जीभमे ही हड्डी नहीं है। यह जीभ कहलाती तो 'लूली' है, परन्तु यह 'लूली' अर्थात् यह

लँगड़ी तूफान बहुत करती है। आड़ी-तिरछी बोल देती है। इन्द्रप्रस्थमें राजसूय यज्ञके समय द्रौपदीने अन्धेका पुत्र अन्धा कहकर दुर्योधनका अपमान किया। उसमे-से महाभारतके युद्धका जन्म हुआ। श्रीसीताजी जीवनमे एक ही समय कर्कश वाणी बोली थी, और उसी-में-से रामायणके अनेक करुण प्रसङ्ग निकले। माया-मारीचकी 'हा लक्ष्मण'की छलभरी आवाजसे श्रीसीताजी भ्रममे पड़ गयी कि रामजी सङ्कटमें है और उससे वे बहुत व्याकुल हो गयीं। अतिव्याकुलतामें उन्होंने लक्ष्मणजीसे बहुत कर्कश वचन कहे और उसमें-से ही करुण प्रसंगोंकी परम्परा उठ खड़ी हुई।

कर्कश वाणी तो विष है। शिवजीने विष गलेमें रखा है। जहर गलेमें ही रख लेना उचित है। उसको न बाहर आने दिया जाय और न पेटमें उतरने दिया जाय। कोई कड़वा शब्द मुखसे बाहर निकलने मत दो और कोई कड़वाहट पेटमें रखो नही। कोई निन्दा करे, द्वेष करे तो प्रतिकार करो नहीं, न उसको पेटमें रखो। उसको याद नही रखो, सहन कर लो और उसे भूल जाओ। हृदयमें हरिको रखना हो तो उसमे विष रखो नही।

निश्चय करो कि मुझे मधुर बोलना है। बोलो तो ऐसा बोलो कि सुननेवालेका मन झूमने लगे। किसीका दिल दुखे, ऐसा बोलो नही। लकड़ीकी मार भुलायी जा सकती है, परन्तु शब्दकी मार भूलते नही। काम करते हुए किसीकी भूल हो जाय तो मधुर वाणीसे इशारा करो। वाणी मधुर होनी चाहिए, आनन्द उपजावे, ऐसी होनी चाहिये। शब्द ब्रह्मका स्वरूप है। जो सर्वकालमें मधुर बोलता है उसे रोग नही होता। जो मधुर बोलता है उसका कोई शत्रु नही होता। जो मधुर बोलता है वही परमात्माको अच्छा लगता है। तुम जानते हो, श्रीकृष्ण प्रभुने हाथमें बाँसुरी किसलिए रखी है? बाँसुरी अतिशय मधुर बोलती है। बाँसुरी सज्जन अथवा दुर्जन, सबके साथ मधुर ही बोलती है। बाँसुरीका नाद सुनकर हिरण भी दौड़ते है और विषधर नाग भी दौड़ते है। कस्तूरी मृग सज्जनका स्वरूप है, और विषधर नाग दुर्जनका। बाँसुरीका शब्द सुनकर सज्जन-दुर्जन सबको आनन्द होता है। बाँसुरी कभी भी कड़वा शब्द बोल ही सकती नही, कठोरतासे बोलती नहीं। इसी कारणसे तो यह परमात्माके अधरामृतकी अधिकारिणी बनी है।

जहाँ स्वार्थ होता है वहाँ तो लोग बहुत ही मधुर बोलते है। स्वार्थमें मधुर बोलना—यह मिठास सच्ची नहीं। हृदयमें मिठास हो तो ही वाणीमें सच्ची मिठास आती है। परमात्माने हृदय दिया है मिठास भरनेके लिये, और जीभ दी है मधुर बोलनेके लिए। कुछ भी क्यों न हो जाय, तुम्हारा कोई अपमान करे अथवा घरमें नुकसान हो जाय, तुम कभी ऊँचे स्वरसे बोलना नही। कर्कश वाणीमें-से ही कलियुगका जन्म हुआ है।

श्रीसीता माँ अति मधुर बोलती है। रामायणमें वर्णन आता है कि प्रभुने शिवजीके धनुषका खण्डन किया और पीछे जनकराजने सुवर्णाक्षरोमें कुंकुम-पत्रिका लिखी। दूतको वह पत्रिका देकर कहा—'तू दौड़ता हुआ अयोध्यामें जा और दशरथ महाराजको यह पत्रिका देकर कहना कि प्रभुने धनुषको भंग किया है, श्रीसीताजीने रामजीको विजय-माला अर्पण की है। आप अयोध्याकी प्रजाको साथ लेकर जल्दीसे लग्न-महोत्सवमें पधारे।'

दूत पत्रिका लेकर दौड़ता हुआ अयोध्यामे आता है। दशरथ महाराजका दरबार भरा हुआ है। सिपाही दशरथ महाराजको पत्रिका देता है। श्रीविश्वामित्रके साथ श्रीराम-लक्ष्मणके जानेके पश्चात् दशरथ महाराजको आज दिन तक कोई खबर मिली नही। वे चिन्ता करते थे कि मेरा राम कहाँ होगा? एक ऋषिके पीछे-पीछे गया है, बहुत समयसे इनकी कोई खैर-खबर नही। आज जनक राजाका पत्र आया उसमें श्रीराम-लक्ष्मणका बहुत वर्णन किया है। राजा दशरथ वह पत्र पढ़कर अतिशय प्रसन्न हुए कि रावण जैसा वीर पुरुष जिस धनुपको उठा नही सका, उसको मेरे रामने भंग किया है। श्रीसीताजीने जयमाल अर्पण की है। दशरथ महाराजने सीताजीकी पहलेसे ही बहुत प्रशंसा सुनी थी। वही सीताजी पुत्रवधू बने इससे बड़ा क्या फल मिल सकता था। राजा दशरथकी आँखें हर्षसे गीली हुईं। उन्होंने दूतसे कहा—'मेरे रामकी लग्नकी बधाई तूने दी है तुझको मैं क्या दूं?' महाराजके गलेमें नवरत्नका एक अमूल्य हार था। महाराजने वह उतारकर दूतको दिया। दूतने हाथ जोड़े परन्तु हार लिया नही। दशरथजी-ने आग्रह किया कि अपने रामके लग्नकी वार्ता सुनकर मैं बहुत आनन्दित हुआ हूँ। यह तुमको बख्शीश देता हूँ। आज तो तुमको यह लेनी चाहिये।

दूतने हाथ जोड़कर कहा कि महाराज! आप जो कहते हो वह ठीक है परन्तु मैं तो कन्या-पक्षका हूँ। आपके घरका पानी भी हमको ग्राह्य नहीं। आपका हार हमारे द्वारा लेने योग्य नही।

महाराज दशरथको आश्चर्य हुआ। उन्होने कहा कि यह तो जनक महाराजकी कन्या है और तुम तो सेवक हो। सेवकको लेनेमें तनिक भी बाधा नहीं। तुमको तो लेना ही चाहिए। मैं बहुत खुश होकर तुमको दे रहा हूँ।

दूतको श्रीसीताजीका स्मरण हुआ। उसकी आँखे नम हो गयी। हृदय पिघल गया। उसने हाथ जोड़कर कहा—'महाराज नौकर हूँ, यह तो बात सच है परन्तु मैं आपसे अधिक क्या कहूँ? श्रीसीताजीने मुझे घरमे नौकरकी तरह रखा नही। मैं उमरमें बड़ा हूँ न, इसलिए उन्होंने मुझे पिताके समान माना है। श्रीसीताजी राज-कन्या हैं परन्तु

घरके नौकरोंके साथ उनका ऐसा शुद्ध प्रेम है। महाराज! वे हमारी पुत्री है। अपनी कन्याकी मैं क्या प्रशंसा करूँ? यह तो आपके घर आनेके पश्चात् आपको विदित होगा। आप सबको वे बहुत सुखी करेंगी। वे बहुत लायक है।'

घरके दास-दासियोंके साथ भी सीताजीका व्यवहार बहुत प्रेममय है। नौकरोंका तिरस्कार कभी करना नहीं। रामायणमें लिखा है कि सीताजी जनकपुर छोड़कर अयोध्या जाने लगी तो घरके दास-दासी भी रोने लग गये। पशु-पक्षी तक भी रोए थे। श्रीसीताजीका वियोग घरके दास-दासियोंसे क्या, अरे, पशु-पक्षियोंसे भी सहन हुआ नही। श्रीसीताजीका सबके साथ ऐसा प्रेम था।

---

(१३)
श्रीसीताजीका पातिव्रत्य

श्रीसीताजी अतिशय सरल है, प्रेमकी मूर्ति है। श्रीसीताजीका पतिव्रत-धर्म अनुपम है। श्रीसीताजी महान् पतिव्रता है। श्रीसीताजी संयम, श्रीसीताजीकी सरलता, श्रीसीताजीका पातिव्रत्य जगतमें तुमको किसी जगह देखनेको मिलेगा नहीं।

एकनाथ महाराजने वर्णन किया है कि हनुमानजी जब सीताजीकी खोजमें लङ्का जानेको तैयार हुए, तब उन्होंने रामजीसे कहा कि महाराज! मैंने माताजीको देखा नही है। लङ्कामें तो देव-गन्धर्वोकी अनेक स्त्रियाँ है। उन सीताजीको मैं पहचान सकूँ ऐसा कोई खास लक्षण बताओ।

रामचन्द्रजीने सीताजीके कितने ही लक्षण वर्णन किए, 'वे बहुत गोरी है, उनके केश बहुत सुन्दर है, उनकी आँख अति दिव्य है।'

हनुमानजीने कहा—'महाराज! मैं तो ब्रह्मचारी हूँ। मैं स्त्रीको सम्मुख देखता नही। शरीरका लक्षण मै ध्यानमे रखता नही। मैं किसी दिन भी शरीरका स्मरण करता नही।'

शरीरका चिन्तन करनेसे काम जागता है। कामका मूल सङ्कल्प है। ज्ञानी पुरुष आत्म-दृष्टि रखते हैं। ज्ञानी महापुरुष कभी किसीके शरीरका स्मरण-चिन्तन करते नही,

इसलिए काम इनको कभी त्रस्त कर सकता नही। पुरुष स्त्रीका अथवा स्त्री पुरुषके देहका स्मरण न करे तब तक काम आता नही। देह-दृष्टि रखनेसे काम आता है। शरीर सुन्दर है—इस कल्पनासे ही कामका जन्म होता है।

काम जानामि ते मूलं संकल्पं तेन मे न भविष्यति।

हनुमानजीने रामचन्द्रजीसे कहा—'शरीरका लक्षण मैं ध्यानमे नहीं रखता। मैं शरीरका ध्यान करता नही। श्रीसीताजीका ऐसा कोई लक्षण बताएँ, जिसे मैं याद रख सकूँ।'

तब प्रभुने हनुमानजीसे कहा—'वे जहाँ होंगी वहाँ मेरा ध्यान करती होंगी, मेरा नाम-जप करती होंगी। हनुमान! सीताजी जहाँ विराजती होंगी, उस घरकी दीवालोंमें-से भी 'श्रीराम, श्रीराम, श्रीराम'की ध्वनि निकलती होगी। वे मेरे वियोगमें मेरे नामका सतत जप करती हैं और मेरा ध्यान करती है। वे यदि जंगलमें हों तो उस वृक्षमें-से 'श्रीराम-श्रीराम-श्रीराम' ऐसी ध्वनि निकलेगी। वही सीताजी हैं, ऐसा जानना। जहाँ पंचमहाभूत राम-नामका जप करे, वही समझना कि सीताजी है।'

हनुमानजीने सीताजीको अशोक-वनमें इन्हीं लक्षणोसे पहचाना है। श्रीसीताजीका रामजीमें ऐसा प्रेम है, श्रीसीताजीकी ऐसी निष्ठा है, ऐसी पतिपरायणता है। श्रीसीताजीका पत्नी-धर्म अलौकिक है।

लोकापवादके कारण जब रामचन्द्रजीने सीताजीके त्याग करनेका निश्चय किया तब सीताजीको वनमें छोड़ आनेके लिए उन्होने लक्ष्मणजीको आज्ञा दी। लक्ष्मणजी सीताजीको रथमे बैठाकर वनमें ले जाते है। वनमे सीताजी रथमे-से उतरती है। सीताजीका साष्टाङ्ग वन्दन करते हुए लक्ष्मणजीका धैर्य रहा नही। लक्ष्मणजी महान् वीर है परन्तु माताजीका वन्दन करते-करते तो बालकोकी तरह रोने लगे। माँको आश्चर्य हुआ। उन्होंने लक्ष्मणजीसे पूछा कि—तुम क्यो रोते हो? तब लक्ष्मणजीने सारी कथा सुनायी और कहा—'प्रभुने इस रीतिसे लीला करनेकी मुझको आज्ञा दी है।' माताजी यह सुनकर स्तब्ध रह गयी, अतिशय व्याकुल हो गयी, परन्तु धीरज रखकर उन्होने लक्ष्मणसे कहा—'लक्ष्मण! प्रभुने जो कुछ किया है वह ठीक ही किया है।'

पतिर्हि देवता नार्याः पतिर्बन्धुः पतिर्गुरुः।
प्राणैरपि प्रियं तस्माद्भर्तुः कार्यं विशेषतः॥

मेरे पतिदेव जो कुछ करते है, वह योग्य ही करते हैं। पतिकी आज्ञाका पालन करना, यह मेरा धर्म है परन्तु मुझे दुःख यह है कि कोई ऋषि मुझे पूछेगा कि तुम्हारे

पतिने तुम्हारा त्याग क्यों किया, तो मैं क्या उत्तर दूंगी ? लक्ष्मण ! पतिके त्याग दिये जाने-के बाद अब मुझे जीवनका क्या करना है ? परन्तु मुझे आत्महत्या नहीं करनी, कारण कि मेरे पेटमें मेरे पतिदेवका चैतन्य है, सूर्यवंशका बीज है। लक्ष्मण ! मेरा जीवन दुःख सहन करनेके लिए ही है।

मामिकेयं तनुर्नूनं सृष्टा दुःखाय लक्ष्मण ।

मेरी चिन्ता न करो। इसे सत्य मानो ; लक्ष्मण ! मेरे ऊपर उनका कितना प्रेम है यह मैं जानती हूँ। मेरा त्याग किया है इसका मुझे बहुत दुःख नहीं है। मुझे चिंता तो इस बातकी होती है कि अब उनकी सेवा कौन करेगा ? ये किसी स्त्रीसे अटकते नहीं, आँख, ऊँची करके कभी किसी स्त्रीको सामने देखते नहीं। इनकी सेवाकी क्या कहूँ ? लक्ष्मण ! आज तक मैंने किसीसे नहीं कहा, तुमसे ही कहती हूँ कि रात्रिके समय इनके चरणकी मैं सेवा करती हूँ तभी इनको निद्रा आती है। अब उनको किस प्रकार निद्रा आवेगी ? लक्ष्मण ! तुम्हारे बड़े भाईकी चरणोंकी सेवा मैं तुमको सौंपती हूँ। उनकी सेवा करना।

रामजी भले ही त्याग करें परन्तु सीताजीके मनमें रामजीके प्रति तनिक भी कुभाव नहीं। इस प्रकारका प्रेम है। पतिके लिए सीताजीका अनन्य प्रेम है।

जगत-जननी श्रीसीताजी

श्रीसीता माता प्रेमकी मूर्त्ति है और दयाकी समुद्र हैं। रामायणके अरण्यकाण्डमें जयन्तका प्रसंग आता है। जयन्तने अपराध श्रीसीता मांका ही किया परन्तु माताजीको उसपर दया आई। सन्त ऐसा मानते हैं कि जयन्तका अपराध अक्षम्य है, क्षमा करने लायक नही। रामजी जयन्तको मारनेके लिए तैयार हुए परन्तु सीताजीको दया आयी। माताजी उसको क्षमा कर देती हैं, इतना ही नही, रामजीसे भी विनती करती है कि इसे क्षमा करो।

जग-जननीने प्रभु सम्मुख कर करवाया अघ-ताप विनाश।

रामायणमें दो-तीन प्रसङ्ग ऐसे आते है कि जिनमें श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रकी अपेक्षा श्रीसीताजीका चरित्र अति दिव्य लगता है। वाल्मीकिजीने युद्ध-काण्डमें श्रीसीताजीकी एक कथा वर्णन की है।

रावणके साथ युद्ध पूरा हुआ। रामजीने रावणका वध कर दिया है। हनुमानजीको अशोक वनमे जाकर श्रीसीताजीको ले आनेकी आज्ञा हुई। हनुमानजी दौड़ते-दौड़ते अशोक वनमें आए। वहाँ शीशमके वृक्षके तले श्रीसीता माँ रामजीका ध्यान धरे हुए बैठी हैं। फूलसे श्रीराम-नाम लिखा हुआ है। माताजीने दृष्टि श्रीराम-नाममें स्थित की हुई है। वे किसीपर दृष्टिपात करती नही। श्रीहनुमानजीने आकर श्रीसीता माँको साष्टाङ्ग वन्दन किया और कहा—'माँ! तुम्हारे आशीर्वादसे अपनी जीत हुई। प्रभुने रावणका वध किया। श्रीराम-लक्ष्मण आनन्दमे विराजे है। माँ! तुम्हारा यह दास आज तुमको श्रीरामके दर्शन करावेगा। तुम अब शीघ्र पधारो।'

हनुमानजी रामचन्द्रजीके दर्शन करायेंगे—यह सुनकर श्रीसीताजीको अत्यन्त आनन्द हुआ। आँखें भावभीनी हो गयी। श्रीसीताजीने प्रसन्न होकर हनुमानजीको अनेक आशीर्वाद दिये, अनेक वरदान दिये—'हनुमान! सब सौम्य सद्‌गुणोंका तुम्हारे अन्दर निवास हो। आज मैं तुमको क्या दूं? मेरा आशीर्वाद है कि मेरे हनुमानको काल भी नही मार सकेगा, मेरे हनुमानके आगे काल हाथ जोड़कर खड़ा रहेगा, काल सेवक बनकर रहेगा।'

काल प्रत्येककी छातीके ऊपर पैर रखता है। काल एक-एकको मारता है परंतु हनुमानजीके आगे काल हाथ जोडकर खडा रहता है। श्रीहनुमानजी महाराज आज भी इस लोकमे विराजते है।

श्रीसीताजी कहती है—'मेरे हनुमानको काल मार सकता नहीं। हनुमान ! मेरा आशीर्वाद है कि तू चिरंजीवी हो। साधु-महात्मा और ज्ञानी पुरुष तुझे सद्गुणी मानेंगे और तेरी पूजा करेंगे। जगतमें तेरी कीर्त्ति खूब बढ़ेगी, तेरी बहुत पूजा होगी।

हनुमानजी सन्तोंके सद्गुरु हैं। ज्ञानियोंमें अग्रणी है—

अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि ॥

हनुमानजीकी पूजा सर्वत्र होती है। अरे ! रामजीकी पूजा अधिक होती है या हनुमानजीकी ? एक छोटा-सा भी ग्राम हो, वहाँ कदाचित् रामजीका मन्दिर नहीं होगा परन्तु हनुमानजीकी एक छोटी-सी देहरी अवश्य होगी।

श्रीसीता माँकी प्रसन्नताका पार नही। माताजी कहती हैं—'मेरा हनुमान जहाँ होगा वहाँ अष्टमहासिद्धियाँ इनकी सेवामें हाजिर रहेंगी।'

अष्ट सिद्धि नव निधि के दाता। अस बर दीन्ह जानकी माता ॥

हनुमानजी जिस समय श्रीसीतारामकी सेवामें होते है, उस समय बालक-जैसे होते हैं। जो बालक जैसा है, वही सेवा कर सकता है। सेवामें मान, विघ्न करता है। बड़े-बड़े महात्मा भी पाण्डित्य छोड़कर, बालकके समान बनकर, परमात्माकी सेवा करते हैं। सेवामें ज्ञानका अभिमान, प्रमाद उत्पन्न कराता है। हनुमानजी बालकके समान है। वे सीताजीसे कहते है—'माताजी ! तुमने तो बहुत कुछ दिया है, वह ठीक है, परन्तु मैं आज अपनी इच्छासे माँगता हूँ। आज तो मेरा माँगनेका खास हक है। माँ ! मैं माँगता हूँ, वह आज आपको देना ही पड़ेगा।'

माताजीने कहा—'बेटा ! मैंने तुझे देनेमें क्या बाकी रखा है ? तू अमर हो जा। जगतमें तेरी जय-जयकार हो।'

हनुमानजीने कहा—'माँ ! यह सब तो ठीक है, मुझको जो चाहिए वह दो', माताजीने कहा—'तब तुम माँगो। बेटा ! तुम माँगोगे वही दूंगी।'

हनुमानजीने हाथ जोड़कर कहा—'माँ ! रामजीका सन्देश लेकर लङ्कामें जब मैं पहली बार आया था, तब मैंने अपनी आँखोंसे देखा था कि ये राक्षसियाँ मेरी माँको बहुत त्रास देती थीं। ये बहुत खराब बोलती थीं, तुमको बहुत डराती थीं, बहुत खिझाती थी। माँ ! यह सब मैंने आँखोंसे देखा है। रामजीने राक्षसोंको मारा है परन्तु लङ्कामे ये राक्षसियाँ अभी बाकी हैं। इन राक्षसियोंको देखकर मुझे बहुत क्रोध आता है। इनको मारनेकी मेरी बहुत इच्छा है। आप आज्ञा दो तो मैं एक-एक राक्षसीको पीस दूँ। मेरी माँको जिन राक्षसियोंने त्रास दिया है उनमें-से एक-एकको खूब दण्ड दूँ।'

हनुमानजी महाराज तो राक्षसियोंको मारनेके लिए तैयार हो गये परन्तु सीताजीने मना किया। कहा--'बेटा! यह तू क्या माँगता है? मेरा पुत्र होकर तू ऐसी माँग करता है? वैरका बदला वैरसे लेना योग्य नही। वैरका बदला प्रेम है।'

श्रीसीताजीने हनुमानजीको वहाँ उपदेश दिया है।

अयं व्याघ्र समीपे तु पुराणो धर्मसंहितः।
ऋक्षेण गीतः श्लोकोऽस्ति तं निबोध प्लवंगम॥

'हे हनुमान! पूर्वमें एक रीछ और बाघका प्राचीन और धर्मयुक्त श्लोक कहा गया है। उसकी कथा सुन।'

श्रीसीता माँने हनुमानजीको कथा सुनाई। जंगलमे एक पारधीके पीछे व्याघ्र पड़ गया। पारधी घबड़ाया। वह एक वृक्षके ऊपर चढ़ गया। बाघको वृक्षके ऊपर चढ़ना आता नही, इसलिए वह वृक्षके नीचे बैठ गया। उस वृक्षके ऊपर एक रीछ बैठा था। बाघको बहुत भूख लगी थी। उस बाघने निश्चय किया कि इन दोनोमें-से कोई नीचे आवे, तभी उसे मारकर खा जाऊँगा। बाघ तो पेड़के नीचे बैठा रहा परन्तु न तो पारधी नीचे उतरा, न रीछ ही नीचे आया। सायङ्काल हुआ, अन्धेरा हो गया, रात्रि होनेको आयी। बाघको बहुत भूख लगी थी, इसलिए उसने रीछसे पशु-भाषामे कहा कि यह मनुष्य तेरा और मेरा शत्रु है। यह एक दिन तुमको भी मारेगा और मुझको भी मारेगा। यह वृक्षके ऊपर बैठा है। तू इसको धक्का मारकर नीचे फेंक दे और मैं इसे मारकर खा जाऊँ। हम दोनोंके शत्रुका नाश हो जायेगा।

रीछने कहा—नही, यह मेरा धर्म नही। हम दोनो एक ही वृक्षके आधारपर स्थित हैं। परमात्माकी धरतीमें सभीको रहना चाहिए। सबका आधार, सबका घर तो एक ही है। यह मेरा भाई है। मैं इसको धक्का नही मारूँगा।

मध्य रात्रिका समय हुआ। रीछकी आंख मिच गयीं और उसको नीद आ गयी। बाघने पारधीसे कहा—'मैं बहुत भूखा हूँ, तुझे खानेके लिए मैं यही बैठा हूँ। तू इस रीछको धक्का मारकर नीचे फेंक दे जिससे मैं मारकर इसको खा जाऊँ और फिर यहांसे चला जाऊँ। तू बच जाएगा।

पारधी कृतघ्नी निकला। जिस रीछने उसका रक्षण किया था, उसके साथ धोखा किया और मध्य रात्रिके समय सोते हुए रीछको उसने धक्का मार दिया परन्तु परमात्मा जिसकी रक्षा करता है, उसे कोई मार नही सकता। रीछ गिरा परन्तु गिरते-गिरते वृक्षकी डाल उसके हाथमे आ गई और उसके सहारे वापस वह वृक्षके ऊपर जाकर बैठ गया।

बाघने रीछसे कहा—देखा ? यह मनुष्य कितना दुष्ट है, कृतघ्नी है। जिसकी रक्षा तूने की, उसने तेरे साथ कैसा वैर किया। तुझे मारनेको तैयार हो गया। अब तू इसको धक्का मार।

परन्तु रीछने कहा—मानव भले ही अपने धर्मको छोड़े परन्तु मैं अपने धर्मको नही छोडूंगा।

न परः पापमादत्ते परेषां पापकर्मणाम्।
समयो रक्षितव्यस्तु सन्तश्चारित्रभूषणाः॥

पापाचरण करनेवाले पापियोंका अपकार सन्त पुरुष सम्मुख देखते नही। सज्जन पुरुषोंको स्वयके शील-सदाचारका रक्षण करना चाहिए। सत्पुरुषोंका भूषण सदाचार ही है।

सीताजीने हनुमानजीसे कहा—बेटा ! बदला जो प्रेमसे लेते है वे सन्त है, वैर-की शान्ति वैरस नही, प्रेमसे होती है। अपकारका बदला उपकारसे और अपमानका बदला मानसे दे, वही सन्त है। ये राक्षसियाँ तो रावणकी आज्ञामे थीं, रावणके कहनेसे मुझे कष्ट देती थी। इसमें इनका तो कोई दोष नही। यह दुःख मेरे कर्मोका फल है। मैंने लक्ष्मणजी-का अपमान किया, उसका यह फल है। एक साधारण पशु भी स्वधर्मका पालन करता है। वह वैरके बदले प्रेम देता है।

इसलिए बेटा ! तू इन राक्षसियोंको मारना नही। मुझे इन राक्षसियोपर दया आती है। मैं तो ऐसा विचार करती हूँ कि अब मुझे अयोध्या जाना है, इतने अधिक दिन मैं इन राक्षसियोंके साथ रही हूँ। ये राक्षसियाँ जो कोई वरदान माँगे वह मुझको इन्हें देना है। बेटा ! मैंने तो निश्चय किया है कि मै इन राक्षसियोंको सुखी करके ही यहाँसे जाऊँ। ये राक्षसियाँ बहुत दुःखी हैं। तू किसी भी राक्षसीको मारना नही।

वाल्मीकिजीने रामायणमें लिखा है कि श्रीराम जब राक्षसोके साथ युद्ध करते हैं तब निष्ठुर हो जाते है। श्रीराम जब राक्षसोंको मारते है तब दयाको दूर कर देते है। राक्षसोंका संहार करते समय इनके मनमे एक ही बात होती है—'ये राक्षस अनर्थ करते हैं। मुझे इनका विनाश करना है।' रामजीको राक्षसोंपर दया नही आती परन्तु सीताजी-को राक्षसियोंपर दया आती है। राक्षसियोने माताजीको अतिशय त्रास दिया था। रामायणमें यह सब पढ़नेमे हमको भी बहुत दुःख होता है, फिर भी सीताजीके हृदयमे राक्षसियोंके प्रति दया है। रामचन्द्रजीको किसी समय क्रोध आया है परन्तु सीताजीको कभी भी क्रोध आया नही। किसीके भी लिए सीताजीके मनमे कुभाव नही, सबके लिए दया-भाव है।

राक्षसियोको मारनेकी सीताजीने मनाही की तो हनुमानजीने सीता माँका जय-जयकार किया। सीता माँको साष्टाङ्ग वन्दन करके हनुमानजीने कहा—ऐसी दया तो मैंने रामजीमें भी देखी नही। श्रीराम दयालु है, यह बात सत्य है परन्तु ऐसी दया मैंने जगतमें कही देखी नही। जगज्जननी ! आपमे ही यह दया मैंने देखी। माँ ! तुम जगन्माता हो, इसीलिए तुमको सबपर दया आती है।

श्रीसीताजी दयाकी, प्रेमकी मूर्त्ति है। उनका वर्णन कौन कर सकता है? उनको तो सबपर दया आती है। वे जगतकी माँ हैं।

कमलेय जगन्माता लीलामानुषविग्रहा।

रामजीकी माँ तो कौशल्या हो सकती हैं परन्तु सीताजीकी माँ कौन हो सकती है? श्रीसीताजीकी कोई माँ नही। इनका कोई पिता भी नही! ये सबकी माँ हैं, सर्वेश्वरी है, सर्वश्रेष्ठ हैं।

राघवत्वेऽभवत्सीता रुक्मिणी कृष्णजन्मनि।

× × ×

विष्णोर्देहानुरूपां वै करोत्येषाऽऽत्मनस्तनुम्॥

जगज्जननीकी माँ कौन हो सकती है? उनकी माँ कोई हो सकती नहीं। श्रीसीताजीका जन्म दिव्य है, लय दिव्य है। श्रीसीता माँ धरतीसे बाहर प्रकटीं और धरतीमे ही लीन हो गयी। वाल्मीकिजीने उपसंहार अतिदिव्य किया है। उत्तरकाण्डमें कथा आती है। श्रीसीताजीका प्रयाण अतिमङ्गलमय है, अतिदिव्य है।

(१५)

श्रीसीतारामजीका नित्य संयोग

वाल्मीकि रामायणमें वर्णन आता है कि रामजीने अन्तिम यज्ञ नैमिषारण्यमें किया। अयोध्याके पास यह नैमिषारण्य है। नैमिषारण्यकी यात्रा जिन वैष्णवोंने की होगी उनको विदित होगा कि वहाँ एक जानकी कुण्ड है। वहांके साधु ऐसा बतलाते है कि श्रीसीता माता इसी धरतीमें समायी है और उनके स्मारक-स्वरूप इस कुण्डका नाम जानकी कुण्ड है। माताजी यहीं लीन हुई हैं।

श्रीरामचन्द्रजीके यज्ञका निमन्त्रण वाल्मीकिजीको भी गया।

वाल्मीकि ऋषिकी बहुत इच्छा थी कि किसी भी प्रकारसे रामजी मान जा और सीताजीको घरमें रखें। श्रीसीतारामजी सुवर्ण-सिंहासनपर एक साथ विराजें और मै दर्शन करूँ। मैं रामजीको समझाऊँगा, रामजीको उलाहना दूंगा। बहुत दिन हो गये। अब मुझे यह-रहस्य सभामें प्रकट करना है।

एक दिन दरबार भरा हुआ था। उस दरबारमें वाल्मीकिने भाषण दिया—

बहु वर्ष सहस्राणि तपश्चर्या मया कृता।

× × ×

मनसा कर्मणा वाचा भूतपूर्वं न किल्बिषम्॥

साठ हजार वर्ष तक मैंने तपश्चर्या की है। मन, वाणी अथवा कर्मसे मैंने कोई पाप नहीं किया। एक दिन भी मैंने झूठ नहीं बोला। मैं प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ कि सीताजी महान् पतिव्रता हैं। सीताजी अति पवित्र, शुद्ध एवं निर्दोष हैं।

आज ऋषिने सभामें प्रकट किया कि श्रीसीताजी मेरे आश्रममें हैं। रामराज्यमें प्रजा बहुत सुखी है। जितना महान् सुख रामराज्यमें तुमको मिलता है, उतना स्वर्गके देवताओंको भी नहीं मिलता परन्तु लोगोंको धिक्कार है कि ऐसे श्रीरामजीके सुखका तनिक भी विचार नहीं करते। जिन रामजीके राज्यमें इतना महान् सुख तुमको मिला है, उन रामजीकी क्या स्थिति है? अकेले श्रीराम राजमहलमें रहते है, अकेली सीताजी मेरे आश्रममें हैं। यह तुम लोगोसे कैसे सहन किया जा रहा है? तुम्हारी सेवा श्रीरामचन्द्रजीने की है वैसी किसी राजाने अपनी प्रजाकी सेवा नहीं की। तुम्हारी आराधनाके लिए ही रामजीने निर्दोष सीताजीका भी त्याग किया।

आज मैं प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ कि सीताजी महान् पतिव्रता न हों तो मेरी साठ हजारकी वर्षकी तपस्या व्यर्थ हो जाय। श्रीसीताजी महान् पतिव्रता न हों तो मैं नरकमें पड़ूँ, मेरी दुर्गति हो।

श्रीसीताजीका स्मरण हुआ और ऋषि वाल्मीकिका हृदय द्रवीभूत हो गया। उन ऋषिने श्रीसीताजीका बहुत बखान किया और अयोध्याकी प्रजाको बहुत उलाहना दिया। वे आवेशमें आकर बोलने लगे—

अयोध्याके लोग कैसे हैं मुझे खबर नहीं पड़ती। लोगोंको लज्जा भी नहीं आती। ये लोग मनुष्य हैं या राक्षस हैं ? कोई विचार ही नहीं करता। तुम लोग रामजीको क्यों नहीं कहते कि माताजीको जल्दी घरमें पधराओ, नहीं तो हम अन्न-जल छोड़कर प्राण त्याग करते हैं।

आज तो बोलते-बोलते ऋषिने रामजीको भी उलाहना दिया, रामजीको भी बहुत सुनायी। इन्होंने रामजीसे कहा—तुम्हारा अन्य सभी कुछ ठीक है परन्तु तुमने श्रीसीताजीका त्याग किया है यह बहुत बुरा किया है।

लोकापवादकलुषीकृतचेतसा या त्यक्ता त्वया प्रियतमा विदितापि शुद्धा ॥

मुझको यह सहन नहीं होता। मेरी बहुत भावना है कि श्रीसीताजीके सुवर्ण-सिंहासनपर आप विराजो और मैं दर्शन करूँ। मुझे दक्षिणामें और कुछ भी नहीं माँगना, केवल इतना ही माँगना है। वे मेरी कन्या महान् पतिव्रता हैं। ऋषि बहुत आवेशमें बोलने लगे। उस समय रामजी सिंहासनसे उठकर दौड़ते हुए गये, वाल्मीकिजीके चरण पकड़े और ऋषिके चरणोंमें माथा नवाया। कहा—मैं जानता हूँ कि वे महान् पतिव्रता हैं, निर्दोष है परन्तु गुरुजी ! मैं क्या करूँ। मेरा दोष नहीं। अयोध्याके लोग चाहे जैसा बोलते हैं। कितनों ही के मनमें शङ्का है, लंकामें उन्होंने अग्निमें प्रवेश किया था, परन्तु अयोध्याकी प्रजाको विश्वास नहीं आता।

सेयं लोकभयाद् ब्रह्मन्नपापापि सती पुरा।
सीता मया परित्यक्ता भवांस्तन्क्षन्तुमर्हति ॥

मेरे चरित्रके विषयमें लोगोंको शंका होती है। प्रजाको शुद्ध चरित्रका आदर्श बतानेके लिये मेरी इच्छा न होते हुए भी मैंने त्याग किया है। सीताजीकी पवित्रताका मुझे तो विश्वास है परन्तु अयोध्याके लोगोको विश्वास होना चाहिए। मेरी बहुत इच्छा है कि एक बार सीताजी दरबारमे पधारें और अयोध्याकी प्रजाको विश्वास हो सके, ऐसा कोई उपाय बतावें। उसके पश्चात् मैं सीताजीको घरमे लाऊँ।

वाल्मीकिजी आश्रममें आते हैं और सीताजीको समझाते है—बेटी ! आज रामजीके साथ बहुत बातें हुई और प्रभुने तो ऐसा कहा है कि मेरी बहुत इच्छा है कि एक बार वे दरबारमें आवें। बेटी ! तुम जाओगी तो मैं तुम्हारे साथ रहूँगा।

ऋषि सीताजीको समझाते है। सीताजी बहुत व्याकुल हुईं। उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर कहा—पतिदेवकी आज्ञाका पालन करना मेरा धर्म है। प्रभुने मेरा त्याग किया, यह योग्य था और आज मुझे दरबारमें बुलाते है, यह भी योग्य है। ये जो कुछ भी करते हैं वह सब ही योग्य है। उनकी इच्छा है तो मैं दरबारमें आऊँगी। वाल्मीकिजी रामचन्द्र-के पास आए और उन्होंने कहा कि महाराज ! श्रीसीताजी दरबारमें पधारेंगी। इसके लिए दिन निश्चित हो गया।

नियत दिनपर भारी दरबार भरा हुआ है। देवता और ऋषि दरबारमें आये हुए हैं। अयोध्याकी प्रजा दौड़ रही है। सभीको सीताजीका प्रभाव देखनेकी इच्छा है।

वाल्मीकिजी सीताजीको दरबारमें लेकर आते है। श्रीसीता माँ, वाल्मीकिके पीछे-पीछे चल रहीं है। नजर धरतीपर हैं। श्रीसीता माँ किसीपर दृष्टि डालती नही। माँने दोनों जोड़ हाथ रखे हैं, वे जगत्‌को वन्दन कर रही हैं।

माँने काषाय वस्त्र पहन रखे है। सौभाग्य-अलंकारके अलावा दूसरा कोई शृङ्गार नही है। श्रीरामके वियोगमें सीताजीने अनाजका सेवन किया नहीं है। इससे माँका श्रीअङ्ग अतिशय दुर्बल दीख पड़ता है। लव-कुश पीछे-पीछे चल रहे है।

अयोध्याका प्रजा सीताजीका दर्शन करती है। श्रीसीता माँका दर्शन करते-करते सब रोने लग गये। श्रीसीता माँका जय-जयकार होने लगा।

सिंहासनपर श्रीरामचन्द्रजी विराजे हुए है। श्रीसीताजी उनका वन्दन करती हैं। उसके पश्चात् सीता माँका सुन्दर भाषण हुआ। धरतीपर नजर रखकर माँ बोली—

यथाऽहं राघवादन्यं मनसापि न चिन्तये।
तथा मे माधवी देवि विवरं दातुमर्हति॥
मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं समर्चये।
तथा मे माधवी देवि विवरं दातुमर्हति॥
यथैतत् सत्यमुक्तं मे वेद्मि रामात् परं न च।
तथा मे माधवी देवि विवरं दातुमर्हति॥

श्रीरामचन्द्रजीके बिना किसी पुरुषका मैंने स्मरण भी किया न हो, प्रभुके द्वारा त्याग किये जानेपर भी मेरे मनमें उनके प्रति कोई कुभाव न आया हो, पतिव्रता-धर्मका मैंने

बराबर पालन किया हो, आचरण, वाणी और विचारसे सदा-सर्वदा श्रीरामजीका ही मैंने चिन्तन किया हो, यह सब जो मैंने कहा है, वह सत्य हो तो हे धरती माँ ! अब तो मुझे मार्ग दो। मुझे अब इस जगतमे रहना नहीं है।

सीता माँके मुखसे ज्यों ही ये शब्द निकले, वहीपर एकाएक धड़ाका हुआ। धरती फट गयी। शेपनागके फणके ऊपर सुवर्णका सिंहासन बाहर आया। श्रीभूदेवीने श्रीसीता माँको उठाकर सिंहासनपर पधराया और कहा—यह जगत अब तुम्हारे रहने योग्य नही। लोगोंको सम्मान देना आता ही नही। सिंहासनपर ज्यो ही श्रीसीताजी विराजीं, लव-कुश बहुत घबड़ाकर दौड़ते गये। हमारी माँ कहाँ जाती हैं ? सात-आठ वर्षके बालक है। माँने बलैयाँ ली और कहा—बेटा ! राजा राम तुम्हारे पिता हैं। तुम अब अपने पिताकी सेवा करना। तुम्हारी माँ जाती हैं।

सब देखते ही रह गये। एक क्षणमे सिंहासनके साथ श्रीसीताजी अदृश्य हो गयी धरतीमे लीन हो गयी। पीछे तो अयोध्याके लोग बहुत विलाप करते हैं। श्रीराम आनन्द-रूप हैं परन्तु सीताजीके वियोगमें उन्होने भी विलाप किया है।

श्रीसीताजीका चरित्र अति दिव्य है, उनकी प्रत्येक लीला दिव्य है। श्रीसीताजी-का जन्म दिव्य, श्रीसीताजीका जीवन दिव्य और श्रीसीताजीकी शेष लीला भी दिव्य है। श्रीसीताजीके समान महान् पतिव्रता स्त्री इस जगतमें कोई हुई नही, भविष्यमे होगी भी नही।

सर्वलक्षणसम्पन्ना नारीणामुत्तमा वधूः।

श्रीसीतारामजीकी लीला अति दिव्य है। श्रीसीतारामजी मानव-समाजको धर्म-का शिक्षण देनेके लिए आये है। स्वधर्मका पालन करे, उसकी ही भक्ति भगवानको सुहाती है। भक्ति भी प्रेमकी मर्यादामे रहकर करनी चाहिए। भक्ति धर्मानुकूल न हो, अधर्मयुक्त हो, तो वह भक्ति, भक्ति नही भ्रम है। जिसका जो कर्त्तव्य भगवानने निश्चित किया है, उसका वह बराबर पालन करे। स्वयका धर्म जो छोडता है, उसकी भक्ति सफल नही होती। ब्राह्मण सन्ध्या छोडे और प्रभुकी सेवा करने जाय तो भगवान उसकी सेवाको स्वीकार नही करते। घरमे पतिदेव बीमार हो और पत्नीको मन्दिर जानेके लिए मनाही करनेपर भी पत्नी दर्शन करने जाय तो भगवान उसे सम्मुख देखते नहीं। भक्ति भी धर्मकी प्रत्येक मर्यादा पालकर ही करनी चाहिये। धर्मके विरुद्ध की गयी भक्ति ईश्वरको सहन नही होती। श्रीसीतारामजीने अपने चरित्रके आचरणसे जगतको ज्ञान दिया है।

श्रीरामचन्द्रजीका और सीताजीका तो क्या वियोग होना था—

द्वौ च नित्यं द्विधा रूपं तत्वतो नित्यमेकता।
राममन्त्रे स्थिता सीता सीतामन्त्रे रघूत्तमः॥

× × ×

गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।
बंदउँ सीताराम पद जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न॥

श्रीसीतारामजी सुवर्ण-सिंहासनपर सर्वकालमे विराजे हुए हैं। ये अविनाशी है। ये तो नित्य दम्पति हैं। इनका तो नित्य संयोग है। इनका वियोग तो कभी होता ही नहीं। वैष्णवजन सतत श्रीसीतारामजीका दर्शन करते है।

वाम भाग शोभति अनुकूला।
आदिशक्ति छवि निधि जग मूला॥

× × ×

श्रीराम राम धरणीधर राम राम।
श्रीराम राम करुणाकर राम राम॥
श्रीराम राम मनुजाकृति राम राम।
श्रीराम राम कमलापति राम राम॥

※ श्रीजानकीवल्लभो विजयते ※

चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम् ।
एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम् ॥

(१६)

श्रीराम-नाम

भगवान् शङ्कर रामायणके प्रधान आचार्य है । रामचरित्रका वर्णन सौ करोड़ श्लोकोमे श्रीशिवजीने किया है । **शतकोटि प्रविस्तरम् ।** रामायणके सौ करोड़ श्लोक है । उसको संक्षेपमें कौन कर सकता है ?

राम-कथा सागरके समान है ।

हरि अनंत हरिकथा अनंता ।

शिवजीने कहा है—'मैं श्रीरामजीकी कथा करता हूँ, सब दिन सतत राम-नाम जपता हूँ परन्तु श्रीरामजी कैसे हैं, वह मैं जानता नहीं ।' शिवजीकी यह विनम्रता है । जो जानते हैं—'हम कुछ जानते नहीं', इस प्रकार समझकर जप करते है, वे ही कुछ जानते है ।

भगवान शङ्कर सतत राम-नामका जप करते है । ॐकार में जो शक्ति है, वही शक्ति राम-नाममें है । राम-नाम सब वेदोंका सार है ।

एक बार महादेव बाबाके दरबारमें देवता आये, ऋषि आये और राक्षस भी आये । महादेव बाबाका दरबार सबके लिए सब समय खुला है । जब भी जाओ, दर्शन होते हैं ।

रात्रिके बारह बजे तुम रामजीके दर्शन करने जाओ तो रामजी दर्शन देते नहीं । ये तो राजाधिराज हैं । शयन करते हैं परन्तु रात्रि बारह बजे कोई शङ्कर दादाके दर्शन करने जाय तो दर्शन कर सकता है । शङ्कर दादाका दरबार बन्द होता नही, इनका दर-वाजा बन्द होता नही ।

ये तो कहते हैं कि 'रात्रि बारह बजे तो क्या, तुमको रात्रि दो बजे आना हो तो आओ' मैं तो बैठा हुआ हूँ । जब आना हो तब आओ और जिसको आना हो वह आओ । सबके लिए शिवजीका दरबार खुला है ।

रामजीके यहाँ हरेकको प्रवेश मिलता नही । रामजीके दरबारमें तो उसीको प्रवेश मिलता है जो रामजीकी मर्यादाका पालन करता हो, रामजी जैसी मातृ-पितृ-भक्ति रखता हो, रामजी जैसा संयम-सदाचारका पालन करता हो । रामजीके द्वारपर हनुमान खड़े रहते हैं । उनकी आज्ञाके बिना कोई अन्दर प्रवेश कर नही सकता ।

राम दुआरे तुम रखवारे। होत न आज्ञा बिनु पैसारे

रामजीके दरबारमे प्रवेश माँगनेवालेसे हनुमानजी पूछते है—'तुम मेरे रामजी जैसा बन्धु-प्रेम रखते हो ? सयम रखते हो ? मेरे रामजीको मर्यादाका पालन करते हो ? परस्त्रीको माताके समान देखते हो। रामजीकी मर्यादा पालन करे, उसीको दरबारमे प्रवेश करनेका अधिकार मिलता है। हनुमानजी सबको अन्दर जाने देते नही।

श्रीकृष्णके दरबारकी कथा अलग है। कन्हैया कहते है कि मेरे यहाँ आना है तो नाकमें बाली पहननी पड़ेगी। साडी भी पहननी पड़ेगी। मेरे दरबारमें आना हो तो गोपी बनकर आओ।

शिवजीका ही एक दरबार ऐसा है कि जो चाहें वहाँ जा सकता है। भगवान शकर तो आशुतोष है। सरलतासे ही रीझ जाते है। शिवजीके दरबारमें हरेकको प्रवेश मिलता है। वहाँ देवता आते है, ऋषि आते हैं, दैत्य आते है और भूत-पिशाच भी आते हैं। तुम मथुरा तो गये होगे। मथुरामें भूतेश्वर महादेवका मन्दिर है। वहाँके ब्राह्मण ऐसा कहते है कि वहाँ सारे दिन तो देवता-ऋषि पूजा करते है परन्तु रात्रि ग्यारह-बारह बजे पीछे वहाँ भूत आते है और शिवजीकी आराधना करते है। भगवान शङ्कर तो सबके स्वामी है। जीव-मात्रके ऊपर इनकी कृपा-दृष्टि है। शिवजीका दरबार सबके लिए खुला न होता तो बेचारे भूत-पिशाच कहाँ जाते ?

शिवजीके दरबारमें देवता और ऋषि रामायण माँगने आये। वहाँ राक्षस भी आये और उन्होंने कहा—'महाराज ! हमको रामायण-पाठ करना है, सो आप हमको रामायण दो।'

राक्षस भी रामायणका पाठ करते है परन्तु आजकलके मनुष्य रामायणका पाठ करते नही। कितने ही लोग तो उपन्यास-शृङ्गारकी कथा बहुत पढ़ते है और मनको बिगाड़ते हैं। जीवनको बिगाड़ते हैं। जब तुमको फुरसत मिले, तब रामायणका पाठ करो तुम्हारा पाप भस्म होगा। श्रीहनुमानजी महाराज तुम्हारे ऊपर कृपा करेंगे।

राक्षसोंको भी श्रीराम अच्छे लगते है। रामजीका वर्णन देवता और ऋषि ही करते है, ऐसा नहीं है—राक्षस भी उनकी प्रशंसा करते है। रावण भी श्रीरामजीका बखान करता है, यह प्रसङ्ग पहिले आ चुका है। राक्षसोंको भी रामायण रुचिकर है। वे भी रामायणका पाठ करते हैं। सब मिलकर भगवान नीलकण्ठके पास आये और कहा कि महाराज ! हमको रामायण दो।

रामायणके श्लोक है, सौ करोड और लेनेवाले हैं तीन। देवता, दैत्य और ऋषि। शिवजीने श्लोकोंका समान बँटवारा किया तो हरेकके भागमे तैतीस करोड़, तैतीस लाख,

तेंतीस हजार, तीन सौ तेंतीस श्लोक आये। कुल निन्यानवे करोड़, निन्यानबे लाख, निन्यानबे हजार नौ सौ निन्यानवे श्लोक वितरित हुए। उन सौ करोडमें-से एक श्लोक बाकी बचा।

यह जो एक श्लोक बचा हुआ था, उसको भी तीनो माँगने लगे। देवताओ ने कहा—हमें दो। ऋषियोंने कहा, हमे दो और राक्षसोने कहा, हमें दो। एक श्लोकके लिए तीनो झगड़ने लगे।

शंकर दादाको झगड़ा जरा भी पसन्द नही। मन्दिरमें कभी कलह करना नही। मन्दिरमे जोरसे बोलना नही। प्रभुके दरबारमें तो पशु-पक्षी भी वैरको भूल जाते है और प्रेमसे साथ बैठते हैं। मालिकको झगडा पसन्द नही। कितने ही लोग मन्दिरमे जाकर अपना पक्ष ऊँचा करते है। मन्दिरमे सबको प्रेमसे देखो, सबके साथ प्रेमसे बोलो। कोई बहुत जोरसे बोलता है तो लालाको बुरा लगता है कि यह यहाँ मारा-मारी करने आया है क्या ? कन्हैया तो बहुत कोमल है।

शंकर भगवान-के दरबारमे तुम दर्शन करोगे तो ध्यानमें आवेगा कि शत्रु होते हुए भी जीव एक ही जगह एकत्रित है। शत्रु होते हुए भी वैरको विसार रखा है। शिवजीके दरबारमें गणपति महाराज है और उनका वाहन है मूषक। शिवजीके गलेमे सर्प है। सर्प और मूषकका जन्म-सिद्ध वैर होता है। सर्प मूषकको देखते ही दौड पडता है और चूहेको मार डालता है परन्तु शिव-मन्दिरमे तो इन्होंने वैर भुला रखा है, प्रेमसे सब साथ बैठे है। भगवान शकरके वाहन है नन्दीश्वर और माता पार्वतीजीके वाहन है सिंह। आदिशक्ति जगदम्बा सिंहवाहिनी है। माताजीको सिंह बहुत प्रिय है। सिंह हिंसा तो बहुत करता है परन्तु सिंहमें एक बहुत बडा सद्गुण है। सिंह वर्षमे एक ही बार काम-सुख भोगता है, बाकी तीन सौ उनसठ दिवस यह सयम रखता है। सिंह सयमकी मूर्त्ति है और इसीलिए आदिशक्ति जगदम्बाने सिंहको पसन्द किया है। माताजीके मन्दिरमें सिंहकी स्थापना होती है।

देवी भागवतमे आदिशक्ति जगदम्बाके इक्यावन सिद्धपीठोकी कथा आती है। (देखो परिशिष्ट १)—स्वर-व्यञ्जन मिलनेमे इक्यावन होते है। इनको प्रकट करनेकी जो शक्ति है, वह इक्यावन पीठोंमे विराजती है। आदिशक्ति जगदम्बा जहाँ विराजती है, वहाँ सिंहकी स्थापना होती है। काशीमें विशालाक्षी है। काञ्चीमे कामाक्षी हैं। मदुरामे मीनाक्षी हैं। प्रत्येक पीठमे सिंहकी स्थापना है। माताजीका वाहन सिंह और शिवजी भगवानका वाहन नन्दी। सिंह और बैलका जन्मसिद्ध वैर है परन्तु शिवजीके धाममे ये वैर भूल जाते हैं।

नारायणके दरबारमें भी शत्रु एकत्रित हुए है। नारायणके वाहन हैं गरुड़ और शय्या है शेष। गरुड़ और सर्पका वैर जन्मसिद्ध है। पुराणोंमें कथा आती है। सर्पोंने गरुडजीकी माताको बहुत त्रास दिया था परन्तु नारायणके सम्मुख आनेके बाद वे वैर भूल जाते हैं।

मन्दिरमें वैर-विषको भूल जाओ। आँखमें प्रेम रखकर सबको प्रेमसे देखो।

शिवजीको आश्चर्य हुआ कि एक श्लोकके पीछे तुम लोग झगड़ा करते हो? मेरे धाममें आनेके पश्चात् तो पशु-पक्षी भी वैर नहीं करते, झगड़ा नहीं करते, फिर तुम क्यों करते हो?

शिवजीने उलाहना दिया, फिर भी तीनों जनोंने एक श्लोकके लिए माँग चालू रखी

तब शंकर बाबाने कहा—तुम लोग ऐसा दुराग्रह न करो। इस श्लोकके अक्षर मैं तुमको समान भागसे बाँट देता हूँ।

यह श्लोक अनुष्टुप् छन्दमें था। अनुष्टुप् छन्दके अक्षर होते हैं बत्तीस। शिवजी महाराजने बँटवारा किया। तब हरेकको दस-दस अक्षर वितरित हुए। तीस अक्षर बँटे तथा दो बाकी बचे। इन दो अक्षरोंके लिये भी तीनों झगड़ने लगे कि हमको दो।

शंकर दादाने अन्तमें कहा—'ये दो अक्षर अब मुझे किसीको देने नही। ये दो अक्षर मैं अपने कण्ठमें ही रखूँगा।'

ये दो अक्षर ही 'रा''म' नाम है। सब वेदोका सार है। अति सरल है, बहुत मधुर हैं। राम-नाममें अमृतसे भी अधिक मिठास है। यह तो जो राम-नामामृतका पान करता है उसीको खबर पड़ती है।

शिवजीने कहा, यह राम-नाम मैं किसीको दूंगा नही। मैं कण्ठमें धारण करूंगा।

शिवजीके कण्ठमे राम-नाम है। इसलिए शिवजी विष पी गये। वह विष भी अमृत बन गया।

नाम प्रभाव जान शिव नीको। कालकूट फलु दीन्ह अमी को॥

जो संसारमें आता है, उसको जहर तो पीना ही पड़ता है। तुम्हारा पुत्र तुम्हारा कहा न करे और सामने उत्तर दे तो तुमको जहर जैसा लगेगा। प्रतिकूल परिस्थिति ही जहर है। तुम्हारी कोई निन्दा करे तो तुमको जहर जैसा लगेगा। संसारमें निन्दा, व्याधि, अपमान इत्यादि जहर है। जब-जब जीवनमें दुख आवे, जहर पीनेका प्रसङ्ग आवे तब-

तब राम-नामामृतका पान करना, राम-नामका जप करना, जिससे जहर भी अमृत बन जावेगा।

भगवान शंकर तो हर समय राम-नाम कण्ठमें रखते है—'राम राम राम' करते हैं। तुम राम-राम नहीं परन्तु श्रीराम श्रीराम इस तरह श्रीके साथ राम-नाम लेना। शंकर दादाको तो लक्ष्मीकी जरूरत नहीं है इसलिए श्रीको छोड़कर अकेले राम-नामको पकड़ रखा है परन्तु हमें तो लक्ष्मीकी बहुत जरूरत रहती है, इसलिये हमें केवल राम-राम न करके श्रीराम-श्रीराम रटना चाहिये। श्री शब्दका अर्थ होता है लक्ष्मी, श्री शब्द-का अर्थ होता है, श्रीसीताजी।

राम-नाममें दिव्य शक्ति है। राम-नामकी महिमा कौन वर्णन कर सकता है।

श्रीराम-नाम जपतां सबु कष्ट जाय।
श्रीराम-नाम भजतां सुख सर्व थाय॥

परमात्माके नामके साथ प्रीति करोगे तो धीरे-धीरे जीवन सुधरेगा। मनको शान्ति मिलेगी, तुम्हारा कल्याण होगा। परमात्माके नाममें प्रीति न हो, तबतक संसारकी आसक्ति छूटती नही, संसारका मोह छूटता नही। प्रभुके नाममें सतत रचे-पचे रहो। नाम जहाँ है, वहाँ किसी-न-किसी दिवस स्वरूप भी प्रकट होगा। संसारमें रहकर मनकी पवित्रता जाननी हो तो परमात्माके नामके साथ प्रीति करो।

(१७)

श्रीराम-श्रीश्याम

राम-नामका संतत जप करो और रामजीकी सेवा करो। रामजीकी सेवा अर्थात् रामजीकी मर्यादाका पालन। रामजीकी मर्यादाका पालन करोगे तो तुम्हारे मनका रावण अर्थात् काम मरेगा। तुम्हारे मनका काम मरेगा तो श्रीकृष्ण परमात्मा आवेंगे। श्रीरामके पीछे ही श्रीकृष्ण आते हैं। भागवतमें भी श्रीरामचरितके कहनेके उपरान्त ही श्रीकृष्ण-चरितका वर्णन किया है। रामचन्द्रजीका वर्णन रामायणमें विस्तारसे किया हुआ होनेपर भी श्रीमद्भागवतमें भी उसका संक्षेपमें वर्णन किया गया है। कारण यह है कि जो श्रीराम-चन्द्रजीकी मर्यादाका पालन करता है, उसको ही कन्हैया मिलता है। रावणको अर्थात् कामवासनाको मारे, वही श्रीकृष्ण-लीलाका दर्शन कर सकता है।

वासना दो प्रकार की है, स्थूल और सूक्ष्म। इन्द्रियोमे रहनेवाली वासना स्थूल है और मन-बुद्धिमें रहनेवाली वासना सूक्ष्म है। सन्तोका धर्म जीवनमें उतारनेसे स्थूल वासनाका तो नाश हो जाता है परन्तु मन-बुद्धिमें रहनेवाली सूक्ष्म वासना नष्ट नहीं हो पाती। सूक्ष्म वासनाका नाश तो श्रीराम-श्रीकृष्ण करते हैं।

श्रीरामचन्द्रजी सूर्यवंशमें प्रकट हुए है और श्रीकृष्ण, चन्द्र वंशमें प्रकट हुए है। चन्द्र मनके मालिक हैं और सूर्य बुद्धिके। मन-बुद्धिमें रहनेवाली सूक्ष्म वासनाका तभी विनाश हो पाता है, जब श्रीराम-कृष्णकी आराधना करनेमें आवे। वासनाका पूर्ण क्षय हुए बिना मोहका नाश होता नही और मोहका नाश हुए विना मुक्ति मिलती नहीं। मनमें-से सूक्ष्म मलका नाश हो, तभी मन मरता है। मन मरे, मन श्रीराम-कृष्णमें मिल जाय तो मुक्ति मिलती है। आत्मा तो नित्यमुक्त है। मुक्त तो मनको करना है। बन्धन मनको बाँधते है। मनके बन्धनका आरोप अज्ञानसे आत्मा अपने ऊपर ले लेता है। यह अज्ञानसे ऐसा समझता है कि मुझे किसीने वाँधा है। श्रीरामचन्द्रजीने वालिकी पत्नी ताराको ज्ञान देते हुए कहा है।

> **मन एव हि संसारो बन्धश्चैव मनः शुभे।**
> **आत्मा मनः समानत्वमेत्य तद्गतबन्धभाक्॥**

तुलसीदास महाराजने इसपर सुन्दर दृष्टान्त दिया है—

> **ईस्वर अंस जीव अबिनाशी। चेतन अमल सहज सुख रासी।**
> **सो माया बस भयउ गुसाईं। बँध्यो कीर मरकट की नाईं॥**

जीव ईश्वरका अंश है। आत्मा आनन्दरूप है, सुख-दु.ख मनको होते है। मनकी कोई स्वतन्त्र सत्ता नही। यह आत्माकी सत्ता लेकर काम करता है। आत्मा तो साक्षीरूप है तथापि मायाके कारण, अज्ञानके कारणसे आत्मा सुख-दु.खका आरोप स्वयंमें करता है।

तुलसीदासजीने तोता और वन्दरका दृष्टान्त दिया है। शिकारी लोग तोता और बन्दरको पकड़नेकी युक्ति करते है। तोतेको पकड़नेके लिए वह जमीनमे थोड़े अन्तरसे दो खूंटियां लगाते है और जमीनसे थोड़ी ऊँचाईपर दोनों खूंटियोके बीच तार बांधते हैं। तारको कई एक पोली नलीमे पिरो देते है। पीछे उसके आगे अनाजके थोड़े दाने बिखेर देते हैं। तोता वह दाना खाने आता है। स्वाभाविक रीतिसे वह ऊँचाईके ऊपर बैठनेके लिए तारमे पिरोई हुई नलीके ऊपर बैठ जाता है। इससे नली उसके भारसे तुरत फिर जाती है और तोता उलट जाता है, उल्टा लटकने लग जाता है। तोता स्वयके पंजेसे नलीको पकड़े रखता है परन्तु अज्ञानमे वह ऐसा समझता है कि नलीने इसे पकड़ रखा है। पकड इसकी स्वय की ही है परन्तु यह छोड़ सकता नही और अन्तमे शिकारी इसको पकड़ लेता है।

बन्दरका भी शिकार इसी तरह होता है। शिकारी सँकरे मुँहकी हाँड़ी जमीनमें गाड़ देता है। हांड़ीका मुँह खुला रखता है। हाँड़ीमे थोड़ा चना रखता है। वानर जल्दीमे चनेके लिए दोनो हाथ हाँड़ीमे डाल देता है और चनेकी मुट्ठी भर लेता है। मुट्ठीमें चना आनेके कारण मुट्ठी फूल जाती है। इससे वह हाथ बाहर निकाल सकता नही। वानरको ऐसा लगता है कि अन्दरसे इसका हाथ किसीने पकड़ रखा है। वानरको किसीने पकडा नही। वानरको चना अतिप्रिय है। इसलिए चना अपनी मुट्ठीमे-से छोड़ देनेकी उसकी इच्छा होती नही। चना हाथमे-से छोड़ दे तो तुरन्त उसके हाथ बाहर निकल सकते हैं। अपने हाथके कारण ही वन्धनमे पड़ता है, उसपर भी ऐसा मानता है कि किसीने इसको पकड रखा है।

उसी प्रकार ही यह संसार, हांड़ी है। विषय-वासना ही चने है। मन बन्दर जैसा है। मनने विषय-वासनाओंको पकड़ रखा है, उससे वह बन्धनमे पड़ जाता है। मानवका बन्धन इस वानरके बन्धन जैसा है। मानवको किसने बांधा है? वासनाओके अधीन होकर स्वयने स्वयंको बाँध रखा है।

ईश्वरके साथ एक होना है परन्तु मन-बुद्धिमे रहनेवाली सूक्ष्म वासना प्रभु-मिलनमें विघ्न करती है। मानवका लक्ष्य परमात्मासे मिलना है, ईश्वरके साथ एक रूप होना है। उसके लिए बुद्धिमें-से भी वासनाओंका विनाश करना है। बुद्धिमें वासनाका

थोड़ा भी अंश रह जाय तो बुद्धि निर्व्यसन होती नही, शुद्ध होती नही, स्थिर होती नही। बुद्धिको निर्व्यसन करनेके लिये, शुद्ध करनेके लिए, स्थिर करनेके लिए मनके मालिक चन्द्रकी और बुद्धिके मालिक सूर्यकी आराधना करनी आवश्यक है।

श्रीराम न आवें तबतक श्रीकृष्ण आते नहीं। भागवतमें मुख्य कथा श्रीकृष्णकी होनेपर भी पहले श्रीरामको पधराया है और पीछे श्रीकृष्ण पधारे है। मनुष्य रामजीकी मर्यादाका पालन करे तो ही श्रीकृष्ण-लीलाका रहस्य समझ सकता है। मनुष्यको थोड़ी सम्पत्ति मिले, थोड़ा अधिकार मिले, उसीसे वह मर्यादाको भूल जाता है। रामजीकी मर्यादाका पालन ही रामजीकी उत्तम सेवा है। रामजीको पधराना हो तो रामजीकी मर्यादाका पालन करो। रामजी न पधारें तबतक श्रीकृष्ण आते नही। जो वेदकी, शास्त्रोंकी मर्यादाका बराबर पालन करते हैं, उन्हींका मन शुद्ध होता है। उन्हीको पीछे प्रेम-भक्तिका रङ्ग लगता है। इसलिए मर्यादा-पुरुषोत्तमकी लीला पहले वर्णन की गयी है। पुष्टि-पुरुषोत्तम पीछे आये है। उदाहरणके तौरपर मास्टरजी सरल अक्षर पहले पढाते है और जटिल अक्षर पीछे पढ़ाते हैं।

श्रीराम मर्यादा-रूप हैं और श्रीकृष्ण प्रेम-रूप है। मर्यादा और प्रेम जीवनमें उतारोगे तो सुखी रहोगे। श्रीराम और श्रीकृष्ण एक ही है। दोनों साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तमके अवतार हैं। श्रीमद्भागवतमें भगवानके चौबीस अवतारोंकी कथा आती है। महापुरुष कहते हैं कि अल्पकालके लिए थोड़े जीवोंका उद्धार करनेके लिए जो अवतार होता है, वह अंशावतार है और अनन्तकालके लिए अनन्त जीवोंका कल्याण करनेके लिए जो अवतार होता है, वह पूर्णावतार है। भगवानके जितने अवतार हुए हैं वे सभी श्रेष्ठ हैं, कोई अवतार साधारण नहीं परन्तु श्रीराम और श्रीकृष्णके समान कोई हुआ नहीं। इनकी लीला अलौकिक है।

भक्तिमें दुराग्रह न रखो। श्रीराममें दो कला ओछी है, ऐसा मत मानो। दोनों अवतार परिपूर्ण है। रामावतारमें रामजीने सब कुछ किया—राक्षसोंको मारा, अनेक यज्ञ किये, प्रजाको अतिशय सुखी किया, अनेक जीवोंको तारा परन्तु रामजी राजाधिराज थे, इसलिए गायोंकी सेवा कर सके नही। रामजीके यहाँ अनेक सेवक थे, इसलिए गायोंकी पूजा, गायोंकी सेवा उन्होंने रामजीको करने दी नहीं। इसी कारणसे रामजी श्रीकृष्ण-स्वरूपमें गायोंकी सेवा करनेके लिए व्रजमें पधारे है। श्रीराम ही श्रीकृष्ण है। श्रीकृष्ण ही श्रीराम हैं।

आदिदेवोमहाबाहुर्हरिर्नारायणः प्रभुः।
साक्षाद् रामो रघुश्रेष्ठः शेषो लक्ष्मण उच्यत ॥

रामावतारमे शेषनारायणने छोटे भाई लक्ष्मणके रूपमें रामजीकी बहुत ही सेवा की है, रामजीके लिए अतिशय कष्ट उठाया है और इसलिए परमात्माने कृष्णावतारमें इनको बड़े भाई बलराम बनाया है।

लक्ष्मणजीनी सेवा नोर्षी, सूर्य चन्द्रनी साखे,
बलदेवजीने मोटा बनावी आज्ञा शिरपर राखे।

श्रीराम-लक्ष्मण ही श्रीकृष्ण-बलराम हैं।

श्रीमद्भागवतमें ब्रह्माजीने नारदजीसे कहा है कि—

अस्मत्प्रसाद सुमुखः कलया कलेश
इक्ष्वाकुवंश अवतीर्य गुरोर्निदेशे।
तिष्ठन् वनं सदयितानुज आविवेश
यस्मिन् विरुध्य दशकन्धर आर्तिमार्च्छत्॥

सब कलाओंके अधिष्ठाता ईश्वर जब अपने ऊपर कृपा करते हैं तब (लक्ष्मीजी, संकर्षण आदि) कलाओंके साथ इक्ष्वाकुवंशमें श्रीरामरूपसे अवतार धारण करते हैं। इस अवतारमें पिताकी आज्ञाका पालन करनेके लिए ये पत्नी और छोटे भाई लक्ष्मणके साथ वनमें वास करते हैं और रावण इनका विरोध करनेके कारण स्वयको पीड़ित कर लेता है।

इस श्लोकके भाष्यमें श्रीमहाप्रभुजीकी उक्ति है कि वैष्णव आचार्य श्रीराम और श्रीकृष्णमे भेद गिनते नही। इसीसे तो श्रीचैतन्य महाप्रभुजी जब दक्षिणकी यात्राको गये तब एक कीर्त्तन-धुन उन्होंने प्रचलित की थी जो आज भी वहाँ खूब गायी जाती है।

राम राघव राम राघव राम राघव पाहि माम्।
कृष्ण केशव कृष्ण केशव कृष्ण केशव रक्ष माम्॥

आदर्श जीवन किस प्रकार यापन किया जाय यह श्रीराम बताते हैं और पुष्टिका अर्थात् प्रेमका आनन्द, श्रीकृष्ण बताते हैं। रामजीकी लीलामें मर्यादा है। श्रीकृष्ण-लीलामें प्रेम भरा हुआ है। एक मर्यादापुरुषोत्तम हैं, दूसरे पुष्टि-पुरुषोत्तम हैं।

शास्त्रमें मुक्तिके दो प्रकार बताये हैं। क्रममुक्ति और सद्योमुक्ति। मर्यादापुरुषोत्तम रामजी जीवको समयसे छोड़ते हैं—मुक्त करते हैं। पुष्टि-पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण क्रम-क्रमसे मुक्त करनेके स्थानपर असमयमें ही—जीव लायक न हुआ हो तो भी जीवको मुक्ति दे देते हैं। यह पुष्टि-मार्ग है, कृपा-मार्ग है। श्रीरामजीका नाम श्रेष्ठ है और श्रीकृष्णकी लीला श्रेष्ठ है।

श्रीराम-श्रीकृष्ण एक ही है। दोनोंकी लीला पृथक है। एक दशरथ महाराजके राजमहलमें अवतरित हुए है, दूसरे कंसके कारागारमे। एक दिनके बारह बजे प्रगट हुए हैं, दूसरे रात्रिके बारह बजे।

मनुष्य दिनमें दो बार सुध-बुध खोता है। दिनके बारह बजे भूखसे और रात्रिको निवृत्तिमें काम-सुखकी यादसे। ये दोनों समय पवित्र करते है। दिनमे रामजीको याद करो और रात्रिमें श्रीकृष्णको, तो ये दोनो समय पवित्र हो जायेंगे। मर्यादापुरुषोत्तम रामजीकी मर्यादाका पालन करो तो पुष्टि-पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण पुष्टिपूर्वक कृपा करेंगे।

श्रीकृष्णमें समस्त सद्‌गुण होनेपर भी श्रीकृष्णका चरित्र ऐसा दिव्य है कि जल्दीसे बुद्धि स्वीकार नही करती। श्रीकृष्णका जीवन-रहस्य समझना कठिन है। श्रीरामकी लीलाका रहस्य समझना बहुत कठिन नहीं। श्रीरामजीकी मर्यादाका पालन करना—यह बहुत कठिन है। तुम किसी भी देवताकी सेवा करो, किसी भी सम्प्रदायकी शिक्षा ग्रहण करो परन्तु तुमको रामजीकी सेवा तो करनी ही पड़ेगी। श्रीरामजीके दर्शन बिना श्रीरामजीकी सेवा बिना, जीवन शुद्ध होगा ही नही। भगवान श्रीकृष्णकी भक्ति करे उसे भी श्रीरामजीकी सेवा करनी ही पड़ेगी। कोई वैष्णव ऐसा मानता हो कि मैं रामजीकी सेवा नहीं करूँ, रामजीको नहीं मानूं, तो उसकी सेवा श्रीकृष्णको सहन होती नही। कोई शिवजीकी सेवा करता हो और रामजीको न माने तो उसकी सेवा शिवजीको सहन नही होती।

जगतमें जितने देवता हैं, सबको लीला अनुकरणीय नही। रामजीकी प्रत्येक लीला अनुकरणीय है।

शिवजीकी सभी लीला अनुकरणीय नहीं।

श्मशानेष्वाक्रीडा स्मरहर पिशाचाः सहचरा-
श्चिताभस्मालेपः स्रगपि नृकरोटिपरिकरः।
अमंगल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलम्
तथापि स्मर्तॄणां वरद परमं मंगलमसि॥

श्रीशिवजी महाराज तो श्रीअङ्गपर चिता-भस्म धारण करते हैं। चिता-भस्म शिव-स्पर्शसे पवित्र होती है। तुम उज्जैन गये होगे, उज्जेनमें महाकालेश्वर विराजते हैं। वहाँ श्मशानमें-से शिवजी महाराजके लिए भस्म आती है। वहाँ जो पूजा होती है, उसमें ऐसा नियम है कि शिवजीको अभिषेक करानेके पश्चात् सबसे पहले चिता-भस्म अर्पण करते हैं परन्तु हमसे ऐसा नही होगा। हम चिता-भस्म लगावें तो नहाना पड़ेगा। शंकर भगवान तो जहर भी पी गये। हमसे ऐसा हो सकेगा क्या ?

भगवान शङ्करके पास एक बार कामदेव गया था। शिवजीने आँख उठाकर देखा। कामदेव जलकर भस्म हो गया। शिवजीका कामदेव स्पर्श कर सकता नही। जो अमंगलरूप कामको मारता है उसका सब कुछ मगलमय है । शास्त्रमे कामको अमंगल कहा गया है।

शिवजीकी लीला दिव्य है। अपने जैसे साधारण मनुष्योसे उनका अनुकरण हो नही सकेगा। इसी प्रकार श्रीकृष्णकी प्रत्येक लीला अनुकरणीय नही है। श्रीकृष्ण जो करें सो अपनेसे होगा नही।

श्रीकृष्ण माखनकी चोरी करते है और हम करे तो ? करो तो उसके पीछे खबर पडे कि क्या होता है। श्रीकृष्णकी सभी लीला अटपटी है। श्रीकृष्ण माखनकी चोरी नहीं करते हैं। यह तो गोपियोका प्रेम ऐसा है कि वह परमात्माका आकर्षण करता है। गोपियोके घर माखन खानेकी परमात्माकी इच्छा होती है। श्रीकृष्ण जगतका आकर्षण करते है और श्रीकृष्णका आकर्षण गोपी-प्रेम करता है। श्रीकृष्णने चोरी की, ऐसा सन्तोंने कहा नही, श्रीकृष्ण तो मालिक ही हें। ये तो गोपियाँ, लालाको लाड़में ऐसा कहती थी कि कन्हैया माखन-चोर है। प्रेममे कोई गाली भी दे तो तनिक भी बुरा लगता नही। गोपी तो प्रेमकी मूर्त्ति हैं। गोपी भले ही लालाको माखन-चोर कहकर बुलावें परन्तु तुम किसी भी दिन माखन-चोर कहना नही। तुम लालाको माखन-चोर कहोगे तो लालाको सहन होगा नही। कन्हैया कहेगा, मैं चोर नही, तू चोर, तेरा बाप चोर और तेरा दादा भी चोर। घरमे किस प्रकार एकत्रित करके बङ्गला बनाया है उस सबको मैं जानता हूँ। मुझको सब खबर है। तू कैसा है, यह तो मैं जानता हूँ। चोर तो तू है। मैं तो मालिक हूँ।

अरे ! ताला तोड़कर ले जाय, क्या उसीको चोर कहते है ? आजकल तो कितने ही चोरीकी ऐसी चतुराई करते हैं कि किसीको खबर ही नही पडती। यहाँ भले ही खबर न पडे परन्तु ऊपर तो ठाकुरजीको सब खबर पड ही जाती है।

जगतमें जो कुछ भी है, उसके मालिक श्रीकृष्ण ही है। श्रीकृष्ण जो करे, वह तुमको करणीय नही। गोपी तो तन, मन, धन सर्वस्व श्रीकृष्णको अर्पण कर देती है। उन गोपियोके घर जाकर कन्हैया माखन आरोगे तो यह उनकी प्रेम-लीला है। उसके अनुकरण करनेकी मनाही है।

श्रीकृष्ण कालिय नागके ऊपर नाचते थे। अपनेको तो नागका नाम लेते ही घबराहट होती है। नाग अपराधीको ही पकडता है। इस जन्ममे अथवा पूर्व जन्ममे जिसने इसका अपमान किया है, उसीको यह डमता है। फिर भी अपनेको घबराहट होती है,

इसलिए—

कन्हैया तो कालिय नाग ऊपर थै थै नाचे छे।
कन्हैयो टचली आंगली ऊपर गोवर्धन धारण करे छे।
कन्हैयो पूतनाए आपेलुं झेर पी पचावी जाय छे॥

जहर पचानेके पीछे ही श्रीकृष्णका अथवा शिवजी महाराजका अनुकरण हो सकता है। अपनेमें यह शक्ति नहीं। हम जहर पीकर पचा सकते नहीं। हमारे लिए ऐसे चरित्र अनुकरणीय नहीं है।

श्रीकृष्णकी रासलीलाका श्रवण करो। सुनकर पीछे उसका मनन करो परन्तु उनका अनुकरण न करो। श्रीशुकदेवजी महाराज भागवतमें कहते हैं।

नैतत् समाचरेज्जातु मनसापि ह्यनीश्वरः।
विनश्यत्याचरन् मौढ्याद् यथा रुद्रोऽब्धिजं विषम्॥
ईश्वराणां वचः सत्यं तथैवाचरितं क्वचित्।
तेषां यत् स्ववचोयुक्तं बुद्धिमांस्तत् समाचरेत्॥

रासलीलाका अनुकरण नहीं करना है। रासलीलाका श्रवण करो, आँख बन्द करके रासलीलाका चिन्तन करो। रासलीलाका चिन्तन करनेसे काम-विकारका नाश होता है। शुद्ध जीवका ब्रह्मके साथ रमण, यही तो रास है। रासलीला अर्थात् जीव और ईश्वरका मिलन। रासलीला, यह कामलीला नहीं। रासलीलामें जिसे कामकी गन्ध आती है, उसकी बुद्धि बिगड़ी हुई है। श्रीकृष्णके सामने काम टिक ही नहीं सकता।

एक समय कामदेवको अभिमान हुआ कि मैं बड़ेसे बड़ा देव हूँ। बड़े-बड़े ऋषि मेरे अधीन हो जाते हैं। बड़े-बड़े देवता भी मेरे अधीन रहते हैं। उस अभिमानमें कामदेव श्रीकृष्णके पास गया और उनसे कहा—'मेरी और आपकी कुश्ती हो', संस्कृतमें कामका नाम है मार। समय आनेपर सभीको मारता है। कामदेवकी श्रीकृष्णके ऊपर शक्ति आजमानेकी इच्छा हुई।

श्रीकृष्णने कामदेवसे कहा—'शिवजीने तुमको जला दिया था, वह भूल गया।

कामदेवने कहा—शिवजीने मुझे जलाया, यह बात सच है परन्तु उसमें मेरी थोड़ी भूल थी। शिवजी समाधिमें बैठे थे। तेजोमय ब्रह्मका चिन्तन कर रहे थे। पूर्ण सावधान थे, उसी समयमें मैं उनको मारने गया। मैंने समयका विचार किया नहीं। इससे मेरी हार हो गयी और शिवजीने मुझे जलाकर भस्म कर दिया। समाधिमें बैठे-बैठे जलावे, इसमें विशेष आश्चर्य नहीं।

प्रभुने कहा—रामावतारमें भी तेरी हार हुई।

कामदेवने कहा—रामावतारमे तो आप खूब मर्यादामें रहते थे। किसी भी स्त्री-का स्पर्श करते नही थे। स्त्रीके सामने देखते भी नही थे। देखते तो मातृभावसे देखते थे। रामावतारमे खूब मर्यादा पालकर मेरा पराभव किया था। मर्यादामें रहकर साधारण जीव भी मेरा पराभव कर सकता है। गृहस्थाश्रमरूपी किलेमें रहकर आपने मुझे मारा है। रामावतारमे तो आप एकपत्नी-व्रत पालते थे। इसलिए आपने मुझे मारा। इसमें क्या आश्चर्य ?

श्रीकृष्णने कहा—तो अब तेरी क्या इच्छा है ?

कामदेवने कहा—रामावतारमें मर्यादामें रहकर आपने मुझे हराया, इसमें कोई खास बात नही। अब इस कृष्णावतारमें आप कोई मर्यादा न रखो। मर्यादा तो साधारण मनुष्यके लिए है, परमात्माके लिए होती नही। आपको मर्यादा पालनेकी क्या जरूरत है ? सब प्रकारकी मर्यादा छोड़कर शरद् पूर्णिमाकी रात्रिमे अनेक स्त्रियोके साथ वृन्दावनमें आप विहार करो और मैं आपको बाण मारूँ। तब भी आप निर्विकारी रहो तो आपकी जीत और कामाधीन बनो तो मेरी जीत। आप निर्विकारी रहो तो आप ईश्वर और मेरे अधीन बनो तो पीछे मैं ईश्वर।

रामावतारमें शरीरसे तो नही परन्तु मनसे भी किसी स्त्रीका स्पर्श किया नहीं। मनसे स्पर्श हो, यह भी पाप है। कृष्णावतारमें श्रीकृष्ण पुष्टि-पुरुषोत्तम हैं। कामने ऐसा माना कि 'श्रीकृष्णको हराना सरल है।' श्रीकृष्ण तो गोपियोके साथ, स्त्रियोके साथ मुक्त-रूपसे विहार करते हैं, इसलिए मैं उन्हें हरा सकूंगा।

श्रीकृष्णने कहा है—तेरी इच्छा है तो मैं ऐसा ही करूँगा।

स्त्रियोंसे दूर जङ्गलमे बैठकर पत्ता चबाकर संयम पाले, कामको मारे, इसमें आश्चर्य नही। प्रत्येक स्त्रीमे मातृभाव रखे और कामको मारे, इसमे भी कोई आश्चर्य नही परन्तु श्रीकृष्णने तो स्त्रियोके बीच रहकर कामको मारा। शरद् पूर्णिमाकी रात्रिमें गोपियोके साथ रासलीलामे रमण किया और कामके ऊपर विजय प्राप्त की। श्रीकृष्णका स्मरण करनेवालेको भी काम त्रास दे नही सकता तो श्रीकृष्ण स्वयंको तो वह क्या त्रास दे सकता है ? कामका पराभव हुआ। कामने धनुष-बाण फेंक दिया। रासलीला, यह कामके ऊपर विजय करनेकी लीला है। श्रीकृष्ण योगेश्वर हैं।

श्रीकृष्णकी लीला, अनुकरण करनेके लिए नही परन्तु उसका श्रवण करके, चिंतन करके, उनमें तन्मय होनेके लिए है। रामजीकी प्रत्येक लीला अनुकरणीय है। रामजीकी

अमुक लीला अनुकरणीय और अमुक लीला चिन्तनीय है, ऐसा नही। रामजीका समस्त आचरण अनुकरणीय है। रामजीकी प्रत्येक लीला अनुकरण करने योग्य है। आचरण हमेशा रामजीकी तरह रखो। श्रीकृष्ण परमात्मा है। श्रीकृष्ण कहें, वही करने योग्य है। वे करे, वह करना नही है। श्रीराम परमात्मा है। श्रीराम करे वह करना है। रामजी पूर्ण पुरुषोत्तम होनेपर भी मनुष्यको आदर्श बतलाते हैं। रामजीके सद्‌गुण जीवनमें उतारने हैं। रामजी सब सद्‌गुणोके भण्डार है।

रामजी प्रत्येक स्त्रीमें मातृभाव रखते थे। किसी स्त्रीको काम-भावसे देखते नही थे। रामजीका मातृ-प्रेम, पितृ-प्रेम, बन्धु-प्रेम, रामजीका एकपत्नी-व्रत, एकवचनी-प्रण, रामजीका संयम, रामजीका सदाचार, रामजीकी उदारता, रामजीकी निष्कामता आदि मानव-जीवनमें उतारने योग्य है। रामजीने ऐश्वर्य छिपाया है। मनुष्यों जैसा नाटक किया है। साधकका व्यवहार कैसा होना चाहिए, वह रामजीने बताया है। साधकका व्यवहार रामजी जैसा होना चाहिए। सिद्ध पुरुषका आचरण कदाचित् श्रीकृष्णका जैसा हो सके।

रामजीकी लीला सरल हैं। श्रीकृष्णकी सभी लीला गहन है। अटपटी हैं। रामजीकी बाल-लीला भी अति सरल है। इनकी बाल-लीलामें भी अतिशय मर्यादा है। रामजीने किसी दिन भी कौशल्या माँको छला नही। कन्हैयाने विचार किया कि रामावतारमें मर्यादाका बहुत पालन किया, इसलिए दुःखी हुआ। अबकी बार कृष्णावतारमें मर्यादाका पालन नही करूँगा। कन्हैया तो यशोदा माँको भी छलते है। बालकृष्ण मातासे कहते हैं कि माँ तुम मुझे छोड़कर कही जाना नहीं। तू घरका काम-काज छोड़कर मुझे खिलाया कर। पूरे दिन मुझे गोदीमें लेकर खिलाया कर। कदाचित् कभी यशोदा माँ कन्हैयाको छोड़कर घरका काम करने चली जायँ तो कन्हैया तूफान मचा डालते है। दही-माखनकी हाँड़ी-मटके फोड़ देते हैं और माँ सजा देने आये तो लाला हाथमे आवे ही नहीं।

श्रीराम तो अति सरल है, अति शान्त है। रामजीकी बाल-लीलामें अतिशय मर्यादा है। छोटे भाइयोके साथ खेलते है तो इस रीतिसे खेलते है कि स्वयंकी हार हो जाती है और लक्ष्मण-भरतजीकी जीत हो जाती है। ये तो बहुत सरल है। सोचते है कि भले ही मेरी हार हो जाय। बालकृष्ण जब खेलते है तो लालाकी किसी दिन भी हार होती नही। कन्हैया जहाँ जाते है, वहाँ उनकी जीत ही होती है।

रामजी माता-पिताकी आज्ञाके बिना किसीके भी घर जाते नही। कन्हैया कभी यशोदा मांकी आज्ञा लेने जाते नही।

अयोध्याके लोग आवे और रामललाको मनावे कि मेरी बहुत भावना है, तुम मेरे घर पधारो। तब रामचन्द्रजी कहते हैं—मैं स्वतन्त्र नही हूँ। मैं तो माता-पिताके अधीन हूँ। मैं माँकी आज्ञामे रहता हूँ। तुम मेरी माँसे कहो। माँ मुझे आज्ञा देगी तो मैं तुम्हारे घर आऊँगा।

लोग कौशल्याजीको मनाते हैं, प्रार्थना करते हैं कि माँ! मेरी बहुत इच्छा है कि रामजी मेरे घर पधारे। तुम रामजीको मेरे घर भेज दो माँ!

कौशल्याजी आज्ञा देती हैं तो रामजी जाते हैं परन्तु ये तो मर्यादापुरुषोत्तम है और राजाधिराज है। वे किसीके घर जाते हैं तो वहाँ शान्तिसे गद्दे-तकियेके सहारे बैठे ही रहते है। श्रीराम अति शांत है। कन्हैयाकी सभी लीला निराली हैं, बहुत गहन है। कन्हैया कभी किसीसे ऐसा कहते नही कि तुम मेरी माँसे कहो। ये आज्ञा देगी तो मैं तुम्हारे घर आऊँगा। कन्हैयाको तो किसीके आमन्त्रणकी जरूरत ही क्या थी? कन्हैया तो कहते है, मुझे कौन निमन्त्रण देगा? मैं तो घर-धनी हूँ। इसलिए मुझे तो सबको इकट्ठा करके ले जाना है। लाला आमन्त्रणकी बाट क्या कभी देखता है? कन्हैया तो बगैर बुलाये ही गोपियोके घर जाते है परन्तु लालाका ऐसा नियम था कि जिस घरका मालिक है, जिसने अपना सर्वस्व मनसे लालाको अर्पण कर दिया है, उसीके ही घर लाल जाता हैं। यह किसी अन्यके घर नही जाता, चाहे जिसके घर जाकर यह माखन नहीं खाता। लाला तो जहाँ प्रेम है, वही जाता है। श्रीकृष्णकी लीलामे अतिशय प्रेम है।

एक गोपीके घर लाला माखन खा रहे थे। उस समय गोपीने लालाको पकड़ लिया। तब कन्हैया बोले—तेरे धनीकी सौगन्ध खाकर कहता हूँ, अब फिर कभी भी तेरे घरमे नही आऊँगा।

गोपीने कहा—मेरे धनीकी सौगन्ध क्यों खाता है?

कन्हैयाने कहा—तेरे बापकी सौगन्ध, बस?

गोपी और ज्यादा खीझ जाती है और लालाको धमकाती है-परन्तु तू मेरे घर आया ही क्यों?

कन्हैयाने कहा—अरी सखी! तू रोज कथामे जाती है, फिर भी तू मेरा-तेरा छोड़ती नही—इस घरका मैं धनी हूँ, यह घर मेरा है।

गोपीको आनन्द हुआ कि मेरे घरको कन्हैया अपना घर मानता है। कन्हैया तो सबका मालिक है। सभी घर उसीके हैं। उसको किसीकी आज्ञा लेनेकी जरूरत नही।

गोपी कहती है—तूने माखन क्यों खाया?

लालाने कहा—माखन किसने खाया है ? इस माखनमे चीटी चढ़ गई थी, उसे निकालनेको हाथ डाला । इतनेमें ही तू टपक पड़ी ।

गोपी कहती है—परन्तु, लाला ! तेरे ओंठके ऊपर भी तो माखन चिपक रहा है ।

कन्हैयाने कहा—चीटी निकालता था, तभी ओठके ऊपर मक्खी बैठ गयी, उसको उड़ाने लगा तो माखन ओठपर लग गया होगा ।

कन्हैया जैसा बोलते है, ऐसा बोलना किसीको आता नही । कन्हैया जैसे चलते है, वैसा चलना भी किसीको आता नही । गोपीने तो पीछे लालाको घरमें खम्भके साथ डोरीसे बाँध दिया । कन्हैयाका श्रीअङ्ग बहुत ही कोमल है । गोपीने जब डोरी कसकर बाँधी तो लालाकी आँखमें पानी आ गया । गोपीको दया आयी, उसने लालासे पूछा—लाला ! तुझे कोई तकलीफ है क्या ?

लालाने गर्दन हिलाकर कहा—मुझे बहुत दुःख हो रहा है, डोरी जरा ढीली कर।

गोपीने विचार किया कि लालाको डोरीसे कसकर बाँधना ठीक नही । मेरे लालाको दुःख होगा । इसलिए गोपीने डोरी थोड़ी ढीली रखी और पीछे सखियोंको खबर देने गयी कि मैंने लालाको बाँधा है ।

तुम लालाको बाँधो परन्तु किसीसे कहना नहीं । तुम खूब भक्ति करो परन्तु उसे प्रकाशित मत करो । भक्ति प्रकाशित हो जायेगी तो भगवान सटक जायेंगे । भक्तिका प्रकाश होनेसे भक्ति बढ़ती नही, भक्तिमें आनन्द आता नहीं ।

बालकृष्ण सूक्ष्म शरीर करके डोरीमें-से बाहर निकल गये और गोपीको अंगूठा दिखाकर कहा, तुझे बाँधना ही कहाँ आता है ?

गोपी कहती है—तो मुझे बता, किस तरहसे बाँधना चाहिये ।

गोपीको तो लालाके साथ खेल करना है, लाला गोपीको बाँधते हैं ।

योगीजन मनसे श्रीकृष्णका स्पर्श करते है तो समाधि लग जाती है । यहाँ तो गोपीको प्रत्यक्ष श्रीकृष्णका स्पर्श हुआ है । गोपी लालाके दर्शनमे तल्लीन हो जाती है। गोपीका ब्रह्म-सम्बन्ध हो जाता है । लालाने गोपीको बाँध दिया ।

गोपी कहती है कि लाला छोड़! छोड़! लाला कहते है—मुझे बाँधना आता है, छोड़ना तो आता ही नहीं ।

यह जीव एक ऐसा है, जिसको छोड़ना आता है । चाहे जितना प्रगाढ़ सम्बन्ध हो परन्तु स्वार्थ सिद्ध होनेपर उसको भी छोड़ सकता है । परमात्मा एकबार बाँधनेके बाद छोड़ते नहीं ।

श्रीकृष्णकी लीला अटपटी है। लाला कृपा करे, उसे ही यह लीला समझ पड़ती है। श्रीकृष्ण-लीलामें विनोद है, प्रेम है. गूढ तत्त्व है। श्रीकृष्णकी वाणीका रहस्य समझना कठिन है। श्रीकृष्णको पहचानना कठिन है। श्रीरामको पहचानना सरल है परतु श्रीरामकी मर्यादाको जीवनमें उतारना कठिन है। मन-शुद्धि मर्यादाका पालन करनेसे होती है। धर्मकी मर्यादा छोड़ना नही।

श्रीराम बहुत शर्मीले है। कौशल्या माँ माखन-मिश्री देना भूल जायँ तो रामजी माँगते नही। बहुत मर्यादामे रहते है। अनेक बार ऐसा हुआ कि कौशल्याजी लक्ष्मीनारायण-की सेवामें ऐसी तन्मय हो जाती है कि रामजी कौशल्या मांका वन्दन करने आवे, पास बैठ जायें परन्तु माँ रामजीको माखन-मिश्री देना भूल जाती है परन्तु रामजी कभी भी माँगते नही।

कन्हैया तो यशोदा माँके पीछे पड़ जाते थे कि 'माँ ! माखन-मिश्री मुझे दो।' लालाकी सभी लीला विचित्र है। ये तो प्रेम-मूर्त्ति है। श्रीराम मर्यादापुरुषोत्तम हैं, माता-की भी मर्यादा रखते हैं।

श्रीराम और कृष्ण दोनोको माखन-मिश्री बहुत भाती है। दोनो माखन-मिश्री आरोगते हैं। श्रीबालकृष्णलाल तो माखन-मिश्री हाथमे ही रखते हैं। कन्हैया जगतको ज्ञान देते हैं कि 'तुम मिश्री जैसे मधुर बनो तो मैं तुमको हाथमें रखूँ।' जीवनमें मिठास संयमसे आती है, सबका मान रखनेसे आती है। सबको मान देनेसे और सब इन्द्रियोका संयम करनेसे जीवन मिश्री जैसा मधुर बनता है। जिसके जीवनमें कड़वाहट है, उसकी भक्ति भगवानको प्रिय लगती नही। जिसका जीवन मिश्री जैसा मधुर है, जिसका हृदय माखन जैसा कोमल है, वही परमात्माको प्यारा है। कन्हैया माखन-चोर अर्थात् मृदुल मनका चोर है। मृदुल मन, कोमल हृदय इनको प्रिय लगता है।

कितने ही भक्ति तो करते हैं परन्तु उनका हृदय पत्थर जैसा कठिन होता है। कितने ही लोग 'अ-परस' बहुत पालते हैं परन्तु समझते नही कि अपरस किस लिए है, अपरसका फल क्या है ? अरे, अपरस तो मनको शुद्ध करनेके लिए है, पवित्र करनेके लिये है। क्या किसीका तिरस्कार करनेके लिये अपरस है ? बहुत अपरस पालनेपर भी तुम्हारा मन बिगडा हुआ रहे, तुम्हारा हृदय पत्थर जैसा कठोर बने तो उस मर्यादाका क्या उपयोग है ? कितने ही लोग अपरस पालते हैं परन्तु कोई अटक जाय तो बहुत क्रोध करते हैं। उसका बहुत तिरस्कार करते हैं। ऐसा अपरस किस कामका ? अपरस तो क्रोधादि विकारों का विनाश करनेके लिए है। हृदयको कोमल बनानेके लिये अपरस है, मर्यादा है। हृदय पत्थर जैसा कठिन होता हो तो वह अपरस किसी कामका नही।

तुम हृदयको माखन जैसा कोमल बनाओ। तुम मिश्री जैसे मधुर बनो। तनिक भी कपट न करो। कर्कश वाणी न बोलो। सबको मान दो। किसी जीवका जरा भी अपमान न करो। कोई जीवको निम्न श्रेणीका मत मानो। जो किसी जीवको अपनेसे नीचा मानता है, उसका हृदय पत्थर जैसा कठिन हो जाता है। जीवमात्र ईश्वरका अंश है, परमात्माका स्वरूप है। सबमें भगवद्भाव रखकर व्यवहार करो। जिसका जीवन मिश्री जैसा मधुर नहीं, उसकी भक्ति भगवानको सहन नही होती। व्यवहारमें जबतक कपट है, दम्भ है, अभिमान है, वहाँ तक जीवनमें कड़वाहट रहेगी। परमात्मा अति मधुर हैं।

मधुराधिपतेरखिलं मधुरं।

जिसका सब कुछ ही मधुर है, उसीके हाथसे भगवान अङ्गीकार करते हैं।

श्रीराम-श्रीकृष्ण हृदयका शुद्ध प्रेम माँगते हैं। प्रेम देखनेपर परमात्मा दौड़े आते है। गोपियोंका प्रेम कन्हैयाको बिना आमन्त्रणके ही गोपियोंके घर ले जाता है।

सबसे ऊँची प्रेम सगाई।
दुर्योधन को मेवा त्यागो, साग विदुर घर खाई।
झूठे फल सबरी के खाये, बहु विधि प्रेम बढ़ाई॥

भगवानने दुर्योधनकी मेवाको अङ्गीकार नहीं किया, विदुरके घरकी भाजी आरोगी। बड़े-बड़े ऋषि-मुनियोंके आश्रममें न जाकर भगवान शबरीकी झोंपड़ीमें पधारे। मानवका जीवन पवित्र बनेगा तो भगवान बिना आमन्त्रणके उसके घर पधारेंगे। जिसका बङ्गला बड़ा हो, उसके यहाँ परमात्मा जल्दी जाता नही परन्तु जिसका मन बड़ा हो, उसके यहाँ ही परमात्मा पधारते हैं।

रामहिं केवल प्रेमु पिआरा। जानि लेहु जो जाननि हारा॥

श्रीरामजीका नाम भी सरल है और स्वरूप भी सरल है। रामावतारमें तो रामजी बहुत सरल थे परन्तु सरलताको लोगोंने मान नही दिया। जो बहुत सरल होता हैं, उसको भी लोग बहुत त्रास देते है। रामजीको बहुत सहन करना पड़ा था और इसी-लिये तो कृष्णावतारमें श्रीकृष्ण जन्मसे ही थोड़े बाँके बने। प्रभुने विचार किया, रामावतार-में मैं बहुत ही सरल था परन्तु लोगोने मान नही दिया। अतएव अबकी बार मैं जन्मसे ही बाँका रहूँगा।

रामजीका नाम भी सरल है। राम-नाममें एक भी जुड़वाँ अक्षर नही है। कृष्ण नाममें एक भी सरल अक्षर नही है, दोनो युग्माक्षर है। श्रीकृष्ण प्रकट हुए मथुराके कारागारमें, झूले गोकुलमें, खेले वृन्दावनमें, बड़े हुए मथुरामें और राज्य किया द्वारिकामें। इस प्रकार उनकी सभी लीला अटपटी हैं।

रामावतारमे तो ये अतिशय सरल हैं। रामजी खड़े रहते है तो भी सरलतासे। बालकृष्ण खड़े रहते है, कभी-कभी बाँके होकर। इसीलिए तो लालाका नाम पड़ा है बाकेबिहारीलाल !

श्रीबाँकेविहारीकी जय !

श्रीकृष्ण सरल भी तो है। कन्हैया बहुत भोले है, बहुत प्रेमी हैं। लालाके लिये कोई थोड़ा माखन-मिश्री ले जाय तो कन्हैया प्रेमसे आरोगते हैं कि मेरे लिये माखन लाया है। कन्हैया बहुत सरल है परन्तु ये जगतको बताते है कि मै सरलके साथ सरल हूँ परन्तु कोई बाँका होकर आवे तो मैं भी उसके साथ बाँका हो जाता हूँ।

श्रीराम तो सबके साथ सरल हैं। श्रीकृष्ण सरलके साथ सरल है, बाँकेके साथ बाँके हैं। श्रीराम तो रावणके साथ भी सरल हैं। श्रीराम सज्जन-दुर्जन सबके साथ सरल हैं। जीवका अपराध रामजी देखते नही। श्रीकृष्ण सज्जनके साथ सरल है, दुर्जनके साथ सरल नही हैं। सुदामाजी आँगनमे आये है, ऐसा सुनकर श्रीकृष्ण सिंहासनसे कूद पड़े और सामने गये, सुदामाजीको आलिंगन किया। परमात्मा श्रीकृष्ण सुदामाजीके चरण पखारते है और उनको गद्दीके ऊपर बैठाते है, स्वय नीचे बैठते हैं। सुदामाजी सच्चे ब्राह्मण है इसलिए श्रीकृष्ण उनके साथ अतिशय सरल है परन्तु श्रीकृष्ण महाभारतके युद्धमें द्रोणाचार्यके साथ सरल नही हैं, बाँके हैं। सुदामाजी ब्राह्मण है और द्रोणाचार्य भी ब्राह्मण है। द्रोणाचार्य वेद-शास्त्रोमें सम्पन्न ज्ञानी ब्राह्मण है।

अग्रतश्चतुरो वेदाः पृष्ठतस्सशरं धनुः।
इदं ब्राह्मणं इदं क्षात्रं शापादपि शरादपि ॥

द्रोणाचार्य साधारण ब्राह्मण नही है। चार वेद और छः शास्त्रोके ज्ञाता है। प्रभुने विचार किया कि बहुत ज्ञाता होनेसे क्या ? वे स्वरूपको भूले हुए हैं। बहुत ज्ञानवान होकर पाप करे तो ठाकुरजीको भी गुस्सा आता है। जिसने ज्ञान पचाया है, वह कभी कपट करता नही, किसीके साथ अन्याय नही करता। कपट करनेसे ही हृदय बाँका होता है। सच्चे ज्ञानीका लक्षण यह है कि उसका हृदय बहुत सरल होता है, कोमल होता है और उसका व्यवहार शुद्ध होता है। द्रोणाचार्य जानते थे कि युद्ध करना ब्राह्मणका धर्म नही। फिर भी वह युद्ध करते हैं। इनको अच्छी तरह खबर थी कि दुर्योधनने अन्याय किया है, फिर भी दुर्योधनकी सहायता करनेके लिए वे युद्ध करते हैं।

द्रोणाचार्यने इतना बड़ा अपराध किया। श्रीकृष्णने विचार किया कि इतना बड़ा ज्ञानवान है, ज्ञानी है। जानते हुए भी पाप करता है। **मैं भी समझकर कपट करूँगा।**

महाभारतके युद्धमें अश्वत्थामा नामके हाथीको मरवाकर श्रीकृष्णने इस बातकी चर्चा फैलायी कि द्रोणपुत्र अश्वत्थामा मारा गया है। द्रोणाचार्यको ऐसा लगा कि श्रीकृष्ण तो कदाचित् बुरा भी बोल सकते है। इनसे कौन कहने वाला है? चलो, युधिष्ठिरसे पूछूं, ये असत्य नही बोलते।

परन्तु श्रीकृष्णने तो धर्मराजसे पहले कह रखा था कि मैं जो कहूँ वही तुम कहना। सत्यकी व्याख्या समझाते हुए श्रीकृष्ण भगवानने धर्मराजसे कहा, सबमें सद्भाव रखते हुए सबका हित हो, ऐसा बोले उसीका नाम सत्य है। द्रोणाचार्य ज्ञानी ब्राह्मण होते हुए भी दुर्योधनरूपी अधर्मकी सहायता करते है। 'अश्वत्थामा मारा गया', सुनकर द्रोणाचार्य युद्ध छोड़ देंगे। युद्ध छोड़े, उसीमें उनका कल्याण है। इसलिए तुम मेरी बातका अनुमोदन करना। श्रीकृष्णके कहनेसे ही धर्मराजको **'नरो वा कुंजरो वा'** कहना पड़ा। धर्मराजके कहनेसे द्रोणाचार्यने शस्त्र छोड़े और उनका वध हुआ। श्रीकृष्ण कपट करके मारते हैं। श्रीकृष्ण ब्राह्मणकी पूजा भी करते है और कोई ब्राह्मण जब ज्ञानको भूलता है तो कपट करके उसे मारते भी है। श्रीकृष्णकी सभी लीलाएं दिव्य है। रामजीकी सभी लीलाएं बहुत सरल हैं। *रामजीकी जैसी सरलता कहीं भी देखनेको नहीं मिलेगी।* पिछली बार प्रसङ्ग आ चुका है। राम-रावण-युद्धमें रावण जिस समय बहुत थक गया, घायल हो गया, घबरा गया, उस समय श्रीरामचन्द्रजी उसे घर जाकर आराम करनेको कहते हैं। 'फिर आनेवाले कलको युद्ध करेंगे'—रामजी रावणसे ऐसा कहते हैं।

श्रीराम रावणके साथ सरल हैं परन्तु श्रीकृष्ण दुर्योधनके साथ सरल नही। रामचन्द्रजी कुटिलके साथ भी सरल व्यवहार करते हैं और श्रीकृष्ण सरलके साथ सरल और कुटिलके साथ कुटिल व्यवहार रखते हैं। तुम किसीको धोखा मत देना परन्तु व्यवहारमें सावधान रहना कि तुमको भी कोई धोखा न दे जाये।

श्रीराम और श्रीकृष्णके समान इस जगतमें हित करनेवाला और कोई नही। देवता, मनुष्य सबकी यह रीति है कि सब स्वार्थके लिए ही प्रीति करते हैं। श्रीराम-श्रीकृष्ण तो पूर्ण निष्काम है। बालिको मारकर किष्किन्धाका राज्य रामजीके चरणोंमे आया। राज्यका शासन करनेके लिए सुग्रीवने रामजीसे विनती की।

रामजीने मना किया और किष्किन्धाका राज्य सुग्रीवको सौप दिया। रावणको मारनेके पश्चात् लंकाका राज्य रामजीने विभीषणको सौंप दिया।

कंसको मारनेके बाद मथुराका राज्य मिला, वह श्रीकृष्णने लिया नहीं, उग्रसेनको सौंप दिया।

श्रीराम एवं श्रीकृष्ण जैसा उदार कोई हुआ नही। ये पूर्ण अनासक्त है। परमात्मा जीवके प्रति अतिशय उदार हैं। अतिशय दयालु है। जीवकी योग्यता न होते हुए भी ये जीवके ऊपर खूब अनुग्रह करते हैं।

श्रीरामकी उदारता और दीनवत्सलता बेजोड़ है।

> ऐसो को उदार जग माहीं।
> बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं ॥
> जो गति जोग बिराग जतन करि नहिं पावत मुनि ग्यानी।
> सो गति देत गीध सबरी कहुँ प्रभु न बहुत जिय जानी ॥

अरे, परमात्मा तो ऐसे उदार हैं, ऐसे दयालु है कि वैरभावसे भी भजनेवालेको मुक्ति दे देते हैं। रामने राक्षसोको सद्गति दी है। श्रीकृष्णने पूतना, शिशुपाल, दन्तवक्त्र इत्यादिको सद्गति दी है।

श्रीराम-श्रीकृष्ण दो नही—एक ही ब्रह्मके दो स्वरूप हैं, निराकार ब्रह्म है, एक ही परमात्माके दो भिन्न अवतार है।

> ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज, अकल अनीह अभेद।
> सो कि देह धरि होइ नर, जाहि न जानत वेद ॥
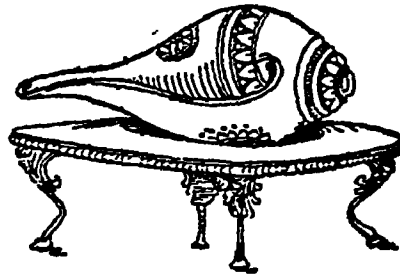
रामायणका सत्सङ्ग

श्रीरामके आनेके बाद श्रीकृष्ण आते है। तुमको रामजीके दर्शन करनेकी इच्छा हो तो तुम रामायणका सत्सङ्ग करो। जीव रामायणके सत्सङ्गसे सुधरता है। रामायणके सत्सङ्गमे जीवन दिव्य बनता है। रामायण सुननेसे मनुष्यको भूल दिखाई देती है। श्रीरामचरित्र मार्गदर्शक है। रामायणसे प्रत्येक मनुष्यको ज्ञान मिलता है। तुम्हारा मन कैसा है यह जाननेकी इच्छा हो तो रामायण पढ़ो। जिसका अधिक समय आलस और निद्रामें जाता है, वह कुम्भकर्ण है। परस्त्रीका काम-भावसे चिन्तन करता है वह रावण है। जो रुलाता है वह रावण है और परमानन्दमें रमण करता है, वह राम है। रामायण-का मनन करोगे तो तुम्हें अपना मन रामायणमें दिखाई देगा।

मनुष्यका स्वभाव है कि उसे दूसरेकी भूल जल्दी दिखाई देती है, परन्तु उसे स्वयंकी भूल दिखाई नहीं देती। कितने ही लोग ऐसा समझते हैं कि मुझसे कोई भूल होती ही नहीं। मैं जो समझता हूँ, बोलता हूँ, करता हूँ, यह सब ठीक ही होता है। स्वयंको निर्दोष समझे, इसके बराबर कोई पाप नहीं। जगतमें निर्दोष एक श्रीराम, श्रीकृष्ण हैं। श्रीराम, श्रीकृष्णके अतिरिक्त निर्दोष कोई नही।

जीवमात्र भूल करता है। पाप कौन करता नहीं? मानवमात्र पाप करता है। अनपढ़ पाप करता है और पढ़ा-लिखा भी पाप करता है। इस जगतमें ऐसा कोई मनुष्य नहीं कि जिसने पाप न किया हो।

न कश्चिन्नापराध्यति।

पाप न करे, वह मनुष्य नहीं अपितु देवता है परन्तु पाप करनेके उपरान्त जिसको पश्चात्ताप होता नहीं, वह मनुष्य नहीं, अपितु दानव है। जिसको किये हुए पापों-का पश्चात्ताप होता है, वही मानव है। पाप हो, यह कोई बहुत बड़ा अपराध नहीं परन्तु पाप स्वीकार न करे, किये हुए पापके लिए प्रायश्चित्त न हो, यह बड़ा अपराध है।

हा पस्तावो विपुल झरणुं स्वर्गथी उतर्युं छे,
पापी तेमां डुबकी दई ने पुण्यशाली बने छे।

जिसका पाप प्रकाशित हो जाता है, उसके पापका विनाश होता है। शास्त्र और सन्त कहते है कि मनुष्यको स्वयंके पुण्य गुप्त रखने और पाप जाहिर करने चाहिए। साधारण मनुष्य पुण्योंको बहुत प्रगट करते हैं परन्तु पापको छिपाते है। पापको छिपाओ

नही और पुण्यको प्रकट करो नही । समाजमें पाप जाहिर करनेसे पापकी आदत छूटती है। पाप, समाजमें जाहिर करोगे तो पापका नाश होगा । पुण्य, समाजमें जाहिर करोगे तो पुण्यका नाश होगा ।

मनुष्य पापको मनमें छिपाकर रखता है, इससे उसका जीवन बिगड़ता है । जो पाप छिपाते है उनको पाप छोड़ता नहीं । पाप पहले आँखमें आता है, पीछे मनमें, वाणीमें और सबसे पीछे आचरणमे आता है । एक बार आनेके पीछे यह घर कर लेता है । हृदय-सिंहासन तो परमात्माके लिए है, वहाँ पापको स्थान् होता नही । पापसे बहुत सावधान रहना । मनुष्यको खबर भी न पड़े ऐसी रीतिसे वह आँखमें, जीभमें और मनमें आता है । अनजानेमे पाप हो जाये तो उसे बाहर करके जला डालो ।

एकान्तमें अपने ठाकुरजीके पास भी पाप स्वीकार करो । मानव, पाप स्वीकार न करे तो भगवान उसे महापापकी तरह गिनते हैं। छिपाये हुए पापका दण्ड अति भयानक होता है । मनमें बुरा विचार आवे तो उसी दिन दूसरे वैष्णवसे कह देना । पाप प्रकट करोगे तो वह निकल जायेगा, पाप प्रकट करोगे तब ही जलेगा ।

पाप करनेके बाद जिसको खबर नही पड़ती कि मैंने पाप किया है, वह मनुष्य नहीं । पशु पाप करता है परन्तु उसको खबर नही पड़ती कि मैं पाप करता हूँ। रामायण-की कथा तुम सुनोगे तो अपनी भूल तुमको दीखेगी । तुमको भान होगा कि यह मेरी भूल हुई है । मुझे इसे सुधार लेना चाहिए । रामायणकी कथा सुननेसे जीवन दिव्य बनता है । जिसका जीवन दिव्य बनता है, उसे ही प्रभुके दर्शन होते हैं ।

साधारण मनुष्य किसी राजासे भी जल्दी मिल नही सकता । राजासे मिलना हो तो भी कितनी ही योग्यता सँभालनी पड़ती है। एक प्राकृत राजाके पास भी लायक बन-कर जाना पड़ता है तो परमात्मा तो सबसे श्रेष्ठ है । प्रभुके दर्शन करनेके लिये तो बहुत योग्य होनेकी जरूरत है ।

जिसके मनमें पाप है, जिसके घरमें पाप है, वहाँ परमात्मा आते नही । कचड़ा पड़ा हुआ हो, वहाँ इस जीवका भी बैठनेके लिए मन चाहता नही तो फिर पापकी कीचड़ जमी हुई हो, उस हृदयमें विराजना प्रभुको कैसे सहन होगा ? पाप छूटे तो हृदय शुद्ध हो, और हृदय शुद्ध हो तो ही परमात्मा पधारें ।

पापके पंजेमें-से छूटना कठिन है। पाप करनेकी अनेक जन्मसे आदत है और उन पापोंका संस्कार जगनेके पश्चात् विवेक रहता नही, ज्ञान टिकता नही। मनुष्य पाप करता ही रहता है । पुण्यका जोर जबतक अतिशय बढ़े नही, तबतक पापकी आदत छूटती नही। मनुष्य, शरीरकी अपेक्षा जीभसे, जीभकी अपेक्षा आँखसे और आँखकी अपेक्षा मनसे अधिक

पाप करता है। आत्मा, इन्द्रियोंमें इतना तो ओत-प्रोत हो जाता है कि इन्द्रियाँ पाप करती हैं, उनको देखता हुआ भी रोकता नहीं।

जबतक इन्द्रियोंको पाप करनेकी टेव है, तबतक उनको भक्तिरस मिलता नही। भक्तिरस मिले बिना परमात्माका दर्शन होता नहीं। इन्द्रियोंमें भक्तिरस भरना हो तो उनको निष्पाप करो। मनमें पापका विचार आवे तो तत्क्षण उसे निकाल बाहर करो। कदाचित् पाप हो जाये तो प्रभुके पास रो पड़ो, क्षमा माँगो, पश्चात्ताप करो, फिर दुबारा ऐसा दोष न करनेका दृढ़ निश्चय करो, और उसके लिए सतर्कता रखो।

जिसको अपने दोषोंका ज्ञान हो जाता है, उसे ही स्वयंकी भूल छोड़नेकी इच्छा होती है, उसमें ही जीवन सुधारनेकी भावना जगती है। रामायणका सत्सङ्ग करे तो जीवन सुधरता है, मनके पाप जलते हैं और मानव नये पापसे बच जाता है। रामायणकी कथा सुने तो उसको ज्ञान होता है कि मुझसे भूल क्या होती है? साधारण रीतिसे मनुष्य अपनी भूल माननेको तैयार नहीं होता। किसीको तुम उसकी भूल बताओ तो उसको अधिकतर बुरा ही लगता है। उसको लगता है कि तुम हमारी भूल बतानेवाले कौन? तुम कैसे हो यह तो मैं ही जानता हूँ। मनुष्य स्वयंको निर्दोष ही समझता है और अपने दुर्गुणोंको भी सद्गुण ही करके मानता है परन्तु जो ये कथा सुनते हैं, उनको ही स्वदोषका भान होता है। कथा ही उसको पाप करनेसे बचाती है।

एक मनुष्यने अपने लड़केसे कह रखा था कि कदाचित् किसी मन्दिरमें दर्शन करने जाना हो तो भले ही जाना। भगवानको हाथ ज़ोड़ना परन्तु भूल-चूकमें भी कभी कथा सुनना नहीं। कथा सुनेगा तो अपना धंधा बिगड़ जावेगा। उसका धंधा चोरीका था।

एक बार ऐसा हुआ कि उसका लड़का जङ्गलमें जा रहा था, वहाँ एक जगह कथा हो रही थी। उसको पिताके वचन याद आये कि कथा सुनना नही। ऐसा विचार-कर लड़का कानमें उँगली घुसाकर जाने लगा। ठाकुरजीको दया आयी कि इसकी पिताके वचनमें कितनी श्रद्धा है। इसलिए प्रभुने लीला की। उसके रास्तामें काँटा डाल दिया। वह काँटा उसके पैरमें लगा—इसलिए उसे कानमें-से उँगली निकालनी पड़ी और जितनी देर उँगलीका काँटा निकालनेमें लगी, उतनी देर तक उसके कानमें कथाके अक्षर थोड़ेसे पड़ गये कि ईश्वर सर्वव्यापक हैं। वह सबमें विराजमान हैं और सर्वकालमें सबको देखते हैं। कितने ही लोग ऐसा समझते हैं कि दरवाजा बन्द है, यहाँ कोई देखनेवाला भी नही है और सुननेवाला भी नहीं। अरे! तुम्हारा पाप तुम्हारे अन्दर ही बैठा है। यही सब कुछ देखता और सुनता है। दरवाजा बन्द है इससे क्या? लड़केने इसे घ्यानमें रख लिया कि भगवान सबको देखते हैं।

बाप-बेटा पीछे एक क्षेत्रमे चोरी करने गये। वहाँ ग्रामका एक बड़ा पेड़ था। बापने बेटेसे कहा कि मैं ऊपर चढ़कर फल लाता हूँ। तू नीचे खड़ा-खड़ा नजर रख कि कोई आता तो नही है। कोई देखता तो नही है? बाप जब वृक्षके ऊपर चढ़कर फल लेने गया तो लडका एकदम बोल पड़ा, 'बापू! वह देख रहा है,' बाप घबराया और यह एकदम नीचे उतर आया, लडकेसे पूछा—कौन देख रहा है? यहाँ तो कोई भी दिखाई नही देता। लडकेने कहा—मैंने कथामे सुना है कि ईश्वर सबको देखता है।

रामकथा पाप करनेसे बचाती है।

मनमें अनेक जन्मोंका मैल भरा है। मनको शुद्ध करनेके लिए रामायणका सत्सङ्ग आवश्यक है। रामायण भगवान श्रीरामका नाम-स्वरूप है। कलियुगमे नाम-सेवा मुख्य है।

कलियुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास॥

यदि परमात्माके नामके साथ अतिशय प्रीति हो तो ही अनेक जन्मकी पापकी आदत छूटती है। जगत परमात्माके अधीन है परन्तु परमात्मा नामके अधीन है। नाम ही ब्रह्म है। नाम ही परमात्मा है। अरे! परमात्माका नाम तो परमात्मासे भी अधिक श्रेष्ठ है।

रामायणमे एक प्रसंग आता है—वानर पत्थरके ऊपर राम-नाम लिखकर पत्थर समुद्रमे डालते है। राम-नामसे पत्थर तैरते हैं। पानीमें डूबते नही। राम-नामकी ऐसी महिमा है। रामजी महाराज वहाँ समुद्रके किनारे विराजे हुए थे। वहाँ प्रभुने विचार किया कि मेरे नामसे पत्थर तैरता है तो फिर मेरे हाथसे छोड़ा हुआ पत्थर क्यों नहीं तैरेगा? मै एक बार प्रयोग करूँ। मेरे हाथसे छोड़ा हुआ पत्थर यदि तैर जाय तो इन लोगोंसे कहूँ कि लिखनेकी मेहनत न करे। मैं जिस पत्थरका स्पर्श करूँ उस पत्थरको समुद्रमें डाल दिया जाया करेगा।

परन्तु रामजीको थोड़ी शङ्का हुई। कदाचित् मेरे हाथसे डाला हुआ पत्थर न तैरा और डूब गया तो मेरी किरकिरी होगी। इसलिए समुद्रके किनारे मैं अकेला ही जाऊँ और आगे-पीछे कोई न हो, इस प्रकार पहले परीक्षा कर लूँ। पत्थर तैरेगा तो पीछे इन लोगों-से कहूँगा। तब रामचन्द्रजी दूर समुद्र-किनारे गये और अकेले ही गये। परीक्षा करते समय वहाँ कोई देखनेवाला नही-था। रामजीने पत्थर उठाया। श्रीहनुमानजी महाराजका नियम था कि कोई भी काम करें तो रामजीके चरणोंमें नजर रखकर ही करे। इससे हनुमानजीकी हार किसी दिन भी हुई नही। हनुमानजी जहाँ जाते वही उनकी जीत होती

थी। वे रामजीका बल लेकर काम करते थे। श्रीराम-चरणमें नजर रखकर काम करते थे। हनुमानजीने विचार किया कि हम सब तो यहीं बैठे हुए थे, इन्होंने किसीसे कहा नही, ये अकेले कहाँ चले गये हैं? क्यों गये हुए हैं।

रामजीने हाथमें पत्थर लिया। आसपास कोई नहीं है, ऐसे विश्वाससे पत्थर समुद्र-में फेंकनेको तैयार हुए। इतनेमें ही हनुमानजीने जोरसे जो छलाँग लगायी तो रामजीके पीछे आकर खड़े हो गये। हनुमानजी विचार करते हैं कि ये अकेले यहाँ क्या कर रहे हैं। रामजीने जैसे ही पत्थर समुद्रमें फेका कि तुरन्त डूब गया। रामजीको यह ठीक लगा नहीं। उनको अनुभव हुआ कि मेरे हाथका डाला हुआ पत्थर तैरता ही नही, डूब जाता है परन्तु फिरसे प्रयोग करके देखूँ। दूसरा पत्थर हाथमें लिया और जोरसे समुद्रमें फेका। वह भी डूब गया।

रामजीको विश्वास हुआ कि मेरे नामसे पत्थर तैरता है परंतु मेरे हाथसे छोड़ा हुआ पत्थर तैरता नहीं। यह तो ठीक है कि मैंने किसीको बात प्रकट नही की, मैं अकेला ही यहाँ आया। यहाँ कोई देखनेवाला नहीं था, यह ठीक हुआ। अब एक बार अन्तिम प्रयत्न फिर कर लूं। फिर तीसरा पत्थर रामजीने फेंका और वह भी डूब गया। रामजी थोड़े उदास हुए, नाराज हुए।

रामजीने जब पीछे देखा तो हनुमानजी महाराज हाथ जोड़कर खड़े हुए थे। रामजीने हनुमानजीसे पूछा—हनुमान! तू यहाँ कहाँसे किसलिए आया है?

हनुमानजीने कहा—आपने पहला पत्थर छोड़ा तबसे मैं यहीं तो हूँ।

रामजीने कहा—परन्तु इस समय तुमको यहाँ आनेकी क्या जरूरत थी?

हनुमानजीने कहा—मेरे मालिक जहाँ जाये वहाँ मुझे जाना ही चाहिये? जहाँ आप वहाँ मैं।

रामजीको कुछ ठीक नही लगा। उनको लगा कि इस हनुमानने देख लिया है, यह सब बन्दरोंसे अब कह देगा कि अकेले प्रयोग कर रहे थे परन्तु इनका प्रयोग सफल नहीं हुआ। इनके हाथका फेका हुआ पत्थर तैरा नही। रामजी नाराज हो गये।

हनुमानजी रामजीका मुखारविन्द निहारते हैं और विचार करते है—आज मेरे मालिक नाराज हो गये है। इनके हाथका छोड़ा हुआ पत्थर तैरता नहीं है। मेरा अवतार तो रामजीकी सेवा करनेके लिए है, रामजीको प्रसन्न रखनेके लिये है।

इसलिए हाथ जोड़कर हनुमानजीने कहा—महाराज! आप नाराज न हों। जो हुआ वह ठीक ही हुआ है। मैंने सन्तोंके मुखसे सुना है, कथामें सुना है कि श्रीराम जिसको

अपनाते है, जिसको हाथमे रखते हैं, वही तरता है। रामजी जिसको फेक देते हैं, वह तो डूबता ही है। आपने जिसका त्याग किया, वह फिर किस प्रकार तर सकता है ?

तमे तर छोड़सो तेहने नाथजी, 'काग' त्रिलोक मां कौन तारे ?

आप जिसको हाथमें रखते हैं, आप जिसको अपना मानते हैं, वह संसार-सागरसे तर जाता हैं। आप जिसको फंक दो, सम्बन्ध तोड़ दो तो वह कभी तर नही सकता। वह तो डूबता ही है। महाराज ! तुम्हारे नामसे पत्थर तैरता है। तुम्हारे हाथसे नहीं तैरता।

हनुमानजीने जब ऐसा अर्थ किया तो रामजी प्रसन्न हो गये। हनुमानजीसे कहा—हनुमान ! तेरी बुद्धि अति दिव्य है। हनुमानजीको रामजीने पदवी दी। बुद्धिमतां वरिष्ठम्। हम सब तो बुद्धिमता कनिष्ठम् हैं। हनुमानजी महाराज बुद्धिमतां वरिष्ठम् है। ऐसे बलवान, ऐसे बुद्धिमान हुए नही और होगे भी नही,

मनोजवं मारुततुल्यवेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये ॥

रामजीकी अपेक्षा रामजीका नाम श्रेष्ठ है। कितने ही महापुरुषोंने वर्णन किया है—

राम त्वत्तोऽधिकंनाम इति मन्यामहे वयम्।
त्वयैका तारिताऽयोध्या नाम्ना तु भुवनत्रयम् ॥

रामजीके सत्सङ्गकी अपेक्षा भी रामायणका सत्सङ्ग बहुत प्रभावकारक है। परमात्मा प्रत्यक्ष विराजे. फिर भी जो काम परमात्मा स्वय नही कर सकते, वह काम परमात्माका नाम करता है। राम-नामसे पत्थर तैरा है और रामजीके हाथसे छोड़ा हुआ पत्थर डूबा है।

कितने ही जीव ऐसे होते हैं कि रामजीके दर्शनसे भी सुधरते नही। रावणको रामजीके दर्शन हुए परन्तु वह कहाँ सुधरा ? रावण रामजीके दर्शन करता है, फिर भी हाथमें धनुष-बाण लेकर रामजीके साथ युद्ध करनेको तैयार हुआ है, अरे ! युद्ध करता है ? योग्य तो यह था कि रामजीके दर्शन करनेके बाद रावण धनुष-बाण फेक देता, रामजीकी शरणमे आ जाता, रामजीके चरणोमे माथा झुकाता परन्तु रावण ऐसा दुष्ट है कि रामजीके दर्शनसे भी उसका जीवन सुधरा नही।

द्वारिकानाथके दर्शन दुर्योधनको हुए परन्तु दुर्योधन सुधरा नहीं। परमात्मा श्रीकृष्ण कृपा करके उसके घर पधारे और उसे समझाने लगे। प्रत्यक्ष परमात्मा उसको समझाते हैं, फिर भी वह सुधरता नही। श्रीकृष्णको वह सम्मुख जवाब देता है।

इससे प्रतीत होता है कि कितने ही जीव ऐसे होते है, जिनको भगवान भी नहीं सुधार सकते। भगवान जब सजा देते हैं, तभी वह सुधरता है। ऐसे जीवोंको ईश्वर सजा करते हैं, मारते हैं। जो काम राम-दर्शनसे भी नहीं होता वह रामायणके सत्सङ्गसे होता है। रामजी रावणको सुधार सके नहीं परन्तु रावण रामायणका सत्सङ्ग करता, रामायणकी कथा सुनता, राम-नामका जप करता तो अवश्य सुधर जाता।

रावण तो मर गया। दुर्योधन भी मर गया परन्तु इस कलियुगमें रावणका, दुर्योधनका वंश बहुत बढ़ गया है। अरे! रावण, दुर्योधनके क्या दो-चार सींग थे? वे भी अपने जैसे ही थे।

पराये धनको जो दबाकर बैठ जाय, वही दुर्योधन है। आजकल बहुत लोगोंको विना मेहनतका धन पचानेकी इच्छा होने लगी है। उस समय एक ही दुर्योधन था कि जिसने तूफान मचा डाला परन्तु अब अनेक दुर्योधन उत्पन्न होने लगे हैं। इसीसे जगतमें शान्ति रहती नहीं।

जिसकी आँखमें काम है, जो इस जगतके स्त्री-पुरुषोंको काम-भावसे देखता है वही रावण जैसा है। मार्ग चलती स्त्रीमें जिसका मन फँसे, किसीके सौदर्यमें जिसका मन लुभावे, परस्त्रीका जो चिन्तन करे, वह रावण जैसा ही है। जो मनसे बहुत पाप करे, वह रावण जैसा ही है।

परद्रोही परदार रत पर धन पर अपवाद।
ते नर पाँवर पापमय देह धरें मनुजाद॥

रावण ब्राह्मण था, ऋषिके वंशमें उसका जन्म हुआ था, इसके उपरान्त भी उसकी गिनती राक्षसोंमें हुई। बहुतसे लोग तो रावण ब्राह्मण था इस बातको भी जानते नहीं। रावण अर्थात् दुष्ट राक्षस। जो आँखमें काम-भाव रखता है, जो जगतको काम-भावसे देखता है, वह ब्राह्मण हो अथवा क्षत्रिय हो, राक्षस जैसा है। तुम आँखमें किसको रखते हो? आँखमें श्रीरामको रखो। श्रीकृष्णको रखो। आँखमें परमात्माको रखो, प्रेम रखो काम-भाव मत रखो।

काम जिसको स्पर्श करता है, वह अपने स्वरूपसे नीचे गिरता है, उसका पतन होता है। शास्त्रमें तो ऐसा लिखा है कि काम-सुख कदाचित् न भोगे, परन्तु मनमें काम आवे, फिर आँखमें काम आवे तो उससे ही जीवका पतन होता है। कामका हृदयसे स्पर्श हुआ कि उसी क्षण शक्तिका नाश होता है।

ये आँख दीपक हैं। तुम आँखरूपी प्रकाशमें कूड़ा-करकट देखते हो कि श्रीरामको देखते हो? तुम आँख किसको देते हो? तुम जगतको आँख किस भावसे देते

हो ? जिसको आंख देते हो, वह तुम्हारे मनके अन्दर आता है। ज्ञानी पुरुष जगतको उपेक्षा-भावसे देखते हैं, अपेक्षात्मक दृष्टि परमात्मामें ही रखते हैं। जगतको उपेक्षा-भावसे देखो। अपेक्षात्मक दृष्टि परमात्माके स्वरूपमें रखो।

भक्तिमें आंख मुख्य है। आंख सुधरनेके बाद ही भक्तिका सही आरम्भ होता है। जिसको स्त्रीमें सौंदर्य दीखता है, जिसको पुरुषका शरीर सुन्दर लगता है, वह क्यों भगवानकी भक्ति करता है ? अरे, वह तो संसारकी भक्ति करता है।

आंख न बिगड़े तब तक मन बिगड़ता नहीं। रावणकी आंख बिगड़ी, रावणका मन बिगड़ा, रावणकी वाणी बिगड़ी। रावणका समस्त जीवन बिगड़ गया। अधिक तो क्या कहूं ? हजारों वर्ष हो गये रावणका नाम भी बिगड़ गया। लोग अपने बालकका नाम राम रखते हैं परन्तु किसीको भी रावणका नाम रखना पसन्द नहीं। किसीने भी 'रावण भाई' नाम रखा हो ऐसा सुना नहीं। रावणके नामसे भी घृणा आती है। रावणका नाम लेना पसन्द नहीं। रावण जैसा कोई दुष्ट नहीं और वह रामजीके दर्शन करके भी सुधरा नहीं परन्तु कोई रावण जैसा हो और वह रामायणकी कथा श्रवण करे, रामायणका सत्संग करे, राम-नामका जप करे तो वह अवश्य ही सुधरेगा।

परमात्माका कथामृत, नामामृत अलौकिक है। मानवको इन्द्रियाँ त्रास न दें, इस कारण ही परमात्माने कृपा करके यह दो अमृत जगत्को दिए हैं। जैसे-जैसे मनमें विषय प्रवेश करे, पाप प्रवेश करे, वैसे-वैसे ही नामामृत अथवा कथामृतका आश्रय लेनेसे मानव इन्द्रियोंके त्राससे त्राण पा जाता है। राम-कथा अमृत है, राम-नाम अमृत है। प्रभुका नाम अमृतसे भी मधुर है। कथामृत पापको जलाता है, जीवनको सुधारता है।

सबका भक्षण करनेवाला जो काल है, उसका भक्षण करनेवाले श्रीरामजी हैं। रावणको मारनेके लिए रामजीको इतनी खटपट, इतनी लीला करनेकी क्या जरूरत थी ? श्रीराम तो परमात्मा हैं, सर्वशक्तिशाली हैं, कालके भी काल हैं। सङ्कल्पमात्रसे रामजी रावणको मार सकते थे परन्तु रामजीने यह समस्त लीला इस कारणसे ही की कि लोग रामायणका पाठ करें, श्रवण करें, उतने समय तक जगत्को भूल सकें। श्रीरामचन्द्रजीने रावणको मारनेके लिए अवतार धारण किया नहीं, परन्तु कलियुगके लोग यह लीला सुनकर उसमें तन्मय हों इसलिए ही यह समस्त लीला की है। भगवानकी लीला-कथा मोक्षदायी है। अवतार-दशामें भगवान बहुत जीवोंका उद्धार करते हैं परन्तु अनवतार-दशामें—अर्थात् जब परमात्मा प्रत्यक्ष विराजते नहीं उस समय श्रीराम-कथा अनेक जीवों-को प्रभुका मार्ग बताती है, अनेक जीवोंका कल्याण करती है।

कितने ही लोग रोज मन्दिरमें जाकर दर्शन करते हैं और बाहर जाकर पाप भी करते हैं। ऐसे लोग दर्शन करते हैं, फिर भी उनका स्वभाव सुधरता नही। मानवका व्यवहार जबतक शुद्ध होता नहीं, तबतक उसे भक्तिमें आनन्द आता ही नहीं। भक्ति बहुत करता है परन्तु व्यवहार शुद्ध रखता नहीं, इससे उसको भक्तिमें जो आनन्द मिलना चाहिए, वह मिलता नहीं। व्यवहारमें पाप करे, दम्भ करे, उससे भक्तिका जैसा फल मिलना चाहिए वैसा मिलता नहीं।

कितने ही लोग मानते हैं कि व्यवहारमें थोड़ी भूल होती ही है और पाप भी करना पड़ता है। व्यवहारमें थोड़ा पाप हो जाये तो बड़ा दोष नहीं कहलाता, मंदिरमें जाकर थोड़ी भेंट रख दे, दर्शन कर ले उससे भगवान सब पाप भस्म कर देते हैं। भगवान कहते हैं—तू ऊपर आ, फिर तुझे बताऊं कि मैं पापोंको भस्म करता हूं कि तुझे धिक्कारता हूं। मन्दिरमें तुम दर्शन करो, भेंट धरो, उससे भगवान तुम्हारे पापोंको भस्म कर देंगे, यह कल्पना बिल्कुल खोटी है।

व्यवहारमें पाप करना ही पड़े, ऐसा नहीं है। निष्पाप होकर भी व्यवहार हो सकता है। तुम अधिक भक्ति न करो तो कोई बाधा नही परन्तु व्यवहारको शुद्ध रखो, पाप छोड़ो। पापको कभी साधारण गिनो नहीं। साधारण चिनगारी भी किसी समय सब कुछ जलाकर भस्म कर देती है। पाप, अग्नि, शत्रु, रोग और ऋण—ये साधारण नही होते। साधारण पाप किसी समय बहुत बड़ा अनर्थ कर देता है। मेरे हाथसे बिल्कुल पाप न हो, ऐसी इच्छा हो तो सबमें परमात्माको देखनेकी आदत डालो।

पाप किसे कहते है ?

चोरी, हिंसा, व्यभिचार आदि तो महापाप हैं ही। ये साधारण पाप नहीं है। जगतमें सर्वत्र वैधानिक रूपसे इनको अपराध माना गया है और धर्म-दृष्टिसे इनको पाप माना गया है। इनके अलावा भी दूसरे पाप हैं।

ज्ञानी पुरुष भेद-दृष्टिको पाप मानते हैं। ज्ञानी पुरुष अद्वैत-भावमें स्थिर होते हैं। ये ऐसा मानते हैं कि मेरे अन्दर जो शुद्ध चेतन आत्मा है, वही सबमें भी है। वे सबमें स्वयंको और स्वयंमें सबको देखते हैं।

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।

जहाँ भेद है, वहीं भय है। राग-द्वेष है। ज्ञानी पुरुष जगतको अभिन्न भावसे देखते हैं। ज्ञान-मार्गमें एक ही सत्ता है, ईश्वर-तत्त्व एक ही है, और वह सबमें विलास करता है। जो भेद दिखाई देता है, वह मायाके कारण दीखता है।

आकाशमें सूर्यनारायण एक ही है परन्तु अट्टालिकामें तुम जितने घड़ोंमें पानी भरकर रखोगे तो प्रत्येक घड़ेमें तुमको अलग सूर्यनारायण दीखेंगे। घड़ेमें जो सूर्य दीखते हैं क्या वह सत्य हैं? घड़ेमे डाला हुआ पानी बाहर निकाल दो और फिर देखो, इसमें जो सूर्यनारायण थे, वह कहाँ गये? घड़ेमें सूर्य था, ऐसा बोलना भी उचित नही। घड़ेमें जो दीखता था, वह तो प्रतिबिम्ब था। सूर्य एक ही है परन्तु जलकी उपाधिसे जैसे अनेक रूपोमें भासता है, वैसे ही अन्तःकरणकी उपाधिसे एक ही परमात्म-तत्त्व अनेक रूपोमें भासता है। ज्ञान-मार्गमें भेद-दृष्टि ही पाप है। जहाँ भेदभाव आया, वहाँ ही समस्त विकार जगते हैं, भय उत्पन्न होता है, मोह उत्पन्न होता है।

भक्ति-मार्गमें श्रीरामका, श्रीकृष्णका विस्मरण ही पाप है। परमात्माका जिस क्षणमे विस्मरण होता है, उसी क्षण पाप होता है। श्रीधर स्वामी पापकी व्याख्या करते हुए कहते हैं कि जो परमात्मासे दूर ले जाय, जो लक्ष्यको भुलावे, वही पाप है। जाना है परमात्माके चरणोमे और पाप ले जाता है, जन्म-मरणके चक्करमें।

कर्म-मार्गमें धर्मका त्याग, पाप माना गया है। जिसका जो धर्म प्रभुने निश्चित किया है, वह परमात्माकी आज्ञाको भंग करे, अपने कर्त्तव्यपर बराबर आरूढ़ न रहे और धर्मका पालन न करे, यह कर्म-मार्गमे पाप माना गया है।

ज्ञान-मार्गमें पाप दृष्टि-भेद, भक्ति-मार्गमें पाप प्रभु-विस्मरण और कर्म-मार्गमें पाप स्वधर्मका त्याग। बाह्य रूपसे देखनेमें इनमे परस्पर भेद जैसा दीखता है परंतु सिद्धांत एक ही है। पापसे बचना हो तो सबमें भगवद्भाव रखो, सबमें भगवद्भाव रखकर व्यवहार करो।

सबमें एक ही प्रभु विराजे है, ऐसा समझकर व्यवहार करोगे तो व्यवहार भी भक्ति बनेगा। स्वामी रामदासजीने 'दास-बोध' मे लिखा है कि जिसको व्यवहार करना आता नही, वह भक्ति कर सकता ही नही। व्यवहार और भक्तिको अलग मत मानो। ईश्वर चैतन्य-रूपसे सबमे हैं, ऐसे अनुभव करनेकी आदत डालो। ऐसी आदत जिसकी पड़ जावेगी, उसकी प्रत्येक क्रिया भक्तिमय और ज्ञानमय बनेगी। परमात्माकी आज्ञा समझकर जो व्यवहार करता है, स्वधर्मका पालन करता है, उसकी बुद्धिमें ज्ञान आ जाता है, उसके हृदयमे भक्ति बसती है, उससे पाप दूर भागते हैं।

व्यवहारमें पाप करना नही। किसीको धोखा देना नही, किसी जीवके साथ कपट करना नहीं। पाप एक दिन प्रकट हो जायेगा। पाप और पारा बाहर आये बिना नही रहते, ये कभी गुप्त रह सकते नही।

कितने ही मनुष्य दूसरोंके साथ प्रेम करते है परन्तु भाईके साथ किसी समय कपट करते है। इनको ऐसा लगता है कि भाईको क्या खबर पड़ेगी? अरे, आज नही पड़ेगी तो साल, दो साल, चार साल बाद किसी दिन तो उसको खबर पड़नी ही है। जिसके व्यवहारमें कपट है, उसको भक्तिमें आनन्द आता ही नहीं। जो धनके लिए कपट करता है, उसको भक्तिमें आनन्द आता नहीं। पैसा तुम्हारे भाग्यमें जितना लिखा है, उतना ही तुमको मिलना है। पाप करनेसे अधिक पैसा मिलेगा, यह कल्पना बुरी है। अनेक बार मनुष्य समझता है कि मैं झूठ बोला तो आज मुझे कुछ अधिक लाभ हुआ। अरे, तुझे लाभ हुआ वह झूठ बोलनेसे नहीं हुआ। तेरे प्रारब्धमें आज जो लाभ लिखा था, वही तुझे मिला है परन्तु झूठ बोलनेसे पाप तेरे माथे आ गया।

पैसा प्रारब्ध-प्रमाणसे ही मिलता है। शास्त्रमें लिखा है कि सम्पत्ति, सन्तति और संसार-सुख ये पूर्व जन्ममें किए हुए कर्मानुसार ही तुम्हारे लिए निश्चित किए गये है। पूर्व जन्मके किए हुए कर्मानुसार सम्पत्ति मिलती है, पूर्व जन्मके कर्मानुसार ही संसार-सुख और सन्तति प्राप्त होती है।

मनुष्य ऐसा समझता है कि मैं पाप करूँ तो सुखी रहूँगा। पाप करनेसे कोई सुखी हुआ नही। तुम अधिक भक्ति न करो तो बाधा नहीं परन्तु व्यवहारमें पाप न करो, व्यवहारको अतिशय शुद्ध रखोगे तो मन पवित्र रहेगा और मन पवित्र होगा तो तुम्हें भक्तिमें आनन्द आवेगा ही। भक्तिमें तन और धन ये गौण हैं। मन मुख्य है। मन बिगड़े तो मनुष्यको भक्ति करनेपर भी भक्तिमें आनन्द आता नहीं।

व्यवहारको शुद्ध रखनेके लिए रामायणका सत्संग करे। तुम अपना कर्त्तव्य विधिवत् पूरा करो। रामायणमें पर्याप्त रूपसे बताया है कि स्त्री-धर्म क्या है? स्त्रीका कर्त्तव्य क्या है? पतिका कर्त्तव्य क्या है? भाईका कर्त्तव्य क्या है? पुत्रका कर्त्तव्य क्या है? माता-पिताका कर्त्तव्य क्या है? गुरुका कर्त्तव्य क्या है? शिष्यका कर्त्तव्य क्या है? समाज-धर्म कैसा है? राज्य-धर्म कैसा है? रामायणकी कथा ऐसी है कि जीवमात्रको धर्मका बोध कराती है।

रामायणका प्रत्येक पात्र अति दिव्य है। मानव स्वयंका हक माँगता है, स्वयंका भाग माँगता है परन्तु उसे स्वयंका कर्त्तव्य पूरा करनेकी इच्छा होती नहीं। यह विचारता नही कि मेरा कर्त्तव्य क्या है? क्या अपने कर्त्तव्यकी पूर्त्ति मैं करता हूँ? जो स्वयंका कर्त्तव्य भी पालन न करे, उसको भाग लेनेका क्या अधिकार है? माता-पिताकी सम्पत्ति लेनेकी इच्छा है परन्तु पुत्र होकर माता-पिताकी सेवा करनेकी इच्छा इसके मनमें होती नहीं! बापका सब कुछ ले लेना चाहता है परन्तु बापकी सेवा करनेमें शर्म आती है।

रामायणमे सब कुछ आता है । चाहे जैसा जीव हो, वह रामकथा सुने तो उसे मार्गदर्शन मिलता है । रामकथाकी महिमाका वर्णन कौन कर सकता है ? रामकथाका एक-एक अक्षर बोधमय है । देशके लिए कोई प्राणोंका त्याग करे, यह ठीक है परन्तु देशके लिए दिव्य जीवन व्यतीत करे, यह अधिक ठीक है । दिव्य जीवन बनाना हो तो रामायणका सत्सङ्ग करो, रामजीका दर्शन करो, रामजीकी सेवा करो ।

जगतमे श्रीराम जैसा पुत्र हुआ नही, दशरथ महाराज जैसा पिता हुआ नही । जब श्रीराम वनमे गये, तब दशरथ महाराज अतिम श्वास तक रामजीका स्मरण करते रहे । दशरथ महाराज बारम्बार कौशल्यासे पूछते हैं कि मेरा राम कहाँ है ? मुझे रामको देखना है । जिस समय यहाँ थे, उस समय मैंने उन्हे अच्छी तरह नही देखा था । मेरे रामके पास मुझे ले जाओ । रामके बिना मैं जीवित रह सकता नही । रामजीके बिना दशरथ महाराज जीवित रहे ही नही । रामजी वनमें गये, उसीके साथ दशरथ महाराजने प्राण छोड दिये । रामायणका एक-एक पात्र दिव्य है, अद्वितीय है ।

श्रीराम जैसा पुत्र हुआ नही ।
दशरथ जैसे पिता हुए नही ।
कौशल्या जैसी माता हुई नही ।
लक्ष्मण-भरत जैसे भाई हुए नही ।
रामजी जैसा पति हुआ नही ।
सीताजी जैसी पत्नी हुई नही ।
वशिष्ठजी जैसे गुरु हुए नही ।
रावण जैसा शत्रु हुआ नही ।
हनुमानजी जैसा सेवक हुआ नही ।

(१९)

आद्य कवि वाल्मीकिजी

रामायण अति दिव्य ग्रन्थ है। रामायणकी कथा करुण-रस-प्रधान है। इसके बालकाण्डके सिवाय सब काण्डोंमें कारुण्य है। रामायण लिखनेके बाद वाल्मीकिजीने विचार किया कि इसमें मुख्यतः करुण रस है। इसलिए इसके उपरान्त आनन्द रामायणकी रचना की जाय। उसमें शोकपूर्ण प्रसङ्गोंका वर्णन उन्होंने नहीं किया।

भागवतकी रचना गङ्गा-किनारे हुई है। रामायणकी रचना तमसाके किनारे हुई है। रामायण आदिकाव्य है और वाल्मीकि ऋषि आद्य कवि हैं। वाल्मीकि ऋषिकी कथा अर्थात् राम-नामकी दिव्य महिमा। वाल्मीकि ऋषिने श्रीरामचन्द्रजीसे अपने मुखसे कहा है, तुम्हारे नामकी महिमा मैं जानता हूँ। मैं तो राम-नामका भी ठीक-ठीक जप नही करता था। मरा-मरा बोलता था, फिर भी नाम-जपके प्रतापसे मैं महर्षि हुआ, आदि कवि हुआ। राम-नामका जप करनेसे ही मुझे सिद्धि मिली है।

दान देना सरल है। बहुत पुस्तक बाँटना सरल है। अधिक तो क्या कहूँ, ध्यान धरना भी थोड़ा सरल है। कथा करनी सरल है। कथा करवानी भी सरल है। कथा सुनना भी सरल है परन्तु शान्तिसे बैठकर प्रभुका नाम-जप करना, बहुत कठिन है। मनुष्य सब कुछ कर सकता है परन्तु शान्तिसे बैठकर परमात्माके नामका जप करता नही।

मनुष्यको अनेक जन्मोंसे पापकी आदत है। मनुष्य पुण्य करता है और पाप भी चालू ही रखता है। बहुतोंकी पाप छोड़नेकी इच्छा होती है परन्तु छोड़ नही सकते। पाप छूटता नहीं। महाभारतमें तो एक स्थानपर दुर्योधनने कहा है कि मेरे अन्दर कोई बैठा है वही पाप कराता है। यह कौन है इसकी मुझे खबर पड़ी नहीं। दुर्योधन क्या अधिक मूर्ख था? यह जानता था कि मैं पाप करता हूँ, मैं पाण्डवोंके साथ बहुत अन्याय करता हूँ, फिर भी वह पाप छोड़ नही सकता।

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।
केनापि देवेन हृदि स्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि॥

दुर्योधन कहता है कि धर्मको मैं जानता हूँ परन्तु धर्मानुकूल पवित्र जीवन व्यतीत करना मेरे लिए सम्भव नहीं। मैं अधर्मको पहचानता हूँ परन्तु मैं पाप छोड़ सकता नहीं। मेरे अन्दर कोई बैठा है, वही यह सब कराता है।

भगवान् पाप कराता है?

महाभारतके टीकाकारोंको इस श्लोकका अर्थ करनेमें बहुत कष्ट होता है। मेरे अन्दर कोई देव बैठा है, वह पाप-पुण्य कराता है। इसी प्रकार दुर्योधन बोला है। क्या उसका ऐसा अर्थ है कि परमात्मा पाप-पुण्य कराता है? परमात्मा सत्कर्म कराते हैं, पुण्य कराते है, प्रभु पाप करवाते नही। मेरे हाथसे जो अच्छा काम हुआ, वह प्रभुने कराया और जो खराब काम हुआ, वह मैंने किया, ऐसा सदा मानना चाहिए। परमात्मा कोई खराब काम करनेकी प्रेरणा देता हीं नही।

टीकाकारोंने इसका अर्थ किया है कि अन्दर रहनेवाला कोई देव पाप कराता है अथवा मानवमें आरूढ़ हुए अनेक जन्मोके सस्कार पाप कराते है। पापके संस्कार एक दो जन्मके नही, अनेक जन्मोके हैं। पापके ये संस्कार मनुष्यकी इच्छा न होते हुए भी पाप कराते हैं। प्रभुके नामका खूब जप करोगे तो पापके संस्कार छूट जायेंगे।

जप बिना जीवन सुधरता नही। अतिशय जप किये विना पापकी आदत छूटती नही। स्वभाव सुधारना, बहुत कठिन है। तीर्थ-स्नान करनेसे अथवा विष्णु-यज्ञ करनेसे स्वभाव सुधरता नही। स्वभाव सुधरता है, परमात्माके ध्यान-जपसे। स्नानसे शरीरकी शुद्धि होती है। दानसे धनकी शुद्धि होती हैं। परमात्माके ध्यान-जपसे मनकी शुद्धि होती है।

स्नानथी तननी शुद्धि थाय छे,
दानथी धननी शुद्धि थाय छे।
ध्यान जपथी मननी शुद्धि थाय छे॥

संसारके विषयोंमे भटकता मन, जप करनेसे स्थिर होता है। संसारके विषयोसे बिगड़ा हुआ मन जपसे शुद्ध होता है। मनकी मलिनता और चञ्चलता दूर करनेके लिए नाम-जपकी आवश्यकता है। मन बिगड़ा है, संसारका चिन्तन करनेसे। विगड़ा हुआ मन श्रीरामके स्वरूपका चिन्तन करे। श्रीरामके नामका स्मरण करे तो मन सुधरता है। जो मन प्रभुके नाममें सतत रहता है, वह बिगड़ता नही।

जप बिना पाप और वासना छूटती नहीं। पुराने संस्कारोंको नष्ट करनेका साधन जप है। मन स्थिर होता नही, इसलिए मैं जप करता नही, यह अज्ञान है। जप करो। भले ही मन दूसरी जगह भटके। सतत जप करोगे तो मन अवश्य स्थिर होगा।

मन पानीकी तरह है। पानी जिस तरह नीचेकी तरफ बहता है, उसी प्रकार मन भी ससारके विषयोंमे फँसकर पतनके मार्गमे जाता है। यन्त्रका सङ्ग मिलनेपर जल ऊँचा चढ़ता है, उसी प्रकार मनको नाम-जपका सङ्ग मिले तो वह ऊर्ध्वगामी बनता है प्रभुके चरणोमें पहुँचता है।

निश्चय करो कि अब मुझे पुरुष बनना नही, स्त्री बनना नही, नया जन्म लेना नही, परमात्माके चरणोमे पहुँचना है। जन्म-मरणके त्रासमे-से छूटनेके लिए नित्य इक्कीस हजार नाम-जप नियमपूर्वक करो। पूरे दिनमें मनुष्यके इक्कीस हजार छ सौ श्वास आते-जाते हैं। प्रत्येक श्वासपर भगवानका नाम लो।

राम-नामके जपसे वाल्मीकिजीको परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीके साक्षात् दर्शन हुए थे। पूर्वाश्रममें वाल्मीकिजी कुसङ्गसे बिगड़े थे। ब्राह्मण होनेपर भी ये अनेक जीवोंकी हिंसा करते थे। हिंसा करके कुटुम्बका भरण-पोषण करते थे। एक बार सप्तर्षि जङ्गलमें-से जा रहे थे। वाल्मीकिजीकी उनके ऊपर नजर पड़ी। साथियोको आज्ञा दी कि इनको पकड़ो। सप्तर्षियोंने वाल्मीकिजीसे कहा—भाई ! तू ब्राह्मण है और ऐसा पाप करता है ?

वाल्मीकिजीने कहा—पाप न करूं तो अपने कुटुम्बका पोषण किस प्रकार करूँ ? घरके लोग भूखे है, इसलिए पाप करके ही कुटुम्बको खिलाता हूं।

सप्तर्षियोंने कहा—हमारे पास जो कुछ है, सब हम तुमको देनेको तैयार है। तुमको लूटनेकी जरूरत नही है परन्तु एक बार घर जाकर पूछ आ कि जिनके लिए तू पाप करता है, वे सब लोग क्या तेरे पापमें भागीदार बननेको तैयार हैं ?

वाल्मीकिजीने कहा—महाराज ! मैं सबको खिलाता हूँ, इसलिए मेरे पापमे तो इनका भाग रहेगा ही।

सप्तर्षियोंने कहा—तू पूछ तो सही। हम यही खड़े है। पूछकर आ जा।

वाल्मीकिजी घर गये—पत्नीसे, माता-पितासे सबसे पूछा—मैं पापसे पैसा कमाकर तुमको खिलाता हूँ, इसलिए मेरे पापमें भागीदार हो न ? सबने मनाही कर दी।

पापं तवैव तत्सर्वं वयं तु फलभागिनः।

पाप तो सब पाप करनेवालेके ही माथे होता है।

स्वयंका किया हुआ स्वयंको ही भोगना पड़ता है। अरे ! सुखमें सभी साथ देते हैं। सजामें कोई साथ देता नहीं। अंतकालमें जीव अकेला ही जाता है। वाल्मीकिको बहुत पश्चात्ताप हुआ और वे सप्तर्षियोंकी शरणमें गये। सप्तर्षियोंने विचार किया कि इससे अब क्या कहा जाय ? इसके लिए राम-नामका जप ही उत्तम है।

ऋषियोंने वाल्मीकिसे कहा—तू राम-नामका जप कर।

वाल्मीकिने पूछा—कबतक जप करना है ?

ऋषियोंने कहा—शरीरके ऊपर दीमक प्रकट हों तब तक।

वाल्मीकिजी राम-नामका जप करने बैठे परन्तु अतिशय पाप किया था, इससे राम-नाम मुखसे निकलता नही। इस जिह्वासे बहुत पाप हुआ है, इस कारणसे इस जीभसे नाम-जप होता नहीं। अतिशय जप न हो, तबतक जीवन सुधरता भी नही। परमात्मा प्रत्यक्ष दीखते नही। नाम-जपसे परमात्माकी भक्ति होती है। परमात्माके नामका जप जीभ करे तो जीभ सुधरे परन्तु जीभसे जप होता नही। जीभ टक-टक बहुत करती है, व्यर्थ भाषण करती है परंतु प्रभुका नाम-जप करती नही। जप करनेमे इसे बोझ लगता है। मानव जीभसे जप करता नही, पाप बहुत करता है। परमात्माको अर्पण किये बिना कोई कुछ खाये तो उससे जीभ बिगड़ती है। परमात्माको अर्पण किये बिना कोई पानी भी पीता है तो भी जीभ बिगड़ती है। जगतकी निन्दा करनेसे जीभ बिगड़ती है।

वाल्मीकिने पाप बहुत किया, इससे 'राम-राम'के अक्षर इनके मुखमे-से निकलते नही।

ये तो 'मरा-मरा बोलते है पर 'मरा-मरा' का जप करते-करते वाल्मीकिजी उसमे अतिशय तन्मय हो गये। शरीरके ऊपर दीमक प्रकट हुई। वाल्मीकिजी सतत जप करते रहे।

श्रीराम-नाममे ऐसी शक्ति है कि वह प्रारब्धका नाश करती है।

वेदान्तके ग्रन्थोमें ऐसा लिखा है कि ज्ञान प्राप्त हो जाय, परमात्माका दर्शन हो जाय तो भी ज्ञानी पुरुषोंको प्रारब्ध भोगना ही पडता है।

प्रारब्धं बलवत्तरं खलु विदां भोगेन तस्य क्षयः।
सम्यग्ज्ञानहुताशनेन विलयः प्राक्संचितागामिनाम् ॥

परमात्माका दर्शन करनेके बाद भी ज्ञानीको प्रारब्ध भोगना पड़ता है। उसके प्रारब्धका विनाश होता नही। ज्ञानसे संचित और क्रियमाणका नाश होता है परन्तु प्रारब्धका नाश होता नही। इससे सिद्ध होता है कि ज्ञानसे प्रारब्ध बड़ा है। बड़े-बड़े सन्तोके जीवनमे दुःखके अनेक प्रसङ्ग आते है और उन महापुरुषोने कहा है कि इस शरीर-का प्रारब्ध ऐसा ही है। सन्त सहन करते हैं। अपना हृदय जलने लगता है और सन्त-महापुरुष दुःख-सुख सहन करते हुए परमात्माका स्मरण करते है परन्तु प्रारब्ध-प्रमाणसे सुख-दुःख तो उनको भी भोगना ही पड़ता है। इसलिए ज्ञानसे प्रारब्ध श्रेष्ठ है परन्तु प्रारब्धका नाश परमात्माके नामसे होता है। इसलिए प्रारब्धसे भी परमात्माका नाम श्रेष्ठ है।

मेटत कठिन कुअंक भालके।

विधाताने कपालमे जो लिखा है, वह भी अतिशय जपसे धीरे-धीरे क्षय होता है परन्तु साधारण जपसे प्रारब्ध क्षय नही होता। रोज दो-चार माला जपा करो, उससे

किसी प्रारब्धका क्षय होता नहीं। अतिशय जप करो तो विधाताका लिखा भी मिट जाता है। प्रारब्धका नाश होता है।

पराये अन्नका त्याग—जहाँ तक बने किसीका खाये नहीं और ब्रह्मचर्यका पालन—इन दो नियमोंके साथ प्रभुका नाम-जप करो तो संख्यानुसार उसका फल प्राप्त होता है। रामदास स्वामीने 'दासबोध'में लिखा है कि एक करोड़ जप करे, उसके जन्म-स्थान व तनुस्थान सुधरते हैं। जन्म-कुण्डलीमें बारह घर होते हैं और ग्रह नौ हैं। जिसका तनुस्थान सुधरे, उसको आरोग्य प्राप्त होता है और अन्तकालमें भी उसको कोई महारोग होता नहीं।

दो करोड़ जप करे, उसे द्रव्य-सुख मिलता है और वह कभी दरिद्र होता नहीं। जो तीन करोड़ जप करता है वह जो काम हाथमें ले वही प्रभु-कृपासे सफल होता है। उसका पराक्रम सिद्ध होता है और उसे यश-कीर्त्ति मिलती है। उससे तीसरा स्थान शुद्ध होता है।

चार करोड़ जप करनेवालेको संसारका सुख मिलता है। पाँच करोड़ जप करे उसकी बुद्धिमें ज्ञान स्फुरित होता है। ज्ञान प्रयत्नमात्रसे विशेष रूपसे मिलता नहीं। प्रयत्न करनेसे, पुस्तकें पढ़नेसे मात्र शब्द-ज्ञान बढ़ता है। जगत्‌में ऐसा दीखता है कि जिसका शब्द-ज्ञान बढ़ता है उसके अन्दर अभिमान बढ़ जाता है। अभिमान बढ़े तो समझो कि यह ज्ञान नहीं, ज्ञानका आभास मात्र है। ज्ञान तो परमात्मा देते हैं। गीताजीमें आज्ञा की है।

मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।

अर्जुनने जब बहुत तर्ककी बातें कीं तो प्रभुने कहा—अर्जुन! यह तर्ककी बात छोड़ दे। ज्ञान मैं देता हूँ। वह मेरी कृपासे मिलता है। प्रभुकी कृपा प्रभुके नाम-जपसे प्राप्त होती है।

सन्तोंका चरित्र पढ़ोगे तो ज्ञात होगा कि वे किसीके घर पढ़ने नहीं गये थे। ब्रजभक्तोंको ज्ञान किसने दिया था? मीराबाई और नरसी मेहता किसके घर वेदान्त पढ़ने गये थे? पण्डित तो पुस्तक पढ़कर बोलते है और सन्त, परमात्माका दर्शन करते-करते बोलते हैं। पण्डित तो पुस्तकके पीछे पड़ा हुआ है परन्तु जो परमात्माके पीछे पड़ा है उसे सच्चा ज्ञान प्राप्त होता है। सच्चा ज्ञान परमात्माके नाम-जपसे मिलता है।

जिसने प्रभुके नामका छः करोड़ जप किया है, उसके अंदरके शत्रु धीरे-धीरे मरते हैं। शत्रु बाहर कोई नहीं, शत्रु तो अन्दर बैठा है। मेरा शत्रु जगतमें नहीं, मेरा शत्रु

मेरे मनमे है। मनमें रहनेवाला काम, शत्रु है। मनमें रहनेवाला अभिमान शत्रु है। राग-द्वेष ये शत्रु है।

सात करोड़ जप करनेवालेका सप्तम स्थान सुधरता है। वह स्त्री हो तो इसका सौभाग्य अखण्ड रहता है और यदि पुरुष हो तो उसे सप्तम स्थानमें स्त्री-सुख अतिशय मिलता है।

आठ करोड़ जप करनेवालेका अष्टम स्थान सुधरता है। अष्टम स्थान, मृत्यु-स्थान है। उसका मृत्यु स्थान सुधरता है, मृत्यु सुधरती है, अपमृत्यु टलती है। वह घरमें खटियामे 'हाय-हाय' करता मरता नही। भगवान उसको अन्तकालमें गङ्गा-किनारे अथवा यमुना-किनारे बुला लेते है। इसकी मृत्यु किसी तीर्थमें होती है, पवित्र अवस्थामें होती है।

नौ करोड़ जप करनेवालेको स्वप्नमें देव-दर्शन होते हैं। वह जिस देवताके मन्त्रका जप करता है, उस देवताके सगुण स्वरूपका उसको साक्षात्कार होता है। दस, ग्यारह और बारह करोड़ जप करे तो संचित, क्रियमाण और प्रारब्ध—इन तीनोंका विनाश होता है। उसका प्रारब्ध कुछ रहता नही और तेरह करोड़ जप करे तो फिर… सियावर रामचन्द्रजीकी जय ! उसे भगवानका साक्षात् दर्शन होता है, अपरोक्षानुभूति होती है। तेरह करोड़ जप करना अर्थात् परमात्माके चरणोंमें जाना।

जप, संचित, क्रियमाण और प्रारब्धको क्षय करता है। पूर्वजन्मके पापोंका क्षय करता है। जपका फल तत्काल देखनेमें न आवे तो मानना चाहिये कि पूर्वजन्मके पाप अभी बाकी है और उनका नाश हो रहा है।

विद्यारण्य स्वामीके चरित्रमें आता है कि उनकी आर्थिक स्थिति बहुत शोचनीय थी। इससे अर्थप्राप्तिके लिए इन्होने गायत्री मत्रके चौबीस पुरश्चरण किये परन्तु कोई फल देखनेमे आया नही, इससे अतमें इन्होने संन्यास ग्रहण किया। उस समय उनको गायत्री माताका दर्शन हुआ। माताने उनसे वरदान मांगनेको कहा।

विद्यारण्य स्वामीने कहा, माताजी ! जब आवश्यकता थी तब तुम नही आयी। अब तुम्हारी क्या जरूरत है ? परन्तु यह तो कहो कि उस समय तुम तुरन्त क्यों नहीं प्रसन्न हुईं ?

गायत्री माताने कहा—तू तनिक पीछे नजर कर।

विद्यारण्य स्वामीने पीछे देखा तो उन्होने चौवीस पहाड़ जलते देखे। उनको आश्चर्य हुआ। गायत्री माताने कहा, तेरे अनेक जन्मोके पाप तेरे द्वारा की गयी तपश्चर्या-

से जल रहे हैं। तेरे चौबीस पर्वतों जैसे पापका क्षय हुआ कि तुरन्त मैं आयी हूँ। जब तक पापका क्षय न हो जाय, जीव शुद्ध न हो जाय, तबतक मेरा दर्शन होता नही।

विद्यारण्य स्वामीने कहा—माताजी! मैं शुद्ध हो गया हूँ। मुझे अब कुछ भी माँगना नहीं। बादमें विद्यारण्य स्वामीने 'पंचदशी' नामका उत्तम ग्रंथ लिखा। वेदान्तमें इस ग्रंथका बहुत महत्त्व है।

प्रभुके नाममें प्रेम न जगे, तबतक मनुष्यका जीवन सफल होता नहीं। परमात्माके नाममें जब प्रीति होती है, तब ही पापकी आदत छूटती है और पहलेके पाप जलते है।

भगवन्नाममें ऐसी शक्ति है कि मरा-मरा जप करते शरीरके ऊपर दीमक प्रकट हो गई। सप्त ऋषि वापिस जब लौटकर वहाँ आये तो उन्होंने यह देखा। ऋषियोंने उनको बाहर आनेकी आज्ञा की। और वे वल्मीकिमें-से—अर्थात् दीमकोंमें-से बाहर निकले।

वाल्मीकिजीका जीवन दिव्य बन गया। ये महान् ऋषि बने और महान् आदि कवि बने। रामायण जैसे दिव्य ग्रन्थकी इन्होने रचना की। वाल्मीकि ऋषिको परमात्माका प्रत्यक्ष दर्शन हुआ है और परमात्माकी लीलाओंका दर्शन करते-करते इन्होंने रामायणमें उसका वर्णन किया है।

भागवत जिस तरह समाधि भाषाका ग्रन्थ है, उसी प्रकार रामायण भी समाधि भाषाका ग्रन्थ है। रामायणमें, श्रीराम सदैव धनुष-बाण सजा हुआ रखते हैं। धनुष-बाण-रहित रामजीका दर्शन किसी स्थानपर नही है। वनमें रहते हों अथवा राज्यासनके ऊपर बैठे हों, श्रीरामजीके पास धनुष-बाण तो होता ही है। उपनिषद्में कहा है—

प्रणवो हि धनुः

धनुषको प्रणवकी अर्थात् ओंकारकी उपमा दी है। ओंकार अर्थात् ज्ञान। धनुष ज्ञानका स्वरूप है। बाण विवेकका स्वरूप है। ज्ञान धनुष है, विवेक बाण है। ज्ञान-धनुषको विवेक-बाणसे हमेशा सज्जित रखो। काम-राक्षस किस समय विघ्न करने आवे यह कहा नहीं जा सकता। काम-क्रोधादि और वासना रूपी ताड़का, शूर्पणखा आदि तुम्हारे पीछे पड़े हैं, तुमको मारने आते हैं परन्तु रामजीकी तरह धनुष-बाणको सज्जित रखो। ज्ञान-विवेकको सतेज रखोगे तो राक्षस मरेंगे। काम, क्रोध, लोभ, मोह इत्यादि राक्षस जीवमात्रके पीछे पड़े हैं। जो प्रतिक्षण सावधान रहता है, उसको राक्षस मार सकते नहीं।

परमात्मा श्रीकृष्णका नाम-स्वरूप जिस प्रकार भागवत् है उसी प्रकार परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीका नाम-स्वरूप रामायण है। नामके साथ प्रीति करे तो ही मन शुद्ध होता

है। भक्तिमें आनन्द आवे, ऐसी इच्छा हो तो मनको अतिशय शुद्ध रखो, सतत हरि-स्मरण करनेका अभ्यास करो। वासना एक बार अन्दर प्रवेश हुई तो फिर तुम्हारी चतुराई चलेगी नही। वामना जागनेसे मनुष्य विषय-भोगोंके पीछे दौड़ता है, उनको भोगता है और मन-को बिगाड़ता है। विषय न भोगे तो भी मन चञ्चल होता है। इस प्रकार वासनारूपी राक्षसी दोनों प्रकारसे मारती है। जो श्रीराम-नामका सतत जप करते हैं, श्रीराम-स्मरण सतत करते हैं, उनके मनमें वासना प्रवेश करती नही। सतत श्रीराम-नामका जप करे, उसकी वासना मरती है।

लौकिक वासनाको अलौकिक वासनासे निकालना पड़ता है। काँटा जिस तरह काँटेको निकालता है, उसी प्रकार अलौकिक वासना लौकिक वासनाको निकालती है। किसी स्त्री किंवा पुरुषसे मिलनेकी इच्छा लौकिक वासना है। परमात्मासे मिलनेकी इच्छा, अलौकिक वासना है। लौकिक वासनामें फँसा हुआ मन अशुद्ध होता है। अलौकिक वासना जब मनमें जागे, तब ही मन शुद्ध होता है।

मन शुद्ध होगा तो ही भक्तिमें आनन्द आवेगा। अन्य सब कुछ बिगड़े तो भले ही बिगड़े परंतु मन न बिगड़े। उसकी सावधानी रखना। इस शरीरका बहुत ध्यान रखोगे तो भी एक दिन यह बिगड़ना ही है। शरीर किसीका भी स्थायी रूपसे सही रहता नही। शरीर बिगड़ता ही है। मनुष्य शरीरका ध्यान रखता है परन्तु मनकी चौकसी रखता नहीं। बिगड़े हुए शरीरका भाग कदाचित् बदला जा सकेगा परन्तु बिगड़ा हुआ मन इस रीतिसे बदला नही जा सकेगा। शरीरको एक दिन छोड़ना ही पड़ेगा। शरीर छूट जायेगा तो दूसरा मिलेगा परन्तु मन तो मरनेके बाद भी साथ ही जाना है। तनकी अपेक्षा मनका ध्यान अधिक रखो। नामके साथ प्रीति करोगे तो ही मन पवित्र रहेगा।

जगतमे जितने महापुरुष हुए हैं, उन सबने प्रभुके नामके साथ प्रीति की है। ईश्वरका स्वरूप प्रत्यक्ष दिखाई न देनेके कारण परमात्माके नामके साथ ही प्रीति करनी पड़ती है। प्रभुने जगतमें स्वरूपको तो छिपाया है परन्तु नामको प्रकट रखा है। दूधमें जिस प्रकार माखन अति सूक्ष्म रूपमें रहता है, उसी प्रकार परमात्मा सबमें अति सूक्ष्म रूपमें विराजे रहते हैं। परमात्माका निर्गुण-निराकार स्वरूप अति सूक्ष्म है। यह आँखसे दिखाई देता नही। परमात्माका सगुण-साकार स्वरूप आँखसे दिखाई देता है परन्तु उसे देखनेकी अपनेमें शक्ति नहीं। परमात्मा शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म धारण करके अपने समक्ष प्रत्यक्ष प्रकट हो जाये तो हम जैसे साधारण मनुष्य प्रभुका तेज सहन न हो सकनेके कारण मूर्च्छामें पड़ जायेंगे।

इसलिए परमात्माके नामके साथ प्रीति करो। यह जगत परमात्माके अधीन है और परमात्मा नामके अधीन हैं। प्रभुका नामस्वरूप बहुत मधुर है, परमात्माका नाम-स्वरूप अति सरल है। अन्तःकरणकी शुद्धि प्रभुके नामसे होती है।

रामायण भगवान रामचन्द्रजीका नामस्वरूप है। रामायणका एक-एक काण्ड रामजीका एक-एक अङ्ग है। बालकाण्ड श्रीरामका चरण है, अयोध्याकाण्ड श्रीरामका कटिपर्यन्त भाग है। अरण्यकाण्ड श्रीरामका उदर है, किष्किन्धाकाण्ड श्रीरामका हृदय है, यह सुन्दरकाण्ड श्रीरामका कण्ठ है, लङ्काकाण्ड श्रीरामका मुख है, उत्तरकाण्ड श्रीरामका मस्तक है।

(२०)

मुक्तिके सात सोपान

रामायणके सात काण्ड मनुष्यकी उन्नतिकी सात सीढ़ियाँ हैं। तुलसीदास महाराजने एक-एक काण्डको सोपान नाम दिया है।

प्रथमः सोपानः।

द्वितीयः सोपानः।

सोपान अर्थात् सीढ़ी। श्रीरामके चरणोंमें जाना है। ये सात सीढ़ियाँ मनुष्यको रामजी जहाँ विराजते हैं—आत्मा रामो विराजते, वहाँ ले जाती हैं। रामजीके चरणोंमें ले जाती हैं। श्रीएकनाथ महाराजने कहा है कि एकके पीछे एक काण्डके नामकरणमें भी रहस्य है।

रामायणके पहले काण्डका नाम है बालकाण्ड। तुमको भक्तिमार्गमें आगे बढ़ना हो तो तुम बालक जैसे बनो। जगतमें तुम्हारा ज्ञान बढ़े, मान बढ़े, परमात्मा तुमको अतिशय धन दें, खूब सुखी करें, तो भी मनसे बालक जैसे बने रहो। जिसका मन बालक जैसा है, उसकी भक्ति ही भगवानको प्रिय है।

बालकका मन निर्दोष होता है। बालकके मनमें विकार नहीं, वासना नहीं, मान नहीं, मोह नहीं। बालकको कोई धोखा दे और बालक रोने लगे तब कोई उसको पेड़ा देवे तो बालक भूल जाता है कि इसने मुझे धोखा दिया है। वह बेचारा पेड़ा लेनेको दौड़ता

जाता है। तुम्हारा कदाचित् कोई अपमान करे और वह तुमको प्रभुका प्रसाद दे तो प्रसादको लेने क्या तुम जाओगे? बालकका मन अमान है। उसे अभिमानका स्पर्श नहीं।

बालकको कपट करनेकी बुद्धि नहीं, झूँठ बोलनेका ज्ञान नहीं, उसे तो किसी समय माँ या बाप झूँठ बोलना सिखा देते है तो ही वह झूँठ बोलता है। बालकको असत्य बोलना आता ही नहीं।

एक बार ऐसा हुआ कि घरधनीने जङ्गलेमे-से देखा कि सेठ कुछ उगाही करने आ रहा है। घरमें तीन वर्षका बालक था, उससे कहा कि बेटा! तू बाहर जा और पहला सेठ आता है, उससे कहना कि मेरा बाप घरमें नहीं है। बालकने कहा—पिताजी! तुम तो घरमें हो तो मैं कैसे कहूँ कि घरमे नहीं है? बापने कहा—मैं तुझे पेड़ा दूंगा। तू बाहर जाकर ऐसा बोलना कि मेरा बाप घरमे नही। वह बालक बाहर आया और सेठसे कहा कि मेरे बापने मुझसे कहा है कि मैं पेड़ा दूंगा, मेरा बाप घरमें नहीं है।

बालकमें कपट करनेकी अक्ल कहाँ है? उसको झूँठ बोलनेका ज्ञान नहीं है। यह भोला है, सरल है, इसीसे तो बालक भगवानको बहुत प्यारे लगते हैं। श्रीकृष्ण तो बालकों-के लिए माखन-चोर कहलाते है। वे कहते हैं, लोग भले ही मुझे माखन-चोर कहें परन्तु मैं बालकोंको माखन खिलाऊँगा।

बालककी दृष्टि और मन इतने अधिक शुद्ध होते हैं कि उनको देखनेवालेका भी मन बिगड़ता नहीं। दृष्टि बालककी जैसी रखो। बालककी आँख निर्दोष होती है। दोष, मनुष्यकी आँखोंसे मनमें आता है, इसलिए दृष्टिके ऊपर अंकुश रखोगे तो जीवन निर्दोष बनेगा। जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि। बालककी जैसी निर्दोष-निर्विकारी दृष्टि रखोगे तो रामजीके स्वरूपको पहचान सकोगे। रामजीको घरमें पधराना हो तो तुम हृदयसे बालक बनो। बालक जैसे निर्दोष और निर्विकारी बनोगे तो रामजीको ठीक लगोगे। बड़े-बड़े सन्तोका हृदय बालक जैसा होता है।

बालकाण्ड हमको बोध कराता है कि मन, वाणी और क्रिया एक रखो। मन, वाणी और क्रिया एक हो तभी भक्तिमे आनन्द आता है। मानव, भक्ति नहीं करता, ऐसा नहीं। वह भक्ति करता है परन्तु सतत भक्ति करता नहीं। इसका कारण यह है कि उसे भक्तिमें आनन्द आता नहीं और फिर यह भगवानकी भक्ति छोड़कर संसारके विषयोंमें आनन्द लेने जाता है। मानवको भक्तिमें आनन्द आवे तो वह भक्ति छोड़े नहीं। भक्तिमे आनन्द उसको आता है, जिसके मन, वाणी और क्रिया एक होती हैं। मनमें जो है, वही बोलो और जैसा बोलो वैसा आचरण रखो, वैसी क्रिया करो।

मनुष्य वाणीमें मिठास रखता है परन्तु इसके मनमें बहुत मिठास नहीं। इसके मनमें तो अनेक बार कड़वाहट होती है, पाप होता है परन्तु मनका पाप वह छिपाता है। वह बोलता है कुछ और करता है कुछ और। बालकाण्ड कहता है कि तुम बालक जैसे बनो। बालकका मन, वाणी और क्रिया एक होती है। बालकमें छल-कपट होता नहीं।

बालक निरभिमानी होता है। तुम्हारा ज्ञान बढ़े परन्तु सावधान रहना कि ज्ञान-का अभिमान तुमको स्पर्श न करे। इस जीवके पास अभिमान करने जैसा कुछ भी तो नहीं। फिर भी बहुत अभिमान करता है। सब छोड़ना सहज है परन्तु अहं छोड़ना बहुत कठिन है। ज्ञानीपन रखकर भक्ति करोगे तो भक्ति हो सकेगी नहीं। भगवानके पास बालककी तरह अज्ञानी बनकर जाओ। अज्ञानी बालकके माता-पिता उसका बहुत खयाल रखते हैं। पढ़े-लिखे बालककी चिन्ता माता-पिताको उतनी होती नहीं। यह कुछ तोड़-फोड़ लेगा, इस बातकी ओरसे उनको निश्चिन्तता होती है। जो मूर्ख है, अज्ञानी है, उसकी चिन्ता माँ-बापको अधिक होती है। परमात्माके पास अज्ञानी बनकर जाओ। ज्ञान ठीक है परन्तु ज्ञानका अभिमान पतन कराता है। किसीको भी हल्का मत गिनो। सर्वमें ईश्वर-का अनुभव करनेके लिए ज्ञान है, कोई हल्का है, ऐसा समझनेके लिए नहीं। दूसरोंको जो हल्का समझता है, वह स्वयं ही हल्का है।

बालकाण्ड ज्ञान कराता है कि निरभिमानी बनो और निर्मोह बनो।

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषाः।

जीवनमें धीरे-धीरे संयम बढ़ाते जाओगे तो बालक जैसे निर्मोह बनोगे। मान-अपमान भूल जाओगे तो बालक जैसे निर्मान हो सकोगे।

बालकाण्डके पीछे आता है अयोध्याकाण्ड। जिसका मन बालक जैसा है, उसका शरीर अयोध्या बनता है। अयोध्या अर्थात् जहाँ युद्ध नहीं, कलह नहीं, वैर नहीं, ऐसी काया। जहाँ झगड़ा नहीं, वैरभाव नहीं, स्वार्थ-भावना अथवा विषमता नहीं, वह ही अयोध्या है और वहींपर श्रीराम, अवतार धारण करने आते हैं। जब कैकेयीके मनमें विषमता या स्वार्थ जगता है, तब श्रीराम अयोध्या छोड़ जाते हैं।

कथा सुनते हो तो आजसे ऐसा निश्चय करो कि इस जगतमें मेरा कोई शत्रु नहीं, मेरा किसीने कुछ भी बिगाड़ा नहीं। मेरा बिगड़ा है, मेरे पापके कारण। किसीने मुझे दुःख दिया नहीं, मेरा दुःखका कारण मेरे पाप है।

भूतेषु बद्धवैरेण न मनुष्यः शान्तिमृच्छति।

जगतमें एक जीवमें भी कुभाव रखोगे तो तन, मन दोनों बिगड़ेंगे। कोई किसी-का बिगाड़ता नही, सबको किये हुए कर्मोका फल भोगना पड़ता है। मनमें निश्चय करो कि नया पाप न हो, ऐसी सावधानी मुझे रखनी है। जो पाप लेकर आया हूँ, उनको भोग-कर मुझे पूरा करना है। पाप भोगनेके लिए ही तो यह जन्म मुझे लेना पड़ा है। जिसने बिलकुल पाप किया ही नही अथवा जिसका पाप शेष रहा ही नहीं, वह तो प्रभुके चरणोंमें ही रहता है। उसे जन्म लेना पड़ता नही।

अयोध्याकाण्ड ज्ञान सिखाता है कि निर्वैर बनो। मनके साथ निश्चय करो कि मेरा कोई शत्रु नही। मैं किसीका शत्रु नही। युद्ध न करो। थोड़ा जीवन है। जीवन बहुत छोटा है, इसलिए इस छोटेसे जीवनमे वैर-भाव किसलिए करते हो? जीवका जगतके साथ सम्बन्ध सच्चा नही। कभी-न-कभी जगतका सम्बन्ध छोड़ना ही पड़ता है। तुम्हारा सच्चा सम्बन्ध परमात्माके साथ है।

अयोध्याकाण्ड शिक्षा देता है कि तुम सरयूजी अर्थात् भक्तिके किनारे रहना। भक्तिके किनारे रहोगे तो युद्ध होगा नही। जो भक्तिके किनारे रहता है वही निर्वैर बनता है। आज तक तो आप सब भक्तिके किनारे ही हो परन्तु आनेवाले कलमें कहाँ रहोगे, यह तो भगवान जाने।

कथाकी भले ही पूर्णाहुति हो जाय परन्तु भक्तिकी पूर्णाहुति न करो। कितने ही लोग ऐसे होते हैं कि कथा होती है तब तक तो खूब भक्ति करते हैं, एकबार भोजन करते हैं, उपवास करते हैं, मौन रखते हैं, ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं और किसीकी निन्दा नहीं करते हैं परन्तु जहाँ कथाकी समाप्ति हुई कि—'बीत गयी बात।' भक्तिकी समाप्ति न करो। सदैव भक्तिके किनारे रहो, भक्तिको व्यसन बनाओ।

सन्तोंकी आँखको, इन्द्रियोको और इनके चित्तको भक्तिका भारी व्यसन होता है। ये एक क्षण भी प्रभुके नाम-स्मरण बिना रह सकते नही। साधारण मनुष्यको भक्ति-का व्यसन होता नही। अन्य व्यसन होते हैं। यह घण्टे-दो-घण्टे ठाकुरजीके पास बैठते हैं, पीछे ठाकुरजीको पीढ़ा देते हैं। प्रभु कहते हैं कि अरे! मैं कुम्भकर्णका बाप नहीं हूँ, जो बाईस घण्टे सोऊँ। जो भक्तिकी समाप्ति करता है, वह भक्तिका रहस्य जानता ही नहीं। भक्ति तो जीवनकी अन्तिम श्वास तक करनी आवश्यक है।

मन ईश्वरमे हो और ईश्वर-स्मरण करते हुए शरीर त्याग करे तो मुक्ति मिलती है। समस्त जीवन जिसके लिए व्यतीत हुआ हो, वही अंत समय स्मृतिमें आवेगा। बहुत पुण्यशाली जीव हो, जीवनमें सतत जिसने राम-नामका जप किया हो, उसको ही अन्त-कालमें राम-नामका स्मरण रहता है।

जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं । अन्त राम कहि आवत नाहीं ॥

सम्पूर्ण जीवन श्रीराम-स्मरणमें गया हो तो ही अन्तकालमें श्रीराम याद आवेंगे। मनको ईश्वरका सतत स्मरण करानेके लिए जपको छोड़कर अन्य कोई साधन नहीं। जीभसे प्रभुके नामका जप करो और मनसे प्रभुका स्मरण करो। अन्तकाल तक जप चालू ही रखो। जपकी पूर्णाहुति न हो, भजनकी, भक्तिकी समाप्ति न हो। शरीरकी समाप्तिके साथ ही भजनकी समाप्ति। भक्ति जीवनके अन्त तक करो।

एक भाई हमको पूछने आये कि महाराज! मैंने राम-नामका एक करोड़ जप किया है। अब उसकी पूर्णाहुति करनेका मेरा विचार है। उस पूर्णाहुतिमें मुझे क्या-क्या करना है? कोई ऐसा पूछने आता नहीं कि मैं बहुत वर्षोंसे दाल-भात खाता हूँ सो अब मुझे दाल-भातकी पूर्णाहुति करनी है। अरे, दाल-भातकी पूर्णाहुति नहीं तो राम-नामकी पूर्णाहुति कहीं होती है? जीवनके अन्तिम दिन तक इस पेटकी थोड़ी-सी तो पूजा करनी ही पड़ती है। पेटको कुछ देना ही पड़ता है। भोजनकी पूर्णाहुति नहीं तो प्रभु-भजनकी पूर्णाहुति किस प्रकार हो सकती है? भक्तिकी पूर्णाहुति होती नहीं, भक्ति तो निरन्तर करनी है।

भक्तिके किनारे जो रहता है, वह युद्ध करता नहीं। उसका मन अयोध्या बनता है। भक्ति अर्थात् प्रेम। अयोध्याकाण्ड प्रेमका दान करता है। भाई-भाईके बीचका प्रेम, पिता-पुत्रके बीचका प्रेम, पति-पत्नीका प्रेम, राजा-प्रजाका प्रेम। अयोध्याकाण्डका पाठ जो करता है, उसका घर अयोध्या बनता है। जिस घरमें दो भाइयोंका झगड़ा होता होवे, उस घरमें अयोध्याकाण्डका पाठ करना चाहिए।

इस कलियुगमें दो सगे भाई भी एक घरमें साथ रह सकते नहीं। विवाह हुआ कि अलग होनेकी बात आ जाती है। संयुक्त कुटुम्बकी अपनी प्रथा अब भुलायी जा रही है। संयुक्त कुटुम्बकी प्रथा अपने तीन महान् ग्रन्थोंका आदर्श है। श्रीकृष्ण-बलराम दो भाई थे पर घर एक ही था। श्रीराम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न चार भाई थे परन्तु घर एक ही था। पाण्डव पाँच थे फिर भी घर एक ही था। भागवत, रामायण और महाभारत—इन तीनों ग्रन्थोंका आदर्श एक ही है, संयुक्त कुटुम्ब।

सब भाई आपसमें मन उदार रखें, आँखमें प्रेम रखें तो घरमें झगड़ा होगा नहीं। जिस घरमें झगड़ा नहीं अपितु प्रेम है, वह घर तीर्थस्थान बनेगा, अयोध्या बनेगा और रामजी वहाँ निवास करेंगे। तीर्थमें रहो, यह ठीक है परन्तु तुम अपने शरीरको और घरको तीर्थ जैसा पवित्र बनाओ तो उत्तम है। अयोध्याकाण्डका जिस घरमें पाठ होता है,

वह घर अयोध्या जैसा बनता है। घरमे भाई लोग अयोध्याकाण्डका पाठ करे तो झगड़ा हो ही नही।

अयोध्याकाण्डकी यह फलश्रुति है कि अयोध्याकाण्डका जहाँ पाठ होता है, वहाँ युद्ध होता नही। जहाँ कलह होती हो, उस घरमे हनुमानजीके पास दीपक जलाकर हनुमानजीको रामायण सुनाओ। ग्रंथोमे लिखा है कि रामजी महाराज स्वधाम पधारे, उस समय हनुमानजी साथ गये नही। हनुमानजी यही पर रह गये।

तुम श्रीअयोध्या गये होगे। अयोध्यामे सरयू गङ्गाके अनेक घाट है। सरयू गङ्गाका प्रवाह अति विशाल है। वहाँ एक घाटका नाम है, गुप्त घाट। अयोध्याके साधु-सन्त ऐसा कहते है कि श्रीरामजी यहाँ पधारे हैं और यहीसे गुप्त हुए हैं। स्वधाम पधारे हैं। अयोध्याकी प्रजाको भी प्रभुने मुक्ति दी है। रामजीने हनुमानजीसे कहा—'तुम चलो' परन्तु हनुमानजीने मनाही की कि मुझे नही आना। जब तक श्रीराम-नाम जगतमे है, श्रीराम-कथा जगतमे है, तब तक मैं जगतमे रहूँगा। मुझे वैकुण्ठमें भी आना नही। श्रीराम-नाममे और श्रीराम-कथामे मुझे बहुत आनन्द आता है।

श्रीराम-कथा सुननेके लिए हनुमानजी यहीपर पृथ्वीपर ही रह रहे है। वैकुण्ठ गये नही। हनुमानजी-महाराज अमर हैं, सप्तचिरजीवियोमें हनुमानजीकी गिनती है।

अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनुमांश्च विभीषणः।
कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः॥

अश्वत्थामा, बलिराजा, व्यास, हनुमान, विभीषण, कृपाचार्य और परशुराम—ये सात चिरजीवी हैं।

जहाँ-जहाँ श्रीराम-कथा, श्रीराम-कीर्त्तन होता है, वहाँ हनुमानजी हाथ जोड़कर, मस्तक नवाकर प्रेम-पुलकित अश्रुभरी आँखोसे तल्लीनतासे सुनते है। रामकी शक्ति इनमे समायी हुई है। हनुमानजी राक्षसोका, राक्षस-वृत्तियोंका विध्वंस करनेवाले है।

यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनम् तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम्।
बाष्पवारिपरिपूर्णलोचनम् मारुतिं नमत राक्षसान्तकम्॥

जहाँ श्रीराम-कथा होती है, वहाँ हनुमानजी महाराज पधारते है परन्तु पीछे कथामे कुम्भकर्णकी स्त्री भी आती है। कुम्भकर्ण युद्धमे मर गया और उसकी स्त्री विधवा हुई। वह भगवानके पास आकर कहने लगी कि अपने पतिके बिना अब मुझे किसका आसरा है, मैं अब समय कैसे व्यतीत करूँ? भगवानने कहा—तू नाटक-चेटक देखने जाया कर। कुम्भकर्णकी विधवा पत्नीने कहा, मैं वहाँ नही जाऊँगी, मैं पतिव्रता स्त्री हूँ। तुमने मेरे

पतिको मारा, इसलिए मैंने तुम्हारे साथ वैर बढ़ाया है। इसलिए जहाँ लोग तुम्हारी कथा करते होंगे, वहाँ मैं जाऊँगी। कथामें बैठा हो अथवा हाथमें माला ली हुई हो तो तुरन्त कुम्भकर्णकी स्त्री निद्रादेवी आकर खड़ी हो जाती है। दो-चार रात्रिका जागरण हो तो भी नाटक, सिनेमामें नींद नहीं आती। कथा हँसनेके लिए नही, ज्ञान लेनेके लिए है।

श्रीराम-कथा जहाँ होती है, हनुमानजी महाराज अवश्य पधारते हैं। एकनाथ महाराजके चरित्रमें एक सुन्दर प्रसङ्ग आता है। एकनाथ महाराज सुन्दरकाण्डकी कथा कर रहे थे। श्रीसीताजीकी खोजमें समुद्रका उल्लंघन करके हनुमानजी लङ्कामें आये हैं। खोजते-खोजते अशोक-वनमें गये है। श्रीसीताजी जहाँ हों, वहीं अशोक-वन है। श्रीसीताजी पराभक्तिका स्वरूप है। भक्ति जहाँ हो, वहाँ शोक नहीं होता। एकनाथ महाराजने कथामें कहा कि हनुमानजी जिस समय अशोक-वनमें आये, उस समय वहांके वृक्षों और लताओंपर श्वेत पुष्प खिल रहे थे।

श्रीएकनाथ महाराजकी कथा हो रही थी, उस समय नियमानुसार हनुमानजी भी वहाँ कथा सुनने पधारे। हनुमानजीने प्रगट होकर एकनाथ महाराजकी इस बातका विरोध किया। हनुमानजीने कहा—महाराज! तुम यह गलत कह रहे हो। मैंने उस समय अशोक-वनमें अपनी आँखोंसे प्रत्यक्ष फूल देखे और वे सफेद नहीं परन्तु लाल थे।

एकनाथ महाराजने कहा—मैं तो अपने रामजीको रिझानेके लिए कथा करता हूँ। मुझे जैसा दिखाई देता है, वैसा ही वर्णन करता हूँ।

यह झगड़ा अंतमें श्रीरामचन्द्रजीके पास गया। रामजीने कहा—तुम दोनों सत्य हो। फूल थे तो सफेद परन्तु हनुमानजीकी आँख उस समय क्रोधसे लाल हो रही थीं इसलिए उनको वे लाल दीख रहे थे।

हनुमानजी रामायण सुनने आते है। जीवनमें किसी भी सङ्कटका प्रसङ्ग आवे तो हनुमानजीको तुम रामायण सुनाओ। शास्त्रमें ऐसा लिखा है कि जो हनुमानजीको रामायण सुनाता है, उसके लिए सभी ग्रह अनुकूल हो जाते है। छोटी-मोटी दशा आवे तो शनि महाराज कितनोंको ही धक्का मारते हैं। शनि महाराज तो देवस्वरूप हैं। शनि महाराजकी दृष्टिमें कोई शत्रु नहीं, कोई मित्र नहीं। लोग कहते हैं कि शनि महाराज कुपित हैं। अरे, शनि महाराज किसीसे कुपित नहीं हैं। शनि महाराज तो किए हुए कर्मोंकी सजा देते हैं। मनुष्यको उसके पापकी सजा देते है। तुम हनुमानजीको रामायण सुनाओगे तो शनि महाराज राजी होंगे। जो हनुमानजीको रामायण सुनाता है उसके पाप जलते हैं।

जगतमें ऐसी कोई भाषा नहीं, जिसमे रामायण न हो। प्रत्येक भाषामें राम-चरित्रका वर्णन हुआ है। जब-जब तुमको फुर्सत मिले, तव रामायणका पाठ करो, अन्य बातें न करो। कितने ही लोगोंको ऐसी आदत होती है कि जहाँ फुर्सत मिली कि पड़ोसी-के यहाँ गप्प मारने चले जाते हैं। जाकर कहते हैं, मैं तुम्हारे घर आया हूँ। पडोसी कहता है, आये तो बहुत अच्छा किया परन्तु पीछे मनमे वह वोलता है कि तुम्हारा तो विगड़ा हुआ है और मेरा भी बिगाड़ने आये हो। बिना कारण किसीके घर जाना, बिना कामके किसीके घर ज्यादा बैठना, यह ठीक नही। व्यर्थ बैठना नही, ज्यादा बोलना नहीं। शृङ्गारका चित्र देखना नही, शृङ्गारकी बात सुननी नहीं, शृङ्गारकी पुस्तक पढ़ना नहीं। जब-जब फुर्सत मिले, तभी हनुमानजीको रामायण सुनाओ। तुम्हारा पाप जलेगा, तुम्हारी बुद्धि शुद्ध होगी, तुम्हारे घरसे झगड़ा मिटेगा। श्रीराम-कथा अति दिव्य कथा है।

जिसमें समस्त दिव्य सद्गुण एकत्रित हो जायें, वही परमात्मा हैं। श्रीराम सर्वगुणोंके भण्डार हैं। लक्ष्मणजी विवेकके स्वरूप हैं। भरत वैराग्यके और शत्रुघ्नजी सद्विचारके स्वरूप हैं। भरत और शत्रुघ्न अर्थात् वैराग्य और सद्विचार यदि इस अयोध्यारूपी शरीरमें न हों तो दशरथरूपी जीव कैकेयीके, कामके, दुर्बुद्धिके अधीन हो जाय परन्तु वैराग्य और सद्विचार हों तो जीव कामके, दुर्बुद्धिके अधीन होता नहीं।

अयोध्याकाण्डमे किसीको लोभ हो, ऐसा दीखता नही। रामजीको राज्यका लोभ नहीं। भाईके सुखके लिए रामजी हँसते-हँसते वनमे गये। मिले हुए राज्यको भरतजीने भी लिया नही। भरतजीको भी राज्यका लोभ नही। भरतजी कहते हैं कि यह राज्य मेरे बड़े भाईका है। मैं तो उनका सेवक हूँ। रामजी वनमें गये, वहाँ गुह राजा अपना राज्य रामजीके चरणोमें अर्पण करता है परन्तु रामजी उसे लेते नही।

अयोध्याकाण्डमें लोभ दिखाई देता नही। इसलिए उसमें युद्ध नही। रामायणमें सात काण्डोमें-से छः काण्डोंमें युद्धकी कथा आती है। बालकाण्डमें रामजी और राक्षसोका युद्ध, अरण्यकाण्डमें खरदूषणके साथ युद्ध, किष्किन्धाकाण्डमे वालि और सुग्रीवका युद्ध, सुन्दरकाण्डमें हनुमानजी और राक्षसोंका युद्ध, लङ्काकाण्डमें राम-रावण-युद्ध और उत्तर-काण्डमें दिग्विजय, समयका युद्ध—इस प्रकार प्रत्येक काण्डमें युद्धकी कथा है। केवल एक अयोध्याकाण्डमें ही नही है। अयोध्याकाण्ड ज्ञान देता है कि प्रभुकी पधरावनी करनी हो, तुम्हारे अन्दर श्रीरामजी निवास करें, ऐसी इच्छा हो, प्रभुके चरणोमें जाना हो तो युद्ध न करो। मनमें-से वैरको दूर करो, कुभावको त्यागो।

कदाचित् तुम्हारा कोई नुकसान करे, तुमको कोई बिना कारण सतावे तो भगवान तुम्हारे शत्रुको देखेंगे। भगवान अन्धे नही। ईश्वरके राज्यमें तनिक भी अन्याय हुआ

नही, होता भी नही। प्रभुके राज्यमें देर हो सकती है पर अन्धेर नही। तुम्हारे शत्रुको भगवान सजा देनेवाले है परन्तु तुम उसके लिए तनिक भी कुभाव न रखो।

अयोध्याकाण्डके पीछे आता है अरण्यकाण्ड। अरण्यकाण्ड निर्व्यसन बनाता है। अरण्यकाण्ड बोध कराता है कि धीरे-धीरे संयम बढ़ाकर वासनाका विनाश करो। निर्वैर होनेके पीछे भी वासना त्रास देती है। मानवका मन अनेक पाप-वासनाओंसे दूषित हो चुका है। वह अधिकतर काम-वासना भोगनेके लिए ही आतुर रहता है, अनेक प्रकारके भय और चिन्ताओंसे व्याकुल रहता है। मन कामातुर है, भयसे व्याप्त है और नाना प्रकारकी इच्छाओंसे पीड़ित है। मानवको दुख देने वाली यह वासना ही है।

योगवशिष्ठमें एक स्थानपर श्रीरामचन्द्रजीने वशिष्ठ ऋषिसे कहा—

तरन्तिमातंग घटातरंगं रणाम्बुधिं ये मयि ते न शूराः।
शूरास्त एवेह मनस्तरंगं देहेन्द्रियाम्भोधिं इमं तरन्ति॥

गुरुदेव ! युद्ध-भूमि हो और सामने शत्रुके पहाड़ जैसे मोटे हाथियोंकी पक्तियां गरज रही हों, हाथियोंकी ऐसी विशाल सेनाको स्वयंके बाहुबलसे छिन्न-भिन्न कर सके, स्वयंकी शक्तिसे उसका भेदन करके पार निकल जाये, यह ठीक है। वह मनुष्य बहुत हिम्मत वाला है परन्तु मैं उसको शूरवीर नही कहता। मेरे मतमें सच्चा शूरवीर तो वह है कि जो शरीर-रूपी समुद्रमें उठती हुई मनकी तरङ्गोंको, मनकी इच्छा-आकांक्षाओंको, मनकी विकार-वासनाओंको संयमसे पार कर जाये। जो संयमी है, वही खरा शूरवीर है। वासनाओंके ऊपर जो विजय पाता है, वही सच्चा पराक्रमी है। जो वासनाओंका गुलाम बन जाता है वह निर्बल है। वह संसारमें हार जाता है। उसके यह लोक और परलोक दोनों बिगड़ते है। वासनाओंको संयमसे जीतो।

वासनाओंको चाहे जितना भोग प्राप्त हो, वे कभी भी तृप्त होती नही। भोग भोगनेसे तो वासना बढ़ती ही जाती है। अग्निमें घीकी आहुतिसे जिस प्रकार अग्नि शान्त होती नहीं और अधिक प्रज्वलित होती है, उसी प्रकार भोग भोगनेसे वासना शान्त होती नहीं, और अधिक प्रबल बनती हैं। वासना ऐसी भिखारिन है कि वह खिलानेवालेको ही खा जाती है। इसकी तृप्ति होती ही नहीं।

विवेक और संयमसे ही वासना शान्त होती है। अग्निमें लकड़ी डालो तभी तक वह सुलगती है परन्तु लकड़ी डालना बन्द होते ही अग्नि आपसे आप शान्त हो जाती है। उसी प्रकार वासनाओंको भोग परसते रहो, तबतक वे पनपती रहती हैं और भोग देना बन्द हो जाय तो आपसे आप शान्त हो जाती है। पूर्वकालमें भाजी-रोटीमें जो शान्ति

और आनन्दका अनुभव अपने पूर्वजोको होता था, वह आज भाँति-भाँतिके मिष्टान्नोमे और मोटर बङ्गलोमें भी अपनेको होता नही। कारण, जितने सुखकी व्यवस्था और भोग-विलासका साधन बढ़ता जाता है, उतनी ही मनुष्यकी वासना भी बढती जाती हैं। जीवन-मे सादगी, सन्तोष और संयम होगा तो ही शान्ति और आनन्दका अनुभव होगा। सुख भोगनेकी इच्छा ही दुःख है। भगवान तुमको सुख दे तो विवेकसे प्रभुका स्मरण करते हुए थोड़ा सुख भोगो तो बाधा नही।

बहुत सुख भोगनेसे तन आलसी होता है। बहुत सुख भोगनेसे मन बिगड़ता है। विवेकसे थोडा सुख भोगो परन्तु अमुक सुख मुझे भोगना ही है, ऐसा सङ्कल्प न करो। सुख भोगनेके संकल्पसे मन बहुत बिगडता है। धीरे-धीरे वासनाओका विनाश करो। वासनाओका विनाश करनेके लिए थोड़े दिन घर छोडकर वनमे रहनेकी भी आवश्यकता है।

गृहस्थका घर कामभूमि है। गृहस्थके घरमें कामके परमाणु फिरते हैं। भोगभूमिमें भक्ति बराबर होती नही। भोग, भक्तिमे बाधक है। भोगमे प्रतिक्षण आनन्द घटता जाता है, जब कि भक्तिमे प्रतिक्षण आनन्द बढ़ता जाता है। भक्ति करनेके लिये स्थान-शुद्धिकी बहुत आवश्यकता है। स्थानीय वातावरणका प्रभाव मनके ऊपर रहता है। गृहस्थके घरमें कामके परमाणु भरे हुए होनेके कारण घरमें रहकर परमात्माका सतत ध्यान करना कठिन है। चित्त पूरी एकाग्रतासे प्रभु-चरणोमे चिपक सकता नही। घरकी एक-एक वस्तुमें ममता होती है। आँखे यह देखती है, इसलिए मोह होता है। वासना जगती है।

गृहस्थ घरमे समभाव रख सकता नही। गृहस्थाश्रमका व्यवहार विषमताओसे भरा हुआ है। वहाँ समता बहुत रह सकती नही। जबतक संसारका सम्बन्ध है, तबतक ब्रह्म-सम्बन्ध होता नही। धीरे-धीरे संसारका सम्बन्ध कम करो, संयम बढाओ। संयमके बिना भक्तिमें आगे बढ सकते नही। आँखका संयम बढ़ाओ, जीभका संयम बढाओ, मनका संयम बढ़ाओ। जिसको देखनेकी अत्यन्त आवश्यकता प्रतीत हो, उसीको देखो। आवश्यक हो, उतना ही बोलो। संयम बिना सुखी हो सकते नही। जो इन्द्रियोंका गुलाम है, वह भक्ति कर सकता नही। संयम और सदाचार बढाओ तो वासनाओंका नाश हो, मन शुद्ध हो और भक्तिमें आनन्द आवे।

विलासी लोगोंका सङ्ग मनको बिगाड़ता है। वासनाओंको जाग्रत करता है। विलासी लोगोंके सङ्गमे रहकर वासनाओंका नाश करना अशक्य है। थोड़े दिनके लिए विलासी लोगोका सङ्ग छोडकर एकान्तमे रहो। शरीर बिगड़ता है तो लोग वायु-परिवर्त्तन करनेके लिए जाते हैं कि जहाँ अच्छी हवा हो, अच्छा पानी हो, वही शक्ति आवे,

शरीर सुधरे। शरीर बिगड़ जानेपर जिस प्रकार हवा बदलनेकी आवश्यकता पड़ती है, उसी प्रकार बिगड़े हुए मनको सुधारनेके लिए घर छोड़कर किसी पवित्र तीर्थमें रहनेकी आवश्यकता है, एकान्तवासकी आवश्यकता है। एकान्तमें ईश्वर-भजन करो। एकान्त मनको जल्दी एकाग्र बनाता है। एक ईश्वरमें सर्वका अंत करना, उसका नाम एकान्त। मनको ईश्वरमें एकाग्र करना हो तो एकान्तमें रहनेकी बहुत आवश्यकता है। एकान्तमें जिसका मन शान्त रहता है, एकान्तमें जिसको प्रभु-भजनमें थोड़ा भी आनन्द आता है, उसकी बुद्धिमें ज्ञान, स्फुरण पाता है। उसकी वासनाओंका धीरे-धीरे नाश होता है।

वासना जगती है अज्ञानसे—शरीरका सुख मेरा सुख है, ऐसे अज्ञानसे वासना जागृत होती है। परमात्माका ज्ञान न हो, तबतक वासनाओंका नाश होता नहीं। वासनासे पाप होता है। पापका मूल है अज्ञान। अज्ञानका विनाश ज्ञानसे होता है। वासनाओंका विनाश करनेके लिये ज्ञानकी आवश्यकता है। एकान्तमें शान्त चित्तसे प्रभु-भजन करनेसे बुद्धिमें ज्ञान, स्फुरित होता है। ज्ञान-भक्ति बढ़ानी हो तो थोड़े दिन घर अवश्य छोड़ना। बारह महीने बँगलेमें रहे, उसकी ज्ञान-भक्ति बढ़ती नही।

आजकल कितनोंको ही घरमें रोज थप्पड़ पड़ता है परन्तु घर छोड़कर जाते नही। लड़के अपमान करते है, फिर भी घरमे बैठे रहते है। अरे, पाँच वर्षका बालक ध्रुव घरमें तनिक-सा अपमान होते ही घर छोड़कर चल निकला और वनमें तपश्चर्या करके उसने परमात्माका दर्शन किया। वृद्धावस्था है, सबको छोड़कर चले जानेका समय निकट है, माथेपर काल बैठा है, फिर भी यह जीव मोह छोड़ सकता नहीं, घर छोड़ सकता नही।

व्याघ्रीव तिष्ठति जरा परितर्जयन्ती रोगाश्च शत्रव इव प्रहरन्ति देहम्।
आयुः परिस्रवति भिन्नघटादिवाम्भः लोकस्तथाप्यहितमाचरतीति चित्रम्॥

वृद्धावस्था भूखी बाघिन जैसी है। वह मनुष्यकी छातीके ऊपर चढ़ बैठनेके लिए तड़प रही है। शरीरमें अनेक प्रकारके रोग शत्रुकी तरह घुस गये है। ये शरीरको ले जानेके लिए तैयार बैठे है। किसी चटखे हुए घड़ेके अन्दर पानी रखा हो और वह पानी जिस प्रकार बहने लग जाता है, उसी प्रकार मनुष्यके जीवनका समय शनैः-शनैः रिस रहा है। इसपर भी मनुष्यको स्वयंके हित-अहितका ज्ञान नहीं होता, यह कैसी विचित्र बात है।

वृद्धावस्थामें घरके लोग बहुत त्रास देते हैं। कोई कुछ सुनता नहीं, कहा मानता नहीं। अरे! घरमें बूढ़ेके साथ कोई बात करनेको भी राजी नहीं।

पश्चाज्जीवति जर्जरदेहे ।
वार्ता कोऽपि न पृच्छति गेहे ॥ भज गोविन्दम्…

घरमें कोई खैर-खबर पूछता नही । फिर भी घरकी आसक्ति छूटती नही । तुम जिनके प्रति अत्यन्त आसक्ति रखोगे, वे ही तुमको अधिक रुलावेंगे । समझकर घर छोड़ोगे तो कल्याण है, नही तो काल धक्का मारेगा और तब घर छोड़ना तो पड़ेगा ही ।

अन्तकालमें घबड़ाहट क्यों होती है ? इस जीवको घर छोड़ना सहन होता नही और यमदूत जबर्दस्ती घर छुड़ाते हैं । जैसे-तैसे घर छोड़ना तो पड़ेगा ही । छोड़े बिना छुटकारा नही । अरे, जबर्दस्ती छुड़वानेसे तुमको त्रास होता है, वहुत वेदना होती है । समझकर घर छोड़े, वह बुद्धिमान है । तुम समझकर ही महीने-दो-महीनेके लिये घर छोड़ दो तो क्या बुरा है ?

एक-दो महीने किसी पवित्र तीर्थमें रहकर प्रभुका भजन करो । मानव वनमें रहकर तप न करे, तबतक इसके जीवनमे दिव्यता आती नही । श्रीरामचन्द्रजी राजा होते हुए भी वनमें गये है । वनमें रामजी दाल-भात खाते नही हैं । फल खाते हैं । कन्द-मूल आरोगते है । वनवासके मध्यमें रामजीने अनाज लिया नही । अन्नमें रजोगुण है । रजोगुणसे कामकी उत्पत्ति है । सात्त्विक आहार बिना कामको मार सकते नही । सात्त्विक आहार करनेसे धीरे-धीरे इन्द्रियोंको वशमे ला सकते हो । जबतक जीभ वशमे न आवे, तबतक अन्य इन्द्रियोको निग्रह करना कठिन है ।

रामजी वनमे तपश्चर्या करते हैं । रामजी वनवासके मध्यमे धातुके किसी पात्रका स्पर्श करते नहीं । प्यास लगे तो नारियलके खोपरेमे पानी पीते हैं । श्रीसीताजी साथ हैं । फिर भी रामजी पूर्ण निर्विकारी है । परिपूर्ण संयमी हैं । रामजी पूर्ण यौवनमें वनमे गये हैं, वृद्धावस्थामे गये नही । बुढ़ापेमे तीर्थमे जाकर भजन करेंगे, ऐसी बात न करो । शरीर सबल हो, तब ही संयम बढ़ाओ । शरीर दुर्बल होनेके पीछे संयमका कोई अर्थ नहीं । वनमें गये तब रामजीकी अवस्था २६ वर्षकी थी, श्रीसीता माताकी अवस्था १८ वर्षकी थी ।

गृहस्थाश्रममें संयमी जीवनका आदर्श श्रीरामजीने बताया है । पहले तप किया तब रामजी राजा हुए हैं । पहले तपश्चर्या की हो तो मानव भोगोमें सावधान रहता है । वनवास बिना जीवनमें सुवास आती नही । सात्त्विकता आती नही । अरे, बारह मास जङ्गलमे रहे बिना कोई महान् हुआ नही ।

जगतमें जितने सन्त हुए हैं उनके चरित्र पढो तो प्रतीत होगा कि उन्होंने वहुत दिन वनमें रहकर तपश्चर्या की है । पवित्र संयमी जीवन बिताया है, तब वासनाके ऊपर विजय मिल सकी है और तब ये महान् बने हैं । प्राचीन कालमें बड़े-बड़े राजा भी राज-

महल छोड़कर गङ्गा-किनारे तीर्थोंमें वास करते थे, ऋषियोंके आश्रमोंपर जाते थे और तब शान्ति मिलती थी। ऐसी शान्ति राजमहलमें कही भी नही मिलती। वनवासकी बहुत जरूरत है। सर्दियोंमें स्निग्ध पदार्थ खानेसे जिस प्रकार शक्ति पूरी वर्ष टिकती है, वैसे ही एकाध मास वनमें रहकर किया हुआ तप बाकीके ग्यारह महीने तुमको पाप करनेसे विमुख करता है।

अरण्यकाण्ड ज्ञान देता है। वासनाका विनाश करनेके लिए थोड़े दिवस विरक्त साधुओंका संग करो, भजनानन्दी महात्माओंका संग करो। सात्त्विक जीवन बिताओ। साधारण भोजन करो। एकान्तमें बैठकर प्रभुके किसी मन्त्रका अनुष्ठान करो, ध्यान करो, जप करो।

किसी गरीब वैष्णवको विष्णु-यज्ञ करनेकी इच्छा हो तो वह कैसे कर सकता है ? एक विष्णु-यज्ञ करना हो तो पाँच-दस हजारका खर्च होता है। गरीब वैष्णव इतनी रकम कहाँसे लावे ? इनके लिये अपने ऋषियोंने एक सरल उपाय बताया है। श्रावण-भादों मासके पवित्र दिवसोंमें गङ्गा-किनारे, नर्मदा-किनारे रहकर, एक समय सादा सात्त्विक भोजन करके रोज, नियमसे विष्णु-सहस्रका पाठ करो। इस प्रकार विष्णु-सहस्रके बारह सौ पाठ करोगे तो तुमको विष्णु-यज्ञ करनेका फल मिलेगा, तुम्हारा मन शुद्ध होगा। इसलिए एक पैसा भी खर्च करनेकी जरूरत नहीं।

तुम ऐसी इच्छा रखो कि मुझको एकाध-महीना समस्त दिवस भक्ति करनी है। एक महीना भगवानके लिये रखना है ? कितने ही लोग घर छोड़कर तीर्थमें जाते हैं तो वहाँ भी अखबार मँगाते है। उन्हें यह जाननेकी उत्सुकता होती है कि अहमदाबादमें क्या हुआ, बम्बईमें क्या हुआ। अरे, तुमको अखबार ही पढना है तो तुम घर छोड़कर यहाँ क्या करने आये ? दूसरेकी पञ्चायत करनेसे क्या लाभ ? अहमदाबादमें कहीं झगड़ा हो तो यहाँसे तुम कहीं सुधार तो दोगे नही ? केवल बातोंसे क्या लाभ है ?

एक-दो महीने अखबार पढ़ो मत, घरकी चिट्ठी मँगाओ मत। मनमें दृढ़ निश्चय रखो कि यह महीना मैंने भगवानके लिये रखा है। तुम्हारे घरकी भगवान रक्षा करेगा। कितने ही लोग घर छोड़कर तीर्थमें तो जाते है परन्तु वहाँ जानेके बाद उनको घरकी बहुत स्मृति रहती है कि घरके लड़के क्या करते होगे। तू राम-राम कर, तू घर छोड़कर आया है, फिर भी घरका स्मरण क्यो करता है ? भगवानके लिये जो घर छोड़ता है, उसकी चिन्ता भगवानको है। तुम्हारा नुकसान नही होगा। तुम प्रभुमें विश्वास रखो।

तीर्थमें निवास करनेपर घरका स्मरण करना नहीं। तीर्थमें रहकर घरकी याद करनेमे तो घरमें रहकर ईश्वरका भजन करना ठीक है। तीर्थमें रहकर लौकिक बाते

मनमें रखनी चाहिये नही। मनमे रही हुई वस्तु विघ्न करती है। जिसके मनमें संसार है, वह घर छोड़कर तीर्थमें भी रहता हो अथवा जङ्गलमे पेड़के नीचे बैठा हो, वहाँ भी चकवा-चकवीका प्रसंग देखनेसे उसके मनमे पाप आता है। ससार छोड़कर तीर्थमे जाओ और उस संसारको मनमे-से बाहर न निकाल सको तो माया त्रास देती है, वासनाएँ सताती है। संसारमें रहनेसे पतन होता नही, संसारको मनमे रखनेसे पतन होता है। वासना ही मानवको भव-बन्धनमें धकेलती है, वासना ही मनुष्यको ससारमें जकड़कर रखनेवाली जजीर है। वासनाकी पकड़में-से जो छूट जाता है, वह मुक्त हो जाता है।

संसारकारागृहमोक्षमिच्छोरयोमयं पादनिबन्धशृंखलम्।
वदन्ति तज्ज्ञाः पटु वासनात्रयं योऽस्माद्विमुक्तः समुपैति मुक्तिम्॥

वासनापर विजय प्राप्त करनी हो तो जीवन खूब सात्त्विक बनाओ। जीवनमें तपश्चर्या करोगे, जगलमे वास करोगे तो ही काम-राक्षस, वासना-राक्षसी मरेगी। अरण्य-काण्डमे शूर्पणखा अर्थात् वासना एवं मोह और शबरी अर्थात् शुद्ध भक्ति ये दोनों मिलते हैं। भगवान मोहके ऊपर नजर डालते नही, शुद्ध भक्तिको देखते हैं। मोहको, वासनाको बाहर धकेलो और शुद्ध भक्तिको अपनाओ।

अरण्यकाण्ड बोध कराता है कि वासनाओका विनाश करनेके लिए थोड़े दिन वनमे रहनेकी आवश्यकता है। वनमे रहकर वासनाओंका विनाश हो तो पीछे ईश्वरके साथ मित्रता होती है।

अरण्यकाण्डके पीछे आता है, किष्किन्धाकाण्ड। किष्किन्धाकाण्डमे श्रीराम सुग्रीवके साथ मित्रता करते है। जिसका कण्ठ सुन्दर है, उसका नाम सुग्रीव। कण्ठकी शोभा आभूषणसे नहीं, प्रभुका नाम जपनेसे है। जीव प्रभुके नामका सतत जप करे तो प्रभु उसके साथ मित्रता करते है। जीव-ईश्वरकी मित्रताकी कथा किष्किन्धाकाण्डमे है।

जीव सुग्रीव है, रामजी परमात्मा हैं। जगतके किसी जीवके साथ वैर न करो और अधिक मैत्री-प्रेम भी न करो। कोई न मिले तो वियोगमे उसकी याद न करो। जगतके साथ विवेकसे प्रेम करो। परमात्माके प्रति प्रेम करना होगा तो जगतके विषयोंका प्रेम छोडना ही होगा। विषयोको मनसे न छोड़ा जाये, तवतक ब्रह्म-सम्बन्ध होता नही। विषयानन्द हो, वहाँ ब्रह्मानन्द सम्भव नहीं। मनुष्य-शरीरमे विषयानन्द हो, तवतक ब्रह्मानन्द आता नही। जीव, ईश्वरके साथ मैत्री तब कर सकता है जब कि वह कामकी दोस्ती छोड़ता है।

कामकी मैत्री छोड़ो तो रामके साथ मैत्री होगी। मानव, कामकी दोस्ती छोड़ता नही। जिसका काम मित्र है, वह ऐसा समझता है कि काम सुख देता है। काम तो

क्षणिक सुख है। सच्चा सुख है राम। काम मित्र नही, शत्रु है। गीताजीमे प्रभुने आज्ञा की है।

जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्।

अर्जुन ! तेरा शत्रु बाहर नही। तेरे मनमें, तेरी आंखमें रहनेवाला काम तेरा शत्रु है। वह तुझको रुलाता है और तेरे जन्म-मरणका कारण बनता है। कामरूपी शत्रुको तू मार।

सुग्रीव रामजीके साथ मैत्री हनुमानजीकी सहायतासे ही कर सके है। हनुमानजी ब्रह्मचर्यके स्वरूप है। ब्रह्मचर्यका बल मिले तो जीव ईश्वरके साथ मैत्री कर सकता है। ब्रह्मचर्यके बिना भक्तिमें आनन्द आता नही। कारण, ब्रह्मचर्यके बिना मनकी एकाग्रता होती नही। ब्रह्मचर्यका बल मिले तो मन स्थिर होता है। शास्त्रमें तो ऐसा लिखा है कि एक दिवस ब्रह्मचर्य भंग हो तो उसका असर चालीस दिन तक मनके ऊपर रहता है। काम और राम एक स्थानपर रह सकते नहीं। अन्धकार और प्रकाश एक जगह रह सकते नहीं।

जहाँ राम तहँ काम नहिं, जहाँ काम नहिं राम।
तुलसी कबहुँ कि रहि सकहिं रवि रजनी इक ठाम॥

भागवतमें कथा आती है कि कंस और श्रीकृष्ण एक जगह रह सकते नही। कंस और श्रीकृष्ण जीवनमें एक ही बार मिले, तभी श्रीकृष्णने कंसको मार डाला।

एक ही मथुरामें अर्थात् मानव-शरीरमें श्रीकृष्ण कंस-रूपी कामके साथ रह सके नहीं। कंस काम है, रावण काम है। काम और ईश्वर एक साथ रह सकते नही। कामकी मित्रता छोड़ो तो प्रभुके साथ प्रेम होगा।

मनमें कामको रखो अथवा ईश्वरको रखो। जब तक मनमें काम है तब तक राम आते नही। मनमें काम आँखोंके रास्ते आता है। इसलिए आँखमें रावणको—कामको आने मत दो। रावणके दस मस्तक थे, इसका अर्थ यह है कि रावण-काम दस इन्द्रियोंमें रहता है। सबको रुलावे उसका नाम रावण। काम, जीव मात्रको रुलाता है। राम जैसे निर्विकारी बनोगे तो रावण-काम मरेगा और काम मरेगा तो राम मिलेंगे।

रामजीने जिसे अपनाया है वह कामान्ध हुआ नही। भगवान जिसे अपनाते है वह कामके अधीन होता नहीं। उसका मन हमेशा पवित्र रहता है। तुम कामीके साथ मित्रता करोगे तो तुम भी कामी हो जाओगे। तुम निष्काम परमात्माके साथ मित्रता करोगे तो निष्काम हो जाओगे। ईश्वरके अलावा सारा जगत काममय है। जगतके साथ

वैर न करो परन्तु यह जगत प्रेम करने लायक नही। यह जीव ईश्वरके साथ मित्रता करता है तो जीवन सुन्दर हो जाता है।

किष्किन्धाकाण्डके पीछे आता है सुन्दरकाण्ड। जीवन उसीका सुन्दर है जो निष्काम है जो परोपकारके लिए जीवित है, जो परमात्माके लिए जीवित है। रातको सोनेसे पहले थोडा विचार करो—आज मेरे प्रभु प्रसन्न होवे, ऐसा कोई सत्कर्म मैंने किया कि नही ? आज मेरे भगवान नाराज हुए है अथवा राजी हुए है ? आज मैंने किसी गरीबकी सेवा की है कि नही ? आज मैंने दूसरोको कुछ दिया है कि नही ? अन्दरसे 'न' का उत्तर मिले तो मान लो कि—आज मैं जीवित नही रहा, मृतक रहा हूँ।

जीना है उसका भला जो इन्सानके लिए जिये।
मरना है उसका भला जो अपने लिए जिये॥

जो शरीरको और इन्द्रियोको सुख भोगवानेके लिये ही जीता है, उसका जीवन जीवन नही। यह तो मरण है। अपने लिये जीवे, वह जीवन नही, ऐसे जीवनसे तो मरना अच्छा है। अपने लिये जिये, कुटुम्बके लिये जिये, यह तो पशु-धर्म है। कुटुम्बका पोषण करना तो कौएको भी आता है। पंगत देखकर कौआ भी जाति भाइयोंको बुलाता है। कुटुम्ब-पोषण करनेके लिये यह जीवन नही। परोपकारके लिये जीना ही जीवन है, बाकी मरण है। साधारण तौरपर ऐसा देखा जाता है कि इस संसारमे कोई धनके लिये जीता है, कोई स्त्रीके लिए जीता है, कोई संसार-सुखके लिये जीता है। परोपकारके लिये, परमात्माके लियें बहुत थोड़ेसे जीते है। परमात्माके लिये, परोपकारके लिये जिये, उसका ही जीवन सुन्दर है। परमात्माके साथ मित्रता करो तो ही जीवन सुन्दर बनता है।

भागवतमें जिस प्रकार दशम स्कन्ध है, उसी प्रकार रामायणमे सुन्दरकाण्ड है। सुन्दरकाण्ड अति सुन्दर है।

सुन्दरे किं न सुन्दरम्।

सुन्दरकाण्डमे हनुमानजी महाराजकी बहुत कथा है। सुन्दरकाण्डमे हनुमानजी समुद्र लांघकर लङ्कामें गये और उन्होने श्रीसीता मांके दर्शन किये। श्रीसीताजी पराभक्ति है। जहाँ पराभक्ति हो, वहाँ शोक रह सकता नही, इसलिये सीताजी जहाँ रहती हैं, उसको अशोक-वन नाम दिया गया है। ब्रह्मदृष्टि सिद्ध हो, तभी शोक रहता नही। परमात्मा द्वारा जीवको अपनाये जानेके बाद जीवको शोक अथवा मोह कुछ भी रहता नही।

श्रीसीताजी—पराभक्तिका दर्शन किसको होता है ? जिसका जीवन सुन्दर बने उसे पराभक्तिका दर्शन होता है। समुद्र लाँघकर जो जाये, संसार-समुद्रको लांघे, उसे

सीताजी—पराभक्तिके दर्शन होते है। समुद्र उल्लङ्घन कर सकते है केवल हनुमानजी। हनुमानजीके सिवाय कोई भी समुद्रको लाँघ सका नहीं। हनुमानजीको यह दिव्य शक्ति ब्रह्मचर्य और राम-नामके कारण प्राप्त है। समुद्र उल्लंघन करते समय हनुमानजीको सुरसा त्रास देती है। पूरे रस-आस्वादकी वासनावाली जीभ ही सुरसा है। हनुमानजीने सुरसाका पराभव किया है। संसार-सागरका जिसको उल्लंघन करना है, उसे सुरसाको जीतना पड़ेगा। जीभ वशमें करनी पड़ेगी।

पराभक्तिके दर्शन करनेके पीछे हनुमानजी लङ्काको जलाते है। लंका शब्दका उलटा होता है 'कालं'। सबको मारनेवाले कालको भी हनुमानजी जलाते है, मारते है। हनुमानजीको काल मार सकता नही। पराभक्तिके दर्शनका यह फल है। हनुमानजीका जीवन भक्तिमय है। इसलिए यह सुन्दर हैं।

सुन्दरकाण्डके पीछे आता है युद्धकाण्ड। जिसका जीवन सुन्दर है, वह ही राक्षसोंको मार सकता है। काम राक्षस है, क्रोध राक्षस है, लोभ राक्षस है, मोह राक्षस है। युद्ध-काण्डमें राक्षस मरते है। कितने ही लोग ऐसा समझते है कि काम, क्रोध इत्यादि विकार-राक्षसोंका विनाश होनेके पश्चात् भक्ति होती है। अन्दर विकार है, तब तक बराबर भक्ति होती ही नही। विकारोंका नाश होनेके पश्चात् ही मैं भक्ति करूँगा, यह कल्पना नितान्त विकृत है। यह अज्ञान है। भक्ति करोगे तो विकार भी धीरे-धीरे घटेंगे। विकार जड़से जाते ही नहीं। काम-क्रोधादि विकार अन्तिम जन्ममें भी होते हैं, अति सूक्ष्म रूपमें होते हैं। सतत भक्ति करोगे तो विकार घटते जायेंगे।

भक्ति महारानीके दर्शन होनेके बाद रावण मरा। भक्ति धीरे-धीरे बढाओ, फिर देखो विकार-वासना घट जायेंगी, धीरे-धीरे इनका विनाश होता जाएगा। जबतक भगवद्-स्वरूपमें आसक्ति न बढ़ाओ तब तक संसारकी आसक्ति छूटती नहीं, वासना मरती नहीं। वासनाके छः दोष—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर—अज्ञानसे उत्पन्न हुए हैं। रामजीके छः गुण हैं—ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य। रामजीके एक-एक सद्गुणको मनुष्य स्वयंके हृदयमें उतारे तो वासनाओंका एक-एक दोष नाशको प्राप्त होता है। भगवन्नाममें पूर्ण तन्मयता होनेसे ये सद्गुण जीवनमें आते हैं। पराभक्तिका दर्शन हो तभी वासनाओंका नाश होता है।

सुन्दरकाण्डमें जीवन भक्तिमय बनाया, पीछे युद्ध-काण्डमें राक्षसोंका विनाश किया। युद्ध-काण्डके पीछे आता है उत्तरकाण्ड। युद्धकाण्डमें राक्षसोंका मरण हो तो उत्तर जीवन मङ्गलमय बने।

तीर्त्वा मोहार्णवं हत्वा कामक्रोधादिराक्षसान् ।
शान्तिसीता समायुक्त आत्मारामो विराजते ॥

पूर्वकाण्डमें रावणको मारे, उसका उत्तरकाण्ड सुन्दर बनता है । जीवनके यौवन कालमें जो कामको मारता है, उसकी उत्तरावस्था सुखमय-शान्तिमय बनती है । जीवनके पूर्वार्द्धमे धीरे-धीरे संयमको बढ़ाकर जो राक्षसोंका संहार करता है, उसको उत्तरावस्थामें ज्ञान और भक्ति प्राप्त होती है । जब सूक्ष्म वासनाका भी नाश हो जाये, तभी 'आत्मारामो विराजते'—भगवानके परमधाममे प्रवेश मिलता है, मुक्ति मिलती है ।

रामचरितमानसमे उत्तरकाण्डमे काकभुशुण्डिजी और गरुड़जीके सम्वादकी कथा आती है । उत्तरकाण्डमें ज्ञान-भक्तिका मधुर समन्वय किया है । भुशुण्डिजीने लोमश मुनिके साथका प्रसंग गरुड़जीको सुनाया है । ज्ञानी महापुरुष मानते हैं कि ब्रह्म निर्गुण-निराकार है, जब कि भक्तजन ब्रह्मके सगुण-साकार स्वरूपकी आराधना करते हैं । लोमश मुनि निर्गुण ब्रह्मके उपासक है । काकभुशुण्डिजी ईश्वरके सगुण स्वरूपके पक्षपाती हैं । श्रीरामके अनन्य भक्त है । दोनोंके बीचमे निर्गुण-सगुण विषयक विवाद होता है । भुशुण्डिजीके दृढ़ प्रतिकारसे लोमश मुनिको बहुत क्रोध आता है । उस समय भुशुण्डिजी मनमें विचारते हैं ।

क्रोध कि द्वैतबुद्धि बिनु द्वैत कि बिनु अग्यान ।
मायाबस परिछिन्न जड़ जीव कि ईस समान ॥

अद्वैत-भावीको क्रोध आना नही चाहिये । अद्वैतमें एक-की ही सत्ता है, दूसरा कोई है-ही नही । दूसरा कोई हो तो क्रोध आवे । द्वैत-भाव हो तो ही क्रोध आवे । द्वैत-भाव ज्ञानमें टिक सकता नही । अज्ञान बिना द्वैत-भाव सम्भव नही । ज्ञानी भी एक क्षणमें क्रोध कर बैठता है । ज्ञानीको भी माया बहुत सताती है । मायावश होते हुए भी जीव कहता है 'सोहमस्मि' मैं वह ही हूँ तो ऐसा बोलनेमात्रसे कोई उन स्वतन्त्र-स्वरूप परमात्माके समान हो सकता नही परंतु जीव यदि प्रभुकी सतत भक्ति करे तो उन परमात्माके चरणोंमें स्थान मिल सकता है और माया-प्रपञ्चसे बचा जा सकता है । भक्तिके आगे मायाका बहुत प्रपञ्च चलता नही । ज्ञानको भक्तिके साथकी बहुत जरूरत है ।

गरुड़जी पूछते हैं कि ज्ञान श्रेष्ठतर है या भक्ति ? भुशुण्डिजीका उत्तर है—

भगतिहि ग्यानहिं कछु भेदा । उभय हरहिं भव सम्भव खेदा ।

ज्ञान और भक्तिमें कोई भेद नही । दोनो जन्म-मरणके चक्करसे छुड़ाते हैं । तत्त्व-दृष्टिसे देखनेमें ज्ञानमे और भक्तिमे अन्तर नही । भक्ति द्वारा ज्ञान प्राप्त होता है । भक्तिके पीछे ज्ञान आता है ।

भक्तिर्जनित्री ज्ञानस्य भक्तिर्मोक्षप्रदायिनी ।
भक्तिहीनेन यत्किञ्चित्कृतं सर्वमसत्समम् ॥

भक्ति ही ज्ञानरूपमें परिवर्तित हो जाती है। भक्तिकी उत्तरावस्था ही ज्ञान है। अपरोक्ष ज्ञानकी पूर्वावस्था ही भक्ति है। भक्तिमे पहले दासोऽहं और पीछे सोऽहं होता है। आरम्भमें 'दासोऽहं' ऐसी भावना दृढ करके ईश्वरकी आराधना करते हुए साधकको लगता है, अब भगवान मेरे है। पहले मैं भगवानका और भक्ति बढ़े, तब भगवान मेरे। उसके पीछे अनुभव बढ़ता है, देह-भान भूलता है, तब मैं और मेरा रहता नही। उस समय एक भगवान ही रह जाते है। उसके बाद लगता है कि मैं वही 'ब्रह्म' हूँ, इस प्रकार दासोऽहं-से सोऽहं होता है। भक्ति ही ज्ञान है और ज्ञान ही भक्ति है। ज्ञान और भक्ति मिलकर एक बनते हैं, तभी जीवन सफल होता है।

भुशुण्डिजी कहते हैं—ज्ञान-मार्ग बहुत कठिन है। ज्ञान-मार्गमें पतन होनेमे देर लगती नही। इसलिए प्रभु-भक्ति सुगम, सुखदायी है। ज्ञानमार्ग अति दुर्लभ कैवल्य मुक्ति दिलाता है। भक्तको कैवल्य मुक्तिकी इच्छा नही होती। उनकी प्रभुके चरणोंमे स्थान प्राप्त करके प्रभुकी नित्य सेवामे रहनेकी इच्छा होती है। भक्तको भी वही परमपद प्राप्त होता है, जो ज्ञानीको प्राप्त होता है।

अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। सन्त पुरान निगम आगम बद ॥
राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवइ बरिआईं ॥

अनइच्छित—भक्तको कैवल्य मुक्तिकी इच्छा नही। भक्त तो प्रभुसे भरतजीकी तरह माँगता है—

अरथ न धरम न काम रुचि, गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद, यह बरदान न आन ॥

भक्त भगवानके चरणोंमें रहनेकी इच्छा करता है। प्रभुमे तो वह मिल ही गया है। भक्त और भगवान अलग नहीं। भक्त भगवानसे अलग रह सकता नहीं। भगवानसे एक क्षण भी विभक्त न हो, वह भक्त है। निष्काम भक्तिमे मुक्तिसे भी अधिक दिव्य आनन्द है। भक्तिका आनन्द जिसको नहीं मिला, वह मुक्तिकी आशा रखता है। सेवा, स्मरणमें जिसे तन्मयता हो गयी है, वह जहाँ बैठा है वही मुक्त ही है।

भुशुण्डिजीने ज्ञान और भक्तिका सुन्दर समन्वय किया है। सात काण्डोंका संक्षेप-में यह भावार्थ है। राम-कथा अमृत कथा है। रामायणके एक-एक अक्षरका मनन करोगे तो मन शुद्ध होगा। रामचरित्र पापोंको जलाता है। रामचरित्र मनुष्यको सावधान करता है।

स्वधर्मका पालन करनेवालेको बहुत ही सहन करना पड़ता है। प्राण भले जायें परन्तु धर्म न जाय, ऐसी दृढ़ता मनुष्यको जीवनमें रखनी चाहिए। मनुष्य धनके लिए धर्मका भाग छोड़ता है, थोड़ा लाभ होता हो तो धर्म छोड़ देता है, अधर्म करता है परन्तु धन बड़ा नही, धर्म बड़ा है।

मनुष्य-जीवनमें धन मुख्य नही, धर्म मुख्य है। धन, धर्मकी मर्यादामें रहकर मिलना चाहिए। धनकी अपेक्षा धर्म श्रेष्ठ है। मनुष्य-जीवनमे धनकी आवश्यकता है परन्तु धन भौतिक सुख देता है, जब कि धर्म मनकी शान्ति देता है। धन तो अनेक बार दुःख भी देता है। मनुष्यको धन प्राप्त करनेमे, उसको बढ़ानेमें, उसका रक्षण करनेमें तथा उसका उपयोग करनेमे भी पग-पगपर परिश्रम, त्रास और चिन्ता होती है। धनका नाश होनेपर मनुष्य बहुत दुःखी हो जाता है। धन हो तो दुःख है, जाये तो दुःख है। जब कि धर्म तो इस जीवनको सुधारता है और परलोक भी सुधारता है। धर्म इस लोकमे शान्ति देता है और अन्तमे परमात्माके चरणोमे ले जाता है। धर्म ही मनुष्यका सच्चा धन है, उत्तम धन है। धर्म ही उसका सच्चा मित्र है, सच्चा बन्धु है। मरनेके पीछे धन साथ जाता नही, धर्म ही साथ जाता है। कोई भी साथ न दे, सब साथ छोड़ दें तब भी धर्म साथ देता है, यह मृत्युके पश्चात् भी साथ रहता है।

विद्या मित्रं प्रवासेषु, भार्या मित्रं गृहेषु च।
व्याधितस्यौषधं मित्रं, धर्मो मित्रं मृतस्य च॥

अपने बालकोको धनका उत्तराधिकारी न बना सको तो कोई बात नहीं, समस्त संस्कारोका उत्तराधिकारी बनाना। सम्पत्तिसे कदाचित् थोड़ा सुख मिल सके परन्तु सस्कारोसे बहुत शान्ति मिलती है। अच्छे सस्कारोसे जो सुख मिलता है वह सम्पत्तिसे नही मिलता। पैसेसे ही सुख मिलता है, ऐसा मनुष्य जबसे समझने लगा, तबसे पाप बढ़ गया है और जीवनमे-से शान्ति चली गयी है। पैसेको मुख्य माननेसे सदाचार गया, संस्कार गया, सच्चा सुख गया। पैसा जो सुख देता है, उससे अधिक सुख संयमसे और सदाचारसे मिलता है। पैसेसे थोड़ा सुख मिलता है, यह बात सच्ची है परन्तु पैसेसे शान्ति मिलती नहीं, यह भी इतना ही सत्य है। मनुष्य धर्मकी मर्यादा तोड़ता है, उससे दुःखी होता है। परमात्मा हमको अधिक सुख देता है, तो हमें धर्मकी मर्यादाका अधिक-से-अधिक पालन करना चाहिये।

अपने धर्ममें चार पुरुषार्थ माने गये है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। पहला धर्म है और अन्तिम मोक्ष है। बीचमें अर्थ और कामको रखा है, इसलिए कि अर्थ और काम, ये दोनों धर्मकी मर्यादामे रहकर प्राप्त करने और भोगने चाहिये। धर्मानुकूल अर्थ-

को प्राप्त करो और धर्मानुकूल कामका सेवन करो। मनुष्य-जीवनमें अर्थ और काम गौण हैं। धर्म और मोक्ष प्रधान है। कदाचित् पैसेका नाश होता हो तो हो जाने दो परन्तु धर्मको मत छोड़ो।

धर्मोहि परमो लोके धर्मे सत्यं प्रतिष्ठितम्।

मानव-सृष्टिका संचालन करनेके लिए परमात्माने जो नियम बनाये, उनका नाम है धर्म। तुमको ठीक लगे अथवा न लगे, धर्मका पालन करोगे तो ही कल्याण होगा। तुम्हें कोई कार्य करना हो तो पहले धर्मसे पूछना कि यह काम करनेसे मुझे पाप तो नही लगेगा? धनके लिये धर्मका त्याग करे तो वह ईश्वरको सुहाता नही परन्तु धर्मके लिये धनका त्याग करे, वह प्रभुको अच्छा लगता है।

अपने ऋषियोंने धनको साधन माना है। धन साध्य नही, साधन है। महापुरुष धर्मके लिये धनका उपभोग करते है। उसमें क्या आश्चर्य है? अरे! धर्म-रक्षणके लिये तो ये प्राणोंका भी त्याग कर देते है। रामायणमें ऐसे अनेक चरित्र है कि जो धर्मके लिए प्राणोंका बलिदान कर देते है। धर्मके लिए प्राण देने वाला मरता नही, अमर हो जाता है। रामायणमें जटायुकी कथा आती है कि जटायुने धर्मके लिए प्राणोका बलिदान कर दिया। आज हजारों वर्षोंके बाद भी आप जब रामायण पढ़ते है, सुनते है, तो उस समय आपका मन पवित्र होता है।

रामचरित्र अति दिव्य है। स्त्री-पुरुष श्रीसीतारामजीके एक-एक गुणोंका मनन करें, एक-एक सद्गुण जीवनमें उतारे तो जीवन दिव्य बन जाय।

धर्मो वै भगवान् सतामधिपतिर्धर्मं भजेत् सर्वदा
धर्मेणैव निवार्यतेऽघनिवहो धर्माय तस्मै नमः।
धर्मान्नास्ति परं पदं त्रिभुवने धर्मस्य शान्तिः प्रिया
धर्मे तिष्ठति सत्यमेव शुभदं मा धर्म मां वर्जयः॥

× × ×

पिबन्ति नद्य स्वयमेवनाम्भः स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः।
नादन्ति शस्यं खलु वारिवाहाः परोपकाराय सतां विभूतयः॥

वृच्छ कबहुँ नहिं फल भखैं नदी न संचै नीर।
परमारथ के कारने साधुन धरा शरीर॥

* श्रीजानकीवल्लभो विजयते *

भक्तिमुक्तिविधायिनी भगवतः श्रीरामचन्द्रस्य हे
लोकाः कामदुघाङ्घ्रिपद्मयुगलं सेवध्वमत्युत्सुकाः ।
नानाज्ञानविशेषमन्त्रवितर्तिं त्यक्त्वा सुदूरेभृशं
रामं श्यामतनुं स्मरारिहृदये भान्तं भजध्वं बुधाः ॥

(२१)

परमात्मा आनन्दस्वरूप

परमात्मा श्रीराम परमानन्दके स्वरूप है । निराकार आनन्द ही नराकार श्रीराम-रूपमे प्रगट हुए है। निराकार वस्तु आँखको दीखती नही । यह फूल साकार है, आँखको दीखता है परन्तु फूलमे जो सुगन्ध है, वह निराकार है । पेड़ेमे जो मिठास है, यह मिठास निराकार है । मिठासका कोई आकार नही, कोई रङ्ग नही । मिठास पीली, सफेद या काली नहीं परन्तु पेडेमे मिठास है, इस कारण इसका महत्त्व है । पेड़ा साकार है, मिठास निराकार है ।

आँख साकार है, आँखकी देखनेकी जो शक्ति है, वह निराकार है । परमात्मा निर्गुण-निराकार है और सगुण-साकार भी है । निराकारके साथ कोई प्रेम कर सकता नही क्योकि निराकार आँखोंसे देखा नही जा सकता। निराकार वस्तुका अनुभव बुद्धिसे होता हैं।

ज्ञानी महापुरुष मानते है कि आँखको देखनेकी शक्ति ईश्वर देता है । यह फूल-की माला है, वह किस प्रकार दिखाई देती है ? वह आँखके कारण ही दिखाई देती है परन्तु आँखको देखनेकी शक्ति मन देता है । आँख और मनका संयोग न हो तो दीखे नही । मुँहके आगे पडी हुई वस्तु भी किसी-किसी समय दीखती नही । मन किसी दूसरे विषयमे लगा हो तो मन और आँखका सम्बन्ध नही हो पाता और उसीसे वस्तु सम्मुख होनेपर भी दीख नही पाती । आँखको देखनेकी शक्ति देता है मन, मनको शक्ति देती है बुद्धि और बुद्धिको प्रकाश देते है परमात्मा । जो परमात्मा आँखको देखनेकी शक्ति देते है, उन परमात्माको आँख देख सकती नही ।

ज्ञानी महापुरुष ऐसा मानते है कि ईश्वर द्रष्टा है, दृश्य नही । जो सबका द्रष्टा है, जो सबका साक्षी है, उसको कौन आसानीसे देख-जान सकता है । ज्ञानी पुरुष ऐसा मानते हैं कि जो आँख चमडीको देखती है, उस आँखसे परमात्माके दर्शन हो सकते नही । बाहरकी आँखको चर्म-चक्षु कहते है । अन्दरकी आँखको ज्ञान-चक्षु कहते हैं । इसलिए मानना होगा कि ईश्वरको ज्ञान-चक्षुसे ही देख सकते है । ईश्वर सूक्ष्म रूपसे सर्वत्र विराजे हुए हैं । बुद्धि सूक्ष्म न हो, तबतक वह ईश्वरका चिन्तन कर सकती नही । ईश्वरका कोई रूप नही, ईश्वरका कोई आकार नही ।

वेदान्त कहता है कि ईश्वर अरूप है। वैष्णव सिद्धान्त कहता है कि ईश्वर अनन्तरूप है। ईश्वर आकाररहित है, क्योंकि अनेक आकारवाले हैं, ईश्वरका कोई निश्चित आकार नहीं। भक्त मानते हैं कि ईश्वर, प्रेमके कारण आकार धारण करते है, सूक्ष्ममें-से स्थूल रूप प्रत्यक्ष होता है। अतिशय प्रेम देखते है, तभी प्रभु अपना स्वरूप बताते है।

सगुनहिं अगुनहिं नहि कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुधवेदा॥
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥

परमात्मा सगुण-निर्गुण दोनों है। वेद सगुण-निर्गुण ब्रह्मका वर्णन करते है। ईश्वर साकार-निराकार, उभय रूपमे लीला करते है। निर्गुण ही सगुण बनते है। वे सूक्ष्म हैं, स्थूल है, कोमल हैं और कठिन भी है। निराकार ईश्वर आँखको दीखता नही और जो आँखसे दिखाई न पड़े, उस वस्तुके साथ प्रेम किस रीतिसे हो? इसलिए निराकार ही साकार बनते है।

श्रीराम साक्षात् परमात्मा हैं। सगुण-साकार और निर्गुण-निराकार, तत्त्व-दृष्टिसे एक ही है। निराकार वस्तुके साथ मनुष्य प्रेम कर सकता नही। लोग परमात्मा-के साथ प्रेम करें इसलिए प्रभुने साकार स्वरूप धारण किया है। योगीजन आनन्दका अनुभव करते हैं परन्तु भक्तोंके लिए यह आनन्द साकार रूप धारण करता है। आनन्द ही श्रीराम-रूपमें प्रकट हुआ है। निराकार, आकार धारण करे तो भी स्वरूप वही रहता है।

रामजीका समस्त स्वरूप आनन्दमय है। रामजीके चरणोंमें आनन्द है, रामजीके हाथमें आनन्द है, रामजीके मुखमे आनन्द है। अधिक तो क्या कहूँ? रामजीके नखमें और बालोंमें भी आनन्द है। रामजीका समग्र श्रीअङ्ग आनन्दसे भरा हुआ है। आनन्दके अलावा श्रीरामजीके स्वरूपमें दूसरा कुछ है ही नही।

तुम मन्दिरमें श्रीरामजीका दर्शन करते हो, उस समय शायद तुमको ऐसा लगता है कि जैसे मेरे हाथ-पैर है, वैसे ही हाथ-पैर ठाकुरजीके भी है परन्तु अपने शरीरमें और ठाकुरजीके स्वरूपमें बहुत अन्तर है। अपने शरीरका विचार करोगे तो ध्यानमें आयेगा कि इस शरीरके अन्दर रुधिर है, मास है, मज्जा है, हड्डी है। श्रीरामके श्रीअङ्गमें न तो रुधिर, न मांस, न मज्जा और न हाड़ है; है तो केवल आनन्द। आनन्दके अलावा दूसरा कुछ भी नहीं।

जीवको जो शरीर मिला है, वह पूर्वजन्मके कर्म-प्रमाणमें मिला है। पूर्वजन्मकी वासनाके प्रमाणमें मिला है। 'कर्मणा निर्मितो देहः।' किन्तु परमात्मा स्वयकी इच्छासे या

भक्तोंकी इच्छासे शरीर धारण करते है। परमात्माका शरीर पञ्चमहाभूतोका बना हुआ नही। परमात्माका स्वरूप अप्राकृत है, अलौकिक है, आनन्दस्वरूप है। जीवको उत्पत्ति और स्थितिमे ही आनन्द आता है। लयमे आनन्द आता नही। भगवानको लयमे भी आनन्द आता है। कारण, भगवान स्वय आनन्दस्वरूप है। श्रीकृष्णको सोलह हजार रानियोंके संसर्गमे जो आनन्द है, वही आनन्द सोनेकी द्वारिकाके समुद्रमे डूबते समय भी है।

जीव, मायाके अधीन होकर जगतमे आता है, परमात्मा मायाधीश होकर जगतमे प्रगट होते हैं। रामजीने पूर्वजन्ममें कोई कर्म किया है और उस कर्म-प्रमाणमे स्वरूप धारण किया है, ऐसा नही। वाल्मीकिजीने कहा है—

चिदानन्दमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी॥
नर तनु धरेहु संत सुर काजा। कहहु करहु जस प्राकृत राजा॥

सोनेका आभूषण था। उसकी सुवर्ण-मूर्त्ति बनाई गई। इस सोनेकी मूर्त्तिमें सोना ही सोना है। सोनेकी मूर्त्तिके पैरमे सोना, हाथमे सोना, नखमे सोना, सर्वत्र सोना ही है। उसी रीतिसे ईश्वरके स्वरूपमे आनन्द-ही-आनन्द है। परमात्माका स्वरूप दीखता है अपना जैसा, परन्तु यह अपना जैसा नही, यह केवल आनन्दमय है। व्यासनारायणका ब्रह्म-सूत्र है!

आनन्दमयोऽभ्यासात्।

कितने ही ऋषि मानते है कि ईश्वरमें आनन्द है। जो ऋषि ईश्वरमे आनन्द है, ऐसा मानते है, उनके सिद्धान्तमें आनन्द और ईश्वर—ये दो तत्त्व पृथक् है। दो तत्त्व भिन्न हैं, इससे ऐसा फलित होता है। इसमें द्वैत आता है। व्यास, वाल्मीकि, ऋषियोका सिद्धान्त है कि आनन्द ही ईश्वर है। आनन्द और ईश्वर भिन्न नही। यह अद्वैत सिद्धान्त है। आनन्द ईश्वरमें है, ऐसा नही। आनन्द, ईश्वर, श्रीराम, श्रीकृष्ण—सब एकके ही नाम हैं। आनन्द ही ईश्वरका स्वरूप है।

खांडके खिलौनेमें खांड ही होती है। खाँडका खिलौना जिस प्रकार नखशिख तक खाड़मय होता है, उसी प्रकार परमात्माका सम्पूर्ण स्वरूप आनन्दमय है। ठाकुरजीके नख और बालका दर्शन हो, उस समय भी जीवको आनन्द मिलता है। फिर भगवानके चरणारविन्द और मुखारविन्दके दर्शनसे आनन्द मिले, इसमे क्या आश्चर्य है? प्रभुके नख और बाल भी आनन्दरूप है। परमात्माका समस्त स्वरूप आनन्दमय है।

अलौकिक सिद्धान्त समझनेके लिए कोई अलौकिक दृष्टान्त मिलता नही। लौकिक दृष्टान्तसे ही महापुरुष अलौकिक सिद्धान्त समझते है।

रातके बारह बजे हैं। एक भाई खटियामें पड़े हुए हैं परन्तु उनको निद्रा आती नही। वह भाई विचारमें पड़े है कि आज निद्रा क्यों नही आ रही है? बहुत विचार करनेके बाद याद आया कि आज रात्रिको गर्म पानी (चाय) मिला नहीं। भाईको रात्रिमें कुछ चाय पीनेकी आदत थी। वे रात्रिके बारह बजे पीछे चाय बनानेको तैयार हुए। कारण, चाय मिले तो निद्रा आवे। पत्नी पीहरमें थीं। इसलिए स्वयंको ही सब खटपट करनी पड़ी। पानी गर्म करने लगे। सब तैयारी तो की, परन्तु संयोगसे डिब्बेमें खाँड नहीं मिली, समाप्त हो गयी थी। अब खाँड़ बिना चाय बने नहीं और चाय न मिले तो निद्रा आवे नहीं। रोजकी आदत थी। अब क्या किया जाये? खाँड़ लेने कहाँ जाएँ? रात्रिके बारह बजे खाँड़ कौन दे? अन्तमें याद आया कि उत्तरायणके दिन बालकोके लिये मैं खाँड़के खिलौने खरीदकर लाया था। वे घरमें ही कहीं पड़े होंगे। फिर एक डिब्बा खोलकर ढूँढ़ने लगे कि वे खिलौने कहाँ हैं?

शौकीन मनुष्य और व्यसनी मनुष्य क्या न करे? भाईको चायका व्यसन था। व्यसनके समान कोई पाप नही। व्यसनसे शक्तिका, द्रव्यका नाश होता है। कोई भी लौकिक व्यसन मनुष्यका पतन करता है। तुम चाय छोड़ो, ऐसा कहनेमें तो मेरा मन कुछ डरता है, कारण कि मैं बहुत कहूँ तो भी तुम छोड़नेवाले नही। कितने ही तो ऐसा समझते है कि महाराजको टेव नही, इसलिये महाराज कदाचित् ऐसा कहते है। महाराज भले कहें, हमको कुछ छोड़ना नही। तुम चाय भले ही न छोड़ो परन्तु तुम परमात्माके प्यारे हो, प्रभुके लाड़ले हो, वैष्णव हो, तुम चायके अधीन न बनो।

रात्रिके बारह बजे हाथमें माला लेकर भाई किसी दिन भी जप करने बैठा नही परन्तु चाय पीनेकी बहुत आतुरता है। इसलिये रात्रिके बारह बजे खाँड़ ढूँढ़ते है। एक घण्टेकी तपस्या हुई तब खाँड़के खिलौनेका डिब्बा हाथमें आया। बहुत राजी हुआ, बस अभी चाय मिलेगी। डिब्बेमें खाँड़का एक हाथी था। हाथीके दो पाँव तोड़े और चायमें डाल दिये।

हाथीके पैर डाले या खाँड़ डाली? बालकको हम समझाते हैं कि यह हाथी है, यह घोड़ा है परन्तु खाँड़का हाथी खाँड़ ही है। खाँड़के खिलौनेमें खाँड़के सिवाय और दूसरा कुछ नहीं है। अगर हाथी हो तो डिब्बेमें रह सकता है? यह न तो हाथी है न घोड़ा है। बालकको भले ही वह हाथी दीखे परन्तु खाँड़के खिलोनेमें हमें तो खाँड़ ही दीखती है।

खाँड़का खिलौना जिस प्रकार खाँडमय ही है, उसी प्रकार परमात्माका सम्पूर्ण स्वरूप आनन्दमय ही है। ठाकुरजीके श्रीअङ्गमें आनन्दके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नही है। परमात्मा आनन्दरूप है।

निर्लेपः परिपूर्णश्च सच्चिदानंदविग्रहः ।

शान्तिसे विचार करोगे तो समझोगे कि तुम्हारा सच्चा स्वरूप भी आनन्द ही है। यह जीव ईश्वरका अंश है। अंशी आनन्दस्वरूप हो तो अंश भी आनन्दस्वरूप होगा, यह स्वाभाविक है। शीतलता जिस प्रकार पानीका सहज स्वरूप है, उस प्रकार आनन्द तुम्हारा सहज स्वरूप है। तुम स्वयं आनन्दस्वरूप ही हो। सुख और दु.ख, ये तुम्हारे वास्तविक धर्म नही।

पानीमें दिखाई देनेवाली गर्मी पानीकी गर्मी नही। पानीका स्वरूप तो शीतल है। अग्निके सम्बन्धसे जिस प्रकार पानीमे गर्मी भासती है, उसी प्रकार मनके सम्बन्धसे आत्म-स्वरूपमें सुख-दुःख भासता है।

परस्पराध्यासवशात् स्यादन्तः करणात्मनोः ।
एकीभावाभिमानेन परात्मा दुःखभागिव ॥

सुख और दु.ख, मनके धर्म हैं। आत्मा सुखी नही, आत्मा दु.खी भी नही। आत्मा परमात्माका अंश है। परमात्मा आनन्दस्वरूप है तो आत्मा भी आनन्दस्वरूप ही है। आनन्द तुम्हारा सहज स्वरूप है।

इसलिये कोई मनुष्य उदास दीखता हो, दु.खी दीखता हो अथवा चिन्तामें बैठा हो तो तुम उससे पूछ बैठते हो कि आज तुम उदास क्यो लग रहे हो ? आज तुमको क्या हो गया है ? परन्तु मानव प्रात उठकर स्नान करके शुद्ध कपड़े पहनकर परमात्माका ध्यान करनेको आनन्दमें बैठा हो तो उससे हम ऐसा नही पूछते कि आज तुम आनन्दमें क्यो बैठे हो। ऐसा पूछोगे तो उसको बुरा लगेगा कि हमारा आनन्द तुमसे देखा नही जाता क्या ?

आनन्दमें रहना तो आत्माका सहज स्वरूप है। सुख-दु.ख वास्तविक धर्म नहीं। सुख-दु.ख तो कई कारणोसे आते है। सुख भी टिकता नही और दु.ख भी टिकता नही। सुख और दु.ख दोनों भूल है। तुम परमात्माके अश हो, तुम आनन्दरूप हो।

जीव स्वयं आनन्द-स्वरूप होनेपर भी अज्ञानसे इस संसारमें आनन्दको ढूंढ़ने जाता है। आनन्द किसी स्त्रीमें नही, किसी पुरुषमे नही, किसी मोटर बङ्गलेमे नही, आनन्द बाहर नही, आनन्द तुम्हारे अन्दर ही है, तुम्हारा सच्चा स्वरूप है। संसारके विषय आनन्द देते नही, सुख-दु ख देते है। जो सुख देता है, वही दु ख भी देता है। जीवको सुख-की भूख नही, आनन्दकी भूख है। उसे ऐसे आनन्दकी इच्छा है कि जिससे शान्ति कायम रहे। संसारके विषय कदाचित् सुख भले ही दे पर शान्ति देते नहीं, आनन्द देते नहीं।

संसारके विषयोंमे आनन्द हो तो वे सबको सब समय एक समान आनन्द दे बङ्गला बहुत सरस है परन्तु जब बुखार आता है तो सरस बङ्गला सुख देता है क्या ? माथा चढे अथवा पेटमें दर्द हो तो सरस बङ्गला क्या सुख देता है ? आनन्द, संसारकी किसी जड़ वस्तुमें नही, आनन्द परमात्माका स्वरूप है।

कदाचित् तुमको ऐसी शङ्का होगी कि महाराज ! तुम भले ही मना करो परन्तु इच्छित भोजन हो तो वह भोजन करनेमें बहुत आनन्द होता है। कितने ही तो ऐसे होते हैं कि श्रीखण्ड पूड़ी हो, पत्तोकी पकौड़ियां हो, ऐसा इच्छित भोजन मिले तो बहुत ही राजी हो जाते है। तुम कहोगे, महाराज ! बाहर आनन्द कैसे नही बाहर आनन्द न हो तो मनुष्य यह सब इतनी खटपट करे क्यों ? मन-पसन्द भोजन मिले तो वहाँ आनन्द जरूर होता है।

अरे, श्रीखण्ड-पूड़ा खानेसे आनन्द मिलता है ? श्रीखण्ड-पूड़ीमें ही आनन्द हो तो जिसे बुखार आया उसे श्रीखण्ड-पूड़ी क्यों आनन्द नही देते ? जिसके पेटमें अजीर्ण है, उसे श्रीखण्ड-पूड़ी खानेमें क्यों आनन्द होता नही ? श्रीखण्ड-पूड़ीमें आनन्द है, मन-पसन्द भोजन है और खानेको बैठनेकी तैयारी है। इतनेमें ही समाचार आया कि अहमदा-बादमें कोई सम्बन्धी वृद्धा थी, उसको वहाँ कुछ हो गया। मरणकी वार्ता तुम्हारे कानमे आवे तो श्रीखण्ड-पूड़ी खानेमें तुमको सुख होगा या दुःख होगा ?

श्रीखण्डमें आनन्द हो तो किसीके मरनेका समाचार सुननेके बाद श्रीखण्ड खाने-की इच्छा क्यो होती नही ? उस समय आनन्द कहाँ चला जाता है ? अरे ! आनन्द श्रीखण्डमे नही था। कितने ही तो ऐसे होते है कि विचार करते है कि बुढ़िया तो सत्तासी वर्ष की थी, गई। इसमें कुछ बुरा हुआ नहीं, बेचारी छूटी। जो हुआ सो अच्छा ही हुआ है, पर इस समय मै श्रीखण्ड-पूड़ी खाता हूँ और कदाचित् कोई यही आ चढ़े और मुझे खाता देख ले तो बुरा लगेगा। कितने तो बहुत ही विवेकी होते हैं। दरवाजा बन्द रखते है, घरवालोको कहते है कि खोलना नही, मैं भोजन कर लूं तब खोलना। मनुष्यको बुरा कहनेमें दुःख होता नही। बुरा दीखे तो उसे दुःख होता है। मनुष्य अनेक बार बुरा काम करता है परन्तु उसकी ऐसी इच्छा होती है कि मेरा जगतमें बुरा न दीखे। किसीको खबर न पडे कि मैं बुरा करता हूँ। थोडा विचार करो तो ध्यानमें आवेगा कि आनन्द श्रीखण्ड-में नहीं था। आनन्द आत्माका स्वरूप है। संसारके किसी पदार्थमें अथवा विषयमें आनन्द नही। विषय तो जड़ हैं। जड़ पदार्थमें आनन्द सम्भव हो ही सकता नही। जड़ पदार्थोंमें जीवको जो कुछ भी आनन्दका भास होता है, वह अन्दरके रहने वाले चैतन्यके स्पर्शसे होता है।

इन्द्रियोंको मन-वाञ्छित विषय मिले तो मन उसमे तदाकार होता है । थोड़े समयके लिए एकाग्र होता है । एकाग्रताके कारण चित्तमे आत्माका प्रतिबिम्ब पडता है और उससे आनन्दका आभास होता है । मन अन्तर्मुख हो, बाहर घूमता मन अन्दर जाकर चेतन परमात्माको स्पर्श करे, मनका ब्रह्म-सम्बन्ध हो जाये, उतने समय तक आनन्द मिलता है । मन बहिर्मुख हुआ, व्यग्र हुआ कि आनन्द उड़ जाता है। जो सुख इन्द्रियों और विषयोके संयोगसे होता है, वह आरम्भमे अमृत जैसा लगता है परंतु परिणाममे वह विष-के समान है ।

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ।
परिणामे विषमिव·········· ·· ।।

आनन्द जब-जब मिलता है, तब वह बाहरकी जड़-वस्तुओसे मिलता है, यह कल्पना ही त्रुटिपूर्ण है । आनन्द तो अन्दर रहनेवाले चेतन परमात्माके सम्बन्धसे मिलता है । आनन्द परमात्मा ही देते हैं । आनन्द तभी मिलता है जब परमात्माके साथ तुम्हारा सम्बन्ध होता है । अरे, ईश्वरको अन्दर खोजो । आनन्द अन्दर है । आनन्द तुम्हारेमें है । आनन्द आत्मामे-से बहता है । आनन्द बाहरसे आता नही । जो आनन्दको बाहर ससारके विषयोमें ढूंढने जाता है, उसे अन्तमे दु ख ही मिलता है । इन्द्रियाँ आनन्दको बाहर ढूंढ़ती है । इससे तुमको आनन्द मिलता नही और दु खी होते हो । ससारके विषयोका विस्मरण हो, तब ही सच्चा आनन्द प्राप्त होता है । ससारका सम्बन्ध छूटे तभी ब्रह्म-सम्बन्ध होता है । ब्रह्म-सम्बन्ध हो, तभी आनन्द प्राप्त होता है ।

रोजका अनुभव है । तुमको निद्रामे आनन्द कौन देता है ? बहुत बडा राजा है, सब बातोसे सुखी है । क्या उसे रानीसे आनन्द मिलता है ? क्या उसे राजमहलसे आनन्द मिलता है ? सब छोडकर जब यह सो जाता है, तब उसे आनन्द आता है। रानी-को, राजमहलको जब वह भूल जाता है, तब इसे निद्रा आती है और तब ही आनन्द मिलता है । कितने ही तो नीदके लिये गोली लेते है जिससे नीद आवे ।

अरे, निद्रामे एक पैसा मिलता नही, खानेको मिलना नही, मौज-शौक मिलता नही फिर भी निद्रामे तुम्हें क्यो आनन्द आता है ? निद्रामे तुमको कौन आनन्द देता है ? निद्रामे शान्ति कहाँसे मिलती है? मनुष्यको सब सुख मिले, पर उसे नीद न आवे तो मनुष्य पागल जैसा हो जाता है, उसे चैन पड़ता नही । निद्रा तो आनी ही चाहिए । कारण, निद्रा-मे शान्ति मिलती है, आनन्द आता है ।

निद्रामे मनुष्यको कौन शान्ति देता है ? चारपाईपर पडनेपर जिसको जगत याद आता है, उसको निद्रा नही आती । कोई अति सुन्दर स्वरूप आँखमे आवे तो निद्रा नही

आती । आँख रूपसे हट जाती है, तभी निद्रा आती है । कानको कोई शब्द सुनायी पड़े तो निद्रा आती नही । धीरे-धीरे जब वह सब भुला देता है, जब जगतको भुला देता है, तब मन अन्तर्मुख होता है । इन्द्रियाँ जब विषयोंको छोड़ती है, तभी अन्दर विराजे हुए चेतन परमात्माके साथ सो जाती हैं । इन्द्रियोंका लय संसारके विषयोंमें होता नहीं । परमात्मामें होता है और तब निद्रा आती है । निद्रा आनेके बाद शान्ति मिलती है । निद्रामें अन्दर विराजे हुए चेतन परमात्माका आनन्द मिलता है । आत्मा चैतन्य परमात्माका स्वरूप है । तुम्हारा आनन्द बाहर नहीं, तुम्हारा ही आनन्द तुमको मिलता है । मनुष्यको सब कुछ छोडकर सोनेकी इच्छा होती है, इससे ऐसा सिद्ध होता है कि आनन्द संसारकी जड़ वस्तुओंमें नहीं । आनन्द जगतमें नहीं, जगतको भूलनेमें है । तुम आनन्द-स्वरूप ही हो। तुम्हारा आनन्द तुम्हारे पास ही है । आनन्द-स्वरूप परमात्मा सबमें चैतन्य रूपसे निवास करते है । आनन्द निरपेक्ष रहता है तो टिकता है, सापेक्ष होता है तो टिकता नही । जब तक मनुष्यको अन्य किसीसे आनन्द मिलता है तब तक मानना कि पीछे दुःख खड़ा हुआ है । तुम दूसरेसे आनन्द लेने जाओगे तो दुःखी होगे ।

निद्रामें मन जैसा शान्त रहता है, ऐसा जाग्रत अवस्थामें रहे तो जहाँ जाओ, वहाँ आनन्द ही है । दीपकमें जब तक तेल है, तब तक वह जलता है, दीपकका तेल समाप्त हुआ कि दीपक शान्त हो जाता है । उसी प्रकार मनमें संसार हो, तब तक मन भी जलता है परन्तु मनमें संसार न रहे तो मन शान्त हो जाता है । चारपाईपर पड़नेके बाद मनसे संसार निकल जाता है और मनसे संसार निकला तभी मन शान्त हो गया ।

संसार छोड़कर कहाँ जाओगे ? संसारको मनमें-से निकालनेका प्रयत्न करो। बाहरका संसार तुमको त्रास देनेवाला नहीं है । संसार जो मनमें है, वही रुलानेवाला है । परमात्माके स्मरण करनेमें तन्मय होगे तो तुम्हारे मनमें-से संसार बाहर हो जाएगा । श्रीरामका, श्रीकृष्णका, ध्यान-स्मरण करते हुए जो तन्मय हो जाता है, उसके मनमें संसार रहता नहीं । तुम एकदम संसारको मनमें-से निकालने जाओगे तो संसार मनमें और अधिक आवेगा । जो कचरा निकालने जाता है, बुहारी करता है, उसके माथे कूड़ा पहले आता है । उसी प्रकार मनमें-से संसारको निकालना चाहोगे तो मन, संसारका चिन्तन करेगा । ऐसा करनेकी अपेक्षा ठीक उपाय यही है कि मनसे प्रभुका स्मरण करनेका अभ्यास करो । परमात्माके स्मरणमें तन्मय बनोगे तो मनमें-से संसार निकल जाएगा ।

परमात्माके सतत चिन्तन, स्मरणसे तुमको आनन्द मिलेगा । तुम परमात्माके अंश हो । तुम्हारा जगतके साथ सम्बन्ध सच्चा नही । तुम जगतके नहीं, भगवानके हो । जीव ईश्वरका अंश है, ईश्वरका है, फिर भी जगतका हो गया है ।

तुम्हारा जन्म हुआ, तब तुम पति थे क्या ? जन्म होता है, तब कोई पति नही, कोई पत्नी नही। पति-पत्नीका सम्बन्ध व्यवहार-दृष्टिसे भले सच्चा हो परन्तु तत्त्व-दृष्टिसे विचार करनेपर सत्य नही। पत्नीका मरण होनेके बाद कोई पति नही। पत्नीका मरण हो जाये तो पति-सम्बन्धका भी मरण हो जाता है। पत्नी न रहे तो पति किसका ? पत्नी है तो पति है। पत्नी नही तो पति भी नही। पति-पत्नीका सम्बन्ध, पिता-पुत्रका सम्बन्ध जगतका कोई भी सम्बन्ध सत्य नही। जीवका ईश्वरके साथका सम्बन्ध सच्चा है। तुम सब भगवानके अंश हो। तुम परमात्माके बालक हो, तुम आनन्द-स्वरूप हो।

परंतु यह जीव अपने स्वरूपको भूलता है और जगतके साथ सम्बन्ध जोड़ता है। जीव स्वयं आनन्द-स्वरूप होनेपर भी जगतमें सुख-दु:खको ढूँढने जाता है। हम सब ठाकुर-जीके चरणोंमें थे परन्तु बादमें वहाँसे पृथक हो गये। कितनोंको ही ऐसी शङ्का होती है कि महाराज! तुम कहते हो कि जीव ईश्वरका अंश है, आनन्दरूप है तो फिर यह जीव ईश्वर-से अलग हो गया और क्यो हो गया ? जीव ईश्वरसे अलग क्यों हुआ और कैसे हुआ ? इसका बहुत विचार न करो। कितनी ही भूलें हुई हैं। यह बात सच्ची है कि हम सब भगवानके चरणोमें थे। कुछ भूल हुई, उससे वहाँसे अलग हुए और संसारमें आये और तबसे सुख-दु:खका आभास हुआ। अब जीव ईश्वरसे पृथक क्यों हुआ, इस बातका विचार करनेसे क्या लाभ ?

रोग होनेके बाद रोग क्यो हुआ और किस प्रकार हुआ, इसका बहुत विचार करोगे तो क्या रोग चला जायेगा ? रोग होनेके बाद दवा लेनी पड़ती है, पथ्य पालना पड़ता है। तभी रोग जाता है। रोग हुआ है तो कोई भूल हुई है। उसके निवारणका उपाय करो। रोग निकालनेका, भूल सुधारनेका उपाय करो।

एक भाई अपने कपड़ोका बहुत खयाल रखते थे कि मेरे कपड़े बिगड़ न जायें। एक दिन घर आनेके बाद इन्होंने देखा कि धोतीपर दाग पड़ गया है। वे माथा खुजलाने लगे कि यह दाग किस प्रकार पड़ा है ? कहाँ पड़ा है, कौनसे स्थानपर पड़ा है ? बहुत सोचा तो फिर एक-एक घर पूछने गये कि मैं तुमसे मिलने आया था, उस समय तुम्हारे घर यह दाग लगा है क्या ? एक सज्जनने कहा, मेरे घर लगा हो या किसी दूसरेके घर लगा हो, दाग दीखता है न ? तुम यह ज्यादा विचार किसलिये करते हो ? साबुन लगा-कर धो डालो, जिससे स्वच्छ हो जाएगा। कहाँ लगा ? किस रीतिसे लगा ? क्यों लगा ? यह विचार करनेसे कुछ भी लाभ नही। दाग दीखा कि साबुन लगा डालो, धो डालो। स्वच्छ तो इससे होगा।

जीवका ईश्वरसे वियोग हुआ है, यह बात सच है। ईश्वरसे यह पृथक हुआ है। यह जगतका नही, ईश्वरका है। फिर भी यह स्वयंके शरीर-स्वरूपको भूला हुआ है और

जगतका बन गया है। जगतका होनेसे ही यह दुःखी हुआ है। यह जगतमें आनन्द ढूँढ़ता है परन्तु संसारमें आनन्द कहाँ है? आनन्दरूप तो परमात्मा हैं। तुम आनन्द चाहते हो तो परमात्माके साथ प्रेम करो, प्रभुका स्मरण करो, परमात्माकी सेवा करो। तुमको आनन्द मिलेगा। जीव संसारके जड़ पदार्थोमें आनन्द खोजने जाता है। जिससे उसको आनन्द मिलता नहीं। आनन्द दूसरेमें है, यह कल्पना गलत है। आनन्द हृदयमें है। उस आनन्दको जगाना है। मन, वचन, कर्म तीनों भक्ति-रसमें डूबें तो आनन्द जागता है। शरीरसे सेवा करो, मनसे सेवा करो, वचनसे सेवा करो। इन तीनोंको भक्तिका लाभ दो।

अनन्तकालसे जीव आनन्दको खोजता है। संसारके विषय जीवको सुख देते है, दुःख देते हैं। इसको आनन्द मिलता ही नहीं। सृष्टिका एक नियम है कि सुखके बाद दुःख होता ही है। जो सुख भोगता है, उसकी भले ही इच्छा हो न हो, उसे दुःख भी भोगना पड़ता है। सुख और दुःख दोनों सगे-भाई हैं। ये साथ ही रहते हैं। जीवको सुखकी भूख नहीं, आनन्दकी भूख है। यह आनन्द चाहता है, पर आनन्द संसारमें नही। आनन्द, ईश्वरका स्वरूप है। जहाँ जगत है, वहीं सुख-दुःख है। जहाँ जगत नहीं, वहाँ सुख है न दुःख। वहां है केवल आनन्द। परमानन्द-रूप श्रीराम सुख देते नहीं। श्रीराम दुःख देते नहीं। श्रीराम तो आनन्द देते है।

किसी भी भाषामें "आनन्द" का विरोधी शब्द मिलता नहीं। "सुख" का विरोधी शब्द "दुख" है। "लाभ" का विरोधी शब्द 'हानि' है। "राग" का विरोधी शब्द "द्वेष" है। आनन्द का विरोधी शब्द कुछ नहीं। परमात्मा आनन्दरूप हैं।

काल और काम जीवनके पीछे पड़े हैं, इससे जीव अकुलाता है, घबराता है। इसको आनन्द मिलता नहीं। यह काम की दोस्ती छोड़कर श्रीरामके साथ मित्रता करे तो इसको आनन्द मिले। काम शब्द पर थोड़ा विचार करोगे तो यह बात ध्यानमें आवेगी। "क" अधिक "आम" शब्द मिलकर "काम" शब्द हुआ है। "क" शब्दका अर्थ होता है सुख और आम शब्दका अर्थ होता है कच्चा। कच्चा सुख ही काम है और सच्चा सुख ही राम हैं।

काम कच्चा सुख है। काम यह बताता है कि मैं तुमको सुख देता हूँ। मैं तुमको सुखी करता हूँ परन्तु काम किसीको सच्चा सुख देता नहीं। काम थोड़ा सुख देता है ज्यादा दुख ही देता है, रुलाता है। जो कामके अधीन हैं उनको कालके अधीन रहना ही पड़ता है। महापुरुष कालको सर्प और मगरकी उपमा देते हैं।

यह संसार एक ऐसा कुआँ है कि जिसमें कालरूपी सर्प हमेशा काटनेके लिए तैयार ही रहता है। विषय-भोगोंकी इच्छा, कामी स्त्री-पुरुषोंको कुएँमें धकेलती है। कालका भय सतत उसके माथे खड़ा रहता है।

दूसरी उपमा है मगरकी। संसार, सरोवर है। इस ससार-सरोवरमें जीवात्मा स्त्री तथा बालकोके साथ क्रीड़ा करती है। संसार-सरोवरमें जो जीव रमता है, उसमें ही उसका काल भी बैठा हुआ है। जिस घरमें मनुष्य काम-सुख भोगते हैं, उसमें ही उनका काल भी सूक्ष्म रीतिसे बैठा है। मनुष्य कालको देखता नही, परन्तु काल मनुष्यको सतत देखता है। मनुष्य गाफिल है, परन्तु काल सावधान है। संसार-रूपी सरोवरमे जो काम-सुख भोगते हैं उनको कालरूपी मगर पकड़ता है। जो कामकी मार खाते हैं उनको कालकी मार खानी ही पड़ती है। मनुष्य ऐसा मानता है कि मैं कामको भोगता हूँ परन्तु यह मान्यता खोटी है। मनुष्य कामको भोगता नही, परन्तु काम मनुष्यको भोगकर उसको क्षीण-जीर्ण करता है। भोगा. न भुक्ता वयमेव भुक्ताः।

काम ऐसा दुष्ट है कि हृदयमें जानेके पीछे निकलता नही। काम एक बार अन्दर प्रवेश कर जाये तो पीछे मानवका कोई उपाय चलता नही। काम दूरसे देखता है कि जीवके हृदयमे क्या है? इसके हृदयमे राम हो तो काम आता नही। आ सकता भी नहीं। राम न हो तो काम आता है। साधारण ऐसा नियम है कि जहाँ कामकी गति है; वहाँ कालकी भी गति है। जहाँ काम जा सकता नही, वही काल भी जा सकता नही। काम भयंकर है, प्रवल है। कामका नाश कामसे ही करना पड़ता है। जो परमात्मा को काम अर्पण करता है वह ही काम का नाश कर सकता है।

काम एक काँटा है। जंगल मे चलते हुए पैर में काँटा लग जाये तब सुई कहाँ मिलेगी ? कोई दूसरा काँटा हाथमें लेकर उससे पैरका काँटा निकालना पड़ता है। पीछे दोनो फेक देते हैं। काँटेको काँटेसे निकालना है। लोहेके खंडको लोहेके खंडसे ठोकना पड़ता है। उसी रीतिसे कामको कामसे ही मारना पड़ता है। लौकिक कामका नाश अलौकिक कामसे करना है। जो भगवद्‌काम हो, जिसे प्रभु-मिलनकी तीव्र आतुरता जागे, उसका काम नाशको प्राप्त होता है।

जो परमात्माके अधीन रहता है वह कालके अधीन होता नही। परमात्मा कालके भी काल हैं। तुमको आनन्द चाहिए तो तुम श्रीरामके साथ मित्रता करो, रामजी-के साथ प्रेम करो। काम तुम्हारा मित्र नही, शत्रु है। काम अनेक जन्मोसे जीवको रुलाता ही आया है। काम शत्रु होनेपर भी मित्र जैसा लगता है। काम दुःख ही बहुत देता है। अनादिकालसे यह जीव कामके अधीन होकर संसारमें रगड़ा जाता है और कालकी मार खाता है।

जो कामकी मार खाता नही, उसको काल भी मारता नही। कामकी उस पर पड़ती है जो रामजी से विमुख है। रामके सम्मुख रहे तो यह काम

खावे नहीं। दीपकके सम्मुख रहोगे तो छाया पीछे रहती है, परन्तु दीपकके विमुख होगे तो छाया आगे आ जाती है। सूर्यके सम्मुख हो तब तक छाया आगे आती नही परन्तु जो जीव सूर्यसे विमुख हो जाता है, छाया उसके आगे आ जाती है। तुम जब प्रभुसे विमुख होते हो तो काम तुम्हारे आगे आकर खड़ा रहता है।

यह संसार काममय है। इस संसारका मूल ही काम है। जहाँ देखो वहाँ अधिक भागमें कामका ही राज्य होता है। मनुष्य जब बहिर्मुख होता है तब उसे काम दिखाई देता है और कामका विष इसे जलाता है। संसारका विष जब जलाए, वासना, कामका विष जब जलाए, उस समय परमात्माके कथामृत, नामामृतका पान करना। तुम सर्वकालमें परमात्माके सम्मुख रहनेका अभ्यास करो। सर्वकालमें भक्ति करनेकी आदत डालो। जहाँ सतत भक्ति होती है, वहीं रामजी प्रगट होते हैं।

रामजी प्रगट होते है। रामजी का जन्म नहीं होता। अज-अविनाशीका जन्म कैसे? जन्म जिसका होता है उसका विनाश भी होता है। रामजी ऐसे हैं—

अकल अनीह अनाम अरूपा। अनुभवगम्य अखंड अनूपा॥
मनगोतीत अमल अविनाशी। निर्विकार निरवधि सुखरासी॥

रामायणमें स्पष्ट वर्णन आता है कि रामजीका जन्म हुआ नहीं, प्राकटय हुआ है। रामजी क्या कौशल्या मांके पेटसे बाहर आये हैं? श्रीकृष्ण क्या देवकीजीके पेटसे बाहर आए हैं? श्रीकृष्ण बाहरसे ही प्रकट हुए है। श्रीराम बाहरसे ही प्रकट हुए हैं और पीछे बालस्वरूप धारण किया है।

स्त्रीपुंमलाभियोगात्मा देहो विष्णोर्न जायते।
किंतु निर्दोषचैतन्यसुखां नित्यां स्वकां तनुम्॥
प्रकाशयति सैवेयं जनिर्विष्णोर्न चापरा।

भगवान अवतार धारण करते है, प्रकट होते हैं। तुम्हारा शरीर माता-पिताके शरीरसे उत्पन्न हुआ है, उस रीतिसे भगवानका शरीर माता-पिताके शरीरसे होता नहीं। परमात्मा तो अपने निर्गुण, निराकार, चिदानन्दमय स्वरूपमें-से साकार स्वरूपको प्रकाशित करते हैं।

श्रीरामजीका जन्म होता नहीं, श्रीरामजीका प्राकटय होता है। भगवानका अवतार होता है, वह कैसे किस प्रकार होता है? जहाँ भगवान नहीं, वहाँ आकर क्या भगवान खड़े रहते हैं? अरे, जगतमें ऐसी कोई जगह ही नहीं कि जहाँ भगवान सूक्ष्म रीतिसे विराजते न हों। भगवान सर्वव्यापक हैं, सर्वत्र हैं परन्तु मायाके परदेमें छिपे रहते

है। भगवानका अवतार होता है, अर्थात् परमात्मा मायाका परदा दूर करके प्रगट होते हैं। भगवानका जन्म होता नही, भगवानका प्राकटच होता है। मायाका आवरण परमात्मा दूर करते हैं।

परमात्माको प्रगट होना बहुत अच्छा नही लगता। प्रभुको गुप्त रहना ही ज्यादा अच्छा लगता है। वे मायाके पर्देमें रहते हैं। जहाँ रामजीकी कथा होती है अथवा वैष्णव जहाँ प्रेमसे राम-नामका जप करते हैं, वहाँ प्रभु पधारते हैं परन्तु प्रभु वहाँ गुप्त रीतिसे आते हैं।

एक वैष्णवने भगवानसे पूछा—महाराज ! अपना स्वरूप तुम गुप्त क्यों रखते हो ? स्वरूप प्रकट करो तो सब आपके प्रत्यक्ष दर्शन कर सके। जहाँ आपकी कथा होती है, जहाँ आपका कीर्त्तन होता है, वहाँ आप छिपे रूपसे आते हो परन्तु आप स्वरूप प्रगट क्यों नही करते ?

रामजीने कहा—मैं बहुत रूपवान हूँ, इसलिये मुझे किसीकी नजर न लग जाय, इस कारण मैं गुप्त रहता हूँ।

मानवकी आँख बिगड़ी हुई है। मानव आँखसे बहुत पाप करता है, मनसे बहुत पाप करता है। भगवानको भी डर लगता है कि किसीकी मुझे नजर लगे तो ? परमात्मा अति सुन्दर हैं। उन अति सुन्दर परमात्माको किसीकी नजर न लगे, इसलिये प्रभुकी ही माया प्रभुको पर्देमें रखती है। जहाँ अतिशय प्रेम होता है, वही प्रभु पर्दा दूर करते हैं। परमात्मा जिसको अपना गिनते हैं, उसको ही अपना असली स्वरूप बताते हैं। प्रभुने अपना नाम प्रकट रखा है परन्तु स्वरूप छिपाया हुआ है। जीव जब परमात्माकी बहुत भक्ति करता है, प्रभुके साथ अतिशय प्रेम करता है, तभी परमात्मा उसे अपना स्वरूप बताते हैं।

थोड़ा विचार करो तो ध्यानमे आवेगा कि जहाँ ओछा प्रेम है, वहाँ तुम भी अपने स्वरूपको पर्देमें रखते हो। अपने असली स्वरूपको उसीके आगे प्रकट करते हो, जिससे तुमको सच्चा प्रेम है। तुम्हारे घरमें सोना कितना है, चाँदी कितनी है, वह तुम सब किसीको बताते हो क्या ? नही, तुम छिपाकर रखते हो। कितने ही लोग तो इतने विवेकी होते हैं कि पराया कोई आवे तो उसके सामने घरकी तिजोरी खोलते भी नही। कहते हैं, यह भाई बैठा है, उसको चला जाने दो, बादमें खोलूँगा। यदि खोल दो तो क्या वह ले जावे ?

जहाँ अतिशय प्रेम है, वहाँ ही जीव अपने स्वरूपको प्रकट करता है। जिसके प्रति प्रेम होता है, उसको बिना कहे सब कुछ बताता है। जहाँ अतिशय प्रेम होता है, वहाँ

मनुष्य तिजोरीकी चाभी तक दे देता है परन्तु जहाँ ओछा प्रेम है, वहाँ मनुष्य भी स्वयंके स्वरूपको छिपाता है। फिर अतिशय प्रेम बिना परमात्मा क्यों प्रकट हों ? यह जीव परमात्माके साथ प्रेम करता नहीं, इसलिये वह परमात्माका अनुभव कर सकता नही। बड़ा ज्ञानी भी जबतक परमात्माके साथ प्रेम न करे, तबतक परमात्माका अनुभव कर सकता नहीं, प्रभुका स्वरूप जान सकता नहीं।

परमात्माकी लीलाका रहस्य महान् पुरुष भी समझ सकते नहीं। ठाकुरजी ऐसी लीला क्यों करते हैं, यह तो वे स्वयं ही जानते हैं। परमात्माकी लीलाका रहस्य मनुष्य अपनी बुद्धिसे समझनेका प्रयत्न करता है परन्तु समझ सकता नहीं। इसका रहस्य अगम्य है, मानव-बुद्धिसे परे है। भगवत्-कृपासे ही भगवानकी लीलाका रहस्य किञ्चित् विचारमें आ पाता है।

(२२)
श्रीशिव-कथा

एक बार ऐसा संयोग हुआ कि परमात्मा श्रीरामकी दिव्य लीला देखकर शिवजीको तो तनिक भी मोह हुआ नहीं परन्तु सतीके मनमें थोड़ा विकल्प हो गया। उनको शंका हो गयी कि निराकार ब्रह्म तो सर्वव्यापक हैं। वह नरके आकारमें राम कैसे हो सकता है ?

शिवजी सतीको समझाते हैं परन्तु सतीजीका मन मानता नहीं। शिवजी और सतीजीकी यह दिव्य कथा है। गोस्वामी तुलसीदासने अपनी रामायणमें शिवजीकी वन्दना करके इस शिव-कथाका वर्णन किया है।

एक समय नारदजी विन्ध्याचल पर्वतके पास गये और उससे कहा—जगतमें सबसे बलवान मेरु पर्वत है। सूर्यनारायण मेरु पर्वतके पास जाते है। तेरे पास कौन आता है ? नारदजीकी समस्त लीला समाजको सुखी करनेके लिए होती हैं। बाहरसे देखनेपर लगता है कि नारदजी सब जगह कलह जगाते है परन्तु उस सबमें समाजका कल्याण समाया हुआ होता है।

नारदजीने विन्ध्याचल पर्वतसे कहा—क्या तुममें मेरु पर्वत जैसी शक्ति है ? तुझमें कुछ शक्ति हो तो तू भी बढ़कर दिखा।

विंध्याचल बढ़ने लगा। वह इतना बढ़ा कि सूर्यनारायणसे जगतके एक भागको प्रकाश मिलना बन्द हो गया। जगतमे हाहाकार हो गया, सर्वत्र भय छा गया। उस समय देवता, अगस्त्य ऋषिके पास गये। विंध्याचल अगस्त्य ऋषिका शिष्य था। अगस्त्य ऋषि उस समय काशीमें रहकर शिवजीकी आराधना कर रहे थे। देवताओंने अगस्त्य ऋषिसे कहा—तुम विन्ध्याचलको समझाओगे तभी वह मानेगा।

विंध्याचल पर्वतको बढ़नेसे रोकनेके लिये अगस्त्य ऋषिको काशी छोड़कर दक्षिण भारत जाना पड़ा। इससे उनको बहुत दु.ख हुआ।

काशीमें जीवन सफल होता है, और मरण भी सुधरता है।

मंगलं मरणं यत्र सफलं यत्र जीवितम्।
...............शैशाषा मणिकर्णिका॥

जीव काशीमें गङ्गा-किनारा छोड़कर, स्वर्गमें जाता है तो कौवे भी हँसते हैं—मूर्ख है, गङ्गा-किनारा छोड़कर जाता है। काशीके गङ्गा-किनारेकी इतनी महिमा है। गंगामें स्नान करते हुए अगस्त्य मुनिकी आँखें सजल हो गयी। गंगा-स्नान फिर कब प्राप्त होगा? गंगा माँ प्रकट हुई, उन्होंने अगस्त्य मुनिसे कहा—तुम दक्षिणमें जाओ, मैं वहीं आऊँगी।

अगस्त्य मुनि काशी विश्वनाथके दर्शन करने गये। आँखोंसे अश्रुपात हुआ। अब कब दर्शन होंगे? काशी विश्वनाथका वियोग उनको दु:सह लगने लगा। उस समय श्रीशंकर भगवानने कहा—तुम वहाँ जाओ। पीछे-पीछे मैं भी वहाँ आऊंगा। अगस्त्य ऋषि काशी छोड़कर विंध्याचलके पास गये। गुरुदेवके आगमनसे विंध्याचल पर्वतको आनन्द हुआ। उसने गुरुदेवको साष्टाग दण्डवत्-प्रणाम किया। उसी समय गुरुदेवने आशीर्वाद देते हुए कहा—भाई! मैं दक्षिण यात्रा करने जा रहा हूँ। मैं यात्रा करके वापस न आऊँ तब तक तुम उठना नहीं, इसी तरह लेटे रहना।

गुरुदेवकी आज्ञा हुई इस कारणसे विंध्याचल वेचारा पड़ा ही रहा। आज तक भी उठता ही नही।

अद्य श्वो वा परश्वो वा ह्यागमिष्यति वै मुनिः।

मुनि आज आवेंगे, कल आवेंगे, परसों आवेंगे। इसी आशामें वेचारा पड़ा ही रहता है परन्तु अगस्त्य ऋषि दक्षिण यात्रा करने जो गये उसके बाद आये ही नहीं, अगस्त्यका वायदा पूरा होता ही नही और विन्ध्याचल पर्वत साष्टांग करके लम्बा होकर जो पड़ा तो उठता ही नही।

अगस्त्य मुनि दक्षिण भारतमें मलयाचल पर्वतपर बैठकर भगवान शंकरका ध्यान करते हैं, पंचाक्षर मन्त्रका जप करते है, मनमें गंगा मांका स्मरण करते है, भगवान शिवका स्मरण करते हैं।

इनका प्रेम देखकर समस्त देवता अगस्त्य मुनिसे मिलने गये। लेटे पड़े विंध्याचल-को देखकर सबको आश्चर्य हुआ। देवता मलयाचलमें आये। काशी छोड़ते समय अगस्त्य ऋषिसे शिवजीने कहा था—मैं पीछेसे वहाँ आऊँगा, उसके अनुसार ऋषिको दर्शन देने भगवान काशी विश्वनाथ भी श्रीसतीजीके साथ दक्षिण भारतमें गये।

अगस्त्य मुनि बड़े अधिकारी हैं। भगवान शंकरने उनको राम-मन्त्रकी दीक्षा दी, संक्षेपमें रामायणकी कथा सुनायी। अगस्त्य ऋषिको कृतार्थ करके भगवान शंकर सतीजीके साथ दक्षिण भारतसे वापस लौटते हुए दण्डकारण्यमें-से जा रहे थे उसी समय दण्डकारण्यमें रामजी लक्ष्मणजीके साथ जा रहे थे, रावण सीताजीका हरण करके ले जा चुका था, सीताजी लंकामें 'श्रीराम-श्रीराम-श्रीराम' कहते हुए रामजीके वियोगमें विलाप करती थीं। उसी समय भगवान रामचन्द्रजीने भी एक नाटक रचा और सोचा कि मैं भी सीताजीके वियोगमें रुदन करूँ। मुझे सीताजीका वियोग सहन होता नहीं।

भक्त भगवानके लिये रोते हैं तो भगवान भी भक्तोंके वियोगको सहन कर सकते नहीं और परमात्मा व्याकुल होकर रोने लगते है। लंकामें सीताजी रामजीका ध्यान करती हैं। रामजी सीताजीका ध्यान करते हैं। यह तो भगवानकी लीला है। श्रीसीतारामजीका कभी वियोग होता ही नही।

'हे सीते ! हे सीते !' कहकर रामजी विलाप कर रहे है, रुदन कर रहे है। लक्ष्मणजी समझा रहे हैं। प्रभु किसी-किसी वृक्षको आलिंगन देते हैं। बड़े-बड़े ऋषि दण्डकारण्यमें वृक्ष बनकर रहते थे। हजारों वर्षो तक उन्होंने तपश्चर्या की परन्तु बुद्धि-में-से कामका विकार न गया। काम अत्यन्त सूक्ष्म है। ऋषियोंने विचार किया कि रामजी हमको अपनावेगे तो बुद्धिमें-से काम हट जावेगा।

अति पापी भी श्मशानमें बावला हो जाता है। ऋषि दण्डकारण्यमें वृक्ष बने हुए थे। सभी प्रकारका अभिमान छोड़कर, परमात्मासे मिलनकी भावनासे दण्डकारण्यमें वृक्ष रूपसे प्रकट हुए थे। रामजीने उन्हें अपना लिया।

जिस मार्गसे रामजी विलाप करते हुए जा रहे थे, उसी मार्गसे भगवान शंकर सतीके साथ आ रहे थे।

एहि बिधि खोजत बिलपत स्वामी। मनहुँ महा बिरही अतिकामी॥
पूरन काम राम सुखरासी। मनुज चरित कर अज अबिनासी॥

शिवजी तो जानते थे कि रामजी परमात्मा है, प्रभुकी लीला अलौकिक है। लीला ही तो रामजीका अनुग्रह है। परमात्मा तो आनन्दमय है। उसको कुछ भी करनेकी इच्छा नही। जिसको काम नही, वह निष्क्रिय है। उद्देश्यके लिये ही क्रिया होती है परन्तु भगवान हम लोगोके लिये लीला करते हैं।

यह जीव ईश्वरको भूला हुआ है। ईश्वरका अंश होनेपर भी स्वरूपको भूलकर जगतका बन गया, तबसे ही जीव दुःखी हो गया है। जीवको दुःखसे छुड़ानेके लिये, बिछुड़े हुए जीवोका आकर्षण करनेके लिये परमात्मा लीला करते हैं। एक साधारण मनुष्यकी भाँति विलाप करते हुए रामजीके दर्शन शिवजीको हुए, उनके मनमे आनन्द हुआ। कपोलोमें मन्द हास्यकी रेखा खिच गयी कि आज आनन्द, रुदन कर रहा है। परमात्मा कैसा नाटक कर रहे हैं। मनुष्य जैसी लीला कर रहे है। मैं यदि सम्मुख जाकर वन्दन करूँगा तो मेरे भगवानको सङ्कोच होगा। शिवजी वृक्षकी ओटसे परमात्माका दर्शन कर रहे थे। श्रीअङ्गमें रोमाञ्च हो रहा था, आँखोंसे अश्रुपात हो रहा था।

जय सच्चिदानन्द जग पावन। अस कहि चलेउ मनोज नसावन॥
चले जात शिव सती समेता। पुनि पुनि पुलकत कृपानिकेता॥

शिवजीने मन-ही-मनमें 'जय सच्चिदानन्द जग पावन' कहकर दूरसे प्रणाम किया। रामचन्द्रजीको वन्दन करके जय-जयकार किया। सतीजीको आश्चर्य हुआ। उनको शिवजी-का ऐसा आचरण उचित नही लगा। उन्होंने शिवजीसे पूछा—महाराज! आप किसको प्रणाम कर रहे है? शिवजीने कहा—यह मेरे इष्टदेव हैं। इनका दर्शन कर रहा हूँ। अपने रामजीका वन्दन कर रहा हूँ। सतीजीने पूछा—यह रोते-रोते जा रहे है, आपके इष्टदेव हैं? शिवजीने कहा—हाँ, यही मेरे इष्टदेव हैं। यह सबमें विराजमान हैं, यह परमात्मा है। सतीजी बोली—नही, नही, यह परमात्मा नही। यह तो दशरथके पुत्र हैं और रोते-रोते जा रहे है। शिवजीने कहा—देवी! यह तो नाटक कर रहे है। यह परमात्मा है। यह आनन्द-रूप हैं। जो निराकार, सर्वव्यापक ब्रह्म है वे ही श्रीराम हैं। सतीजीने कहा—महाराज! आप कहते हो परन्तु मेरे ध्यानमें बैठता नहीं। निर्गुण-निराकार ब्रह्म तो सर्वव्यापक है। वे राम किस प्रकार हो सकते हैं?

सतीजीका आग्रह है कि निर्गुण-निराकार व्यापक हो सकता है। सगुण-साकार किस प्रकार व्यापक हो सकता है? शिवजीने कहा—इसमें बाधा क्या है? यह तो अनेक आकार धारण कर सकते है। सतीजीने कहा—महाराज! व्यापक ब्रह्म किस प्रकार परि-च्छिन्न हो सकता है? शिवजीने कहा—भक्तोके प्रेमके कारण व्यापक ब्रह्म सगुण होते हैं। **सतीजी**—महाराज! परमात्मा तो आनन्दरूप है और यह तो रोते हुए जा रहे है।

शिवजी—रो रहे है, इससे क्या हुआ ? यह तो रोनेकी लीला कर रहे हैं। नाटकमें कोई राजा भिखारीका वेष सजावे उससे वह भिखारी तो नही हो जाता। यह तो नाटक है। रामजीकी यह लीला है। सर्वमें विराजे हुए रामका मनसे वन्दन करता हूँ और इन माया-रहित रामका प्रत्यक्ष वन्दन करता हूँ।

सतीजी—महाराज! जो रुदन करता है उसका वन्दन करनेसे क्या लाभ? शिवजी—ये रुदन नही करते। अन्दरसे ये शान्त हैं, आनन्दस्वरूप है। रोना अर्थात् मायाका यह धर्म रामजीमें दिखाई भले ही पड़े, परन्तु इससे रामजी दुःखी नही है। यह आनन्द-स्वरूप है, ईश्वर हैं।

राम ब्रह्म व्यापक जग जाना। परमानन्द परेस पुराना॥
जगत प्रकाश्य प्रकाशक रामू। मायाधीस ज्ञान गुनधामू॥
जासु सत्यताते जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया॥

जिस रामके सत्य-स्वरूप होनेसे ही यह जगत् सत्य न होनें पर भी सत्य जैसा दिखायी पड़ता है। किसी श्रीमन्तके गलेमें कल्चर अर्थात् नकली मोतीकी माला हो तो भी लोग यही समझेंगे कि यह मोती असली है। श्रीमान्‌के सम्बन्धसे खोटा मोती भी सच्चा लगनें लगता है। कोई गरीब आदमी सच्चा मोती भी धारण करे तो भी लोग उस मोतीको झूँठा मोती ही समझेंगे। यह संसार कल्चर मोतीकी मालाके समान ही है। रामजीने इसे अपने गलेमें धारण कर रखा है।

यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः।

परमात्माने जगतको धारण किया हुआ है इसीलिये यह सत्य प्रतीत होता है, वस्तुतः यह झूँठा है। संसारके विषय भी झूँठे है। वे सच्चा सुख दे सकते नहीं; झूँठा ही सुख देते है। जगत सबका पृथक-पृथक होता है—बालक का पृथक, जवान का पृथक। बालकको खिलौनेमें सुन्दरता लगती है। तुमको खिलौनेमें क्या सुन्दरता दीखेगी ? यह सभी परमात्माकी माया है। जगत आनन्द दे सकता नही। आनन्दका दान तो परमात्मा श्रीरामचन्द्रजी ही दे सकते हैं। रामजी पूर्ण आनन्दरूप है।

शिवजी सतीजीको समझाते है—'मुझमें विश्वास रखो' परन्तु सतीजीका मन मानता नहीं था। उन्होने कहा—तुम्हारी बात मेरे ध्यानमें बैठती नहीं। यह आनन्दरूप होते हुए भी रुदन करते है। यह रोते क्यों हैं ?

शिवजीने कहा—यह तो रावण सीताजीको चुरा ले गया, इस कारणसे रोते हैं। सतीजीने पूछा कि कितने दिन हो गये ? शिवजीने कहा, दो तीन दिन हुए।

सतीजीने कहा—जो स्त्रीके वियोगमें रोते है, जिन्हें रत्तीभर वियोग सहन होता नहीं, उनको आप प्रणाम करते हो ? महाराज ! आप तो सर्वज्ञानी पुरुषोंमें अतिशय श्रेष्ठ हो, स्त्रीके वियोगमें रहनेवाले एक साधारण राजकुमारको आप प्रणाम करे, यह ठीक नही। शिवजी ने कहा—यह राजकुमार नही। यह किसीके पुत्र नही। यह तो सबके पिता हैं। यह सभीसे श्रेष्ठ है।

सतीजी ने कहा—महाराज ! मुझे यह जँचता नही। यह तो स्त्रीके वियोगमें रोते हुए जा रहे है। आप तो कभी मुझे आँख उठाकर भी सम्मुख नही देखते। शंकर दादाका गृहस्थाश्रम अति दिव्य है। श्रीसीतारामजी साथ बैठते हैं। श्रीराधाकृष्ण साथ-साथ विराजते हैं। लक्ष्मीनारायण एक साथ विराजते हैं परन्तु शंकर भगवान् एक ओर, पार्वती माता दूसरी ओर। शंकर-पार्वती साथ बैठे हुए हों, इस प्रकारके दर्शन मन्दिरमें होते है क्या ?

शिवजी वैराग्यके स्वरूप है। शिवजीमे परिपूर्ण ज्ञान-वैराग्य है। यह तो, श्रीद्वारकानाथने शंकर दादासे बहुत आग्रह किया कि तुम विवाह कर लो, इस कारणसे शिवजीने विवाह किया। विवाहके पश्चात् उन्होंने पार्वतीजी को श्रीकृष्ण-कथा, श्रीराम-कथा सुनायी और कहा कि एक ओर बैठकर तुम राम राम राम करो और दूसरी ओर मैं राम राम राम करूँ। मेरे पास न आकर दूर ही रहना।

प्रकृतिका स्पर्श होनेपर कुछ विकार जग ही जाता है। इस कारण प्रकृतिसे दूर ही रहना चाहिये। प्रकृतिसे अलग रहो और परमात्माका सतत ध्यान करो। शिवजी महाराजने जगतको यही आदर्श बतलाया है।

भगवान् श्रीकृष्ण राधाजीके साथ विराजते है। श्रीराम सीताजीके साथ विराजते हैं। वे दरसाते है कि भले ही प्रकृति साथ हो परन्तु प्रकृतिके अधीन होना नही। प्रकृतिके अधीन होना तो बन्धन है। प्रकृतिके साथ रहना परन्तु प्रकृतिसे अलिप्त रहना, लिप्त होना नही। शिवजी महाराज तो कहते है कि प्रकृतिसे अलिप्त ही नही परन्तु दूर रहना ही सार है। वैसे दोनो एक है ही !

भगवान शकर निवृत्ति धर्मके आचार्य है। श्रीराम, श्रीकृष्ण, प्रवृत्ति धर्मका आदर्श बतलाते है कि निरपेक्ष होकर प्रवृत्ति करो। निष्काम भावसे कर्म करो। श्रीराम, श्रीकृष्ण, प्रवृत्तिमे ही हैं, फिर भी अन्दरसे उनकी निवृत्ति है। सब प्रकारकी प्रवृत्ति करते हुए भी किसी प्रवृत्तिमें आसक्ति नही। इनके द्वारा प्रवृत्ति होती है परन्तु इनकी प्रवृत्ति, निवृत्तिके समान है।

भगवान शङ्कर कहते हैं कि जिनको ब्रह्मानन्द प्राप्त करना है, उनको निवृत्ति स्वीकार करनी ही पड़ेगी। प्रवृत्तिमें रहकर भजनानन्द मिलना अशक्य है। कूड़ाघरमें इत्रकी सुगंध आती नहीं। भजनानन्दकी आवश्यकता हो तो विषयानन्द छोड़ना ही पड़ेगा। निवृत्तिका आनन्द लेना हो तो प्रवृत्ति छोड़नी ही पड़ेगी। पूरे दिन जो संसारमें फँसा हुआ रहे, उसे आनन्द मिलता नहीं। अति भक्ति और प्रवृत्तिका विरोध है। इसलिये शिवजी कहते हैं—प्रवृत्ति बाधक है, इसलिये निवृत्ति ग्रहण करके परमात्माका ध्यान करो।

श्रीराम, श्रीकृष्ण प्रवृत्ति करते हैं परन्तु प्रवृत्तिमें लिप्त नहीं होते। शिवजी प्रवृत्तिसे दूर ही रहते हैं। इसीसे तो अधिक अवतार शिवजीके होते ही नहीं। शिवजीको अवतार धारण करनेकी इच्छा नहीं होती। शंकर भगवानको इस संसारमें आना सुहाता नहीं। जो संसारमें आता है, उसीको माया छलती है। मायासे दूर रहना ही निवृत्ति धर्मका आदर्श है। मायाके साथ होनेपर भी मायामें आसक्त न होना, यह श्रीराम, श्रीकृष्ण बतलाते हैं। वेदान्तमें अन्वय और व्यतिरेककी भाषा आती है।

कारणं व्यतिरेकेण पुमानादौ विलोकयेत्।
अन्वयेन पुनस्तद्धि कार्य्ये नित्यं प्रपश्यति ॥

कार्यके पीछे कारण रहता ही है। कार्यमें कारणकी सत्ता, कारणका अनुभव ही अन्वय है। कार्यके अभावमें कारणका अभाव समा जाता है। कार्य और कारण सापेक्ष हैं। कार्य नहीं तो कारण कहाँसे हो? कार्य नहीं तो कारण रहता नहीं। केवल एक स्वतन्त्र तत्त्व रहता है। कार्य और कारण—दोनोंका अभाव होनेपर जो कुछ शेष रह जाता है, वह शून्य नहीं, वरन् वही ब्रह्म है। उसीको कहते है व्यतिरेक।

जिस प्रकार मिट्टीके घड़ेमें मिट्टी साथ ही रहती है, जिस प्रकार मिट्टीका घड़ा मिट्टीसे अलग रह सकता नहीं, उसी प्रकार ईश्वरसे उत्पन्न हुआ जगत् ईश्वरसे अलग रह सकता नहीं परन्तु जिस प्रकार मिट्टी घड़ेसे अलग रह सकती है, घड़ेके अतिरिक्त भी मिट्टी-की सत्ता हो सकती है, उसी प्रकार ईश्वर जगतसे अलग रह सकता है। जगतके साथ भी ईश्वर है और जगतसे अलग भी ईश्वर है। प्रकृतिके साथ भी ईश्वर है और प्रकृतिसे अलग भी ईश्वर है।

व्यतिरेकका वर्णन शिवजी करते हैं; अन्वयका वर्णन श्रीराम, श्रीकृष्ण करते हैं। विष्णु भगवान लक्ष्मीजीके साथ विराजते हैं परन्तु वे कभी लक्ष्मीजीके अधीन होते नहीं। प्रकृतिका तिरस्कार करनेकी आवश्यकता नहीं परन्तु प्रकृतिके अधीन भी होना नहीं। जो प्रकृतिका दास बनता है, वही दुःखी होता है। शिवजी महाराज तो ज्ञान-वैराग्यके स्वरूप है। शिवजी कहते हैं कि प्रकृतिसे दूर ही रहना।

सतीजीको यह सुहाता नही, इंससे सतीजीने शिवजीसे कहा—महाराज ! आप तो किसी दिन भी मुझे दृष्टिसे सम्मुख देखते भी नही और ये राजकुमार तो स्त्रीके वियोग-मे रोते हुए जा रहे है। शिवजीने कहा—रोते जा रहे है, इससें क्या ? ये साक्षात् परमात्मा हैं। सतीने पूछा—ये परमात्मा किस प्रकारसे हैं ? जो सर्वव्यापक हैं, क्या वही ये है ? शिवजीने कहा—हाँ ! जो सर्वव्यापक हैं वही ये हैं। सतीने पूछा—महाराज ! सर्वव्यापक परमात्माका तुम वन्दन करते हो, तो वह परमात्मा मेरे अन्दर है कि नही ? शिवजीने कहा—तुम्हारे अन्दर भी है।

सतीजीने पूछा—तो फिर मेरा वन्दन क्यो नही करते ? शिवजीने कहा—तुम्हारी बहुत इच्छा हो तो तुम्हारा भी वन्दन करूँ। मुझे बाधा नहीं। सती बोली—महाराज ! तुम कदाचित् मुझे वन्दन करो, ठीक है परन्तु सर्वव्यापक परमात्माका किस प्रकार वन्दन होता है ? शिवजीने कहा—सर्वव्यापक परमात्माका मनसे वन्दन किया जाता है और साकार परमात्माका वन्दन प्रत्यक्ष किया जाता है।

जो सर्वव्यापक है, जो सबमें विराजा हुआ है, उसे मनसे वन्दन करो। सबमे परमात्माका अनुभव बुद्धिके द्वारा होता है। दूधके अणु-परमाणुमें माखन होता है परन्तु वह आँखोंके द्वारा दिखाई नही देता। दूध पीनेसे माखनका स्वाद आता नही। दूधमें कोई हाथ डाले तो भी माखन हाथमे आता नही, फिर भी दूधमें माखन है, यह बात सत्य है। बुद्धि स्वीकार करती है कि दूधके एक-एक कणमें माखन है। बुद्धि जानती है कि दूधका दही बनाकर फिर उसका मंथन करनेसे माखन निकल आता है। जो ब्रह्म सर्वव्यापक है, वह बुद्धि-ग्राह्य है। बुद्धिके द्वारा ग्रहण किया जानेवाला जो परमात्मा है, उसका मन द्वारा वन्दन होता है।

सतीजी पुनः-पुनः शिवजीसे कहने लगीं—महाराज! इन रामको आप परमात्मा कहते हो परन्तु ये रोते हैं। ये यदि ज्ञानी हैं तो वृक्षोंसे क्यो पूछ रहे है ? शिवजीने कहा—यह तो माया है, इस प्रकारकी लीला कर रहे हैं। ये आनन्द-रूप हैं, ज्ञान-स्वरूप हैं। ईश्वर ही राम हैं और राम ही ईश्वर हैं।

विष्णु जो सुरहित नरतनुधारी। सोउ सर्वग्य जथा त्रिपुरारी॥
खोजइ सो कि अग्य इव नारी। ग्यान धाम श्रीपति असुरारी॥
सोइ मम इष्टदेव रघुबीरा। सेवत जाहि सदा मुनिधीरा॥

शिवजीने सतीजीको बारम्बार समझाया परन्तु सतीजीके गले बात उतरी नही। शङ्कर भगवानके कहनेसे सतीजीको मान लेना ही योग्य था परन्तु कुछ तो स्त्री-बुद्धि

थी, थोड़ा ज्ञानका अभिमान था। दक्ष प्रजापतिका दुराग्रही स्वभाव सतीजीमें भी आ गया। शंकर भगवान समझाते हैं परन्तु सतीजी मानती नहीं।

तब शिवजीने कहा—तुमको शङ्का ही हो रही है तो तुम परीक्षा कर लो। मैं यहीं बैठा हूँ! भगवान शंकर एक वट-वृक्षकी छायामें बैठ गये। उन्होंने विचार किया, इनका मुझमें विश्वास नहीं रहा। अब इनका कल्याण नहीं है।

सतीजीने शंकर भगवान्‌के वचनमें विश्वास रखा नहीं। उन्होंने निश्चय किया कि मैं परीक्षा करूँगी। सतीजीने श्रीसीताजीका स्वरूप धारण किया। श्रीराम—हे सीते! हे जानकी!—इस प्रकार बोलते हुए, रोते-रोते चले जा रहे थे, तभी मार्गमें थोड़ी दूरपर श्रीसीताजीके स्वरूपमें सतीजी खड़ी रहीं। रामजीने वह रास्ता छोड़ दिया और दूसरे मार्गसे चलने लगे। सतीजीने समझा कि ये अत्यन्त दुःखी हैं इस कारणसे मुझे सामने देख नहीं सके है। मैं फिर-से इनके रास्तेमें खड़ी हो जाऊँ। सतीजी उस दूसरे मार्गमें जाकर खड़ी हो गयीं।

लक्ष्मणजीको थोड़ा आश्चर्य हुआ—सीताजी कहाँ से आगयी? परन्तु मेरे बड़े भाई भले ही रो रहे होवें, अन्दरसे वे सावधान है। मुझे कुछ भी बोलनेकी आवश्यकता नहीं है। सतीजी इस दूसरे रास्तेपर भी आकर खड़ी हो गईं इस कारणसे रामजीने वह रास्ता भी छोड़ दिया और तीसरा रास्ता अपना लिया।

सतीजीने विचार किया कि स्त्री-वियोगमें अत्यन्त व्याकुल हो गये है, इस कारणसे इनकी नजर अभी मेरे ऊपर पड़ी ही नहीं है। अबकी बार एकदम इनके पास जाकर खड़ी रहूँगी और कहूँगी कि मैं तो यहीं पर हूँ, फिर तुम क्यों रो रहे हो?

सतीजी रामजीके एकदम निकट जाकर खड़ी हो गयी और रामजीसे श्रीसीताजीकी तरह सरलतासे कहा—मैं तो यहीं पर आई हुई थी। आप रोओ मत। सतीजीने स्त्री-धर्मके अनुसार थोड़ी लीला की परन्तु श्रीरामचन्द्रजी ज्ञान-स्वरूप है। सतीने सीताजीका जैसा ही स्वरूप धारण किया हुआ है, सीताजी जैसी ही सरलता ली हुई है, परन्तु रामजी सब कुछ जानते थे, अन्दरसे अत्यन्त सावधान थे।

सती कपट जानेउ सुर स्वामी। सबदरसी सब अन्तरयामी॥

श्रीरामचन्द्रजीने धरतीपर मस्तक रखकर सतीजीको प्रणाम किया और कहा—

कहेउ बहोरि कहाँ वृषकेतू। विपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू॥

माँ! तुम अकेली ही जगलमे किस कारणसे फिर रही हो? शंकर भगवान् कहाँ हैं? मुझे शिवजीका दर्शन करना है। तब सतीजीको आश्चर्य हुआ—ये भले ही रोवे, परन्तु अन्दर से सावधान है। ज्ञान-स्वरूप है।

चाहे जितना बादल आ जावे परन्तु सूर्यके स्वरूपमे किञ्चित् भी विकार आ पाता नही। अरे, बादलोको उत्पन्न करनेवाला तो सूर्य ही है। सूर्यनारायणकी किरणोसे ही बादल उत्पन्न होते है और इन बादलोमें सूर्य स्वयको ढँक लेते है परन्तु सूर्यमें तनिक भी विकार होता नही। श्रीरामचन्द्रजी ज्ञान-सूर्य हैं, ज्ञान-स्वरूप है। सतीजीको इसका विश्वास हो गया।

दक्षिण भारतमें तूलजा भवानी है। उनका नाम 'तूकाई' है, तू कहाँ आई है? दक्षिण भारतके लोग माताको 'आई' कहकर बुलाते हैं। 'तूकाई' ये पार्वती माताका स्वरूप है। रामजी ने कहा था—'माँ! तुम अकेली यहाँ क्यो आई? तूका आई?' इसीसे नाम पड़ गया तूकाई।

सतीजीको विश्वास हो गया कि श्रीराम परमात्मा हैं। मुझसे शंकरजी जो कहते थे, वह बात सत्य है।

सुमिरत जाहि मिटइ अज्ञाना। सोइ सर्वज्ञ राम भगवाना॥

रोना, मायाका धर्म है। सगुण परमात्माकी लीलामे मायाका धर्म भले ही दृष्टिगोचर हो परन्तु वे माया-रहित शुद्ध ब्रह्म है। ईश्वर ही है। सतीजीको परम आश्चर्य हुआ। परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीके अनेक स्वरूपोंका वर्णन ग्रन्थोंमें हुआ है। परमात्मा सगुण-साकार है और परमात्मा निर्गुण-निराकार भी है।

सगुण-साकार परमत्माके साथ प्रेम होता है। जो निर्गुण-निराकार है उन ईश्वरके साथ प्रेम होता नही। ज्ञानी पुरुष ब्रह्म-चिंतन करते है, परन्तु घटे-आधाघटे बाद उनको थकान होने लगती है। निराकार निष्क्रिय ब्रह्मका चिंतन करते हुए आनन्द तो आता है परन्तु पीछे मन भटक जाता है। जो परमात्मा हिलता नही, चलता नही, बोलता नही, उस प्रभुका ध्यान करते हुए मन थक जाता है।

वैष्णवजन निष्क्रिय ब्रह्मका चिंतन करते नही, परन्तु लीला-विशिष्ट ब्रह्मका ध्यान करते है। वैष्णवोंका ब्रह्म तो बोलता है, चलता है, हँसता है, खेलता है, नाचता है, प्रेम करता है। छूम-छूम करते हुए कन्हैया जिस प्रकार चलता है ऐसा चलना किसीको भी आता नही, वैष्णवजन अष्टयाम सेवाका चिन्तन करते है। सुबह कन्हैया उठते है, यशोदा माँ कन्हैयाका सुन्दर श्रृंगार करती है, माताजी लालको माखन-मिश्री आरोगवाती है, कन्हैया गायोंको लेकर आते हैं, गायोकी सेवा करते हैं। प्रातःकालसे रात्रितक जब रासलीला होती है, तबतक एक-एक लीलाका वैष्णव लोग अत्यन्त प्रेमसे चिंतन करते हैं।

सगुण-साकार परमात्माके साथ प्रेम होता है; निर्गुण-निराकार ईश्वरका बुद्धिमें अनुभव होता है। निराकार ब्रह्म बस 'है' केवल इतना ही है परन्तु इन निराकार ब्रह्मका अपनेको अधिक उपयोग नहीं है। लकड़ीमें अग्नि होती है। सभी जानते हैं कि लकड़ीके एक-एक कणमें अग्नि है परन्तु जिस समय अत्यन्त ठंड लग रही हो और उस समय कोई लकड़ीका स्पर्श करे तो लकड़ीमें रहनेवाली अग्नि क्या गर्मी देती है? लकड़ीमें अग्नि है, मात्र इतना ही जाना जाता है, लकड़ीके अणु-परमाणुमें अग्नि है, दूधके एक-एक कणमें माखन है, परन्तु वह निराकार रूपमें है। निराकार ईश्वर सर्वव्यापक है, परन्तु किसी को दिखाई देता नहीं। बुद्धिसे ही उसका अनुभव होता है।

सगुणके साथ प्रेम करो और निर्गुण-निराकार ईश्वर सबमें विराजमान है, ऐसा सर्वकालमें अनुभव करो। परमात्मा सभीमें है, ऐसा हर समय जो समझता है उसको पाप करनेकी जगह मिलती नहीं। जो लोग ऐसा मानते हैं कि भगवान वैकुण्ठमें और मन्दिरमें ही बैठे हैं, उनके हाथोंसे पाप हो जाता है। तुम जहाँ हो, वहीं ईश्वर है। जगतमें ऐसा कोई स्थान नहीं, जहाँ भगवान न विराजते हों। परमात्मा सर्वव्यापक हैं।

राजा राजमहलमें रहता है परन्तु राजाकी सत्ता उसके राज्यमें सभी जगह होती है, राज्यके अणु-परमाणुमें भी व्याप्त रहती है। सत्ताका कोई आकार नहीं होता, कोई रंग नहीं होता। सत्ता काली, सफेद या पीली नहीं होती। राजा भले ही राजमहलमें रहे, परन्तु सत्तारूपसे राजा सबमें होता है। राजामें सत्ता न रहे तो राजाका अस्तित्व ही न रहे। कल्पना करो कि एक अतिशय श्रीमंतकी मोटर सड़कपर जा रही है। श्रीमंत-को बहुत ही महत्वका काम है इसलिये मोटर बहुत वेगसे चली जा रही है। फिर भी मार्गपर वाहनके नियमोंका पालन करानेके लिये खड़ा हुआ सिपाही यदि हाथ ऊँचा करे तो श्रीमंतको भी मोटर खड़ी रखनी पड़ेगी। यह सम्मान सिपाहीके लिये नहीं, राज्य-सत्ताके लिये होता है। श्रीमान्‌के मनमें कदाचित् घमंड होवे कि ऐसे अनेक सिपाहियोंको तो मैं घरमें नौकर रख सकता हूँ तो बात तो यह सत्य है, परन्तु उस राज-सिपाहीमें राजसत्ता है। सत्ताका कोई रंग नहीं, सत्ताका कोई आकार नहीं, परन्तु सत्ता है, यह बात सत्य है।

निर्गुण-निराकार ईश्वर सभीके अन्दर सर्वकालमें विराजमान हैं। निर्गुण और सगुण, भगवानके इन दो स्वरूपोंका वर्णन ग्रन्थोंमें आता है। वेदमें अनेक स्थानोंपर ऐसा वर्णन आता है कि ईश्वरका कोई आकार नहीं; ईश्वर निराकार है, तेजोमय है। ईश्वर-का आकार नही, इसका अर्थ यह है कि ईश्वरका कोई एक आकार नहीं है।

अरे! शंख, चक्र, गदा, पद्म हाथमें हो, उसीको ईश्वर कहते हैं क्या? हाथमें त्रिशूल धारण करनेवाला ईश्वर नहीं है क्या? धनुष, बाण हाथमें हो, वह ईश्वर

नहीं है क्या ? ईश्वरका कोई एक स्वरूप निश्चित नहीं किया गया है कि अमुक स्वरूप-में जो दिखाई देता है, वही ईश्वर कहलाएगा। जगतमें जितने रूप दिखाई देते हैं, वे तत्व-से परमात्माके ही स्वरूप हैं।

अनेक रूपरूपाय विष्णवे प्रभविष्णवे।

आकार भले ही भिन्न दिखाई दे, परन्तु उन सब प्रकारके आकारोंमें ईश्वर-तत्व एक ही है। मालामें फूल अनेक हैं, अनेक प्रकारके हैं, परन्तु धागा एक ही है। गीताजीमें भगवानने आज्ञा की है—

मयि सर्वमिदं प्रोक्तं सूत्रे मणिगणा इव॥

आकार भिन्न-भिन्न हैं परन्तु सबमे रहने वाला ईश्वर-तत्व एक ही है। गाय काली हो, धौरी हो अथवा लाल हो, उसका दूध सफेद ही होता है। रूप-रंग अथवा आकारका महत्व नहीं होता; आकारमे रहनेवाले परमात्म-तत्वका महत्व है। नरसिंह मेहता ने कहा है—

अखिल ब्रह्माण्ड में एक तू श्री हरि, जूजवे रूपे अनन्तभासे॥
वेद तो एम वदे, श्रुति-स्मृति शाखदे, कनक कुण्डल विशे भेद न होये।
घाट घडिया पछी नाम रूप जूजवाँ, अंते तो हेमनुं हेम होये॥

सुवर्णके आभूषण अनेक होते हैं, अनेक प्रकारके आकारके होते हैं परन्तु इन सब आभूषणोंमे एक ही सुवर्ण होता है। तुम बाजारमे चन्द्रहार लेकर जाओ तो चन्द्रहार-की कीमत मिलती है क्या ? नहीं! कीमत सोनेकी ही मिलती है। सोना यदि दस तोला होगा तो दस तोले सोनेका ही मूल्य मिलेगा। चन्द्रहारकी कीमत मिलेगी नहीं। आकार-की कीमत नहीं। कीमत सुवर्णकी ही है।

एक महात्माके पास सुवर्णके गणपति और सुवर्णका चूहा था। शरीर वृद्ध हुआ। काल समीप आया जानकर महात्माने विचार किया कि मेरे जानेके बाद ये शिष्य लोग मूर्तिके लिये झगड़ा करेंगे। इसलिये उचित यही है कि मूर्तिको बेच दिया जावे और उस मूल्यसे भंडारा कर दिया जावे। महात्मा मूर्ति बेचने गया। गणपतिकी मूर्ति दस तोलेकी बैठी और मूषककी ग्यारह तोलेकी। स्वर्णकारने कहा—गणपतिका मूल्य चार हजार रुपया और मूषकका मूल्य चार हजार चार सौ है। महात्माने कहा—अरे, गणपति तो मालिक हैं। उनका मूल्य कम क्यों देते हो ? सुवर्णकारने कहा—मैं तो सुवर्णकी कीमत देता हूँ, मालिक की नहीं।

आकारकी कीमत अधिक नहीं होती। परमात्मा निराकार है, ऐसा जहाँ वर्णन किया है, वहाँ उसका अर्थ यही है कि ईश्वरका कोई एक आकार निश्चित नहीं-

है। जगतमें जितने आकार दिखाई देते हैं, वे सभी तत्वदृष्टिसे भगवानके ही आकार हैं।

सुवर्णाज्जायमानस्य सुवर्णत्वं च शाश्वतम् ।
ब्रह्मणो जायमानस्य ब्रह्मत्वं च तथा भवेत् ॥

सुवर्णमें-से बने हुए आभूषणोंमें सुवर्ण-तत्व जिस प्रकार एक ही है, उसी प्रकार ईश्वरसे उत्पन्न हुए इस सृष्टिके सब जीवोंमें ही क्या, सब पदार्थोंमें, ईश्वर-तत्व एक ही है। ईश्वर सर्वाकार है। ईश्वरका कोई एक आकार निश्चित नहीं। इसलिये भगवानको निराकार कहते हैं।

अपने सनातन धर्ममें देव अनेक हैं, परन्तु ईश्वर अनेक नही। एक ही ईश्वर अनेक स्वरूप धारण करता है। हाथमें जब धनुष-बाण धारण करता है तो लोग कहते हैं कि 'ये श्रीरामजी विराज रहे हैं;' और वही परमात्मा बाँसुरी हाथमें धारण करते है तो लोग कहते हैं कि 'ये मुरलीमनोहर श्रीकृष्ण हैं।' ठाकुरजीको नित्य पीताम्बर धारण करने में बोझा लगता है, इसलिये कन्हैयाजी कभी-कभी माँ यशोदासे कहते हैं कि माँ! आज तो मुझे बाघम्बर ओढ़कर साधु बनकर बैठना है। लालाको तो नित्य नयी-नयी बात सुहाती है न। कन्हैया पीताम्बर फेंककर और बाघम्बर ओढ़कर जब बैठ जाते हैं, उस समय लोग कहते हैं कि 'ये शंकर भगवान बैठे हैं।'

गर्गसंहितामें एक कथा आती है। श्रीराधाजी व्रत कर रही थी श्रीकृष्णसे मिलनेके लिये। श्रीकृष्णका दर्शन करनेके लिये राधाजीका यह व्रत था। तुलसीजीमें श्रीबालकृष्णलालको पधराकर श्रीबालकृष्णलालकी सेवा करतीं, परिक्रमा करती परन्तु राधाजीके पिता वृषभानुजीने ऐसी व्यवस्था की हुई थी कि श्रीराधाजीके महलमें किसी पुरुषका प्रवेश हो नहीं सकता था, राधाजीसे कोई मिल नहीं सकता था। श्रीराधाजीके महलमें पहरा भी था परन्तु था सखियोंका ही। तुम बरसाना गये होगे। बरसानेमें श्रीराधिकाजीका महल है। वहाँ सखियोंका ही पहरा है।

श्रीराधिकाजीको अत्यन्त आतुरता हुई कि 'मुझे श्रीकृष्णसे मिलना है, श्रीकृष्णके दर्शन करने हैं।' इस ओर लालाको भी दर्शन-मिलनकी आतुरता जागी। लालाने विचार किया कि मैं पीताम्बर पहिनकर जाऊँ तो मुझे कोई अन्दर जाने देगा नहीं, जब कि मुझे अन्दर ही जाना है। उस समय चन्द्रावली सखीसे प्रभुने कहा—आज अपना समस्त श्रृंगार तू मुझे धारण करा। चन्द्रावलीने लालाको सखीका समस्त श्रृंगार धारण करके सजा दिया। श्रीकृष्ण सखीका रूप धारण करके वहाँ गये। वृषभानुजी वहाँ विराजे हुए थे। उन्होने समझा कि राधासे मिलने उसकी कोई सखी आई है। श्रीकृष्ण अन्दर गये और राधिकाजीसे मिले।

भगवान साड़ी पहिन लेते हैं, उस समय लोग कहने लगते हैं कि 'ये माताजी हैं।' श्रीकृष्ण, श्रीराम अनेक स्वरूप धारण करते हैं, परन्तु ये सभी स्वरूप, तत्वसे एक ही हैं। देव अनेक हैं, परमात्मा एक है। एक ही परमात्मा अनेक स्वरूप धारण करते हैं। अरे! एक मनुष्य भी दिन में कई बार कपड़ा बदलता है, घर में अँगोछा पहिनकर फिरता है, बाहर जाना हो तो बढिया कपड़े पहिन लेता है। तब कपड़ा बदल लेनेसे क्या व्यक्ति बदल जाता है?

एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति। एकं सत्यं बहुधा समुपयन्ति॥

एक ही परमात्मा अनेक प्रकारकी लीला करनेके लिये अनेक स्वरूप धारण करता है। परमात्मा निर्गुण-निराकार है और परमात्मा सगुण-साकार भी है। निराकार-का अर्थ यही है कि उसका कोई एक आकार निश्चित नही। वह तो तेजोमय हैं, जैसा स्वरूप धारण करनेकी इच्छा होती है, वैसा ही स्वरूप प्रकट करते हैं। भगवान कहते हैं कि मेरा कोई आकार नही और मेरा कोई श्रृंगार भी नही। मेरे भक्तोंको जो आकार और श्रृंगार सुहाता है वैसा ही स्वरूप और वैसा ही श्रृंगार मैं धारण कर लेता हूँ।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

मैं अपने भक्तोंके अधीन हूँ।

तत्व-दृष्टिसे विचार किया जाय तो सगुण और निर्गुण एक ही है; जिस प्रकार राजा और राजाकी सत्ता—ये दोनों एक ही हैं। सत्ता न रहे तो फिर वह राजा किसका? परन्तु वह निराकार सत्ता कोई कार्य करे तो साकार स्वरूप धारण करके ही करती है। आंखमें जो देखनेकी शक्ति है, वह निराकार है! आँख साकार है। निराकार और साकार एक बनते हैं तभी कोई क्रिया हो पाती है। निराकारकी क्रिया कोई नहीं। आंखमें जो शक्ति है उस शक्तिका कोई आकार नही है! आंख का आकार है। यह फूल साकार है, परन्तु इसमें जो सुगंध है, वह निराकार है। निराकार और साकार—दोनोंके मिलनेपर क्रिया होती है।

श्रीराम निर्गुण-निराकार हैं, श्रीराम सगुण-साकार भी हैं। तत्व-दृष्टिसे दोनो पृथक नहीं। निर्गुण-निराकार ब्रह्म और सगुण-साकार परमात्मा एक ही हैं। निराकार-निर्विकार ब्रह्म परमात्मा सबके अन्दर विराजे हुए है। वे प्रकाशमय हैं। वे स्वरूपको छिपाते हैं। वे आँखों द्वारा दिखाई पड़ते नही, केवल बुद्धिग्राह्य हैं। निराकार ब्रह्म सर्वव्यापक हैं। किसीका आकर्षण करते नही, निग्रह अथवा अनुग्रह भी करते नहीं। मारते भी नहीं तथा तारते भी नहीं। मारना तथा तारना—यह लीला तो श्रीराम करते हैं, श्रीकृष्ण करते हैं, लीलाके निमित्त निराकार ब्रह्म ही साकार स्वरूप धारण करते

हैं। निर्गुण ब्रह्म ही सगुण लीला-तनु धारण करते हैं और अनेक प्रकारकी लीला करते हैं।

आनन्दस्वरूप परमात्माकी ऐसी दिव्य लीला देखकर शिवजीको तनिक भी मोह नहीं हुआ। शिवजीको तो दृढ़ विश्वास था कि 'श्रीराम ईश्वर ही है।' परन्तु सतीजीके मनमें थोड़ा विकल्प हुआ और सतीजी परीक्षा करने गयीं। अन्तमें सतीजीको विश्वास हो गया कि 'ये परमात्मा ही हैं।' उनकी भूल उनकी समझमें आ गई।

सतीजी वापस लौटने लगी। मार्गमें उनको श्रीराम, लक्ष्मण, जानकीजीके दर्शन हुए। करोड़ों सूर्यके समान प्रकाश था। श्रीरामजीके दाहिनी ओर लक्ष्मणजी तथा बायी ओर श्रीसीताजी थी। श्रीसीतारामजीका नित्य संयोग है। रावण, सीताजीको ले ही नही गया था। ऐसा दर्शन करके सतीजीने अपना मार्ग बदला। बदले हुए मार्गपर भी वही दर्शन हुए। ब्रह्मादिक देवता रामजीकी स्तुति कर रहे थे।

सतीजीने फिर तीसरा मार्ग बदला। पुनः उनको प्रत्यक्ष दर्शन हुए। सतीजी घबराने लगीं। उन्होंने नेत्र मूंद लिये। तदनन्तर रामजीने लीला-संवरण कर लिया। सतीजी शिवजीके पास आयीं। शिवजीने पूछा—हमारे रामजीकी परीक्षा कर ली? सतीजीने कहा—मैं प्रभुके समीप जाकर दर्शन कर आई। आपने तो दूरसे दर्शन किया था। मैं तो पाससे उनके दर्शन करके आयी हूँ। परन्तु शंकर भगवानसे क्या छिपा हुआ रह सकता था, वे तो 'ईश्वरः सर्वभूतानाम्' हैं। शिवजीने मनसे सतीजीका त्याग किया। सोचा कि अब ये मेरी माँ हैं। इन्होंने सीताजीका स्वरूप जो धारण कर लिया था।'

एहि तन सतिहिं भेंट मोहि नाहीं। शिव संकल्प कीन्ह मन माँहीं॥

शिवजीने सतीजीका त्याग कर दिया। भगवान शंकर नन्दिकेश्वरपर विराजे हुए थे। नन्दिकेश्वर धर्मके स्वरूप है। मनसे ज्यों ही सतीजीका त्याग किया कि आकाशसे पुष्पवृष्टि हुई। देवतालोग शंकर भगवानकी जय-जयकार करने लगे। सतीजीको आश्चर्य हुआ। वे शिवजीसे कुछ भी न पूछ सकीं एवं लज्जित हो गयी। वहांसे दोनों कैलाशधाम पधारे। सतीजी कुछ भी पूछें, उसके पूर्व ही रामजीका ध्यान करते हुए शिवजीकी समाधि-लग गई। पाप करनेवालेको शान्ति मिलती नही फिर भले ही वह देव, दानव अथवा मनुष्य हो। सतीजी घबरा गई। उसी समय दक्षप्रजापतिने यज्ञ-अनुष्ठान किया। दक्षप्रजापति शिवजीके स्वरूपको जानते नही, शिव-तत्वको सही रूपसे समझते नही। बहुतसे ऐसा मानते है—शिवजी तमोगुणके अवतार हैं, ब्रह्माजी रजोगुणके अवतार है और विष्णु भगवान सत्वगुणके अवतार हैं।

भगवान शंकर, समाधि और कथा—ये दो ही काम करते हैं। शिवजीमें यदि तमोगुण होवे तो समाधिमें बैठ ही नही सकते। शिवजी तमोगुणी हैं, ऐसा माननेवाले भूल करते हैं। प्रलयकालके समय शिवजी तमोगुणको स्वीकार करते हैं। विष्णु भगवान राक्षसोंको मारते हैं, उस समय उनको भी क्रोध आता है। नृसिंहावतारमे भी राक्षसोकी हिंसा होती है। ब्रह्माजी सृष्टिके आरम्भमें रजोगुणको स्वीकार करके ही सृष्टिका सृजन करते हैं। इसपर भी ब्रह्माजी रजोगुणी नहीं, अपितु सत्वगुणी ही है। उसीप्रकार शंकर भगवान भी तमोगुणी नही, अपितु वे निर्गुण है।

कस्तं चराचरं गुरुं निर्वैरं शांतविग्रहम्।

शिवस्वरूप अत्यन्त शान्त है। ये निर्गुण ब्रह्म हैं। ये जिस समय प्रलय करते हैं, उसी समय तमोगुणको स्वीकार करते है। सत्वगुण गायमाताके समान है। रजोगुण वानरके समान है एवं तमोगुण बाघके समान है। गाय माताको वशमें करना सरल है। वानरको वशमे करना कठिन है और बाघको वशमे करना उससे भी कठिन है।

इस कथा-श्रवणके समय तुम सभी सत्वगुणमें हो परन्तु कथा पूरी होनेके पश्चात् यह सत्वगुण ठहरेगा क्या, इसमें शंका होती है। कथा पूरी हुई कि मन चंचल हो जाता है। कथा सुननेके बाद दस मिनिट शान्तिसे बैठकर सुनी हुई कथाका मनन करना चाहिये।

जो समझते है कि भगवान शिव तमोगुणी है उनका पतन होता है। वे तो निर्गुण ब्रह्म हैं। परमात्मा हैं। शिवजीकी कृपाके बिना न शक्ति, न ज्ञान, सन्तति अथवा सम्पत्ति कुछ भी नही मिलता। शिवजी आशुतोष अर्थात् शीघ्र प्रसन्न होने वाले हैं। दक्षप्रजापति शिव-तत्वको जानते नहीं। शिवजीके प्रति जो जी-मे आवे, वैसे बोलते हैं। शिवजीकी निन्दा करते हैं—ये तो श्मशानमे रहते हैं, भूतनाथ हैं।

अरे! समस्त संसार ही श्मशान है। जगतमें ऐसी कोई जगह नही कि जहाँ किसी भी जीवकी हिंसा न हुई हो। यहाँ पर भी श्मशान है। अपना घर भी मच्छर-मकड़ियो का श्मशान है।

शिवजी भूतनाथ है। सबके मालिक हैं। भूतका अर्थ पंचतत्व भी होता है। शिवजी पंचतत्वके मालिक है। शिवजीके कण्ठमे विष और मस्तकमें अमृत है। मस्तकपर चन्द्रमा धारण किया हुआ है। चन्द्रमा अमृत है। इस जगतमें न सब खराब है, न सब अच्छा है। शुभ और अशुभ, सार और असार—इनका मिश्रण ही जगत है। जगतके मालिक शंकर भगवान हैं। वे विश्वनाथ है।

शिवपुराणमें प्रसंग आता है। विवाहके समय संकल्पमें तीन पीढ़ियोका नाम लेना पड़ता है। शिवपार्वतीजीके विवाहके समय पुरोहितने शिवजीसे पूछा—महाराज! तुम्हारे पिताका क्या नाम है?

ब्रह्माजीके ललाटमें-से तामस अंश प्रगट हुआ है। शिवजी तो निर्गुण ब्रह्म हैं। फिर भी नारदजीने शिवजीके कानमें कहा—ब्रह्मा हमारे पिता हैं, ऐसा कह दो। शिवजीने उसी प्रकार कह दिया। पुरोहितने पूछा—तुम्हारे दादाका क्या नाम है? पुन: नारदजीने शिवजीके कानमें कहा—विष्णु भगवान मेरे दादा है, ऐसा कहो। शिवजीने उसी प्रकार कह दिया। पुरोहितने तीसरी पीढ़ीका नाम पूछा—तुम्हारा परदादा कौन है? नारदजी कुछ भी कहें, उससे पहिले ही शिवजी बोल पड़े—अपना परदादा मैं ही हूँ।

जगतः पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ।

परन्तु दक्ष प्रजापति शिव-तत्वको जानते नहीं। उन्होंने निश्चय किया कि शिवजीको मैं यज्ञका भाग नहीं दूँ।

बहुतसे मनुष्य, देव-विशेषको मानते नही। किसी देव-विशेषको न माननेसे अनन्य भक्ति होती नहीं। अन्यदेवोंको अंशरूप मानो। अपने इष्टदेवको पूर्णरूप मानो परन्तु मान्यता समस्त देवोंको दो। दक्ष प्रजापतिने तो ऐसा निश्चय किया कि मैं नारायणकी पूजा करूँ और शिवजीकी पूजा न करूँ। उन्होंने देवता गन्धर्व, किन्नर सभीको निमन्त्रण भेजा।

किन्नर नाग सिद्ध गन्धर्वा। बधुन्ह समेत चले सुर सर्वा॥
बिष्नु बिरंचि महेसु बिहाई। चले सकल सुर जान बनाई॥
सतीं बिलोके ब्योम बिमाना। जात चले सुन्दर बिधि नाना॥

देवता, गन्धर्व विमानोंमें बैठकर कैलाशके ऊपरसे जा रहे थे। सतीजी बाहर आयीं। देव-कन्याओंने सुन्दर शृंगार किया हुआ था, सतीजीने उनको हाथ ऊँचा करके बुलाया और पूछा—कहाँ जा रही हो? उत्तर मिला—तुमको खबर नहीं? तुम्हारे पिता बहुत बड़ा यज्ञ कर रहे हैं, तुमको निमन्त्रण नहीं मिला क्या?

सतीजीको आश्चर्य हुआ। मनमें विचारने लगीं—मुझे सूचना भी नहीं दी! देव-कन्या पूछने लगीं—तुमको निमन्त्रण नहीं आया? सतीजीने कहा—निमन्त्रण देने तो कोई आया ही होगा परन्तु इस कैलाशकी चोटीपर पहुंच न सका होगा। देव-कन्याओंने विदा ली। शिवजी ध्यानमें-से उठें तो सतीजी उनसे पूछें।

शिवजी समाधिमें-से उठे। राम-राम-राम कहने लगे, सतीजी पास आयी, शिवजीने उन्हें दूर बैठाया। सतीजीने कहा—मेरे पिताजी बहुत बड़ा यज्ञ कर रहे हैं।

शिवजी बोले—यह तो संसार है, किसीके यहाँ यज्ञ होता है, किसीके यहाँ विवाह होता है तथा किसीके यहाँ मृत्युका रोना-पीटना होता है। ऐसा चला ही करता है, संसार असार है। सतीजीको यह सुहाया नही। शिवजीने कहा—ससारका सम्बन्ध मायासे भरा हुआ है। वासनासे ही माँ व बाप बनते है और वासनासे ही जीव पुत्र बनता है, पिता-पुत्रके सम्बन्धमे वासनाके अतिरिक्त और कुछ नही। बापकी वासना घरमें बाकी रह गई हो तो बाप ही बालक बनकर घरमे आ जाता है। यह संसार मायामय है। मेरे राम ही माया-रहित ब्रह्म हैं। उन्हींका स्मरण करो।

सतीजीको आज ये ज्ञान-भक्तिकी बाते ज्यादा अच्छी नही लग रही थी। सतीजीने कहा—पुत्रीका पिताके घर जानेके लिये कितना मन होता है, वहाँ जानेसे उसको कैसा सुख मिलता है, उसको तुम्हारे जैसे ज्ञानी क्या समझते हैं?

सतीजी जानेका आग्रह करने लगी। शिवजी सतीजीको समझाने लगे—देवी! तुम वहाँ मत जाओ। यज्ञका तो केवल निमित्त है, मेरा अपमान करनेके लिये ही यह यज्ञ किया गया है। तुम्हारे पिताजीने पहिले भी मुझे गाली दी थी।

सतीजी—मेरे पिता गाली नही दे सकते। तुमने ही कुछ किया होगा। शिवजी—तुम्हारे पिताजी सभामें आये उस समय सभी खड़े हुए। मैं खड़ा नही हुआ। इसी कारणसे गाली दी थी। सतीजी—आप खड़े क्यो नही हुए। प्रणाम क्यों नहीं किया? शिवजी—संतजन शरीरको मान नही देते। यह शरीर जिस कारणसे सुन्दर लगता है उन परमात्मा नारायणको मैंने मनसे प्रणाम किया। मैंने उनका अपमान नही किया।

सतीजी—महाराज! यह तो ज्ञानी पुरुषोकी परिभाषा है। पिताजीके अतरमें विराजे हुए अन्तर्यामीको आपने मनसे प्रणाम किया। मेरे पिताजीको उसकी खबर न हुई और उन्होने कदाचित् कुछ क्रोध किया हो तो उस सबको आप भूल जाइये। शिवजी—मैं तो भूल चुका हूँ परन्तु तुम्हारे पिताजी नही भूले हैं। तुम वहाँ मत जाओ। मैंने तो अपमान सह लिया परन्तु तुम सहन न कर सकोगी।

जदपि मित्र प्रभु पितु गुरु गेहा। जाइअ बिनु बोले न सँदेहा॥
तदपि बिरोध मान जहँ कोई। तहाँ गये कल्यान न होई॥
भाँति अनेक शंभु समझावा। भावी बस न ज्ञान उर आवा॥

सतीजीके मनमें पीहर-प्रेम और पति-प्रेमके बीच खींचतान चलने लगी। सतीजीने अंतमें निश्चय किया कि पिता और पतिके मध्य मुझे विवेकसे समाधान कराना है। करना या न करना, ऐसी शंका हो जावे तो उस कामको नही करना चाहिये। घरमें

झगड़ा हो तो उस दिन घरसे बाहर नहीं निकलना चाहिये, नही तो घरके वास्तुदेव शाप देते हैं। घरके लड़कोंको दो-तीन बार कहो, फिर भी न माने तो छोड़ दो। कितने ही ठोकर खाते है, तभी मानते हैं।

सतीजी मानी नहीं, चल पड़ीं। शिवजीने नन्दिकेश्वरको इशारा किया, नन्दिकेश्वर दौड़ते हुए माताजीके पास गये। कहा—माँ ! मेरे ऊपर विराजो। पैदल चलकर जाना उचित नही है। सतीजी नन्दिकेश्वरपर विराज गयीं। भृङ्गी-भृङ्गीगण साथमें चले। शिवजी जानते थे कि सतीजी अब वापस नही आवेंगी। सतीजीके मनमें भी खटका हो रहा था।

सतीजीने यज्ञमण्डपमें प्रवेश किया। सभी देवताओंने उठकर शिव-शक्तिका सम्मान किया, प्रणाम किया। सतीजीने किसीपर दृष्टि डाली नहीं, दक्षको प्रणाम किया। दक्षने मुख मोड़ लिया। सतीजीको शंका हो गई। उन्होंने चारों तरफ देखा। यज्ञ-मण्डपमें सभी देवताओंकी पूजा हुई है; परन्तु शंकर भगवानको एक सुपाड़ी तक नही रखी गयी।

सतीजीको पतिदेवका अपमान असह्य लगने लगा। जो यज्ञ शिवस्वरूप नहीं है वह शव-समान है। सतीजीकी आँखें लाल हो गईं। केश फैल गये, सतीजीने बड़ी दिव्य बात कही—तुम शिवके साथ वैर करते हो ? ज्ञानी पुरुष शिवजीकी आराधना करके महान होते हैं। काम-सुखमें फँसे हुए शिव-तत्त्वको क्या समझ सकते हैं ? शिव-कृपासे ज्ञान मिलता है, भक्ति मिलती है, मुक्ति मिलती है। पिताजी ! तुम जो शिवजीकी निन्दा करते हो, यही अच्छा है अन्यथा तुम्हारा विनाश किस प्रकार सम्भव हो ?

अन्तकालमें सतीजीने क्रोध छोड़ दिया। पद्मासन जमाया, प्राणापानको समानमें मिलाया, कंठमें-से ऊपर खींचा। मनके साथ मनको प्राणमें लीन किया, प्राणपति शिवजीका ध्यान किया, सतीजी महान योगिनी हैं। अन्तिम संकल्प किया—

जनम जनम शिव पद अनुरागा।

जन्म-जन्मान्तरतक शिवजी ही मेरे पति हों। मैं पतिव्रता हूँ परन्तु पतिकी आज्ञाको मैंने भंग कर दिया। अब इस शरीरको मुझे त्याग देना है। सतीजीने अग्नि-तत्वकी भावना की। अन्दरसे ही अग्नि प्रकट हो गई। माताजीका शरीर जलने लगा। नारदजीको आश्चर्य हुआ।

नारदजी कैलाशपर गये। शंकर भगवान तो सनकादिक ऋषियोंको उपदेश कर रहे थे, ज्ञान-मुद्रा समझा रहे थे—अँगूठा ब्रह्म है, अँगूठेके पास जो उँगली है, वह जीव है। बाकीकी तीन उँगलियाँ सत्व, रज, तम—ये तीन गुण हैं।

नारदजी वहाँ आकर रोने लगे। शिवजीने रोनेका कारण पूछा। दक्षप्रजापतिके यज्ञमे जो कुछ हो गया था, नारदजीने उसकी कथा कही। सुनकर शिवजीने स्मितहास्य किया। शिवजीको सुख अथवा दुःख होता नही, वे तो आनन्दमय है।

नारदजीको आश्चर्य हुआ—इनको तो कुछ व्यापता ही नही है।

सतीजीको प्रज्वलित होनेकी शक्ति शिवजीकी दी हुई तो थी ही। शिव-शक्तिको अन्य कोई भी जला सकता नही।

नारदजीने दक्षप्रजापतिको दण्डित करनेको कहा। शिवजीने मना किया। शिवजीको क्रोध आता नही। शिवजीको यदि क्रोध आ जावे तो संसार बचे ही नही। नारदजीने कहा—महाराज! आपके गणोको भी पीटा गया है। उस समय शिवजीको थोडा क्रोध आया। शिवजीने वीरभद्रको उत्पन्न किया। वीरभद्रका रौद्र देखकर नारदजी घबराने लगे।

शिवजीने वीरभद्रको आज्ञा दी—प्रलयका यह समय नही। दक्षका माथा काट डालो और यज्ञको विध्वंस कर दो। वीरभद्रने शिवजीकी आज्ञाका अविलम्ब पालन किया। दक्षका माथा काट डाला, यज्ञको विध्वस कर डाला।

देवताओने शिवजीकी स्तुति की। शिवजी क्रोध भूल गये। यज्ञ-मण्डपमे पधारे. दक्षप्रजापतिको बकरेका मुख लगाया। दक्षप्रजापति जीवित हुए। उन्होने शिवजीकी स्तुति की। यज्ञ परिपूर्ण हुआ। हरिद्वारके पास कनखल जहाँ है, वहाँ दक्ष प्रजापतिने यह यज्ञ किया था। उसीको दक्षेश्वर कहते है।

सतीजी हिमालयमे पार्वतीरूपसे प्रगट हुई। केदारनाथ जाते हुए गौरीकुण्ड आता है। उस स्थानपर पार्वतीजीने अलौकिक तपश्चर्या की। पार्वतीजीका दृढ़ संकल्प रहा—

जन्म कोटि लगि रगर हमारी। बरउँ शम्भु न तु रहउँ कुमारी॥

देवताओने शिवजीसे विवाह करनेका आग्रह किया। शिवजी समाधिमे स्थित थे। उसी समय उन्होने कामदेवको भेजा। शिवजीने कामदेवको जला डाला, शिवजीने विवाहसे पूर्व ही कामदेवको जला डाला।

शिवजीको समझाकर देवता हिमालयके पास गये। पार्वतीजीका शिवजीके साथ विवाह निश्चित हुआ। शिवजीकी बरात जुड़ी। नारायण भगवानकी बहुत इच्छा थी कि आज शिवजी मेरा श्रृंगार धरे। उन्होने शिवजीसे कहा—अपना बाघम्बर मुझे दो और मेरा पीताम्बर तुम पहिन लो।

शिवजीने कहा—मैं शरीरका श्रृंगार करता नहीं। भस्मान्तं शरीरम्। यह शरीर तो भस्म है। यह जीव उसको बहुत सँभालता है परन्तु यह एक दिन भस्म हो ही जाता है। शिवजी श्मशानमें विराजते हैं। श्मशान ज्ञान-भूमि है, वैराग्य-भूमि है। तुम दिनमें दो-तीन बार अवश्य स्मरण करो कि यह शरीर श्मशानमें जायगा और भस्म बनेगा।

विवाहके लिये जाते समय शिवजीने तो बाघम्बर ही धारण किया। गलेमे और हाथोंमें सर्प धारण किये। शिवजी उस आनन्द-स्वरूपमें स्थित हैं, जहाँ दुःख नहीं, सुख नहीं, अपमान नहीं। अन्तमें नारायण भगवानने नारदजीसे कहा—शिवजी श्रृंगार करे, ऐसी कोई युक्ति करो। नारदजी हिमालय गये। वहाँकी शोभा अलौकिक है। हिमाचल-राज तथा मैनारानीने स्वागत किया। नारदजीने पूछा—कन्या किसे अर्पण कर रहे हो? रानीने कहा—बहुत बडा देवता है। नारदजी हँसने लगे। मैनाजीसे उन्होंने पूछा—अपने जमाईको तुमने देखा है? मैनाजीने कहा—नहीं। नारदजीने कहा—तुम्हे देखना हो तो चलो मेरे साथ।

बारात जिस मार्ग से आ रही थी, वहाँ नारदजी मैनाजीको लिवा ले गये। एकके बाद एक देवता उधरसे निकलने लगे। देवगुरु बृहस्पतिको देखकर मैनाजी नारदजीसे पूछने लगीं—यही जमाई है क्या? नारदजीने कहा—नहीं, यह तो इनके पुरोहित हैं। उसके बाद इन्द्रदेव आये। मैनाजीने पूछा—क्या ये मेरे जमाई हैं? नारदजीने कहा—नही, ये तो इनके मुनीम है। उसके बाद नारायण भगवान दिखाई पड़े। मैनाजीने फिर पूछा—ये जमाई है? नारदजीने ठोड़ी घुमायी—ये तो उनके मित्र हैं। उसके बाद शिवजीकी सेना आयी। कितने हो तो उसमें नंगे ही थे। नग्न अर्थात् वासना-रहित। शिव-कृपासे वासनाका विनाश होता है।

सेनाके पीछे शिवजी स्वयं पधारे। नन्दिकेश्वरके ऊपर विराजे हुए हैं। वक्षस्थल पर रुद्राक्षकी माला है। राम-राम-राम जप चल रहा है। अत्यन्त शान्त शिव-स्वरूप है। मैनाजीको यह ठीक लगा नही—क्या ये है मेरे जमाई? नारदजीने कहा—तुम इनको मना कर दो। मैं अन्य कोई अच्छा-सा देवता ढूंढकर ला देता हूँ।

मैनाजी रोने लगीं। उन्होंने रनिवासका द्वार बन्द कर लिया और पार्वतीको लेकर अन्दर बैठ गयी। बारात द्वारपर आ गई परन्तु कोई सम्मान करनेको उपस्थित नही था। शिवजीने नारदजी को पकड़कर बुलाया और कहा—मेरी फजीहत कराते हो। नारदजीने कहा—मैं क्या कर सकता हूँ? मैंने जो कुछ किया है, वह नारायणके कहनेसे किया है। महाराज! आज विवाहका दिन है। श्रृंगार तो करना ही पड़ेगा। नही तो विवाह होगा नही।

शिवजीने क्षण-मात्र संकल्प किया और नारायणका समस्त श्रृंगार उनके पास आ गया और शिवजीका समस्त श्रृंगार नारायणके पास पहुँच गया।

कर्पूरगौरं करुणावतारम्।

नारदजीको आनन्द हुआ। वे दौडते महलमे गये और दरवाजा खुलवाया। जब शिवजीका दर्शन हुआ तो मैनाजीने अत्यन्त सुन्दर तेजोमय स्वरूप देखा। जिसको कामनाने स्पर्श नही किया है, वही सुन्दर है। मैनाजीको आनन्द हुआ। मेरी पुत्री भाग्य-शाली है। एक क्षण मैनाजीने सोचा कि अगले जन्ममें मुझे भी ऐसा वर मिले तो कितना सुन्दर हो।

सास-जमाईका लौकिक सम्बन्ध वहाँ नही, जीवकी शिव-स्वरूप होनेकी इच्छा-का ही यह द्योतक है। शिव-पार्वतीजीका मगल-विवाह हुआ। सुन्दर सिंहासनपर दोनो विराजे हुए हैं।

पानिग्रहन जब कीन्ह महेसा। हिय हरषे तब सकल सुरेसा॥
वेदमंत्र मुनिवर उच्चरहीं। जय जय जय शंकर सुर करहीं॥

× × ×

जबहि शंभु कैलासहि आये। सुर सब निज निज लोक सिधाये॥

शंकर-पार्वतीजी कैलाश धाममे आये। शंकरजी, पार्वतीजीको राम-कथा श्रवण कराते है। मंगलमय श्रीरामचन्द्रका स्मरण करते हैं।

मंगल भवन अमंगल हारी।

शंकर भगवान कहते हैं—आदिनारायण परमात्मा ही श्रीराम हैं। परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीके दो स्वरूपोका वर्णन ग्रन्थोमे आता है। परमात्मा निर्गुण-निराकार हैं और परमात्मा सगुण-साकार भी हैं। अपने वेदोंमें—उपनिषदोमे परमात्माके स्वरूपका वर्णन जहाँ आता है, वहाँ यही आज्ञा हुई है कि भगवान निराकार भी हैं और साकार भी हैं।

परमात्माके इन दोनो स्वरूपोंका जिसको ठीक ज्ञान हो चुका है, वही मायाका पर्दा दूर कर सकता है; उसीको परमात्माका प्रत्यक्ष साक्षात्कार होता है। जिसको उभय स्वरूपका अनुभव हो चुका है, उसीकी भक्ति सफल है।

उपनिषदोंमें वर्णन है—भगवानके हाथ नही, पैर नहीं, आँख नही, मस्तक नही,। वे निराकार हैं। परमात्माकी आँख नहीं, फिर भी सब कुछ देखते हैं।

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा॥

ऐसा सर्वव्यापक परमात्मा आँख द्वारा नहीं दिखाई देता। उसका अनुभव बुद्धिमे होता है।

दृश्यते त्वग्रया बुद्धया।

निर्गुण-निराकारका अनुभव करो। ऐसा अनुभव जो प्राप्त कर लेता है, उसके द्वारा पाप नही होता। सर्वत्र भगवान् है। मैं पाप कहाँ करूँ? देश-कालकी उपाधि परमात्माके लिये नही। परमात्मा व्यापक है; शरीर व्याप्य है। जो एक ठिकाने रहता है, उसे व्याप्य कहते है। जो आज है, कल भी था और भविष्यमें भी रहेगा, उसे व्यापक कहते है। वही परमात्मा है। वह सर्वकालमें हैं तथा सभी ठिकानोंपर हैं।

अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य परमात्मा स्थितः।

तुम जिस देवताकी पूजा करते हो, वह क्या केवल तुम्हारे ही घरमें बैठा है? अरे! वह तो सर्वाधार है। ऋषियोंने परमात्माका ऐसा अर्थ किया है कि जिसमें सभी समा जायँ परन्तु जो स्वयं किसी जगह न समा सके।

यह पृथ्वी, जलके आधारपर है। पृथ्वीकी अपेक्षा जलतत्व दस गुना बडा है। जलकी अपेक्षा तेज, तेजकी अपेक्षा वायु और वायुकी अपेक्षा आकाश तत्व दसगुने बड़े हैं और आकाशका निवास परमात्मामें है। परमात्मा सबके आधार हैं, परमात्माका कोई आधार नही। जो सबका आधार है, जिसका कोई आधार नही, उसे परमात्मा कहते है।

अणोरणीयान् महतो महीया-
नात्मास्ये जन्तोर्निहितो गुहायाम्।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको
धातुः प्रसादान्महिमानमात्मनः॥

परमात्मा सबसे महान् है और अत्यन्त सूक्ष्म भी है। निराकार परमात्माका अनुभव करो और साकार भगवानसे प्रेम करो। कितने ही ज्ञानी पुरुष साकार भगवानकी भक्ति नही करते। वे बडी भूल करते हैं। अपने शरीरमें भगवान हैं, परन्तु मायाके आवरणमे हैं। निर्गुण परमात्मा तो दीपक के समान है। दीपकके प्रकाशमें ताला तोडकर चोरी करो अथवा रामायण-पाठ करो। दीपकका प्रकाश कुछ भी करता नही।

उसी प्रकार निर्गुण परमात्मा भी किसीको भी पाप करनेसे रोकता नहीं। जो कुछ भी कर सकता है, वह साकार परमात्मा ही कर सकता है। निग्रह और अनुग्रह करनेकी शक्ति श्रीराम, श्रीकृष्णमे ही है, निर्गुण परमात्मामें नही। शूर्पणखाको सजा, साकार परमात्मा ही देते है। शबरीजीको दिव्य गति भी साकार परमात्मा ही देते हैं। साकारपरमात्मा-की प्रेमसे पूजा करो। रामायणका उद्भव साकार और निराकारके झगड़ेमे-से हुआ है।

सतीजी कहती हैं—निर्गुण-निराकार भगवान सगुण-साकार परमात्मा होते हैं, इसको किस प्रकार माना जाय। शिवजी कहते है—

जो गुन रहित सगुन सोइ कैसें। जल हिम उपल बिलग नहिं जैसें॥

बर्फ ही पानी है और पानी ही बर्फ भी हो जाता है। जल और वर्फमें जिस प्रकार भेद नही, उसी प्रकार निर्गुण और सगुणमे कोई भेद नही है। सगुण परमात्माके साथ प्रेम करोगे तो वह तुमको मायाके बन्धनसे मुक्त कर देगा। व्यवहारको शुद्ध करनेके लिये निर्गुण-निराकारका अनुभव करो परन्तु निर्गुण-निराकार तुम्हारे ऊपर कृपा करेंगे नही। कृपा सगुण-साकार परमात्मा करते हैं। वे दयालु हैं। उनको दया आती है। निर्गुण-निराकार भगवान दयालु नही, निष्ठुर भी नही। दीपकके प्रकाशमे कोई हँसे अथवा रोवे। दीपकका प्रकाश निष्ठुर भी नही, दयालु भी नही, उसका तटस्थ-भाव, साक्षी-भाव है।

श्रीराम साकार ब्रह्म है। निर्गुण-निराकारमें जो शक्ति है वही सगुण-साकारमे है। तत्वसे दोनों एक-ही है। परमात्मा, मानव-कल्याणके लिये मनुष्य जैसा स्वरूप धारण करते है और मनुष्य जैसी लीला करते है। परमात्माकी लीलाओंका विचार जीव स्वय-की बुद्धिके अनुसार करता है। रामायण अनेक हैं। उनमें अनेक प्रसंगोमे अनेक वर्णन हुए हैं। किसी रामायणमें ऐसा प्रसग आता है कि विवाहके पश्चात् रामजी, सीताजीके साथ अयोध्या पधारे। श्रीसीताजीको श्रीरामजीके चरणोकी सेवा करते-करते मनमे थोड़ा अभिमान जाग गया। रामजीकी अपेक्षाकृत मैं सुन्दर हूँ, मैं कोमल हूँ। अभिमान जीवका पतन करनेवाला होता है। भक्ति करो किन्तु अभिमानको छोड़ो। 'अहम्' यदि बढ जाता है तो समझना कि भक्तिमे भूल हुई है। सभी प्रकारके दोषोंको परमात्मा क्षमा कर देते है, परन्तु अभिमान परमात्मासे सहन होता नही। इसका भार उन्हे अत्यधिक लगता है।

सीताजी, रामजीके चरणोकी सेवा करती थी। सीताजी चरण दाब रही थीं परन्तु परमात्माको आज सीताजीके हाथका भार सहन नही हो रहा था। चरण अत्यन्त ही कोमल बन गये। मक्खनके ऊपर हाथ टिकाओ तो उसपर गड्ढा पड़ जाता है। आज

परमात्माका श्रीअङ्ग मक्खनसे भी अधिक कोमल बन गया। उन्होंने सीताजीसे कहा—तुम्हारे हाथका वजन मुझसे सहन नहीं हो रहा है। उन्ही (अति कोमल) श्रीरामको कैकेयीने आज्ञा दी तब नंगे चरण वनमें भी फिरे।

हनुमानजीमें अत्यन्त शक्ति है। एक समय हनुमानजीको भी इच्छा हुई कि रामजीको परिचय दूं कि मुझमें कितनी शक्ति है। इसलिये जोर-जोरसे रामजीके चरण दबाने लगे, जिससे कि रामजीको कहना पड़े कि बहुत जोर मत लगाओ। रामजीके नेत्र मुंदे हुए थे। हनुमानजी 'सीताराम सीताराम' का कीर्त्तन करते हुए चरण दबा रहे थे। जोर-जोरसे मुठ्ठी भी लगा रहे थे। हनुमानजीकी ही मुष्टिसे किसी समय रावण रुधिर-वमन तक कर चुका था। हनुमानजीका नाम है 'बजरंग' मूल शब्द है 'वज्रांग'—वज्रके समान कठोर अंग वाले।

हनुमानजी आवेशमें चरण-सेवा करते हुए मुष्टि-प्रहार कर रहे थे परन्तु रामजीकी तो निद्रातक भंग न हुई। श्रीसीताजी सेवा करे उस समय रामजी कोमल बन जाते हैं। हनुमानजी सेवा करे उस समय वे कठोर बन जाते है। श्रीराम कोमल हैं या कठिन हैं? श्रीराम दयालु हैं या निष्ठुर है?

शंकर भगवान पार्वतीजीसे कहते है—

राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी।

रामके गुण अनन्त है।

शंकर भगवान पार्वतीजीको निर्गुण-निराकार और सगुण-साकारका स्वरूप समझाते हैं। सगुण-साकार परमात्मा प्रेमकी मूर्ति है। निर्गुण-निराकार परमात्माको किसीपर दया आती नहीं; सगुण साकार परमात्मा किसीका दुःख देख सकते नहीं। अपने दुःखका अन्त बुलाना हो तो श्रीरामसे प्रेम करो। सगुण-साकार परमात्मा श्रीराम, परमानन्दका दान करते है, मुक्ति देते है। आनन्द ही श्रीराम हैं। तुम यदि आनन्द चाहते हो तो रामजीके साथ प्रेम करो।

भक्ति गौण नहीं। भक्ति गौण है, ऐसा जो समझता है, उसका पतन होनेमें देर नही लगती। कितने ही ऐसी शंका करते है कि मूर्तिमें क्या ईश्वर है? अरे! मूर्तिमें भगवद्भाव दृढ़ करोगे तो मूर्ति ईश्वर बनेगी। निर्गुण-निराकार और सगुण-साकार, तत्वसे एक ही हैं। भगवान, भक्तोंकी प्रार्थनापर ही सगुण स्वरूपसे प्रगट होते हैं।

पार्वतीजीको विश्वास हो गया। जो ब्रह्म निर्गुण-निराकार हैं वे ही श्रीराम हैं। उनको अत्यन्त आनन्द हो गया। महाराज! मुझे रामजीकी कथा सुनाओ। परमात्माके अवतार धारण करनेका क्या कारण है?

जदपि जोषिता नहिं अधिकारी। दासी मन क्रम बचन तुम्हारी ॥

× × ×

अति आरत पूछउँ सुरराया। रघुपति कथा कहहु करि दाया ॥
प्रथम सो कारन कहहु बिचारी। निर्गुण ब्रह्म सगुण बपु धारी ॥

भगवान ! ऐसी कथा सुनाइये कि रामजीमे प्रेम जागे। आप मेरे स्वामी हो ; जगतके नाथ हो। मेरी बुद्धि अल्प है। मैं समझ सकूं, उस प्रकारसे मुझे राम-कथा श्रवण कराइये। महाराज ! श्रीरामजी प्रगट हुए उसका कारण क्या है ? रामावतारका हेतु क्या है ?

यह सुनकर शंकर भगवान अत्यन्त प्रसन्न हुए। शकर भगवानको पार्वतीजी अत्यन्त प्रिय हैं, कारण, पार्वतीजी शंकर भगवानको रामकी याद दिलाती है। समाधि जब-जब छूटती है, तब-तब शकर भगवान पार्वतीजीको राम-कथा सुनाते हैं।

शिवजीको बालक-स्वरूप श्रीराम बहुत प्रिय हैं। शिवजी कथाका आरम्भ करते हुए कहते हैं—

बंदउँ बाल रूप सोइ रामू। सब सिधि सुलभ जपत जिसु नामू ॥
मंगल भवन अमंगल हारी। द्रवहु सो दशरथ अजिर बिहारी ॥
करि प्रनाम रामहिं त्रिपुरारी। हरषि सुधा सम गिरा उचारी ॥

शिवजी बाल-स्वरूपका स्मरण करते हैं। शिवजी कहते हैं—तुमने बहुत सुन्दर प्रश्न किया है। भगवानके अवतारका कोई कारण हो सकता नही।
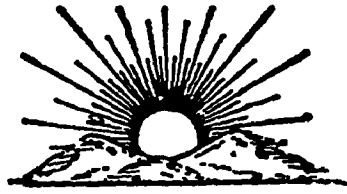
जय-विजयको शाप

भगवान शंकर, पार्वती माँको श्रीराम-कथा सुना रहे है। पार्वतीजी पूछती हैं कि महाराज, रामजी प्रगट हुए, उसका क्या कारण है, रामावतारका हेतु क्या है ?

शंकर भगवान उत्तर देते है कि परमात्माके अवतारका कारण परमात्माकी इच्छा है। भगवान स्वयंकी इच्छासे प्रगट होते है। यह जीव जो जगतमें आता है वह अपने पूर्व जन्मके कर्म और वासनाके अनुसार शरीर लेकर आता है। ईश्वर जगतमें आते हैं तो वे किसी कर्म-वासनाके अधीन होकर नहीं परन्तु स्वेच्छासे आते है। जीवका कर्म-निर्मित शरीर है, जब कि परमात्मा निज-इच्छा-निर्मित तनु हैं। अपनी इच्छासे स्वरूप प्रगट करते हैं।

परमात्माके अवतारके कारणमें धर्मका रक्षण, अधर्मका विनाश—ये सब साधारण कारण हैं। परमात्मा लीला करनेके लिए ही पधारते हैं। भक्तोंको परमानन्दका दान करनेके लिए परमात्मा जगतमें पधारते हैं।

ऐसेहु प्रभु सेवक बस अहई। भगत हेतु लीला तनु गहई।

परमात्मा क्यों आते है, इसका रहस्य साधारण जीव समझ सकता नहीं। जय-विजय सनत्कुमारोंका शाप लगनेसे प्रभुके द्वारपाल रावण, कुम्भकर्ण हुए थे। उनका उद्धार करने रामजी पधारे। स्वायम्भुव मनु और रानी शतरूपाने अनेकों वर्षो तक तपश्चर्या की। उनके घर पुत्ररूपमें पधारनेका प्रभुने वरदान दिया। मनु महाराज और शतरूपाने दशरथ, कौशल्याके स्वरूपमें जन्म लिया और इस प्रकार प्रभु, श्रीराम होकर उनकी गोदमें पधारे।

एक समय नारदजीने आदिनारायण परमात्माको शाप दिया था। वह शाप सिद्ध करनेके लिये प्रभु पधारे थे।

हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थम् कहि जाइ न सोई॥

परमात्माके अवतारका यह कारण है कि वह कारण है, ऐसा निश्चयपूर्वक कोई कह नहीं सकता। गम्य-अगम्य अनेकों कारण है। जय-विजय और सनत्कुमारोंके प्रसंग भागवतमें वर्णित है। श्रीश्रीधर स्वामी भागवतके प्रखर टीकाकार हैं। इनकी

भागवतपर की गई टीका अति प्राचीन है, प्रथम है। जय-विजयके प्रसंगके विषयमें श्रीधर स्वामीजी लिखते हैं—परमात्माकी इच्छा हुई कि मुझे रमण करना है, लीला करनी है। परमात्माकी प्रत्येक लीला जीवके कल्याणके लिए है और इसलिए जीवके ऊपर कृपा करनेके लिए परमात्माने यह लीला की है।

एक बार ऐसा हुआ कि सनत्कुमारोंने ब्रह्माजीके पास जाकर कहा—पिताजी हमने संसार देखा। हमको इसमें कोई सुख दीखा नहीं। तब ब्रह्माजीकी आज्ञासे वे भगवान आदिनारायणका दर्शन करने वैकुण्ठमें गये। सनत्कुमार चार हैं। वेदान्तमें अन्तःकरणके चार भेद माने गये हैं—मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार। अन्तःकरण संकल्प-विकल्प करे तब मन कहलाता है, निर्णय करे तब बुद्धि कहलाता है, भगवानका चिन्तन करे तब चित्त कहलाता है और जब अभिमान जागता है, तब यह अहंकार कहलाता है। ये चार सनत्कुमार है। सनत्कुमार ऐसे निर्विकारी हैं कि उनको देखनेवाला भी निर्विकार हो जाता है। परमात्माके दर्शनके अधिकारी होना चाहो तो मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार—इन चारोंको शुद्ध करो। प्रत्येक इन्द्रियका संयम रखकर परमात्माके समीप जाना है। दर्शन करने जाओ तो मनको शुद्ध करके जाओ। भगवान हृदयको देखते हैं। प्रभुने शबरीजीके कपड़े और झोंपड़ीकी तरफ देखा नही था। शबरीजीके ध्यानकी तरफ देखा था। मन-बुद्धिकी शुद्धि ब्रह्मचर्यसे होती है। जो प्रत्येक इन्द्रियसे ब्रह्मचर्य पालता है, वह ही परमात्माके दर्शनके लिए योग्य बनता है।

सनत्कुमार प्रभुका स्मरण करते हुए भगवानके दर्शन करने वैकुण्ठमें जाते हैं। वैष्णव-सिद्धान्तमें वैकुण्ठको सबसे श्रेष्ठ माना है। वैकुण्ठ प्रभुका धाम है। परमात्मा वहाँ नित्य ही विराजते हैं। कितने ही आचार्योंने ऐसा माना है कि गोलोकधाम और साकेत-धाम—वैकुण्ठधामके ही देश विशेष हैं। अक्षर ब्रह्मके एक पादमें जगत है और त्रिपादमें भगवान विराजते है। पुरुषसूक्तमें वर्णन है—

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।

परमात्माका धाम त्रिपाद-विभूतिमे है—जहाँ काम नहीं, क्रोध नही, शोक नहीं, लोभ नही, रजोगुण-तमोगुण नही, जहाँ है केवल मात्र सत्वगुण, वह वैकुण्ठ है।

'वैकुण्ठ' शब्दपर थोड़ा विचार करो। विगत कुण्ठा इति विकुण्ठा। जो बुद्धि अतिशय शुद्ध है, वही विकुण्ठा कहलाती है। विकुण्ठामें अर्थात् शुद्ध बुद्धिमें प्रगट होते हैं, उनको ही वैकुण्ठ कहते हैं। 'कुण्ठ' अर्थात् कपट। बुद्धिका कपट अर्थात् सकामता। जब तक बुद्धि, शरीरका चिन्तन करती है, स्थूल वस्तुका चिन्तन करती है, जड़ वस्तुका चिन्तन

करती है, तब तक यह स्थूल है, सकाम है। स्थूल, सकाम बुद्धिसे प्रभुका अनुभव होता नही, सूक्ष्म, निष्काम शुद्ध बुद्धिसे ही महापुरुष परमात्माका साक्षात्कार करते हैं।

सूर्यका प्रकाश सर्वत्र है, फिर भी सूर्यका प्रखर प्रकाश भी अग्नि उत्पन्न कर सकता नहीं। सूर्यका प्रकाश सूर्यकान्तमणि द्वारा जब कपासपर पड़ता है तब अग्नि उत्पन्न होती है। सूर्यका प्रकाश जिस प्रकार व्यापक है, उसी प्रकार शुद्ध तेजोमय परमात्मा सर्वव्यापक हैं परन्तु सूर्यका प्रकाश जैसे सूर्यकान्तमणि द्वारा अग्नि उत्पन्न करता है, उसी प्रकार शुद्ध बुद्धि द्वारा परमात्मा प्रगट होता है। सूक्ष्म, निष्काम, शुद्ध बुद्धिमें— विकुण्ठामें परमात्मा वास करते हैं।

वैकुण्ठ सबसे श्रेष्ठधाम है। वहाँ पहुँचनेपर जीव फिर संसारमें आता नही।

यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।

वैकुण्ठ अति दिव्य धाम है। इसके सात कोट हैं। समाधिके सात अंग माने हैं। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान और धारणा। इन सात अंगोंको सिद्ध करे, उसको ही परमात्माका साक्षात्कार होता है, उसको ही वैकुण्ठमें प्रवेश मिलता है। वैकुण्ठके यह सात कोट, सात दरवाजे कहलाते हैं। प्रभुके धाममें प्रत्येक दरवाजेपर दो-दो पार्षद हैं।

भगवानके पार्षद भी भगवानके जैसे ही हैं—शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी चतुर्भुज हैं। जो परमात्माकी चाकरी करता है, जो परमात्माके साथ अतिशय प्रेम करता है, उसको परमात्मा अपने जैसा बनाते हैं। जीव जब कुछ देता है, तब कुछ संकोच रखकर ही देता है। जब परमात्मा देते हैं तब परमात्माको जरा भी संकोच होता नहीं। जीव देता है तब विचारता है "मेरे लिए, लड़कोंके लिए—शेष रहना चाहिए।" ये श्रीमंत लोकदान करते हैं, यह ठीक है परन्तु अपने लिए घना रखकर पीछे भोगते हैं। ये ध्यान रखते हैं, "मुझको अड़चन न पड़े।" जीवको देनेमें कुछ संकोच होता है परन्तु परमात्माको देनेमें जरा भी संकोच होता नहीं। परमात्मा तो अतिशय उदार हैं। परमात्मा जीवको परमात्मा बनाते हैं।

पूर्णस्य पूर्णमादायपूर्णमेवावशिष्यते।

ईश्वरके धाममें विषमता नहीं। विषमता तो संसारमें है। बहुत-से सेठोंने तीन-तीन प्रकारके चावल रखे हैं। नौकरोंके लिए अलग, साधु-ब्राह्मणोंको देनेके लिए अलग और घरके लिए अलग। घरके लिए दिल्लीके असली बासमती होते हैं। अरे, पेटमें गये पीछे यह भी विष्ठा हो जाता है, कहीं सोना तो बनता नहीं। कुछ मातायें परोसनेमें

बहुत चतुर होती हैं, घरवालोको परोसनेके लिए रोटियोंमें घी ज्यादा चुपड़ती हैं। भोजनमे विषमता करे, यह बड़ा पाप है। इससे भगवान नाराज होते हैं। भोजनमें कभी विषमता करना नही। भोजनमें विषमता करनेवालेको दूसरे जन्ममें संग्रहणीका रोग हो जाता है।

सनत्कुमार कीर्तन करते-करते दौड़ते हुए प्रभुके दर्शनको जाते हैं। बैकुण्ठके छह दरवाजे पार कर गये। सनत्कुमार बहुत बड़े ज्ञानी पुरुष हैं। इससे सब कोई उनको मान देते है। वे चारों महाज्ञानी है, फिर भी स्वयंको बालक जैसा अज्ञानी मानते हैं। ज्ञानी होनेके बाद भी ज्ञानीजन बालक जैसे अज्ञानी रहते हैं। ज्ञानमें अभिमान न आवे, इसलिये बालक जैसा रहना जरूरी है।

सनत्कुमार सातवे दरवाजेपर आ पहुँचे। सातवें द्वारपर जय-विजयका पहरा है। चारों सन्त सीधे अन्दर जाने लगे। इससे जय-विजयको बुरा लगा। जय-विजयने गदा आड़ी रखकर उनको रोका। जय-विजयका उल्लंघन करके जाना बहुत कठिन है। बद्रीनारायण जाते समय जोशीमठ आता है। जोशीमठसे आगे जय-विजय नामके दो बहुत बड़े पहाड आते हैं। इन पहाड़ोंको लाँघनेमे लोग बहुत थक जाते हैं।

सनत्कुमार कहते हैं—हम तो अपने माता-पितासे मिलने जा रहे हैं। तुम हमको रोकनेवाले कौन ? जय-विजय कहते हैं—महाराज, जरा खड़े रहो। अन्दरसे हुक्म आवेगा उसके बाद जाने दूँगा। सनत्कुमारोंको क्रोध आता है। क्रोध, कामका छोटा भाई है। ज्ञानी पुरुष आत्मदृष्टि स्थिर करते हैं, देहदृष्टि रखते नही। देहदृष्टि रखनेसे, शरीरका स्मरण-चिन्तन करनेसे काम आता है। ज्ञानी पुरुषोंको काम त्रास देता नही परन्तु वे क्रोधके अधीन बनते हैं।

यह सातवां दरवाजा है। जिसका ध्यान स्थिर होता है, उसके पीछे धारणामें जाता है। परमात्माके एक-एक अंगका ध्यान करे वह ध्यान कहलाता है और समग्र श्रीअंगका ध्यान करे वह धारणा कहलाती है, ध्यानमें स्थिर होनेसे सिद्धि मिलती है। गृहस्थके लिए काम छोड़ना कठिन है, साधुको सिद्धिका मोह छोड़ना कठिन है। योगी महात्माओंको सिद्धि मिलती है तब उसका उपयोग करनेकी इच्छा होती है। सिद्धिके उपयोगसे प्रसिद्धि मिलती है। स्वदेशमें कीर्ति हो तो जय और विदेशमें प्रतिष्ठा हो तो विजय। बहुत-से लोग मान देते हैं इससे मानव, भान भूलता है, इसमें अभिमान आता है, प्रभुकी सेवा-स्मरणमें उपेक्षा होने लगती है। सेवा-स्मरणमें थोड़ी उपेक्षा हुई कि माया जोरसे धक्का मारती है। वह जितना ऊँचा चढा होगा, उतना ही नीचा गिरेगा।

सच्चे ज्ञानी महात्मा, सिद्धिका उपयोग करते नही।

सिद्धस्य चित्तिः सत एव सिद्धिः स्वप्नोपमानाः खलुसिद्धयोऽन्याः ।
स्वप्नः प्रबुद्धस्य कथं नु सत्यः सति स्थितः किं पुनरेति मायाम् ॥

सच्चे ज्ञानी पुरुषोंके लिए तो ब्रह्मज्ञान, ब्रह्मकी अपरोक्ष अनुभूति ही सिद्धि है। अन्य सिद्धियोंको तो वे मिथ्या गिनते हैं। जिस प्रकार स्वप्न मिथ्या है, उसी प्रकार यह संसार मिथ्या है और इस कारण संसारकी सर्वसिद्धियाँ भी मिथ्या हैं। स्वप्नसे जागनेपर जैसे मनुष्य स्वप्नमें देखे हुये अनुभवको सत्य मानता नहीं, वैसे ही संसार-स्वप्नसे जागे हुए, ब्रह्ममें स्थित हुए ज्ञानी महापुरुष संसारको या संसारकी सिद्धियोंको सत्य समझते नहीं। सच्चे ज्ञानी संसारमें और संसारकी सिद्धियोंमें कहीं लुभाते नहीं, मायामें फँसते नहीं।

परन्तु ज्ञान-मार्गपर चलना, दुधारी तलवारपर चलने जैसा कठिन है। यह मार्ग चलनेवालोंको अनेक प्रकारकी लौकिक सिद्धियोंके लालचमें लाता है। मोहमें डालता है, मायाजालमें फँसाता है। अधिकांशमें ऐसा देखनेमें आता है कि कामपर विजय पानेवालेको माया, कीर्तिमें फँसा देती है। लौकिक प्रशंसा मिथ्या है। वह ज्ञान-भक्तिमे विघ्न करती है, परन्तु कीर्तिका मोह छूटता नही। कामका विनाश करनेवाला कीर्तिके मोहमें फँसता है, क्रोध करता है। क्रोधके अधीन होनेसे शक्तिका नाश होता है। शक्तिका नाश पाप है। शक्ति बिना ज्ञान-भक्तिमें आगे बढ़ सकता नहीं।

सनत्कुमारोंकी आँखें लाल हो गयीं। क्रोधमें इन्होंने जय-विजयको शाप दे दिया। हम अधिकारसे यहाँ आते हैं फिर तुम विषमता क्यों करते हो? प्रभुमें विषमता कहाँसे आई? वैष्णवोंको तो सर्वमें समभाव होता है। विषमता तो राक्षसोंमें होती है। तुम इस भूमिके लायक नहीं। जाओ, तुम राक्षस होओ। दैत्यकुलमें तुमको तीन बार जन्म लेना पड़ेगा।

इस प्रसंगपर टीकाकर्त्ता श्रीश्रीधर स्वामी कहते हैं कि यह बात बहुत ठीक नहीं। मुझको यह रुचिकर नहीं। जय-विजय भगवानके पार्षद हैं। वह भगवान जैसे ही हैं। फिर वे सनत्कुमारोंको बालक समझकर रोकते हैं, उनकी अवज्ञा करते हैं। ऐसा अज्ञान जय-विजयके योग्य नहीं। सनत्कुमारोंको क्रोध आवे, यह भी योग्य नहीं।

जय-विजयका पतन हो, यह भी योग्य नहीं। बैकुण्ठमेंसे जीवका पतन हो तो वैकुण्ठका अर्थ नहीं। प्रभुका धाम तो—यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम—ऐसा है। वैकुण्ठमें एकबार प्रवेश मिले पीछे कहीं बाहर जाना पड़ता नहीं। फिर भी जय-विजयको जन्म लेना पड़ता है, यह योग्य नहीं। आश्रितका त्याग करना प्रभुको शोभा नहीं देता।

पीछे श्रीधर स्वामीजी स्पष्ट कहते हैं कि ना, ना। यह बहुत ही योग्य है। वैकुण्ठमे नारायण वर्षों तक आराम करते हैं। वहां तो ऐश्वर्य है परन्तु बहुत आराम होनेके पीछे उनकी कुश्ती करनेकी इच्छा हुई। तब पार्षदोंको राक्षस बनाकर उनके साथ कुश्ती करनेका विचार किया। भगवान ज्ञान देते हैं और ज्ञानको ढंक भी देते हैं। परमात्माकी इच्छा है कि मुझे खेलना है। मुझे ऐसी लीला करनी है। मेरे पार्षदोमें अज्ञान आवे तो यह सनत्कुमारोंको रोकें और इनको शाप मिले तभी आगेकी बहुत लीला होगी। इससे भगवानने अपनी इच्छासे जय-विजयको उस समय अज्ञान दिया। परमात्माकी प्रत्येक लीला जीवके कल्याणके लिए है। भगवत्-इच्छासे ही यह सब हुआ है। इसलिये यह सब होने योग्य है।

प्रभुके धाममें वैकुण्ठ तक जाकर भी जीव भूल करते हैं। अंदर काम है, क्रोध है, लोभ है। जीव सावधान रहे तब तक विकार दीखते नहीं, जीव गाफिल हुआ कि विकार तुरन्त सवार हो जाते है। वे सब विकार अन्दर ही बैठे हैं। समय मिलनेपर बाहर आते हैं। मन-बुद्धिके ऊपर रहो नही। वे बारम्बार दगा करते हैं। जीवनकी अन्तिम श्वासतक सावधान रहो।

कामः क्रोधश्च लोभश्च देहे तिष्ठन्ति तस्कराः।
ज्ञानार्थान् अपहार्य तस्मात् जाग्रत जाग्रत ॥

मनके ऊपर सत्सगका, भक्तिका अकुश होगा, सतत ईश्वर-चिन्तन होगा तो ही अन्दरके विकार शान्त होंगे।

परमात्मा विचार करते हैं कि सनत्कुमारोने मेरे द्वारपर क्रोध किया है, इससे ये अन्दर आने योग्य नही। आज तक इनको क्रोधके ऊपर विजय मिली नही। इससे, मेरे धाममें आनेके लिए योग्य नही। मैं ही बाहर जाकर दर्शन देता हूँ।

परमात्मा बाहर आए। परमात्माके श्रीअंगमे-से कमलकी दिव्य सुगन्ध आती है। तेजोमय अक्षर ब्रह्मका ध्यान करनेवाले ऋषियोंको परमात्माके दर्शन हुए तो खूब आनन्द हुआ। परमात्माके दर्शन करनेसे सनत्कुमारोको अपनी भूल समझमे आ गयी। इन्होंने प्रभुके धाममे आकर क्रोध किया था, प्रभुका अपराध किया था। सनत्कुमारोंने प्रभुसे क्षमा माँगी।

प्रभुने कहा—तुम्हारा अपमान तो मेरा अपमान है। तुमने जो किया, वह योग्य ही किया है। तीन जन्मके पश्चात् जय-विजय मेरे धाममे आवेगे। भगवानने जय-विजयसे कहा—तुम्हारे तीन अवतार होगे परन्तु तुम्हारा उद्धार करनेके लिए मैं चार अवतार लूंगा।

पहले जन्ममें जय-विजय हिरण्याक्ष-हिरण्यकशिपु हुए। दूसरे जन्ममें ये रावण-कुम्भकर्ण हुए। तीसरे जन्ममें शिशुपाल-दन्तवक्त्र हुए। हिरण्याक्ष-हिरण्यकशिपु लोभके अवतार है। रावण-कुम्भकर्ण, कामके अवतार हैं। शिशुपाल-दन्तवक्त्र क्रोधके अवतार हैं। काम, क्रोध और लोभ—मनुष्यके ये तीन महाशत्रु हैं। ये नरकके द्वार हैं।

ज्ञान-मार्गमें विघ्न करनेवाला क्रोध है। कर्म-मार्गमें विघ्न करनेवाला काम है। भक्ति-मार्गमें विघ्न करने वाला लोभ है। क्रोधसे ज्ञानका नाश होता है। कामसे कर्मका नाश होता है। लोभसे भक्तिका नाश होता है।

लोभी भक्ति कर सकता नहीं। मनुष्य भगवानके लिए अथवा दानके लिए हल्केसे हल्की चीजका उपयोग करता है, और अपने लिए बड़ीसे-बड़ी चीजका उपयोग करता है। सत्यनारायणकी कथामें बैठना हो तो भाई पीताम्बर पहनकर बैठता है और जब ठाकुरजीके वस्त्र-परिधानका समय आता है, तब कहता है—मैं कलावा लाया था वह कहाँ गया ? कलावा लाओ। भगवान कहते हैं—बेटा! मैने भी तेरे लिए लँगोटी पहनानेके लिए वस्त्र तैयार रखा है।

जय-विजयसे कहा था, तभी इस प्रमाणमें प्रभुने चार अवतार लिए हैं।

प्रभुने वराह और नृसिंह अवतार लेकर हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपुको मारा। रामावतार धारण करके रावण और कुम्भकर्णको मारा। कृष्णावतारमें शिशुपाल और दन्तवक्त्रको मारा। तीन जन्म पीछे जय-विजय पुनः प्रभुके धाममें गये। रामावतार जय-विजयको मिले शापके कारण हुआ था। रामावतार मनु-शतरूपाको दिये गये वरदान सिद्ध करनेके लिये हुआ था।

चाहउँ तुम्हहि समान सुत

जीवनकी उत्तरावस्थामें श्रीस्वायम्भुव मनु और रानी शतरूपा पुत्रको राज्यका भार सौंपकर नैमिषारण्य गये। वहाँ गोमती-तटपर निवास किया। वहाँके ऋषियोंके बताये हुए सब तीर्थोंकी यात्रा की और उसके बाद ऋषि-जीवन अपनाया। वल्कल वस्त्र धारण किये, कन्द, मूल, फलका सेवन किया। सन्त-समाजमें जाकर पुराणोंका श्रवण करने लगे और 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' के द्वादशाक्षर मंत्रका जप करते-करते सच्चिदानन्द ब्रह्मका स्मरण-चिन्तन करने लगे।

द्वादस अक्षर मन्त्र पुनि जपहिं सहित अनुराग।
वासुदेव पद पंकरुह दंपति मन अति लाग॥

धीरे-धीरे भक्ति बढ़ती गयी। फिर तो भगवानके दर्शनके लिए अति कठिन तपस्याका आचरण किया। कद, मूल, फलका भी त्याग कर दिया। मात्र जलपान करके भक्ति करने लगे। इस प्रकार छः हजार वर्ष बीते, तब इन्होंने जलका भी त्याग कर दिया। जीव जब परमात्माके लिए लौकिक सुखोंका त्याग करता है तभी भगवानको दया आती है। संसारके सब सुखोंको भोगे और थोड़ा सेवा-स्मरण करे, इससे ठाकुरजी बहुत राजी होते नहीं। परमात्माके लिए जो सर्व सुखोका त्याग करता है, वह परमात्माको अच्छा लगता है।

घरमें कोई दुःख या बाधा आती है तो लोग नियम रखते हैं कि मैं दूध नहीं पिऊँगा, घी नही खाऊँगा। ऐसा नियम स्वार्थके लिए रखते हैं परन्तु कोई परमात्माके लिए नियम रखते नहीं कि मुझे रामजीके दर्शन न होवें तब तक मैं मिठाई खाऊँगा नहीं, अन्न लूंगा नही। मनु-दंपतिने तो ईश्वर-दर्शनके लिए जलका भी त्याग कर दिया।

इस प्रकार सात हजार वर्ष पर्यन्त केवल वायुके आधारपर शरीर-निर्वाह करते हुए तप चालू रखा। उसके बाद वायुका भी त्याग कर दिया और दस हजार वर्ष तक सम्पूर्ण निराहार तप किया। कुल तेईस हजार वर्षकी उन्होने तपस्या की।

तप जब अधिक बढ़ा तब ब्रह्मादिक देवता बारम्बार इनके सम्मुख जाकर इनको वरदानका लालच देने लगे। इन्द्रियाँ और संसारके लालच ही विघ्न करते हैं, ऐसा नही। किसी-किसी समय स्वर्गके देवता भी विघ्न करते हैं। इसलिए तो उपनिषदके आरम्भमें शान्ति-पाठ करना पड़ता है।

ॐ शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा।
शं नो इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः॥

त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वमेव प्रत्यक्ष ब्रह्म वदिष्यामि। ऋतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु। अवतु माम्। अवतु वक्तारम्।

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

सब देवताओंका वन्दन करके प्रार्थना है कि हमारे ध्यान, भक्ति और सत्संगमें किसी भी दिन विघ्न न आवे।

कोई जीव बहुत भक्ति करे तो स्वर्गके देवताओंको भी सुहाता नहीं। स्वर्गके देवता ऐसा मानते हैं कि यह बहुत भक्ति करेगा तो हमारे सिरपर पैर रखकर प्रभुके धामको जाएगा। तुमसे कोई हल्का मनुष्य हो और अधिक कमाई करके बड़ा बँगला खड़ा करे तो तुम्हारा हृदय सिकुड़ता है अथवा जलता है।

परन्तु मनु महाराज और शतरूपा, लालचोंके वशमें हुए नहीं, तनिक भी विचलित हुए नहीं। शरीर अस्थिपञ्जर बन गया था, फिर भी स्वयंके व्रतमें अचल रहे। तब करुणानिधि परमात्माने कृपा करके उनको दर्शन दिया। परमात्माके दर्शन होनेसे मनु-दंपति देह-सुधि भूल गये और भगवानके चरणोंमें गिर पड़े। प्रभुने प्रसन्न होकर उनके मस्तकपर हाथ फेरा और वरदान माँगनेको कहा।

तब मनु महाराजने माँगा—

दानि सिरोमनि कृपानिधि नाथ कहउँ सतिभाउ।
चाहउँ तुम्हहि समान सुत प्रभु सन कवन दुराउ॥

कृपानिधि आपसे क्या छिपाऊँ? मेरी आपके जैसे पुत्रकी इच्छा है। रानी शतरूपाने भी यही याचना की। प्रभुने कहा—मेरे समान तो दूसरा कौन है? मैं ही हूँ। मैं ही तुम्हारे घर पुत्र-रूपमें अवतार धारण करूँगा।

आपु सरिस खोजौं कहँ जाई। नृप तव तनय होब मैं आई॥

मनु-शतरूपा उसके बाद दशरथ-कौशल्या-रूपमें जन्मे और इनको दिया हुआ वचन सत्य करनेके लिए परमात्मा, श्रीराम-रूपमें उनके पुत्र होकर अवतरित हुए।

भगवान शंकर पार्वती मातासे कहते हैं कि प्रभुके अवतारके कारण अनेक हैं, वे एक-से-एक विचित्र हैं।

राम जनम कर हेतु अनेका। परम विचित्र एकतें एका॥

× × ×

कलप कलप प्रति प्रभु अवतरहीं। चारु चरित नाना बिधि करहीं॥

प्रत्येक कल्पमें परमात्मा लीला करनेके लिये अवतार धारण करते हैं। एक कल्पमे ऐसा भी हुआ था कि नारदजीने क्रोधमें आदिनारायण परमात्माको शाप दे दिया था। नारदजोके उस शापको सत्य करनेके लिए प्रभु श्रीराम प्रगट हुए।

❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖

(२५)
परमात्माको नारदजीका शाप

पार्वती माताको बहुत आश्चर्य हुआ कि नारदजी महाराज तो महान् वैष्णव हैं और वे वैष्णव होकरके ठाकुरजीको शाप देते हैं ? पार्वतीजी ने कहा—महाराज, यह कथा, श्रवण करनेकी मेरी इच्छा है। नारदजी तो महान् वैष्णव है, भक्त हैं, महान् ज्ञानी हैं। इनको प्रभुपर क्यो क्रोध आया ?

शिवजीने कहा—देवी, कोई ज्ञानी नही, और कोई मूर्ख नही। रामजी महाराज सबके हृदयमें विराजे हैं और वे ही लीला करते हैं। अनेक बार ज्ञानी पुरुष भी मूढ़ बन जाते हैं।

ज्ञान मिलना बहुत कठिन नही, ज्ञान स्थिर रखना कठिन है। यह मानव-शरीर एक घड़ा है। इसमें इन्द्रियरूपी नौ छिद्र हैं। एक-एक छिद्रमें-से ज्ञान बह जाता है। घड़ेमें छिद्र हो तो घड़ा रहता नही। इन्द्रियरूपी छिद्रोको बन्द रखोगे तो ही ज्ञान ठहरेगा। ज्ञान मिलना सरल है, परन्तु उसको स्थिर रखना कठिन है। जो ज्ञान मिला है, इसमें स्थिरता होनी कठिन है।

ज्ञान हुए पीछे वासनाओका नाश नही हो तो ज्ञान दृढ़ होता नहीं। ज्ञानको दृढ करनेके लिए वासनाका नाश करना बहुत आवश्यक है। मन, वासनाओमे फँसा है, विषयोंके पीछे भटकता है। अन्तरमे ज्ञानदीप प्रगट हुए पीछे भी मन इन्द्रियरूपी दरवाजेको खोल देता है फिर उसमें-से विषयरूपी पवन घुसता है और ज्ञानदीपको बुझा देता है।

कल बल छल करि जाहिं समीपा। अंचल बात बुझावहिं दीपा ॥

ज्ञान हुए पीछे भी मन न मरे तो ज्ञानमें स्थिरता आती नही, ज्ञान आता है, परन्तु स्थायी नही रहता।

ऐसा साधारण नियम है कि पुस्तकोंको पढ़कर जो ज्ञान मिलता है, वह ज्ञान स्थिर रहता नहीं। पुस्तकोंमें-से मिला हुआ ज्ञान अधिकांश पुस्तकोंमें ही रह जाता है। बहुतोंकी तो जीभपर ही रहता है, परन्तु जीवनमें उतरता नही।

पुस्तकस्था तु या विद्या, परहस्तगतं धनम्।
कार्यकाले समुत्पन्ने, न सा विद्या न तद्धनम्॥

जो ज्ञान पुस्तकोंमें ही रहता है वह किसी कामका नही। अपना जो धन दूसरेके हाथमें हैं वह धन भी कामका नही। आवश्यक समयपर यह किसी काममें आते नही। ऐसा धन जो दूसरेके हाथमें है वह धन नहीं, पुस्तकका ज्ञान, कोई ज्ञान नही। इसका होना-न-होना समान ही है। ज्ञान, जीवनमें उतरे तब ही यह यथार्थ ज्ञान होता है।

पुस्तकोंके पीछे पड़े, वह विद्वान और प्रभु-प्रेममें परमात्माके पीछे पड़े वह सन्त। विद्वान शास्त्रके पीछे दौड़ता है, जबकि शास्त्र संतके पीछे दौड़ता है। शास्त्रोंको पढ़कर जो बोलता है वह विद्वान। प्रभुको रिझानेके लिए, प्रभु-प्रेममें पागल होकर जो बोलता है वह सन्त। सन्त अन्दरकी पोथी बाँचकर प्रभु-प्रेरणासे बोलता है। सन्तको ज्ञान प्रभु-कृपासे होता है। सन्तको पुस्तक पढ़ने जाना पड़ता नही।

जिसने मात्र पुस्तक पढ़कर ही ज्ञान प्राप्त किया है, जिसने संतकी सेवा की नही, जिसने प्रभुको रिझाया नही, ऐसे ज्ञानीका पतन हो जाता है। उसको माया विघ्न करती है। शंकराचार्य महाराजने कहा है—

वाग्वैखरी शब्दझरी शास्त्रव्याख्यानकौशलम्।
वैदुष्यं विदुषां तद्वत् भुक्तये न तु मुक्तये॥

शास्त्रोंपर विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान देना, धर्मके ऊपर लंबा-लंबा भाषण करके शब्दोंका वाग्जाल बुन देना, शास्त्रार्थ-विषयको वाद-विवादमें वाणी-विलाससे भ्रममें डालकर स्वयंका पाण्डित्य-प्रदर्शन करना—इस सबसे लौकिक सिद्धि भले ही प्राप्त होती हो, लोगोंमें वाह-वाह होती हो, द्रव्य मिलता हो, परन्तु उससे मुक्ति कदापि मिलती नहीं। ऐसे ज्ञानसे अनेक प्रकारके लौकिक भोग प्राप्त हो सकते हैं और इन भोगोंमें फंसकर ऐसे ज्ञानी पंडितका पतन हो जाता है।

परन्तु जिसको प्रचुर उपासना करके ज्ञान प्राप्त हुआ है, ध्यान और भक्ति द्वारा जिसको ज्ञान प्राप्त हुआ है, उसको माया त्रास देती नहीं, उसका पतन होता नही। उसका ज्ञान स्थिर रहता है। जो जितेन्द्रिय बनता है, उसकी बुद्धिमें ज्ञान टिकता है। संयम पालनेसे ही ज्ञान स्थिर होता है। जिसकी मन-बुद्धि शुद्ध होती है, उसका ज्ञान स्थिर होता है।

आत्मा ज्ञानमय होनेसे कोई भी अज्ञानी नही। समझना तो सभीको आता है, परन्तु उस समझमे स्थिरता आती नही। परमात्माकी कृपासे ही जिसको ज्ञान प्राप्त हुआ है, उसका ही ज्ञान स्थिर होता है।

इस समय तुम सब शंकर भगवानकी तरह बैठे हो। कितनी शांति रख रहे हो, तुम सबको भजन करनेकी इच्छा होती है परन्तु यहीसे घर जानेके पश्चात् फलाहारकी तैयारी न हो तो शान्ति रखकर प्रभु-भजन कर सकते हो? लोग कहकर आते हैं— बारह साढ़े बारह बजे आवेंगे, फलाहार तैयार रखना। घर गये, भूख खूब लगी है और देखा कि अभी तो कुछ तैयारी नही है फिर तो कितने ही आँख निकालते हैं। "अभी तक तुम क्या करते थे?" क्रोधमे क्या-क्या बोल डालते है।

मनुष्य मूर्ख नही परन्तु मनुष्यका ज्ञान स्थिर रहता ही नही। यह तो परमात्माकी सब लीला ही है।

बोले बिहँसि महेश तव ज्ञानी मूढ़ न कोइ।
जेहि जस रघुपति करहिं जब सो तस तेहिं छन होइ॥

कोई ज्ञानी नही, कोई मूर्ख नही। रामजी जैसी लीला करना चाहते है वैसा होता है। नारदजी महान् ज्ञानी है, भक्ति सम्प्रदायके आचार्य हैं, महान् वैष्णव हैं परन्तु प्रभुको ऐसी लीला करनी थी, इसलिए नारदजीको क्रोध आया और क्रोधमे इन्होंने परमात्माको शाप दिया।

भगवान शंकर, पार्वती माँको यह दिव्य कथा सुना रहे है।

एक बार ऐसा हुआ कि नारदजी घूमते-घूमते हिमालयपर आये। गंगा-किनारा है, पवित्र, शान्त दिव्य भूमि है। नारदजीको बहुत आनन्द हुआ कि यह भूमि अति सात्विक है, इस भूमिमें मैं परमात्माका ध्यान करूँगा।

सात्विक भूमिमे भक्ति बढ़ती है। भूमि, भक्तिमे साथ देती है। जिस भूमिमें जो कार्य हुआ हो, उस कार्यके सूक्ष्म परमाणु उस भूमिमे भ्रमण करते है। गृहस्थके घरमें कामके, वासनाके परमाणु फिरते हैं, पापके परमाणु फिरते है। जहाँ ममता होती है, वहाँ विषमता होती ही है। गृहस्थके घरमे विषमताका पाप है। गृहस्थका घर भोग-भूमि है। भोग-भूमिमे भक्ति बढ़ती नही। उसी प्रकार कसाईके घरमे हिंसा होनेसे तुम वहाँ जाओगे तो तुम्हारा मन अशान्त होगा। वहाँ जानेके बाद मनमे राजस-भाव जाग्रत होगा। तुम मन्दिरमें जाओ, जिस जगह प्रभुका नाम-सकीर्तन होता हो, उस जगह जाओ, जिस स्थानपर सत्कर्म होता हो, उस स्थानपर जाओ तो तुम्हारे मनमें सात्विक भावना जागेगी।

दिव्य भूमि देखकर नारदजीके मनमे भक्ति वर्द्धित हुई। गंगाके किनारे नारदजी परमात्माका ध्यान करने बैठे। आदिनारायण भगवानका ध्यान करते-करते इनकी समाधि लग गयी।

सहज बिमल मन लागि समाधी।

नारदजी समाधिमें देह-सुधि भूल गये।

स्वर्गके राजा इन्द्रको शंका हुई कि नारदजी ऐसी तपस्या क्यों करते है, इनको स्वर्गका राज्य चाहिए अथवा और कुछ ? नारदजीकी तपश्चर्यामें विघ्न करनेके लिए इन्द्रने कामदेवको प्रेरित किया। इन्द्रने कामदेवको आज्ञा दी कि नारदजी बहुत दिनोंसे ध्यान करते है, तुम वहाँ जाकर उनकी तपश्चर्यामें विघ्न डाल दो। उनकी तपस्याको भंग करा दो।

कामदेव, जहाँ नारदजी ध्यानमग्न बैठे थे, वहाँ अप्सराओंके साथ आये। कामदेवका पुत्र है वसंत। कामदेव उस वसंत ऋतुको भी साथ लेकर आया। वहाँ सुन्दर फूल खिल रहे हैं। फूलोके भारसे वृक्ष झुक रहे थे। मंद-सुगन्धित-शीतल वायु बह रही थी। अप्सराओंने नाच-गान किया। कामदेवने बाण मारा।

जगतको देखनेसे मनमें काम आता नहीं। जगत सुन्दर है, ऐसा समझकर देखनेसे तो मनमें काम प्रवेश करता है। दृष्टि दो प्रकारकी है। एक अपेक्षात्मक और दूसरी उपेक्षात्मक। मनुष्य पूरे दिन आँख बन्द करके बैठा रह सकता नहीं। आँख तो खोलनी ही पड़ती है और आँख खुली हों तो जगत दीखता ही है परन्तु ज्ञानी महापुरुष जगतको उपेक्षाभावसे देखते हैं और अपेक्षात्मक दृष्टि केवल ईश्वरमें ही रखते हैं। ईश्वरके बिना अन्य सब तुच्छ है। जगतको उपेक्षाभावसे देखनेकी आदत डालो। यह जगत बहुत सुन्दर है, ऐसा समझकर देखोगे तो आँख बिगड़ेगी। मन बिगड़ेगा।

सुन्दर तो यह जगत जिसने बनाया है, वह परमात्मा है। ठाकुरजी अति सुन्दर हैं। यह जगत सुन्दर है, ऐसी कल्पना मनमे जबतक है तब तक संसारका मोह छूटता नही। संसारकी प्रत्येक वस्तुमें माया रखी गयी है। मायाके कारण वह सुन्दर लगती है और इसी कारण उसके प्रति मोह होता है। सौन्दर्य, मनकी कल्पनामात्र है। मनुष्यको जहाँ सौन्दर्य दीखता है, वहाँ कबूतरको वह दीखता नही। सौन्दर्य आँखमें है और उसका आरोप मनुष्य वस्तुमें करता है। जिसकी आँखमें काम है, उसे संसारमें सुन्दरता लगती है, उसको संसारके विषयोंसे मोह होता है। जिस सौन्दर्यको देखनेसे विकार आवे, मोह उत्पन्न हो, वह सौन्दर्य है ही नही। सुन्दर तो एक श्रीराम हैं। श्रीरामकी सुन्दरताको लेकर जगत सुन्दर दीखता है।

जिसको संसारमें सुन्दरता भासती है, जिसको संसारके विषयोमे मोह होता है, जिसका मन संसारमे फँसता है वह परमात्माकी भक्ति करता नही, संसारकी ही भक्ति करता है। श्रीराममें मन लगावे। ससारके पदार्थोमे जिस प्रकार मन लगाया हुआ है, उसी रीतिसे श्रीरामके शरीरमे लगावे तो भक्ति हो सकती है। ससारके विषयोका मोह छोड़ो तो भक्ति हो सकती है। माया घटे तो भक्ति बढे। संसारके स्वरूपमे आसक्तिका नाम माया और प्रभुके स्वरूपमे आसक्तिका नाम भक्ति है। स्वरूप-आसक्तिके बिना भक्ति सिद्ध होती नही।

नारदजी तो महान् वैष्णव है, महान् भक्त है, निर्विकार हैं, कामविजयी हैं, नारदजी आँख खोलते हैं, परन्तु वे सबको उपेक्षात्मक दृष्टिसे देखते हैं। परमात्माका सतत स्मरण करते हैं। नारदजीके मनमें थोड़ा भी विकार आता नही। कामदेवने बहुत प्रयत्न किया। तब भी नारदजी निर्विकार रहे। कामदेवको नारदजीकी शक्तिका विश्वास हो गया। अप्सराओ-सहित कामदेव नारदजीका बार-बार वन्दन करता है। उनकी खूब प्रशसा करता हुआ कहता है—आप कामजित् हो। काम आपका क्या कर सकता है? आप महान् हो? नारदजीका वन्दन करके कामदेव स्वर्गमें इन्द्रकी सभामें जाता है। नारदजीकी वहाँ प्रशंसा करता है। सुनकर सबको आश्चर्य होता है।

नारदजी कामपर तो विजय प्राप्त करते हैं, परन्तु नारदजीके मनमे सूक्ष्म अभिमान जागता है। इनके मनमे अहम् आता है कि कामपर मुझे विजय मिली है। पीछे नारदजी कैलासधाममें आते हैं। नारदजी आये, इससे भगवान शंकरको बहुत आनन्द हुआ। भगवानने उठकर नारदजीका स्वागत किया, आसन दिया और कहा—बहुत दिन पीछे तुम आए हो। आज तक कहाँ थे?

नारदजीने कहा—महाराज! मैं तो हिमालयमें ध्यान करने बैठा था। समाधिमें मन स्थिर करके परमात्माका चिन्तन करता था।

भगवानने कहा—बहुत अच्छा किया। परमात्माका ध्यान करना ही महान पुण्य है। तुम दान दो, यात्रा करो उससे मन शुद्ध होता नही। मन-शुद्धि प्रभुका ध्यान करनेसे ही होती है। आप ध्यानमें तन्मय हुए थे, यह बहुत सुन्दर किया। नारदजी सब कथा सुनानेके लिए बहुत आतुर थे। इसलिए उन्होने कहा—मेरी तो ध्यान करनेकी इच्छा सतत होती है परन्तु ये लोग ध्यानमे बहुत विक्षेप करने आते हैं।

शिवजीने पूछा—तुम्हारे ध्यानमें कौन विक्षेप करने आता है?

नारदजीने कहा—पहले कामदेव आया था। अनेक अप्सराओंको साथ लाया था। बहत ऊधम करता था।

शंकरजीने पूछा—पीछे क्या हुआ ?

नारदजीने कहा—पीछे क्या होना था ? मेरे आगे उसकी कुछ नही चली। मैं तो शातचित्तसे परमात्माका ध्यान करता रहा। इसने अनेक प्रकारके हावभावसे मेरे मनको चंचल करनेका प्रयत्न किया परन्तु मैं तो निर्विकार रहा। बेचारा जैसा आया था, वैसा ही वापिस चला गया।

नारदजी वर्णन करते हुए आत्मस्तुति करने लगे—मैं निर्विकार रहा, मैं अजेय रहा। शिवजीको यह कुछ ठीक लगा नहीं। आत्मप्रशंसा करनेसे पुण्यका नाश होता है। शिवजी नारदजीको शिक्षा देते हैं—नारदजी, तुम तो निर्विकार हो परन्तु तुम्हारे कल्याणके लिए कहता हूँ कि तुमने यह सब कथा, जो मुझे सुनायी है वह वैकुण्ठमें भगवान नारायणसे कभी कहना नहीं। कदाचित् परमात्मा तुमसे पूछें, फिर भी तुम कहना नही।

नारदजीके कल्याणके लिए शिव भगवानने सुन्दर उपदेश किया परन्तु नारदजीको वह अच्छा नहीं लगा। उन्हें ऐसा लगा कि मैंने कामपर विजय प्राप्त की है, ऐसा कहनेमें क्या हानि है। लगता है कि शिवजीको मेरे प्रति कुछ मात्सर्य है। आजतक जगतमें शिवजीकी ऐसी ख्याति है कि भगवान शंकरने कामको जलाकर भस्म किया है। मैं भी अब शिवजी जैसा ही हो गया हूँ, यह शिवजीको सहन होता नहीं। इसलिए मुझसे कहते हैं कि यह बात किसीसे कहना नही, किसलिए न कहूँ ? मैंने कामपर विजय प्राप्त की है, यह सत्य है, और सत्य कहनेमें क्या बाधा है ?

जीवका ऐसा स्वभाव है कि उसे जो काम करनेको मना करो, उसे वह पहले करता है। शिवजीने नारदजीको परामर्श दिया था कि वैकुण्ठमें नारायणसे यह कथा कहना नहीं परन्तु नारदजीको यह मान्य हुआ नही और वे सीधे वैकुण्ठधाममें गये।

वैकुण्ठमें आदिनारायण परमात्मा लक्ष्मीजीके साथ विराजमान थे। नारदजीके पधारनेसे परमात्माको आनन्द प्राप्त हुआ। नारदजीसे कहा, आज तो बहुत दिनोंमें दिखाई पडे. कहाँ थे ?

नारदजीने कहा—महाराज ! मैं तो ध्यान करने बैठा था।

शिवजीने निषेध किया था फिर भी नारदजीने अपनी कथा आरम्भ कर ही दी। हिमालयमें गगा-किनारे मैं तुम्हारा ध्यान करता था। वहाँ लोग बहुत विक्षेप करते हैं। इन्द्र राजाने कामदेवको वहाँ भेज दिया था।

प्रभुने पूछा—फिर क्या हुआ ?

नारदजीने कहा—फिर क्या होना था ? उन लोगोकी कुछ चली नही। बहुत हाव-भाव किये, मेरे मनको चचल करनेका बहुत प्रयत्न किया। कामदेवने बाण मारे, फिर भी मेरे मनमे विकार आया नही, मैं तो आपका ध्यान जो कर रहा था।

परमात्माने कहा—महाराज, काम तुम्हारा क्या कर सकता था? तुम्हारा स्मरण करनेवाला भी कामाधीन होता नही।

नारदजीने हाथ जोड़कर कहा—महाराज ' यह तो तुम्हारी कृपा है।

अनेकबार मानव बाहर से विनयका नाटक करते है परन्तु अन्दर अभिमान घर किए होता है। मुखसे तो ऐसा बोलता है कि भगवानकी यह कृपा है, परन्तु मनसे ऐसा समझता नही। अन्दर से तो ऐसा मानता है कि मैं भी कुछ हूँ।

इस जीवके पास अभिमान करने योग्य कोई चीज नहीं, फिरभी जीव ठसकमें बोलता है, अकड़मे चलता है। मनुष्य बोलता है, तब अधिकतर अभिमान ही बोलता है। मनुष्य ऐसा समझता है, कि मैं दूसरोकी अपेक्षा अधिक चतुर हूँ। ठसकमे बोलना ईश्वरको रुचिकर नही। अभिमान मनुष्यका शत्रु है। व्यवहारका काम करते हुए मनुष्यको बहुत मान मिलता है, बहुत धन मिलता है और कुछ उन्नति होती है, तो उसे अभिमान हो जाता है। अभिमानसे अन्य दुर्गुण भी आ जाते हैं। अभिमानको लेकर जीव दुःखी होता है। फिर भी मनुष्य अभिमान छोड़ता नही। मनुष्यमे दैन्यका आना अति कठिन है।

परमात्मासे नारदजी ने कहा—मैं कामके ऊपर विजय प्राप्त कर सका, यह सब तुम्हारी ही कृपा है। भगवान समझ गये कि नारदजीके मनमें इस समय अभिमान आया है। यह अभिमानका वृक्ष बढ जाएगा तो अनर्थ होगा। यह स्वयको शिवजीके समान गिनते हैं। शिवजीने मना किया फिर भी इन्होने सब कथा मुझे सुनायी है। मेरे भक्तके मनमे अभिमान जागृत हुआ है। इसका मुझे विनाश करना ही चाहिए। अभिमान घर कर जाएगा तो भक्तका बडा अहित होगा।

परमात्माने लीला की। नारदजी वैकुण्ठसे जा रहे थे तो मार्गमें प्रभुने मायाका विस्तार किया।

सुयोजन एक अतिशय सुन्दर विशाल दिव्य नगरी है। इस नगरीमें शीलनिधि नामक राजा राज्य करते हैं। नगरीके स्त्री-पुरुष भी कामदेवके समान सुन्दर हैं। सब ज्ञानी हैं। वैकुण्ठके समान यह दिव्य भूमि है।

नारदजीको आश्चर्य हुआ। यह नगरी कौनसी है ! ऐसा विशाल मण्डप क्यों बाँधा गया है। नारदजीने लोगोसे पूछा। उनको जानकारी मिली कि शीलनिधि राजाकी

यह राजधानी है। उसकी राजकुमारी विश्वमोहिनीका स्वयम्वर होना है। स्वयम्वरमें देश-विदेशके राजा-महाराजा एकत्रित हुए है।

यह सब भगवानकी माया थी। भगवान एक-एक क्षणमें अनेक स्वरूप धारण करके लीला करते है। नारदजीको आश्चर्य हुआ। वे राजमहलमें गये। शीलनिधि राजा उठकर खड़े हो गये। नारदजीका उन्होंने स्वागत किया और कहा—महाराज! आप सन्त हो, हमारे घर पधारे हो, पुत्रीका विवाह है, स्वयंवर निश्चित हो गया है। अनेक देशके राजाओंको निमन्त्रण दिया हुआ है।

राजाने विश्वमोहिनी कन्याको बुलाया। कन्याने नारदजीका वन्दन किया। नामके अनुसार ही कन्याका रूप था, विश्वमोहिनी सुन्दरता थी। नारदजी तो उसे एकटक देखते ही रह गये। कन्याका रूप देखकर नारदजीका समस्त विवेक, वैराग्य और ज्ञान जाता रहा। नारदजी कन्याको बहुत देरतक देखते रहे और मनमें आश्चर्यचकित हो कहने लगे —यह कितनी सुन्दर है।

नारदजीको अपने वैराग्यपर पूर्ण विश्वास था किन्तु आज वे कामाधीन होकर राजकन्याको देखने लगे।

अति प्रचण्ड रघुपति कै माया। जेहिं न मोह अस को जग जाया॥

परमात्माकी मायासे बचना बहुत कठिन है। मनुष्य संसार छोड़ सकता है, परन्तु कामके ऊपर विजय प्राप्त करना उसके लिए बहुत कठिन है। काम अदृश्य है। इस अदृश्य कामको मारना है। काम दीखता नहीं, परन्तु वह सभी को मारता है। क्रोध चला जाता है, लोभ चला जाता है, परन्तु काम जाता नही। बहुत सारे अनर्थ कामसे होते है। काम बड़े-से-बड़ा हृदय-रोग है। यह हृदयपर आक्रमण करता है। लौकिक कामनाओंसे काम बढता है और कामसे क्रोधका जन्म होता है।

कामात् क्रोधोऽभिजायते।

क्रोधसे शक्तिका नाश होता है।

जिसने ब्रह्मचर्यका पालन किया है, वह इन्द्रियोंपर तनिक भी विश्वास न रखे। वृक्षके नीचे विश्राम करनेवाले और केवल जलके ऊपर निर्वाह करनेवाले बड़े-बड़े ऋषि भी भूलमें पड़ जाते है, तो फिर साधारण जनकी तो बात ही क्या है, शास्त्रमें लिखा है कि जिसे ब्रह्मचर्यका पालन करना हो, वह स्त्रीका साथ न रखे। मनमें काम कब प्रवेश कर जावेगा, यह कह सकते नही। कामके छातीके ऊपर चढ बैठनेके बाद विवेक रहता नही। ज्ञानी, ज्ञान भूल जाता है। वैरागी, वैराग्य भूल जाता है। विद्वान विद्वत्ता गवाँ

देता है। इसलिए अति सावधान रहने की आवश्यकता है। एक क्षण भी गाफिल होना नहीं। गाफिल हुए कि काम सवार ही जायगा। कामके कारण बड़े-बड़े ज्ञानी भी भूलमें पड़े हुए हैं।

देवी भागवतमें महर्षि पराशरने स्वयं-की कथा कही है। पराशर मुनिने साठ हजार वर्षतक तप किया। उसके बाद एक बार वे नौकामें बैठकर यमुना नदी पार कर रहे थे। मल्लाहकी कन्या मत्स्यगन्धा नाव चला रही थी। मत्स्यगन्धाको देखकर ऋषिका तप छूट गया। वे मोहमें भूल गये, कामाधीन हो गये। मत्स्यगन्धाने कहा—मैं तो एक शूद्र केवटकी कन्या हूँ और आप पवित्र ब्राह्मण हो। आपके लिए यह योग्य नही परन्तु पराशर ऋषि अनुसन्धान भूल गये। उन्होने मत्स्यगन्धाका हाथ पकड़ लिया। मत्स्यगन्धाने फिर कहा—अभी दिनका समय है, लोग हमें देखते हैं। दिवसमें ऐसा कार्य करना शास्त्र द्वारा निषिद्ध है।

पराशर ऋषिने तपोबलके प्रभावसे सूर्यको एक बादलकी ओटमें करके आसपास अन्धकार उतार दिया। पराशर सूर्य ढँक सके परन्तु कामको दबा सके नही। काम ऐसा प्रबल है। कामको जीतना दुष्कर है। जीवनमें अन्तिम श्वास तक कामके ऊपर विश्वास करना नही। काम किस समय दगा करेगा, यह कहा जा सकता नही।

भगवान शंकर माता पार्वतीसे कथा कहते हैं—नारदजीको कोई जरूरत न थी तो भी उन्होंने शीलनिधि राजासे कहा कि तुम्हारी कन्याका हाथ मुझे देखना है।

नारदजी कन्याका हाथ देखने लगे। हाथकी रेखाये देखनेसे विश्वास हुआ कि इस कन्याका विवाह जिस पुरुषके साथ होगा, वह अजर-अमर होगा। ऐसा योग इसकी हस्तरेखामे था। नारदजीको लगा कि अति उत्तम विश्वमोहिनी सुन्दरी मिले और साथ-साथ अजर-असर-पद भी मिले, इससे बढ़कर और क्या हो सकता है? किसी भी रीतिसे यह कन्या मुझे मिले, तो मेरे सुखका पार न रहे।

नारदजीने इस कन्याके साथ विवाह करनेका निश्चय किया परन्तु एक कठिनाई थी। नारदजीको खबर थी कि मेरे इस स्वरूपको देखकर तो कन्या कभी मुझे वरमाला अर्पण करेगी नही। कन्या, सौन्दर्यको देखकर ही विवाह करती है। विश्वमोहिनी मुझको वरे, इसके लिए मुझे अति सुन्दर स्वरूप धारण करना चाहिए। जगतमें अति-सुन्दर तो मेरे नारायण हैं। श्रीहरिका स्वरूप अति सुन्दर है। इसलिए मैं श्रीहरिसे सुन्दरताकी माँग करूँ। आजतक मैंने प्रभुसे कुछ माँगा नहीं। आज मैं परमात्मासे अलौकिक स्वरूपकी माँग करूँगा। भगवानका जैसा सुन्दर-स्वरूप मेरा हो जायगा, जिससे यह राज-कन्या सब राजाओंको छोड़कर मुझको ही वरमाला अर्पण करेगी।

नारदजीने प्रभुसे दिव्य स्वरूपकी माँग करनेका निश्चय किया। फिर मनमें विचारने लगे, अब यदि श्रीहरिको मिलने वैकुण्ठ जाऊँ उतनेमें तो यह स्वयंवर यहाँ कदाचित् समाप्त हो जाय। वैकुण्ठ जाने-आनेमें बहुत समय लग जावेगा, समय बहुत थोड़ा है। मैं भगवानका स्मरण करूँ, जिससे भगवान यहीं प्रगट हो जायें। भगवानको इसी जगह बुला लेना ठीक है।

नारदजीको किसी भी प्रकारसे इस कन्याके साथ लग्न करनी है। इनके मनमें काम जागृत हुआ है। काम मनको अशांत करता है। नारजीको विचार आता है कि मैं भगवानसे कहूँगा कि मुझे इस राज-कन्याके साथ परिणय करना है तो पीछे वे मुझको शिक्षा देने बैठेंगे कि नारद! तू अकेला है, यही ठीक है। इस सब खटपटमें क्यों पड़ता है, लग्न करनेकी इच्छा किसलिए रखता है। तू तो मेरी भक्ति किया कर। सत्य कहता हूँ कि वे भगवान मुझको इसी प्रकार समझायेंगे। इसकी अपेक्षा तो यही ठीक है कि मैं इस सब बातको उनसे कहूँ ही नहीं। यह बात उनसे कहूँगा तो निश्चित रूपसे मनाही करेंगे। इसलिए यह बात मैं प्रभुसे भी गुप्त ही रखूँगा। मैं तो केवल इतना ही कहूँगा कि अपना रूप आप मुझे दो। भगवानके जैसा सुन्दर होनेपर तो राजकन्या मुझे वरण करेगी ही।

नारदजी परमात्माका स्मरण करने लगे। चतुर्भुज नारायण नारदजीके समक्ष प्रगट हुए। नारदजीने परमात्माका वन्दन करके कहा—महाराज! आज तो मैं विशेष प्रयोजनसे तुम्हारा स्मरण करता था। मेरी बहुत ही इच्छा है कि मैं तुम्हारा जैसा सुन्दर बनूँ।

प्रभुने नारदजीसे कहा—भाई! तू मुझसे भी अधिक सुन्दर है। मेरा स्वरूप लेकर तू क्या करेगा।

नारदजी कहते हैं—नहीं, नहीं, मुझे विशेष काम है, अपना सौन्दर्य मुझे दे दीजिए।

भगवानने पूछा—परन्तु तेरी आज ऐसी इच्छा क्यों हुई है?

नारदजीने कहा—महाराज! आप यह सब क्यों पूछ रहे हो? यह सब पूछनेकी कोई आवश्यकता नहीं। मुझे आपका स्वरूप धारण करना है। मेरा कल्याण हो, इसके लिए थोड़े समयके लिए ही मुझे अपना स्वरूप दे दो।

नारदजी मायाके अधीन हो गये हैं। परमात्मा समझ गये कि नारदजीके मनमें कामरूपी रोग जागृत हुआ है। इसलिए यह इस प्रकारकी माँग कर रहे हैं। मुझे इनके रोगकी दवा करनी पड़ेगी।

कुपथ माँगि रुज ब्याकुल रोगी । बैद न देइ सुनहु मुनि जोगी ॥

रोगसे व्याकुल हुआ रोगी वैद्यराजके पास कुपथ्य माँगे तो वैद्य उसे देता नहीं।

प्रभुने कहा—मेरा स्वरूप तुझे मिले, ऐसी तेरी इच्छा ही है तो ठीक है। मेरा स्वरूप मिले और तेरा कल्याण हो, ऐसा मैं करूँगा।

नारदजीने मनमें निश्चय किया कि मेरा कल्याण तो यह राज-कन्या मुझे मिले, इसमे ही है। परन्तु कृपानिधि परमात्मा अच्छी तरह जानते हैं कि नारदजीका कल्याण किसमें है। इसीलिये तो प्रभुने कहा कि मैं तेरा कल्याण हो, ऐसा करूँगा। तुझे हरि-स्वरूपका दान दूँगा।

हरि शब्दके दो अर्थ होते हैं। हरि शब्दका एक अर्थ है विष्णु भगवान और संस्कृत भाषामें हरि शब्दका वानर, ऐसा भी दूसरा अर्थ होता है।

नारदजी तो समझते हैं कि मुझे हरि-स्वरूप देंगे अर्थात् परमात्मा अपना स्वरूप देंगे। इसलिए नारदजी प्रसन्न हो गये। नारदजीने दर्पणमें देखा तो विश्वास हो गया कि मैं परमात्मा जैसा सुन्दर दिखाई देता हूँ।

महापुरुषोने वर्णन किया है कि प्रभुने ऐसी लीला की कि नारदजी जब दर्पणमें अपना स्वरूप देखते हैं तो उनको ऐसा दीखता है कि मैं नारायण जैसा सुन्दर हूँ। नारदजीको अपना स्वरूप विष्णु भगवान जैसा लगता है। अन्य लोगोंको नारदजीका स्वरूप जैसा था, वैसा ही दीखता रहा, जब कि राज-कन्याको नारदजीका स्वरूप बन्दर जैसा दीखने लगा।

परमात्माने ऐसी लीला की है। तीन प्रकारके स्वरूप नारदजीको दिये हैं।

नारदजी दौड़ते गये और स्वयंवर-मण्डपमें जाकर बैठ गये। अनेक देशके राजा लोग महलमें एकत्रित हैं। ऋषि लोग भी वहाँ आए हैं। राजाके भेषमें भगवान नारायण भी वहाँ पधारते है।

शीलनिधि राजाकी अति सुन्दर राज-कन्या विश्वमोहिनी हाथमें जयमाला लेकर स्वयम्वर-मण्डपमें आती है

रुद्रके दो गण वहाँ बैठे हैं। वे सब भेद जानते हैं। उनको नारदजीका स्वरूप बन्दरका दीखता है। वे नारदजीसे कहते हैं—महाराज ! प्रभुने तो तुमको बहुत-ही सुन्दर स्वरूप दिया है, राज-कन्या तो तुमको ही वरण करेगी।

रुद्र-गण तो उपहास करते थे परन्तु नारदजी यह समझ नही पाये। वे तो ऐसा मानते थे कि मैं भगवानके समान रूपवान हूँ। इसलिए ये रुद्र-गण जो कुछ कह रहे

हैं, वह स्वाभाविक ही है । नारदजीको तो विश्वास है कि एक बार राज-कन्या मुझे देखेगी कि तत्काल जयमाला मुझे ही अर्पण करेगी ।

जयमाला मुझको ही मिलनी है । नारदजी राज-कन्याका ही चिन्तन करते हैं । नारदजीके मनमें इतना मोह हो गया है ।

राज-कन्या जब सखियोंके साथ नारदजीके पास आयी, तो उसे नारदजीका स्वरूप बन्दरका दिखाई पड़ा । राज-कन्याको बहुत बुरा लगा कि यह बन्दर स्वयम्वरमें कहाँसे आ गया । राज-कन्याने मुख फेर लिया । नारदजी अकुलाये, ऊँचे-नीचे हुए । कण्ठसे खाँसनेकी ध्वनि करके आकर्षण किया । उनको ऐसा लग रहा था कि एक बार राज-कन्या मुझे देख ले तो ठीक है परन्तु राज-कन्याने एक बार भी उनकी तरफ देखा नहीं । उसको विश्वास हो गया कि यह तो वानर है ।

नारदजी अतिशय व्याकुल हो गये कि राज-कन्याने मेरी तरफ देखा भी नहीं, कामान्ध होकर नारदजी अनुसन्धान भूलकर बहुत चंचल बने । नारदजीकी चंचलताका बहुत वर्णन किया गया है । राजकन्याने राजाके भेषमें पधारे परमात्माको जयमाला अर्पण कर दी ।

नारदजीको बहुत दुःख हुआ । वे अत्यन्त व्याकुल हुए, तब वहाँ बैठे हुए रुद्र-गण हँसने लगे और उन्होंने कहा—अपना मुँह जरा दर्पणमें देख आओ । नारदजी, वहाँसे उठकर चले गये । जलमें प्रतिबिम्ब देखा, तो दिखायी पड़ा कि मुझे तो वानरका स्वरूप मिला है । नारदजी बहुत दुःखी होकर रोने लगे कि प्रभुने मुझे वानरका स्वरूप दिया ।

नारदजीका कल्याण करनेके लिए प्रभुने यह लीला की थी ।

मुनिहित कारण कृपानिधाना । दीन्ह कुरूप न जाय बखाना ॥

नारदजीने स्नान किया तो उनका वानर-स्वरूप अदृश्य हो गया । नारदजीको अपना असली स्वरूप प्राप्त हो गया परन्तु इनको प्रभुपर बहुत क्रोध आया कि मेरा बड़ा अपमान कराया । मुझसे कहा था कि तेरा कल्याण होगा, ऐसा करूँगा और मुझे दिया वानरका स्वरूप । अबकी बार मिलने दो, उनको भी थोड़ा बता दूँगा । जगतमें मेरी हँसी करायी, मुझे मूर्ख बनाया, मैं सब देखूंगा ।

नारदजीकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं, होठ फड़कने लगे । अंग-प्रत्यंगमें रोष व्याप्त हो गया । परमात्माको शाप देनेको तैयार हो गये । परमात्मा तो कौतुक करते ही थे । जिस रास्तेसे नारदजी जा रहे थे, उस रास्तेसे ही परमात्मा सामनेसे निकले । उनके साथमें एक ओर लक्ष्मीजी थीं और दूसरी ओर विश्वमोहिनी थी । देखकर

नारदजीकी आँखें चौंधिया गयीं। भगवानने नारदजीको देखा और कहा कि महाराज ! आज तुम चंचल क्यों दीख रहे हो ? आज क्यों उदास हो रहे हो ? नारदजी खड़े हो गये। उनके क्रोधकी सीमा बढ़ती गयी। होश-हवास भूलकर अति क्रोधमें नारदजीने भगवानसे कहा—

पर संपदा सकहु नहिं देखी। तुम्हरे इरिषा कपट बिसेषी॥
मथत सिंधु रुद्रहि बौरायहु। सुरन्ह प्रेरि बिषपान करायहु॥
असुर सुरा बिष संकरहिं, आपु रमा मनि चारु।
स्वारथ साधक कुटिल तुम्ह, सदा कपट ब्यवहारु॥
परम स्वतन्त्र न सिर पर कोई। भावइ मनहि करहु तुम्ह सोई॥

× × ×

करम सुभासुभ तुम्हहिं न बाधा। अब लगि तुम्हहि न काहूँ साधा॥
भले भवन अब बायन दीन्हा। पावहुगे फल आपन कीन्हा॥
बंचेहु मोहि जवनि धरि देहा। सोइ तनु धरहु श्राप मम एहा॥
कपि आकृति तुम्ह कीन्हि हमारी। करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी॥
मम अपकार कीन्ह तुम्ह भारी। नारि बिरहँ तुम्ह होब दुखारी॥

तुम किसीकी संपत्ति देख सकते नहीं। तुम बहुत स्वार्थी हो, कपटी हो। समुद्र-मन्थन हुआ, तब शंकर भगवानको जहर पिलाकर बावला कर दिया। असुरोंको मदिरा देकर उनको पागल किया। कौस्तुभ मणि और लक्ष्मीजीको स्वयंने ग्रहण कर लिया। तुम स्वतन्त्र हो, माथेपर कोई है नही, इसलिये जो मनमें आवे, वही करते हो। आजतक तुमको ऐसा कोई मिला नहीं। आज मैं तुमको शाप देता हूँ। आज तुम मेरे हाथमें आए हो, अब मैं तुमको सजा दूँगा। तुम ऐसा मानते हो कि तुमको सजा देनेवाला कोई है ही नही। तुम समझते क्या हो ? मुझे वानरकी आकृति दी और तुमने राजाका स्वरूप धारणकर, जो कन्या मुझे देखती थी, उसे उठाकर ले गये। मेरा तुमको शाप है—तुम फिर राजा बनोगे। जो स्त्री मुझे देखती थी, उसे तुम उठाकर ले गये। उसी प्रकार तुम्हारी स्त्रीको भी कोई उठाकर ले जाएगा। आज स्त्रीके वियोगमें तुम मुझे रुला रहे हो, उसी प्रकार तुम भी स्त्री-वियोगमें रोओगे। जिस प्रकार तुमने आज मुझे दुखी किया है, उसी प्रकार तुम दुखी होओगे। याद रखो, मुझे तुमने वानर-स्वरूप दिया है, तुमको भी वानरोंकी ही सहायता लेनी पड़ेगी। तुम बन्दरोंके साथ मित्रता करोगे। वानर तुम्हारा साथ देंगे।

अनेक प्रकारका शाप नारदजीने दिया, और उसी समय परमात्माने अपनी मायाका निवारण किया। प्रभुने ऐसी लीला की कि वहाँ विश्वमोहिनी नहीं, राजमहल नहीं, शीलनिधि राजा नहीं, और सुयोजन नगरी भी नहीं। अकेले परमात्मा हैं और नारदजी हैं। प्रभुने जैसे ही मायाका आकर्षण किया कि नारदजी अपने स्वरूपमें आ गये। नारदजीको विश्वास हुआ कि यह तो प्रभुकी माया ही मैंने देखी थी। मेरा मोह दूर करनेके लिये प्रभुने यह सब लीला की। मैं कैसा कामान्ध हो गया। मेरी बुद्धि बिगड़ गयी। मैं कर्कश वाणीसे अनुचित शब्द बोल पड़ा। मैंने अपने भगवानकी निन्दा की। मैंने प्रभुको शाप दे डाला। मैंने आज यह किया क्या? मैं महापापी हूँ। मेरा अब पतन हो जाएगा।

नारदजी अत्यन्त ही व्याकुल हुए। नारायणके चरणोंमें वन्दन करके बोले—मुझे सजा दो। मेरे पापोंका विनाश हो जाय, ऐसा कोई सत्कर्म मुझे बताओ।

प्रभुने कहा—तुमने शिवजीकी आज्ञाको भंग किया है इसलिये तुम्हारी यह दुर्दशा हुई है, इसीसे तुम्हारी बुद्धि बिगड़ी है। तुमने शिवजीका अपराध किया है। तुम भगवान शंकरजीके नामका जप करो। शिवजीकी पूजा करो। पंचाक्षर मंत्रका जप करोगे और शिवजीकी आराधना करोगे, तभी तुम्हारे पापका विनाश होगा।

जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी। सो न पाव मुनि भगति हमारी॥

भगवान शंकरजी जिसके ऊपर कृपा नहीं करते उसको परमात्माका ज्ञान-भक्ति कभी प्राप्त होती नहीं। भगवान शिव समस्त वैष्णवोंके आचार्य हैं। जगतमें जितनी भक्ति-सम्प्रदाय हैं, इन सबके आदिगुरु भगवान शंकर हैं। शिव-कृपासे ही श्रीकृष्ण-भक्ति मिलती है। शिव-कृपासे ही श्रीराम-भक्ति मिलती है। भगवान शंकर कृपा करें तो ही ज्ञानमें स्थिरता आती है।

भगवान नारदजीसे कहते हैं—तुम शिवजीके नामका जप करो। भगवान शंकर मुझको अतिशय प्रिय हैं।

कोउ नहिं शिव समान प्रिय मोरें।

जगतमें मुझे शिवके समान कोई प्यारा नहीं। भगवान शंकर मेरी आत्मा है।

नारदजीने कहा—महाराज! आपकी आज्ञा मैं शिरोधार्य करता हूँ परन्तु आप एक कृपा करो। मेरी इच्छा है कि मैंने आपको जो शाप दे डाला है वह झूठा हो जावे।

परमात्माने स्मित-हास्य करके कहा—नारदजी! तुम्हारा वचन मिथ्या होगा नहीं, तुम्हारा शाप सफल होगा। तुम्हारा शाप मैं माथे चढ़ाता हूँ। मैं भी ऐसी लीला करूँगा कि वानरोंकी मदद लूँगा।

नारदजीको आश्वासन देकर परमात्मा अन्तर्धान हो गये और नारदजी पंचाक्षर शिवमंत्रका जप करते हुए भगवान शंकरकी आराधना करने लगे।

प्रत्येक कल्पमें श्रीराम-श्रीकृष्ण प्रगट होते हैं और परमात्माके अवतारके कारण कुछ अलग-अलग बनते हैं। परमात्माकी लीला अनन्त है। परमात्माके गुण भी अनन्त हैं। उनका अन्त आता नहीं। भगवान शंकर, पार्वती माताको सावधान करते हैं कि राम-जन्म क्यों हुआ, उसका कारण कोई कह सकता नहीं। परमात्माके प्राकट्यके अनेक कारण हैं।

एक कारण यह भी है कि पूर्व जन्ममें राजा दशरथको प्रभुका वरदान मिला था। दशरथ महाराज पूर्व जन्ममें ब्राह्मण थे। भगवानको एक हजार तुलसीदल अर्पण करना ब्राह्मणका रोजका नियम था। भगवानका मन्दिर गाँवके बाहर थोड़ी दूरपर था। ब्राह्मण वृद्ध हुआ, पिच्चासी वर्षकी अवस्था हो गयी फिर भी किसी दिन नियम चूका नहीं था। ईश्वरकी लीला! उस वृद्ध ब्राह्मणको एक दिन बुखार चढ़ आया। मन्दिर जानेमें असमर्थ था। रोजका नियम टूटे, यह ब्राह्मणसे कैसे हो सकता था? ब्राह्मणकी बहुत भारी निष्ठा थी। उस ब्राह्मणने बुखारसे कहा—मैं अपने ठाकुरजीकी सेवा कर आऊँ, पीछे तुम आ जाना। तुम्हारे दुःखसे बैठनेको तैयार हूँ परन्तु मेरी सेवाका क्रम न टूटे, इसलिए इस समय तू चला जा पीछे आ जाना।

ब्राह्मणने संकल्प किया कि तत्क्षण बुखार उतर गया। निष्ठा क्या नहीं कर सकती। ब्राह्मण मन्दिरमें गया। वहाँ किसी स्त्रीके रोनेकी आवाज कानमें पड़ी। देखा तो एक पिशाचिनी रो रही थी। ब्राह्मणने रोनेका कारण पूछा। पिशाचिनीने कहा—पूर्व जन्ममें मैंने बहुत दुराचार किया था। मैंने पतिको खूब त्रास दिया था, इससे मेरी दुर्गति हुई है। पिशाचयोनिमें मैं आयी हूँ। आप मेरा उद्धार करो।

ब्राह्मणको दया आ गयी। नियमानुसार उसने विष्णु सहस्रनामका पाठ किया, तुलसीदल प्रभुको अर्पण किया और पीछे प्रभुसे प्रार्थना की—हे दीनदयाल! हे कृपानिधान! हे प्रभो! दया करो। यह पापी जीव दुःख भोगता है। मेरी आपसे प्रार्थना है कि इस जीवका उद्धार हो जाय। मैं अपना सारा पुण्य इसके निमित्त कृष्णार्पण करता हूँ।

प्रभु प्रसन्न हुए। भगवानने ब्राह्मणसे कहा—तुमने पुण्य एक अन्य जीवके उद्धारके निमित्त दिया, इससे वह अनेक गुना हो गया है। मेरा तुमको वरदान है। दूसरे जन्ममें तुम अयोध्याके राजा होगे। यह पिशाचिनी तुम्हारी पत्नी होगी और मैं तुम्हारे यहाँ पुत्र-रूपसे आऊँगा।

ब्राह्मणने वहीं शरीरका त्याग कर दिया। दूसरे जन्ममें वह दशरथ महाराज हुए। पिशाचिनी कौशल्या हुई और प्रभु श्रीरामरूपमें इनकी गोदीमें प्रगट हुए।

माता पार्वतीको राम-कथा सुननेमें अतिशय प्रीति है। भगवान शंकर पार्वतीको राम-कथा सुनाते हैं। सूर्यवंशमें राजा दशरथका जन्म हुआ और वे अयोध्याजीमें राज्य करने लगे। इधर रावण-कुम्भकर्णका त्रास अतिशय बढ़ गया। रावणने बहुत तपश्चर्या की थी। अपनी तपस्यासे उसने ब्रह्माजीको प्रसन्न कर लिया था। ब्रह्माजीने वरदान माँगनेके लिये कहा तो रावणने माँगा—

हम काहू के मरहिं न मारे।

हम किसीके द्वारा मारे न जा सकें, ऐसा वरदान दो।

ब्रह्माजीने कहा—जो जन्मता है उसको मरना तो पड़ता ही है। तू मरनेकी कोई शर्त रख। रावणने विचार किया कि मुझे मार सकें तो देवदानव, यक्ष, गन्धर्व, नाग इत्यादिमें-से कोई मार सकता है दूसरे किसीकी तो शक्ति है नहीं। नर-वानर तो मेरे आहार हैं। इनकी तरफसे तो मुझे कोई डर है नहीं। इसलिये इन्हींकी शर्त रखूं। अन्य कोई शर्त न रखना ठीक रहेगा और ब्रह्माजीको सन्तोष हो जाएगा। इसलिये उसने ब्रह्माजीसे कहा—

वानर मनुज जाति दुइ बारें।

नर और वानर छोड़कर अन्य कोई मुझे मार न सके, ऐसा वरदान दो। ब्रह्माजी-ने कहा 'तथास्तु'। ब्रह्माजीका वरदान पाकर रावण निर्भय बन गया। उसको प्रतीत हो गया कि त्रिभुवनमें ऐसा कोई नहीं रहा जो मुझे मार सके। रावणका अत्याचार अतिशय बढ़ गया। त्रास और अन्यायको इसने मुक्त रूपसे छूट दे दी। रावण शब्दका अर्थ ही है कि जो रुलाता है।

रावयति द्रावयति सर्वजनान् यः सः रावणः

जो रुलाता है उसीको रावण कहते हैं।

जाके डर सुर असुर डराहीं। निशि न नींद दिन अन्न न खाहीं॥

रावणका जन्म हुआ था ब्राह्मण-कुलमें। रावणने तपश्चर्या भी खूब की थी। फिर भी रावणकी गणना राक्षसोंमें हुई। राक्षस—असुर किसको कहते हैं, इसका वर्णन भगवानने गीताजीमें बहुत सुन्दर किया है।

काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः॥

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः ।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थ सञ्चयान् ॥
इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् ।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ॥
असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि ।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी ॥
आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योस्ति सदृशो मया ।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः ॥

× × ×

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः ।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ॥

ये सब रावण हैं ।

तपके प्रतापसे रावणकी शक्ति बहुत बढ़ गयी परन्तु शक्तिका उपयोग इसने लोगोंको रुलानेमें और स्वयके भोग-विलासमे किया । रावण, कामका स्वरूप है । रावणका ऐसा आग्रह है कि मैं सुख भोगूंगा । रावण, संपत्तिका संचय अन्यायसे, अत्याचारसे करता है और शक्तिका उपयोग अधर्ममे करता है, परपीड़नके लिये करता है, अपने सुखके लिये करता है, शरीर, और इन्द्रियोंके सुख भोगनेमें करता है । रावण, पराये धन और परायी स्त्रीके पीछे पड़ा हुआ है ।

रावणके दस माथे हैं । एक दिन मनमें विचार आया कि यह दस माथेवाला रावण पलंगपर सोता होगा, उस समय उसकी क्या दशा होती होगी ? पलभर भी सोता होगा तो एक माथेके ऊपर दूसरा माथा, दूसरेके ऊपर तीसरा, तीसरेके ऊपर चौथा, इस प्रकार दस माथोंका हो जाता होगा अरे ! दस माथोंवाला अर्थात् जिसकी दसों इन्द्रियोंमें काम भरा है वह ! रावण कामका प्रतीक है । मूर्तिमन्त काम है । एक-एक इन्द्रियके सुखमें वह फँसा हुआ है । प्रत्येक इन्द्रियका सुख जिसको बहुत अच्छा लगता है वह रावण जैसा है ।

यह जीव अनेक जन्मोंसे इन्द्रियोंका सुख भोगता आया है । भोगसे इसको शान्ति मिली नही । शान्ति तो त्यागसे मिलती है । लौकिक सुख, सच्चा सुख है, ऐसी कल्पना बुद्धिमें आनेसे रागद्वेष बढ़ा । वैराग्य आवे तो रागद्वेषका अन्त हो परन्तु शरीरका सुख और इन्द्रियोंका सुख ही सच्चा सुख है, ऐसा लोग मानने लगे । इससे वैराग्यका अभाव हुआ, ज्ञानका अभाव हुआ और रागद्वेष बढ़ गया ।

रावण कैसा था, यह एक प्रसंगसे समझ सकोगे। भागवतके दशम स्कन्धमें द्वैपायिनी देवीका उल्लेख आता है। इन द्वैपायिनी देवीकी स्थापना किस प्रकारसे हुई, जानते हो ?

कुबेर भण्डारी रोज शिवजीका पूजन करते थे। एक समय कुबेरने शिवजीसे पूछा कि मैं तुम्हारी क्या सेवा करूँ ? शिवजीने कहा—मैं किसीकी सेवा लेता नही। जो दूसरोंकी सेवा ले, वह वैष्णव नही। दूसरोंको सेवा दे वह वैष्णव। मुझे कोई सेवाकी आवश्यकता नही परन्तु पार्वतीजीको ऐसा लगा कि वृक्षके नीचे रहना पड़ता है, इसलिये एक मकान हो तो ठीक है। माताजीने कुबेरको अपनी इच्छा बताई।

कुबेरने सोनेका महल बनाया। महल बहुत सुन्दर बना था। पार्वतीजीने शिवजीसे कहा—चलो, हमें इस महलमें रहना चाहिए। नये मकानमें रहनेसे पहले वास्तु-पूजन करना पड़ता है। वह वास्तु-पूजा करानेके लिए रावणको बुलाया। शिवजी यजमान और रावण पुरोहित। पूजा-विधिके पश्चात् पुरोहितको दक्षिणा तो देनी पड़ती है। शिवजीने रावणसे कहा—दक्षिणा, तुझे जो माँगना हो. वह माँग ले।

रावणने सुवर्ण-महल ही माँग लिया। शिवजी तो अति उदार हैं। इनका जैसा उदार कोई हुआ नही। शिवजीने रावणको दानमें महल दे दिया। सोनेकी लंका हाथमें आयी, इससे रावणकी बुद्धि और बिगड़ गयी। उसने शिवजीसे कहा—महल तो दिया, परन्तु महलमें रहनेवाली तो दो। यह पार्वती मुझे दो।

शिवजीने कहा—तुझे जरूरत हो तो ले जा। शिवजीने तो रावणको पार्वतीजी भी दे दी।

रावण पार्वतीजीको कन्धेपर बैठाकर ले चला। पार्वतीजीपर बड़ा संकट आ पड़ा। उनको रावणके साथ जाना नहीं था, परन्तु पतिकी आज्ञा हुई इसलिये जाना पड़ा। उन्होंने परमात्माका स्मरण किया। परमात्मा ब्राह्मणका रूप रखकर मार्गमें आए। उन्होंने रावणसे पूछा—यह किसको ले जा रहे हो ? रावणने कहा—शंकर भगवानने मुझे सोनेकी लंका दी और पार्वती भी दे दी है।

परमात्माने कहा—

प्रतारितः शिवेन त्वं दत्वा दुर्गान्तु कृत्रिमाम्।
पाताले मयगेहे सा गोपिताऽस्ति शिवेन हि॥

तू कैसा भोला है। शंकर तो अवश्य तुझे पार्वती दे देंगे ? ये पार्वती नही, पार्वती तो उन्होंने पातालमें छिपा रखी हैं। शिवजीने तुझे धोखा दिया है। यह तो तुझे

पार्वतीकी दासी देकर समझा दिया है। पार्वतीके श्रीअंगमे-से तो कमलकी दिव्य सुगन्ध निकलती है। इनके शरीरमें-से क्या ऐसी सुगन्ध निकल रही है ?

रावण शंकामें पड़ गया। इतनेमे ही पार्वतीजीने शरीरमें-से दुर्गन्ध छोड़ी। रावणको विश्वास हो गया कि यह पार्वती नही हैं। रावण वहीं माताजीको छोड़कर वहाँसे चला गया। प्रभुने माताजीकी स्थापना की। वे ही द्वैपायिनी देवी हैं।

जो परधन और परस्त्रीमें जी लुभाता है, वही रावण है। रावणने अत्यन्त अनीति कर डाली। रावणके राज्यमे—

बाढ़े खल बहु चोर जुआरा। जे लंपट परधन परदारा॥
मानहिं मातु पिता नहिं देवा। साधुन्ह सन करवावहिं सेवा॥

सब त्राहि-त्राहि पुकारने लगे। रावणने देवता और ऋषियोको भी अतिशय त्रास दिया। देवता भी बहुत दु:खी हो गये। देवताओंने परमात्मासे प्रार्थना की कि पृथ्वीके ऊपर भार बहुत बढ़ गया है। धर्म, निर्मूल होकर बैठा है। आप कृपा करके अब अवतार धारण करो।

प्रभुने देवताओंको वरदान दिया—

अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। लेहउँ दिनकर बंस उदारा॥
× × ×
हरिहउँ सकल भूमि गरुआई। निर्भय होहु देव समुदाई॥

मुझे अब सूर्यवंशमें प्रगट होना है। मैं अनेक प्रकारकी लीला करूँगा और पृथ्वीका भार उतारूँगा। तुम चिन्ता न करो।

भगवानके इस वरदानसे देवता अतिशय हर्षको प्राप्त हुए। पीछे तो ब्रह्माजीकी आज्ञासे देवताओने महाबलवान वानरोंका रूप धारण किया और नारदजीके शापको सत्य करनेके लिए, भगवान अवतार धारण करें और हम उनके सहायक हों, ऐसा सोचकर पृथ्वीके ऊपर जहाँ-तहाँ रहनेको चले गये।

देवाश्च सर्वे हरिरूपधारिणः
स्थिताः सहायार्थमितस्ततो हरेः।
महाबलाः पर्वतवृक्षयोधिनः
प्रतीक्षमाणा भगवन्तमीश्वरम्॥

परमात्मा सूर्यवंशमें प्रगट हों, उसकी प्रतीक्षा सब करने लगे।

नेदं यशो रघुपतेः सुरयाच्ञयाऽऽत्त

लीलातनोरधिकसाम्यविमुक्तधाम्नः ।

रक्षोवधो जलधिबन्धनमस्त्रपूगैः

किं तस्य शत्रुहनने कपयः सहायाः ॥

यस्यामलं नृपसदस्सु यशोऽधुनापि

गायन्त्यघघ्नमृषयो दिगिभेन्द्रपट्टम् ।

तं नाकपालवसुपालकिरीटजुष्ट-

पादाम्बुजं रघुपतिं शरणं प्रपद्ये ॥

यः पृथिवीभरवारणाय दिविजैः संप्रार्थितश्चिन्मयः
संजातः पृथिवीतले रविकुले मायामनुष्योऽव्ययः ।
निश्चक्रं हतराक्षसः पुनरगाद् ब्रह्मत्वमाद्यं स्थिरां
कीर्तिं पापहरां विधाय जगतां तं जानकीशं भजे ॥

(२६)

सूर्यवंश

परमात्मा श्रीरामका प्राकट्य सूर्यवंशमें हुआ है ।

प्रतापी सूर्यवंशके आदिप्रवर्तक वैवस्वत मनु हैं । आदिनारायण परमात्माकी नाभिसे कमलकी उत्पत्ति हुई । कमलमें-से ब्रह्माजीकी उत्पत्ति हुई । ब्रह्माजीके पुत्र हुए, मरीचि । मरीचिके कश्यप, कश्यपके सूर्य और सूर्यके श्राद्धदेव नामके पुत्र हुए । ये श्राद्ध-देव ही वैवस्वत मनु हैं । सूर्यवंश उनसे ही प्रारम्भ हुआ है । मनुके ज्येष्ठ पुत्र इक्ष्वाकुने सरयूजीके किनारे अयोध्या नगरी बसाई । तबसे इक्ष्वाकुवंशके राजाओंकी राजगद्दी अयोध्याजीमें ही स्थित रही ।

इक्ष्वाकुके पुत्र ककुत्स्थ भी महापराक्रमी राजा थे । एक समय देवता और दैत्योंके बीच युद्ध हुआ । देवता हार गये । उन्होंने ककुत्स्थसे सहायता माँगी । ककुत्स्थने कहा—इन्द्र मेरा वाहन बने तो मैं दैत्योके साथ युद्ध करने आऊँ । गरज सामने आ गयी । इसलिए इन्द्र राजाको सहमति देनी पड़ी । इन्द्रने बैलका रूप धारणकर राजाको अपने कन्धेपर बैठाया । बैलको संस्कृतमें ककुद कहते हैं । ककुदके कन्धेके ऊपर बैठे, इससे उनका नाम पड़ा ककुत्स्थ ।

ककुदि तिष्ठतीति ककुत्स्थः ।

ककुत्स्थने दैत्योंको हराया । ककुत्स्थके वंशज काकुत्स्थ कहलाये । ककुत्स्थसे इन्द्रवाह, इन्द्रवाहसे अनेना, अनेनासे विश्वरन्धि, विश्वरन्धिसे चन्द्र और चन्द्रसे युवनाश्व नामके प्रतापी पुत्र हुए । युवनाश्वके शावसी, शावसीके बृहदश्व, बृहदश्वके कुवलयाश्व, कुवलयाश्वके दृढाश्व, दृढाश्वके हर्यश्व, हर्यश्वके निकुम्भ, निकुम्भके बर्हणाश्व, बर्हणाश्वके कृताश्व, कृताश्वके सेनजित, सेनजितके युवनाश्व और युवनाश्वके मान्धाता नामके महा-पराक्रमी पुत्र हुए । मान्धाता असदस्यु नामसे भी विख्यात हुए ।

मान्धाताने सागरों सहित सात द्वीपोंको जीता था और पृथ्वीपर एकचक्र राज्य किया था । मान्धाताकी सप्तम पीढ़ीमे सत्यव्रत हुए । ये सत्यव्रत, त्रिशंकु नामसे

प्रसिद्ध हैं। वे सत्यवादी, उदार, धर्मनिष्ठ और जितेन्द्रिय थे। इन्होंने अनेक प्रकारके यज्ञ किए और प्रजाका धर्मसे पालन किया। उनकी एक उत्तम यज्ञ करनेकी इच्छा हुई, जिससे महायज्ञका पुण्य बढ़नेसे मनुष्य सदेह स्वर्गमें जा सके।

उन्होंने कुलगुरु वशिष्ठजीसे यह महायज्ञ करानेकी विनती की परन्तु वशिष्ठजीने मना कर दिया। तब राजा वशिष्ठजीके सौ पुत्रोके पास गये और उनसे यज्ञ करवानेको कहा। अपने पिताके वचनोंका राजा द्वारा उल्लंघन किया जानकर और जिस यज्ञको करानेका वशिष्ठजीने निषेध कर दिया था उसी यज्ञको उनके पुत्रोंसे करवानेकी दुर्बुद्धि राजाको प्राप्त हुई देखकर वशिष्ठजीके पुत्रोंने क्रोधित होकर, राजाको चाण्डाल-स्वरूपकी प्राप्तिका शाप दे दिया। राजाका स्वरूप चाण्डालका हो गया। राजा अतिशय दुःखी हुआ।

अन्तमें वह विश्वामित्र ऋषिके पास गया और उनसे कहा—हे महात्मन्! मेरा समस्त पुरुषार्थ भाग्यसे समाप्त हो गया है और मैं अत्यन्त पीड़ित हो गया हूँ। इससे मुझे ऐसा निश्चय होता है कि दैव ही श्रेष्ठ है और पुरुषार्थ तो निष्फल है।

दैवमेव परं मन्ये पौरुषं तु निरर्थकम।
दैवेनाक्रम्यते सर्वं दैवं हि परमा गतिः॥

दैव प्राणीमात्रका पराभव करता है। दैव ही अति बलवान है। दैवके आगे पुरुषार्थकी कुछ भी चलती नहीं। इसलिये मैं आपकी शरण आया हूँ।

विश्वामित्रजी तो बड़े पुरुषार्थी थे। पुरुषार्थसे सब कुछ हो सकता है, ऐसा मानते थे। जन्मसे क्षत्रिय होनेपर भी अपने पुरुषार्थसे ही उन्होंने ब्रह्मर्षिका पद प्राप्त किया था। विश्वामित्रजीने राजाको सदेह स्वर्ग भेज देनेका आश्वासन दिया। उन्होंने इसके लिए यज्ञकी तैयारी प्रारम्भ की। समस्त ऋषियोंको यज्ञका निमन्त्रण भेजा। सब आमन्त्रण स्वीकार करके पधारे। परन्तु वशिष्ठजीके पुत्रोंने निमन्त्रण स्वीकार नहीं किया और विश्वा-मित्रजीकी निन्दा की। इससे क्रोधित होकर विश्वामित्रजीने वशिष्ठजीके सौ पुत्रोंको जलाकर भस्म कर दिया।

विश्वामित्रने त्रिशंकुसे यज्ञ आरम्भ कराया। स्वयंने याजक-पद स्वीकार किया। मंत्र-शास्त्रमें कुशल अन्य ऋषियोंने ऋत्विज-पद अंगीकार किया। महातपस्वी विश्वामित्रने हविर्भाग लेनेके लिए देवताओंका आवाहन-किया परन्तु जब देवता भाग लेने नहीं आए तो विश्वामित्रजी अत्यन्त क्रोधित हुए। उन्होंने अपने तपोबलसे त्रिशंकुको आकाश-गति प्राप्त कराकर उसे सदेह स्वर्गमें भेजा परन्तु इन्द्रने नाराज होकर उसे औंधे मुँह

पृथ्वीके ऊपर वापिस भेजनेको स्वर्गसे धकेल दिया । तब तो विश्वामित्रजीको अत्यन्त क्रोध आया । उन्होंने, अपने तपोबलके प्रभावसे एक नवीन स्वर्गकी रचना की और त्रिशंकुको वहाँ स्थापित किया । अन्तमें सब देवताओंने उसमें सहमति दी ।

तपोबल क्या नही कर सकता है ?

तपबल रचइ प्रपंचु विधाता । तपबल बिष्नु सकल जग त्राता ॥
तपबल संभु करहिं संघारा । तपबल सेषु धरइ महिभारा ॥
तप अधार सब सृष्टि भवानी । करहि जाइ तपु अस जियँ जानी ॥

सूर्यवंशमें उसके बाद त्रिशंकुके अति प्रतापवान पुत्र राजा हरिश्चन्द्र हुए । हरिश्चन्द्र तथा उनकी पत्नी तारामतीका चरित्र अति प्रसिद्ध है । हरिश्चन्द्र राजाने सत्य-पालनके लिए सर्वस्वका बलिदान कर दिया था । हरिश्चन्द्रके पुत्र रोहित और रोहितकी आठवी पीढ़ीमे सगर हुए । सगर महान् चक्रवर्ती सम्राट् थे । उनके दो रानियाँ थी । उनकी ज्येष्ठ रानीसे असमंजस नामके पुत्र हुए और कनिष्ठ रानीसे साठ हजार पुत्र हुए । सगर राजाने अश्वमेध यज्ञ किया । यज्ञका घोड़ा इन्द्र चुरा ले गया । इन्द्र घोडेको पातालमें कपिलदेवके आश्रममें छोड़ आया । सगरके पुत्र घोड़ेको ढूंढ़ते हुए कपिलदेवके आश्रममें पहुँचे । कपिलदेव ध्यानमे बैठे थे । समीप ही घोड़ा था । इससे सगर-पुत्रोने कपिलदेव ही चोर हैं, ऐसा मान लिया और उनको मारनेको तैयार हो गये । तब कपिलदेवके आंख खोलते ही सब सगर-पुत्र जलकर भस्म हो गये ।

बहुत अधिक समय बीतनेपर भी सगर-पुत्र वापिस नही आए, तब सगरके पौत्र और असमंजसके पुत्र अंशुमान, अपने पूर्वजोकी तथा यज्ञके घोड़ोंकी खोजमे निकले । कपिलदेवके आश्रममें उनको यज्ञका घोड़ा तो मिल गया परन्तु अपने पूर्वजोको जलकर भस्म हुआ देखकर वे अति दु.खी हुए । सगरके पुत्रोके उद्धारके लिए स्वर्गमें-से गंगाजीको उतारकर लानेकी उनको सलाह मिली । गंगाजी पधारें तो ही सगर-पुत्रोंको मुक्ति मिल सकती थी ।

भस्मराशीकृतानेतान् प्लावयेल्लोकपावनी ।
तथा क्लिन्नमिदं भस्म गङ्गया लोककान्तया ।
षष्टिं पुत्रसहस्राणि स्वर्गलोकं गमिष्यति ॥

प्राणियोमें ज्ञानका प्रकाश करनेकी साधनरूपा और उनको पवित्र करनेवाली गंगा, जो स्वर्गमे बहती हैं, वे यदि यहाँ आकर भस्मकी ढेरी होकर पड़े हुए इन सगर पुत्रों-भस्मको बहावें तो इनकी सद्गति हो जाएगी ।

अंशुमानने गंगाजीको स्वर्गमें-से उतारकर लानेके लिये उग्र तपश्चर्या की, परन्तु उनको गंगाजीका दर्शन नहीं हुआ। उनकी मृत्युके पश्चात् उनके पुत्र दिलीपने भी उसी कारणसे तपस्या की, उनको भी गंगाजीका दर्शन नहीं हुआ। उसके पश्चात् दिलीपके पुत्र भगीरथने तप किया। तीन पीढ़ीके तपसे गंगाजी प्रगट हुईं। गंगाजीने भगीरथसे कहा—मेरा वेग पृथ्वीसे सहन होगा नहीं। मुझे सहन कर सके, ऐसा शक्तिशाली कोई आवे तो मैं नीचे उतरूँ।

भगीरथने तप-आचरण करके शिवजीको प्रसन्न किया। शिवजीने गंगाजीको अपनी जटाओंमें धारण किया।

सा तस्मिन् पतिता पुण्या पुण्ये रुद्रस्य मूर्धनि।

परन्तु शिवजीकी जटाओंमें-से गंगाजीको बाहर आनेके लिये रास्ता मिला नहीं। भगीरथने शिवजीसे प्रार्थना की। शिवजीने गंगाजीको बाहर निकलनेको मार्ग दिया। गंगाजी प्रवाहित होती हुई पातालमें पहुँचीं। सगर-पुत्रोंकी भस्म हुई ढेरी मोटी हो गयी थी। गंगाजीका स्पर्श हुआ, वैसे ही मिट्टीमें-से दिव्य पुरुष खड़े हो गये। सगर राजाके पुत्रोंको सद्गति प्राप्त हुई।

मरनेसे पहले जो गंगाजीमें स्नान करता है उसे सद्गति मिलती है। स्नान, सत्कर्म करनेके लिये है। सत्कर्म बिना सद्गति मिलती नहीं। शिवजी गंगाजीको मस्तकमें धारण करते हैं, इससे उनका नाम पड़ा है 'गंगाधर'। जो माथेपर ज्ञान-गंगा रखता है, वह जीव शिवस्वरूप होता है। शिवजी श्मशानमें विराजते है। श्मशानमें भूत-प्रेत आते हैं। फिर भी शिवजीकी शान्तिका भंग होता नहीं। वे आनन्दस्वरूप हैं।

सत्यम् शिवम् सुन्दरम्।

ज्ञान-गंगाको मस्तकमें रखनेवाले जीव आनन्दस्वरूप बनते हैं।

महापराक्रमी भगीरथकी चौदहवी पीढीमें खट्वाङ्ग हुए। इन खट्वाङ्ग राजाने एक ही मुहूर्तमें स्वयंका कल्याण साध लिया। एक बार खट्वाङ्ग राजाने देवताओंकी मदद की और दैत्योंको हराया। इससे प्रसन्न होकर देवताओंने राजासे वरदान मांगनेको कहा। राजाने विचार किया कि जिन लोगोंको मेरी सहायताकी जरूरत पड़ी, वे लोग मुझे क्या वरदान देंगे? इसलिए उन्होंने देवताओंसे कहा—मुझे कोई वरदान चाहिए नहीं। मुझे इतना बताओ कि मेरी आयुष्य कितनी बाकी है? देवताओंने कहा कि तुम्हारी आयुष्यका एक प्रहर अभी बाकी है। एक प्रहर अर्थात् अड़तालीस मिनट। यह सुनकर राजा खट्वाङ्गने सर्वस्वका त्याग कर दिया। चित्तको प्रभुमें स्थिर कर दिया। परमात्माका

एक चित्तसे ध्यान करते हुए उन्होंने शरीरका त्याग किया। उन्होने इतने थोड़े समयमें ही मुक्ति प्राप्त कर ली।

खट्वाङ्ग राजाने एक प्रहरके अल्प समयमें ही जीवन-मरण, दोनोको सुधार लिया। जो समय चला गया है, उसका स्मरण करना नहीं। भूतकालका विचार करनेसे शोक होता है। भविष्यका विचार करनेसे भय होता है। भविष्यका विचार भी करना नही। वर्तमानका ही विचार करो। वर्तमानको सुधारो। जीवनका जो शेष समय बाकी है, उसमें नारायणका सतत स्मरण करो। जीवन सुधर जाएगा।

खट्वाङ्गके पुत्र हुए दिलीप। दिलीप अतिधर्मनिष्ठ राजा थे। उन्होंने सिंहके लिए अपने शरीरका भक्षण देकर गायका रक्षण किया था। मूक प्राणीके लिये प्राणोंका बलिदान करनेवाले चक्रवर्ती महाराज दिलीपका चरित्र अति दिव्य है। दिलीपके पीछे उनके पुत्र रघु अयोध्याकी गद्दीपर आए। रघु राजा महान् चक्रवर्ती सम्राट बने। उन्होंने सर्वदक्षिण यज्ञ किया। सर्वदक्षिण यज्ञमें स्वयंके शरीरपर पहने हुए कपड़ोंके अलावा समस्त सम्पत्ति दान-दक्षिणामें दे देनी होती है। रघु राजाने अपने सर्वस्वका दान दे दिया। रघु राजाकी कीर्ति बहुत फैली और सूर्यवंश, रघुवंशके नामसे प्रसिद्ध हो गया।

रघुके पुत्र अज हुए। अज राजाने अतिसौन्दर्यवती इन्दुमतीके साथ विवाह किया। उनके पुत्र दशरथ हुए।

सूर्यवंशमें ऐसे अनेक महाप्रतापी चक्रवर्ती सम्राट हो गये हैं। उनमें-से प्रत्येकने अपने बाहुबलसे, मनोबलसे, बुद्धिबलसे, तपोबलसे, धर्मबलसे, व्रतबलसे, निष्ठाबलसे अथवा दान-शौर्यसे अनेक प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त कीं। ऐसे पुण्यशाली-गौरवशाली वंशमें दशरथ राजाका जन्म हुआ। उनकी शौर्यसम्पत्ति अगाध थी। सेना विशाल थी और दूर-दूरके प्रदेशों तक उनकी कीर्ति फैली हुई थी। राजा धर्म और न्यायपूर्वक राज्य करते थे।

प्रभु-प्राकट्य

देवदेव नमस्तेऽस्तु शंखचक्रगदाधर ।
परमात्माच्युतोऽनन्तः पूर्णस्त्वं पुरुषोत्तमः ॥
वदन्त्यगोचरं वाचां बुद्ध्यादीनामतीन्द्रियम् ।
त्वां वेदवादिनः सत्तामात्रं ज्ञानैकविग्रहम् ॥
त्वमेव मायया विश्वं सृजस्यवसि हंसि च ।
सत्त्वादिगुणसंयुक्तस्तुर्य एवामलः सदा ॥
करोषीव न कर्ता त्वं गच्छसीव न गच्छसि ।
शृणोषि न शृणोषीव पश्यसीव न पश्यसि ॥

शंकर भगवान माता पार्वतीसे यह कथा कहते हैं ।

महाराज दशरथके घर तीन प्रधान रानियाँ थीं परन्तु राजाके कोई सन्तान न थी । इससे दशरथ महाराज बहुत दुःखी थे । राजाने वशिष्ठ ऋषिसे प्रार्थना की । वशिष्ठजीने कहा—राजन ! पुत्र-कामेष्टि यज्ञ करो । तुम्हारे घर परमात्मा पुत्ररूपसे पधारेंगे परन्तु इस यज्ञमें महान ऋषि ऋष्यशृङ्ग पधारेंगे तो ही यज्ञ सफल होगा ।

ऋष्यशृङ्ग विभांडक ऋषिके पुत्र थे । विभांडक ऋषिने पुत्र ऋष्यशृंगको जन्मसे ही मातासे अलग कर दिया था । ऋष्यशृंगको ऐसी रीतिसे रखा था कि उनको कोई स्त्रीका दर्शन न हो सके । स्पर्शकी तो बात ही कहाँ थी । किसी भी स्त्रीका दर्शन तक उनको हुआ नहीं । उनको यह भी नही पता था कि जगत्में स्त्री भी होती है । ऋष्यशृङ्ग जितेन्द्रिय थे, महान् तपस्वी थे, । उनकी तपश्चर्या खूब वर्द्धित हुई ।

उस समय अंगदेशमें राजा रोमपाद राज्य करता था । अंगदेशमें भयंकर अकाल पड़ा । अनावृष्टिके कारण प्रजा बहुत दुःखी हुई । तब ब्राह्मणोंने राजाको सलाह दी कि जितेन्द्रिय तथा विद्या, व्रत और तपके धनी ऋष्यशृङ्ग यहाँ पधारें तो वृष्टि हो जाएगी । ऋष्यशृङ्गको शीघ्र बुलानेके लिए राजाने मंत्री और पुरोहितोंको आज्ञा दी परन्तु सभीको विभांडक मुनिके शापका भय लगा ।

अन्तमें इन्होंने एक युक्ति की । वेश्याओंको विभांडक ऋषिके आश्रममें भेजकर उनके पुत्र ऋष्यशृङ्गको मोहित करके अंगदेशमें ले-आनेका निश्चय किया । अनेक वेश्याओंको मुनिके पास भेजा । विभांडक मुनि किसी कार्यके लिए आश्रम छोड़कर दूर

वनमें गये हुए थे। तभी पहिचान बढाकर वेश्यायें ऋष्यभृङ्गके पास गयीं। प्रथम तो ऋष्यभृङ्ग वेश्याओंको पहिचान भी नही सके। वे उनको महात्मा ही समझ बैठे। पीछे तो वेश्याओंने, हावभाव, गान-तान मिष्टान्न आदि पदार्थोंसे ऋष्यभृङ्गको मोहित कर लिया।

नाट्यसंगीतवादित्रैर्विभ्रमालिंगनार्हणैः।

त्याग विचारपूर्वक होना चाहिए। अज्ञानसे किया हुआ त्याग टिकता नही। विभाडक ऋषिकी यह भूल थी। ऋष्यभृङ्गको उन्होंने स्त्रीविषयमें अज्ञानमें रखा था, इसलिए स्त्रियोके संसर्गमें आते ही उनका त्याग टिक नही सका। ऋष्यभृङ्ग ऋषि कामान्ध हुए। वेश्यायें उनको रोमपाद राजाके नगरमे ले जानेमें सफल हुईं। ऋष्यभृंगका आगमन होते ही अंगदेशमें वृष्टि हो गयी। सर्वत्र आनन्द फैल गया। प्रसन्न होकर राजाने ऋषिका अच्छा सम्मान किया और अपनी पुत्री शान्ताका उनके साथ विवाह कर दिया। ऋष्यभृंग ऋषि रोमपाद राजाकी नगरीमें ही पत्नीके साथ संयमसे रहने लगे।

वशिष्ठजीने दशरथ राजासे कहा—वे निर्विकार ऋषि यहाँ आवें तभी यज्ञ सफल होगा। तुम ऋष्यभृङ्गको बुलाओ।

ऋष्यभृङ्गको अयोध्याजीमे ले आया गया। वशिष्ठजीने ऋष्यभृङ्गके द्वारा राजा दशरथके लिए पुत्र-कामेष्टि यज्ञ कराया। यज्ञमें देवता प्रत्यक्ष होकर हविर्भाग ग्रहण करते हैं। त्रिकाल सध्या करनेवाला तपस्वी ब्राह्मण जिस देवताका मंत्र बोले, वह मंत्र पूरा हो उसके पहले ही उस देवताको यज्ञ-मंडपमें प्रगट होना पड़ता है। देवता मंत्रके अधीन होते है। जहाँ वशिष्ठ ऋषि आचार्य है, जहाँ ऋष्यभृङ्ग विराजे हुए हैं, वहाँ दशरथ राजाके यज्ञमें देवता प्रत्यक्ष प्रगट होते हैं। हविर्भाग ग्रहण करते हैं, परमानन्द उपस्थित है।

पूर्णाहुतिके समय यज्ञ कुण्डमें-से अग्निदेव बाहर आए। सुवर्णपात्रमें पायस लेकर अग्निदेव पधारते है। यज्ञनारायण सबका मनोरथ सफल करनेको तैयार हैं। वे सबको बुलाते हैं। तुम हमारा आराधन करो, मैं तुम्हारी सब कामना पूर्ण करूँगा। प्रत्यक्ष अग्निदेव वहाँ प्रगट हुए हैं। दशरथ राजाको प्रसाद देते हुए वे कहते हैं—

तासु त्वं लप्स्यसे पुत्रान् यदर्थं यजसे नृप।

तुम्हारे घर चार बालक प्रगट होंगे। वे तुम्हारी कीर्तिका बहुत विस्तार करेंगे। तुमको अतिशय सुखी करेंगे।

दशरथ महाराजको आशीर्वाद देकर अग्निदेव अन्तर्धान हो गये। दशरथ राजाको अत्यन्त आनन्द हुआ। प्रसाद माथे चढ़ाया। वशिष्ठ ऋषिका वन्दन करके राजाने कहा—गुरुदेव! तुम्हारी कृपासे मुझे यह प्रसाद प्राप्त हुआ है। अब मैं इसका क्या करूँ।

वशिष्ठ ऋषि महान् ज्ञानी थे। उन्होंने विचार करके राजासे कहा—राजन् ! कौशल्याजी धर्मपत्नी हैं। यज्ञमें जो प्रसाद मिला है, उसका अधिकार धर्म-पत्नीको होता है। कैकेयी धर्मपत्नी नहीं, भागपत्नी हैं इसलिए प्रसादका मुख्य अधिकार कौशल्याजीको है।

आधा प्रसाद कौशल्याजीको दिया। बाकी जो आधा रहा, उसके दो भाग किए। एक भाग कैकेयीको दिया और एक भाग सुमित्राको दिया। कितनी ही रामायणोंमें ऐसा वर्णन आता है कि कैकेयीको सौन्दर्यका अभिमान था। उन्हें ऐसा लगता था कि मैं बहुत सुन्दर हूँ। इसलिए राजा मेरे अधीन हैं। कौशल्याको प्रसाद पहले मिला और कैकेयीको पीछे मिला। इससे कैकेयीको रोष हुआ। उसको बहुत बुरा लगा। हाथमें प्रसाद लेकर कैकेयीने क्रोध किया। कर्कश वाणीसे उसने दशरथ महाराजका अपमान किया। उसने दशरथ महाराजसे कहा—मुझे पीछे प्रसाद क्यों दिया ? तुम क्या समझते हो ? मुझे बाजारसे खरीदकर लाये हो। तुमको कुछ ज्ञान है कि नहीं। तुम्हारा यह प्रसाद मुझे लेना नहीं। कर्कश वाणीसे जो पतिका दिल दुखावे, वह है कैकेयी।

कैकेयीने प्रसादका अपमान किया। उसी समय भगवान शंकरकी प्रेरणासे एक चील वहाँ आयी और कैकेयीके हाथसे प्रसाद उड़ाकर ले गयी। अंजन पर्वतपर श्रीअंजनी-देवी भगवान शंकरकी आराधना कर रहीं थीं। अंजनीदेवीकी इच्छा थी कि मेरे घर शंकरके समान महान् ज्ञानी पुत्र हो। शिवजीके समान महान भगवद्भक्त पुत्र मेरे घर आवे। इसलिए अंजनी माँ पंचाक्षर शिवमंत्रका जप करती थीं और भगवान शंकरकी आराधना करती थीं। शिवजीकी प्रेरणासे चीलने कैकेयीके हाथमें-से उठाया हुआ प्रसाद लाकर अंजनी माँके हाथमें रख दिया। माता अंजनीके नेत्र शिवजीके ध्यानमें बन्द थे। अंजनी माँने तो ऐसा माना कि मुझे तो शिवजीने ही यह प्रसाद दिया है। इसलिए अंजनी माँ प्रसाद खा गयीं।

प्रसादका भक्षण करनेसे अंजनी माँके पेटमें गर्भ रहा। आनन्द हुआ। नौ मास परिपूर्ण हुए। परम पवित्र समय प्राप्त हुआ। चैत्रमासकी शुक्लपक्ष पूर्णिमा तिथिके सूर्योदयका समय हुआ, उसी समयमें श्रीहनुमानजीका प्राकट्य हुआ। सूर्योदय हो चुका था। सूर्यका लाल बिम्ब क्षितिजपर छाया हुआ था। हनुमानजी महाराजको भूख लगी। वे सूर्यको फल समझकर उसे खानेके लिए बालक होते हुए भी आकाशमें उड़े।

अभ्युत्थितं ततः सूर्यं बालो दृष्ट्वा महावने।
फलं चेतिजिघृक्षुस्त्वमुत्प्लुत्याभ्युत्पतोदिवम् ॥

हाहाकार हो गया। इन्द्रने क्रोध करके हनुमानजीके ऊपर वज्र फेंका। इससे उनकी ठोड़ीका जबड़ा टूट गया और तबसे वे हनुमान नामसे पहचाने जाने लगे।

पुत्रको घायल हुआ देखकर पवनदेवने क्रोध किया और तीनों लोकोंमें वायुको बन्द कर दिया। तीनों लोक अकुला उठे। सब देवता घबड़ा गये। देवता पवनदेवकी स्तुति करने लगे। पवनदेवको प्रसन्न करनेको ब्रह्माजीने वरदान दिया कि तेरा पुत्र युद्धमें किसी भी शस्त्रसे या अस्त्रसे अवध्य रहेगा। अशस्त्रवध्यता समरे। हनुमानजीकी लीला दिव्य है।

इस ओर कैकेयीका प्रसाद चील ले गयी, इससे उन्हें बहुत पछतावा हुआ। वह दुखी होकर रोने लगी। उस समय कौशल्याजीको दया आ गयी, इसलिए कौशल्याजीने अपने मिले हुए प्रसादमें-से थोड़ा भाग कैकेयीको दे दिया। सुमित्राजी कौशल्याजीके सत्संगमें रहती थी। कौशल्याजीने कैकेयीको प्रसाद दिया, ऐसा देखकर सुमित्राजीने भी अपने प्रसादमें-से थोड़ा भाग कैकेयीको दे दिया।

प्रसादका भक्षण करनेसे तीनों रानियाँ सगर्भा हो गयीं। परमानन्द हुआ। वशिष्ठ ऋषिने दशरथ महाराजसे कहा कि सगर्भा स्त्रीकी इच्छा परिपूर्ण करना पतिका धर्म है। रानियोंकी जो कुछ इच्छा हो, उसे तुम परिपूर्ण करो।

दशरथ महाराज सुमित्राजीके महलमें पधारे और सुमित्राजीसे पूछा—महारानी ! तुम्हारी क्या इच्छा है ? गुरुदेवकी आज्ञासे मैं आया हूँ। तुम्हारी इच्छा मैं पूर्ण करूँगा।

सगर्भा होनेके बाद तो सुमित्राजीका स्वभाव बहुत सरल हो गया था। सुमित्राजीने दशरथ महाराजसे कहा—महाराज ! मेरे लिए यह जो स्वतन्त्र अलग राजमहल है, वह अब मुझको सुहाता नहीं। मुझे तो कौशल्याजीके ही महलमें रहना है। मेरी ऐसी इच्छा होती है कि मैं कौशल्याजीकी सेवा करूँ, कौशल्याजीकी दासी बनूं। कौशल्याजीकी सेवा करूँगी, तो ही मेरा कल्याण होगा, ऐसा मुझे लगता है। मुझे अलग रहना नहीं। मैं कौशल्याजीके महलमें रहकर उनकी सेवा करूँगी। कौशल्याजी पूरे दिन लक्ष्मी-नारायणकी सेवा-पूजा करती हैं। मैं कौशल्याजीकी सेवा करूँगी, मुझे कौशल्याजीकी सेवामें ही रख दें।

वशिष्ठजीने यह सुना तो उनको आश्चर्य हुआ। उन्होंने राजासे कहा—राजन् ! सगर्भा होनेके पश्चात् उनका स्वभाव कितना सरल हो गया है। स्त्रीको सौतकी सेवा करने की इच्छा होती नहीं, परन्तु ये ऐसा बोलती हैं। इनको अलग रहना नहीं, कौशल्याजीके साथ ही रहना है। इनके पेटमें जो बालक है, वह कोई महान् ज्ञानी पुरुष होना चाहिए। उससे सुमित्राजीका स्वभाव बहुत सरल हो गया है। इनका मन शुद्ध हो गया है।

कौशल्याजीके पेटमें परमात्मा पधारे। तबसे तो माताजी पूरे दिन ध्यान करती रहती, जप करती रहती। दशरथ महाराजको वशिष्ठजी की आज्ञा हुई। वे कौशल्याजीके

महलमें आए। महाराज पधारे तो उस समय माताजी ध्यान करने बैठी हुई थी। कौशल्याजीको हवा खानेकी इच्छा होती नहीं थी। बोलनेकी इच्छा होती नहीं थी, कोई मिलने आवे, वह तनिक भी अच्छा लगता नहीं था। पूरे दिन ध्यान करना ही सुहाता था। श्रीरामजीका ध्यान-स्मरण करनेमें कौशल्याजी तन्मय हो गयीं थीं। कौशल्याजी महान् योगिनीकी तरह पद्मासनसे विराजी हुई थीं। बाइँ जाँघके ऊपर दाहिना पग था और दाईं जाँघके ऊपर बायाँ पग रखा था। माथेके बाल खुले हुए थे। दृष्टि नाकके अग्रभागपर स्थिर की हुई थी। दोनों आँखोंके मध्यमें ललाटमें तेजोमय ब्रह्म—परमात्मा श्रीरामका ध्यान करती थीं।

नासिकाके अग्रभागपर नजर रखनेसे मनकी चंचलता घटती है। नाकके अग्रभागपर दृष्टि रखनेसे मन भी स्थिर होता है। नाकका अग्रभाग अर्थात् तुम्हारी नाकका अग्रभाग हो। दूसरे किसीकी नाक मत देखना। अपनी नासिकाके अग्रभागमें दृष्टि स्थिर करो। आँख चंचल होती हैं, इसलिये मनको भी चंचल होना पड़ता है। आँख स्थिर होती है तो ही मन स्थिर होता है।

कौशल्याजी ध्यानमें इतनी तन्मय थीं कि दशरथ महाराज पधारे इसकी कौशल्याजीको खबर ही न पड़ी। दशरथ महाराजने पूछा—महारानी! तुम्हारी क्या इच्छा है? परन्तु सुने कौन; दासीने सावधान करते हुए कहा कि महारानीजी, महाराज पधारे हैं।

कौशल्याजीको तब कुछ होश आया। दशरथ राजाने कहा—गुरुदेवकी आज्ञासे आया हूँ, तुम्हारी क्या इच्छा है? तुम्हारी इच्छा मैं पूर्ण करूँगा।

कौशल्याजीने कहा—इस समय मुझे कोई इच्छा नहीं। सुख-भोगनेकी इच्छा ही महादुःख है। इस जीवको जब तक शरीरका, इन्द्रियोंका कोई भी सुख भोगनेकी इच्छा है तब तक दुःखका अंत आता नहीं। सुख मिले तो उसे विवेकसे भोगना। वासनाके अधीन होकर सुख भोगोगे तो मन बिगड़ेगा। मनमें वासना जगे और मनुष्य सुख भोगे तो उसका पतन हो जाता है।

भगवान तुमको सुख दें तो उस सुखको प्रभुका प्रसाद मानकर परमात्माको साथ रखकर, प्रभुका स्मरण करते हुए, विवेकसे भोगो तो बाधा नहीं परन्तु अमुक सुख मुझे भोगना ही है, ऐसा संकल्प कभी करना नहीं। सुख भोगनेका संकल्प करनेसे भक्तिका नाश होता है, बुद्धिका नाश होता है। सुख भोगनेका संकल्प करनेसे मन बिगड़ता है।

ज्ञानी महापुरुष कहते हैं कि संकल्पसे ही यह संसार खड़ा हुआ है और संकल्पसे ही मनुष्य भवबंधनमें आता है।

संकल्पवासनाजालैः स्वैरेवायाति बन्धनम्।
मनो लीलामयैर्बन्धैः कोशकारकृमिर्यथा ॥

रेशमका कीड़ा स्वयंके अंगमें-से ही द्रव्यका स्राव करके स्वयंके आसपास जाला बना लेता है और इस प्रकार स्वयं ही उसमें वेष्ठित हो जाता है। उसी प्रकार मनुष्यका मन भी अनेक प्रकारके संकल्पोंसे वासना-जाल बनाकर भवबंधनमें पड़ जाता है, मनुष्यको जन्म-मरणके चक्करमे डाल देता है।

इसलिए वेदान्त कहता है कि मनको संकल्प-रहित बनाओ तो शान्ति मिलेगी। परन्तु मनको संकल्प-रहित करना बहुत कठिन है। मन सकल्प बिना रह सकता नहीं। इसलिए वैष्णव आचार्य कहते हैं कि सकल्प करना हो तो भगवद्संकल्प करो। ऐसा करनेसे मन सुधरता है। शुभ संकल्प भगवान पूर्ण करते हैं। लौकिक संकल्पसे मन बिगड़ता है। कोई सुख भोगनेका संकल्प करना नही। सुख भोगनेकी इच्छा वासनाओंका कारण बनती है। वासना पुनर्जन्मका कारण बन जाती है। इच्छा, भक्तिमें विघ्न करती है। मनके साथ यह निश्चय करो कि "अब मुझे कोई सुख भोगनेकी इच्छा ही नहीं। आनन्द-स्वरूप श्रीराम तो मेरे हृदयमें हैं। मुझे आनन्द मिल चुका है। संसारका कोई सुख अब मुझे दीखता नहीं। मैं चारों ओर श्रीरामको देखता हूँ। श्रीरामको भजता हूँ, श्रीरामका स्मरण करता हूँ।"

कौशल्याजीके घर में श्रीराम रमते हैं। कौशल्याजी विश्वमें सर्वत्र श्रीरामका दर्शन करती हैं। सबमें श्रीरामका दर्शन करते-करते अतिशय तन्मयतामें कौशल्याजीको स्वयंके अन्दर श्रीराम दीखते हैं। कौशल्याजीने दशरथ महाराजसे कहा—आनन्दस्वरूप श्रीराम तो मेरे हृदयमें है। मुझे अब कोई सुख भोगना नही है। मुझे अब बोलनेकी भी इच्छा होती नही, मुझे कोई भी इच्छा शेष नहीं। मैं श्रीरामस्वरूप ही हूँ, आनन्द-स्वरूप हूँ।

वशिष्ठ ऋषिने कहा—राजन्! कौशल्याजी तो वेदान्तका सिद्धान्त बोलती हैं, बहुत सुन्दर बोलती हैं। भविष्य-बहुत सुन्दर दीखता है। गुरुदेवने अनेक आशीर्वाद दिये।

माता कौशल्याजीके अन्दर विराजे हुए परमात्माकी देवता-गन्धर्व स्तुति करते हैं।

अतस्त्वत्पादभक्तेषु तव भक्तिः श्रियोऽधिका।
भक्तिमेवाभिवाञ्छन्ति त्वद्भक्ताः सारवेदिनः ॥

अतस्त्वत्पादकमले भक्तिरेव सदास्तु मे ।
संसारामयतप्तानां भेषजं भक्तिरेव ते ॥

हे भगवन् ! आपके चरण-कमलमें प्रीति रखनेवाले भक्त आपको लक्ष्मीजीसे भी अधिक प्यारे हैं। इसलिए तो संसार-सारको समझनेवाले भक्त आपकी भक्तिकी ही इच्छा करते हैं। भक्तोंको यह ज्ञान है कि भवरोगके लिए आपकी भक्ति ही एकमात्र औषधि है। आपके चरणोंका जो आश्रय लेता है, आपकी सेवा-पूजा करता है, वह अनायास ही संसार-सागर से तर जाता है।

ज्ञानका मिथ्या अभिमान रखकर जो आपसे विमुख बनता है, वह तो संसारमें भटकता है। ज्ञानी यदि प्रभु-प्रेमी न हो तो एसे ज्ञानीका पतन हो जाता है। ज्ञानी पुरुष मिलते हैं, परन्तु परमात्माके साथ प्रेम करनेवाले जल्दी नहीं मिलते। ज्ञानी प्रभु-प्रेमी हो तो ही उसका ज्ञान सफल होता है। ज्ञानी पुरुषोंका पतन होता हुआ स्पष्ट देखा गया है।

आपको अब शीघ्र ही प्रगट होना है। यह भूमि भाग्यशाली है कि आपके मंगलमय चरणारविन्दोंका स्पर्श इसको प्राप्त होगा। देवताओंने माताजीके उदरमें विराजे हुए परमात्माकी अनेक प्रकारसे स्तुति की। माताजीको आश्वासन दिया कि अब परमात्मा शीघ्र प्रगट होने वाले हैं। परम आनन्द छा गया।

नवम मास परिपूर्ण हुआ। परमात्माके प्राकट्यका अब समय हो गया। परम पवित्र चैत्रमास, शुक्लपक्ष और अष्टमी तिथि है। रात्रिके समय महाराज दशरथ पलंगपर पौढ़े हुए हैं। अष्टमीकी उत्तररात्रि और रामनवमीका प्रातःकाल है। ब्राह्ममुहूर्तका समय है। इस समय दशरथ महाराजको नींदमें एक सुन्दर स्वप्न दीख पड़ा।

स्वप्नमें-से जगकर महाराज विचार करते हैं। आजका यह स्वप्न तो बहुत सुन्दर है। इस स्वप्नका मुझे क्या फल मिलेगा ? उस स्वप्नका फल जाननेके लिए महाराज अति प्रसन्न मनसे वशिष्ठ ऋषिके आश्रममें गये। महान् ज्ञानी वशिष्ठ ऋषि ब्राह्ममुहूर्तमें आदिनारायण परमात्माका ध्यान करने बैठे ही थे।

दशरथ महाराजने गुरुदेवको साष्टाङ्ग वन्दन करके क्षमा माँगी। कहा—गुरुदेव ! मैं आपके ध्यानमें विक्षेप करने आया हूँ, क्षमा करना। आज मैंने एक स्वप्न देखा है। स्वप्नमें मैंने देखा कि मैंने सरयूमें स्नान किया है। स्नान करनेके पश्चात् अपने महलमें मैं लक्ष्मीनारायणकी सेवामें बैठा हूँ। दूध, दही घी, मधु शर्करा इत्यादि पंचामृतसे परमात्मा नारायणका मैं अभिषेक कर रहा हूँ। आप वेदमंत्रोंका उच्चारण कर रहे हैं। अभिषेकके पश्चात् मैंने परमात्माका सुन्दर शृंगार किया।

ठाकुरजीको पुष्पकी माला सजाई है, ठाकुरजीको तिलक किया है। नैवेद्य रखा है और ठाकुरजीकी आरती उतारी है।

जिस दिन तुम अपने ठाकुरजीकी सेवा स्वप्नमें करो, स्वप्नमें भगवानकी आरती उतारो तो मानना कि तुम्हारे भाग्यका अब उदय होने वाला है। वशिष्ठ ऋषिने राजाको धन्यवाद दिया और कहा कि राजन ! अति भाग्यशालीको ही ऐसा स्वप्न दिखायी देता है। यह स्वप्न बहुत सुन्दर है।

दशरथ महाराजने स्वप्नकी बात आगे चलाते हुए कहा—गुरुदेव ! स्वप्नमें मैंने देखा है कि मेरे आँगनमें बड़े-बडे देवता और ऋषि पधारे हैं। मेरे आँगनमें कीर्तन हो रहा है। मैं ब्राह्मणोंकी पूजा कर रहा हूँ, गायोंका दान दे रहा हूँ। सब मुझे आशीर्वाद दे रहे हैं कि तुम्हारे घर अब परमात्मा प्रगट होनेको हैं। तुम्हारे भाग्यका उदय होना है। गुरुदेव ! पीछे तो मैंने स्वप्नमें देखा कि ठाकुरजीकी आरती उतारते हुए मैं बहुत प्रेमसे श्रीअंगको निहार रहा हूँ। ठाकुरजी बहुत प्रसन्न हैं, धीरे धीरे स्मितहास्य कर रहे हैं। गुरुजी ! पीछे तो मैंने देखा कि ठाकुरजी के श्रीअगमे-से दिव्य तेज निकला है और वह कौशल्याजीके पेटमे गया है। ठाकुरजीने कौशल्याजीके पेटमें प्रवेश किया है।

दशरथ महाराजकी बात सुनकर वशिष्ठ ऋषिको बहुत आनन्द हुआ और उन्होंने कहा कि राजन् ! स्वप्न बहुत सुन्दर है। मुझे लगता है कि परमात्मा पुत्र-रूपमे तुम्हारे घर पधारनेवाले हैं। यह स्वप्न उसीका सूचक है।

दशरथ महाराजने आनन्दमें आकर पूछा—महाराज ! परमात्मा मेरे घर पुत्ररूपमें आयेंगे क्या ?

गुरुदेवने कहा—बालक होगे और ऐसे बालक होगे जैसे आजतक किसीके घरमे हुए नही और भविष्यमे होगे भी नही। साक्षात् परमात्मा पुत्र-रूपमे आवेगे।

राजाको श्रद्धा थी कि मेरे गुरुदेव जो बोलते हैं वह सत्य ही होता है। राजाकी वृद्धावस्था थी। घरमें पुत्र-सन्तान मिली नही थी। इससे गुरुदेवकी बात सुनकर राजाके नेत्र सजल हो गये। उनको विश्वास हो गया कि मेरे घर परमात्मा पधारेंगे। गुरुदेवने मुझे आशीर्वाद दिया है।

राजाने दोनों हाथ जोड़कर वशिष्ठजीसे पूछा—महाराज ! परमात्मा कब पधारेंगे ? वशिष्ठ ऋषिने कहा—राजन् ! यह जगत कालके अधीन है और काल रामजीके अधीन है, रामजीका सेवक है। श्रीराम कालके भी काल हैं। श्रीरामजी कब पधारेंगे, यह मैं क्या जानूं ? मैं तुमसे क्या कहूँ ? उनकी इच्छा होगी तभी पधारेंगे। वे

कब आवेगे यह कोई कह सकता नही परन्तु ब्रह्म मुहूर्तका स्वप्न है, इससे मनको लगता है कि चौबीस घटेके अन्दर अवश्य कृपा करके पधारेंगे। परमात्मा पधारने वाले है। यह स्वप्न तुमने मुझसे कहा है, यह ठीक है परन्तु अभी इस स्वप्नकी बात किसीसे भी कहना नहीं। स्नान करके परमात्माका ध्यान करो, जप करो, स्मरण करो। थोड़े समयमें ही आनन्दकी कोई वार्ता सुननेको मिलेगी।

गुरुदेवकी आज्ञाके अनुसार राजाने स्नान किया और ठाकुरजीका ध्यान करने बैठे। आज रामनवमीका प्रातःकाल है। आज सुवर्णका सूर्य उदय हुआ है।

जेहि दिन राम जनम श्रुति गावहिं। तीरथ सकल तहाँ चलि आवहिं॥

अयोध्याजीमें और सरयूजीके किनारे आज संतोंकी भीड़ हो गयी है। श्रीराम-दर्शनके लिए अब प्राण तरस रहे हैं। अनेक महात्मा, अनेक वैष्णव, दर्शनके लिये जब आतुर हो जाते हैं, तभी अवतार होता है।

प्रातःकालसे ही कौशल्या माता ध्यानमें बैठी हैं। कौशल्याजीने दासियों, नौकरोंको आज्ञा दी कि तुम सब बाहर जाओ। मैं न बुलाऊँ तब तक कोई भी अन्दर आना नही। मुझे एकान्तमें बैठकर ध्यान करना है। एकान्तमें कौशल्याजी परमात्माका ध्यान करती हुई तन्मय हो गयी। श्रीराम-दर्शनके लिये अब उनके प्राण तड़प रहे हैं।

भगवान शंकर कैलाशधाम छोड़कर आज अयोध्याजीमें आए हैं। इन्होंने वृद्ध ब्राह्मणका स्वरूप धारण किया है। चारों वेद इनके चार शिष्य बने हैं। श्रीराम-श्रीराम जप करते हुए अयोध्याजीकी गलियोमें फिर रहे है। शिवजीके इष्टदेव बालक श्रीराम हैं। शिवजी बालक रामका नित्य ध्यान करते है।

बन्दउँ बालरूप सोइ रामू।

लोग पूछते है—महाराज! आपका नाम क्या है? शिवजी कहते हैं—मेरा नाम सदाशिव जोशी है। ज्योतिष-शास्त्रमें पारगत हूँ। शिवजीकी इच्छा है कि श्रीरघुनाथजी अब प्रगट होने वाले है, इसलिये मैं कौशल्याजीके घरमें जाऊँ। कौशल्याजी राम ललाको मेरी गोदमें देगी। मैं रामके साथ रमूँगा, रामसे मिलूँगा। रामके साथ एक हो जाऊँगा। शिवजी महाराज राम-नामका जप करते-करते विचरण कर रहे हैं। साधु-महात्मा, संन्यासी सभी सरयू गंगाके किनारे बैठे है। "सीताराम, सीताराम सीताराम" ऐसा जप करते-करते तन्मय हो रहे हैं। कब प्रगट होंगे, कब दर्शन देगे? सभीको दर्शनकी आतुरता लगी हुई है।

परम पवित्र समयका आगमन हुआ। दसों दिशाये प्रसन्न हो गयी है। शीतल, मन्द, सुगन्धित वायु बहने लगी। आकाशमे देवता, गन्धर्व, ऋषि, अप्सरा बाजे वजा रहे

हैं। दुन्दुभी बजा रहे है। पुष्प-वृष्टि हो रही है। राम-नामका कीर्तन करते-करते सब तन्मय हो रहे हैं। अग्निहोत्री ब्राह्मणोके घरमे अग्नि-कुण्डमे विराजे हुए अग्निदेव भी कुण्डमे-से बाहर आ रहे है। श्रीरामललाके दर्शनोकी आतुरता जगी हुई है। साधुओंका मन अतिशय शान्त हुआ है। परमपवित्र चैत्रमास, शुक्लपक्ष, परिपूर्ण नवमी तिथि, पुनर्वसु नक्षत्रका सुयोग, मध्याह्न कालमें माता कौशल्याजीके सम्मुख चतुर्भुज स्वरूपमे...

भए प्रगट कृपाला दीन दयाला कौशल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप विचारी॥

परमात्माका स्वरूप अति सुन्दर है।

लोचन अभिरामा तनु घनश्यामा निज आयुध भुज चारी।
भूषन बनमाला नयन बिसाला सोभासिंधु खरारी॥

चारो ओर प्रकाश फैल गया है। उसी प्रकाशमे शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी चतुर्भुज नारायणके दर्शन कौशल्याजीको हुए। चतुर्भुज रूपमे प्रगट होकर बताते हैं कि मैं अपने भक्तोकी चारों ओर-से रक्षा करता हूँ। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र—किसी भी जातिका हो, वह मेरी सेवा-पूजा करता हुआ मुझमे तन्मय हो जावे, तो उसके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारो पुरुषार्थोंको मैं सफल कर देता हूँ।

कौशल्याजीको दर्शनमे अति आनन्द हो रहा है। कौशल्या माँ-ने परमात्माकी सुन्दर स्तुति की।

कह दुइ कर जोरी—
अस्तुति तोरी केहि बिधि करौं अनन्ता।
मायागुन ग्यानातीत अमाना बेद पुरान भनन्ता॥
करुनासुखसागर सब गुन आगर जेहि गावहिं श्रुति संता।
सो मम हित लागी जन अनुरागी भयउ प्रगट श्रीकंता॥
ब्रह्मांडनिकाया निर्मित माया रोम-रोम प्रति बेद कहै।
मम उर सो बासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै॥

मेरा हित और कल्याण करनेके लिये आप प्रगट हुए हो। नाथ! आपका यह स्वरूप अति सुन्दर है, मंगलमय है परन्तु लोगोको ऐसी शंका होगी कि चार हाथ वाला ऐसा बड़ा लडका कौशल्याके घर किस प्रकार आया? मेरी बहुत इच्छा है कि मैं आपको गोदमे खिलाऊँ, आपको मल्हराऊँ, आप माँ-माँ कहकर मुझे बुलाओ, मेरे पीछे फिरो। इसलिए आप यह स्वरूप छोड़कर बालस्वरूप धारण करो, बाललीलाका आनन्द दो।

.................................तजहु तात यह रूपा।
कीजै सिसुलीला अति प्रिय सीला यह सुख परम अनूपा॥

कौशल्याजीने जब प्रार्थना की, परमात्माने माताजीको आज्ञा की कि इस चतुर्भुज स्वरूपको भूलना नही। इस स्वरूपका नित्य ध्यान करना। माताजीको स्वरूपका ज्ञान कराकर चतुर्भुज स्वरूप अन्तर्द्धान हो गया। दो भुजा वाले बालक श्रीराम प्रगट हो गये।

विप्र धेनु सुर सन्त हित लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु मायागुन गो पार॥

× × ×

ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन विगत विनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या कें गोद॥

काम कोटि छबि स्याम शरीरा। नील कंज वारिद गंभीरा॥
अरुन चरन पंकज नख जोती। कमल दलन्हि बैठे जनु मोती॥

श्रीअंग मेघके जैसे श्याम हैं। रामललाके नेत्र बहुत ही सुन्दर हैं। रघुनाथजीके रेशम जैसे केश, घुंघराली अलके अति मनोहर लगती हैं। श्रीअंग बहुत ही कोमल है, देदीप्यमान है। कौशल्या माँ-ने गोदमें ले रखा है। माताजी बालक श्रीरामको प्रेमसे निहार रही हैं। कौशल्याजी और रामजीकी चार आँखें ज्यों ही मिली, उसी समय रामजी कपोलोंमें स्मित हास्य करने लगे। माँ को अत्यन्त आनन्द हुआ। माताजीके मनमे यह अनुभव हुआ कि मेरा राम कितना सुन्दर है। कितना सुन्दर दिखाई पड़ता है। किसीकी नजर न लग जाय। कौशल्या 'नारायण-नारायण' ऐसा कीर्तन करती हुई नजर उतारती हैं।

एक दासीको लगा कि अन्दर कुछ गतिशीलता लगती है। बालक आ गया या अन्य कुछ है? दासी दौड़ती अन्दर गयी। अन्दर चारों ओर प्रकाश था। कौशल्या माँ विराजी हुई थीं। माँ की गोदमे बालक श्रीराम थे। बालक श्रीरामके दर्शन करते-करते दासीको बहुत आनन्द हुआ। वह दोनों हाथ जोडकर चित्रवत् खड़ी रह गयी। उसकी आँखें स्थिर हो गईं।..................शरीर स्थिर हो गया। दासी स्तब्ध रह गई। रामललाके दर्शनमें शरीरकी सुध खो बैठी।

कौशल्याने दासीको आई हुई देखा। माँ-के गलेमें नवरत्नका एक सुन्दर हार था। कौशल्याने वह हार गलेमें-से उतारा और दासीको देने लगीं परन्तु श्रीरामके दर्शनोंके अति आनन्दमे दासीको हार लेनेकी इच्छा हुई नही। कौशल्या माँ-ने आग्रह किया—तुम्हारे सबके आशीर्वादसे यह बालक आया है। आज तो लेना ही पड़ेगा।

दासीने हाथ जोडकर कहा—माँ ! यह हार तो तुम्हारे गलेमे ही शोभा देता है। इस हारको लेकर मैं क्या करूँगी ? इसको तुम अपने गलेमे ही रखो, मुझे यह शोभा नहीं देता परन्तु माँ ! आज तो मेरे माँगनेका अवसर है। आज जो मैं माँगू वही मुझे दो।

कौशल्या माँ-ने कहा—तू माँग ! तू जो माँगेगी वही तुझे दूंगी।

दासीने कहा—माँ ! रामजीका दर्शन होनेके पश्चात् मुझे ऐसी इच्छा होती है कि मैं रामजीको गोदमे लूँ, मुझे ऐसी भावना होती है कि मैं रामजीको खिलाऊँ, रामजीके साथ खेलूं। रामजीके साथ एकाकार होऊँ। माँ मैं हार लेने नही आई, मैं तो रामजीको लेने आई हूँ। रामजीको मुझे दो-पांच क्षणके लिए गोदमें दो। मुझे अन्य कुछ दिखाई नहीं देता। मैं रामजीसे मिलने आई हूँ।

कौशल्याजीने दासीको पास बैठाकर और उसकी गोदीमे बालक श्रीरामको...... ....सियावर रामचन्द्रकी जय....................हजारो जन्मसे यह जीव ईश्वरसे बिछुड़ा पड़ा है। परमात्मासे बिछुडा पडा जीव आज परमात्मासे मिलता है। आज दासीका ब्रह्म-सम्बन्ध हुआ है। दासी रामललाको छातीसे लगाती है, प्यार करती है। जीव-ईश्वरका मिलन हुआ है। अति आनन्दमें दासीको देहकी सुधबुध न रही।

एक दासी दौडती-दौडती महाराज दशरथके पास गई। दशरथ महाराज प्रभुका स्मरण कर रहे थे। दासीने महाराजसे कहा—महाराज, महाराज, बधाई है। पुत्रका जन्म हुआ है। दशरथ महाराजको अति आनन्द हुआ। गुरुजीने कहा ही था कि चौबीस घन्टेके अन्दर आनन्दका समाचार सुननेको मिलेगा। राजाका आनन्द हृदयमें समाता नही था। वह आँखोंके रास्ते बाहर निकलने लगा।

दशरथ राजा विचार करने लगे कि स्वप्नमे मैंने देखा कि परमात्माने कौशल्याके पेटमें प्रवेश किया है। गुरुदेव भी कहते थे कि परमात्मा पुत्ररूपमें पधारेंगे। इसलिए दशरथ महाराजने दासीसे पूछा—बालक कैसा है।

दासीने कहा—महाराज, बालक कैसा है, यह कोई भी कह नही सकता। देवता भी श्रीरामका वर्णन कर सकते नही। जो मन-वाणीसे परे है, उसका वर्णन कौन कर सकता है ?

यतो वाचो निवर्तन्ते।

महापुरुष बुद्धिसे इनका अनुभव करते हैं। इनका वर्णन कोई कर सकता नहीं। आँखको दिखाई देता है परन्तु उसको बोलना आता नही। इस जीभको बोलना आता है परन्तु यह देख सकती नही, अन्धी है।

गिरा अनयन नयन बिनु बानी।

बड़े-बड़े ऋषि भी रामजीका वर्णन ठीक-ठीक कर सकते नहीं, तो मुझ दासी-की क्या गिनती ! श्रीराम कैसे है, उसका वर्णन मैं कर सकती नही । आप अब शीघ्र पधारो और प्रत्यक्ष दर्शन करो । आप स्नान करके आओ । आपकी गोदमें मैं बालक रामको पधराऊँगी ।

दशरथ महाराजको आनन्द हुआ । उनको विश्वास हुआ कि परमात्मा ही पधारे है । गुरुदेवने मुझसे कहा ही था । सेवकगण दशरथ महाराजको सरयूजीके किनारे ले गये । सरयू गंगाको साष्टाङ्ग वन्दन करके दशरथ महाराजने स्नान किया । वृद्धावस्थामें पुत्र-जन्म-निमित्त श्रीसरयूजीमें स्नान करनेका यह सुयोग मिला ।

आजतक दशरथ महाराज श्रृंगार नहीं करते थे । घरमें पुत्र नहीं होनेसे महाराज दुःखी रहते थे । उनका नियम था कि द्वारपर कोई साधु आवे, ब्राह्मण आवे, गरीब आवे, उसको परमात्माका स्वरूप समझ उसे सुन्दर वस्त्राभूषणोंका दान करते, और इस प्रकार दूसरोंको श्रृंगार कराते थे परन्तु स्वयंके शरीरको श्रृंगार धारण नही कराते थे ।

आज सेवकोंने कहा— महाराज ! आज तो विशाल उत्सव करना है । दशरथ महाराज भी घरके सेवकोंका बहुत सम्मान करते थे । सेवकोंको पट्टेपर बैठाकर वस्त्र-आभूषण देते । उन सभीका आशीर्वाद मिला हुआ था । जिसको सर्वका आशीर्वाद मिलता है, उसीके घर सर्वेश्वर आते हैं ।

सेवकोंने बहुत आगह करके दशरथ महाराजका श्रृंगार किया । पीछे महाराजको सोनेकी चौकीपर बैठाया । वशिष्ठ आदि ऋषि वहाँ आए । उन्होंने महाराजसे गणपति महाराजका पूजन कराया । पूजा शेष होने पर नान्दी श्राद्ध में पित्रीश्वरोंकी पूजा की । महाराजने साधु, ब्राह्मण, गरीबोंको अतिशय दान दिया । सभीने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया । इस समय तो दान लेने वाला भी कोई रहा नहीं । आज तो दशरथ महाराजके घर परमात्मा पधारे है । अति उदारतासे दशरथ महाराजने बहुत लुटाया ।

सर्बस दान दीन्ह सबकाहू । जेहिं पावा राखा नहिं ताहू ॥

सोनेके कटोरेमें मधु भरा गया । वशिष्ठ ऋषि वेद-मंत्रका उच्चारण करके उस मधुको अभिमंत्रित करने लगे ।

अग्निरायुष्यमान् । वनस्पतयरायुष्यमान् । तेजश्चवायुः आयुष्मन्त करोमि । सोम आयुष्यमान् ।

सर्वोशनि आयुष्यमान् । तेन त्वं आयुष्मन्तं करोमि । समुद्र आयुष्मान । तेन त्वं आयुष्मन्तं करोमि ।

बालककी आयुष्य बढे, उसका बल बढे, उसका तेज बढे। बालकका जन्म होता है, उस समय जातकर्म सस्कार करवाना होता है। जन्म होनेके पश्चात् मधु चटाना होता है। शास्त्रमे अन्नप्राशन, नामकरण, यज्ञोपवीत इत्यादि सोलह सस्कार बताये गये हैं। जीवको शुद्ध करनेके लिये संस्कारोकी आवश्यकता है परन्तु आजकल तो सब सस्कार भुला दिये गये हैं। एक लग्न-संस्कार बाकी रह गया है। उसमें भी धार्मिक विधिको महत्व दिया जाता नही। केवल लौकिक विधिका महत्व देखनेमें आता है। पडितजी महाराजसे कहा जाता है कि महाराज ! पूजा सक्षेपमें करना। हमारा वर-घोड़ा तीन घन्टे गाँवमे फिरना चाहता है। वर-घोडा लौकिक है। पूजा तो धार्मिक क्रिया है। धार्मिक विधि मुख्य है परन्तु धार्मिक विधि गौण बन जाती है, लौकिक मुख्य बन जाती है।

ऋग्वेद, यजुर्वेदके अनेक मत्र बोलकर अभिमन्त्रित किया हुआ मधुका कटोरा वशिष्ठ ऋषिने राजाके हाथमें दिया और समझाया—अब तुम अन्दर जाओ। अपनी अनामिका अँगुली मधुमे डुबोकर बालककी जिह्वापर मधु चटाओ। मधु-प्राशन संस्कारके लिए गुरुदेवकी आज्ञा होनेपर महाराज दशरथ हाथमे मधुका कटोरा लेकर अन्दर गये।

कौशल्याजीके महलमें आज अतिशय भीड़ हो गयी थी। देवता, ऋषि महात्मा-जन गुप्तरूपसे श्रीराम ललाके दर्शन करने आए हुए थे। जो अन्दर प्रवेश पाता था, उसको रामजीके दर्शनमे इतना आनन्द मिलता था कि अति आनन्दमे बाहरके जगतको भूल जाता। अति आनन्दमे किसीकी भी बाहर निकलनेकी इच्छा ही नही होती थी। देवता, ऋषि श्रीरामके दर्शन करते हुए तन्मय हो गये।

श्रीराम-जन्ममे सबको बहुत आनन्द हुआ परन्तु एक चन्द्रमा दुःखी रहे। चन्द्रमा रामजीके पास जाकर रोने लगा। प्रभुने पूछा—भाई ! तुम क्यों रोते हो ? चन्द्रने कहा—महाराज ! तुम, इस सूर्यको जरा समझाओ। बारह घटेसे यह एक ही जगह खडा हुआ है, आगे जाता ही नही।

आज तो सूर्यनारायणको बहुत आनन्द हुआ। सूर्यको ऐसा लगता है कि मेरे वंशमे आज परमात्मा प्रगट हुए हैं। सूर्यको श्रीराम-दर्शनमे इतना आनन्द हुआ कि उस आनन्दके अतिरेकमे इनके घोड़े स्थिर हो गये। सूर्यके रथकी गति रुक गयी। सूर्य अस्त हो, उसके पश्चात् चन्द्रमा आ सकता है परन्तु सूर्य अस्त होते नही। चन्द्रको उतावली हुई। इसलिए उसने रामजीसे फरियाद की कि यह सूर्य मुझको आने देता नही।

रथ समेत रवि थाकेउ, निशा कवन विधि होइ।

रामजीने चन्द्रसे कहा—तू धीरज रख, इस अवतारमें मैंने सूर्यको लाभ दिया है परन्तु कृष्णावतारमें तेरे लिए रात्रिके बारह बजे पीछे आऊँगा। सूर्यवंशमें प्रगट होकर रामचन्द्रजीने इस जन्ममें सूर्यको लाभ पहुँचाया। कृष्णावतारमें चन्द्रवंशमें प्रगट होकर परमात्माने चन्द्रमाको लाभ पहुँचाया। चन्द्रमाको दिया गया रामावतारका यह वचन था। श्रीकृष्ण प्रगट हुए। उस समय सम्पूर्ण जगत गाढ़ निद्रामें था। जगतमें दो ही जीव जगे हुए थे. वसुदेव-देवकी और आकाशमें जाग रहा था चन्द्रमा।

जो जागता है, उसे परमात्माके दर्शन होते हैं। जो सोया हुआ है उसे संसार मिलता है।

मोह निसाँ सबु सोवनिहारा। देखिअ सपन अनेक प्रकारा।
एहिं जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच बियोगी॥
जानिअ तबहिं जीव जग जागा। जब सब विषय बिलास बिरागा।
होइ बिबेकु मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथ चरन अनुरागा॥

इस मोहरूपी रात्रिमें सोते रहनेवाले अनेक प्रकारके स्वप्न देखते हैं, भोग भोगते हैं, वासना बढाते हैं। इसमें ही रचे-पचे रहते है और इसलिए वे सदा ऊँघते ही रहते हैं परन्तु जो योगी है, ज्ञानी है, परमार्थी है, भक्त है, जिसने माया-प्रपंचको दूर किया हुआ है, वह इस संसारमें जागता है।

न हि प्रबुद्धः प्रतिभासदेहे
देहोपयोगिन्यपि च प्रपंचे।
करोत्यहन्तां ममतामिदन्तां
किन्तु स्वयं तिष्ठति जागरेण॥

विषय-भोगोंका जो त्याग करता है, जिसके हृदयमें संसारके प्रति कोई आसक्ति नही रहती, जिसने मैं, तू और मेरा त्याग दिया है वही इस जगतमें जागता हुआ है। सोनेवाला संसार-सुख भोगता है और जागनेवाला परमात्माका आनन्द अनुभव करता है। जागनेवालेको ही ईश्वरके दर्शन होते है। जो कामके अधीन है, वह सोया हुआ है। जो किसी दिन भी कामके अधीन होता नहीं, वही जागा हुआ है। जिसका मोह छूट गया है; जिसमें विवेक-वैराग्य स्थिर हो गया है, वही जागा हुआ है। उसकी ही परमात्मामें प्रीति होती है। वही परमात्माकी भक्ति करता है। जीव नही जागता, तब तक उसे परमात्माके दर्शन होते नही।

दशरथ महाराजने हाथमे कटोरा लेकर अन्दर प्रवेश किया। प्रतिदिनका नियम था कि दशरथ महाराज जिस समय राजमहलमे पधारते उस समय घरकी दासियाँ लज्जामे घूँघट काढ़कर खड़ी रहती परन्तु, आज तो दासियाँ कौशल्याजीकी विशेष सेवामे थी, कौशल्याजीको मना रहीं थी। बालक श्रीरामको गोदमें ले रही थी। राम-ललाके दर्शनमे सब दासियाँ इतनी तन्मय थी कि न तो किसीको शरीरकी सुधि थी, न संसारकी। दशरथ महाराज अन्दर आए, परन्तु दासियोको जहाँ देहकी सुधि नही, वहाँ लज्जा किस प्रकार करतीं ?

सेवक, छड़ीदार पुकारते थे, हटो! हटो! महाराज पधार रहे हैं, महाराज पधार रहे हैं। रास्ता दो। परन्तु कौन सुने, कौन रास्ता दे! अन्दर अत्यन्त भीड़ थी।

महाराज दशरथ बहुत भोले थे। वे विचार करने लगे—इन सबके आशीर्वादसे तो पुत्र आया है। उन्होंने सेवकोसे कहा—तुम हटो, हटो बोलते हो तो कदाचित् किसी-को बुरा लगेगा। तुम किसीको तनिक भी नाराज न करो। इन सभीके आशीर्वादसे पुत्र आया है। तुम अब हटो, हटो, ऐसा मत कहो। ये लोग आनन्दमें तन्मय हो रहे हैं। इनको आनन्द लेने दो। मैं बाहर खड़ा हूँ।

दशरथ महाराज बाहर खड़े रहे। हाथमे कटोरा लिए प्रतीक्षा करते रहे। आज तो ऐसा हुआ कि घरके स्वामीको भी कोई अन्दर घरमे जाने देता नही था। जो अन्दर गया सो वहीं रह गया। राम-दर्शनके आनन्दमे कोई बाहर निकलनेका नाम ही नही लेता था। लोग जो बातें करते थे, उन्हें दशरथ महाराज सुनते जाते थे। लोगोंको विश्वास हो चुका था कि ऐसा पुत्र कही किसीने नही देखा है। यह साधारण बालक नहीं, यह तो साक्षात परमात्मा हैं।

दशरथ महाराज यह सुनकर विचार करने लगे कि लोग भले ही रामको परमात्मा मानते हो, परन्तु मेरा तो यह पुत्र ही है और मैं इसका पिता हूँ। ये सब लोग मेरे रामको देख रहे हैं, परन्तु मैंने अभी तक अपने रामको देखा नही। अपने रामके मुझे दर्शन करने है। बालकको मुझे देखना है, खिलाना है परन्तु ये लोग मुझे रास्ता तो देते ही नही, मैं किस प्रकार कहूँ कि मुझे अन्दर जाना है ? ये ही स्वयं समझकर मुझे मार्ग दे दें तो अच्छा रहेगा।

महाराजकी आतुरता अब बहुत ही बढ़ गयी थी। राम-दर्शनके लिए अब प्राण तड़पने लगे थे। महर्षि वशिष्ठके ध्यानमें यह सब आ गया। वे समझ गये कि अब राजा दशरथ रामजीका अधिक वियोग सहन नही कर सकेंगे, इसलिए वशिष्ठजीने राजासे कहा—मेरे पीछे-पीछे तुम चले आओ। राजमहलमे, राजदरबारमें, श्रीअयोध्या-

रामजीने चन्द्रसे कहा—तू धीरज रख, इस अवतारमे मैंने सूर्यको लाभ दिया है परन्तु कृष्णावतारमें तेरे लिए रात्रिके बारह बजे पीछे आऊँगा। सूर्यवंशमें प्रगट होकर रामचन्द्रजीने इस जन्ममें सूर्यको लाभ पहुँचाया। कृष्णावतारमे चन्द्रवंशमें प्रगट होकर परमात्माने चन्द्रमाको लाभ पहुँचाया। चन्द्रमाको दिया गया रामावतारका यह वचन था। श्रीकृष्ण प्रगट हुए। उस समय सम्पूर्ण जगत गाढ़ निद्रामें था। जगतमें दो ही जीव जगे हुए थे. वसुदेव-देवकी और आकाशमें जाग रहा था चन्द्रमा।

जो जागता है, उसे परमात्माके दर्शन होते हैं। जो सोया हुआ है उसे संसार मिलता है।

मोह निसाँ सबु सोवनिहारा। देखिअ सपन अनेक प्रकारा।
एहिं जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच बियोगी॥
जानिअ तबहिं जीव जग जागा। जब सब बिषय बिलास बिरागा।
होइ बिबेकु मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथ चरन अनुरागा॥

इस मोहरूपी रात्रिमें सोते रहनेवाले अनेक प्रकारके स्वप्न देखते हैं, भोग भोगते हैं, वासना बढाते हैं। इसमें ही रचे-पचे रहते है और इसलिए वे सदा ऊँघते ही रहते हैं परन्तु जो योगी है, ज्ञानी है, परमार्थी है, भक्त है, जिसने माया-प्रपंचको दूर किया हुआ है, वह इस संसारमे जागता है।

न हि प्रबुद्धः प्रतिभासदेहे
देहोपयोगिन्यपि च प्रपंचे।
करोत्यहन्तां ममतामिदन्तां
किन्तु स्वयं तिष्ठति जागरेण॥

विषय-भोगोंका जो त्याग करता है, जिसके हृदयमें संसारके प्रति कोई आसक्ति नही रहती, जिसने मैं, तू और मेरा त्याग दिया है वही इस जगतमें जागता हुआ है। सोनेवाला संसार-सुख भोगता है और जागनेवाला परमात्माका आनन्द अनुभव करता है। जागनेवालेको ही ईश्वरके दर्शन होते हैं। जो कामके अधीन है, वह सोया हुआ है। जो किसी दिन भी कामके अधीन होता नही, वही जागा हुआ है। जिसका मोह छूट गया है; जिसमें विवेक-वैराग्य स्थिर हो गया है, वही जागा हुआ है। उसकी ही परमात्मामें प्रीति होती है। वही परमात्माकी भक्ति करता है। जीव नही जागता, तब तक उसे परमात्माके दर्शन होते नहीं।

दशरथ महाराजने हाथमे कटोरा लेकर अन्दर प्रवेश किया। प्रतिदिनका नियम था कि दशरथ महाराज जिस समय राजमहलमे पधारते उस समय घरकी दासियाँ लज्जामे घूँघट् काढकर खड़ी रहती परन्तु, आज तो दासियाँ कौशल्याजीकी विशेष सेवामे थी, कौशल्याजीको मना रही थी। बालक श्रीरामको गोदमें ले रही थीं। राम-ललाके दर्शनमे सब दासियाँ इतनी तन्मय थी कि न तो किसीको शरीरकी सुधि थी, न संसारकी। दशरथ महाराज अन्दर आए, परन्तु दासियोंको जहाँ देहकी सुधि नही, वहाँ लज्जा किस प्रकार करतीं ?

सेवक, छडीदार पुकारते थे, हटो ! हटो ! महाराज पधार रहे हैं, महाराज पधार रहे हैं। रास्ता दो। परन्तु कौन सुने, कौन रास्ता दे ! अन्दर अत्यन्त भीड थी।

महाराज दशरथ बहुत भोले थे। वे विचार करने लगे—इन सबके आशीर्वादसे तो पुत्र आया है। उन्होंने सेवकोसे कहा—तुम हटो, हटो बोलते हो तो कदाचित् किसी-को बुरा लगेगा। तुम किसीको तनिक भी नाराज न करो। इन सभीके आशीर्वादसे पुत्र आया है। तुम अब हटो, हटो, ऐसा मत कहो। ये लोग आनन्दमें तन्मय हो रहे हैं। इनको आनन्द लेने दो। मैं बाहर् खड़ा हूँ।

दशरथ महाराज बाहर खड़े रहे। हाथमे कटोरा लिए प्रतीक्षा करते रहे। आज तो ऐसा हुआ कि घरके स्वामीको भी कोई अन्दर घरमे जाने देता नही था। जो अन्दर गया सो वही रह गया। राम-दर्शनके आनन्दमे कोई बाहर निकलनेका नाम ही नही लेता था। लोग जो बाते करते थे, उन्हें दशरथ महाराज सुनते जाते थे। लोगोंको विश्वास हो चुका था कि ऐसा पुत्र कही किसीने नही देखा है। यह साधारण बालक नही, यह तो साक्षात परमात्मा हैं।

दशरथ महाराज यह सुनकर विचार करने लगे कि लोग भले ही रामको परमात्मा मानते हो, परन्तु मेरा तो यह पुत्र ही है और मैं इसका पिता हूँ। ये सब लोग मेरे रामको देख रहे हैं, परन्तु मैंने अभी तक अपने रामको देखा नही। अपने रामके मुझे दर्शन करने है। बालकको मुझे देखना है, खिलाना है परन्तु ये लोग मुझे रास्ता तो देते ही नही, मैं किस प्रकार कहूँ कि मुझे अन्दर जाना है ? ये ही स्वयं समझकर मुझे मार्ग दे दें तो अच्छा रहेगा।

महाराजकी आतुरता अब बहुत ही बढ गयी थी। राम-दर्शनके लिए अब प्राण तड़पने लगे थे। महर्षि वशिष्ठके ध्यानमें यह सब आ गया। वे समझ गये कि अब राजा दशरथ रामजीका अधिक वियोग सहन नही कर सकेंगे, इसलिए वशिष्ठजीने राजासे कहा—मेरे पीछे-पीछे तुम चले आओ। राजमहलमे, राजदरबारमें, श्रीअयोध्या-

जीमें महर्षि वशिष्ठका बहुत ही सम्मान था। वशिष्ठजी महान् ज्ञानी, तपस्वी और ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण थे। वे पधारे, उस समय सब हाथ जोड़कर खड़े होकर वन्दन करने लगे। वशिष्ठजीके पीछे-पीछे दशरथ महाराज अन्दर गये।

कौशल्याजीकी गोदमें सर्वाङ्गसुन्दर श्रीरामका दर्शन करके राजा दशरथके आनन्दकी अवधि न रही।

रामं राजीवपत्राक्षं दृष्ट्वा हर्षाश्रुसंप्लुतः।

शरीरमें रोमांच हो गया। कंठ गद्गद हो गया। महाराजको लगा कि कैसा सुन्दर दीखता है। मेरा राम सुखी रहे। मेरे रामकी मार्कण्डेयके तुल्य आयु हो। श्रीराम और दशरथजीकी आँखें चार हुई। जब परमात्मा दृष्टिपात करते हैं, जब चार आँखें मिलती हैं तो बहुत आनन्द होता है। जब तक यह जीव शुद्ध न हो, सब प्रकारसे अभिमान छोड़कर भगवानकी शरण में न जाये, तब तक परमात्मा उसपर दृष्टिपात करते नहीं। जिसका कपड़ा मैला है उसको सम्मुख देखनेकी हमें भी इच्छा होती नही, तो फिर भगवान तो नजर डालें ही क्यों? जो स्वार्थके लिए ही प्रभुके दर्शन करने जाता है उसके ऊपर प्रभु नजर डालते हो नहीं। केवल भगवानके लिए ही जो मन्दिर जाता है, उसपर ही प्रभु नजर डालते हैं।

दशरथ राजा और रामजीकी चार आँखें जहाँ मिली कि राजाको अतिशय आनन्द हुआ। रामजीके कपोलोंमें स्मित हास्य आया। दशरथ महाराज विचार करने लगे—अभी तक तो यह हँसते नहीं थे। मुझे देखनेके बाद ही हँसे हैं। मैं इनका ठीक पिता और "राम" ये मेरे बालक है। ये मुझे पहचानते हैं, इसलिए हँसते हैं।

बड़े आनन्दसे दशरथ महाराज रामजीको मधु चटाने लगे। दशरथजीने महर्षि वशिष्ठसे कहा—महाराज! अब कोई वेद-मंत्र बोलिये, मैं मधु चटा रहा हूँ। वशिष्ठजी श्रीराम-दर्शनमें इतने तन्मय हो गये थे कि उनको कोई मन्त्र याद ही नही आता था। परमात्माके दर्शनके पश्चात् वेद भुला दिए जाते हैं। वेद, प्रभुके दर्शनोंका साधन है। परमात्मासे मिलनेके बाद सब कुछ भूल जाता है।

अत्र वेदा अवेदा भवन्ति। अत्र मर्त्यो अमर्त्यो भवति। अत्र ब्रह्मः समश्नुते।

ब्रह्म-साक्षात्कार होता है, तब सब कुछ भूल जाया जाता है। दशरथ महाराजने पुनः वशिष्ठजीसे कहा—गुरुदेव! कोई मन्त्र तो बोलो। वशिष्ठजीने कहा—मन्त्र क्या बोलूं? तुम्हारे रामको देखनेके पश्चात् तो मुझे अपना नाम भी याद रहा नही। मैं कौन हूँ और क्या कहूँ, कुछ ध्यान नही।

वशिष्ठजी ब्रह्मनिष्ठ थे। ब्रह्म-साक्षात्कार होनेके बाद तो सबकी विस्मृति हो गयी थी। समाधि लग गयी थी। श्रीराम-दर्शनमें शरीरकी विस्मृति हो, तभी ब्रह्मके दर्शन होते हैं। अन्यान्य ब्राह्मण मंत्र बोलने लगे और दशरथ महाराज मधु चटाने लगे।

अयोध्याजीकी नारियाँ बहुत ही भाग्यशालिनी थीं। वे अन्दर जाती थीं, कौशल्याजीके साथ बातें करती थी, कौशल्या माँको मनाती थीं। माँ ! लल्लाको मेरी गोदमें दो। माँ ! मेरी बहुत भावना है कि मैं लालाको गोदमें लूं। कौशल्या बहुत उदार थीं सो एक-एककी गोदमें श्रीरामको पधरा देती थीं।

पूरा नगर उमड़ पड़ा था। अयोध्याजीकी समस्त स्त्रियाँ यूथ बनाकर एकत्रित हुई थीं। पुरुष भी दर्शनोंके लिए आए थे, परन्तु राजमहलमे सिपाहियोंका पहरा था। स्त्रियोंको अन्दर प्रवेश मिलता था, पुरुषोंको कोई अन्दर जाने नही देता था। स्त्रियाँ नम्रताकी, दीनताकी प्रतीक हैं और पुरुष अहंकार, अभिमानके प्रतीक हैं। अहंकारीको ईश्वरके दरबारमें प्रवेश मिलता नही। जहाँ "मैं" है वहाँ परमात्मा आते नही। आज पुरुषोको बहुत दुःख हुआ कि हम पुरुष हुए, इसलिए हमको कोई अन्दर जाने देता नहीं, हम यदि स्त्री हुए होते तो हमको अन्दर प्रवेश मिल जाता।

यह बात महाराज दशरथके कानोमें गयी। सभी पुरुषोने कहा—महाराज ! हमको भी अन्दर जाना है, परन्तु ये सिपाही जाने देते नही। आज तो हम लोगोंको भी अन्दर प्रवेश मिलना चाहिए। अपने मालिकके हमको दर्शन करने हैं। कौशल्याजी तो हमारी माँ हैं। कौशल्या माँकी गोदमें विराजे हुए बालक श्रीरामके दर्शन करनेके लिये हम मब आए हैं। हमको अन्दर प्रवेश मिलना ही चाहिए। हमारी बहुत भावना है।

दशरथ महाराजको प्रजा आज प्राणोंसे भी प्यारी लगी। महाराजने बाहर नजर डाली तो आँगनमें बहुत भारी भीड लगी हुई थी। दशरथ राजाने विचार किया कि इतने अधिक लोग अन्दर कैसे आ सकेंगे और बाहर किस प्रकार निकलेंगे ? ये सब बहुत प्रेमसे आए हैं, मेरे रामको आशीर्वाद देने के लिए आए हैं। इन सबके आशीर्वाद-से मेरा पुत्र सुखी होगा।

दशरथ राजाने कौशल्याजीसे कहा—महारानी ! मेरी ऐसी इच्छा है कि तुम ही इस समय बाहर आँगनमें बैठो। बालकको गोदमें लेकर तुम आँगनमें बैठोगी तो इन सबको शान्तिसे दर्शन हो जायेंगे। इन सबका आशीर्वाद मिलेगा, हमारा पुत्र सुखी होगा।

कौशल्याजी आँगनमें आकर बैठी। गोदमें बालक श्रीराम विराजे हुए थे। अयोध्याकी प्रजा कितनी अधिक भाग्यशाली है कि उसने प्रत्यक्ष परमात्माका दर्शन

किया। दर्शनमें इतना आनन्द हुआ कि इस आनन्दमें किसीको भूख लगती नहीं थी, किसीको प्यास लगती नहीं थी, किसीको खाने-पीनेकी इच्छा होती नहीं थी। रामजीके दर्शनमें सबका मन और दृष्टि स्थिर हो गयी थी।

उत्सवके दिन परमात्माके दर्शन और स्मरणमें भूख और प्यास भूल जाय तो ही उत्सव सफल होता है। उत्सव देहभान भूलनेके लिए होता है। उत्सव जगतका सम्बन्ध छोड़कर परमात्माके स्वरूपमें तन्मय होनेके लिए है। उत्सव अर्थात् ईश्वरका प्राकट्य। देहमय होनेपर भी मनुष्यको जब देहभान न रहे, तभी ईश्वरका प्राकट्य होता है। जगत भूल जावे और प्रभु-प्रेममे तन्मयता प्राप्त हो तो आनन्द मिलता है। संसारके सुख-दुःखका असर मनपर न हो, इसके लिए उत्सव किया जाता है। देहमय होनेपर भी देहातीत आनन्दका अनुभव करनेके लिए उत्सव होता है। परमात्माको हृदयमे धारण करनेपर तो जीव देहभान भूलता है, भूख-प्यास भूलता है।

उत्सवके दिन कितने ही लोग तो प्रभुमें तन्मय न होकर प्रसादमें ही तन्मय हो जाते हैं। प्रसादमें तन्मय होनेके लिए उत्सव है क्या? रसनाका लाड करनेके लिए उत्सव नही। उत्सव तो परमात्माके साथ एक होनेके लिए है। उत्सवके समयमे शक्तिका, शरीरका, मनका, वाणीका सदुपयोग करो। उत्सवके समय भगवानका खूब स्मरण करो। उत्सवमे तो ईश्वर-सेवामें देहभान भूले, आंखोसे प्रेमके आँसू बहें, तो किया हुआ उत्सव सार्थक होता है। रामनवमीके दिन श्रीराम-दर्शन और श्रीरामनामका जप करते हुए अयोध्याकी प्रजाको इतना आनन्द हुआ कि सब हर्षपूरित हो गये। सबको ही देहभान भूल गया। नाचते-नाचते हरि-कीर्तन करने लगे।

राघवं करुणाकरं भवनाशनं दुरितापहं। माधवं खगगामिनं जलरूपिणं परमेश्वरम्॥
पालकं जनतारकं भवहारकं रिपुमारकं। त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम्॥
भिदूघनं घनरूपिणं शरधारिणं धरणीधरं। श्रीहरिं सुरपूजितं त्रिगुणात्मकं करुणार्णवम्॥
भुक्तिदं जनमुक्तिदं पुरुषोत्तमं परमेष्ठिनं। त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम्॥

(२८)

बाल-लीला

परमात्मा श्रीराम अयोध्याजीमें प्रगट हुए।

परमात्माका प्राकट्य मथुरामे अथवा अयोध्याजीमे हो, उससे अपनेको विशेष लाभ नही। परमात्मा अपने घर पधारे तो ही अपना कल्याण है। मन्दिरमे दीपक जलाया जाय तो प्रकाश आसपास मन्दिरमे ही रहेगा, अपने घरमे नही आवेगा। परमात्मा मन्दिरमे अथवा अयोध्यामे प्रगट हो इससे अपनेको क्या लाभ है? अपने घरको तुम अयोध्या बनाओगे तो ही राम-प्राकट्यका श्रेय तुमको मिलेगा। तीर्थमे रहना ठीक है परन्तु हम सभी अयोध्याजीमें जाकर रहने लगे तो वहाँ बहुत भीड हो जायेगी।

अयोध्या सन्तोकी भूमि है। ग्रन्थोमे लिखा है कि गगा-किनारा ज्ञान-भूमि है। श्रीयमुनाजी भक्ति महारानीका स्वरूप हैं और अयोध्याजी वैराग्यकी भूमि है। विरक्त साधु महात्मा आज भी अयोध्याजीमे विराजते है।

ससारका सुख सच्चा सुख नही, ऐसा जिसको विश्वास हो चुका है, वही वैराग्य कर सकता है, वही भक्ति कर सकता है। भोगी, ज्ञान-मार्गमे अथवा भक्तिमार्गमें आगे बढ़ सकता नही। भोगका त्याग किये बिना ज्ञान अथवा भक्तिका प्रारम्भ होता नही। ससार-का सुख जिसको तुच्छ लगता है, वही भक्ति कर सकता है, वही वैराग्य साध सकता है। भोग ज्ञान-भक्तिमे बाधक है। ससारका भोग जिसे रोग के समान लगता है, लौकिक सम्पत्तिमें, परिग्रहमें जिसे विपत्ति दीखती है, विषयोका सयोग केवल वियोगके लिए ही है, क्षणिक है, ऐसा जो जानता है, वही ज्ञान-भक्तिकी वृद्धि कर सकता है।

भोगा भोगा महारोगाः सपदः परमापदः।
वियोगायैव सयोगा आधयो व्याधयो धियः॥

यह जीव अनेक जन्मोसे भोग भोगता आया है। उसको शान्ति कहाँ मिली? भोगसे शान्ति मिलती नही। शान्ति तो त्यागसे मिलती है। भोगोंकी अपेक्षा भोगोंके त्यागमे अनन्तगुना सुख है। भोगमे क्षणिक सुख है। त्यागमे सदैवका अनन्त सुख है। संसारका विषय जिसको मीठा लगता है, उसके जीवनमें संतोष नही। ससारका विषय जिसको मीठा लगता है, उसको वैराग्य नही। विषय अपनेको छोडकर जाते हैं तो दुःख होता है परन्तु यदि हम स्वय समझकर विषय छोड दे, वैराग्य करे तो आनन्द आता है।

संसार-सुख जब तक जिसको मीठा लगता है, तब तक उसका ज्ञान कच्चा है, उसकी भक्ति कच्ची है। भक्तिका रंग लगे, तभी सांसारिक सुखपर घृणा आती है। परमात्माके बिना सब कुछ निरर्थक है, ऐसा ज्ञान हुए बिना वैराग्य आता नहीं। संसारके विषयोंमें वैराग्य न आवे, तब तक शुद्ध भक्तिका आरम्भ होता नहीं, ज्ञान-साधनाका आरम्भ होता नहीं। जब संसारके प्रत्येक विषयके प्रति वैराग्य आवे, तभी ज्ञानभक्तिका उदय होता है।

संसारका विषय सुखस्वरूप नहीं, दुःखस्वरूप है। क्षणिक है, असत् है। चैतन्य परमात्मा आनन्दस्वरूप है, वह एक ही सत् है। सत्-असत्का यह विवेक जागे तभी वैराग्य होता है। वैराग्य बिना ज्ञान आता नहीं। वैराग्यस्य फलं बोधो। ईश्वरके सिवाय सब कुछ तुच्छ है, ऐसा जो समझता है वही ज्ञान प्राप्त कर सकता है। ईश्वरके सिवाय संसारके जड़ पदार्थोंमें जिसको स्नेह होता है, वह आत्माको शरीरसे पृथक देख सकता नहीं।

देहात्मना संस्थित एव कामी।

आत्माको जो शरीरसे पृथक देखता नहीं, वह संसारके भोग-पदार्थोंमें फँसता है। भोग-विलासमें फँसा हुआ जीव ज्ञान-मार्गमें चल सकता नहीं। वैराग्य बिना ज्ञान आता नही। वैराग्य बिना भक्ति होती नहीं।

वैराग्यसे ही ज्ञान और भक्ति दृढ़ होती है। मनुष्य भक्ति करता नही, ऐसा नही। वह भक्ति करता है परन्तु सतत भक्ति नहीं करता। उसको संसारके विषय दुख देनेवाले होनेपर भी मीठे ही लगते हैं। संसारके विषयों पर मनसे घृणा नहीं उपजती।

अयोध्या वैराग्य-भूमि है। अयोध्यामें रहकर भक्ति करे तो भक्ति दृढ़ होती है। अयोध्या अति दिव्य भूमि है। अयोध्याके साधु बहुत ही सन्तोषी होते है। अयोध्याके साधु कभी माँगते नहीं, उनकी ऐसी निष्ठा होती है कि श्रीसीतारामजी हमको देते हैं। ये फटी कौपीन पहनते हैं, बहुत भूख लगती है तो सत्तू खाते है और सम्पूर्ण दिवस सीताराम-सीताराम-सीताराम, ऐसा जप करते है। आँख ऊँची करके वे किसीके सामने देखते नही। पासमें पैसा न हो, खानेको भी न हो, फिर भी मांगते नहीं। उनकी ऐसी भावना है कि श्रीसीताजी हमको सब कुछ देंगी। अगर कुछ मांगेंगे तो माँके पास ही मांगेंगे। हमको किसी मनुष्यके पास जाकर मांगना नहीं। दूसरेके पास जाकर मांगनेसे सीता माँको बुरा लगेगा। श्रीसीता माँ हमको जरूर देंगी। सन्तोंका दर्शन अयोध्याजीमें जैसा होता है, वैसा अन्य किसी जगह नहीं होता।

भगवान अनुकूलता दें तो अयोध्याजीमें जाकर रहना परन्तु अधिक उपयुक्त तो यह है कि तुम अपने घरको ही अयोध्या बनाओ। अयोध्या शब्दपर थोड़ा विचार

करो। जहाँ युद्ध नही, उसे अयोध्या कहते हैं।

युद्धः न भवतीति अयोध्या।

जहाँ युद्ध नही, जहाँ वैर नही, जहाँ विकार-वासना नही, जहाँ मेरा-तेरा नहीं, जहाँ कपट नही, जहाँ दम्भ नही, जहाँ है केवल शुद्ध प्रेम। जहाँ शुद्ध प्रेम हो, वही परमात्मा प्रगट होते हैं। वैर और वासना तनको बिगाडते हैं, मनको बिगाडते हैं।

अपने तन-मनको अयोध्या बनाना हो तो ऐसा दृढ़ निश्चय करो कि आजसे मेरा कोई शत्रु नही। मेरा किसीने कुछ बिगाडा नही। मुझे किसीने तनिक भी दुःख दिया नही। मेरे दु.खका कारण मेरे ही अन्दर है, मेरा स्वयका अज्ञान ही है। अधिकतर मनुष्य अज्ञानसे ही दु खी होता है। समझदारीमे सुख है और अज्ञानमें दु.ख है। अज्ञानसे ही वैर और वासना जगते हैं। मानव ऐसी कल्पना करता है कि अमुक व्यक्तिने मुझे दुःख दिया है। यह कल्पना खोटी है। दु.ख मनुष्यके स्वयंके कर्मका फल है। कोई किसीको सुख देता नही। कोई किसीको दु ख दे सकता नही। संसार कर्म-भूमि है। किए हुए कर्मका फल भोगनेके लिये यह जन्म मिला है। करेलेका बीज बोये और केलेकी आशा रखे, यह असम्भव है। मनुष्यने स्वय जो बोया, वही उसको काटना है। इस जगतमे कोई किसीका कुछ बिगाड़ता नही। तुम जगतमें किसीके लिये भी कुभाव न रखो। सबमें प्रभुका दर्शन करो।

तुलसी या ससारमें भाँति भाँतिके लोग।
सबसे हिल मिल चालिए नदी नाव संयोग॥

ज्ञान-मार्गमें ज्ञानी पुरुष ईश्वरके अलावा अन्य सब मिथ्या है, ऐसा समझकर सबका मनसे त्याग कर देते हैं। ज्ञानी महापुरुषोकी ऐसी निष्ठा है कि ईश्वरके अलावा जो कुछ भासता है, वह क्षणिक है, दु खरूप है, मिथ्या है। सब खोटा है, ऐसा बोलना सरल है परन्तु समझना बहुत कठिन है। साधारण मनुष्यकी ऐसी समझ होती है कि जो कुछ दीखता है, सच्चा है। जगत दिखाई देता है, और जो दिखाई देता है, उसे खोटा किस प्रकार समझा जाय ? आंखको दीखने वाला जगत खोटा है, यह किस प्रकार माना जाय ?

ज्ञानी महापुरुष कहते हैं कि जो दीखता है, वह सच्चा नही, जो स्थिर है, वह सच्चा है। जगतमे ईश्वरके अलावा कोई वस्तु शाश्वत नही। बीता हुआ कल जो था, वह आज नही है। आज जो है, वह आने वाले कल नही रहेगा। जगतका अर्थ ही यह है, जो क्षण-क्षण बदले।

महापुरुष ऐसा मानते हैं कि संसार मिथ्या है। स्वप्नमें बहुत कुछ दीखता है परन्तु इसमें-से कुछ भी सत्य होता है क्या? कदाचित् किसीको स्वप्नमें लाटरी मिले, इसमें उसको लाख रुपया मिले, तो इससे उसे कुछ लाभ है क्या? वह लाख रुपयेका सुख वह जागे, तब तक के लिये ही है। जागनेके बाद उसको विश्वास हो जाता है, यह तो स्वप्न है। कदाचित् किसी मनुष्यको स्वप्नमें ऐसा दिखे कि मैं भिखारी हो गया हूँ, मेरे पास अब कुछ भी रहा नही तो क्या यह सच है? स्वप्नका भिखारी भी सच्चा नही और स्वप्नमें मिला हुआ लाख रुपया भी सच्चा नहीं।

स्वप्न मां मूरख मलकाया, निरखी ललना लक्ष्मी माया।
आँख उघाड़तां आखर दीठा, खाटलड़ां ए पाया॥

स्वप्नका संसार और जागृत अवस्थाका जगत तत्वदृष्टि से विचार करने पर एक ही है। स्वप्नकी सृष्टि बहुत थोड़े समय टिकती है, और जागृत अवस्थाका जगत कुछ अधिक समय दिखाई देता है परन्तु इसका विनाश अवश्यम्भावी है। जो दृश्य है, वह दुःखरूप है, क्षणिक है, असत् है, मिथ्या है, ऐसा मानकर ज्ञानी पुरुष जगतका मोह छोड़ देते हैं।

वैष्णव ऐसा मानते हैं कि जगतमें जो कुछ दिखायी देता है, वह परमात्माका ही अंश-स्वरूप है। वैष्णव, जगत के सब प्राणियोंमें, जगत्के सब पदार्थोंमें भगवद्भाव रखते हैं, जगतको ब्रह्मरूप मानकर जगतके प्रत्येक पदार्थको ब्रह्मरूपमें देखते हैं।

जगतमें जो कुछ दीखता है, वह खोटा है, एक परमात्मा ही सत्य है—ऐसा अनुसन्धान रखकर व्यवहार करो, अथवा जगत खोटा है, यह सिद्धान्त ध्यानमें आता न हो तो जगत परमात्माका स्वरूप है, ऐसी भावना रखकर व्यवहार करो। तीसरा कोई मार्ग नहीं। इन दोमें-से कोई भी एक सिद्धान्त बुद्धिमें स्थिर करके संसारका मोह तो छोड़ना ही पड़ेगा।

अपने शरीरको अयोध्या बनाओ। मनमें-से वैर-विष विकार-वासना दूर करो। हृदयमें शुद्ध प्रेम भरो। सरयूजीके किनारे, भक्तिके किनारे सतत रहो। भक्तिका किनारा छोड़ना नही, भक्तिकी समाप्ति करना नही। भक्तिमें संतोष मानना नही। जिसे भक्तिमें संतोष हो जाता है, उसकी भक्ति कच्ची है। तुम वैष्णव हो, प्रभुके प्यारे हो, तुमसे बने तो अब भोगोंकी समाप्ति कर डालो। निश्चय करो—अब संसारका कोई सुख मुझे भोगना ही नहीं, मैंने संसारका खूब अनुभव किया है। अब मुझे सतत भक्ति करनी है। जो भक्तिके किनारे सदैव रहते हैं, उनका शरीर अयोध्या जैसा हो जाता है।

लोग प्रातःकाल स्नान करनेके पश्चात् घंटे-दो-घंटे भक्ति करें और पीछे सन्तोष मानें सेवा पूजा सब हो गयी, मैंने सब कर लिया। तुम प्रभुकी सेवा-पूजा करते हो, यह ठीक है परन्तु भक्तिमें सन्तोष हो यह ठीक नही। भक्ति तो निरन्तर करनी है। रात्रिको खटियामे भी भक्ति करनी है।

रामजी महाराज दिनके बारह बजे प्रगट हुए है और भगवान श्रीकृष्ण रात्रिके बारह बजे प्रगट हुए हैं। तुमसे बन पड़ं तो दिनके बारह बजे रोज रामनवमीका उत्सव करो और रात्रिको रोज जन्माष्टमीका उत्सव करो। दिनमें रामनवमी, रात्रिमे जन्माष्टमी, रोज ये उत्सव करनेकी आवश्यकता है। वैष्णव वह है जो रोज उत्सव करता है। कदाचित् तुमको ऐसा लगे, महाराज! तुम तो बहुत भार डालकर बोलते हो परन्तु परेशानी कितनी है, यह तुम क्या जानते हो? रोज रामनवमी करनी? रोज जन्माष्टमी करनी? अरे! उत्सवमे पैसा मुख्य नही, प्रेम मुख्य है। भक्तिमें धन मुख्य नही, प्रेम मुख्य है। अतिशय गरीब वैष्णव हो वह भक्ति कर सकता है, प्रेमसे उत्सव मना सकता है। रोज दो समय उत्सव करो, दोपहर खानेसे पहले और रात्रि सोनेसे पहले।

दिनके ग्यारह बजेके बाद भूख लगती है और भूख लगती है तब लोग भगवानको भूल जाते है। आज यहाँसे साढे बारह बजे पीछे घर जाकर फलाहार किया, उस समय ठाकुरजीका स्मरण किया था क्या? कितने ही तो जमीकन्दपर टूटकर पड़े होंगे। पत्नीसे कहा होगा, जल्दी लाओ, बड़ी भूख लगी है। ऐसेमे परमात्मा कहाँसे याद आवे?

शास्त्रोंमें लिखा है कि खानेसे पहले ज्यादा नही तो दस मिनटके लिए ही भगवानका स्मरण करो। तुरन्त खाना प्रारम्भ करना नही। खानेसे पहले ऐसा अनुसन्धान रखो कि ठाकुरजीने यह मुझको दिया है, मेरे अन्नदाता भगवान श्रीराम है, श्रीकृष्ण हैं। परमात्माके नामका थोडा जप करो। शास्त्रमे तो ऐसा लिखा है कि तुमको कोई भगवानका प्रसाद दे तो प्रसाद भी मनसे अपने ठाकुरजीको अर्पण करके पीछे लो। प्रभुने मुझे दिया है, ऐसी भावना रखो।

भोजनसे पहले भगवानसे कहो—आपकी कृपासे मुझे यह प्राप्त हुआ है। आपने ही मुझे यह दिया है। यह अन्न पेटमें गये पीछे मेरा मन बिगड़े नही। मैं सतत आपकी भक्ति करूँ। मुझे आपके चरणोमे आना है। पेटमे अन्न जानेके बाद कुछ रजोगुण आता है। मन चञ्चल होता है, शरीरमे जडता आती है। अन्नमे रजोगुण उत्पन्न करनेका दोष होता है।

परमात्माकी प्रार्थना करते हुए जो भोजन करता है, प्रभुका स्मरण करते-करते जो जीमता है, उसे यज्ञका पुण्य मिलता है। भोजन, यज्ञ है। पेटमे अग्नि है। अग्निदेवको आहुति देनी है।

ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणाहुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥

प्रभुका स्मरण करते-करते भोजन करो तो भोजन भी भक्ति है। भोजन करते समय दृष्टि परमात्मामें रखोगे तो भोजन भी भजन है। जीमते समय नजर अन्दर रखो, परमात्मामें रखो। सब कार्योमें परमात्माका अनुसन्धान रखो।

मध्याह्न-कालमें भूख, प्याससे जीव ईश्वरको न भूले, ईश्वरका स्मरण रखे, इसलिए रामजी मध्याह्न-कालमें प्रगट हुए है। दिनके समय रामजीकी सेवा करो। रात्रिके समय श्रीकृष्णकी सेवा करो, परमात्माको हृदयमें प्रगट करो। रात्रिको सोनेसे पहले भी उत्सव करो, भक्ति करो। मध्यरात्रिके समय मनुष्यको जब थोड़ी निवृत्ति मिलती है, उस समय वह कामाधीन बनता है। सम्पूर्ण दिवस तो मनुष्य किसी भी प्रवृत्तिमें तो होता ही है। प्रवृत्तिके समय काम इसको मारने आता नही। इसको जहाँ निवृत्ति मिली कि काम इसकी छातीपर चढ बैठता है। रात्रिके समय मनुष्य कामाधीन होकर ईश्वरको न भूले, इसलिए श्रीकृष्ण मध्यरात्रिमे प्रगट हुए है।

मध्याह्न-कालमे अयोध्याजीमे प्रभुका प्राकट्य हुआ है। श्रीरघुनाथजी भगवान, दशरथ महाराजके महलमें पधारते है। "दशरथ" शब्दपर थोड़ा विचार करो। पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंच कर्मेन्द्रिय—ये दस इन्द्रियाँ-रूपी घोड़े है।

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान् ।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥

शरीर, रथ है। आत्मा, रथी है, रथका मालिक है। बुद्धि, रथको हांकनेवाला सारथी है। इन्द्रिय, घोड़ा है। इन्द्रियोंका नियन्ता मन, लगाम है। शब्दादि विषय, ये अलग-अलग मार्ग हैं। संसारके सुन्दर विषय दीखे कि ये इन्द्रियरूपी घोड़े उनके पीछे दौडते है। इन दस इन्द्रिय-रूपी घोडोंको जो काबूमें रखे, उसका शरीर-रूपी रथ सीधा चलता है।

तुमको जाना है प्रभुके चरणोंमें, प्रभुके धाममें, परन्तु तुम्हारा रथ कहाँ जाता है? तुम्हारा इन्द्रिय-रूपी घोडा तुमको कहाँ खीचकर ले जाता है? परमात्माके चरणोंमें जाना हो तो प्रभुकी भक्ति करनी पडेगी। जो इन्द्रियोंके अधीन है, जो इन्द्रियोंको काबूमें रख सकते नही, वे परमात्माकी भक्ति क्या कर सकते है? वे परमात्माके चरणोंमें कहाँ से जा

सकते है ? ये इन्द्रियां ही मनुष्यकी शत्रु हैं और ये इन्द्रियां ही मनुष्यकी मित्र हो सकती हैं। यह जीव इन्द्रियोके अधीन बनता है तो इन्द्रिय शत्रु-पक्षकी हो जाती हैं, परन्तु इन्द्रिय जब जीवके अधीन रहती हैं तब ये मित्र बनती है।

आत्मा, इन्द्रियोंका मालिक है, स्वामी है। तुम बोलते हो कि "मेरी आंख, मेरे कान......" तुमको जहाँ जाना हो, वहाँ तुम्हारी आंख जाती है। तुमको जहां जाना नही, वहाँ तुम्हारी आँख नही जाती। इन्द्रियाँ नौकर है, तुम मालिक हो। जो नौकरके अधीन रहता है, उसे नौकर बहुत रुलाते है। परमात्माको जो शरीर-रथका मालिक बनाता नही, उसके शरीर-रथकी मालिक मन-इन्द्रियां बन बैठती है। मन-इन्द्रिय मालिक बनकर बैठ जायें तो वे जीवन-रथको गड्ढेमें डाल देती है।

इन्द्रियोके दास बनोगे तो भक्ति कर सकोगे नही। इन्द्रियोका दास भगवानकी भक्ति कर सकता नही। इन्द्रियोके गुलामको ईश्वरके स्वरूपका ज्ञान होता नही, ईश्वरका दर्शन होता नही। इन्द्रियां, भोग-साधन नही, भक्तिका साधन हैं। अपनी इन्द्रियोको संसारी विषयोके मार्गपर जानेसे निवारण करके प्रभुके मार्गकी ओर उन्मुख कर दो। इन्द्रियोको भगवद्रसका स्वाद चटाओगे तो फिर संसारके तमाम विषय-रस इनको फीके लगेंगे।

प्रभुकी रोज प्रार्थना करो कि भगवान ! मेरे शरीर-रथके ऊपर आप विराजो, मेरे हृदयमे आप विराजो और इस शरीर-रथको चलाओ। मेरे इन्द्रिय-रूपी घोडोको काबूसे बाहर जानेकी अपेक्षा अपने मार्गकी ओर अटकाओ। मैंने अपने शरीर-रथकी लगाम तुम्हारे हाथो सौंपी है। इन्द्रियोपर अधिकार रखो। मेरा रथ लक्ष्य-बिन्दु तक पहुँचाओ, मुझे अपने चरणोमे ले जाओ। प्रभुकी शरण, ग्रहण करनेवालोका ही जीवन-मरण सुधरता है।

दशरथ महाराज जितेन्द्रिय है, तपस्वी है। दशरथ महाराजके घर परमात्मा प्रगट होते हैं। शरीरको अयोध्या बनाकर, भक्तिके किनारे रहकर, मनुष्य एक-एक इन्द्रियका संयम बढ़ावे तो इसके घर आज भी श्रीराम प्रगट होते है। श्रीराम परमात्माका स्वरूप हैं। इन्द्रियोका सयम रखकर सतत भक्ति करनेवालेको आनन्द मिलता है। कदाचित् प्रत्यक्ष शख, चक्र, गदा, पद्मधारी भगवान उसको न दीखे, परन्तु चिदानन्द उसको अवश्य प्राप्त होते हैं। मनुष्य, परमात्माका तेज सहन कर सकता नही, इसलिए परमात्मा इसे अपना स्वरूप नही बताते, परन्तु अधिकारी जीवको वे अपना स्वरूप दिखाते हैं। उसको सच्चिदानन्द-स्वरूप बनाते हैं।

दशरथ महाराजकी भक्ति इतनी अधिक बढ़ी हुई है कि उन्हे परमात्माका आकर्षण हो जाता है। कितने ही लोग ऐसा समझते हैं कि इस गृहस्थीकी जंगलमें भक्ति हो सकती नहीं। यह समझ बुरी है। भगवानकी माया ऐसी विलक्षण है कि विवाहित भी पछताता है और जो विवाहित नही है, वह भी पछताता है। जो अविवाहित है उसे तुम कहो—तुम तो अकेले हो, इसलिए तुम बहुत ही सुखी हो। तुमको कोई उपाधि नही, कोई चिन्ता नही। तब वह कहेगा—मुझको क्या सुख है ? मेरी तो लग्न भी हुई नही। मुझको कुछ सुख नही। जो विवाहित नही, उसके मनमे कसक है। वह ऐसा समझता है कि लग्न किए पीछे ही सच्चा सुख मिलता है। विवाहितसे तुम कहो—तुम सुखी हो। तुम्हे बहुत शान्ति है। तो वह कहेगा—यह तो ठीक ही है। संसार जिस किसी प्रकार पूरा करना है, मेरे भाई ! ये छोकरे कैसे है यह सब मैं जानता हूँ। ससारमें दुःख है और दुःख ही है। भगवानकी माया उभय प्रकारसे जीवको मारती है।

गृहस्थाश्रम भक्तिमें बाधक नही, साधक है। भक्तिमें बाधक है गृहासक्ति। गृहस्थाश्रमीको कामासक्ति, विषयासक्ति बाधक है। गृहस्थाश्रम काम-भोगके लिए नही। पति और पत्नीका सम्बन्ध पवित्र है। पत्नी भोगके लिए नही, धर्मके आचरणके लिए है। सहधर्माचरणाय। इसीसे तो उसको धर्मपत्नी कहते हैं। अकेला पुरुष अथवा अकेली स्त्री, धर्म-मार्गमे आगे बढ़ सकते नही। अकेला नाविक या अकेली नाव, सागर पार कर सकती नही। दोनों साथ हो तो सागर पार हो सके। स्त्री नाव है, पुरुष नाविक है। ससार-सागरको तरनेके लिए दोनोको एक दूसरेके साथकी आवश्यकता है। पुरुषमें विवेक होता है और स्त्रीमें स्नेह विशेष होता है। विवेक और स्नेह एक संग मिले तो भक्ति प्रगट होती है।

पत्नीका संग कामसंग नही, परन्तु सत्संग है। सत्संगसे गृहस्थाश्रम सफल होता है। सत्संगसे मन शुद्ध होता है। गृहस्थाश्रममें पति-पत्नी रोज-सत्संग करे, एकान्तमें बैठकर पवित्र ग्रंथका वाचन करे, थोडा श्रीराम-स्मरण करें, श्रीकृष्ण-कीर्तन करे तो योगियोंको जो आनन्द समाधिमें मिलता है, वह आनन्द गृहस्थ को घरमें मिल सकता है। शास्त्रमें गृहस्थाश्रमका बहुत बखान किया है। महात्मा तो यहाँ तक कहते हैं कि गृहस्थाश्रमीका आनन्द अनेक बार योगियोके आनन्दसे भी श्रेष्ठ है।

घर छोडनेवालेको ही भगवान मिलते हैं, ऐसा नही। घरमें रहकर जो पवित्र और सदाचारी जीवन व्यतीत करे तो घरमें रहकर भी भगवान मिलते हैं। विकारोके वशमें न रहते हुए घरमें रहे तो भक्तिमें घर बाधक होता नही। छह शत्रु, छह विकार—काम क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर—जिसने जीत लिए हैं, वह यदि गृहस्थाश्रममें रहे अथवा वनमें रहे, एक समान ही है।

वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणाम्
गृहेषु पंचेन्द्रियनिग्रहस्तपः ।
अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्तते
निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम् ॥

जिसके मनमें विकार है, राग-द्वेष है, काम-क्रोध हैं, वह वनमे जावेगा तो ये विकार वहाँ भी उसको त्रास देगे। वनमे भी वह मनुष्य पाप करेगा परन्तु जिसने विकार जीते हैं, अपनी इन्द्रियोपर जिसका पूर्ण अधिकार है, भोगमे जिसको आसक्ति नही, जो संयमसे रहता है, स्वधर्मका पालन करते हुए जो समस्त व्यवहार दोष-रहित करता है, उसका घर ही तपोवन बनता है, अयोध्या बनता है, और वही रामजी प्रगट होते हैं। नन्द-यशोदाजी जैसा गृहस्थाश्रम हो, दशरथ-कौशल्याजी जैसा गृहस्थाश्रम हो तो आज भी परमात्मा प्रगट हो सकते है।

शास्त्रमें संन्यासकी बहुत बडी महिमा बतायी है। ससार के सर्वसुखका त्याग करके परमात्माके लिए ही जो जीते हैं, वे विरक्त साधु, सन्यासी, महात्मा श्रेष्ठ हैं, वदनीय हैं। यह ठीक है, परन्तु किसी सन्यासीके आश्रममे किंवा मठमे भगवानका अवतार हुआ है, ऐसा कही लिखा नही। भगवानके जितने अवतार हुए है वे समस्त गृहस्थके घर ही हुए हैं। भगवानको गृहस्थ बहुत रुचता है। गृहस्थाश्रम अति सुन्दर है। गृहस्थाश्रम-में मानव, सावधान होकर भक्ति करे तो उसे भगवान मिल सकते हैं। साधु सन्यासी ब्रह्म का चिंतन करते-करते ब्रह्मरूप होगे, परन्तु गृहस्थाश्रममे धीरे-धीरे सयम बढाये, सत्सग करके भक्तिमय जीवन बिताये तो वह गृहस्थ, भगवानको बालक बनाकर गोदमे खिलाता है!

जगत्-पिता आज दशरथ महाराजके घर पुत्ररूपमे पधारे है। परमात्माको कौशल्याजी गोदमे खिलाती हैं। कैकेयीके यहाँ दो बालकोका जन्म हुआ। सुमित्राजीके यहाँ एक बालकका जन्म हुआ। इस प्रकार दशरथ महाराजके यहाँ चार पुत्र जन्मे। वशिष्ठादिक ऋषि वहाँ आये और बालकोका नामकरण किया। वशिष्ठजीने कहा—कौशल्याजीका पुत्र सबको आनन्द देने वाला है। सबको जो आनन्द देता है, सबको जो रमण कराता है, उसको "राम" कहते हैं।

रमन्ते योगिनो यस्मिन् इति रामः। रमणाद्राम इत्यपि।

लक्ष्मणजीमे बहुत ही दिव्य लक्षण भरे हुए हैं। लक्ष्मणजी सर्वलक्षणसम्पन्न हैं, इससे उनका नाम है लक्ष्मण।

भरणाद्भरतोनाम लक्ष्मणं लक्षणान्वितम्।
शत्रुघ्नं शत्रुहन्तारमेवं गुरुरभाषत ॥

गुरुजीने कहा—श्रीराम-प्रेमसे जो जगतको भर देता है, उसका नाम है भरत। भरत श्रीराम-प्रेमकी मूर्ति है और जो शत्रुओंका विनाश करे वह हैं शत्रुघ्न।

चारों बालकोंका नामकरण हुआ। परम आनन्द हुआ। श्रीरामजीका नाम सुन्दर है। श्रीकृष्णकी लीला अति सुन्दर है, और श्रीरामचन्द्रजीका नाम अति सुन्दर है। श्रीकृष्णकी लीला अति मधुर है। श्रीकृष्णकी लीलामें सर्वको आनन्द मिलता है। श्रीरामजीकी लीला मधुर तो है, परन्तु रामजीका नाम अति मधुर है। श्रीराम-नामकी महिमा बहुत वर्णन की गयी है।

परब्रह्म ज्योतिर्मयं नाम उपास्य मुमुक्षुभिः।
रामनामजपेनैव देवतादर्शनं करोति ॥
रामनामजपादेव मुक्तिर्भवति।
राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे ॥
सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने।

× × ×

भर्जनं भवबीजानामर्जनं सुखसम्पदाम्।
तर्जनं यमदूतानां रामरामेतिगर्जनम् ॥

इससे भगवान शंकर पार्वती मांसे कहते है कि हे देवेश्वरी ! राम-नामसे अधिक इस जगतमें जप करने योग्य कुछ भी नही। राम—यह दो अक्षरका मंत्र शतकोटि मंत्रोंसे भी श्रेष्ठ है। राम-नामका जो जप करता है उसके सब पाप जल जाते हैं, उसके भवरोग टल जाते है। इसलिये देवी ! तुम भी हमेशा राम-नामकी रट लगाया करो।

न रामादधिकं किञ्चित् पठनं जगतीतले।
रामेति द्व्यक्षरो मन्त्रो मन्त्रकोटि शताधिकः ॥

× × ×

तस्मात्त्वमपि देवेशि रामनाम सदा वद।
रामनाम जपेद्यो वै मुच्यते सर्वकिल्बिषः ॥

राम-नामकी महिमा संतोने, भक्तोने बहुत गायी है। मीराबाईने अनेक सुन्दर पद रचे हैं। तुलसीदासजी महाराजने भी राम-नामकी महिमा बहुत वर्णन की है।

जद्यपि प्रभुके नाम अनेका। श्रुति कह अधिक एकतें एका।
राम सकल नामन्ह तें अधिका। होउ नाथ अघ खग गन बधिका॥

श्रीरामका भजन-कीर्तन करनेसे, श्रीराम-नामकी धुन लगानेसे मन नाच उठता है, हृदय आनन्दसे विभोर बनता है।

प्रेम मुदित मन से कहो
राम राम राम, श्रीराम राम राम,
राम राम राम, श्रीराम राम राम॥१॥
पाप कटे दुःख मिटे, लेत राम नाम,
भव-समुद्र सुखद नाव, एक राम नाम॥२॥ श्रीराम···
परम-शान्ति-सुख-निधान, दिव्य राम नाम,
निराधार को आधार, एक राम नाम॥३॥ श्रीराम···
परम गोप्य परम इष्ट मंत्र राम नाम,
सन्त हृदय सदा बसत, एक राम नाम॥४॥ श्रीराम···
महादेव सतत जपत दिव्य राम नाम,
काशि मरत मुक्ति करत, कहत रामनाम॥५॥ श्रीराम···
माता पिता बन्धु सखा सब ही राम नाम,
भक्त जनन जीवन धन, एक राम नाम॥६॥ श्रीराम···

श्रीराम-नाम अति मधुर है। श्रीराम-नाममे एक भी युग्माक्षर नही, वहाँ श्रीकृष्ण नाममें एक भी सरल अक्षर नही, दोनो युग्माक्षर हैं—'कृ और ष्ण' दोनो युग्माक्षर हुए, बोलनेमें कुछ परिश्रम होता है। कितने ही लोग 'क्रीश्न-क्रीश्न' कहते हैं। यह ठीक है परन्तु व्याकरण-प्रमाणसे इसका उच्चारण 'कृष्ण' होता है, क्रीश्न नही।

रामजीकी बाललीला दिव्य है। रामजीकी बाललीलामे भी मर्यादा है। मर्यादा-पुरुषोत्तमकी प्रत्येक लीलामे मर्यादा दीखती है। लक्ष्मण-भरतके साथ रघुनाथजी कौशल्या माँके आँगनमें रमते हैं, घुटनोसे चलते हैं। कौशल्याजीके राजमहलमें श्रीराम, परमात्मा होकर रमे नहीं, बालक होकर रमे हैं। एकबार एक जगह रामजीको रत्नमें अपना प्रतिबिंब दीखा, उसको देखकर रामजीको बहुत आनन्द हुआ। उनको ऐसा लगा, यह कोई सुन्दर बालक अन्दर बैठा है। रघुनाथजी इसको पकडने गये परन्तु प्रतिबिंब हाथमे किस रीतिसे आवे? प्रतिबिंबका बालक हाथमे आया नही तो रामजी रोने लगे।

कौशल्या माँ दौड़ती आयी। उन्होंने रामललाको उठा लिया और पूछने लगी—बेटा, क्यों रोता है ? तुझे क्या चाहिए ?

रामजीने कहा—माँ ! एक बालक अन्दर बैठा है। उससे मुझे मिलना है।

कौशल्या माँने कहा—बेटा ! अन्दर कोई बालक नहीं है, यह तो तेरा ही प्रतिबिंब दीखता है।

थोड़ा विचार करो—प्रतिबिंबको देखकर परमात्माको भी मोह हुआ। अपना प्रतिबिंब देखकरके भगवानको ऐसी इच्छा हुई कि यह बहुत सुन्दर है। इससे मैं मिलूं। इसके साथ मैं रमण करूँ। प्रतिबिंबके सौन्दर्यने प्रभुको भी मोहित किया। प्रभुका प्रतिबिंब ऐसा सुन्दर है तो बिंब कैसा होगा ? प्रतिबिंबकी अपेक्षा बिंब अति सुन्दर होता है। वैष्णव तो भाग्यशाली हैं कि प्रत्यक्ष परमात्माके स्वरूपको देखते हैं। ठाकुरजीको अपना शरीर देखनेकी इच्छा हो तो भी देख सकते नही। स्वयं अपना स्वरूप किस रीतिसे देखें ? भगवान तो दर्पणमें स्वयंके प्रतिबिंबको देखते हैं। स्वयं परमात्मा प्रतिबिंबको निहारते है, वहाँ वैष्णव बिंबके दर्शन करते है।

कौशल्याजीने रामचन्द्रजीको समझाकर शान्त किया। कौशल्या माँ रोज नया-नया उत्सव करती। एक बार कौशल्याजीने रामचन्द्रजीको मांगलिक स्नान करवाके सुन्दर शृंगार किया। रामललाका श्रीअंग माखन जैसा कोमल था, मेघ जैसा श्याम था। आँखे अति सुन्दर थीं। माँने सुन्दर पीत झँगुलिया पहनायी। बाल काढ़े, आँखमें काजल लगाया। मस्तकपर सुन्दर तिलक किया। रामललाको किसीकी नजर न लगे, इसके लिए सुवर्णमें मढ़ा हुआ व्याघ्र-नख धारण कराया। पीछे कौशल्या माँ रामचन्द्रजी-को हृदयका प्रेम-रस अर्पण करने लगी। स्तन-पान करनेके उपरान्त उन्होंने रामजीको पलनामें शयन कराया। बालक श्रीराम शयन कर गये।

उसके बाद कौशल्याजी श्रीलक्ष्मी-नारायणकी सेवामें बैठीं। कौशल्याजीके राज-महलमे श्रीलक्ष्मी-नारायणकी सेवा थी। माताजी सेवा अपने हाथोंसे करती थीं। रामा-यणमें ऐसा ही लिखा है।

भगवान तुमको खूब संपत्ति दे तो तुम दूसरा काम करनेके लिए भले नौकर रखो, परन्तु ठाकुरजीकी सेवामे कोई नौकर रखना नही। हमेशा ऐसा अनुसन्धान रखो कि मैं अपने भगवानका नौकर हूँ। तुम्हारे ठाकुरजीकी सेवा दूसरा कोई करे और तुमको यह सुहावे तो यह समझ लेना कि तुम वैष्णव नही। लोग पैसेके लिए परिश्रम करते हैं परन्तु ठाकुरजीके लिए परिश्रम करनेको तैयार नही। लोग पैसेके लिए शरीर घिसते हैं, परन्तु ठाकुरजीके लिए चंदन घिसनेमे उनको परिश्रम होता है। वे चन्दन घिसनेकी सेवा

दूसरेको सौंपते है। ठाकुरजीके लिए शरीर घिसाओ। ठाकुरजीकी सेवामे परिश्रम करो। ठाकुरजीकी सेवा स्वयं करो। कितने ही विद्वान होते हैं। वे कहते हैं—मेरे घरसे है। वह सेवा करती है। अरे! उस सेवाका फल घरवालीको मिलेगा। उससे तुम्हें क्या लाभ? जो सेवा करता है, उसको ही सेवाका फल प्राप्त होता है। पत्नी सेवा करे, उसका फल पतिको मिलता नही।

रामायणमें तो लिखा है कि कौशल्या माँ परमात्माके लिए रसोई स्वयं करतीं हैं। कौशल्याजी महारानी हैं। घरमे अनेक दास-दासियाँ है, परन्तु किसी नौकरकी बनाई सामग्री वे प्रभुको अर्पण करती नही। कौशल्या माँकी ऐसी निष्ठा है कि मेरे ठाकुरजी आरोगनेवाले है। अपने भगवानके लिए मैं सामग्री बनाऊँगी। वे स्वयं सामग्री बनाती हैं।

परमात्माके लिए रसोई करना भक्ति है। घरके लोगोंके लिए रसोई करे, यह व्यवहार है और अपने ही लिये रंधन करके खाये, यह पाप है, ऐसा शास्त्रमे लिखा है। रसोई करते समय मनमें परमात्माका स्मरण रखो। अपने ठाकुरजीके लिए रसोई बनाता हूँ, ऐसा भाव रखो। तुम रसोई करते हो, तब तुम्हारे मनमे कैसा भाव होता है? रसोई करनेवालेके विचार सूक्ष्मरूपसे अन्नमें आते हैं। रसोई करते समय मनमे अच्छे विचार आते हैं तो वे खानेवालेके मनको सुधारते है और खराब विचार होगे तो खानेवालोका मन बिगड़ेगा। रसोई करते समय मनमे जो फिल्मका कोई गीत गूँजता हो तो कामके परमाणु रसोईमें भी आवेगे। रसोई करते समय श्रृंगारका गीत गानेसे सस्कार रसोईमे जाते हैं। रसोई करते समय प्रभुका भजन गाओ तो रसोई जीमनेवालेका मन शुद्ध होगा।

आजकलकी माताओंको तो रसोई बनाना भी बोझा लगता है। वे बाजारसे गाँठिया-सेव इत्यादि कुछ मँगा लेती हैं और उससे काम चला लेती है। बाजारका भूसु (सेव) बहुत खाया जाय तो उससे इनके मगजमे भी भूसा ही भर जाता है, बुद्धि बिगड़ जाती है। बाजारका खाना कदाचित् स्वच्छ हो सकता है परन्तु शुद्ध होता नही। परन्तु आजकलके लोग रूप न बिगड़े, इसकी सुरक्षा करते हैं। कपड़ा न बिगड़े इसका ध्यान रखते हैं, परन्तु मन, बुद्धि न बिगड़े, उसके लिए कोई सावधानी रखते नहीं हैं।

शास्त्रमे ऐसा लिखा है कि पतिकी बुद्धि सुधारना पत्नीके हाथकी बात है। पत्नी अतिशय पवित्रतासे परमात्माके लिए सामग्री बनावे, प्रभुको भोग रक्खे और प्रसादी अन्न पतिदेवको खिलावे तो छह महीने पीछे इसकी बुद्धि धीरे-धीरे सुधरने लगती है। पवित्र अन्न पेटमें जाये तो बुद्धि सुधरनी ही चाहिए। अन्न मनको सुधारता है या बिगाड़ता है? अन्नसे ही मन बनता है।

मलः स्थविष्ठो भागः स्यान्मध्यमो मांसतां व्रजेत् ।
मनः कनिष्ठो भागः स्यात् तस्मादन्नमयं मनः ॥

अन्नके स्थूल भागमें-से मल बनता है, मध्य भागमें-से मांस बनता है और सूक्ष्म भागमें-से मन बनता है ।

तस्मादन्नमयं मनः ।

मन, अन्नमें-से बनता है इसलिए रसोई करो, वहाँ खूब पवित्रता रखो । बहुत-सी बहनें नहानेसे पहले कूकर चढ़ा देती है । स्नान करनेसे पहले रसोई करें, यह क्या सुघरा हुआ काम कहलायेगा ? स्नान करके, पवित्र होकर रसोई करो । रसोई करनेमें परमात्माका स्मरण करो । पवित्रतासे रसोई करोगे तो जीमनेवालेका कल्याण होगा ।

धर्मकी गति अति सूक्ष्म है । दूसरा काम करनेके लिए भले नौकर रखो, परन्तु ठाकुरजीकी सेवामें नौकर रखना नहीं । तुम अपने द्वारा ही ठाकुरजीकी सेवा करो ।

कौशल्याजी लक्ष्मीनारायणकी सेवा करने लगीं । परमात्माका श्रृंगार किया । ठाकुरजीके सम्मुख सामग्री पधरायी । भगवानसे प्रार्थना की—हे नाथ ! अब आप पधारो । थोड़ी सामग्री रसोईमें रह गयी थी, वह लेनेके लिए कौशल्याजी अन्दर गयीं । प्रभुने वहाँ लीला की । नारायणके सिंहासनपर बालक श्रीराम विराजे और धीरे-धीरे आरोगने लगे । कौशल्याजी बाहर आयीं और यह देखकर आश्चर्य हुआ । यह क्या ? मेरा राम यहाँ बैठ गया है । वह तो पालनेमें शयन कर रहा था । माताजी दौड़ती गयीं और देखा तो श्रीराम पालनेमें भी सो रहे थे । एक स्वरूपमें पालनेमें पौढ़े थे और एक स्वरूपमें नारायणके सिंहासनपर विराजे थे, प्रत्यक्ष आरोगते थे । जहाँ अतिशय प्रेम हो, वहाँ भगवान प्रत्यक्ष भोग लगाते हैं । जहां साधारण प्रेम होता है वहाँ परमात्मा रसरूपमें आते हैं । कौशल्याजीकी बहुत निष्ठा थी इससे परमात्मा, प्रत्यक्ष भोग लगाते थे ।

कौशल्याजी घबड़ायी कि इन दोनोंमें कौन सा राम सच्चा है । पलनेमें हैं, वह राम असली हैं या सिंहासनमें हैं वह राम असली हैं ? प्रभुके कपोलोंमें स्मित हास्य आया । कौशल्याजीको अतिशय आनन्द हुआ । प्रभुने बालस्वरूप अन्तर्द्धान किया । कौशल्याजीने चतुर्भुज नारायणके दर्शन किए ।

तन पुलकित मुख बचन न आवा । नयन मूँदि चरननि सिरु नावा ॥

परन्तु बादमें चतुर्भुज स्वरूप अन्तर्द्धान हो गया, बालस्वरूप प्रत्यक्ष हुआ । प्रभु पालनेमें शयन कर रहे थे । कौशल्याजी विचारने लगी—ना, ना, ऐसा कुछ नही । मेरा राम तो पालनेमें ही सोया है । अरे ! मैं तो रामका सतत चिंतन करती हूँ, इससे सिंहासनमें मुझको अपने राम दीखते है ।

धीरे-धीरे चारों भाई बड़े होने लगे। दशरथ महाराजका ऐसा नियम था कि रामजीको साथ लेकर भोजन करने बैठते थे। एकबार ऐसा हुआ कि दशरथ महाराज जीमने पधारे। रामजीको उन्होने साथ जीमनेके लिये बुलाया परन्तु रामजी खेलमें ऐसे तल्लीन थे कि आए नही। कौशल्या माँ उनको पकड़ने गयी। माँको आता देख रामजीने दौड लगायी।

कौशल्या जब बोलन जाई। ठुमुक ठुमुक प्रभु चलहिं पराई॥
निगम नेति सिव अंत न पावा। ताहि धरै जननी हठि धावा॥

कौशल्याजीने पीछे दौड लगाकर रामजीको पकड लिया। बड़े-बड़े योगी, ऋषि, मुनि जिनका अंत नही पा सके, उनको कौशल्या माँ हठपूर्वक पकड़ लायी। रामजीके अंगमें, वस्त्रोमें—सर्वत्र धूल भरी थी परन्तु दशरथ महाराजने तो प्रेमसे हँसकर उनको गोदमें बैठा लिया। रामजीने एकाध ग्रास मुखमे डाला या न डाला और फिर पीछे वे खिसक गये। इस प्रकार स्वयकी बाल-लीलासे रामजी माता-पिताको अतिशय आनन्द देते थे।

रामजीकी बाल-लीलामें अतिशय मर्यादा भी थी। परमात्मा खेलनेमें भी छोटे भाइयों भरत, लक्ष्मणको नाराज करते नही। भाइयोके साथ खेलते, वहाँ विचार करते कि मेरे छोटे भाइयोंकी हार होगी तो उनको दुख होगा। इसलिए स्वयं हार जाते। खेलनेमें भी रामजीने भरत-लक्ष्मणका दिल कभी नही दुखाया। भरतकी या लक्ष्मणकी आँखमे आँसू आवे, वह रामजी सहन कर सकते नही।

तुम दूसरेके लिए जैसा भाव रखोगे, वैसा दूसरा तुम्हारे लिए रखेगा। रामजी छोटे भाइयोके लिए अनन्य प्रेम रखते थे। छोटे भाइयोका भी रामजीके प्रति वैसा ही अनन्य प्रेम था। भरत-लक्ष्मण छोटे है, फिर भी रामजी उनको मान देते। भगवान मान देनेवाले हैं—अमानी मानद। भरतजी कैकेयीसे कहते—माँ! बड़े भाई समर्थ हैं, फिर भी मुझको मान देते है।

श्रीरामचन्द्रजीकी मर्यादा रामायणमे ठीक-ठीक बतायी गयी है। रघुनाथजी बालक थे, तबसे धर्मकी मर्यादा पालते थे। सनातन धर्मकी मर्यादा जितनी पालोगे, उतना मन शुद्ध रहेगा। मन जितना शुद्ध होगा, उतनी उसकी शान्ति भी बढ़ेगी। मन अशुद्ध है, इसलिए ही अशान्ति है। धर्मकी मर्यादाका जो पालन करता है, उसका मन बिगड़ता नही। श्रीराम चक्रवर्ती सार्वभौम राजाके बालक होनेपर भी, स्वय परमात्मा होनेपर भी, ऐसा नियम पालते कि सूर्य उगनेके पहले उठते, प्रातःकालमें स्नान करके माता-पिताका वन्दन करते।

आजकलके सुधरे हुए लोग तो प्रभाते कपदर्शनम् हुए पीछे ही उठते है। कितने ही तो ऐसे होते हैं कि खटियामें पड़े-पड़े ही पूछते हैं कि चाय भेजी क्या ? चाय तैयार हुए पीछे ही साहब उठते है। अपनी भारतीय संस्कृतिमें प्रभातेकरदर्शनम् करके कुछ कहते हैं। इसके पीछे ऐसी भावना रखते हैं कि प्रभुने ये हाथ सत्कर्म करनेके लिये दिये है। मैं सत्कर्ममें ही इनका उपयोग करूँगा और उसके द्वारा भवसागर तर जाऊँगा। इसके बदले पहले तुम सबेरे उठकर 'कपदर्शनम्' करो, वह ठीक नही। धर्मकी मर्यादाका बराबर पालन करो।

अपने बालकोंको सारे संस्कार देनेके लिए भी तुम धर्मका पालन करो। तुम जितना धर्मका पालन करोगे, जितना सत्कर्म करोगे, इसके आधे सत्कर्म तुम्हारे लड़के करेंगे और इसका भी आधा इनके बालक करेंगे। माता-पिताका फर्ज है कि बालकोंको सारे संस्कार देनेके लिए सत्कर्म करें। बालकमें धर्मके संस्कार दृढ़ करनेके लिए बचपनसे ही धर्मका शिक्षण देना शुरू करो परन्तु कोरा उपदेश काममे आवेगा नही। जब तक अपने स्वयंके जीवनमें तुम धर्मका आचरण नहीं करोगे, तब तक तुम्हारे उपदेश-के कथनका बालकके ऊपर कोई असर होगा नहीं। उपदेश क्रियात्मक न हो तो वह प्रभावोत्पादक बनता नहीं। बालकके देखते पाप न करो।

साधारण ऐसा नियम है कि बालक अनुकरण करता है। माता-पिताका बर्ताव देखकर बालक भी उसी रीतिसे बर्ताव करता है। बालकके मनमे कोई भी बात जल्दी बैठ जाती है। बालकका हृदय कोमल है। वह कोमल हो तब तक उनको अच्छे संस्कार दोगे तो अपनी युवावस्थामें वे बिगड़ेंगे नही। अच्छा संस्कार उनका रक्षण करेगा। जो माँ-बाप बालकोंको अच्छे सस्कार नही देते, वे बालकके बैरी हैं। जो माँ-बाप बालकको धर्मका शिक्षण नही देते, भक्तिका शिक्षण नहीं देते, वे माँ-बाप बालकके हितेच्छु नहीं, उनके दुश्मन जैसा कर्तव्य करते हैं। बालकोंको ऐसा संस्कार दो कि बचपनसे ही वे धर्मकी मर्यादाका पालन करें।

श्रीरामचन्द्रजीने जगतको आदर्श बताया है—

प्रातरुत्थाय सुस्नातः पितरावभिवाद्य च।
पौरकार्याणि सर्वाणि करोति विनयान्वितः॥

रामजी प्रातःकालमें उठकर स्नान करते हैं। माता-पिताका वंदन करते है। पीछे विनयपूर्वक नगर-वासियोंके समस्त कार्य करते हैं।

प्रातःकालकी महिमाका ग्रंथोंमें बहुत वर्णन है। एक बार कौए और मनुष्यका झगड़ा हुआ। मनुष्यने कहा— हम बुद्धिमान हैं, हम श्रेष्ठ हैं। कौवोंने कहा—तुम बुद्धि-

मान हो, यह बात सच्ची है, परन्तु तुम्हारी अपेक्षा श्रेष्ठ हम हैं। हमारी जातिमें ऐसा एक भी नही कि जो सूर्य उगनेसे पहले स्नान न करता हो। तुम लोग तो जब सूर्य उदित होते हैं, तब खाटमे लोटते रहते हो। कोई कौवा ऐसा है कि जो सूर्योदय होनेपर घोंसलेमें सोता हो? कौवा सूर्य उगनेके पहले स्नान करता है। सूर्य उगनेके पहिले स्नान न करे तो उसपर कौवा भी हँसता है कि मैं हीन पक्षी हूँ, चाण्डाल हूँ, परन्तु इस मानवकी अपेक्षा मैं श्रेष्ठ हूँ।

जगतको प्रकाश देनेवाले परमात्मा तुम्हारे घरमें आवे और तुम्हारा स्नान हुआ न हो, तुम खाटमें लेट रहे हो, इसके जैसा पाप क्या? बुद्धिके मालिक सूर्य हैं। बुद्धिके मालिककी उपासना करनेसे बुद्धि शुद्ध होती है। प्रातःकालमें सूर्यनारायणको अर्घ्यदान करो। सूर्यनारायणके तेजोमय स्वरूपका ध्यान करो। सूर्यनारायणके अनन्त उपकार हैं। जगतमें दूसरे बहुत-से देव भावनासे दर्शन देते हैं, जबकि सूर्यनारायणमे भावना करनेकी जरा भी जरूरत पड़ती नही। सूर्यनारायण प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं। सूर्यनारायण बुद्धि सुधारते हैं, आरोग्य देते हैं।

आरोग्यं भास्करादिच्छेन्मोक्षमिच्छेज्जनार्दनात्।

सूर्यकी उपासना करनेसे शरीर निरोगी होता है। सूर्यकी उपासना करनेसे मन, बुद्धि शुद्ध होती है। सूर्यकी उपासना करनेवाला दरिद्री नहीं होता। महाभारतके वन-पर्वमें कथा आती है कि युधिष्ठिर सूर्यकी नियमित उपासना करते थे, उनको सूर्यदेवने वनमें अक्षयपात्र दिया हुआ था। द्वारिकानाथ श्रीकृष्ण भी नियमित सध्या करते थे। द्वारिकामे तो आज भी ऐसा नियम है कि ठाकुरजीका शृंगार हुए पीछे सोनेका लोटा, तर्पण-पात्र और आचमनी द्वारिकानाथके आगे रक्खी जाती हैं और मुखियाजी ऐसी भावना करते हैं—इस समय ठाकुरजी संध्या करने बैठे हैं।

रामजी प्रातःकालमें संध्या करते, माता-पिताका वन्दन करते थे। वन्दन जिसका होता है, उसको कुछ लाभ नही। लाभ तो जो वन्दन करता है, उसको होता है। आशीर्वाद रोज मिलता नही। किसी दिवस हृदय पिघल जाय और हृदयमे-से ध्वनि निकले कि तुम्हारा कल्याण हो, वह ही आशीर्वाद है। श्रीरामचन्द्रजी माता-पिताकी सेवामें रहते थे।

****

(२९)

विद्याध्ययन

उपनीता वसिष्ठेन सर्वविद्याविशारदाः ।
धनुर्वेदे च निरताः सर्वशास्त्रार्थवेदिनः ॥

वशिष्ठ गुरुने चारों भाइयोंका उपनयन-संस्कार किया। रघुनाथजी भाइयोंके साथ वशिष्ठ गुरुजीके घर विद्याध्ययनके लिये जाने लगे। प्राचीन कालमें ऐसी मर्यादा थी कि बड़े राजाका पुत्र हो, उसको भी पढ़ानेके लिए कोई गुरु राजमहलमें नही जाता था। राजकुमार गुरुके आश्रममें जाकर ही वेद-शास्त्रका अध्ययन करता था। आजकल तो मास्टर लड़केको पढ़ानेके लिए घर जाता है। मास्टर घरमें पढ़ाने आवे तो लड़का ऐसा समझता है कि मेरे बापने यह एक नौकर रख लिया है। मास्टरमें कोई श्रद्धा होती नहीं। अरे! यह तो ज्ञानदान करनेवाला गुरु है। गुरुदेवका ऋण अनन्त है। सद्गुरुकी कृपासे ही ज्ञान सफल होता है।

श्रीराम पढ़नेके लिए वशिष्ठजीके आश्रममें जाते थे। श्रीराम, परमात्मा हैं परन्तु इस संसारमें आनेके बाद रामजीको भी गुरुदेवकी आवश्यकता पड़ती है। यह संसार ऐसा मायामय है कि इसमें जो कोई आता है उसे थोड़ी माया तो व्याप्त होती ही है। कोयलेकी खानमें कोई उतरे और बढ़-चढ़कर बातें करे कि मैं बहुत चतुर हूँ। सावधान रहता हूँ कि जिससे मुझे तनिकसा भी काला धब्बा न लगे—क्या यह शक्य है? अरे! जो कोयलेकी खानमें उतरा है, उसे तो धब्बा लगना ही है। यह संसार मायामय है। इस मायामय संसारमें जो कोई आया, उसे कुछ तो माया व्यापती ही है।

संसारमे आया है, उसको मायाके संसर्गमें आना ही पड़ता है। माया बिना कोई काम होता नहीं। अग्निके बिना रसोई बनती नहीं। अग्नि उपयोगी है, परन्तु मनुष्य उसके साथ विवेकसे प्रेम करता है। अग्निको कोई हाथमे लेता नही, चिमटेसे उठाता है। मायाको पकड़ना होता है, परन्तु उसे अग्निकी तरह पकड़ना चाहिए, उसे विवेकरूपी सँड़ासीसे पकड़ो। संसारमें मायाका उपयोग भले ही करो, परन्तु मायाके गुलाम मत बनो। मायाके अधीन मत बनो। जो मायाके अधीन होता है, उसे माया मारती है।

अनादि कालसे मायाका और जीवका द्वन्द्व-युद्ध निरन्तर चलता आ रहा है। माया जीवको इस जगतके विषयोंमे फँसाये रखती है। माया जीवको फँसाती है। माया फुसलाती है कि स्त्रीमें सुख है, पैसेमें सुख है, संसारमें सुख है। जीव जहाँ जाता है,

वहीं माया साथ जाती है। जीव मायामे मिल जाता है। माया जीवको ईश्वरके पास जाने देती नहीं। जो ईश्वरके पीछे पडता है, वह मायाको दूर कर सकता है। माया अति दुस्तर है। जिसको मायासे तरनेकी इच्छा हो, उसे प्रत्येक इन्द्रियसे ब्रह्मचर्यका पालन एवं नियमसे एकान्तमें बैठकर ईश्वरका ध्यान करना चाहिए। मायासे तरनेकी इच्छा हो उसे स्वतन्त्र रहना चाहिए नही। किसी योग्य गुरुकी शरणमे जाना चाहिए। किसी सन्तके चरणोंका आश्रय लेना, सन्तकी आज्ञामें रहना, सन्तकी आज्ञानुसार साधन करना चाहिए। मायासे बचना हो तो सद्गुरुकी शरणमे जाना अत्यन्त आवश्यक है।

माया दीपक नर पतंग भ्रमि भ्रमि इवै पडन्त।
कहै कबीर गुरु ग्यान ते एक आप उबरन्त॥

श्रीरामचन्द्रजी तो परमात्मा हैं, मायारहित शुद्ध ब्रह्म है। रामजी जगतको ज्ञान देते हैं। मैं ईश्वर हूँ, उस पर भी मुझे सद्गुरुकी आवश्यकता पड़ती है।

आजकल तो बहुत-से लोग आराम कुर्सी पर पडे-पड़े पुस्तकें पढकर ही ज्ञानी हो जाते हैं और व्याख्यान भी अच्छा करते है। पुस्तकोको पढकर मिला हुआ ज्ञान तुमको कदाचित् दो पैसा प्राप्त करा दे, प्रतिष्ठा दिला दे परन्तु अन्दरकी शान्ति दिलाएगा नहीं। पुस्तकें पढ़कर मिला हुआ ज्ञान भूल जाता है। छह-आठ महीने कोई न पढ़े तो धीरे-धीरे उसको भूलने लग जाता है। पुस्तकोसे मिला हुआ ज्ञान पुस्तकोमें ही रहता है, मस्तकमें आता नहीं, और आ भी जाय तो ठहरता नही। परमात्माकी कृपासे जिसको ज्ञान मिला है, वह ज्ञान भूलता नही। जिसको सद्गुरुका आशीर्वाद मिला है, जिसने सद्गुरुकी सेवा की है, उसका ज्ञान स्थायी होता है। गुरुदेवके आशीर्वादसे ज्ञानमे स्थिरता आती है। ज्ञान मिलना बहुत कठिन नही अपितु ज्ञानका स्थिर रहना बहुत कठिन है।

मनुष्य मूर्ख नही, परन्तु मनुष्यका ज्ञान स्थिर रहता ही नही। परमात्मा जिसको ज्ञान देते हैं, उसीका ज्ञान स्थिर रहता है। परमात्माको जिसपर दया आई, उसीको विषयोंमें वैराग्य दीखता है। उसीको संसारके सुख तुच्छ लगते हैं। ससार-सुखमें मनसे घृणा आवे तो मानना चाहिए कि परमात्माने कृपा की है। पूर्ण सयमके बिना ज्ञान आता नही। पुस्तकें पढ़कर शब्दज्ञान मिलता है, उससे अभिमान हो जाता है। सद्गुरु-कृपासे, ईश्वर-कृपासे प्राप्त हुआ ज्ञान विनय, विवेक, सद्गुण और सदाचार लाता है।

पारसके परसन ते, कंचन भई तलवार।
तुलसी तीनों ना गये, धार मार आकार॥
ज्ञान हथौड़ा हाथ लै, सद्गुरु मिला सुनार।
तुलसी तीनों मिट गये, धार मार आकार॥

सद्‌गुरु ही संसार-सागरके माया-मगरसे बचाते है, अन्दरकी वृत्तियोंका विनाश करते है। वासना-विकार मिटा देते हैं, और संसार-सागर से पार करा देते हैं। ऐसे सद्‌गुरुकी आज उपेक्षा होती है और केवल पुस्तकीय ज्ञानका प्रचार चलता है। बहुत वर्षों तक पुस्तक पढते हुए भी जो ज्ञान प्राप्त होता नहीं, वह संतकी कृपासे क्षण-मात्रमें हो जाता है। किसी सन्त महापुरुषकी तन, मन, धनसे सेवा करोगे तो संतका हृदय पिघलेगा और अतरका आशीर्वाद प्राप्त होगा। सेवासे विद्या सफल होती है। रामजी गुरुकुलमें रहकर गुरुजीकी सेवा करने लगे। श्रीकृष्णने भी सान्दीपन ऋषिके आश्रममें रहकर गुरुजीकी खूब सेवा करके ज्ञान प्राप्त किया था।

भगवान शंकर पार्वती माँसे कहते है—देवी! जिन परमात्माकी श्वाससे वेद प्रगट हुए हैं, वे ही भगवान आज वशिष्ठ गुरुके घर पढने बैठे हैं। धनुर्वेदका अध्ययन प्रभुने वहाँ किया। समस्त वेद-शास्त्रोंका अध्ययन किया। रामजीने वशिष्ठजीके पास पैसा कमानेकी विद्या नही पढ़ी, अध्यात्म-विद्या पढ़ी थी। आत्माका स्वरूप क्या है? परमात्मा क्या है, कैसा है? आत्मा-परमात्माका सम्बन्ध क्या है? यह जगत क्या है? जीवन क्या है? जीवनका लक्ष्य क्या है? इस अध्यात्म-विद्याका रामजीने अध्ययन किया था।

आजकल अधिकतर स्कूल-कॉलिजोमे पैसा कमानेकी ही विद्या पढ़ाई जाती है। जीवनमें पैसेकी आवश्यकता है परन्तु पैसा मुख्य नही, परमात्मा मुख्य है। अपने ऋषियोने धनको साधन माना है, साध्य नहीं। पैसा कमानेकी विद्या तो वेश्याको भी आती हैं। वेश्या भी पर्याप्त धन कमाती है।

परधन परमन हरन कों, वेश्या बड़ी प्रवीन।
तुलसी सोई चतुरता, राम चरन लवलीन॥

पैसा कमानेकी विद्या कोई विद्या नही। अध्यात्म-विद्या ही विद्या है। संसार-बन्धनमें-से छुड़ाने वाली विद्या ही, सच्ची विद्या है। आजकल ज्ञान तो बहुत बढ़ा है, परन्तु ज्ञानका उपयोग छल-कपट करनेमें ही होता है। यह भी क्या ज्ञान है? यह कोई विद्या कही जा सकती है? सच्ची विद्या तो यह है कि जिसको प्राप्त होनेपर आत्म-स्वरूपका ज्ञान हो। शरीर और इन्द्रियोका सुख मेरा सुख नही। शरीरसे मैं भिन्न हूं। शरीरसे आत्मा अलग है—ऐसा ज्ञान प्रदान करे, वही विद्या सच्ची है। सच्ची विद्या वही है, जो जीवको प्रभुके चरणोंमें ले जाती है, मुक्ति दिलाती है।

सा विद्या या विमुक्तये।

ज्ञान, पैसा कमानेके लिए नही, प्रतिष्ठा प्राप्त करनेके लिए नही अपितु परमात्माको प्राप्त करनेके लिए है। ज्ञान, ईश्वरका आराधन करनेके लिए है, परमात्माके साथ एक होनेके लिए है। ज्ञानका फल पैसा अथवा प्रतिष्ठा नही, ज्ञानकी उपलब्धि परमात्मा है परन्तु आजकल बड़े-बड़े विद्वान पूरे दिन पैसोके पीछे पड़े रहते हैं और रात्रि-को कामान्ध बनते हैं। जिसके जीवनमें पैसा और काम-सुख मुख्य है, उसका जीवन व्यर्थ है। विद्याका उपयोग भोगके लिए करे, वह विद्वान नही। विद्याका उपयोग जन्म-मरणके चक्रसे छूटनेके लिए करे, वह विद्वान है।

विद्याके साथ संयमका शिक्षण मिले, सदाचारका शिक्षण मिले तो ही विद्या सफल होती है। प्राचीन कालमें ऋषि, ब्रह्मचारीको विद्याके साथ संयम-सदाचारका शिक्षण देते थे।

पढानेवाले ऋषि जितेन्द्रिय थे, विरक्त थे, इसलिये पढ़नेवाले विद्यार्थियोमे भी संयम उत्पन्न होता था। संयम ही सुख देनेवाला है। विद्यार्थी-अवस्थामें संयमकी अत्यन्त आवश्यकता है। गुरुकुलमे रहकर तीन बार संध्या करना, वेदाध्ययन करना, सादा भोजन करना, गुरुकी सेवा करना, इन सब प्रकारके सद्‌गुणोंका संग्रह करते हुए संयम और सात्विकता विद्यार्थी, जीवनमें उतारते थे। बड़े-बड़े राजाओके बालक भी गुरुकुलमें रहते हुए सादा भोजन करते और सादा जीवन व्यतीत करते थे।

गुरुके संस्कार विद्यार्थियोमें आते है। आजकल पढ़ानेवाले शिक्षक आचार्य विलासी होते हैं, इसलिए पढनेवाले विद्यार्थी विलासी बनते हैं। डिग्री मिले, इससे गुरु होने-का अधिकार मिल नही जाता। विलासी जीवन बितावे और वह "शांकरभाष्य" पढ़ावे, उसका कोई अर्थ नही। गृहस्थाश्रमी, विलासी जीवन व्यतीत करे, वह क्षम्य है, परन्तु विद्यार्थी, विलासी जीवन वितावे, वह बिल्कुल क्षम्य नही। विद्यार्थी, विलासमें फँसे तो विद्याका नाश हो जाता है।

भारतमें जब तक ब्रह्मचर्य आश्रम था, तब तक भारत-भूमि दिव्य थी। ब्रह्म-चर्यकी प्रथा छिन्न-भिन्न हुई, तबसे अपने देशकी दशा बिगड़ने लगी। एक साधुने हमसे कहा— अपने भारतकी दशा कहाँसे बिगडी ? इस देशमें `सिनेमा, रेडियो आए, तबसे भारतकी दशा बहुत ही बिगडने लगी। सहशिक्षणके दूषणका प्रवेश हुआ, तबसे बहुत ही बिगड़ी। लड़के-लडकियाँ एक साथ पढ़े और सयम रखें, यह कठिन है।

शास्त्रमे लिखा है कि स्त्रीका शरीर अग्निके समान है और पुरुषका शरीर घीसे भरा हुआ घडा है।

तनु अग्निः प्रमदानां घृतकुंभमयः पुमान् ।

अग्निके पास घी रक्खोगे तो पिघलेगा ही । इसलिये ब्रह्मचारी स्त्रीका स्पर्श न करे, स्त्रीका चित्र भी न देखे, शृंगारके गीत सुने नहीं और गाये भी नहीं, क्रम-क्रमसे संयमका पालन करे । श्रीरामचन्द्रजीने पूर्ण संयमका पालन किया । छोटी अवस्थामें थोड़े समयमें ही उन्होंने वेदाभ्यासमें निपुणता प्राप्त कर ली । विद्याध्ययनके उपरान्त श्रीराम-चन्द्रजी पिताकी आज्ञा लेकर तीर्थयात्रा करने गये । वहाँसे लौटनेके पश्चात् उनके मनमें उदासी छा गयी । भगवानकी यह लीला थी । परमात्माको इसके द्वारा जगतको वैराग्यका उपदेश दिलानेकी इच्छा थी । रामजी उपदेश देते हैं आचरणसे । वे बहुत बोलते नहीं, परन्तु आचरण करके बताते हैं । रामजीने जीवनमें वैराग्यका आचरण करके बताया । रामजीकी उस समय सोलह वर्षकी अवस्था थी, वे विचारने लगे कि जो आज खिला हुआ है उसे कल मुरझाना है, कुम्हलाना है । आज जो सुन्दर दीखता है, वह एक दिन कुम्हलाना है । जिसका आज विकास है, उसका आनेवाले कलको विनाश है । यौवन क्षणभंगुर है । वृद्धावस्था तो अवश्य आनी ही है । क्षणिक सुखके लिए मनुष्य पूरे दिन मंथन करे और उसीमें जीवन बिगाड़े, यह अज्ञान है । इस जीवनमें सच्चा सुख क्या है ? सच्चा सुख कहाँ है? इस जगतमें जो कुछ भी दिखाई देता है, वह सब झूँठा है, अनित्य है । ऐसे अनित्य सुखके पीछे जीवन गवाँनेके समान अज्ञान क्या है ? मुझे अब कुछ करना नहीं । मुझे शान्तिसे बैठा रहना है ।

रामजीमें वैराग्य जाग्रत हुआ, पीछे तो उनको खाना भी अच्छा न लगता, खेलना भी अच्छा न लगता । कोई मिलने आए, वह भी अच्छा नहीं लगता । बोलनेकी भी इच्छा नहीं होने लगी । एकान्तमें पद्मासन लगाकर बैठ जाते, जहाँ बैठ जाते, वहीं बैठे रहते । सेवक बारम्बार आकर प्रार्थना करते, याद दिलाते, तब कहीं स्नान, ध्यान, संध्या, पूजन आदि नित्यकर्म करते । शरीर अत्यन्त दुर्बल होने लगा ।

दशरथ महाराजको चिन्ता हुई—मेरे रामको यह क्या हो गया है ? राम अब उदास रहता है । इसको कुछ भी अच्छा नहीं लगता । महाराजने वशिष्ठजीसे कहा—आप इनको कुछ समझाइये । वशिष्ठजीने राजासे धैर्य रखनेको कहा । उसी समय वहाँ ऋषि विश्वामित्र पधारे ।

****

(३०)

रामं देहि

शंकर भगवान माता पार्वतीको यह कथा सुनाते हैं—

कदाचित्कौशिकोऽभ्यागादयोध्यां ज्वलनप्रभः।
द्रष्टुं रामं परमात्मनं जातं ज्ञात्वा स्वमायया॥

विश्वामित्र ऋषि अग्निके समान तेजस्वी थे, महान् तपस्वी थे। परमात्मा स्वय अपनी मायासे श्रीराम-रूपमें प्रगट हुए है, ऐसा जानकर वे अयोध्याजीमें उनके दर्शनोंके लिए आए। विश्वामित्रजीकी गणना ब्राह्मणोंमें होती थी। राजर्षिसे ये ब्रह्मर्षि हो गये थे। गायत्री मंत्रके आचार्य हुए थे। जगतके इतिहासमें एक ही उदाहरण है कि जन्मजात क्षत्रिय होनेपर भी तपके प्रभावसे ये ब्रह्मर्षि हुए।

साधारणत ऐसा नियम है कि जाति मरनेके बाद ही बदलती है। चाहे जितना ज्ञान बढ़े, मानव चाहे कितनी ही भक्ति करे, परन्तु उससे उसकी जाति बदलती नहीं, जाति, जन्मसे ही मिलती है और मरनेके उपरान्त ही बदलती है। सृष्टिका ऐसा ही नियम है। करेलेको दो-चार महीने तक खाँडकी चाशनीमें डुबाकर रखोगे तो करेलेमें मिठास तो आवेगी परन्तु करेलेकी कड़वाहट जावेगी नहीं। जातिधर्म जन्मसे ही लागू हो जाता है और मरनेके बाद ही छूटता है, नष्ट होता है। अपवादमे केवल एक विश्वामित्रका ही उदाहरण मिलता है। विश्वामित्र ऋषिके लिए भी ग्रन्थोंमे ऐसा लिखा है कि विश्वामित्रजी क्षत्रियके घर प्रगट तो हुए थे, परन्तु ब्रह्मबीज थे। दिया हुआ प्रसादी चरुभात ब्रह्मबीजसे अभिमन्त्रित था इसलिए क्षत्रिय-कुलमे जन्म होते हुए भी उनकी तीव्र इच्छा थी कि मुझे ब्राह्मण होना है। मुझे ऋषि होना है, ब्रह्मर्षि होना है। वशिष्ठ मुझे ब्रह्मर्षि कहकर बुलायें।

वशिष्ठ और विश्वामित्रकी कथा वाल्मीकि रामायणमें विस्तारसे वर्णन हुई है। कुशराजाके वंशमे गाधि नामके विख्यात राजा हुए। विश्वामित्रजी उन्हीके पुत्र थे। महातेजस्वी विश्वामित्रजीने अनेक वर्षों तक पृथ्वीका शासन-पालन किया। एक समय वे वशिष्ठ ऋषिके आश्रममें जा पहुँचे और वहीं उन्होंने कामधेनु शबलाको देखा। कामधेनुमें ऐसी शक्ति होती है कि वह इच्छित पदार्थ दे सकती है। विश्वामित्रजीने शबलाका प्रभाव देखा। लोभसे इनका मन बिगड़ा। लोभमे लक्षणका लोप हो जाता है। क्षत्रिय राजाओंको गौ-ब्राह्मण-प्रतिपाल कहते है। गाय और ब्राह्मणकी रक्षा करना, यह क्षत्रियका मुख्य धर्म है परन्तु विश्वामित्रजी लोभके वश होकर गाय और ब्राह्मणपर अत्याचार करनेको तैयार

हो गये। उन्होंने वशिष्ठ ऋषिसे शबलाकी माँग की परन्तु वशिष्ठजीने शबला देनेकी मनाही कर दी। विश्वामित्रने शबलाको बलात् ले जानेका प्रयत्न किया, तब शबलाको क्रोध आया। उसने अगणित सैन्य उत्पन्न की और विश्वामित्रकी समस्त सेनाका नाश कर दिया। विश्वामित्रके एक पुत्रको छोड़कर सभी पुत्रोंका भी नाश कर दिया। इससे विश्वामित्रको अत्यन्त खेद हुआ। हताश होकर उन्होंने जीवित पुत्रको राज्य सौंप दिया और स्वयं वनमें जाकर तप करने लगे। उग्रतपसे विश्वामित्रजीने महादेवजीको प्रसन्न किया। महादेवजीके वरदानसे उन्होंने अनेक प्रकारके शस्त्रास्त्र तथा तद्विषयक ज्ञान प्राप्त किया। इन नये प्राप्त हुए शस्त्रास्त्रोंसे उन्होंने वशिष्ठ ऋषिके आश्रमका विनाश किया। पीछे वशिष्ठ ऋषिको मारने गये तो वशिष्ठजीने अपने ब्रह्मबलसे विश्वामित्रके ब्रह्मास्त्रको भी शांत कर दिया और विश्वामित्रका पराभव कर दिया। वशिष्ठजी तो निर्वैर थे। न तो उन्होंने विश्वामित्रकी कोई हानि की, न उन्होंने उनका कोई अनिष्ट ही सोचा। इन दोनों बारकी हारसे विश्वामित्रने समझा कि क्षत्रियबल व्यर्थ है। ब्रह्मबल ही सच्चा बल है।

धिग्बलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेजो बलं बलम्।

ऐसा विश्वास होनेपर विश्वामित्रने वशिष्ठ ऋषिके समान ब्रह्मबल प्राप्त करनेका निश्चय किया और उसके लिए अत्यन्त उग्र तपश्चर्या प्रारम्भ की। उनके अलौकिक तपसे घबडाकर इन्द्रादिक देवताओंने अनेक विघ्न खड़े करके तपको बारम्बार भंग कराया। पहले विश्वामित्रजी कामके वशीभूत हुए। बहुत तप करनेपर भी बुद्धिमें-से सूक्ष्म काम जल्दी जाता नहीं। कामको मारना बहुत कठिन है परन्तु विश्वामित्रजीने दूसरी बार अति उग्र तपश्चर्या की और अन्तमें कामको वशमें किया। तब बलवान क्रोध उनको त्रास देने लगा। कामपर विजय मिल सकती है परन्तु क्रोधपर जीत मिलनी बहुत कठिन है। कामको वशीभूत करनेमें अनेक ऋषि-मुनि क्रोध करके अपने तपको भंग किए बैठे हैं। क्रोध है तो कामकी ही सन्तान, परन्तु कामसे वह अधिक प्रबल है।

तपका बारम्बार भंग होनेपर भी विश्वामित्रजी अपने निर्णयमें अडिग रहे, उत्तरोत्तर तपकी उग्रता बढ़ाते गये। तपके बलसे वे राजर्षि कहलाये। उसके बाद ऋषियोंमें उनकी गणना हुई। तप बढनेपर महर्षिकी पदवी भी इनको प्राप्त हुई। उसपर भी विश्वामित्रजीको संतोष नही हुआ। सत्कर्ममें, तपमे, भक्तिमें संतोष मानना नहीं। इसमें जो संतोष मानता है, वह फिर आगे नहीं बढ़ सकता। विश्वामित्रजीको तो ब्रह्मर्षिकी पदवी प्राप्त करनी थी। जब तपकी पराकाष्ठा आ पहुँची, तब ब्रह्मा-सहित सब देवताओंने प्रत्यक्ष होकर उनको ब्रह्मत्व दिया।

अब्रह्मर्षे स्वागतं तेऽस्तु तपसा स्म सुतोषिताः ।
ब्राह्मण्यं तपसोग्रेण प्राप्तवानसि कौशिक ॥

ब्रह्मादिक देवताओंने कहा—हे विश्वामित्र ! तुम्हारे तपसे हम सब प्रसन्न हुए हैं । तुमने अति उग्र तप किया है । तपके प्रतापसे तुमको ब्रह्मत्व प्राप्त हुआ है । अब तुम ब्रह्मर्षि हो गये हो ।

देवताओंने उनके ब्रह्मत्वको स्वीकार किया परन्तु जब तक वशिष्ठ ऋषि उनको ब्रह्मर्षि स्वीकार न करें तब तक विश्वामित्रको संतोष नही था । उनके ब्रह्मर्षिको वशिष्ठ ऋषिकी सम्मति न मिले तो उस ब्रह्मर्षि-पदका महत्व विश्वामित्रजीके मनमे कुछ भी न था । इसके बाद एक रात्रिको विश्वामित्रजी, वशिष्ठजीके आश्रममे गये । उस समय वशिष्ठजी अपनी पत्नी अरुन्धतीदेवीके साथ सत्संग कर रहे थे । विश्वामित्रजी एक कोनेमें छिपकर खड़े हुए और पति-पत्नीके बीचकी बातचीत सुनने लगे । अरुन्धतीजीने कहा कि चाँदनी कैसी निर्मल है । तब वशिष्ठजी बोले—हाँ देवी, परन्तु विश्वामित्र ऋषिके ब्रह्मतेज जितनी निर्मल नही । विश्वामित्रजीका ब्रह्मतेज अति निर्मल है ।

विश्वामित्रजीने यह सुना । वे विचार करने लगे कि ये वशिष्ठ ऋषि कितने महान् हैं । मैंने इनके साथ कितना वैर किया, इनके सौ पुत्रोंको जलाकर भस्म किया ; फिर भी इनको मेरे प्रति हृदयमे किसी प्रकारका कुभाव नहीं, उलटा सद्भाव है । मैंने भयकर शत्रुता की, फिर भी वे मेरी प्रशसा करते हैं, अपनी पत्नीसे प्रशंसा करते हैं, और वह भी मेरे परोक्षमें ! ऐसा महान् कोई भी नही हुआ ।

वशिष्ठजीने वैर नही किया । कुटिल प्रसंगोके समय भी उन्होने स्वयं ही सब सहन कर लिया था । उन्होने कभी किसीका बुरा नही किया था, न किसीके लिए बुरे वचन कहे थे । विश्वामित्रजीने उनको बहुत कष्ट दिया था । विश्वामित्रजीको उग्रदण्ड देनेकी शक्ति वशिष्ठजी रखते थे परन्तु उन्होने कभी शक्तिका उपयोग इस प्रकार नही किया । वशिष्ठजी निर्वैर थे । उनका समत्व-भाव स्थिर रूपसे टिका रहता था । वशिष्ठजीकी ब्रह्मनिष्ठा अलौकिक थी । वे सच्चे ब्रह्मर्षि थे ।

विश्वामित्रजीका हृदय नम्र हो गया । वे वशिष्ठजीके पास दौडते गये और उनके चरणोमें मस्तक नवाया । वशिष्ठ ऋषिने उनको आलिंगन दिया और हँसकर कहा—पधारो ब्रह्मर्षि । विश्वामित्रजीको अत्यन्त आनन्द हुआ । वशिष्ठजीने उनको ब्रह्मर्षिके रूपमे स्वीकार कर लिया । उसके बाद दोनोके बीच प्रगाढ मैत्री हो गयी ।

विश्वामित्रजी जनकपुरोके पास सिद्धाश्रममें रहने लगे । वहाँ वे अनेक यज्ञ करते थे परन्तु मारोच, सुबाहु आदि राक्षस उनके यज्ञोमे विघ्न करते थे । विश्वामित्रजीने

विचार किया कि भगवान अयोध्याजीमें प्रगट हुए हैं। इस यज्ञका तो एक निमित्त है। इस निमित्तसे मैं भगवानको यहाँ ले आऊँगा और सम्पूर्ण दिवस परमात्माके दर्शन करूँगा।

कोई भी सत्कर्मका निमित्त हो और उस सत्कर्ममें भगवान याद आवे, प्रभुके दर्शन हों तो ही वह सत्कर्म सफल होता है। सत्कर्म करते हुए भगवान्को भुला दें तो सत्कर्मका कोई मूल्य नहीं। जिस कार्यसे प्रभु प्रसन्न हों, वही सत्कर्म है। सत्कर्मको यज्ञ कहते हैं। दान, तप, यज्ञ अथवा ऐसे अन्य सत्कर्म करो उसके साथ प्रभुका नामस्मरण अवश्य करना चाहिए। प्रभु-स्मरण बिना सत्कर्म अभिमान उत्पन्न करता है। सत्कर्मसे पुण्य मिलता है, परन्तु प्रभु नहीं मिलते। परमात्मा तो नामस्मरणसे द्रवित हृदयमें आते हैं। प्रभु-स्मरण बिना हृदयकी शुद्धि नहीं, और हृदय शुद्ध न हो, तब तक परमात्मा पधारते नहीं। इसलिए जिस समय सत्कर्म करो उस समय प्रभुका स्मरण रखकर निष्काम भाव एवं दीनतासे उसे करो।

विश्वामित्रजी समर्थ है, किसी भी अन्यकी सहायताके बिना अकेले ही सब राक्षसोंको मार सकते हैं परन्तु श्रीरघुनाथजी का प्राकट्य हुआ देखकर उन्होंने विचार किता कि यज्ञके निमित्तसे मैं श्रीरामलक्ष्मणकी माँग करूँगा, और उनको अपने आश्रममें ले आऊंगा। प्रभुकी पुनीत पधरामनी अपने आश्रममें कराऊँगा। ऐसा विचार करके विश्वामित्रजी अयोध्यामें पधारे।

विश्वामित्र ऋषिने गंगाका वंदन किया। सरयूजीकी महिमा महापुरुषोंने बहुत वर्णन की है। सरयूजी साक्षात् श्रीरामगंगा है। सरयूजीका नाम है श्रीरामगंगा। सरयूजीमे स्नान करनेसे पाप जलते है। किसी समय तुम अयोध्या जाओ तो खूब याद रखकर सरयूजीके रामघाटपर स्नान करना। अयोध्यामें सरयूजीका प्रवाह विशाल है। वहाँ लगभग दो-तीन सौ घाट है। पन्द्रह-बीस दिन अयोध्यामें रहोगे तो बहुत आनन्द आवेगा। अति दिव्य भूमि है। वहाँ रामघाटपर आज भी ऐसा आभास होता है कि सीतारामजी यहीं विराजे हुए है। बहुत शान्त व सात्विक भूमि है। आज तो उसके आगे कोई घाट नहीं परन्तु लोग ऐसा कहते है कि इस स्थलपर पहले रामघाट था। श्रीरघुनाथजी यहीं स्नान करने के लिए पधारते थे।

कोटिकल्प काशी बसे, मथुरा कल्पहजार।
एक निमिष सरयू बसे, तो तुलइ न तुलसीदास ॥

अयोध्या संतोंकी भूमि है। अन्य तीर्थोंमें संतोंकी परंपरा है, वह पचासों हजार वर्ष पीछे खण्डित हो गयी, जब कि अयोध्यामें संतोंकी जो परंपरा है वह सृष्टिके आरम्भसे

आज दिन पर्यन्त अखण्डित है। अयोध्याजी में संत-दर्शनका अनूठा आनन्द आता है। श्रीअयोध्याजीकी महिमाका वर्णन कौन कर सकता है ?

विश्वामित्रजीने सरयूगंगाको साष्टाग वन्दन करके पीछे स्नान किया। तीर्थमें सामान्य जल नही। तीर्थमे कुल्ला करना नही, साबुन लगाकर स्नान करना नही। तीर्थमें कपड़ा धोना नही। तीर्थदेवका वन्दन किए बिना स्नान करना नही। तीर्थमें तनका नही, मनका मैल धोना है। शास्त्रमें लिखा है कि शरीरको शुद्ध करके, घरमें प्रथम शरीर-शुद्धिका स्नान करके पीछे तीर्थमे स्नान करना अति उत्तम है।

कितने ही लोग गगा किनारे, नर्मदा-किनारे जाते हैं, परन्तु वहुत ठंड पड़ती हो, वर्षा पड़ती हो तो गंगाजीको, नर्मदाजीको वन्दन करते नही उनमें स्नान भी करते नही। तीर्थमें जाकर जो तीर्थदेवका वन्दन न करे, स्नान न करे वह तीर्थका अपमान करता है। किसी भी तीर्थमें जाओ तो प्रथम तीर्थ-देवताका वन्दन करो। उस पीछे स्नान करो। तीर्थमें उपवास करो। उपवास करनेसे शरीरकी शुद्धि होती है, शरीरमें सात्विक भाव जागृत होता है, पाप भस्म होता है। तीर्थमें भूमिपर शयन करो। धर्मशालाकी खटियापर सोओ नही। जिस खटियापर किसीने पाप किया होगा उसपर सोनेसे वह तुमको भी लगेगा। स्थानको पवित्र बनाओ, अपना वस्त्र बिछाओ, माला करो और पीछे सो जाओ। तीर्थमें मौज-मजा न करो। तीर्थमे केवल घूमने-फिरनेकी भावनासे न जाओ। तीर्थमें क्रोध नही किया जाता, किसीकी निन्दा नही की जाती। कितने ही लोग तो तीर्थमे जाकर पाप करते हैं।

अन्यक्षेत्रे कृतं पापं तीर्थक्षेत्रे विनश्यति।
तीर्थक्षेत्रे कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति ॥

अन्यत्र किया हुआ पाप तीर्थमे जाकर धुल जाता है परन्तु तीर्थमे जाकर जो पाप करता है, उसको बहुत भारी सजा मिलती है। एक-एक तीर्थमे एक पाप छोड़ो, एक-एक त्याग बढ़ाओ। परमात्माके लिए अतिशय प्रिय वस्तुका त्याग करोगे तो परमात्माको दया आयेगी। तीर्थमें जाकर काम-क्रोध जैसे विकार छोडो। तीर्थमें ब्रह्मचर्यका पालन करो, सत्संग करो, तप और संयमसे पवित्र होकर भावनासे तीर्थमें जाओ।

अयोध्या वैराग्यभूमि है, सरयू-यमुनाका किनारा भक्तिभूमि है। व्रजभूमि प्रेमभूमि है। काशी-गंगाका किनारा ज्ञान-भूमि है। नर्मदाका किनारा तपोभूमि है। गंगाजी और नर्मदाजीका वाहन है मगर। श्रीयमुनाजी और श्रीसरयूजीका वाहन है कछुआ। श्रीगगाजी, नर्मदाजी ये ज्ञानस्वरूपा हैं। ज्ञान, मोहरूपी मगरको मारता है, अज्ञानका विनाश करता है। श्रीयमुनाजी और सरयूजी भक्ति-स्वरूपा हैं। इनका वाहन

कछुआ अपनेको स्थितप्रज्ञ बनाता हैं। स्थितप्रज्ञका लक्षण वर्णन करते समय भगवानको भी कछुआ याद आता है।

यदा संहरतेचायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इंद्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्यप्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥

जरा भी भय-सा लगा कि कछुआ एकदम अपने सब अंगोंको सिकोड़ लेता है, समेट लेता है। अपने खोंतरमें खींच लेता है। इन्द्रियोंके विषय मनुष्यके लिए भयरूप हैं। जो इन विषयोंमें-से अपनी सर्वेन्द्रियोंको समेट लेता है, खींच लेता है, उसकी बुद्धि स्थिर हो जाती है।

सरयूजीमें स्नान करके विश्वामित्रजी दशरथ राजाके दरबारमें पधारे।

दृष्ट्वा दशरथो राजा प्रत्युत्थायाचिरेण तु।
वशिष्ठेन समागम्य पूजयित्वा यथाविधि॥

विश्वामित्रजीको आता देखकर दशरथ महाराज उठकर खड़े हो गये। तुम्हारे आँगनमें कोई साधु-सन्त आवे, कोई ब्राह्मण आवे, तो तुम भी उठकर खड़े हो जाओ। कितने ही लोग तो ऐसा समझते है कि ये महाराज कुछ माँगने आये होंगे। कोई माँगने आवे, वहाँ मुझे उठनेकी क्या जरूरत है ? मैं देनेवाला हूँ, इससे बड़ा हूँ। देनेवाला कोई बड़ा नहीं और लेनेवाला कोई छोटा नहीं। जीवमात्र ईश्वरका अंश है, ईश्वरकी सन्तान है। परमात्माकी सन्तानको छोटा गिनो तो परमात्माको बुरा नहीं लगेगा ? प्रभुके राज्यमें कोई बडा नही, कोई छोटा नही। सभी समान हैं। किसी जीवको छोटा मानकर, उसका अपमान करना नही। नम्र होकर, दीन बनकर, आंखे नीची रखकर दान दो।

कितने ही दान देते हैं, परन्तु अकड़से देते है। कितने ही दो-चार धक्का दे देते है। इससे ठाकुरजीको बहुत बुरा लगता है। तुम साधु, ब्राह्मणोंको थोड़ा दोगे तो चलेगा, परन्तु मानपूर्वक दो, विवेकसे दो, भगवद्भाव रखकर दो। लेनेवालेके हृदयमें भी परमात्मा ही बैठे हैं। ऐसी भावना रखो कि मैं देता नहीं, मेरे रामजी देते हैं। देनेवाले रामजी और लेनेवाले भी रामजी। गरीबका, ब्राह्मणका सम्मान होता है, वहाँ परमात्मा बहुत राजी होते हैं।

दशरथ महाराज उठकर खड़े हुए। उन्होंने विश्वामित्रका स्वागत किया, उनकी पूजा की, हाथ जोड़कर उनका अभिवादन किया।

अभिवाद्य मुनिं राजा प्रांजलिर्भक्तिनम्रधीः।
कृतार्थोऽस्मि मुनीन्द्राहं त्वदागमनकारणात्॥

महाराज दशरथने कहा—हे मुनीन्द्र! आप पधारे, इससे आज मैं कृतार्थ हुआ। मेरा घर आपने पवित्र किया।

त्वद्विधा यद्गृहं यान्ति तत्रैवायान्ति संपदः।

जिस घरमें आप जैसे महानुभाव पधारते हैं, उस घरमे सब प्रकारकी संपत्तियाँ आती हैं। जिस घरमे बगैर आमन्त्रणके कोई भजनानन्दी वैष्णव, साधु, संत आवे, वह घर वैकुण्ठ जैसा है। घरकी शोभा सन-सेवासे होती है। जिस घरमें गरीबका सम्मान होता है, जिस घरमे श्रीराम-भजन, श्रीकृष्ण-कीर्तन होता है, वह घर प्रभुका धाम है। वैसे तो सर्प भी घर बनाता है परन्तु जिस घरमे संतोके चरणकी रज न पड़े, जिस घरमें गरीबका सम्मान न हो, जिस घरमे परमात्माके नामका कीर्तन न हो, वह घर, घर नही।

महाराज दशरथने विश्वामित्रसे कहा—आप कृपा करके पधारे, इससे मनमें बहुत आनन्द हुआ है। मैं आपकी क्या सेवा करूँ?

विश्वामित्रजीने दशरथ राजासे कहा—मैं कुछ विशेष माँगने आया हूँ।

रामं च लक्ष्मणं चापि मह्यं देहि कियद्दिनम्।

पवित्र ब्राह्मण परमात्माकी ही माँग करते हैं। वे दूसरा कुछ माँगते नही। विश्वामित्रजी माँगते हैं परन्तु भगवानकी ही माँग करते है। राजन्! मुझे अन्य कुछ आवश्यकता नही। मेरे यज्ञमें राक्षस विघ्न करते हैं। तुम राम-लक्ष्मण मुझको दे दो।

असुर समूह सतावहिं मोही। मैं जाचन आयउँ नृप तोही॥
अनुज समेत देहु रघुनाथा। निसिचर बध मैं होब सनाथा॥

राम-लक्ष्मण राक्षसोका विनाश करेंगे, मेरा यज्ञ परिपूर्ण होगा। विश्वामित्रजी-ने रामचन्द्रजीकी माँग की तो दशरथ महाराजका उत्साह मन्द हो गया। वे हाथ जोड़-कर बोले—गुरुदेव! मेरे रामको मेरी आँखोसे दूर न करो। मैं रामको रोज निहारता हूँ, फिर भी इनको देखनेसे मनकी तृप्ति होती नही।

दर्शनसे जिसको तृप्ति हो, उसकी भक्ति कच्ची। वैष्णव, दर्शनका लोभी होता है। एक बार, हजार बार, अनेक बार दर्शन करे तो भी उसको तृप्ति होती नहीं।

दशरथ महाराजने कहा—अपने रामको देखते रहनेसे मेरा मन तृप्त होता नही। गुरुजी! वृद्धावस्थामें आप सबके आशीर्वादसे मेरे घर चारों बालक हुए हैं और ये चारो बालक मुझको प्यारे लगते हैं। मेरा राम तो मुझको प्राणकी अपेक्षा भी बहुत प्यारा है। राम मेरा पुत्र है, इसीसे मुझको प्यारा लगता है, ऐसा नही है। मेरे राममें

बहुत ही सद्गुण एकत्रित है। मेरे शत्रुओको भी यह प्यारा लगता है। मेरे शत्रु भी रामकी प्रशसा करते हैं।

शत्रु जिसकी प्रशंसा करें, वह प्रशसा सच्ची होती है। जहाँ तुम्हारा प्रेम है, स्नेह है, वहाँ तुमको कोई दोष दिखाई देगा नही। तुम उसकी प्रशसा करो, इसमें क्या आश्चर्य है? पुत्रका विवाह न हुआ हो, तब तक उसकी माँ भी इसके विषयमें झूँठी प्रशसा करती है कि वह तो बहुत चतुर है, रूपवान है। अरे! कैसा चतुर है यह तो संसारको अच्छी तरह खबर है। घरके लोग प्रशंसा करे, वह सच्ची नहीं, शत्रु प्रशसा करे, वह सच्ची है।

दशरथ महाराजने कहा—गुरुजी! मेरा राम सबको प्यारा लगता है। आपको अधिक तो क्या कहूँ? इस जगतके इतिहासमें मेरे राम जैसा पुत्र हुआ नही और मुझको ऐसा लगता है कि भविष्यमें ऐसा बालक होगा भी नही। मेरा राम दिनमें दो बार मुझे साष्टाङ्ग वन्दन करता है। वह बहुत भोला है, बहुत शर्मीला है। अपनी तीनों माताओंकी वह बहुत सेवा करता है। छोटे भाइयोंकी हमेशा देखभाल करता है। मेरा राम बहुत पवित्र है। वह कभी आँख ऊँचीकर किसी स्त्रीको देखता नही। वह संयमकी मूर्ति है।

रामजीका वर्णन करते-करते महाराज दशरथकी आँखें भीग गयीं, हृदय पिघल गया। वे कहने लगे—गुरुजी! मैं आपसे स्पष्ट कहता हूँ। जल बिना कदाचित् मछली जीवित रह सके परन्तु रामको देखे बिना, यह दशरथ जीवित न रह सकेगा।

महाराज दशरथने जो कुछ कहा, वह अक्षरशः सत्य है। इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं। गुरुजी! मैं रामका वियोग सहन नही कर सकता। कहो तो मैं राज्य दे दूँ, कहो तो अपने प्राण दे दूँ।

देह प्राणयी प्रिय कछु नहिं। तेय मुनि दउँ पलकार महिं॥

मैं सब कुछ दे सकता हूँ परन्तु अपने रामको नहीं दे सकता।

राम देत नहिं बनै गुसाईं।

मेरा जीवन राम के अधीन है। विश्वामित्रजीको आनन्दाश्चर्य हुआ। राजाका कैसा शुद्ध प्रेम है। पीछे तो विश्वामित्रजीने वशिष्ठजीको आँखसे इशारा किया—आप राजाको समझाओ तो ही यह कुछ मानेंगे। दशरथजीको वशिष्ठजीमें पूर्ण विश्वास था। दशरथ महाराज चक्रवर्ती सार्वभौम राजा थे। फिर भी वह ऐसा मानते थे कि मैं स्वतन्त्र नहीं, मैं परतन्त्र हूँ, अपने गुरुदेवके अधीन हूँ।

स्वातंत्र्य मनुष्यका पतन करता है। तुमको सुखी होना हो तो बहुत स्वतन्त्र रहना नही। अपने माता-पिताके अधीन रहो। किसी पवित्र ब्राह्मणके आधीन रहो, किसी पवित्र संतके चरण पकडकर रहो और उनके अधीन रहो। महाराज दशरथ कोई भी काम करनेसे पहले वशिष्ठ ऋषिकी सलाह लेते थे। वे तपस्वी ब्राह्मण थे। जिनको किसी प्रकारका स्वार्थ नही था जिनकी ब्रह्महृष्टि स्थिर हो गयी थी, ऐसे वशिष्ठ महर्षिकी आज्ञानुसार दशरथ महाराज प्रत्येक कार्य करते थे। तुम भी किसी पवित्र ब्राह्मणकी आज्ञा लेकर काम करो तो सुखी रहोगे।

राजा क्षत्रिय और मत्री ब्राह्मण—अनादि कालसे यह चलता आया है। राम-राज्यमे भी वशिष्ठ गुरु जो कहते, वही होता था। पवित्र स्वार्थ-रहित ब्राह्मण, समाज सुखी-हो, ऐसे नियमोकी रचना करते थे। आजकल तो कितने ही नियम बनाये जाते हैं परन्तु, आज बनाए और आने वाले कल ही उन्हें बदलना पड़ता है ब्रह्मनिष्ठ महर्षि वशिष्ठजी एक बार जो नियम बनाते थे, उनमें परिवर्तन करनेकी जरूरत पड़ती ही नही थी। राजा क्षत्रिय हो और मत्री पवित्र ब्राह्मण हो तो प्रजा सुखी होती है। महाराज दशरथकी निष्ठा थी कि वशिष्ठजी जो कहे, वह ही मुझको करना है।

वशिष्ठजी राजाको एकान्तमे ले गये और समझाया—राजन्! विश्वामित्रजी तपस्वी ब्राह्मण हैं, वह मांगने आये हैं और तुम मना करो, यह ठीक नही है। उनकी सेवा करनेसे तो तुम्हारा पुत्र सुखी होगा। पवित्र ब्राह्मणकी सेवा करे तो बुद्धि सुधरे और लक्ष्मी भी मिले। कल ही रामका जन्माक्षर मेरे हाथमे आया था। उसको देखकर मुझे यह विश्वास है कि इसी वर्ष अति सुन्दर कन्याके साथ रामकी लग्न होनी है। जन्माक्षर-मे ऐसा योग है। मुझे लगता है कि यह विश्वामित्रजी रामकी लग्न करानेके लिए ही आए हैं। तुम रामको उनके साथ भेज दो। सब कुशल-मंगल होगा।

राजा दशरथने आनंदित होकर पूछा—गुरुजी! आपको विश्वास है कि मेरे रामकी लग्न करानेके लिए ही विश्वामित्रजी आए हैं? वशिष्ठजीने कहा—हां! मुझे ऐसा ही लगता है। तब राजाने कहा—तब तो रामको आनेवाले कल नही, आज ही भेजनेको तैयार हूँ। जल्दी-जल्दी मुहूर्त निकालो। गुरुजी! मेरी वृद्धावस्था है, इस कारणसे मुझे भय लगता है। यह शरीर कब पूरा हो जाये, कुछ कहा नहीं जा सकता। मेरे रामका विवाह हो जाये, श्रीसीताराम सिहासनपर विराजें और मैं अपनी आंखोसे देखूं। पीछे भले ही यह शरीर पूरा हो जाये। मेरा इतना मनोरथ परमात्मा पूर्ण कर दे, तो मुझे अन्य कोई अभिलाषा नही।

वशिष्ठजीने कहा—राजन् ! तुम शिवजीकी त्रिकाल पूजा करते हो। भगवान शकर तुम्हारा मंगल करेंगे। विश्वामित्रजी माँगने आए हैं तो इनको राम-लक्ष्मण दोनों भाइयोंको देकर प्रसन्न करो।

राजा दशरथ सहमत हुए परन्तु रामजीमें वैराग्य जागृत हुआ था। दशरथ महाराजने विश्वामित्रजीसे कहा—महाराज ! रामको खुशीसे तुम ले जाओ परन्तु मेरा राम बहुत उदास रहता है, प्रवृत्तिसे दूर रहता है। उसे आप कुछ समझाओ।

(३१)
रामजीका वैराग्य

विश्वामित्रजीके कहनेसे वशिष्ठ ऋषिने रघुनाथजीको दिव्य उपदेश दिया। उसको महात्मा योगवाशिष्ठ कहते है। योगवाशिष्ठ महारामायण—यह एक स्वतन्त्र ग्रन्थ है, ज्ञान-प्रधान ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ बहुत बड़ा है। समस्त ग्रन्थ पढ़ने-समझनेमें बहुत कठिन है परन्तु तुम्हें जब भी अनुकूलता मिले, तब उसका पहला प्रकरण अवश्य पढ़ लेना। योगवाशिष्ठमें पहला वैराग्य प्रकरण है। यह प्रकरण विशेष पंढ़ने योग्य है। यह जगत क्या है ? यह शरीर क्या है ? जगतके सम्बन्ध क्या है ? यह समस्त बात बहुत विस्तारसे बतायी है। इसे पढ़नेसे वैराग्य आता है। संसारके समस्त सुख तुच्छ लगते है।

संसारके सुख तुच्छ लगें, वहीसे भक्तिका प्रारम्भ होता है। वहीसे जीव प्रभुके मार्गमें आता है। संसारका सुख जिसको मीठा लगता है, वह भक्ति बराबर करता नही। ज्ञानी महापुरुष गीताजी और योगवाशिष्ठ इन दोनोंको ज्ञानके लिए उत्तम ग्रन्थ मानते हैं। गीताजीमें नारायण नरको उपदेश करते हैं, वहाँ योगवाशिष्ठमें, प्रभुने ऐसी लीला की कि नर, नारायणको बोध देता है। नारायणको तो नर क्या बोध दे सकता है ?यह तो भगवानकी लीला है। श्रीरामजीने ही इस रीतिसे वशिष्ठजी द्वारा जगतको बोध दिया है और सद्गुरुकी महिमा बढ़ाई है। सद्गुरुके हृदयमें हमेशा परमात्मा विराजे रहते है। सद्गुरु जो बोलते है, वह परमात्मा ही बोलते हैं। सद्गुरु ही परमात्मा है। सद्गुरुतत्व और ईश्वरतत्व एक हैं।

विश्वामित्र ऋषिकी आज्ञासे दशरथ महाराजने श्रीरामचन्द्रजीको दरबारमें बुलाया। रामजी दरबारमें पधारे। रामजीने सबको वंदन किया और हाथ जोड़कर खड़े रहे। विश्वामित्रजीने रामजीसे पूछा—कोई चिन्ता आपको इतना क्लेश दे रही है। क्या कारण है? रामजीने कहा—गुरुदेव! मैंने अध्ययन किया, तीर्थ-यात्रा की, मैं बहुत घूमा। मैंने सब कुछ देखा परन्तु इस सबपर विचार करता हूँ तो इस निर्णयपर आता हूँ कि यह जो कुछ दीखता है, वह सब मिथ्या है, दुःखरूप है। इस सबको छोड़कर मैं जाना चाहता हूँ। मुझे सर्वस्वका त्याग करना है। मुझे इस राजमहलका जीवन अच्छा नही लगता, यह क्षुद्र जीवन है। पशु और पक्षी जो सुख भोगते हैं, उस सुखमे ही मेरा जीवन पूरा हो तो मुझमें और पशुमे क्या अन्तर है? मुझे तो नित्य अविनाशी आनन्दको जानना है। यह जीवन क्षणभंगुर है। लोग मरनेके लिये ही जन्म लेते हैं और जन्म लेनेके लिए ही मरते हैं।

मृतिबीजं भवेज्जन्म जन्मबीजं भवेत्मृतिः।

संसार-सुख अनित्य है। भोग अस्थिर हैं, आपदारूप हैं। ये सब दृश्य पदार्थ खोटे हैं। आत्मा ही सत्य है। जो खोटा है वह खोटा ही है। माया है, प्रपंच है। प्रपंचके साथ सत्यका कोई सम्बन्ध नही। मैं आत्मस्वरूप हूँ, सत्यस्वरूप हूँ, आनन्दस्वरूप हूँ, फिर भी इस दुःखरूप असत्य ससारके साथ मेरा सम्बन्ध बँध गया है। धन नष्ट होनेपर दरिद्री होनेके बाद कोई धनवान मनुष्य स्वयंको भविष्यकी दशा सँभालनेमे चिंतित रहे, उसी प्रकार मैं भी परमानन्दसे भटककर इस ससारकी अति दुःखमय खटपटमें पड़ा हुआ हूँ और उसीसे चिंतित रहता हूँ। मनुष्य, अज्ञानमें डूबा हुआ है। मोहके कारण उसकी विचार-शक्ति मन्द पड़ गयी है। अपने स्वरूपको वह भूला हुआ है। ससारके सुन्दर लगनेवाले अनेक विषय इसके विवेकको चुरा लेनेमे लगे हुए है। मनुष्य, विवेक खो बैठा है। यह विषयोके पीछे दौड़ता है और इससे दुःखी होता है। जिसने तत्वको जाना है, जिसको ब्रह्मज्ञान प्राप्त हुआ है, ऐसा ज्ञानी महापुरुष ही इन विषय-विकारोको मार सकनेमें समर्थ है। अन्य समस्त जीव मायामें फँसे हुए, अज्ञानमें डूबे हुए ही रहते है।

खलाः काले काले निशि निशितमोहैकमिहिका
गता लोके लोके विषयशतचौराः सुचतुराः।
प्रवृत्ताः प्रोद्युक्ता दिशि दिशि विवेकैकहरणे
रणे शक्तास्तेषां क इव विदुषः प्रोज्झ्य सुभटाः॥

रामजी आगे कहते है—मनुष्यको महान् रोग लगा हुआ है अहंकारका। अहंकार मोहमें-से उत्पन्न होता है और तृष्णा अहंकारमें-से उत्पन्न होती है। अहंकार खोटा काम

कराता है, पाप-कर्म कराता है। अहंकारसे संसार उत्पन्न हुआ है। देहाभिमान अनेक आपत्तियोंका सृजन करता है। अहं मनको अशांत करता है, मनको बिगाड़ता है। अभिमान सबको त्रास देता है। सबको रुलाता है। ममता मर जाती है परन्तु अहंकार जल्दी मरता नहीं। मैं हूँ, ऐसा देहाभिमान ही संसारके सब विषयोंमें, सब सम्बन्धोंमें आसक्ति उत्पन्न कराता है। इस असार संसारमें अहंकार-रहित होकर रहना ही सार है। गुरुजी! मैंने अब यह अहंकार-वृत्ति छोड़ दी है। मैं राम नहीं। यह शरीर भी मैं नहीं, मुझे कोई इच्छा-वासना नहीं, मुझे कोई आसक्ति नहीं। संसारके सभी प्राणी मेरे समान ही हैं। मेरी अब शान्तिसे एकान्तमें बैठे रहनेकी इच्छा है। मैं मनकी शान्ति चाहता हूँ।

यह मन बहुत अशांत है, अतिशय चंचल है। सुख-दुःख मन ही लाया करता है। मन विषयोंमें भटका करता है। यह स्थिर रह सकता नहीं। यह धनके पीछे दौड़ता है और धन मिल जाये तो उससे इसे सन्तोष प्राप्त होता नहीं और वह अन्य किसी भोग-पदार्थ या विषयको तरफ दौड जाता है। मन कूदफाँद करता ही रहता है, इस प्रकार चारों तरफ दौड़ा ही करता है। मनको तनिक भी शान्ति नहीं। मन अनेक तरंगें लिया करता है। मन मोह प्राप्त करता है, क्रोध करता है, लोभ करता है। कामना करता है, आसक्ति करता है, द्वेष करता है, अनेक प्रकारकी चिन्तायें करता है। वह क्षणमें सुख पाता है क्षणमें दुःखी हो जाता है। इस मनको वशमें रखना बहुत कठिन है, असम्भव-जैसा है।

चेतः पतति कार्येषु विहगः स्वामिषेष्विव।
क्षणेन विरतिं याति बालः क्रीडनकादिव॥

जिस प्रकार पक्षी मांसके ऊपर झपट्टा मारता है, उसी प्रकार चित्त विषयोंके ऊपर झपटता है। बालकको यदि खिलौना दो तो वह अपने चिर दिनोंके अभ्यासको एकदम छोड देता है, और खिलौनेमें तन्मय बन जाता है। इसी प्रकार मन भी विषय मिलते ही अनेक दिनोंसे अभ्यास किये शुभ कर्मोको, सत्कर्मोको छोड़ देता है। मन, इन्द्रियोंका गुलाम है। इन्द्रियोंको राजी करके रखनेके निमित्त वह भोगोंके लिये भटकता है।

इन्द्रियोंके गुलाम बनो नहीं। इद्रियोंके तुम मालिक हो, मालिक ही बने रहो। इन्द्रियोंको भोग जुटाओ नहीं। इन्द्रियोंको वशमें रक्खो। इन्द्रियोंको वशमें रखनेके लिये दो उपाय है। ज्ञान-मार्ग कहता है इन्द्रियोंके साथ झगड़ा करो, इन्द्रियोंको मारो। भक्ति-मार्ग कहता है, इन्द्रियोंको मारो नहीं, इन्द्रियोंको समझाकर उनको प्रभुके मार्गमें लगाओ भक्तिरससे उनका पोषण करो। इन्द्रियरूपी पुष्पोको प्रभुको अर्पण करो। ज्ञान-मार्ग अत्यन्त कठिन है। योगियोंको प्राणायाम-प्रत्याहार आदिमे बहुत कष्ट होता है। साधारण

मनुष्यके लिये भक्ति-मार्ग बहुत सरल है। भक्तोंको भक्तिमें अतिशय आनन्द मिलता है। जगतमें दो मार्ग हैं—एक त्यागका, दूसरा समर्पणका। त्यागमार्गमें जो न जा सके, उसके लिए समर्पण-मार्ग है।

मन ही जीवको बंधनमे रखता है। मनुष्यकी मुक्तिके लिए इच्छा होनेपर भी मन उसे साधन करने देता नही। मनुष्य मनका कैदी बन गया है। इस मनरूपी शत्रुको जीतनेके लिए महापुरुषोंने शम, दम आदि जो साधन बताये हैं, उनको करनेकी बहुत आवश्यकता है।

चित्त हो तो ही संसार है। इस संसारको मनकी कल्पनाने ही उपजाया है। मनका कोई आकार नही। मन स्वयं कल्पित है, असत् है। इस कल्पित मनकी कल्पनासे उत्पन्न हुआ संसार भी कल्पित और मिथ्या है। चौरासी लाख योनियोके चक्करमें पडनेका ही नाम संसार है। चित्तका लय हो जावे तो संसारका लय हो जाता है, मुक्ति मिल जाती है। इसलिए मनको मारनेका मैं उद्योग करता हूँ।

इस मनकी तृष्णा बहुत भयंकर होती है। वह विवेकको, ज्ञानको ढँक देती है। तृष्णा, मोहरूपी आवरण खड़ा कर देती है। यह तृष्णा जीवको बहुत-बहुत दुख देती है। वह मनुष्यके आनन्द-सागरको सुखा डालती है। उसके हृदयकी कोमलताको नष्ट कर डालती है। तृष्णा, हृदयको कठिन बनाती है, जड़ बनाती है। तृष्णा मनको बहुत अशांत करती है, पतंगकी डोरके समान चढाती है। तृष्णा मनको एकाग्र होने देती नहीं। विवेक-वैराग्य प्राप्त करनेके उत्साहको वह नष्ट करती है। तृष्णा ठगिनी है। मनुष्यको यह ठगती है। तृष्णा मनुष्यको दुख देती है, व्याधि और उपाधि देती है। इसके उपरान्त भी मैं सुख देती हूँ, ऐसा बताती है। मनुष्यकी बुद्धि तृष्णारूपी जालमें फँस गयी है और इस कारणसे वह प्रभु-चरणोमे पहुँचनेमे अशक्त है।

तृष्णा अमंगलकारी है, अतिशय भयंकर है, काली राक्षसी है। वह मनुष्यका हृदय फाडकर खा जाती है। उसके ज्ञानका विनाश करती है, उसके आनन्दको उखाड़कर फेंक देती है। तृष्णा, मनुष्यको शोकग्रस्त और भयग्रस्त बनाती है। तृष्णा पलभरमें मनुष्यकी समझदारीको उड़ा फेकती है। मनुष्यको भी पथ-भ्रष्ट कर देती है। तृष्णा उत्तम मनुष्यको भी तिनके-के समान हल्का कर डालती है।

तृष्णा एक स्थानपर स्थिर रहती नही और कभी तृप्त होती नही। मनुष्यकी अवस्था जैसे-जैसे वृद्ध होती है, वैसे वैसे उसकी तृष्णा बहुत युवा बनती है। मनुष्य ऐसा समझता है कि भोग, भोगनेसे मन शान्त होगा, तृष्णा, तृप्त हो जाएगी। पर भोग भोगनेके पश्चात् उसकी समझमें आता है कि शान्ति मिली नहीं। भोग भोगनेसे मन शान्त

होगा, यह केवल भ्रम है। भोग, भोगनेसे वासना बढती है, इन्द्रियाँ शान्त होती नही। इन्द्रियाँ क्षणिक सुख देती है। पीछे दुःखमें धकेल देती है। इन्द्रियाँ नित्य नय-नया विषय माँगती हैं। जीभ रसास्वादकी तरफ खीचती हैं। आँख रूप-सुख माँगती हैं। त्वचा स्पर्शसुख चाहती है। कही शान्ति नही, कही भी तृप्ति नहीं।

रामजी कहते हैं—तृष्णा ही विषय-वासना है। वासना-रूपी डोरीसे इन्द्रियाँ विषयोंमें बँधी हुई है, आसक्त हुई हैं। विषयोंमें आसक्तिका ही नाम बंधन है और विषयोका त्याग, विषयोंसे वैराग्य इसीका नाम मोक्ष है। वासनारूपी डोरीसे जीवकी गाँठ इस संसारके साथ बँधी हुई है। इस गाँठको खोलना है। बुद्धिमान पुरुष तृष्णाको विवेकसे नष्ट करते है। तृष्णाका नाश हो पाये, तभी यह जीव अपने वास्तविक स्वरूपमें—ब्रह्मस्वरूपमें स्थित होता है।

मुझे अब कोई भी तृष्णा नहीं। मेरा मन अब इस राजवैभवसे, इस धन-सम्पत्तिसे पृथक हो गया है। धन बहुत अनर्थ करता है। लक्ष्मी मोह उत्पन्न करती है, मोहको पुष्ट करती है और रागद्वेषको बढाती है। अनेक प्रकारकी चिन्ताओं और विकारोंको खड़ा करती है। लक्ष्मी चंचल है, अस्थिर है, अचानक दुर्दशामें फेंक देनेवाली है। करोड़पति एक घड़ीमें ही बिना कौड़ीवाला हो जाता है। धनसम्पत्ति पाप किये बिना प्राप्त होती नहीं। लक्ष्मीका मोह पाप कराता है। सत्कर्मका नाश कराता है, मनुष्यके मनको बिगाड़ता है, उसके हृदयको कठिन बनाता है, जड़ बनाता है। अनेक बार धन, सुख की अपेक्षा दुःख ज्यादा देता है।

जिसकी भोगमें आसक्ति है, उसका शरीर ठीक रहता नहीं। जिसकी द्रव्यमें आसक्ति है, उसका मन ठीक रहता नहीं। भोगासक्ति तनको बिगाड़ती है। द्रव्यासक्ति मनको बिगाड़ती है। महापुरुषोंका मन ही मानव-सद्‌गुणों से सम्पन्न है। जिसका मन शुद्ध है वही सम्पत्तिवान है। धनका जिसने संचय किया है वह धनवान नहीं, परन्तु जिसने सद्‌गुणोंका संचय किया है वही धनवान है। असंतोषी है, वह दरिद्री है। सद्‌गुणोंसे हीन, शीलसे हीन मनुष्य दरिद्री है।

रामजीने विश्वामित्र ऋषि से कहा है—इस जीवनका कोई भरोसा नहीं। देह क्षणभंगुर है, अनित्य है। फिर भी मनुष्य ऐसा समझ बैठा है कि शरीर ही आत्मा है, मैं ही शरीर हूँ। मनुष्य अस्थिर आयुको पकड़कर रखनेकी इच्छा करता है। नित्यस्वरूप आत्मापर दृष्टिपात करता नहीं और इससे अन्तमें दुःखी हो जाता है।

भारोऽविवेकिनः शास्त्रं भारो ज्ञानं च रागिणः।
अशान्तस्य मनो भारो भारोऽनात्मविदो वपुः॥

विषयोंमें जिसको आसक्ति है, उसका ज्ञान भी भारस्वरूप है। अविवेकीको शास्त्र भाररूप बनते है। अशांत मनुष्यको मन भाररूप बनता है। आत्माको जो जानता नही, उसके लिए यह शरीर भी भाररूप बनता है।

यों तो पशु-पक्षी भी जीवित रहते हैं परन्तु जिसने अपने मनको मारा है, उसका ही जीवन, जीवन है। मनुष्य-देह पाकर जो साधन करता है, जो जन्म-मरणके चक्करसे छूटनेका पुरुषार्थ करता है, उसका जीवन सफल है।

काल तो मनुष्यके पीछे पडा हुआ है। भोगसे अनेक रोग होते है। भयंकर रोग मनुष्यके शरीरको निरन्तर चूसा करते हैं। बिल्ली जिस प्रकार चूहेको निगल जानेके लिए ताकमें रहती है, उसी प्रकार काल मनुष्यको निगल जानेको ताका करता है। काल दु:ख देता है। काल जवानीको गलाकर वृद्धावस्था देता है। काल अन्तमें मृत्यु देता है। दु:खपूर्ण, अस्थिर, क्षणभंगुर, मृत्युके पात्रके समान यह देह अत्यन्त तुच्छ है। इसके जैसा तुच्छ जगतमें दूसरा कोई नही है।

अनेक जन्मोंसे काल जीवको मारता आया है। काल पकड़ता है, तब उसकी पकडसे कोई छुडा सकता नही। पत्नी-पुत्र सगे संबंधी कोई भी कालकी पकड़से मनुष्यको बचा सकते नहीं। कालकी पकडसे वही छूटता है जिसे ब्रह्म-ज्ञान है। जिसे परमात्माके दर्शन हो जाते है

रामजी अपनी उदासीनताकी बात दशरथ महाराजसे करते हुए कहने लगे— पिताजी! इस मनुष्य-देहमें क्या है। मांस, स्नायु तथा हड्डियोंसे भरे हुए घने छिद्रोंवाले इस शरीररूपी ढोलमें मनुष्य बिल्लीकी तरह घुसा बैठा हुआ है। इस देहमें अंतडिया है। इसमें असंख्य नाड़ियोंकी भूलभुलैयाँ हैं। मनुष्य-देह अनेक विकारोंसे भरपूर है, दुर्गन्धयुक्त है और अन्तमें मृत्युके मुखमें चला जाता है। यह देह एक मलपिण्ड ही है।

असारो नास्त्येव पदार्थो भुवनत्रये ।

इस देहसे अधिक सारहीन और नाकाम पदार्थ इन तीनों लोकोंमें दूसरा एक भी नही। रामजी कहते हैं—यह देह दु:खरूप है, केवल दु:खके लिए है। अनेक वासना-विकाररूपी जहरीले सर्प इसमें निवास करते हैं। मन-इन्द्रियाँ विषयोंमे आसक्त हैं। अनेक प्रकारकी चिन्ता और रोगोका धामरूप है। बाहर और भीतर रक्त तथा मांससे ही भरी हुई नाशको प्राप्त होनेके स्वभाववाली इस कायामें रमणीयतावाली क्या वस्तु है ?

पालन-पोषणकर बड़ा किया हुआ, यत्न करके जलाया हुआ यह शरीर मरनेके बाद जीवके साथ जाता नही। ऐसे कृतघ्नी शरीरके ऊपर आस्था किस प्रकार रक्खी जा

सकती है ? बारंबार सुख-दुःखका अनुभव करनेपर भी देहमें ज्ञान आता नही। यह देह अज्ञानसे ही भरा हुआ है। वैभव, ऐश्वर्य, सत्ता अथवा लक्ष्मी इसको अविनाशी बना सकते नहीं। सम्पत्ति, राजवैभव, सुन्दर शरीर इत्यादिका क्या प्रयोजन है ? क्या लाभ है ? अल्प समयमें ही काल इस सबका विनाश कर देता है। कोई भोगी हो अथवा दरिद्री हो, देह दोनोंका समान है। दोनो ही मर जाते हैं। यह देह गुण-अवगुणके ज्ञानसे विहीन है।

यह शरीर जलानेके ही कामके लायक है। लकड़ियोसे कुछ भी अधिक नही। ऐसी अनेक लकड़ियाँ संसार-समुद्रमें तैरा करती हैं। उसमें कितनी ही लकड़ियाँ मनुष्यके नामसे जानी जाती हैं।

एक भक्तने शंकर दादासे पूछा—महाराज ! तुम शरीरपर भस्म किसलिए धारण करते हो?—शिवजीने कहा—यह शरीर भस्म बनना है। भस्म, धारण करके शिवजी संसारको ज्ञान देते है। तुम शरीरको बहुत लाड़ लडाते हो। शरीर-सुख, तुम्हारा सुख है, ऐसा मानते हो, परन्तु शरीर तो चिताकी राख है। यह शरीर एक दिन शमशानमें जाना है परन्तु मनुष्यको लज्जा आती नही। वह शरीरका बहुत लाड़ लड़ाता है, भोग भोगा करता है। विषय-भोग कीचड़से भरेहुए घड़ेके समान है, जिसमे यह मनुष्य-देह डूबा करता है। अल्प समयमें ही वह जर्जरित हो जाता है और दुर्दशाको प्राप्तकर मृत्युकी शरणमे चला जाता है, भस्मीभूत हो जाता है।

कायोऽयमचिरापायोबुद्बुदोऽम्बुनिधाविव ।
व्यर्थकार्यपरावर्ते परिस्फुरति निष्फलः ॥
मिथ्याज्ञानविकारेऽस्मिन्स्वप्नसंभ्रमपत्तने ।
काये स्फुटतरापाये क्षणमास्था न मे द्विज ॥

बुलबुला जैसे समुद्रमें उत्पन्न होकर देखते-देखते ही नाशको प्राप्त होजाता है, उसी प्रकार यह शरीर भी उत्पन्न होकर पलभरमें ही नाशको प्राप्त हो जाता है। जीवित रहता है, तबतक सांसारिक व्यवहारके मिथ्या कार्योंमें ही वह व्यर्थमें भटका करता है। अज्ञान और भ्रान्तिरूप इस शरीरमें बुद्धिमान पुरुष आस्था रखते नहीं।

यह शरीर वासनारूप है। वासनाके आधारपर ही यह रहता है। स्त्री, पुत्र, भाई, मित्र सब वासनारूप है। सब परस्परकी वासनाके बलपर टिके हुए हैं। सत्य तो यह है, कि न कोई स्त्री है, न कोई पुत्र है, न कोई भाई और न कोई मित्र है।

वासनाका क्षय, ब्रह्मज्ञानके द्वारा होता है। मैं देह नहीं, मैं देहका नहीं, देह मेरी नहीं—ऐसा जिसकी समझमें आ जाता है, वह महापुरुष शान्ति प्राप्त करता है। ऐसा महापुरुष ही उत्तम पुरुष है।

देहकी प्रत्येक अवस्था दुःखमय है। बालक अशक्ति और न बोलनेके कारण लाचार है, दीन है। रोष और रुदनसे वह बहुत कष्ट पाया करता है। तृष्णा लालच, इत्यादि बालकको बहुत सताते है। अनेक प्रकारकी चिंतायें और भय, बाल-हृदयको पीड़ित करते हैं। बालकमे घोर अज्ञान रहता है। बाल्यावस्थामे विवेक न होनेसे जीवको बहुत क्लेश होता है। इसका मन अव्यवस्थित रहता है। अनेक गुना चचल रहता है। अनेक निष्फल मनोरथ इसको तपाते हैं। दु.ख देते हैं। नित्य नये मनवांछित पदार्थ न मिले तो इसे असह्य लगने लगता है। बाल्यावस्थामें शान्ति कहाँ? बाल्यावस्था शिक्षा प्राप्त करनेके लिए ही है।

जवानीमें काम, मनुष्यकी छातीपर चढ़ बैठता है। अनेक प्रकारके भोग, भोगनेसे तथा भोगोंका सकल्प करनेसे उसका मन अतिशय बिगड जाता है। बुद्धि भी बिगड़ जाती है। अनेक प्रकारोके दोषोंसे तथा विकारोसे चित्त भर जाता है। जवानीमे मनुष्य इन्द्रियोंका-बहुत लाड़ करता है। इन्द्रियोका गुलाम बन जाता है। अनेक प्रकारके मोहमे वह फँस जाता है। यौवन असत्य है, फिर भी सत्य जैसा लगता है, और थोड़े समयमें ठिकाने लग जाता है। यौवन बाहरसे सुखमय दीखता है, परन्तु वास्तवमे वह दुःखमय है। वह क्षणिक पदार्थोंमें फँसाये रखता है, और निरन्तर असत्य चिन्तन कराता है।

अज्ञानके कारण, यौवनमे अन्धकार छा जाता है। मनुष्य तब अन्धा हो जाता है। भगवान् सदाशिव सर्वशक्तिमान हैं, महासमर्थ हैं। फिर भी इस अज्ञानरूपी अँधेरेसे डरते है, इसलिए ज्ञानरूपी चन्द्रमाको उन्होने धारण किया है। यौवनमें मोह, दुराचार कराता है, भ्रान्ति उत्पन्न कराता है, बुद्धिको भ्रमाता है। स्त्रीको पुरुषका और पुरुषको स्त्रीका वियोग असह्य बन जाता है। विरहमें वह बहुत दुखी हो जाता है। पवित्र बुद्धि भी यौवनमें अपवित्र हो जाती है, अशुद्ध हो जाती है। चित्तकी वृत्तियाँ अत्यन्त प्रबल बन जाती है। यौवन आधि-व्याधिका घर है।

यौवन मनुष्यको अमर्याद बनाता है। धर्मकी मर्यादाओको वह गिनता नही। बहुत प्रयत्नोंसे संग्रह किए हुए सद्गुण टल जाते हैं और अनेक दोष जागृत हो जाते हैं। यौवन, मनोरथोंको बढाता है। रागद्वेषको बढाता है। सन्ताप बढ़ाता है, अशान्ति बढ़ाता है, मनको पागल बनाता है। ऐसी युवावस्थासे जो प्रसन्न होता है, वह बुद्धि-विहीन है, पशु-समान है। देहके सुखमें जो लवलीन रहता है वह पशुकी अपेक्षा, अरे! कीड़ेकी अपेक्षा भी कनिष्ठ है। मनुष्य अज्ञानसे और अभिमानसे यौवनमें आसक्त होता है और पीछे पछताता है। कोई भाग्यशाली जीव ही यौवनमें विनय-विवेक रख सकता है, सद्गुण टिका सकता है, सत्संग कर सकता है और प्रभुकी भक्तिमें चित्त जोड़ सकता है।

पुरुष, स्त्री-शरीरमें, स्त्री, पुरुष-शरीरमें लुभाते है । अरे, स्त्री-शरीरमें क्या सुन्दर है ? यह तो मांस-मज्जाकी एक पुतली है, नाड़ी और हड्डियोंका पिंजर है । ऊपरसे चमड़ी मढ़ दी गयी है । चमड़ी अलग कर देनेमें आवे तो शरीरको देखनेकी भी इच्छा होती नहीं । वह बाहरसे केशसे और अन्दर रुधिरसे भरी हुई है । मोहके कारण वह रमणीय लगती है । चमड़ी, मांस, रुधिर और पानी पृथक करके स्त्रीके नेत्रोंको देखो तो इसमें क्या रमणीय पदार्थ है ? मार्गमें हड्डीका टुकड़ा पड़ा हो तो उससे बचकर चलते है । फिर इस देहसे, जो हड्डियोंसे ही बना हुआ है, मनुष्य प्रेम करता है ।

मांसपाञ्चालिकायास्तु यन्त्र लोलेऽङ्गपञ्जरे ।
स्नाय्वस्थिग्रन्थिशालिन्याः स्त्रियाः किमिव शोभनम् ॥
त्वङ्मांसरक्त वाष्वाम्बु पृथक् कृत्वा विलोचनम् ।
समालोकय रम्यं चेत्किं मुधा परिमुह्यसि ॥

× × ×

पुष्पकेसरगौराङ्गी नरमारणतत्परा ।
ददात्युन्मत्तवैवश्यं कान्ताविषलता यथा ॥

स्त्री-देह विकारोंसे भरी हुई है । वह पुरुषकी बुद्धिमें अत्यन्त मोह उपजाती है, उसको परवश करती है, सन्मार्गसे दूर हटाती है और अन्तमें नरकमें धकेल देती है । कान्ता, विषलताके समान है, विषयकी पोटली है, अनेक दुःखोंको जन्म देनेवाली है ।

विष रस भरा कनक घट जैसे ।

स्त्री, पुरुषको बंधन देनेवाली है । कामदेव द्वारा फैलाया हुआ यह जाल है । कामदेव, सुन्दर स्त्रियों द्वारा कोमल मनको मथ डालता है । कामिनीके पीछे काल होता ही है । स्त्री-शरीर, पुरुषको रोग, घबड़ाहट और मृत्युकी ओर घसीट ले जाता है ।

स्थूल बुद्धिवाले पुरुष जो प्रियाओंको बहुत लाड़ लड़ाते हैं, वे ही श्मशानमें सूखते हैं । इनके सुन्दर देहको स्यार और कुत्ते चूसते हैं । वे स्यार और कुत्तेका भोजन बनते हैं । इनके सुन्दर केश-कलाप श्मशानमें वृक्षोंके ऊपर भूरे रंगके चमरके बालोंकी तरह लटकते रहते हैं । ऊँटके अंगोंका वनमें जो संस्कार होता है, वही कामिनीके अंगोंका भी होता है । इतना होते हुए भी बुद्धिमान पुरुष इसके पीछे क्यों दौड़ता है ? भोग भोगने-की वासनामें इसकी बुद्धि जो मलिन हो जाती है ।

भोग केवल ऊपर-ऊपरसे ही सुन्दर लगते हैं । वे सुखका आभास कराते हैं परन्तु देते हैं दुःख ही । भोगके त्यागसे ही शान्ति मिलती है ।

स्त्रियं त्यक्त्वा जगत्यक्तं जगत्यक्त्वा सुखी भवेत् ।

स्त्रीका त्याग करनेसे जगतका त्याग होता है और जगतके त्यागसे सुख प्राप्त होता है इसलिए मुझे भोगोमे आसक्ति नही रही है। मुझे तो परम आनन्दकी प्राप्ति करनी है।

बाल्यावस्थाकी क्रीड़ा आदिकी अभिलाषा पूरी हो, उससे पहले ही यौवन उसको निगल जाता है। यौवनमें भोगनेकी अभिलाषा होती है परन्तु मनुष्य भोगे या न भोगे तब तक तो उसकी वृद्धावस्था उसके यौवनको निगल जाती हैं। वृद्धावस्था बहुत भौंडी है। वह देहके अंगोंको शिथिल और जर्जरित करती है। रूपको बिगाड़ डालती है और अन्तमें उसका नाश कर देती है। वृद्धावस्थामें अशक्ति आती है, लाचारी आती है, शोक व्यापता है, बुद्धि चली जाती है, चिंता बढ़ती है, भय बढता है, तृष्णा बढ़ जाती है। बुढ़ापेमें मन और जीभ जवान बनती है। मन जवानीमें भोगे हुए सुखोंका बारम्बार चिंतन करता है। जिह्वा बहुत हैरान करती है। खाया हुआ पचता नही, फिर भी खानेकी बारम्बार इच्छा होती है। कफ बढ़ता है, पीडित करता है। रोग बढ़ता है। यमराजकी छड़ी, रोग और उद्वेगकी सेना मनुष्यको अतिशय पीड़ित करती है। काल, छातीके ऊपर चढ़ बैठता है और उससे इन्द्रियाँ क्रियारहित बन जाती हैं। लोग हँसी उड़ाते हैं। कोई सेवा करता नही। घरवाले अपमान करते है और अयोग्य हुए बैलकी तरह उसको छोड़ देते है, फिर भी मनुष्यको जीनेकी इच्छा रह जाती है। यह कैसी विडम्बना है।

काल किसीको छोड़ता नही। काल इस जगतमें जन्मी हुई एक-एक वस्तुको ग्रास बनाकर जाता है। काल महासमर्थ है, जगतमें सर्वत्र व्याप्त है। वह अनन्त ब्रह्माडको भी निगल जाता है। काल इन्द्रको चबा जाता है। यमको सपाटेमे ले लेता है, भुवनोको भसक जाता है। पृथ्वीका प्रलय कर देता है। वह समुद्रको सुखा डालता है। तारोको, सूर्य-चन्द्रको शून्य बना देता है, सिद्ध लोकोंका भी नाश कर देता है तो फिर पामर मनुष्यकी क्या गिनती ?

कालसे कोई बच सकता नही। विद्वान अथवा अनपढ़, रूपवान अथवा कुरूप धनपति अथवा दरिद्र, राजा अथवा रंक, पत्थर जैसा कठिन अथवा बाघ जैसा क्रूर—कोई भी कालकी पकडसे छूट सकता नही। काल जिसका नाश न कर सके, ऐसा इस जगतमें एक भी पदार्थ नही। काल बहुत क्रूर है। यह किसीके साथ भी प्रेम करता नही। कालका अस्त नही, उदय नही। जिस प्रकार बालक दो गेंदें उछालता-उछालता अपने आँगनमे खेलता है, उसी प्रकार काल भी अपनी लीलासे सूर्य तथा चन्द्रको आकाशमें उछाल-उछाल-कर खेलता है। काल बहुत प्रबल है। वह अपना पेट भरनेमे ही तत्पर है।

काल सबको विपत्तियोंमें डालता है। मृत्यु अत्यन्त कठिन है। आयु अत्यन्त थोड़ी है, क्षणभंगुर है। मनुष्य, इन्द्रियोमे फँसा हुआ है। इन्द्रियाँ शत्रुका काम करती हैं। इन्द्रियां भोग मांगती हैं। भोग, रोग लाता है और फिर मृत्यु लाता है।

चित्त अहंकारमें फँसा हुआ है। अहंकार, स्वरूपको दूषित करता है। आत्मा, स्वरूपको भूल जाता है, मनके साथ तद्रूप होकर स्वयं ही अपनेको दुखी करता है। सत्यको भूल जाता है। असत्य, अज्ञान, मोह बढ़ते हैं। निरन्तर तुच्छ विषयमें प्रीति रहती है। प्रीतिसे आसक्ति हो जाती है। आसक्ति पाप कराती है। कुकर्म करते-करते आयुष्य क्षीण हो जाती है। मृत्युके उपरान्त पुनर्जन्म होता है। फिरसे यही घटमाला प्रारम्भ हो जाती है। विषयोंसे वह मोह प्राप्त करता है। इस प्रकार जगतमें अनेक योनियोंमें भटकते हुए जीवोंकी आयु भोग भोगनेमें और पाप करनेमें बीतती चली जाती है। तब फिर संसार नामके इस पदार्थमें मेरे जैसोंका क्या विश्वास रहे?

जगतमें श्रेष्ठ गिनी जानेवाली मनुष्य-योनिमे भी जीवन कैसा है? भर्तृहरिने कहा है—

> आयुर्वर्षशतं नृणां परिमितं रात्रौ तदर्धं गतम्
> तस्यार्धस्य परस्य चार्धमपरं बालत्ववृद्धत्वयोः।
> शेषं व्याधिवियोगदुःखसहित सेवादिभिर्नीयते
> जीवे वारितरंगबुद्बुदसमे सौख्यं कुतः प्राणिनाम् ॥

मनुष्यका जीवन आज तो पूरा सौ वर्षका भी नही। ऐसे अल्प जीवनका आधा भाग नींदमें बीत जाता है। बाकी बचा आधा भाग अर्थात् कि चौथाई भाग बाल्यावस्था और वृद्धावस्थामें व्यतीत हो जाता है। इन अवस्थाओंमें मनुष्यको परतन्त्र जीवन जीना पड़ता है। छोटी-छोटी आवश्यकताओके लिए भी दूसरोंपर आश्रित रहना पड़ता है। अब जो चौथे भागकी आयु शेष रही, वह वियोगके दुःखमें, रोगमें, चिन्ताओंके संतापमें बीत जाती है। बाकीके समयमें उसको उदर-निर्वाहके लिए परिश्रम करना पड़ता है। मनुष्यको सत्कर्म करनेके लिए कोई समय रहता ही नही। जीवन तो समुद्रमें पानीका बुदबुदा जैसा है, बिजली जैसा क्षणिक है। कालका निरन्तर भय है। ऐसे जीवनमें सुख कहांसे प्राप्त हो सकता है? जीवनमें सुखकी आशा व्यर्थ है।

रामजी महाराज दशरथसे कहते है—पिताजी! इस संसारमें सुख कहाँ है? शान्ति कहाँ है? इस जगतका स्वरूप ऊपर-ऊपरसे मनमोहक है परन्तु परिणाममें अत्यन्त अप्रिय है। मानव, इन्द्रियोंका गुलाम बन जाता है और इन्द्रियाँ इसको गड्ढेमें डाल देती

हैं। कोई भी क्रिया करो, इसके परिणाममे तो क्लेश ही शेष रहता है। जगतका सम्बन्ध मनुष्यको मीठा लगता है परन्तु अन्तकालमे वह काम आता नही।

इतोऽन्यतश्चोपगताद्युथैव समानसंकेतनिबद्धभावाः।
यात्रासमासंगसमा नराणां कलत्रमित्रव्यवहारमाया॥

स्त्री, पुत्र, मित्र आदि सब यह व्यवहाररूपी माया है। जिस किसी भी प्रकार सबका सहजमें एक स्थानपर एकत्रीकरण हो गया है। यात्रामें, किसी तीर्थमें, मनुष्योंका कोई मेला हुआ हो, उसीके समान यह भी मिलन-मेला है। मेला पूर्ण होनेपर सब बिखर जाते हैं, कोई किसीके साथ जाता नही। सबको अकेले ही जाना पडता है।

अरे, जिसको अपना ही स्वरूप माना और जीवन भर जिसका खूब यत्न किया, वह देह भी साथ जाती नही और पीछे तो छोड़ी गयी देहको भी घरसे बाहर निकालनेकी सभी शीघ्रता करते है। जल्दी निकालो, नही तो वजन बढ़ जायेगा।

गतवति वायौ देहापाये
भार्या बिभ्यति तस्मिन्काये
भज गोविन्दं भज गोविन्दं...............

जिस देहके साथ निरन्तर प्रेम किया, उसी देह तथा पत्नीको भी छोड़ देना पडता है। इस जगतका सर्वसम्बन्ध झूठा है। कोई किसीके काम आता नही।

धन दौलत ज्यांना त्यां रे शे,
नारी आँगणियेथी वलशे,
मसाण सुधो बाँधव भणशे,
काया राख बनीने ढणशे।
वियोग सौ व्हालांना पड़शे, छूटशे ज्यारे प्राण,
जीवडा राम जपो निरवाण...................।

फिर भी मनुष्य समझता नही। समस्त जीवन मैं और मेरे-की हाय-हाय-से ऊंचा उठता नही। यह मेरी स्त्री, यह मेरा पुत्र, यह मेरी धन सम्पत्ति, यह मेरा घर, वह मेरा— मनुष्यका जीवन इस रीतिसे—मेरा-मेरा करनेमे ही जाता है। संस्कृतमें मेरा को मे कहते हैं। मनुष्यका जीवन बकरेकी तरह मे-मे करनेमे ही बीतता है।

कान्ता इमे मे तनया इमे मे गृहा इमे मे पशवस्त्विमे मे।
एवं नरो मेष समान रूपः मे मे कृतः कालवृकेण नीतः॥

मनुष्यकी यह मैं-मैं सुनकर काल-वैरी आ पहुँचता है, और अन्तमें इस 'में-मे' करते हुए भेड़को मार डालता है, खा जाता है।

रामजी कहते है—अन्तकालमें तो अत्यन्त मीठा लगता विषय भी मनुष्यको जहर जैसा मालूम पड़ता है। शरीर-सुख और धनलालसाके कारण जीवनमें मनुष्य धर्मकी मर्यादा पालता नहीं, पाप बहुत करता है परन्तु अंतकालमे ये बहुत पाप इसकी छाती पर चढ बैठते है और तब जीव अत्यन्त घबराता है। उसको बहुत पछतावा होता है, बहुत-दुःख होता है। तब उसका हृदय बहुत जलता है। उसको शान्ति मिलती नही।

जीवनमें पाप करते समय मनुष्य पीछेकी ओर देखता नही, किसीका डर रखता नहीं। डर लगता है, पापकी सजाका समय आने पर। मनुष्य, धर्मका, ईश्वरका डर रखता नहीं, और इससे वह दुःखी होता है। धर्मका, पापका, कालका डर रखोगे तो पाप होगा नहीं, और अंत समय घबड़ाहट होगी नही। जब जीव मरता है, तब अत्यन्त तडपता है। यमदूतोंकी गति पैरसे आँख तक होती हैं। पैरसे आँख तक जीव होता है, तबतक यमदूत धक्का मारते हैं। जीव बहुत व्याकुल होता है। ईश्वरके आधार बिना जीव निराधार है।

रामजी विश्वामित्र ऋषिसे कहते है—जीव ईश्वरका अंश है। अंश, अंशीसे बिछुड गया है। वह स्वरूप भूलकर जगतका बन गया हैं परन्तु जगतके साथ उसका सम्बन्ध कल्पित हैं, मिथ्या है। ईश्वरके साथ सम्बन्ध ही सत्य हैं। फिर भी वह संसारके संबंधोंमें फँसा हैं और परमात्माको भूला हुआ हैं।

जगत अनित्य है। जो कुछ स्थावर-जंगम जगत दीखता है वह अस्थिर है, निरन्तर परिवर्तनशील है। जलकी जगह स्थल बन जाता है। स्थलकी जगह जल हो जाता है। जंगलमें मंगल हो जाता है, मंगलमें जंगल हो जाता है। इस जगतकी रचना क्षणिक स्थिति वाली, तो क्षणमें ही नाशवाली है। हरक्षण आवागमन लगा रहता है। बडी-बड़ी नगरियाँ गिरकर खँडहर बन जाती है। बड़े-बड़े मान्धाता मिट्टीमें मिल जाते है। मनुष्य पशुका जन्म पा जाता है। पशु मनुष्यका जन्म पा जाता है। देवता भी अदेवत्वको प्राप्त हो जाते है।

आपदः क्षणमायान्ति क्षणमायान्ति संपदः ।
क्षणं जन्म क्षणं मृत्युर्मुने किमिव न क्षणम् ॥

हे मुनि! सम्पत्ति मिलती है। क्षणमात्रमे विपत्ति आ जाती है। क्षणमात्रमें जन्म होता है, क्षणमात्रमें मृत्यु आ जाती है। फिर कोनसा पदार्थ क्षणिक नही? थोड़े दिन

बाल्यावस्था, थोडे दिन जवानी, फिर थोडे दिन वृद्धावस्था—इस प्रकार इस देहमे भी एकरूपता नही तो फिर बाहरकी वस्तुओमे एकरूपता रहनेका क्या भरोसा ? जिसमें फेरफार न हो, ऐसा एक भी पदार्थ इस संसारमें देखनेमें नही आता ।

संसारका एक भी पदार्थ परिणाममे विनाशी होनेसे परिपूर्ण हो सकता नही । परिपूर्ण तो एक परमात्मा हैं । परमात्माको जो पहिचानता है, प्रभुके साथ मनको जो तदाकार बनाता है, वह जीव परमात्मारूप बनकर परिपूर्ण होता है और तभी जीवन सफल होता है । जीव जब तक अपूर्ण है, तब तक उसे शान्ति मिलती नही ।

इसलिए रामजी कहते है—मेरे चित्तमे विवेक जागृत हुआ है । मुझे विषयोके प्रति घृणा हुई है, मुझे अब भोगोकी इच्छा नही रही । स्त्री, सम्पत्ति, राज्य-सुख, घूमना-फिरना, भोग-भोगना, ये कोई भी मुझे सुख दे सके, ऐसा नही रहा । मेरे मनको शान्ति चाहिए । मेरा अहंकार गल गया है । इस बाल्यावस्थामें ही शुद्ध बुद्धिसे चित्तका उपाय नही हो तो पीछे इसका अवसर ही कहां आता है ?

युवावस्थामे जिसको वैराग्य आवे, जवानीमे जो संयम करके भक्ति करे, उसे वृद्धावस्थामें भगवानकी प्राप्ति होती है । वृद्धावस्थामे शरीरमे शक्ति रहती नही, इस अवस्थामें मनुष्य भक्ति नही कर सकता । तपश्चर्या जवानीमें ही होती है । शरीर दुर्बल होनेके बाद ब्रह्मचर्य पालनेका कोई अर्थ नही । वृद्धावस्थामें वैराग्य आवे, वह सच्चा वैराग्य नही । वैराग्यकी परीक्षा जवानीमे ही होती है । जो पासमें है ही नही उसका त्याग कर देनेका क्या अर्थ होता है । जवानीमें सम्पत्ति हो, शक्ति हो, सुख हो, भोग भोगनेकी सभी अनुकूलता हो, फिर भी मन विषयोमे न जाय तो वह सच्चा वैराग्य कहलाता है ।

विषं विषयवैषम्यं न विषं विषमुच्यते ।
जन्मान्तरघ्ना विषया एकदेहहरं विषम् ।

रामजी कहते हैं—जो कहलाता है, वह विष नहीं है अपितु विषयोकी विषमता ही विष है । कारण कि विष तो एक ही जन्ममें हानि पहुँचाता है जब कि विषय अनेक जन्मान्तरोमे हानि पहुँचाता है, मानवको अनेक प्रकारसे बिगाड़ता है । विषयोंसे बाहर रहना मैं सहन कर सकूं, ऐसा नही । इस ससारसे मैं त्रस्त हो गया हूं । मैं उसके साथका सम्बन्ध तोड़ डालना चाहता हूं परन्तु अन्त:करणकी शक्तियां उसमे विक्षेप करती हैं । निरन्तर दु:ख देनेवाला यह भौडा संसार रस-विहीन है फिर भी अज्ञानके कारण वह मीठा लगता है । अभी आधा संसार मैंने छोड़ा है, आधा पकड़ रखा है । मैं भूला हुआ हूं । मुझमे अव्यवस्था आ गयी है और इससे संसारका तथा परमार्थका—दोनों प्रकारके सुख खो गये हैं ।

मेरी बुद्धि, तत्वका निश्चय कर नहीं पा रही है। जगतके पदार्थ बुद्धिको बिगाड़ रहे हैं। जिसके मन-बुद्धि शुद्ध हो जाती हैं, उसे वासना त्रास देती नहीं। इसलिए मैंने राज-वैभव और कुटुम्ब आदिका त्याग करनेका विचार किया है। मुझे शोकरहित होना है। मुझे परमानन्द प्राप्त करना है। यह परमानन्द किसमें है, यह मुझे बताओ।

जो इस जगतमें आता है, उसे व्यवहार तो करना ही पड़ता है। व्यवहारमें विषमता भी आती ही है। संसारका कोई भी व्यवहार राग-द्वेष अथवा सुख-दुःखसे रहित नहीं होता। संसारका व्यवहार करनेमें दुःख भी प्राप्त न हो और व्यवहारमें भी अड़चन न आवे, ऐसा उपाय मुझको बतलाइये।

ऐसा कोई उपाय अब तक शोधन न हुआ हो तो उस उपायका मैं विचार करूँगा। यदि वह उपाय मुझे नहीं मिलेगा तो फिर मैं समस्त व्यवहार छोड़ दूंगा, सब कुछ त्याग दूंगा।

श्रीरामचन्द्रजीके ऐसे ज्ञानपूर्ण वचन सुनकर वहाँ बैठे हुए सभी, अत्यन्त विस्मित हुए। वशिष्ठजी, विश्वामित्रजी और ब्रह्मज्ञानियोंको आश्चर्य हुआ कि ऐसा अमृतत्व यह किशोर कैसे बोल रहे हैं? कैसा ज्ञान धारण कर रक्खा है! बृहस्पति भी जैसा बोल नहीं सकते, ऐसा अपूर्व वचन यह कुमार बोलते हैं। सुननेवालेमें वैराग्य जागृत करे, ऐसे इनके वचन है। विश्वामित्रजी, वशिष्ठजी सबको अत्यन्त आनन्द हुआ।

वेदान्तमें साधन-चतुष्टयकी बहुत महिमा है। विवेक, वैराग्य, षड्सम्पति और मुमुक्षुत्व—इन चारको साधना-चतुष्टय कहा गया है। सारासारको, नित्यानित्य वस्तुको परखनेवाले बोधको विवेक कहते है। संसारके विषयोंमें अनासक्ति—इसको वैराग्य कहते हैं। शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान ये षड्सम्पत्ति कहलाती हैं। मोक्षके लिए तीव्र आतुरताको मुमुक्षुत्व कहते हैं। जिसको ब्रह्मज्ञान प्राप्त करना है, उसे इन साधनोंमें प्रथम स्थिर होना आवश्यक है। रामजीमें ये सर्वसाधन स्पष्टरूपसे देखे जाते हैं।

विश्वामित्रजीने रामजीसे कहा—हे, राम! जो जानने-योग्य है, वह सब कुछ तुम जान ही चुके हो। अब विशेष कुछ जाननेके लिए तुमको शेष नहीं है। तुम्हारी बुद्धि निर्मल और स्वच्छ है। केवल उसे तनिक शुद्ध करनेकी आवश्यकता है, और थोड़ी स्थिर करनेकी आवश्यकता है। वेदव्यासके पुत्र शुकदेवजीमें भी तुम्हारा जैसा ही विचार उदित हो गया था।

ऋषि विश्वामित्र रामजीको शुकदेवजीकी कथा सुनाने लगे। शुकदेवजी वेदव्यासके पुत्र थे। वे मनमें इस संसारकी स्थिति पर अत्यन्त विचार करने लगे। विचार करते-करते

शुकदेवजीमें विवेक जागृत हो गया। विवेकसे बहुत विचार करते-करते अधिक समयमें उनको सत्यकी प्राप्ति हुई। शुकदेवजीको ससार मिथ्या लगा। ससारके प्रति उनमे वैराग्य जगा—जिस प्रकार कि परम सत्य प्राप्त होनेसे तुम्हारे अन्दर भी आज वैराग्य जगा हुआ है। यह परमसत्य तुमने जिस प्रकार अपने आप ही प्राप्त किया था, परन्तु उसमे जिस प्रकार तुमको विश्वास आया नही, उसी प्रकार शुकदेवजीको भी विश्वास नही आया। इससे उनकी बुद्धि स्थिर होती नही थी। तब एकान्तमे ध्यान करते हुए अपने पिता वेदव्यासजीसे शुकदेवजीने पूछा—हे मुनि! यह ससाररूपी प्रपच किस प्रकार उत्पन्न हुआ है? किसने उसे उत्पन्न किया है और किसमे यह शान्त होता है।

संसाराडम्बरमिदं कथमभ्युत्थितं मुने।
कथं च प्रशमं याति कियत्कस्य कदेति वा॥

वेदव्यासजीने शुकदेवजीको यथार्थ उपदेश किया। तब शुकदेवजीने मनमें विचार किया कि यह तो मैं पहलेसे ही जानता हूँ। पिताजी पुत्रमें फँसे हुए हैं, मायामें फँसे हुए हैं, इसलिए ऐसा लगता है कि उनका ज्ञान परिपूर्ण नही है। इसीसे मैं जो कुछ जानता हूँ, उससे आगे विशेष कुछ ये कह सके नही। शुकदेवजीको पिताके वचनोसे सन्तोष नही हुआ।

घरका लडका डॉक्टर हो गया हो तो घरवालोंको जल्दी विश्वास होता नही। बाहरका डॉक्टर दवा करे, उससे सन्तोष हो जाता है। रक्तका सम्बन्ध ही ऐसा है। रक्तके सम्बन्धके कारण ही शुकदेवजीको वेदव्यासजीके वचन सत्य प्रतीत नही हुए।

तब वेदव्यासजीने शुकदेवजीको सत्य जाननेके लिए जनक राजाके पास भेजा। शुकदेवजी मिथिला नगरीमे गये, और जनकराजाके महलके दरवाजेपर जाकर खड़े हो गये। अन्दर सन्देश भेजा। जनकराजाने शुकदेवकी परीक्षा प्रारम्भ की। सात दिन तक शुकदेवजीको द्वारपर खडा रखा। शुकदेवजी ने सत् शिष्योकी योग्यता प्रदर्शित की। सात दिनोतक ये उन्हीके द्वारके आगे खड़े रहे। जनकराजाको विश्वास हुआ कि शुकदेवजी सच्चे जिज्ञासु हैं।

फिर भी उन्होंने शुकदेवजीकी और अधिक परीक्षा की। आठवें दिन जनकराजाकी आज्ञासे राजाके सेवक शुकदेवजीको वेश्याओके पास ले गये। वेश्याओंने मिष्टान्न, संगीत, नाचगान, हावभाव तथा अनेक प्रकारके भोग-पदार्थोंसे शुकदेवजीको ललचानेके लिए सात दिनो तक अथक प्रयत्न किये परन्तु शुकदेवजी सम्पूर्णरूपसे निर्विकार रहे। शुकदेवजी जनक राजाकी परीक्षामें उत्तीर्ण हुए। वे जितेन्द्रिय थे। वीतराग थे। उनके अन्दर सच्चा वैराग्य जागृत हुआ था। राजा बहुत प्रसन्न हुए। शुकदेवजीको बुलाकर पूछा—शुकदेवजी! तुम्हारी क्या इच्छा है?

शुकदेवजीने जो प्रश्न व्यासजीसे किया था, वही जनकराजासे किया। प्रत्युत्तर एक ही था। जनकराजाने भी वही कहा, जो व्यासजीने कहा था।

तब शुकदेवजीने कहा—हे श्रेष्ठतम ! प्रथम इस विषयको मैंने मिले हुए ज्ञानसे जाना था। पीछे पिताजीके पूछनेपर उन्होंने भी यही बात कही। तुमने भी वही कहा है। शास्त्र भी वही कहते हैं—इस दुष्ट संसार जैसा ही यह दुष्ट मन उत्पन्न हुआ है। मन है तभी तक ससार है। मन मर जावे तो संसार मिट जावे। मन मरनेसे मुक्ति मिल जाती है। यह जो मैंने जाना है क्या वह सच्चा है ? मेरा चित्त अविश्वाससे भ्रमित हो रहा है। तुम्हारे वचनोंमें मेरा विश्वास है। तुम्हारे वचनोसे मेरा अविश्वास नाशको प्राप्त होगा और मेरी बुद्धि स्थिर होगी।

राजा जनकने कहा—हे शुकदेवजी। इससे अधिक कुछ भी जाननेको नहीं। जो कुछ जानने योग्य है, वह तुमने स्वयं ही जान लिया है।

नातः परतरः कश्चिन्निश्चयोऽस्त्यपरोमुने ।
स्वयमेव त्वया ज्ञातं गुरुतश्च पुनःश्रुतम् ॥
आविच्छिन्नचिदात्मैकः पुमानस्तीह नेतरत् ।
स्वसंकल्पवशाद्बद्धो निःसंकल्पश्च मुच्यते ॥

सर्वत्र एक अखंड चैतन्यरूप आत्माकी ही सत्ता है। आत्मा बिना अन्य कुछ है ही नहीं। आत्मा स्वयंके संकल्पको लेकर ही बँधा हुआ है। संकल्परहित हो तो वह मुक्त ही है। यह संसार संकल्पमें-से उत्पन्न हुआ है। तुमको तो संसारका एक भी भोग भोगनेसे पहले ही वैराग्य हो गया है। तुमको कोई इच्छा नही, कोई वासना नही। तुम्हारा कोई संकल्प नहीं।

तुमको जैसी पूर्णता हुई है, वैसी तो तुम्हारे पिताजीको भी प्राप्त हुई नहीं। अब तुमको दूसरा क्या जाननेको बाकी है ? तुम व्यासजी के पुत्र हो, फिर मेरे शिष्य हुए हो। मैं तुम्हारा गुरु हुआ हूं। पिताकी अपेक्षा गुरु अधिक है। जो प्राप्त करने योग्य हैं, वह तुमने प्राप्त कर लिया हैं। हे ब्रह्मन् ! तुम मुक्त हो हो। इसलिए भ्रान्ति छोड़ दो।

परमानन्द हुआ। जनकराजाने शुकदेवजीको जानेकी आज्ञा दी। शुकदेवजी-ने राजाको गुरुदक्षिणा देनेकी इच्छा बतायी। राजाजनक तो जीवन्मुक्त थे, परिपूर्ण थे। उनको किस वस्तुकी जरूरत थी ? उन्होंने कहा—मुझको किसी वस्तुकी आवश्यकता नही। फिर भी तुम्हें गुरुदक्षिणा देनी ही हो तो इस जगतमें जो निरुपयोगी वस्तु हो, वह मुझको दो।

शुकदेवजी विचार करने लगे। जगतमें निरुपयोगी वस्तु क्या ? बहुत विचार कर अंतमें ऐसे निर्णय पर आए कि इस जगत में सबसे निरुपयोगी वस्तु तो मिट्टी है।

शुकदेवजी मिट्टी लेनेके लिए नीचे गये। तब मिट्टीमे-से ध्वनि आयी कि तुम मुझको निरुपयोगी समझते हो ? मेरा तो बहुत उपयोग है। अन्नमैं उत्पन्न करती हूँ, गंध मुझसे प्राप्त होती हैं। घड़ा आदि पात्र मुझसे तैयार होते हैं।

शुकदेवजी ने मिट्टी फेक दी। वे पत्थर उठाने गये। पत्थरमें-से आवाज आयी कि मैं निरुपयोगी कहलाने योग्य कहाँ हूँ ? लोग मेरे द्वारा मकान बनाते हैं, मेरे द्वारा अनाज पीसते है। मेरे अनेक उपयोग है।

शुकदेवजी विचारने लगे कि मिट्टी तथा पत्थरसे भी हीन ऐसी कौन-सी वस्तु हो सकती हैं ? इतनेमें उनकी नजर घूरेपर पड़ी विष्ठा पर पड़ी। शुकदेवजीने विचार किया कि यह ठीक हैं, यही एक निरुपयोगी वस्तु हैं। कोई इसको घरमे रखता नही। सभी इसको बाहर फेंक देते हैं। किसीके उपयोगमें यह आती नही।

शुकदेवजीने विष्ठा लेनेके लिए हाथ लम्बा किया कि उसमेसे ध्वनि आयी कि तुम मुझे निरुपयोगी क्यों समझते हो ? मैं तो अत्यन्त उपयोगी हूँ। अनेक कीड़ोका, जीवोंका पोषण करती हूँ। मैं उत्तम खाद हूँ। मेरे द्वारा उत्तम फसल प्राप्त की जाती है। आज भले ही मुझको निरुपयोगी समझकर बाहर फेंक दिया जाये, परन्तु एक समय मैं सोनेकी थालीमें बैठी थी। मेरा स्वरूप उत्तम मिष्टान्नका था। मुझमें-से सुन्दर सुगन्ध निकलती थी परन्तु आज मेरी दुर्दशा हो गयी है। मैं दुर्गन्धवाली बन गयी हूँ और घूरेपर पड़ी हुई हूँ। मेरी एक ही भूल हुई कि मैंने मनुष्योंका संग किया। मै उनके पेटमे गयी। मेंने मनुष्य-देहका संग किया इससे मेरी यह दशा हुई। इसमें यदि किसीका दोष है तो वह मनुष्य-देहका है, मेरा नहीं।

शुकदेवजीके ध्यानमें आ गया कि सबसे निरुपयोगी वस्तु तो यह देहाभिमान ही है। मै पुरुष हूँ, मैं स्त्री हूँ, मै यह हूँ, मै वह हूँ—यह देहाभिमान ही सबसे अधिक निरुपयोगी है। इसके रहनेपर यही सबसे अधिक उपद्रव करता है। यह देहाभिमान ही मनुष्यको संसारमे बाँधकर रखता है। देहाभिमानको फेक दे तो मनुष्य मुक्त हो जाता है।

शुकदेवजीने एक क्षणमें देहाभिमान दूर किया और अपने आपको राजा जनकके चरणोंमें समर्पित कर दिया। राजाने कहा—ब्रह्मन् ! मुझे गुरुदक्षिणा मिल गयी। तुम कृतार्थ हुए हो। तुम परिपूर्ण हो, मुक्त हो।

शवाकारं यावद्भजति मनुजस्तावदशुचिः
परेभ्यः स्यात्क्लेशो जननमरणव्याधिनिलयः।
यदात्मानं शुद्धं कलयति शिवाकारमचलम्
तदा तेभ्यो मुक्तो भवति हि तदाह श्रुतिरपि ॥

शास्त्रमें लिखा है कि मनुष्य जब तक इस शवरूपी देहमें आसक्त है, तब तक उसका मन बिगड़ा हुआ रहता है। मन बिगड़नेसे बंधन आता है, जन्म-मरण और व्याधि आती है परन्तु इस जीवको जब-आत्मस्वरूपका ज्ञान हो जाता है, जीव जब अपने शुद्ध देहसे भिन्न, आत्मस्वरूपको जानता है, तभी मुक्ति हो जाती है। जीव, शिव बन जाता है।

विश्वामित्र ऋषिने शुकदेवजीकी यह कथा रामजीको सुनायी। फिर उन्होने ऋषि वशिष्ठसे कहा—भगवान् वशिष्ठ! रामजीमें भी शुकदेवजो जैसा ही विचार उदित हो गया है। इस बाल्यावस्थामें ही उन्होने जानने योग्य सभी कुछ जान लिया है। परम तत्व- जाने बिना वैराग्य जागृत होता नही। रामको सुन्दर-सुन्दर विषयोंमें भी आसक्ति नही, दृढ वैराग्य जागा है, इसलिए रामजी परमतत्व जान चुके हैं परन्तु उनको उसमें विश्वास नही होता है। राजाजनकके वचनोंसे जैसे शुकदेवजीको विश्वास हुआ वैसे ही तुम अब रामजीको उपदेश करो, जिससे उनकी बुद्धि स्थिर हो और उनका मन शांत हो।

(३२)
वशिष्ठजीका उपदेश

तत्पश्चात् महर्षि वशिष्ठका सुन्दर उपदेश हुआ। वशिष्ठजीने रामचन्द्रजीसे कहा—तुम क्या छोड़ना चाहते हो? तुम राजमहल छोड़कर जंगलमें जाओगे तो वहाँ भी छोटी-सी झोंपड़ीकी आवश्यकता पड़ेगी ही। सुन्दर वस्त्रोंको फेक दोगे, परन्तु लँगोटीकी जरूरत रहेगी ही। उत्तम व्यञ्जन छोड़ दोगे तो भी कंदमूल तो खाना ही पड़ेगा। तुम त्याग किसका करोगे? बहिरंग होकर किया हुआ त्याग, सच्चा त्याग नही। अन्दरसे त्याग करो।

> अन्तस्त्यागी बहिर्शगीरी लोके विहर राघव।
> अन्तरेको बहिर्नाना लोके विहर राघव॥

त्याग तो मनसे करना होता है। संसार तो मनकी कल्पना है। मन नही तो संसार भी नहीं। मन है, तबतक संसार है।

मनएव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ।
बन्धाय विषयासक्तं मुक्तं निर्विषयंस्मृतम् ॥

मन, बंधनमे डालता है। मन मुक्ति भी दिलाता है। मन विषयासक्त हो तबतक मनुष्य बंधनमें रहता है। मन जब निर्विषय बनता है तब मनुष्यकी मुक्ति हो जाती है, इसका संसार छूट जाता है।

मन किस प्रकार जीवित रहता है? मनमे संसारके विषय हैं, मन संसारका चिन्तन करता है, इससे मन जीवित रहता है। दीपकमें तेल होता है तबतक दीपक जलता है। दीपकका तेल समाप्त हो जाता है तब दीपक शान्त हो जाता है। दीपकको शान्त करनेके लिए यही युक्ति है कि दीपकमें तेल न डालो। अग्निमे लकडी-कोयला डालना बंद कर दोगे तो अग्नि अपने आप शान्त हो जाएगी। विषय मनमें आते हैं, इससे मन जीवित रहता है। इन विषयोका मनमे आना बन्द करोगे तो मन शान्त हो जाएगा।

यह संसार मनोमय है। स्वप्नका संसार कौन उत्पन्न करता है? जैसे स्वप्नके ससारको मन उत्पन्न करता है, वैसे ही जाग्रत अवस्थाका संसार भी मनकी ही कल्पना है। स्वप्न अर्थात् क्या? अपने स्वरूपके अज्ञानको स्वप्न कहते है। खाटमें पड़े पीछे जब तक ज्ञान है, मैं घरमें हूँ, सोया हुआ हूँ, तब तक स्वप्न दिखाई देता नही। स्वप्न तब दीखता है जब स्वयका स्वरूप भूलता है। स्वयंके स्वरूपका विस्मरण हुए पीछे ही स्वप्न दीखता है।

स्वप्नका ससार अपने अज्ञानसे ही उत्पन्न हुआ है। जागृत अवस्थाका जगत भी ईश्वर-विषयक अज्ञान होनेसे भासता है। चारपाईपर जगनेके बाद स्वप्नका संसार दीखता नही। जगनेवालेको विश्वास हो जाता है मैं तो घरमे हूँ, चारपाईपर हूँ, मैंने जो कुछ देखा, वह सब झूँठा था। स्वरूपका ज्ञान होनेके बाद स्वप्नका ससार, सुख अथवा दु.ख देता नहीं। उसी प्रकार जाग्रत अवस्थामें भी जीवको स्वरूपका ज्ञान हो जाय तो ससार सुख-दु ख देता नही, संसारसे मुक्ति मिल जाती है।

आत्मस्वरूपावस्थानंमुक्तिरित्यभिधीयते ।

सुख-दुःख अज्ञानसे उत्पन्न हुए हैं। सुख दुख मनके धर्म हैं। मन माने तो सुख है और न माने तो कोई सुख नही। सुख सत्य नही और दु.ख भी सत्य नही। सुख और दु.ख यदि सत्य हों तो इनका विनाश किसी भी दिन होगा ही नहीं। सुख खोटा है और दु:ख भी खोटा है। कल्पना करो कि किसीके घर पत्नीका मरण हो गया। यौवनमें जिसकी पत्नीका मरण हो जाता है, वह बहुत रोता है, बहुत दु:खी हो जाता है परन्तु चार-

छः मास बीते अथवा न बीते, धीरे-धीरे वह दूसरे विवाहकी बातें प्रारम्भ कर देता है। पत्नीके मरणका दुःख वह भूल जाता है।

संसारमे सुख-दुःख टिकता नहीं। वह अनित्य है, असत्य है, केवल मनकी कल्पना मात्र है। आत्मा शुद्ध है, चेतनरूप है, आनन्दरूप है। आत्माको सुख नहीं, आत्माको दुःख नही। तुम आनन्दस्वरूप हो। तुम मन नही, मनके साक्षी हो। मनुष्य इस प्रकार बोलता है कि मेरा मन बिगड़ गया। कोई ऐसा बोलता नही कि मैं बिगड़ गया। मनुष्य बोलता है कि मेरा मन चंचल हो गया, मेरे मनमें पाप आया। वह जिसको दिखाई दिया, वही तुम्हारा स्वरूप है।

तुम पुरुष नही, तुम स्त्री नही, तुम स्त्री-पुरुषसे इतर भी नहीं। स्त्री-पुरुषत्वादि तो देहके भाव हैं। आत्माकी कोई देह नही, कोई अवयव नही। आत्मा अमूर्त है, पूर्ण है, द्रष्टा है।

न त्वं स्त्री न पुमानेष नैव चायं नपुंसकः।
अमूर्तः पुरुषः पूर्णो द्रष्टा देही सजीवनः॥

× × ×

परस्पराध्यासवशात् स्यादन्तःकरणात्मनो।
एकीभावाभिमानेन परात्मा दुःखभागिव॥

परन्तु आत्मा अपने स्वरूपको भूला हुआ है और परस्परके अभ्यासके कारण, एकत्वके अभिमानके कारण मनको हुए सुख-दुःखोंका आरोप आत्मा अपने स्वरूपमें करके सुखी-दुःखी जैसा हो जाता है। ज्ञानी महापुरुष ऐसा मानते है—मैं यह शरीर नहीं, इन्द्रिय नहीं, प्राण नही, मैं मन नहीं, बुद्धि नहीं। ये तो सब जड़ है, असत्य है।

विग्रहेन्द्रिय प्राणधीमनः।
नाहमेकसत्तज्जडं ह्यसत्॥

मैं तो चैतन्य हूँ, सत्य हूँ, शुद्ध हूँ। देह-मनके सुख-दुःख मेरे सुख-दुःख नही। पूर्व जन्मका जो कुछ प्रारब्ध है उसे भोगकर पूरा करना है। आत्मस्वरूपमें स्थित हुए ज्ञानी पुरुष क्या प्रारब्ध खड़ा करते नहीं? इनके मनमें किसीके प्रति राग नहीं, किसीके प्रति द्वेष नहीं, सबके लिए समभाव है। ये कोई कर्म करे अथवा न करें, सब समान ही है। इस प्रकार किए गये कर्म नया प्रारब्ध खड़ा करते नहीं। तुम सब ऐसा पवित्र जीवन बिताओ कि जिससे नया प्रारब्ध उत्पन्न न हो, जीवन-मरणका त्रास छूट जाये। साधा०-- मनुष्य दूसरे जन्मकी तैयारी इस जन्ममें करता है। संसारके विषयोंमें राग-द्वेष होनेसे तो

नया प्रारब्ध उत्पन्न हो जाता है। जगतके साथ वैर न करो, परन्तु इस जगतके साथ बहुत प्रेम भी न करो।

कोई मिले तो दोनों हाथ जोड़कर जय श्रीकृष्ण करो, दो-चार मधुर शब्द बोलो परन्तु कोई मनुष्य कदाचित् दो-चार महीने तक न मिले तो वियोगमें उसको स्मरण न करो कि मेरा भाई मुझे दो महीनेसे मिला नही। वियोगमें तुम जिसका स्मरण करोगे, वह तुम्हारे मनमे घर करेगा। वियोगमे तुम जिसका चिंतन करोगे वह तुमको रुलायेगा, वही तुम्हारे दु:खका कारण बनेगा। मिले तो ठीक है और कोई न मिले तो और भी अच्छा है। मनसे निश्चय करो कि मुझे अब किसी मनुष्यसे मिलना नही। मुझे विश्वास हो गया कि किसी स्त्री अथवा किसी पुरुषसे मिलनेपर सच्ची शान्ति मिलती नहीं। मुझे तो परमात्मासे मिलना है। किसीका तिरस्कार न करो परन्तु किसी जीवके साथ बहुत प्रेम भी न करो। रागद्वेषसे नया प्रारब्ध उत्पन्न होता है।

ज्ञानी महापुरुष प्रारब्ध भोगकर पूरा करते हैं। वैष्णवजन भगवद्-इच्छाको मान देकर, भगवद्-इच्छासे प्राप्त हुए व्यवहारको विवेकसे पूरा करते है।

ईश्वरार्पितं नेच्छया कृतम्।

साधु पुरुष भी व्यवहारका काम करते हैं परन्तु व्यवहारका काम करनेमे ये सावधान रहते हैं कि मन बिगड़े नही, मनमे राग-द्वेष आवे नही। श्रीरामचन्द्रजीको ऋषि वशिष्ठने बताया कि यह सब खेल मन किया करता है। संसार मनोमय है।

संकल्पजालकलनैव जगत् समग्रम्
संकल्पजालकलनात्तु मनोविलासाः।
संकल्पजालं अलं उत्सृज निर्विकल्पम्
आश्रित्य निश्चयमवाप्नुहि राम शान्तिम्॥

संकल्पसे संसार खडा हुआ है। यह ससार सकल्पसे उत्पन्न हुआ है। संसार, मनकी कल्पना मात्र है। ससारके सुख-दु:ख मनके ही विलास हैं। मनका विलास, मनका धर्म, संकल्पसे उत्पन्न हुआ है। सकल्प जायेगा तो सुख-दु:ख भी जायेगे, समभाव आवेगा, आनन्द मिलेगा। संकल्प जाएगा तो निर्विकल्पता आवेगी। निर्विकल्पता शाश्वत शान्ति लावेगी। शान्तिके लिए संसारका त्याग करनेकी जरूरत नही। संसारमें रहो, परन्तु संसारका मनसे त्याग करो। संसारका चिंतन छोड़ोगे तो मन शान्त हो जावेगा। मनका नाश ही मुक्ति है। जिसका मन मरता है, उसको मुक्ति मिलती है।

मनसोऽभ्युदयो नाशो मनोनाशो महोदयः।

मन, विषयोंका चिंतन करता है तबतक ही जीवित रहता है। मन परमात्माका ध्यान करता है, तब प्रभुमे मिल जाता है। परमात्माके स्वरूपमे मनका लय हो उसे ही मुक्ति कहते है। जन्म-मरणका कारण मन है। त्याग मनसे करना है। बहिरंगमें किया हुआ त्याग, सच्चा त्याग नही। यह तो दंभ है। अन्दरसे त्याग करो।

भगवानने गीताजीमे आज्ञा की है कि—

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते॥
यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते॥

बहिरंगमें त्याग करे और मनसे विषयोंका चिंतन करे, तो यह ढोंग कहलाता है। इसका कोई अर्थ नहीं। विषयेन्द्रियोपर जो काबू रक्खे, मनसे जो विषयोंका त्याग करे और आसक्ति बगैर व्यवहारका कार्य करे उसका त्याग सच्चा है। भगवद्-इच्छासे प्रारब्धसे जो व्यवहार-कार्य प्राप्त हुआ है वह भगवद्-इच्छाको मान देकर परमात्माका अनुसंधान रखकर करना चाहिए, मनको सावधान रखकर करना चाहिए।

मनुष्य, शरीरकी रक्षा करता है, धनकी रक्षा करता है, परन्तु मनकी रक्षा नहीं करता है। जो मनकी रक्षा करता है वह महान् बनता है। अन्य सब कुछ बिगडे तो भले ही बिगड़े, परन्तु तुम्हारा मन न बिगड़े, इसका खास ध्यान रखना चाहिए। संसारमें रहनेसे मन नहीं बिगड़ता, संसारका ध्यान करनेसे मन बिगड़ता है। संसारका ध्यान न किया जाय तो मन नहीं बिगड़ेगा, संसारका ध्यान छूटे और परमात्माका सतत अनुसन्धान रहे तो संसार सुखमय बने और जहाँ रहोगे वहाँ शान्ति बनी रहेगी, नही तो, वनमे जानेपर भी संसार साथ रहेगा। घर बाधक होता नही, घरकी आसक्ति बाधक होती है। ससार, दुःख देता नही, संसारकी आसक्ति दुःख देती है। प्रारब्धसे जो प्राप्त हुआ है वह प्रभुकी प्रसादी मानकर अनासक्तिपूर्वक भोगा जाय तो उसमें बाधा नहीं। तुम किसका त्याग करना चाहते हो? महात्मा पुरुष तो आसक्तिका त्याग करते है। सम्पूर्ण जगत् परमात्माका स्वरूप है। जिसका मन शान्त है वह जहाँ जाये वही उसे शान्ति मिलती है। जिसका मन अशान्त है वह मन्दिरमें जाये, बँगलेमे रहे अथवा वनमे रहे तो भी उसे शान्ति नहीं मिलती। मन ईश्वरसे दूर जाये तभी अशान्त होता है।

कितने ही लोग शान्ति प्राप्त करनेके लिए, परमात्माको प्राप्त करनेके लिए संसारका त्याग करते है, साधु-वेष धारण करते है, माथा मुँड़वाते है, परन्तु संसार उनके मनमें-से जाता नहीं। बहिरंगमें तो उन्होंने त्याग किया है परन्तु ऐसे त्यागका कोई अर्थ

नही। अरे, मुण्डन करवा लेनेसे ही यदि त्यागका फल मिल जाता हो, शान्ति मिलती हो, परमात्मा मिलते हों तो कबीरजीके कहनेके अनुसार, भेड़ तो अनेक बार मुण्डन कराती है, फिर भी वैकुण्ठ क्यो नही जाती।

मूँड़ मुड़ाये हरि मिलें, सब कोइ लेइ मुड़ाय।
बार-बार के मूड़तें, भेड न वैकुण्ठ जाय॥

सच्चे वैराग्यके बिना ईश्वरका ज्ञान होता नही, ब्रह्मज्ञान आता नही, ज्ञानी होता नही, जन्म-मरणके चक्करमे-से छूटता नही।

कुशला ब्रह्मवार्तायां वृत्तिहीनाः सुरागिणः।
तेऽप्यज्ञानतया नूनं पुनरायान्ति यान्ति च॥

ब्रह्मज्ञानकी बातें करे, परन्तु पैसे और प्रतिष्ठाके साथ प्रेम करे तो यह खरा ज्ञान नही। सच्चा ज्ञानी वह है जो ईश्वरके साथ प्रेम करता है। वशिष्ठ गुरुजीने पीछे रामजीको ज्ञानकी सात भूमिकायें समझायी हैं। पहली भूमिकाको शुभेच्छा कहते हैं। आत्मकल्याणके लिए श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ गुरुकी शरणमे जाकर शास्त्रोका अध्ययन करके उनके उपदेशके अनुसार आत्मविचार करनेकी उत्कण्ठा, आत्माका साक्षात्कार करनेके लिए जो उत्कट इच्छा हो उसे शुभेच्छा कहतेहैं।

दूसरी भूमिकाका नाम है सुविचारणा। सद्गुरु द्वारा उपदेश किए हुए वचनोंका तथा मोक्ष-शास्त्रोका बारम्बार विचार किए जानेकी स्थितिको सुविचारणा कहते हैं। तीसरी भूमिका है तनुमानसा। श्रवण, मनन और निदिध्यासनसे शब्दादि विषयोमें जो अनासक्ति हो और सविकल्प समाधिमें अभ्यासके द्वारा बुद्धिकी तनुता—सूक्ष्मता प्राप्त होती है, वह तनुमानसा है।

विवेकपद्रुमं रुढोऽन्तर्विचारार्कविकासितः।
फलं फलत्यसंसङ्गां तृतीयां भूमिकामिमाम्॥

मन-बुद्धिमें जिस समय शुभेच्छा और सुविचारणारूपी विवेक जागृत होता है उस समय अनासक्ति दृढ़ होती है। ये प्रथम तीन भूमिकाये साधन कोटिकी हैं। बाकीकी चार ज्ञान कोटिकी हैं। तीन भूमिकाओं तक सगुण ब्रह्मका चिन्तन करो। तीन भूमिकाएँ सिद्ध होनेपर सब अविद्याका नाश होगा और ज्ञानका स्फुरण होगा।

चौथी भूमिकाको कहते हैं सत्वापत्ति। प्रथम तीन भूमिकाओसे साक्षात्पर्यन्तकी स्थिति अर्थात् निर्विकल्प समाधिरूपमे स्थिति ही सत्वापत्ति है। ज्ञानकी चौथी भूमिका-वाला पुरुष ब्रह्मवित् कहलाता है। उसके पीछेकी पांचवी भूमिका है असंसक्ति।

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥

चित्तविषयक परमानन्द और नित्य अपरोक्ष ब्रह्मात्म-भावनाका साक्षात्कार रूप चमत्कार होता है, वह असंसक्ति है। इसमें अविद्या तथा उसके कार्योंका सम्बन्ध नहीं। इसलिए उसका नाम असंसक्ति है। ज्ञानकी इस पाँचवीं भूमिका तक पहुँचनेपर जड़ और चैतन्यकी ग्रन्थि छूट जाती है और आत्माका अनुभव हो जाता है। आत्मा, शरीरसे पृथक है, यह ज्ञान स्थिर हो जाता है।

पदार्थाभावनी, छठी भूमिका है। पदार्थोंकी दृढ़ अप्रतीति हो उसे पदार्थाभावनी अवस्था कहते हैं। इसमें देहाभ्यास छूट जाता है। संसारकी अत्यन्त विस्मृतिकी इस अवस्थामें रहनेवाला पुरुष दूसरोंके अत्यन्त प्रयत्न करनेपर देहभानमें आता है।

परप्रयुक्तेन चिरं प्रयत्नेनावबोधनम् ।
पदार्थाभावना नाम षष्ठी संजायते गतिः ॥

इन भूमिकाओंमें उत्तरोत्तर देहका भान भूलता जाता है और अन्तमें उन्मत्त अवस्था प्राप्त होती है।

सातवीं और अन्तिम भूमिका है तुर्यगा। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति—इन तीन अवस्थाओंसे परे ऐसी जो अवस्था है, उसे तुर्यगा कहते है। इस अवस्थामे स्थित रहनेवाला पुरुष ब्रह्मको आत्मस्वरूपमें अखण्ड जानता है, अनुभव करता है।

अन्तः शून्यो बहिः शून्यः शून्यकुम्भ इवाम्बरे ।
अन्तः पूर्णो बहिः पूर्णः पूर्णकुम्भ इवार्णवे ॥

हवामें रखा गया घड़ा जिस प्रकार अन्दर और बाहर खाली है और समुद्रमें डूबा हुआ घड़ा जिस प्रकार अन्दर और बाहर—सर्वत्र जलसे ही परिपूर्ण है, उसी प्रकार सातवीं अवस्था प्राप्त करनेवाला पुरुष अन्दर-बाहर जैसा खाली है वैसा ही भरा है। संसार इसके लिए शून्य हो जाता है और यह स्वयंमें, परिपूर्णमें, ब्रह्ममें—परिपूर्ण ब्रह्म ही बन जाता है।

वशिष्ठजी श्रीरामचन्द्रजीसे कहते है कि तुम तो परमात्मा हो। यहाँ तो लीला करनेके लिए तुम पधारे हो, तुम सब कुछ जानते ही हो। यह तो तुम मुझे मान दे रहे हो। तुम जगत्का कल्याण करनेके लिए पधारे हो। यह बिगड़ा हुआ मन परमात्माके नामके साथ प्रीति करे तभी सुधरता है।

मनको उलटा करनेसे नम होता है। यह जो कुछ दिखायी देता है सब परमात्मा-का ही स्वरूप है। ऐसा सद्भाव रखकर सबको मनसे नमो और परमात्माके किसी भी नामके साथ प्रीति करो। नम और नाम—इन दो साधनोसे ही मन सुधरता है।

वशिष्ठजीने रघुनाथजीको ज्ञान-वैराग्यका उपदेश किया। रामजीके गुरुजी कौन बन सकते हैं? रामजी परमात्मा हैं, स्वय जगद्गुरु है। उनको कौन उपदेश दे सकता है परन्तु रामजीने लीला की है, वशिष्ठ ऋषिको मान दिया है और जगतको बोध दिया है।

गुरु बिन ज्ञान न ऊपजे, गुरु बिन मिले न भेद।
गुरु बिन संशय ना मिटे, जय जय जय गुरुदेव॥

श्रीराम सबके सद्गुरु हैं। गुरु और सद्गुरुमें अन्तर है। शब्द द्वारा ज्ञानका उपदेश जो करता है वह गुरु है। आचरणसे—क्रिया द्वारा जो ज्ञानका उपदेश करता है, वह सद्गुरु है। इस संसारमे शब्दसे ज्ञानका उपदेश करनेवाले बहुत हैं परन्तु स्वयके आचरण द्वारा उपदेश करनेवाले विरले हैं। शब्दसे उपदेश करनेवालोंकी संसारमें बुराई नही। बहुत लोग पुस्तक पढ़कर ज्ञान-अर्जन करते हैं, दूसरोंको उपदेश करते है परन्तु उनके उपदेशका कोई असर होता नही। असर उनके ही उपदेशका होता है जिन्होंने ज्ञानको जीवनमे उतार लिया है, जिन्हें शब्दार्थवाला ज्ञान नही परन्तु क्रिया-अर्थवाला ज्ञान है। जो ज्ञान जीवनमें उतरता नही, वह बहुत काममें आता नही। शब्दज्ञानसे कदाचित् पैसा मिलेगा, परन्तु अन्दरकी शान्ति मिलेगी नही। शब्द-ज्ञानसे अन्दरकी विकार-वासनाका नाश होता नही।

रामायणमें लिखा है कि श्रीरामचन्द्रजी बहुत कम बोलते हैं और एकवचनी हैं। रामजी बहुत व्याख्यान नही करते, वहुत बोलना रामजीको अच्छा नही लगता। रामजीका उपदेश शब्दात्मक नही, क्रियात्मक है। रामजीकी प्रत्येक क्रिया, ज्ञान-भक्तिसे परिपूर्ण है। रामजीके चलनेमें भी ज्ञान है। रामजी जगतमे विचरते हैं, जगतको देखते हैं, जगतके साथ व्यवहार करते है। इनका समस्त व्यवहार ज्ञान और भक्तिसे भरा हुआ है।

साधारण मनुष्य ऐसा समझता है कि व्यवहार और भक्ति अलग-अलग हैं, व्यवहारका काम करते हुए भक्ति नही हो सकती। ज्ञानी महापुरुषोके प्रत्येक व्यवहार, भक्तिमय होते हैं। ज्ञानी महापुरुष ऐसा नही मानते कि अमुक समय भक्तिका है, और अमुक समय व्यवहारका है। वे ऐसा मानते है कि भक्ति निरन्तर की जाने योग्य है। उठते, बैठते, चलते, रात्रिको चारपाईपर सोते-सोते भी भक्ति करनी है, जीवनके अन्तिम श्वास तक भक्ति करनी है। रात्रिको चारपाईपर जो भक्ति नही करता वह कामकी मार खाता है, वह कामान्ध-मोहान्ध बनता है। वह पाप करता है।

चारपाईपर पड़नेके बाद परमात्माका नाम-जप करते-करते सो जाओ। चारपाई-पर सोनेके बाद धीरे-धीरे जगत भूल पाता है। जगतकी पूर्ण विस्मृति होनेके बाद ही निद्रा आती है। निद्राका आगमन हो, उस क्षण तक परमात्माका नामस्मरण करो। श्रीराम, श्रीराम, श्रीराम बोलते-बोलते निद्रा आ जावे और निद्रासे जगो कि तुरन्त ही प्रभुके नामका जप प्रारम्भ कर दो तो निद्रा भी भक्ति बन जाएगी।

वैष्णव वह है जो प्रत्येक व्यवहारमें परमात्माको साथ रखता है। वैष्णव बाहर जाते समय ठाकुरजीका वन्दन करता है और कहता है कि इस समय मुझे बाहर जाना है परन्तु तुम्हारे दर्शन बिना, स्मरण बिना मैं रह सकता नही। मैंने सुना है कि आपको अनेकरूप धारण करने आते है। आप ऐसी कृपा करो कि एक स्वरूपमें आप घरमें विराजो और एक स्वरूपसे मेरे साथ चलो। इस प्रकार मार्गमें भी परमात्माको साथ ही रखो।

परमात्माको साथ रखनेका अर्थ क्या प्रभुकी मूर्तिको हाथमें लेकर फिरना है? परमात्माको मनसे साथ रखो। मार्ग चलते हुए भी भक्ति करनी है। जो मार्गमें भक्ति करता नही वह आँख और मनको बिगाड़कर ही घर आता है। परमात्माको साथ रखकर, परमात्माके अनुसंधानमें रहकर व्यवहार करो। ईश्वरसे विभक्त होकर व्यवहार मत करो।

व्यवहार तो करना ही पड़ता है। व्यवहार छोड़नेसे छूटता भी नही। व्यवहार, गृहस्थको ही करना पड़े, ऐसा नही, साधु-संन्यासीको भी व्यवहार करना पड़ता है। इनको लंगोटीकी तो आवश्यकता पड़ती ही है। व्यवहार उसका छूटता है, जिसको ईश्वरके अतिरिक्त कुछ दीखता नही। शुकदेवजी महाराजको परमात्माका ऐसा अनुभव हो चुका था कि आत्मस्वरूपमें परमात्माके दर्शनोंके आनन्दमें वे मस्त होकर विचरते थे। पिताको कह दिया कि तुम मेरे पिता नहीं और मैं तुम्हारा पुत्र नही। जय श्रीकृष्ण! जा रहा हूँ।

पिता-पुत्रका सम्बन्ध खोटा है। जीव-ईश्वरका सम्बन्ध सच्चा हैं। जो परमात्माके स्वरूपका सतत अनुभव करता है; उसीका व्यवहार छूट सकता है। जब तक मुट्ठीभर चनेकी भी आवश्यकता है, जब तक वस्त्रकी आवश्यकता है, तब तक व्यवहार पीछे-पीछे ही है, ऐसा समझना। व्यवहार करो, व्यवहार छोड़ना नही। यदि मैं तुमसे व्यवहार छोड़नेकी कहूँ तो तुम कहाँ छोड़नेवाले हो? व्यवहार छूटता नही। व्यवहार तो सभीको करना पड़ता है। जब तक किंचित् भी अपेक्षा है, तब तक व्यवहार छूटता नहीं। उसे छोड़नेकी आवश्यकता भी नही।

जब तक शरीर है, तब तक मुट्ठीभर दानोंकी आवश्यकता रहेगी ही और तबतक व्यवहार-धंधा करना ही पड़ेगा इसलिए व्यवहार अवश्य करो परन्तु इसमें विवेक रक्खो।

श्रीराम में—ईश्वरमें मन रखकर व्यवहार करो। पनिहारिनें पानीके घडे भरकर मार्ग-से आती होती हैं, उस समय वे एक दूसरीके साथ वार्तालाप करती हैं परन्तु वातचीतमें भी उनका ध्यान निरन्तर माथेके घड़ेपर ही होता है। इसी प्रकार संसारके व्यवहार, ईश्वरका सतत स्मरण रखकर करो। जगत के पदार्थोंमें आसक्ति रक्खो नही, व्यवहारके साथ एक बनो नहीं।

व्यवहार करना पाप नही, परन्तु व्यवहारमे भगवानको भूल जाना पाप है। व्यवहार करते-करते परमार्थको याद रक्खो, लक्ष्यको भूलो नही। लक्ष्य है परमात्माके चरणोमें पहुँचना परन्तु इस जगतमें कोई केवल स्त्रीके लिए जीता है, कोई केवल धनके लिए जीता है, कोई पुत्रके लिए जीता है। पमात्माके लिए कोई जीता नही। मानव, लक्ष्य भूलता है। लक्ष्यको ध्यानमें रखकर किया हुआ व्यवहार ही भक्ति है। व्यवहार-शुद्धि हो तो भक्ति आती है परन्तु लक्ष्यको भूलकर व्यवहार करते हो तो वह वंधनरूप है। लक्ष्यको भूलोगे तो चोरासी लाखके चक्करमे भटक जाओगे। व्यहार करते हुए आँख श्रीराम में रखोगे तो वह व्यवहार, भक्ति वन जाएगा।

प्रत्येक कार्य परमात्माकी आज्ञा समझकर करो। भक्ति और कर्ममें अन्तर नही। श्रीरामका स्मरण करते-करते किया हुआ कर्म, भक्ति वन जाता है। कर्ममें फलेच्छा ही कर्ममें कपट है। फलकी इच्छा रखे बिना कर्म करोगे तो वह कर्म ही भक्ति है। जो ईश्वरके लिए कर्म करता है, उसका प्रत्येक कर्म भगवानकी भक्ति वन जाता है। कर्म करते समय मनको ईश्वरके साथ जोडकर रखोगे, मै भगवानके लिए कर्म करता हूँ—ऐसी निष्ठा रखोगे तो तुम्हारी प्रत्येक क्रिया भक्ति वन जाएगी।

तुम किसीके साथ वात करो, उस समय अन्दरसे भगवानका स्मरण करते-करते वोलो। व्यवहारको सुखमय वनाना हो, तो ईश्वरको साथ रखकर व्यवहार करो। साधारण मनुष्य व्यवहार करता है, उस समय ऐसा समझता है कि भगवान मन्दिरमे वैठा है, मैंने भगवानकी सम्पूर्ण सेवा की। मैंने आरती भी उतार दी, भक्ति अव समाप्त हो चुकी। अव भगवानको याद करनेकी कुछ आवश्यकता नही।

भक्तिकी समाप्ति करे, वह वैष्णव नही। वैष्णव तो वह है, जो भोगकी समाप्ति करता हैं। वैष्णव तो वह हैं जो भोग मे संतोष और भक्तिमे लोभ रखता हैं। भोग भक्तिमे अतिशय बाधक है। भोजनमे संतोष मानो, परन्तु प्रभु-भजनमे किसी दिवस संतोष रखना नही। द्रव्यमे संतोष मानो, परन्तु साधनमे, सत्कर्ममे संतोष मानना नही। भोगमें संतोष मानो, परन्तु भक्तिमे संतोष मानना नही। भक्तिमे और सत्कर्ममे संतोष

माने, वह भक्तिमार्गमें आगे नहीं बढ़ सकता । भक्तमें तृप्ति दोष है । साध्य मिलनेके बाद भी साधन तो चालू ही रखना होता है ।

कथा-श्रवण करते हो तो अब भोगोंकी समाप्तिका मनसे निश्चय करो । आज पर्यन्त मैंने इन्द्रियोंके सभी प्रकारके सुख अनेक बार भोगे हैं । भोगसे शान्ति मिली नहीं । मै अब भोगोंकी समाप्ति करता हूँ । मुझे अब जीवनके अन्तिम श्वास तक निरन्तर भक्ति करनी है । जीवन ऐसा जिओ कि तुम्हारा प्रत्येक व्यवहार भक्ति बने । परमात्माको साथ रखकर व्यहार करो । निद्रा तक को आचार्यगणोंने समाधिके समान गिना है । भगवान श्रीशंकराचार्य स्वामीने कहा है ।

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं
पूजा ते विविधोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः ।
संचारस्तु पदोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरा
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शंभो तवाराधनम् ॥

आत्मा ईश्वर है । सन्तजन बुद्धिका ईश्वरके साथ परिणय करते हैं । सन्तोके प्राण परमात्माके सेवक है, शरीर प्रभुका मन्दिर है । निद्रा समाधि है । सन्तजन चलते हैं वही प्रभुकी परिक्रमा है—उनका ऐसा भाव होता है कि ठाकुरजी अपनी दाहिनी बाजूमें विराजे हैं । भगवानका दर्शन करते-करते मै परिक्रमा कर रहा हूँ । सन्त बोलते है तब भी परमात्माका अनुसन्धान रखकर बोलते है । इसलिए उनका बोलना, बोलना नही, परन्तु प्रभुकी प्रशंसा है । उनका प्रत्येक बोल परमात्माकी स्तुति ही है । वे परमात्माके साथ चारपाईपर सो जाते है । परमात्माके संग जो सो जाता है उसको कितना आनन्द आता होगा । जो ईश्वरके साथ प्रेम करता है, उसके समस्त कर्म पूजारूप है । उसका समस्त व्यवहार ही भक्ति हैं ।

(३३)

. सद्गुरुकी महिमा

सन्त वे हैं, सद्गुरु वे है जो केवल शब्दसे ही उपदेश नही देते अपितु जिनका प्रत्येक व्यवहार ज्ञान और भक्तिसे भरा हुआ है। इसीसे सद्गुरुकी महिमा बहुत अधिक है। सद्गुरुको परमात्मासे भी श्रेष्ठ माना गया है।

प्रभुने इस संसारकी रचना ऐसी की है कि अधिकतर सबका मन संसारमें फँसा हुआ ही रहता है। पुरुषकी आँखमें, मनमें ऐसा कोई मोह होता है जिससे उसे स्त्री-शरीरमे सौन्दर्य दिखायी पडता है। उसे बालोमे सौन्दर्य दिखायी देता है, कितनो ही को तो बढ़ेहुए नाखूनोमे सौन्दर्य दिखायी देता है।

अरे, नाखूनमें और बालमें क्या सौन्दर्य भरा पडा है? शास्त्रमें तो ऐसा लिखा है कि नख और बाल तो मल-मूत्र हैं परन्तु मनुष्यको वे सुन्दर लगते हैं। शास्त्र कहते हैं कि अन्नमे बाल आ जावे तो वह अन्न अशुद्ध हो जाता है, भोजन करने योग्य नही। भोजनमे बाल न आये इसका ध्यान रखो। बालको बहुत अपवित्र माना है। मानव ऐसा समझता है कि बाल बहुत सुन्दर हैं। पुरुषको इस प्रकारका मोह है। स्त्रीके मनमे भी मोह है। स्त्रीको पुरुषके शरीरमें सौन्दर्य दिखाई पडता है।

तत्वदृष्टिसे विचार करनेपर इस शरीरमें ऐसी कोई सुन्दर वस्तु ही नही। शरीर-से दुर्गन्ध ही बहुत निकलती है। कितने ही लोग तो दुर्गन्ध ढँकनेका प्रयत्न करते हैं, जिससे शरीरमे दुर्गन्ध आवे नही। परन्तु यह शरीर ही मलमूत्रसे भरा हुआ है, अपवित्र है, अशुद्ध है, घोर नरक है, पर मानवको यह शरीर सुन्दर लगता है! यह प्रभुकी माया है। माया बहुत प्रबल है।

फिर भी कोई ससारकी माया पीछे करके बहुत भक्ति करने लगे तो भगवान लक्ष्मीजीको आज्ञा करते हैं कि तुम इनपर दृष्टि डालो। लक्ष्मी इनपर दृष्टि डालती हैं। लक्ष्मीजीकी कृपा-कटाक्षसे उनको कुछ ऐश्वर्य और कीर्तिकी प्राप्ति हो जाती है। पीछे अधिकाशमे वे ऐश्वर्य पाकर मोहको प्राप्त हो जाते है, भगवानकी भक्ति छोड़ देते हैं, प्रभुसे विमुख हो जाते हैं, मायामे फँस जाते है।

प्रभुने इस संसारकी रचना ही ऐसी की है कि मानव इसमें फँसा ही रहे, कामभोग मे डूबा रहे और प्रभुके चरणोमें नही जाये। भगवान ऐसा विचारते होंगे कि सब ही बहुत

भक्ति करे तो मेरे वैकुण्ठमें बहुत भीड़ हो जाएगी। बहुत भीड़ होगी तो पीछे मेरे घरमें भी अव्यवस्था होगी। बहुत भीड़ हो तो ठीक नहीं।

प्रभुने संसारको सुन्दर दिखाई देनेवाला बनाया ही न होता तो समस्त ही भक्ति करने लगते परन्तु प्रभुकी मायाने संसारके विषयोमें ऐसा आकर्षण भरा है, कि बड़े-बड़े ज्ञानी पुरुष भी भूल जाते हैं। दूसरोंको भी बहुत भक्ति करनेकी इच्छा होती है, परन्तु संसारका मोह छूटता नहीं।

कोई सुन्दर वस्तु दीखे तब अपने मनको समझाओ कि इस वस्तुकी अपेक्षा मेरे श्रीराम, श्रीकृष्ण अतिशय सुन्दर है। जिसमें कामका स्पर्श है, उसमें सौन्दर्य नहीं। काम, सौन्दर्यका विनाश करने वाला है। काम असुन्दर है, कोयला जैसा काला है। काम जिसका स्पर्श करता है, वह सुन्दर हो सकता ही नहीं। प्रेम करनेसे पहले शान्तिसे विचार करो कि तुम सकामके साथ प्रेम करोगे कि निष्कामके साथ ? इस संसारमें काम ही है, कामके सिवाय अन्य कुछ नहीं। इस संसारका मूल ही काम है और इसीसे यह संसार सुन्दर नहीं।

तुम सकामके साथ प्रेम करोगे तो यह तुमको वासनाका गुलाम बनावेगा। सकामके साथ जो प्रेम करता है, उसके मनमें काम प्रवेश करता है, उसके मनमें कालिमा आती है। उसका मन मलीन, अशुद्ध हो जाता है। जो निष्कामके साथ प्रेम करता है, उसका ही मन शुद्ध रहता है। श्रीराम, श्रीकृष्ण निष्काम हैं। जो निष्काम है वे ही सुन्दर हैं। सुन्दर तो श्रीराम, श्रीकृष्ण हैं। भगवान शंकर सुन्दर है। शिवजीको कामका स्पर्श होता नहीं। जिनको कामका स्पर्श नहीं वे ही सुन्दर है।

संसार सुन्दर नहीं, संसारकी रचना जिस प्रभुने की है वे परमात्मा सुन्दर है। संसारका सौन्दर्य क्षणिक है, मनकी कल्पना मात्र है, मनोविलास है। तुमको जो वस्तु बहुत सुन्दर लगती है उसमें मुझे तनिक भी सुन्दरता दिखायी देती नहीं। कुत्तेके मनमें व्याप्त मोहके कारण उसको कुतियामें सौन्दर्य दिखायी देता है। क्या सुन्दर है, और क्या असुन्दर है, यह कहना बहुत कठिन है।

संसारका विचार न करो। संसारमें भले ही रहो, परन्तु संसारका चिन्तन न करो। संसारका चिन्तन करनेसे मन बहुत बिगड़ता है। संसारमें सुन्दर क्या है ? यह फूल हमको बहुत सुन्दर दीखता है परन्तु फूल कुम्हलानेके बाद इसमें सौन्दर्य दीखता नहीं। फूलके कुम्हलानेपर मनुष्य इसको उठाकर फेंक देता है। जिस प्रकार फूल कुम्हलाता है, उसी प्रकार समस्त जगत कुम्हलाता है। जगतमें न कुम्हलानेवाले अकेले श्रीराम-श्रीकृष्ण परमात्मा नित्य सुन्दर हैं।

परन्तु परमात्माने ऐसी माया रची है, कि जीवको संसार सुन्दर लगता है, जीव विवेक गवाँ बैठता है, परमात्माको भूल जाता है, और संसारमें फँस जाता है। थोड़ा विचार करो कि जो जीवको संसारमे फँसाये रखता है, वह ईश्वर श्रेष्ठ है अथवा जो जीवको संसारमे-मे हटाकर प्रभुका मार्ग बतलाता है वह सद्गुरु श्रेष्ठ है ? परमात्माकी अपेक्षा भी सद्गुरु श्रेष्ठ है कारण कि—

इन्द्रजाल ईश्वर तणी, जोतां जीव भरमाय ।
गुरु ज्ञान-अंजन करे, झूठी जाल जलाय ॥

प्रभुने तो संसारके विषयोमे आकर्षण भरके जीवको संसारमे फँसा रखा है वहाँ सद्गुरु तो शिष्यको समझाता है, भाई ! तुमको मोह हुआ है। मायाने तुझे भ्रममे डाल दिया है। कोई स्त्री सुन्दर नही। किसी पुरुषमे सौन्दर्य नही। यह तेरी भ्रान्ति है ! सुन्दर तो एक परमात्मा है। सद्गुरु दृष्टिमात्र देता है, सद्गुरु बोध देकर मायामे फँसे हुए जीवको कल्याणका मार्ग बताते हैं, प्रभुके मार्गपर ले जाते हैं।

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, किसके लागूँ पायँ ।
बलिहारी गुरु आप की, जिन गोविन्द दियो बताय ॥

जगतमें तीन देव बड़े माने हैं—ब्रह्मा, विष्णु और महेश। ये तीन देव एक-एक काम करते हैं। ब्रह्माजी उत्पत्ति करते हैं। ब्रह्माजी रक्षण करते नही। रक्षण, विष्णु भगवान करते हैं, और शिवजी महाराज प्रलय करते हैं। तब, सद्गुरु ये तीनो काम करते हैं।

सद्गुरु मिलनेपर मनुष्यका नया जन्म होता है। जब तक जीवनमे कोई महान् संत न मिले, कोई भजनानन्दी संत माथेपर हाथ न धरे, कोई साधु पुरुष कृपा न करे, तब तक मनुष्य पशु-समान रहता है। संत मिले पीछे नया जन्म होता है। महापुरुष तो ऐसा कहते हैं कि माता-पिता जो जन्म देते हैं, वह बहुत पवित्र नही।

मातापित्रोर्मलोद्भूतं मलमांसमयं वपुः ।

परन्तु सद्गुरु, सद्शिष्यको पवित्र जन्म देता है। गुरु-शिष्यका सम्बन्ध पिता-पुत्रके सम्बन्धकी अपेक्षा भी श्रेष्ठ है। जिसको सद्गुरु मिला नही, जिसके माथे किसी संतने वरदान-हस्त धरा नही, उसका जीवन, जीवन नही। किसी सन्तके चरण पकडकर रखो। सद्गुरु कृपा करके तुमको नया जन्म देंगे।

सद्गुरु कृपा करते हैं, तब साधन शुरू होता है, परमात्माके लिए मुझे कुछ करना है, ऐसी निष्ठा होती है। मानव अधिकांशमें समस्त दिवस पैसेके लिये ही प्रवृत्ति करते हैं। वे शान्तिसे बैठकर परमात्माके लिए कुछ साधन करते नही। उनकी समस्त प्रवृत्ति पैसेके

लिये ही होती है। प्रवृत्तिमें रहकर भक्ति बढ़ानी अशक्य है। प्रभुकी भक्तिका आनन्द लेना हो तो प्रवृत्ति घटानी आवश्यक है। घूरेमें-से इत्रकी सुगन्ध आती नहीं। प्रवृत्तिमें लिप्त हो, उसको भक्तिका आनन्द मिलता नही, उसकी भक्ति बढ़ती नही। भक्ति बढानेके लिये प्रवृत्तिका मनसे त्याग करना पड़ता है। एकदम समस्त प्रवृत्ति छोड़नी नहीं चाहिए, परन्तु उसमें विवेकसे काम करना चाहिए। अरे, संपत्ति तो प्रारब्धके अनुसार मिलती ही है। इसके लिए बहुत प्रयत्न करना व्यर्थ है। प्रयत्न तो परमात्माको प्राप्त करनेके लिए करना चाहिये। प्रभु-प्राप्तिके लिये साधन करना चाहिए परन्तु जो प्रारब्धसे अनायास ही प्राप्त होनेवाला है उसके लिये बहुत प्रयत्न करते हैं, और जिसके लिए करना चाहिए, उसके लिए कोई प्रयत्न करते नहीं, परमात्माके लिए कोई साधन करते नहीं। मानव, पैसेको भूलता नही, परमात्माको भूल जाता है। बहुतसे लोगोंको प्रभुकी तनिक भी आवश्यकता प्रतीत होती नहीं। उनको ऐसा लगता है कि ईश्वरकी क्या जरूरत है। इसलिए कुछ भी करनेकी उनकी इच्छा होती ही नहीं।

मनुष्य, संसारको दिखानेके लिए भक्तिका थोड़ा नाटक करता है, स्वयं वैष्णव कहलाता है, परन्तु प्रभुमें इसका सच्चा प्रेम कहाँ है ? सेवा करने बैठा और खबर आयी कि डाकिया (पोस्टमैन) मनीआर्डरसे दो सौ-पाँच सौ रुपया ले आया है तो झट ठाकुरजी-की सेवा छोड़कर पैसा लेने चला जाता है। यह पैसेके समान भी भगवानकी कदर नहीं करता। भजगोविन्दम् भजगोविन्दम्के स्थानपर तुरन्त भज कलदारम् भज कलदारम्में आ जाता है। भगवान जानते हैं कि यह भक्तिका नाटकमात्र ही करता है मुझमें प्रेम नही। इसलिए भगवान स्वरूपको छिपाते हैं। परमात्मा आनन्दमय हैं, प्रेममय है। सबके साथ प्रेम करते हैं। जीवमात्रके ऊपर इनकी कृपा सर्वथा अवतरित होती है परन्तु यह जीव अभागा है। यह परमात्माके नामके साथ अधिक प्रेम करता नहीं, प्रभुका चिन्तन करता नही।

मनुष्य भक्तिका नाटक करता है, संसारके लोग प्रशंसा करें, इसलिए थोड़ा दान भी देता है परन्तु वह हृदयसे परमात्माके लिए जाग्रत होता नहीं। उसे परमात्माके दर्शनोंकी तीव्र इच्छा होती नहीं, उसके वियोगमें दुःख होता नही। परमात्माके वियोगमें जिसे दुःख होता है, वही प्रभुकी प्राप्तिके लिए कुछ साधन करता है। परमत्माके वियोगका जिसे दुःख नहीं, वह भक्ति करता नही। अनादिकालसे यह जीव रोता आया है। मनुष्य मांके पेटमें-से रोता हुआ बाहर आता है और मरता है, उस समय अधिकांशमे हाय-हाय करता ही मर जाता है, मनुष्य पैसोंके लिए रोता है, स्त्रीके लिए रोता है, मान-प्रतिष्ठाके लिए रोता है, संसारके तुच्छ विषयके लिए रोता है, परन्तु यह जीव परमात्माके लिए रोता नहीं। जो ईश्वरके लिए रोता नही, उसके रोनेका कभी अन्त आता ही नही। जीव जब प्रभुके लिए रोता है, तभी इसके रोनेका अंत आता है।

एकान्तमें बैठकर प्रभुके लिए विलाप करो कि मेरा समस्त जीवन व्यर्थ गया, मुझे एकबार भी अपने भगवानके प्रत्यक्ष दर्शन नही हुए। रोनेका दु.ख तुम जानते हो। अरे, रोनेमे तो बहुत सुख है परन्तु इसका अनुभव किसने किया है ? पैसेके लिए रोवे, स्त्रीके लिए रोवे, पुत्रके लिए रोवे, उसको तो अधिक दु:ख होता है परन्तु परमात्माके लिए रोता है उसको तो बहुत ही शान्ति मिलती है। परमात्माके लिए रोनेसे पाप भस्म होते है। शान्ति मिलती है, बहुत सुख होता है। जीव परमात्माके लिए रोवे तो परमात्मा कृपा करके प्रगट होते हैं, दर्शन देते हैं।

मानव, स्त्री, पुत्रादिकके मृत्युप्रसगमे आँसुओकी धारा बहाता है, ईश्वर-प्राप्तिके लिए आँसूकी एक बूंद गिराता नही। मरने वालेके पीछे लोग रोते हैं। अरे, रोनेसे मरा हुआ वापिस आता नही। रोनेवाला समझता नही कि यह गया, वहाँ मुझे भी एक दिन जाना है। दूसरेके लिए तुम रोओ, यह ठीक है परन्तु तुम अपने लिए रोज थोड़ा रोओ। जीव तो अपने लिए रोये, यह ठीक है। मनुष्यको मनसे विचार करना चाहिए कि मुझे अपना मरण सुधारना. है। अपने परमात्माके दर्शन करने हैं। परमात्माके दर्शन बिना मेरा आज तकका दिवस भी चला गया। मनुष्यको परमात्माके लिए रोना है, परमात्माके दर्शनके लिए साधन करना है।

मानवको साधनका मार्ग सद्गुरु प्राप्त कराते हैं। सद्गुरु मिले पीछे वह परमात्माके लिए कुछ साधन करता है और तब उसका नया जन्म होता हैं। इसीसे गुरुदेवको ब्रह्माजीकी उपमा दी है।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः, गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुर्साक्षात्परंब्रह्म, तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

गुरु ब्रह्माजीका स्वरूप हैं। ब्रह्माजी जगतकी उत्पत्ति करते हैं। सद्गुरु शिष्यको नया जन्म देते हैं। गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु। गुरुदेव विष्णुभगवानके भी स्वरूप हैं। भगवान विष्णु रक्षा करते हैं। गुरुदेव भी शिष्यका सर्वकाल रक्षण करते हैं। पिता, पुत्रका रक्षण करता है। पिता, पुत्रके साथ स्नेह करता है, परन्तु पिता-पुत्रके प्रेममें स्वार्थ है। पिता ऐसी अपेक्षा रखता है कि वृद्धावस्था मे लडका मेरा रक्षण करेगा। पिताको ऐसा थोडा स्वार्थ है कि बालककी मैं स्वयं रक्षा करके उसको पढा-लिखाकर बड़ा करूँगा तो वृद्धावस्था-में यह मेरी देखभाल करेगा। जब कि सद्गुरु और शिष्यका प्रेम विशुद्ध और निस्वार्थ होता है। गुरुदेवको कुछ लेने की इच्छा नही। शिष्यसे उनको किसी प्रकारकी अपेक्षा नही।

जिसको परमात्मा मिलते हैं, उसके जीवनमें संतोष आता है, शान्ति मिलती है। मनुष्यको लाखों, करोड़ों, रुपये मिले परन्तु प्रभुका जबतक उसको, अनुभव होता नही तब तक उसको संतोष नहीं। ज्ञानी पुरुषोंके पास कुछ नही होता परन्तु वे आत्म-स्वरूपमें परमात्माका अनुभव करते हैं। इससे उनको दूसरे किसीकी जरूरत रहती नही। वे ऐसा मानते हैं कि इस जगतके मालिक मुझको मिले हैं। मै भगवानका हूँ। पीछे मुझको अन्य क्या चाहिए। जीवको लक्ष्मी मिलनेसे सन्तोष होता नहीं। उसको जब लक्ष्मीपति मिलते हैं, जब परमात्मा का अनुभव होता है, तब सन्तोष होता है।

सद्‌गुरुकी ऐसी इच्छा होती नही कि शिष्य मुझको कुछ दे। सद्‌गुरु तो शिष्य-को देनेकी इच्छा रखते हैं। सद्‌गुरुकी ऐसी भावना होती है कि मुझको जो मिला है वह मुझे शिष्यको देना है। मुझे इसका कुछ लेना नही। बाप जन्मभर मेहनत करता है, पुत्रके लिये ही पैसा इकट्ठा करता है। पिताकी ऐसी इच्छा होती है कि मेरा पुत्र सुखी हो। मुझे इसको अपना सर्वस्व देना है परन्तु साथ-साथ भविष्यमें पुत्र मेरी देखभाल करेगा, ऐसी आशा रखी जाती हैं। सद्‌गुरु सदा शिष्यका कुछ भी लेनेकी इच्छा रखते नही, परन्तु स्वयंका सर्वस्व उसको देनेकी इच्छा रखते है। शिष्य मुझको कुछ देवे, मेरा कुछ काम करे, ऐसी इच्छा सद्‌गुरुकी होती नहीं

शिष्यन को यह चाहिए, गुरु को सर्वस्व देय।
गुरुको ऐसा चाहिए, शिष्यन से नही लेय॥

शिष्य मेरा कुछ काम कर देगा, ऐसी इच्छा जिसको होती है वह ईश्वरसे कुछ दूर है। पिता-पुत्रके सम्बन्धकी अपेक्षा भी गुरु-शिष्यका सम्बन्ध अतिदिव्य है। एक गुरु-शिष्य जंगलके रास्ते से कही जारहे थे। रात्रि हो गयी। अँधेरा हुआ, वे वृक्षके नीचे विश्राम करने लगे। रात्रिको जप-तप करके, गुरु-शिष्य उसी झाड़के नीचे सो गये। सद्‌गुरुकी निद्रा अल्प थी। सत्वगुण बढ़ता है तो निद्रा कम हो जाती है। बहुत-से साधु रात्रिके दो-ढाई बजेके बाद सोते नही, जाग जाते हैं। जगनेके उपरान्त शय्यापर लेटे नहीं रहते, उठकर आसनपर बैठकर ध्यान करते है। भक्ति ब्राह्ममुहुर्तमें ही होती है। भक्तिका आनन्द दिनमें बराबर मिलता नहीं, रात्रिको ब्राह्ममुहूर्तमे ही मिलता है।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥

संसारकी रात्रि, संतका दिवस होता है। संसारी जब सो जाते हैं तब अँधेरेमें संत जागते है। निद्रा तमोगुणका धर्म है। तमोगुण बढे तब निद्रा बढ़े। सत्वगुण बढे अर्थात् निद्रा घटे। गुरुदेवकी निद्रा बहुत कम थी। मध्यरात्रिका समय हुआ। सद्‌गुरु

जागे। शिष्य सोया हुआ था। गुरुदेवने ध्यानमें बैठनेकी तैयारी की कि इतनेमें ही एक सर्प दौड़ता हुआ आया और शिष्यके पास जाने लगा। गुरुदेवको आश्चर्य हुआ। सर्पको रोककर उन्होने पूछा—भाई तुम् कहाँ जा रहे हो क्या करोगे? सर्पने कहा—महाराज यह तुम्हारा शिष्य मेरा पूर्व जन्मका वैरी है। पूर्व जन्ममें इसने मुझे मारा था। इसलिए अब मैं इसको मारना चाहता हूँ। इसको मैं काटूँगा, जिससे यह मर जाएगा। सर्प जहरीला होता अवश्य है; परन्तु वह वैरीको ही मारता है। परन्तु मनुष्य तो किसी-किसी समय बिना कारण दूसरोंको मारता है। मानव अनेकों बार सर्पसे भी अधिक जहरीला हो जाता है। हजार मनुष्य बैठे हों, परन्तु सर्प जो शत्रु होगा उसीको डसेगा। सर्प जिस किसीको, हरेकको डसता नही। जिसने अपमान किया हो, इस जन्ममे अथवा पूर्व जन्ममे जिसने इसको मारा हो, उसको ही यह डसता है। गुरुदेव सर्पको समझाने लगे—भाई, मेरे शिष्यकी भूल हुई है, मैं क्षमा माँगता हूँ। इसको तू काट नही, क्षमा दे। इसका मरण हो, यह मुझे सुहाता नही। इसको काटने-से तुझे क्या मिलेगा ?

गुरुदेव सर्पको समझानेका प्रयत्न करते हैं परन्तु सर्प मानता नही। उसने कहा, महाराज ! तुम्हारा यह ज्ञान मुझे सुहाता नही। अपने बैरीको मैं डसूँ और वह तड़पकर मरे, यह देखकर मै प्रसन्न होऊँ। किसीको दुखीकर राजी होता है, वह दूसरे जन्ममें साँप अथवा बिच्छू बनता है। सर्प और बिच्छूका ऐसा स्वभाव है कि कोई रोता हो तो उसको देखकर वे प्रसन्न होते हैं। तब गुरुदेवने कहा, मेरे शिष्यको तू मत डस। इसके बदले तू मुझे डस ले।

पुत्रको यदि साँप डसने जाता होगा तो बाप क्या वहाँ खड़ा रहेगा ? बाप ऐसा कहेगा क्या कि इसके बदलेमें तू मुझे डस ले। बाप तो किसी भी प्रकार वहाँसे भाग जाएगा। परन्तु गुरु-शिष्यका सम्बन्ध इतना दिव्य है।

गुरुजीने सर्पसे कहा कि मेरा कोई भी काम बाकी रहा नहीं, मेरे मनमें कोई विकार-वासना नही, मेरा मन शान्त है, शुद्ध है, निर्विकार है। मुझे परमात्माका अनुभव हो चुका है। मै प्रभुका स्मरण करने बैठा हूँ। तू मुझे डस ले, मेरा मरण मंगलमय होगा। मै सिद्ध हूँ। सिद्ध मरता है तो उसका मरण, मगलमय होता है। वे तो प्रभुके चरणोंमें लीन हो जाते हैं परन्तु मेरा वह शिष्य अभी साधक ही है। यह भी साधना करता है। इसको अभी परमात्माका अनुभव हुआ नही। प्रभुके दर्शन बिना यह मरेगा तो इसका मरण बिगड़ेगा। तू इसको काट नही, मुझको काट।

जीवन-मरण सद्गुरु सुधारते हैं। जन्म-मरण-त्राससे छुड़ा दें वे ही सद्गुरु हैं।

गुरवो बहवः सन्ति शिष्यवित्तापहारकाः ।
स गुरुर्दुर्लभो लोके शिष्यसंतापहारकः ॥

शिष्यके द्रव्यका अपहरण करे वह गुरु नही। गुरु तो शिष्यके दुःखका—संतापका हरण करता है, शिष्यको जन्म-मरणके त्राससे छुड़ाता है।

गुरुदेव सर्पसे कहते हैं कि तू शिष्यके बदलेमें मुझे काट। गुरुदेव सदा शिष्यका सर्वकाल रक्षण करते हैं और इसीसे गुरु विष्णुभगवानके स्वरूप है।

गुरुर्देवोमहेश्वरः। गुरुदेव शिवजी महाराजके भी स्वरूप हैं। भगवान शंकर प्रलय करते है। शिवजी जब प्रलय करते है तब सर्वका नाश करते है। शिवजी तो सर्वका नाश करके पीछे प्रलय करते है परन्तु बलिहारी है सद्गुरुदेवकी कि सब होनेपर भी वे शिष्यको प्रलय बनाते हैं। सद्गुरु जब शिष्यके माथे हाथ पधराते है, गुरुदेव जब कृपा करते हैं, तब शिष्यको सर्वकी विस्मृति कराते है। जगत होनेपर भी शिष्यको जगत दैता नही, जगत होने पर भी सद्गुरु प्रलय करते है। अरे, सद्गुरु श्रेष्ठ है कि शिवजी श्रेष्ठ? गुरुदेन शिवजीके स्वरूप है।

भगवान श्रीराम सद्गुरु है। भगवान श्रीकृष्ण सद्गुरु है। सत् शब्द का अर्थ है, परमात्मा। सत्का—परमात्माका सर्वकाल सर्व ठिकाने जो अनुभव करता है उसको सद्गुरु कहते हैं। ईश्वर कोई वस्तु नहीं कि एक ही जगहमें रह सके। जो ज्ञानी महापुरुष सर्वकाल और सर्व ठिकाने परमात्माका अनुभव करते है, वे ही दूसरेको प्रभुके दर्शन करा सकते हैं।

इस संसारमें जो आता है उसको सद्गुरुकी जरूरत है ही। शास्त्रमें लिखा है कि जिसने गुरु बनाया नहीं, उसके घरका पानी भी पीना नहीं। जगतके किसी संतमें तुमको सद्भावना हो तो तो तुम श्रीमहाप्रभुजीको गुरु मानो, भगवान शंकराचार्य स्वामीको गुरु मानो। जगतमें जो संत हो गये है उनमें से किसी भी संतको सदगुरु मानकर सेवा करो। परन्तु गुरु किए बिना रहना नही। जगतके जिन महापुरुषोंको परमात्माका अनुभव हुआ है उन सबको सद्गुरु द्वारा ही प्रभु मिले है।

सद्गुरु-कृपा से ही मन शुद्ध होता है। मनका सूक्ष्म मल, साधन से दूर होता सद्गुरु-कृपा से दूर होता है। मनमें दो प्रकारका मल है—स्थूल और सूक्ष्म। मन दो प्रकार का माना है—स्थूल मन और सूक्ष्म मन। तुम कथामें बैठे हो कथा सुनते हो, और संभव है कि तुम्हारा सूक्ष्म मन कथामें-से भी जाता होगा। कितनों ही को कथामें बैठे पीछे याद आती है। मनमें संशय होता है कि तिजोरी खोलनेके पीछे ताला लगाया या

रह गया ? सूक्ष्म मन घरमें गया है और यहाँ कथा सुनते हैं। तन और मन दो प्रकार-के माने हैं। तन जैसे स्थूल और सूक्ष्म है, वैसे मन भी स्थूल और सूक्ष्म है। स्थूल मन, स्थूल शरीर के साथ होता है और सूक्ष्म मन जहाँ फँसा है वहाँ रहता है।

सद्गुरु कृपा करें तो सूक्ष्म मन शुद्ध होता है। तुम जप करो, तीर्थयात्रा करो, यज्ञ करो, दान करो, देवदर्शन करो, कथा सुनो—इन साधनोसे तुम्हारा स्थूल मन शुद्ध होगा परन्तु सूक्ष्म मन तो सद्गुरु कृपा करेंगे तो ही शुद्ध होगा। इसलिए सद्गुरुदेवकी बहुत ही जरूरत है। कोई सिद्ध महापुरुष माथे हाथ पधरावे, कृपा करके अपनावे तो ही सूक्ष्म मन शुद्ध होता है।

सद्गुरु बगैर कल्याण नही। कोई सद्गुरुके चरणका आश्रय लेगा तो सद्गुरुकी कृपा होगी। सद्गुरु कृपा करेंगे तो मन-बुद्धिमें रहने वाली वासना जाएगी। मन-बुद्धि शुद्ध होगी। मन-बुद्धिके अन्दरका मल संत-सेवा बगैर जाता नही। मनपर सत्संगका, सेवाका अंकुश रक्खो। बुद्धिको कोई संतके चरणोमे रक्खो। बुद्धिका परमात्माके साथ परिणय न हो तबतक उसे किसी संतके साथ परिणय करा दो, किसी संतके अधीन रहो तो मनबुद्धि शुद्ध होंगे।

संत वे है जो मनको सुधारे। संपत्ति देकर शिष्यको सुखी करें वे सद्गुरु नही। जो शिष्यके मनको सुधारकर शिष्यको सुखी करें वे ही सद्गुरु हैं। कितने ही लोग तो ऐसा बोलते हैं—महाराज! मुझको आशीर्वाद दो जिससे मुझको लाटरीमें पच्चीस हजार रुपया मिले। कितने ही लोग साधु-संतके पास कुछ लौकिक स्वार्थ रखकर ही जाते हैं। एक गाँवमे मैं गया था, तब एक भाई मुझसे पूछने आया कि महाराज! मुझे कोई अंक बताओ। जो कुछ प्राप्त होगा उसे धर्मादेमे व्यय करूँगा। मेरे भगवान् ऐसे कोई भिखारी नही कि इस प्रकार पाप करवाकर पैसा लें। आजकल तो लोग ऐसी आशा रखते हैं—महाराज के आशीर्वादसे मेरे यहाँ पुत्र आवे और मुझे संपत्ति मिले।

साधु-संतके पास लौकिक भावसे जो आता है उसे कुछ मिलता नही। सच्चा संत किसी दिवस भी संपत्ति—संतति, संसार, सुखका आशीर्वाद देता ही नही। कारण कि ये जानते हैं कि अनेक जन्मसे जीव ये वस्तु प्राप्त करता ही आया है, संसार-सुख अनेक जन्मसे भोगता ही आया है। इसको संपत्ति मिलेगी तो यह बहुत प्रमादी होगा, विलासी होगा, आलसी होगा। इसमे इसका कल्याण नही, अहित है। संतति, संपत्ति, संसारसुख—ये विषयानन्द हैं। विषयानन्द संत देते नही। संत तो भजनानन्द देते हैं।

संपत्ति देकर सुखी करे, यह काम संतका नही। सच्चा संत संपत्ति देता नहीं, सन्मति देता है। जो विकार, वासनाका नाश करते हैं, प्रभुके मार्गमें ले जाते है, भक्तिका

रंग लगाकर सुखी करते है, वे संत हैं। जिसके संगमें आये पीछे तुम्हारे मनका संकल्प-विकल्प-मनकी विकार-वासनाका नाश हो, प्रभुमें कुछ प्रेम जागे तो मानना कि ये संत हैं, सद्गुरु हैं।

सद्गुरु सदाशिष्यका स्वभाव सुधारते हैं। सद्गुरु सदाशिष्यके मनको सुधारते है, उसके मनमें रहनेवाली विकार-वासनाका विनाश करके उसके पापोंको छुड़ाते है, और उसको भक्तिरसका दान करते है। सद्गुरुकी कृपासे ही मन स्थिररूपसे शान्त रहता है, बुद्धिमे विवेक जागता हैं, और ज्ञानमें स्थिरता आती है। संत बोलकर ही उपदेश देते हैं, ऐसा नही। संत मौन रखकर भी उपदेश देते हैं। संतकी दिनचर्यामें-से बोध मिलता हैं। संतका प्रत्येक व्यवहार ज्ञान-भक्ति से भरा हुआ है।

संसारमें जो भी आता है उसको सद्गुरुकी जरूरत है। संसारमें आनेके पश्चात् भगवान् राम सद्गुरुके चरणमें बैठे है। भगवान् श्रीकृष्णने सान्दीपन ऋषिके चरण पकड़े हैं। प्रभु ने गुरुदेवके घरमें पानी भरा, गुरुजीकी सेवा की है। इसीसे श्रीकृष्ण जगद्गुरु कहलाये है, श्रीराम जगद्गुरु कहलाये हैं। श्रीरामजी बहुत बोलते नहीं, परन्तु रामजीकी प्रत्येक क्रिया उपदेशमय है। रामजीका जैसा वर्ताव रक्खो, रामजी जैसा चलते हैं जैसा व्यवहार करते है, वैसा अपना जीवन बनाओ। रामजीके हृदयके साथ अपना हृदय एक करो। यह ही रामजीकी उत्तम सेवा है।

भगवान शंकर पार्वती माँ-से यह कहते है। वशिष्ठजीका सुन्दर उपदेश हुआ। परमानन्द हुआ। रामजीने गुरुदेवके चरण वंदन करके कहा—आपके सुन्दर उपदेशसे मेरा मोह नष्ट हुआ है। मैं ब्रह्मनिष्ठामें अब स्थित हुआ हूँ। मेरा पूर्ववत् व्यवहार चालू ही रहेगा परन्तु व्यवहार जो ताप देता है उस तापसे अब मैं रहित हूँ। मेरा कोई शत्रु नही, कोई मित्र नहीं। यह शरीर अथवा क्षेत्र आदि कुछ नहीं। कोई राग नही, द्वेष नहीं, कोई सुख नहीं, कोई दुःख नहीं, कोई इच्छा नही, कोई वासना नहीं, कोई संकल्प नही, कोई विकल्प नही। मैं आत्मचैतन्यस्वरूप हूँ, आनन्दसे पूर्ण हूँ।

दशरथ महाराजको अतिशय आनन्द हुआ। श्रीरामचन्द्रजीने पिताजीसे पूछा—पिताजी! आपका पुत्र आपकी सेवामें है। आपकी क्या आज्ञा है? दशरथ महाराजने आनन्दित होकर कहा—बेटा! मेरी इच्छा है कि मेरे राम-लक्ष्मण विश्वामित्रजीकी सेवा करें और इनके यज्ञका रक्षण करें। तुम करोगे? श्रीरामचन्द्रजीने कहा—पिताजी! आप जो आज्ञा देगे वह मै करूँगा। मैं माँकी आज्ञा लेकर आता हूँ।

श्रीराम-लक्ष्मण कौशल्या माँको वंदन करने गये। रामजी तो माताजी को वंदन करके चुप बैठ गये। रामजी कुछ बोले नही। लक्ष्मणजीने कहा—माँ! हमारे पिताजी-

की हमको आज्ञा है कि गुरुदेवकी सेवा करो और उनके यज्ञका रक्षण करो। हम गुरुजीके साथ जाना चाहते हैं। हम आपका आशीर्वाद लेनेके लिये आए हैं।

कौशल्याजीने विचार किया कि मेरे राम-लक्ष्मण अब यौवनमें प्रवेश कर रहे हैं। विश्वामित्र जैसे जितेन्द्रिय तपस्वी संतका सत्संग करेंगे तो अच्छे संस्कार मिलेंगे, और ये सुखी होगे।

वृद्धावस्थामे बहुत सत्संगकी जरूरत नही, परन्तु यौवनमे उसकी बहुत जरूरत है। शरीर बिगडे पीछे बहुतोको सावधानी आती है। शरीर ठीक रहे तब तक मनुष्य सावधान होता नही। शरीर बिगड़े पीछे क्या सावधान होना है। वृद्ध होनेपर सावधानी आती है।

धातुषु क्षीयमाणेषु शमः कस्य न जायते।

मनुष्यका विवेक तब जागता है जब शरीर दुर्बल होता है, शक्तिहीन होता है। ऐसे समय विवेक जागता है जब कि वह कुछ कर सकता नही। यह विवेक किस कामका? शरीर ठीक हो, शरीरमे—इन्द्रियोमे शक्ति हो तब विवेक जागे तो कल्याण है। यौवनमे ही सत्सगकी जरूरत है। बाल्यावस्थामें बहुत सत्संग न हो तो बाधा नहीं। बालकको माता-पिताका सग मिलता है। माता-पिता इसको पाप करनेसे रोकते हैं। पन्द्रह वर्ष पीछे यौवनमे प्रवेश होता है। उस समय सत्संगकी बहुत जरूरत है। पन्द्रहसे चालीस तकका समय भान भुलानेवाला है। उसको गधापच्चीसी कहते है। उस समय मनुष्य, पशु जैसा होता है, और इसीलिए सत्संगकी जरूरत होती है।

कौशल्याजीने विचार किया कि मेरा राम अब बडा हुआ है। यौवनमे सतकी सेवा करनेका भाग्य प्राप्त हो तो वह बहुत ठीक है। विश्वामित्रजी महान ज्ञानी हैं, तपस्वी हैं। उनकी सेवा करे तो ठीक है। अनेक वर्षो तक पुस्तके पढनेसे जो ज्ञान होता नही, वह जितेन्द्रिय भजनानन्दी संतकी सेवामें रहनेसे अनायास हो जाता है। जिसको सम्पूर्ण इन्द्रियोपर विजय मिली है, जो जितेन्द्रिय है, जिसको अन्दरसे भक्तिका रग लगा है, ऐसे किसी संतकी सेवामें रहनेसे अनायास ही ज्ञान हो जाता है।

सतके प्रत्येक व्यवहारमें ज्ञान रहता है। सन्त बोलता-चालता ज्ञान है। संतोका मौन भी ज्ञान है। संत-सेवा बिना ज्ञान मिलता नही। जीव इस भवाटवीमे भूला पड़ा है। जीव संसाररूपी अरण्यमे भटका करता है। इसकी एक-एक इन्द्रिय आत्माका विवेकरूपी धन लूटती है। इसको अरण्यमे-से बाहर निकलनेका मार्ग दीखता नहीं। किसी संतकी वह सेवा करे, तो संत मार्ग बताता है, इसको अरण्यमें-से बाहर निकालता है। संसारमें अकेले मत भटको। किसी सत या सद्गुरुकी सेवा करोगे तो संसारमें-से बाहर

निकल सकोगे, प्रभुके चरणोंमें पहुँच सकोगे। संतकृपा बिना मन शुद्ध होता नहीं। मन शुद्ध न हो तब तक भगवान मिलते नहीं।

परमात्माके दर्शनमें विघ्न करने वाले तीन बाधक तत्व हैं—मल, विक्षेप और आवरण। इन तत्वोंके कारण मन अशुद्ध है, मलीन है, चंचल है। ये तत्व दूर हों तो मन शुद्ध हो, स्थिर हो और परमात्माका साक्षात्कार हो। इन तीनोंमें-से मल और विक्षेप—ये दोनों जोव स्वयं प्रयत्न करके—अर्थात् साधन करके दूर करे तब आवरणका भंग—मायारूपी पर्देका भंग सद्‌गुरु करते हैं। अकेले साधनसे अन्तःकरण सदाके लिये शुद्ध होता नहीं। साधन करो, परन्तु सद्‌गुरुकी कृपा बिना चलना नही।

नामदेव महाराष्ट्रके महान् संत थे। परन्तु इसके मनमें सूक्ष्म अभिमान घर कर गया था कि भगवान मेरे साथ बातें करते हैं। ये विठोबाजी के साथ बातें करते थे। एक बार ऐसा हुआ कि महाराष्ट्रमें संतमंडली एकत्रित हुई। तब मुक्ताबाईने गोरा कुम्हारसे कहा—इन संतोंकी परीक्षा करो। इनमें पक्का कौन है? कच्चा कौन है?

गोरा कुम्हारने सभीके मस्तकपर ठीकरा मारकर परीक्षा करनेका निश्चय किया। किसी भक्तने इससे मुँह नहीं बिगाड़ा। परन्तु नामदेवके माथेपर ठीकरा मारा गया तो नामदेवने मुँह बिगाड़ा। उनको अभिमान हुआ कि कुम्हार द्वारा घड़ेकी परीक्षा किए जानेकी रीतिसे क्या मेरी परीक्षा होगी?

गोरा काकाने नामदेवसे कहा—सबका माथा पक्का है। एक तुम्हारा माथा कच्चा है। तुम्हारा माथा पक्का नही। तुमको गुरुकी आवश्यकता है। तुमने अभी तक व्यापक ब्रह्मका अनुभव किया नहीं।

नामदेवने विठोबाजीसे फरियाद की। बिठोबाजीने कहा कि गोराभक्त जो कहते हैं वह सच है। तुम्हारा मस्तक कच्चा है। मंगलबेड़ामें मेरा एक भक्त विसोबा खेचर है। उसके पास तू जा, वह तुझे ज्ञान देगा। नामदेवजी विसोबा खेचर के पास गये। उस समय बिसोबा शिवजीके मन्दिरमें थे। नामदेव महादेवजीके मन्दिरमें गये। वहाँ जाकर देखा कि विसोवाखेचर शिवलिङ्गके ऊपर पैर रखकर सो रहे थे। विसोबाको-मालूम हो गया था कि नामदेव आ रहे हैं इसलिए उनके ज्ञान-चक्षु खोलनेके लिये उन्होंने ऐसा काम किया था।

नामदेव नाराज हुए। उन्होंने विसोवाको शिवलिङ्गके ऊपरसे अपना पैर हटानेको कहा। विसोवाने कहा—तू ही मेरा पैर शिवलिङ्गके ऊपरसे उठाकर किसी ऐसे स्थानपर रख, जहाँ शिवजी न हों। नामदेव जहाँ विसोबाका पैर रखने लगे वहीं वहीं शिवजी प्रगट होने लगे। समस्त मन्दिर शिवलिङ्गोंसे भर गया।

नामदेवको आश्चर्य हुआ। तब विसोवाने कहा—गोराकाकाने कहा था कि तेरी हाँड़ी कच्ची है वह ठीक है। तुम्हें हर जगह ईश्वर दीखते नहीं। विठोबा सर्वत्र विराजे हुए हैं। तू सबमें ईश्वरको देख।

भक्तिको ज्ञानके साथ भजो। नामदेवजीको सबमे विठोबाजी दीखने लगे। नामदेवजी वहाँसे वापिस आकर मार्गमें एक वृक्षके नीचे खाने बैठे। वहाँ एक कुत्ता आया और रोटी उठाकर ले जाने लगा। अब तो नामदेवजीको कुत्तेमे भी विट्ठल दीखते। रोटी रूखी थी। नामदेव घीकी कटोरी लेकर कुत्तेके पीछे दौड़े। पुकारकर कहने लगे—विट्ठल खड़े रहो, रोटी कोरी है, घी चुपड़ दूं। नामदेवजीको अब सच्चा ज्ञान प्राप्त हो चुका था। नामदेवजी जैसे संतको भी ज्ञान प्राप्त करनेके लिए गुरु बनाना पड़ा।

कौशल्याजीने विचार किया कि राम अभी यौवनमें प्रवेश कर रहे हैं। इस समय यह विश्वामित्रजी जैसे गुरुकी सेवा करें, उनका सत्सग करें तो बहुत सुखी होगे। कौशल्याजीको आनन्द हुआ। उन्होने श्रीराम-लक्ष्मणको आशीर्वाद दिया और कहा—तुम्हारे पिताजीकी जो आज्ञा है वही मेरी आज्ञा है। तुम्हारे पिताजी जिस प्रकार राजी हो वही तुम करो। माँका हृदय प्रेममे पिघल गया। विश्वामित्रजीको कौशल्या माँने वन्दन किया और कहा—गुरुजी! मेरे रामको तुम ले जाते हो परन्तु मेरा राम बहुत शर्मीला है। वह मेरी भी बहुत मर्यादा रखता है। मैं इसकी माँ हूँ परन्तु इसको भूख लगती है तब मुझको भी कहता नही कि भूख लगी है। यह मुझसे भी माँगता नही। तुम मेरे राम-लक्ष्मणको ले जाते हो। मेरा लक्ष्मण छोटा है। रोज सवेरे मैं अपने राम-लक्ष्मणको माखन-मिसरी आरोगवाती हूँ। इनको माखन-मिसरी आरोगनेकी रोजकी आदत है।

विश्वामित्रजीने कहा कि माँ! तुम जरा भी चिन्ता करना मत। आश्रममे तो गायें हैं। रोज माखन होता है। मैं याद रखकर राम-लक्ष्मणको रोज माखन-मिसरी दूंगा।

(३४)

श्रीराम-लक्ष्मणका पहरा

माता-पिताको वंदनकर उनका आशीर्वाद लेकर, दोनों भाई सद्गुरुदेवकी सेवा करनेके लिए विश्वामित्रजीके पीछे-पीछे चल दिए।

विश्वामित्र शब्दका अर्थ करते समय पाणिनिऋषि ने व्याकरण शास्त्रमें एकसूत्र लिखा है—मित्रेचर्षौ। विश्वंमित्र यस्य सः विश्वामित्रः। यहाँ अमित्रम् ऐसा पदच्छेद नही। जो जगत्का मित्र है उसे विश्वामित्र कहते हैं और जो जगत्का मित्र है उसके पीछे जगदीश चलते है। तुम भी जब जगन्मित्र हो जाग्रोगे तब परमात्मा तुम्हारे पीछे आवेगे। तुम जगतके मित्र नही हो सको तो कोई बाधा नही, परन्तु किसीके वैरी मत बनो। विश्वामित्र अर्थात् जगन्मित्र, जो जगत्का मित्र है, और जगत् जिसका मित्र है।

श्रीराम परब्रह्म है, ग्रौर लक्ष्मणजी शब्दब्रह्म है। शब्दब्रह्म ग्रौर परब्रह्म साथ-साथ रहते है। श्रीकृष्णलीलामें श्रीकृष्ण परब्रह्म हैं, और बलरामजी शब्दब्रह्म हैं। अकेले राम किसी जगह जाते नही, और कदाचित् जाते हों तो अधिक विराजते नही। जहाँ लक्ष्मणजी हों वहाँ ही रामजी विराजते हैं। जहाँ शब्दब्रह्म है वहाँ ही परब्रह्म स्थिर होता है। राम-लक्ष्मणकी जोड़ी है। रामजी श्यामसुन्दर हैं। लक्ष्मण गौरसुन्दर हैं। रामजी पीला पीतांबर पहनतें हैं, लक्ष्मणजी नीला पहनते हैं। राम-लक्ष्मण गुरुदेवकी सेवा करनेके लिए गुरुजीके पीछे-पीछे चलते है।

रास्तेमें ताड़का नाम-की एक राक्षसी ग्रायी। जगलमें होकर जा रहे थे तब ताडका भयंकर गर्जना करने लगी। विश्वामित्रजी ने कहा—इस भयंकर जंगलमें यह राक्षसी बालकोंकी हिंसा करती है। तुम इसको मारो। श्रीकृष्णलीलाका आरम्भ पूतनावध से हुग्रा है, ग्रौर रामजीकी लीलाका आरम्भ ताड़कावधसे हुआ है।

ताड़का राक्षसी है। वासना भी राक्षसी हैं। वासना ऐसी राक्षसी है कि इसको जितना प्राप्त होता जाता है उतनी ही इसकी भूख बढ़ती जाती है। यह वासना ऐसी राक्षसी है कि यह खिलानेवालेको भी खा जाती है। खिलानेवालेको खा जानेके बाद भी इसी इसकी तृप्ति होती नही। अनेक बार मनुष्य ऐसा समझता है कि जीभ, आंख, मन आदि इन्द्रियाँ जो-जो सुख मांगे वह एकबार मैं भोग लूं, बाद में शान्ति रहेगी। अरे, इन्द्रियां मागे वह सुख भोगनेसे तो वासना बढ़ती है। भोगनेके पश्चात् ऐसा आभास होता है कि शान्ति मिली है, परन्तु वह खोटी शान्ति है। भोग तो उलटी ग्रशांति बढ़ाते

हैं। इन इन्द्रियोका लाड़ अनेक बार किया है फिर भी वासना शान्त नही हुई। भोग भोगनेसे वासना शान्त नही होती। शरीर रोगी हो, अशक्त हो तो भी वासना शान्त नही होती। शरीर वृद्ध हो जाय फिर भी वासना तृप्त नही होती।

वासना शान्त होती है विवेकसे। रामजी इसको विवेकरूपी बाणसे मारते हैं। रामजीका जो धनुष है वह ज्ञानस्वरूप है। विवेक ही बाण हैं। धनुषका आकार थोड़ा ओङ्कारका जैसा है। श्रीरामचन्द्रजी धनुषबाणको सज्जित रखते हैं।

तुम भी ज्ञान-धनुषको विवेक-बाणोसे हमेशा सज्जित रखो। राक्षस काम किस समय विघ्न करने आ जाये, यह कहा नही जा सकता। राक्षस तुम्हारे पीछे लगे हुए हैं, तुमको मारने आते हैं परन्तु रामजीकी तरह तुम धनुषबाणको सज्जित रखोगे, ज्ञान-विवेक को सचेत रखोगे, तो राक्षस मरेंगे। राक्षस मर नही गये हैं। राक्षस तो अब भी जीवित हैं और सर्वत्र फिरते है। काम, क्रोध लोभ, मोह इत्यादि सब राक्षस हैं। वे असावधान जीवको मारते है। प्रतिक्षण जो सज्जित रहता है, सावधान रहता है उसको राक्षस मार नही सकते। प्रभुने ताडकाका वध किया। ताडका पूर्वजन्मकी यक्षिणी थी। वह अगस्त्य ऋषिको त्रास देने लगी तो ऋषिने उसे शाप दे दिया और वह राक्षसी हो गयी।

शापात्पिशाचतां प्राप्ता मुक्ता रामप्रसादतः।

रघुनाथजीने ताडकाका उद्धार किया। तत्पश्चात् श्रीराम-लक्ष्मण विश्वामित्रजी-के आश्रममे पधारे। श्रीराम-लक्ष्मणका दर्शन करके ऋषियोको आनन्द हुआ। ऋषि-कुमारोके साथ श्रीराम-लक्ष्मणका प्रेम हुआ। श्रीरघुनाथजीने विश्वामित्रजीसे कहा—गुरुदेव अब आप यज्ञका आरम्भ कीजिए।

श्रीरामः कौशिकं प्राह मुने दीक्षा प्रविश्यताम्।

सुन्दर मण्डपकी रचना की गयी। यज्ञ-मडपके द्वार पर श्रीराम-लक्ष्मण धनुष-पर बाण चढाकर खडे हुए। सोलह वर्ष के राम-लक्ष्मण बहुत सुन्दर दीखते थे। श्रीरघुनाथजीका मुख सुन्दर है, आँख रम्य हैं, वक्ष विशाल है। बल छातीमे होता है। वक्ष जिसका विशाल होता है, बल बहुत होता है। रामजीका हाथ घुटनेको स्पर्श करता है। श्रीराम आजानुबाहु है।

आजानुबाहुमरविन्ददलायताक्ष-
माजन्मशुद्धरमहासमुखप्रसादम्।
श्यामं गृहीतशरचापमुदाररूपम्
रामं सराममभिराममनुस्मरामि॥

हाथका घुटनेको स्पर्श करना महायोगी और अति भाग्यशालीका लक्षण है। कदाचित् तुमको लगता होगा कि हमारा हाथ भी घुटनेसे लगता है। अरे, बैठे-बैठे घुटनेको हाथ लगें, उसका कुछ अर्थ नहीं। खड़े होने पर हाथ घुटनेको स्पर्श करे तो महायोगीका, महाभाग्यशालीका लक्षण है।

श्रीरामका हाथ बहुत लम्बा है। एक वैष्णवने रामजीसे पूछा कि महाराज! आपका हाथ इतना लम्बा क्यों है। रामजीने कहा—मेरे भक्त दर्शन करने आते हैं। उन सबसे, एक-एक-से मिलनेकी मेरी बहुत इच्छा होती है। मैंने हाथ इसलिए लम्बे रखे कि यदि मेरा कोई भक्त बहुत मोटा हो तो उसको सम्पूर्णरूपसे भुजापर ही मैं लेकर सम्पूर्ण आलिंगन दे सकूँ। श्रीराम बहुत भोले हैं, अतिशय सरल हैं, प्रेमकी मूर्ति है। रामजी ऐसे दयालु हैं कि रीछ और वानरोंसे भी मिलते हैं। रीछ-वानरोंके साथ भी प्रेम करते हैं।

श्रीराम यज्ञ-मंडप-द्वार पर खड़े है। अधिकतर मन्दिरमें ठाकुरजी खड़े ही होते हैं। यदि तुम द्वारिका जाओ तो देखोगे कि द्वारिकानाथ खड़े हैं। तुम पंढरपुर गये होगे। पंढरपुरमें श्रीविट्ठलनाथजी महाराज खड़े हैं। पंढरपुरमें श्रीविट्ठलनाथजीका स्वरूप ऐसा सौम्य और मंगलमय है कि दर्शन करते समय ऐसा लगता है, कि खड़े रहकर प्रभु किसीकी प्रतीक्षा कर रहे है। ठाकुरजी का श्रीअंग तो बहुत ही कोमल है, फिर भी वे भक्तों के लिए खड़े हुए है। एक दिवस मनमे थोड़ा विचार आया कि ठाकुरजी समस्त दिवस खड़े रहते हैं, उसमे इनके कोमल चरणोको कितना परिश्रम होता होगा! तुमको कोई एक घंटा खडा रखे तो तुम्हारी क्या दशा हो? श्रीनाथद्वारामे श्रीनाथजी बाबा भी खडे हैं। तुम आंध्रप्रदेशमें आओ तो वहाँ श्रीबालाजी महाराज भी खड़े हैं। परमात्मा जगत्को बोध देते हैं कि अपने भक्तोंसे मिलनेके लिए मैं आतुर होकर खड़ा हूँ।

श्रीराम तो जीवमात्रसे मिलनेके लिए आतुर है परन्तु यह जीव ही अभागा है। जीवको किसी दिन ऐसी इच्छा होती नही कि मुझे परमात्मासे मिलना है। इस शरीरके मिलनमे सुख नही। अरे, शरीरके मिलने से ही सुख होता हो तो मुर्देके मिलनेसे क्यों सुख होता नही? मुर्देके भी हाथ है, पग है, मुँह है, आँख है—सब ही है। दो शरीरके मिलन से सुख होता नही, परन्तु दो प्राण एक होते है इससे आनन्द जैसा लगता है, जीव मिलते है इससे सुख होता है। दो जीव मिलनेसे सुख होता हो तो जीव और ईश्वर मिलें तब जीवको कैसा आनन्द होगा। ईश्वरमें समस्तजीव सूक्ष्मरूपसे रमते है। समस्त जीवोसे एक साथ मिलनेमें कितना आनन्द आवेगा।

आत्मा-परमात्माका मिलन अर्थात् परमानन्द। मानवको मानवके साथ मिलनमें कदाचित् सुख हो परन्तु यह निश्चित है कि इस मिलनमे हजार गुणा दुख भी है। जहाँ संयोग है वहाँ वियोग अवश्य होता है। संयोगाः विप्रयोगान्ताः। संयोग, वियोग-के लिए ही होता है। जगत्में कोई स्त्री-पुरुषके मिलनेकी इच्छा रखना नही। उसमें वियोगका दुख अवश्य है। परमात्मा के मिलनेके बाद वियोगका दुख सहन करनेको रहता नही। ईश्वरका संयोग नित्य है। जीव एक बार ईश्वरसे मिले, परमात्मा इसको एक बार अपना बनाएँ, इसको छातीसे लगाएँ, एक बार परमात्मा जीवको आलिङ्गन दें, उस पीछे जीव ईश्वरसे कभी बिछड़ता नही।

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय।
तथा विद्वान् नामरूपात् विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्॥

नदी समुद्रमें जाकर मिलती है, उस पीछे समुद्रसे वह अलग रह सकती नही। इसका नामरूप भी समुद्रमें मिल जाता है,। समुद्रमें मिले पीछे समुद्र भी नदीको स्वयं-के स्वरूपसे अलग कर सकता नही। मनसे बारबार ऐसा संकल्प करो कि मुझे अब परमात्मासे मिलना है।

परमात्मा तो जीवमात्रको मिलनेके लिए आतुर होकर खड़े हैं। परमात्मा की ऐसी इच्छा है कि जीव मेरा अंश है। यह मेरा है फिर भी मायाके कारण संसार-में फँसा है, जगत्का बन गया है, मुझको भूल गया है परन्तु मै अपने अंशस्वरूप सब जीवोसे मिलनेके लिए आतुर हूँ। ऐसा कौन बाप है जिसे पुत्रके मिलनेकी इच्छा न हो? भगवान सबके पिता है। सबको दर्शन देने—मिलनेको तैयार है। जीवमात्रपर परमात्मा प्रेमकी वर्षा बरसाते है परन्तु जीव दुष्ट है। यह प्रभुके साथ प्रेम करता नही। ससारके विषय दुख देते है, फिर भी इसको मीठे लगते है। जीव उनका ही चिन्तन करता रहता है। इसकी ऐसी इच्छा होती नही कि मुझे परमात्माके प्रत्यक्ष दर्शन करने है, मुझे प्रभुका आलिगन प्राप्त करना है...। अपने भगवानके साथ मुझे अब एक होना है।

श्रीराम-लक्ष्मण धनुष-बाण सजाकर खड़े हैं। विश्वामित्रजी यज्ञ करते है, अग्निमें आहुति देते है।

"अग्नये स्वाहा। प्रजापतये स्वाहा। वरुणाय स्वाहा।"

विश्वामित्रजी आहुति अग्निमे देते हैं, परन्तु इनकी दृष्टि द्वारपर विराजे हुए परमात्मामे है, श्रीराम-लक्ष्मणमें है। लक्ष्मणजीको यह रुचिकर नही लगा। लक्ष्मण-जीने श्रीरामजीसे कहा—बड़े भाई, यह बूढा किस कारण हमें देख रहा है!

श्रीरामजीने कहा—लक्ष्मण ! इनको बूढ़ा मत कहो। यह अपने गुरुजी हैं। लक्ष्मणने कहा—अच्छा गुरुजी हमें एकटक नजर रखकर देखते हैं। ये इस प्रकार क्यों देख रहे हैं ? इनके मनमें क्या है, इसकी खबर ही पड़ती नहीं ?

साधारणतः ऐसा नियम है कि यज्ञ करते समय ब्राह्मणकी नजर अग्निमें ही होनी चाहिए।

अग्निर्वै देवानां मुखम्। अग्निमुखाः वै देवाः।

अग्नि परमात्माका मुख है। अग्नि द्वारा भगवान आरोगते हैं। घरमें तुम ठाकुरजीको भोग धरो, परन्तु अग्निमें आहुति न दो तब तक प्रभु तृप्त होते नहीं। अग्निमें आहुति देनी ही चाहिए। शास्त्रमें लिखा है कि घरमें रसोई हो तो उस कारणसे अनेक जीवोंकी हिंसा भी होती है। रसोई बनानेमें अनेक जीव मरते हैं, और वह हिंसा-का पाप अन्नमें भी आ जाता है। अन्न द्वारा यह पाप खानेवालेके माथे आता है। अन्नसे मन न बिगड़े, इसलिए अन्नको शुद्ध करना बहुत जरूरी है। अन्नको शुद्ध करनेके लिए अग्निमें आहुति दी जाती है।

गृहस्थके घर में पंच महायज्ञ होना ही चाहिए। देवयज्ञ, ऋषियज्ञ, पितृयज्ञ मनुष्ययज्ञ और भूतयज्ञ—ये पाँच महायज्ञ कहे गए हैं।

देवता वर्षा आदि देते हैं। इसए उनको आहुति देनी आवश्यक है। इन्द्र, वरुण अग्नि आदि देवताओं को आहुति देना, उनका पूजन करना देवयज्ञ कहा जाता है।

उपनिषद् महाकाव्य, इतिहास-पुराण आदि अमूल्य ज्ञानका उत्तराधिकार हमें ऋषियोंने दिया है। ऋषियोंके हमारे ऊपर अनन्त उपकार हैं। प्राचीन कालमें गृहस्थ प्रथम अरण्यमें जाकर ऋषियोंको जिमाता, और तब पीछे ही स्वयं भोजन करता। यह ऋषियज्ञ कहलाता है।

हमारे ऊपर पूर्वजोंका बड़ा ऋण है। यह शरीर पित्रीश्वरोंका आभारी है और इसीसे रोज पितृश्राद्ध करना गृहस्थका धर्म है। इसको पितृयज्ञ कहते हैं।

भूखे मनुष्योंको भोजन देनेको मानवयज्ञ कहते हैं। आँगनमें कोई गरीब आवे, कोई भिखारी आवे, कोई साधु-ब्राह्मण आवे, आसपास पड़ोसमें कोई भूखा हो—उन सबको जीमाकर जीमना गृहस्थका धर्म होता है।

इस जगतके प्रत्येक प्राणीके प्रति मनुष्य का कुछ धर्म है। पशु-पक्षी आदि मूक प्राणियोंको अन्नसे तृप्त करनेको भूतयज्ञ कहते है। आकाश, तेज, जल, वायु और

पृथ्वी—ये पंच महाभूत कहलाते हैं। प्रत्येकके एक-एक अधिष्ठाता देव हैं। इन देवों-का पूजन करना, उनको आहुति देनेको भी भूत यज्ञ कहा जाता है।

प्रत्येक गृहस्थको ये यज्ञ रोज करने ही चाहिए। कितने ही लोग ठाकुरजीको थाल तो धरते है, परन्तु अग्निमें आहुति देते नही। कथा सुननेके पीछे रोज अग्निमे आहुति दो। कदाचित् तुमको ऐसा लगता होगा कि महाराज ! तुम कहते हो, परन्तु हमको कोई मन्त्र आता नही। तुमको "हरे राम, हरे कृष्ण" बोलना तो आता है न ? वह बोलो। भातमे थोड़ा घी-डालो, घीयुक्त भात करके अग्निदेवको जिमाओ। अग्निकी ज्वाला ठाकुरजीकी जीभ है। जैसे माँ बहुत प्रेमसे बालकके मुखमे ग्रास ग्रास देती है, वैसे ही तुम भी प्रेम से ऐसी भावना रखो कि मैं अपने ठाकुरजीके मुखमें देता हूँ। ब्राह्मण पवित्र वेदमन्त्र बोलकर परमात्माके मुखमे आहुति देते हैं, प्रभुको जिमाते हैं।

स्मार्त वैश्वदेवको—अग्निदेवको आहुति देनेके पीछे भगवानको भोग धरते हैं। स्मार्त लोग ऐसा मानते हैं कि अग्निमें आहुति देनेसे ही अन्न शुद्ध होता है, और अन्न शुद्ध हो जावे तभी परमात्मा को अर्पण करना चाहिए। अशुद्ध अन्न भगवान को क्यों अर्पण हो ?

वैष्णवोंकी ऐसी भावना होती है कि ठाकुर जी न आरोगें तब तक अग्निदेव भोजन करते नही। इससे वैष्णव प्रथम भगवानको भोग धरते हैं, और पीछे अग्निमे आहुति देते हैं।

दोमे-से कोई भी सिद्धान्त अपनाओ। भगवानको भोग धरके अग्निमें आहुति दो अथवा प्रथम अग्निमे आहुति देकर पीछे भगवानको भोग धरो। दोनों सिद्धान्तो में अग्नि-उपासना आवश्यक है। अग्नि और सूर्य ये दो देव प्रत्यक्ष हैं। अरे, पेटमें भी अग्नि है, इसलिए मानव जीवित रहता है। पेटमें रहनेवाले अग्निदेव शान्त हों तो पीछे अच्युतं केशवम्-हो जाता है, मरण हो जाता है। अग्निके आधारसे जो रसोई हुई, उसमेसे अग्निमे आहुति दिए बिना जो खाता है वह पाप खाता है। जो परमात्माको भोग धरता नही, अग्निमे आहुति देता नही, और स्वयं खा लेता है, वह अन्न खाता नही, पाप खाता है। केवल स्वयंके लिए रांधकर खाता है, वह पाप खाता है।

यज्ञशिष्टाशिनः संतो मुच्यंते सर्वकिल्बिषैः।
भुंजते ते त्वघं पापा ये पंचत्यात्मकारणात् ॥

जब अग्निमें आहुति दो तब भगवान्का स्मरण करो और ऐसा भाव रखो कि ठाकुरजीको जिमाता हूँ। फिर वह अन्न, अन्न नहीं रहता, अमृत बन जाता है।

खाना पाप नहीं है, परन्तु भगवानको अर्पण किए बिना खाना पाप है। भगवानको नैवेद्य ग्रहण करानेके बिना खाना नहीं। नारायणका ही है और नारायणको ही अर्पण करना है। प्रेमसे अर्पण करोगे तो भगवान प्रसन्न होंगे।

ईश्वरको तो कोई अपेक्षा नहीं। वे तो स्वयं आनन्दस्वरूप हैं। ठाकुरजीको ऐसी इच्छा नहीं कि वैष्णव मुझे भोग लगावे। ठाकुरजी पूर्ण निष्काम हैं। भगवान तो भक्तोंको राजी करनेके लिए आरोगते हैं। भगवानके घर क्या कमी है? यह सब कुछ उनका ही लिया हुआ है। भगवानको भोग न धरो, उससे भगवान भूखे रहनेवाले नहीं परन्तु तुमको किसी भी दिन भूखे रहनेका प्रसंग आ आएगा—इस जन्ममें नहीं तो अगले जन्ममें।

भगवानको भूख लगती ही नहीं। भगवान तो तुम्हारे भावको देखते हैं। अपने शरीरसे प्रेम रखते हो, उससे विशेष प्रेम भगवानमें रक्खो। घरमें कोई जीमनेवाला न हो तो भी भगवान के लिए रसोई बनाओ। जिस घरमें भगवानके लिए रसोई होती है, उस घरमें अन्नपूर्णा विराजती है, उस घरमें अन्नकी कभी कमी नहीं पड़ती।

अग्निमें हवन करते समय ब्राह्मणकी नजर अग्निमें होनी चाहिए परन्तु विश्वामित्रजी यज्ञ करते हैं उस समय अग्निमें नजर रखते नहीं। रामजीमें नजर रखते हैं। विश्वामित्रजीने विचार किया कि यज्ञ, दान, जप, तप, तीर्थ, यात्रा, इन सब साधनों का फल है मनकी शुद्धि। सत्कर्म करनेसे मनका मैल धुलता है। सत्कर्मका फल है मनकी शुद्धि, और मनशुद्धिका फल है श्रीराम-दर्शन। जिसका मन अतिशय शुद्ध हो उसको ही परमात्माके दर्शन होते हैं।

मानवका मन शुद्ध नहीं। अब लोग ऐसा कहते हे कि अब काल बिगड़ा है, जगत बिगड़ा है। अरे, समय नही बिगड़ा, जगत नहीं बिगड़ा, बिगड़ा है केवल तुम्हारा हृदय। जगत बिगड़ा हो किंवा जगत ठीक हो इससे तुमको क्या लाभ? मानवका मन बहुत बिगड़ा है और उस मनका मैल धोनेके लिए साधन है। मन सुधरे तो सब सुधरता है, मन बिगड़े तो सब बिगड़ता है। जगत बिगड़ा है यह मान्यता खोटी है। अपना मन बिगड़ा है। जगतके पापकी अपेक्षा इस मनमें बहुत पाप भरे हैं। मनमें रावण भरा है। मन बिना कारण परधन, परस्त्रीका चिंतन करता है। परधन, परस्त्रीका चिंतन करनेसे मनका अधःपतन होता है, मन बहुत अशुद्ध होता है। मन अशुद्ध होनेके कारण जगत् बिगड़ा है, ऐसा लगता है।

इस जगतमें ज्ञानी और अज्ञानी दोनों रहते हैं। अज्ञानीको जगत बिगड़ा हुआ और दुःखरूप लगता है। ज्ञानीको जगत आनन्दमय लगता है। इसका एक ही कारण

है। अज्ञानीका मन अति अशुद्ध है और ज्ञानीका मन अति शुद्ध है। मनको काम, क्रोध, लोभ आदि विकार अशुद्ध करते हैं। जब तक मनमें विकार-वासना है तब तक मन अशुद्ध है। मन जब निष्काम बने तब ज्ञानका उदय हो और आत्मा तथा जगतका सच्चा स्वरूप समझमें आवे। मन बिगडा है तबतक अज्ञान है। बिगड़े मनको शुद्ध करनेके लिए सत्कर्म करने हैं। सत्कर्मसे मनशुद्धि, मनशुद्धिसे ईश्वर-दर्शन।

विश्वामित्रजी जानते हैं कि सत्कर्मका, यज्ञका जो फल हैं, वे ही परमात्मा तो प्रत्यक्ष मेरे द्वारे विराजे हैं, और मैं इस यज्ञमें उनकी प्राप्तिके लिए ही बैठ रहा हूँ। इसीसे विश्वामित्रजी यज्ञ करते हैं तब नजर रामजीमे रखते हैं।

तुम कोई भी काम करो तब ठाकुरजीमें नजर रखकर करोगे तो वह सफल होगा। अपने भगवानको अपनी आँखोंसे विलग मत होने दो। ठाकुरजीको घरमें पधरावें, सिंहासनपर पधरावें, वे तो साधारण वैष्णव हैं। ठाकुरजीको आँखमे पधरावे वह सच्चा वैष्णव है। कितने ही लोगोंकी आंखमें तिजोरी ही होती है। तिजोरीमें ही नजर रखकर वे समस्त काम करते हैं। पैसेमें तो तुम नजर रखते हो, परन्तु भगवानमें नजर रखना सीखो, भगवानमें नजर रखकर किया हुआ सत्कर्म ही सफल होता है।

सत्कर्ममे एक दोष है कि सत्कर्म किए पीछे अहं बढ़ता है। सत्कर्म करनेवालेको लोग बहुत मान देते हैं और कहते हैं कि तुमने यह बहुत ठीक किया। हमारे हाथसे कुछ होता ही नही। तुम बहुत करते हो। सत्कर्म करनेवालेकी वाह-वाह होती है। बहुत प्रशंसा हो तो पुण्य बह जाता है। प्रभुसे विमुख होकर सत्कर्म करे उसका अहं बढ़ जाता हैं। अभिमान बढ़े तो वह सत्कर्म सफल होता नहीं। सत्कर्म किए पीछे दैन्य न आवे तो वह सत्कर्म फलता नहीं। अन्दरका अभिमान बढ़े उसका सत्कर्म क्या कामका? भगवान सर्वदोषोंको, अपराधोंको क्षमा करते हैं, परन्तु अभिमानको क्षमा करते नहीं। अभिमान करने जैसा मानवके पास है ही क्या? तुम काहेका अभिमान करते हो? लाखकी राख होते देर नही लगती। अरे, यह देह ही पलभरमें मिट्टीमें मिल जाती है। इसमे अभिमान काहेका? अहंकार सर्वथा बाधक है। मैं कुछ करता हूँ—ऐसा अहंकार हो तो प्रभु उपेक्षा करते हैं। जो हृदयसे नमन करता है वह भगवानको प्रिय है।

सत्कर्म करते समय सावधान रहो कि अन्दरका अभिमान बढ़े नहीं। कितने दान देते हैं परन्तु उनका दान कीर्तिके लिए होता है। दान ठीक है, परन्तु कीर्तिके लिए दिया दान ठीक नहीं। मनमें ऐसी भावना रक्खो कि मेरे भगवानको खबर पड़े, इतना ही मेरे लिए बहुत है। कोई मनुष्य जाने इससे मुझे क्या लाभ है? तुम बहुत दान देते हो। यदि इसका प्रकाश जगतमें हो तो संभव है कि तुम्हारे द्वारपर मांगनेवाले बहुत लोग आ

जावें। बहुत अधिक लोग माँगने आवेंगे तो पीछे किसीको तो तुम्हें हाथ जोड़ना ही पड़ेगा, ना करनी ही पड़ेगी।

दान ठीक है, ज्ञान ठीक है, परन्तु दानका, ज्ञानका अभिमान खराब है। सत्कर्म तो अभिमान हरनेके लिए है। सत्कर्म मनको शुद्ध करनेके लिए है। सत्कर्म परमात्माको राजी करनेके लिए है। सत्कर्म करनेवाला भगवानमें दृष्टि रखकर, मैं यह करता नहीं यह तो प्रभुने कराया है—ऐसा सतत अनुसन्धान रखकर सत्कर्म करे तो सत्कर्म करनेके पश्चात् अभिमान नहीं आवेगा। सत्कर्म करनेके पश्चात् न मम बोलते हो, उसे आचरणमें लाओ। ऐसी निष्ठा रक्खो कि यह मैंने नहीं किया। मेरे भगवानने कराया है। भगवानने इसके लिए मुझे बुद्धि, शक्तिका दान देकर यह मेरे द्वारा कराया है। भगवान कृपा करके सत्कर्म करावें तो ही वह हो सकता है। ठाकुरजीने कृपा करके मुझे निमित्त बनाया, मेरे हाथों यह कर्म कराया।

परमात्मा श्रीराम कृपा करे, तभी मनुष्यको सत्कर्म करनेकी इच्छा होती है। बहुतोंको सत्कर्म करनेकी इच्छा तो होती है, परन्तु उनके द्वारा वह हो नहीं पाता। परमात्मा कृपा करते हैं तभी ऊपर रहकर वे ही सत्कर्म कराते हैं। सत्कर्म करनेसे ही मन शुद्ध होता है। सत्कर्मको ही यज्ञ कहते हैं। परमात्मा प्रसन्न हों ऐसा कोई भी सही काम करो यह यज्ञ है। अग्निमें ही आहुति देनेसे यज्ञ होता है क्या? कथामें बहुत शान्ति रखकर, श्रीराम-नामका जप करते-करते कथा सुनो, यह भी बड़ा यज्ञ है। परमात्माका नाम कृपासे लिया जाता है। उनकी कृपा हो तो मनुष्य मौन रख सकता है। सत्कर्म करानेका बहुतोंको प्रभु अवसर देते हैं, परन्तु उन सबके द्वारा सत्कर्म होता नहीं।

परमात्मा प्रसन्न हों ऐसा कोई भी ठीक काम करो। असावधान बैठो नहीं। प्रभु प्रसन्न हुए कि नहीं यह जाननेको एक युक्ति है। जो काम करनेके बाद मन शान्त रहे, जो काम करनेके बाद अन्दरसे कुछ आनन्दका अनुभव हो, वह सत्कर्म है और उससे ऐसा जानो कि परमात्मा प्रसन्न हुए हैं। जो काम करनेके बाद मन चंचल हो, अन्दरसे कोई उद्वेग हो, मन अशान्त हो, तो मानना कि प्रभु अप्रसन्न हुए हैं।

मनुष्यका जन्म सत्कर्म करनेके लिए है। मनको जब असावधान रखोगे तभी मन खोटा विचार करेगा। शास्त्रमें तो लिखा है कि सत्कर्म करते-करते अतिशय थकान हो, इसके बाद ही चारपाईपर पड़ना चाहिए। कितने ही लोग ऐसे होते हैं कि घरका काम जहाँ पूरा हुआ कि चारपाईपर पड़ जाते हैं। इससे जल्दी निद्रा आती नहीं और मन खराब विचार करने लगता है। कितने ही तो चारपाईमें पड़े-पड़े विचार करते हैं कि

भाव बढ़ेगा कि घटेगा ? बेंकमें कितने रुपये हैं ? उनका ब्याज कितना आवेगा ? पैसेके लिए प्रयत्न करना बुरा नहीं, परन्तु पैसेका चिंतन करना बुरा है। जब भी तुम बेकार बैठोगे और मनको निवृत्ति मिलेगी तब अधिकतर मन द्रव्यका चिंतन करेगा अथवा काम-सुखका स्मरण करेगा। तुम मालिक हो। मन नौकर है। मनके ऊपर विश्वास रखना नही। मनके ऊपर भक्तिका पहरा रखना। मनको किसी सत्कर्ममें सतत पिरोए रखना। सत्कर्म करते समय नजर परमात्मामें रखना।

विश्वामित्रजी श्रीरामचन्द्रमे नजर स्थिर करके यज्ञ करते हैं। यज्ञ-मंडपके द्वारपर श्रीराम-लक्ष्मणका पहरा है। आनन्द उत्पन्न हुआ। ऋषि निर्भय हो गये, प्रेमसे यज्ञ कर रहे हैं। राक्षसोंको खबर पड़ती है। वे विघ्न करने आते हैं परन्तु रामजीके बार-बार दर्शन करनेसे राक्षसोंका स्वभाव बदल जाता है।

हम तो रोज भगवानके दर्शन करते हैं, परन्तु हमारा स्वभाव जरा भी सुधरता नही। श्रीरामके दर्शन किए पीछे बुद्धि न सुधरे, तो मानो कि मैं राक्षसकी अपेक्षा भी अधम हूँ। लोग रोज देवदर्शन करे, रोज रामायण पाठ करें, फिर भी उनके जीवनमें सरलता और संयम न आवे तो वे राक्षसकी अपेक्षा भी अधम हैं। रामायणमें लिखा है कि मारीच-सुबाहु राक्षसोंका स्वभाव रामजीके दर्शनके पीछे सुधरा। जिनके दर्शन करनेसे स्वभाव सुधरे वह ईश्वर। मारीच-सुबाहु यज्ञमें विघ्न करनेके लिए आते हैं परन्तु रामजीके दर्शन करनेपर उनकी बुद्धि सुधरती है। वे विचार करते हैं कि इस यज्ञमें विघ्न करनेसे हमको क्या लाभ है ? हमने बहुत खोटा कर डाला। इन ब्राह्मणोंका कोई स्वार्थ नही। जगतका कल्याण हो इसलिए ये यज्ञ करते हैं।

ब्राह्मण कोई भी सत्कर्म करनेपर भगवानसे यह नही कहता कि मुझको सुखी करो। मेरे छोकरोंको सुखी करो। ब्राह्मण प्रार्थना करता है कि मेरे देशको सुखी करो। समस्त जगतको सुखी करो।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखमाग्भवेत् ॥
अपुत्राः पुत्रिणः सन्तु पुत्रिणः सन्तु पौत्रिणः।

ब्राह्मण परमेश्वरसे प्रार्थना करता है कि समाजको सुखी करो। ब्राह्मणका अवतार सुख भोगनेके लिए नही, समाजको सुखी करनेके लिए है। राक्षस विचार करते हैं ये पवित्र ऋषि जगतको सुखी करनेके लिए यज्ञ करते है। इस यज्ञमें तो हमको सेवा करनी चाहिए। इसके बदले, हमतो इस यज्ञमें विघ्न करनेके लिए आ गये, यह ठीक

नहीं। रामजीके दर्शन करते-करते उनकी बुद्धि सुधरती है। श्रीराम परमात्मा हैं। उनके दर्शन करनेसे मारीचकी बुद्धि सुधरे, इसमें कुछ आश्चर्य नहीं।

स्वदोष-दर्शन ईश्वरदर्शनका फल है। मनुष्यका ऐसा स्वभाव है कि उसको स्वयंका दोष जल्दी दीखता नहीं। मनुष्यमें बड़ेसे बड़ा दोष स्वयंको निर्दोष समझना है। उनको ऐसा लगता है कि मेरी कोई भूल हुई ही नहीं और कदाचित् हुई हो तो वह बिलकुल साधारण है। वह कोई बड़ी भूल नहीं कहलाती। मनुष्यको स्वयंके दोषका भान नहीं। परमात्माके दर्शन करनेपर तुमको अपने दोषका भान हो, तुम्हारे मन, बुद्धि जरा भी सुधरे तो मानना कि ठाकुरजीने मुझे सम्मुख देखा हैं। परमात्मा जिसपर नजर डालते हैं उसकी स्वदोषका भान होता है। परमात्मा जिसपर नजर डालते हैं उसको ही किए हुए पापके लिये हृदयमें पछतावा होता है। श्रीरामके दर्शनके पीछे मारीच-सुबाहुकी बुद्धि सुधरे, इसमें क्या आश्चर्य है? रामजीके स्मरणमात्रसे मन-बुद्धि सुधरती हैं। तब मारीच-सुबाहु तो प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं। तुम रामजीको प्रेमसे याद करो, धीरे-धीरे तुम्हारा मन भी सुधरेगा।

मारीचको परम आश्चर्य हुआ। विचार करता है कि आज मेरे मनमें दया क्यों आ रही है? इन बालकोंको देखकर बुद्धि बदल गई है। आज मेरा मन मेरे हाथमें नहीं रहा। मुझे इन बालकोंसे मिलनेकी इच्छा होती है। इन बालकोंके साथ लड़ना मुझे कुछ रुचता नहीं। मुझे ऐसी इच्छा होती हैं कि इन दोनों बालकोंको सिंहासनमें पधराकर, सुन्दर श्रृंगार करके इनकी आरती उतारूँ। इनके चरणोंकी मैं सेवा करूँ। ये कितने सुन्दर दीखते हैं? ये ऋषि इन बालकोंको कहींसे ले आया है? ये किसके बालक हैं? जगतमें मैंने ऐसे बालक देखे नहीं।

मारीच-सुबाहु एकटक नजर रखकर राम-लक्ष्मणको देखते ही रह गये। मारीचने विचार किया कि राम-लक्ष्मण बहुत कोमल हैं। इनके साथ मुझे युद्ध करना ही नहीं। ये दरवाजेसे अन्दर जाते ही नहीं। यज्ञमंडपके चार-दरवाजे हैं। इसलिए दूसरे दरवाजेसे मैं अन्दर जाऊँगा।

वे दूसरे द्वारपर गये तो वहाँ भी श्रीराम-लक्ष्मण खड़े थे! तीसरे, चौथे द्वारपर गये, तो वहाँ भी श्रीराम-लक्ष्मणका पहरा था। प्रत्येक द्वारपर राम-लक्ष्मणका पहरा था। मारीचको आश्चर्य हुआ ये सब बालक एकसे ही लगते हैं। ये एक ही हैं अथवा अलग-अलग है? मुझको यह क्या दीखता है?

प्रत्येक दरवाजेपर श्रीराम-लक्ष्मण विराजे थे। रामजी हमें एक बोध देते हैं कि तुम भी जब यज्ञ करो, तब अपने दरवाजेपर राम-लक्ष्मणको पधराओ। जो प्रत्येक

दरवाजेपर राम-लक्ष्मणको पधराता है, उसका ही यज्ञ सफल होता है—सत्कर्म करने बैठे कि मारीच-सुबाहु विघ्न करने आते हैं। काम, क्रोध, लोभ, अहंकार, ये सब मारीच-सुबाहु हैं।

वेदमें अनेक प्रकारके यज्ञोंका वर्णन है। कितने यज्ञ तो ऐसे हैं कि वह यज्ञ ब्राह्मण ही कर सकते हैं, ब्राह्मणके अतिरिक्त किसीको करनेका अधिकार ही नही। ब्राह्मणको ही उन यज्ञोंका अधिकार है। कितने ही यज्ञ तो ऐसे हैं जिन्हें करनेका अधिकार ब्राह्मणको भी नही। जो अग्निहोत्री हों उनको ही उन यज्ञोंके करनेका अधिकार है।

वेदमें एक जगह ऐसा यज्ञ बताया हैं, जिसे करनेका अधिकार सबको है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, साधु, संन्यासी, गृहस्थ, ब्रह्मचारी, स्त्री, पुरुष—कोई भी इस यज्ञको कर सकता है।

तस्यैवं विदुषो यज्ञस्यात्मा श्रद्धापत्नी।

आत्मा-परमात्माका मिलन—इसको ही यज्ञ कहते हैं। आत्मा यजमान है, श्रद्धा पत्नी है। शरीर यज्ञ-भूमि है। शरीररूपी यज्ञ-भूमिमें आत्मा-परमात्माका मिलन महान् यज्ञ है। परमात्मासे मिलना, परमात्माके स्वरूपमे मन को लय करना महान् यज्ञ है। एक पैसेका भी खर्च नही। बड़ा यज्ञ करो तब पैसा खर्च करना पड़ता है, अनेक लोगोंकी भी जरूरत पड़ती हैं। यह यज्ञ तो ऐसा है कि इसमें पैसेका भी खर्च नही, दूसरे किसीकी जरूरत नही और उसको करनेका अधिकार सबको है।

शास्त्रमें ऐसा लिखा है कि प्रत्येक यज्ञमें कुछ-न-कुछ भूल होती है। ब्राह्मणोंकी मंत्र बोलनेमे भूल हो, हविद्रव्य शुद्ध न हो तो भूल हो, और इसीसे अन्तमें प्रायश्चित्त करना पड़ता है। प्रायश्चित्त बिना कोई यज्ञ पूरा होता ही नही। अरे, यज्ञ तो अनेक वार मारता भी है। यज्ञमे थोड़ी भूल हो तो सजा मिलती है परन्तु एक यज्ञ ऐसा है जो अत्यन्त सरल है, निर्दोष है।

वह है जप-यज्ञ। जप यज्ञ सबसे श्रेष्ठ माना है। श्रीकृष्ण भगवानने गीताजीमें कहा है—**यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि**। प्रात.कालमें स्नान करो। पवित्र आसनमे बैठकर परमात्माके स्वरूपको अपने आसनमे पधराओ। ठाकुरजीका सुन्दर शृंगार करो। भगवद्-स्वरूपमें आँखको स्थिर करो और पीछे उस स्वरूपको आँखके मार्गसे अन्दर उतार लो। यह स्वरूप मेरे हृदय-कमलमे है, ऐसी भावना रखकर मनसे परमात्माको भजो। जिस देवकी तुम सेवा करते हो, जिस देवकी तुम नित्य परिचर्या करते हो, उस देवको आँखके मार्गसे अन्दर पधराकर, हृदय-सिंहासनमें स्थिरकर तुम भगवानको मनसे भजो। आँखसे

दर्शन करते-करते, कानसे सुनते-सुनते, मनसे रट करते-करते, जप करोगे तो समाधि लग जाएगी, आत्मा-परमात्मा एक हो जायेंगे। यह बड़ा यज्ञ है।

परन्तु जब तुम यज्ञ करने बैठते हो तब आँखरूपी दरवाजेमें-से, कानरूपी दरवाजेमें-से मारीच-सुबाहु अन्दर आते हैं। इन्द्रियाँ द्वार है। इन्द्रिय-द्वारमें-से मारीच-सुबाहु अन्दर घुसनेका प्रयत्न करते है। विषय ही मारीच है परन्तु जिसकी प्रत्येक इन्द्रिय भगवानके नामकी रट लगाती है उसकी एक-एक इन्द्रियमें भगवान विराजते हैं। प्रत्येक इन्द्रियके द्वारपर परमात्माको पधराओ। रामजीको आँखमें, कानमें, मुखमें विराजमान करो। प्रत्येक इन्द्रिय-द्वारपर रामजी विराजे हों तो मानना कि तुम्हारा यज्ञ सफल होगा। श्रीरामचन्द्रजीको इन्द्रियोके द्वारपर रखोगे तो मारीच-सुबाहु अर्थात् विषय-विकार विघ्न कर सकेंगे नही। विषय-मारीच जल्दी मरता नहीं। अपनी प्रत्येक इन्द्रियपर श्रीराम-लक्ष्मणको पधराओ, परब्रह्म और शब्दब्रह्मको पधराओ तो तुम्हारा जीवन-यज्ञ निर्विघ्न पूर्ण होगा।

तुम जप करने बैठो तब घरमें कोई आवे तो उसपर नजर डालना नही। तुम जिसपर नजर डालोगे उसको मन भी देना पड़ेगा। मनका एक नियम है कि जहाँ आँख जाये वहीं वह भी जाता है। जागृत अवस्थामें मन आँखमे होता है। जिसको दृष्टि देते हो उसको मन दिये बिना छुटकारा होता नहीं। तुम माला करने बैठो तब कोई आवे तो उसपर आँख डालो नहीं, उसका मुख देखो नहीं। मनुष्यमें जो रजोगुण है, इससे उसका मुँह देखनेसे यह रजोगुण तुम्हारे अन्दर आवेगा, तुम्हारे मनको हिलावेगा, चंचल बनावेगा। जप करने बैठो तब आँखमें भगवानको रक्खो, कानमें भगवानको रक्खो।

कदाचित् तुमको शंका होगी कि महाराज! कानमें ठाकुरजीको किस रीतिसे रखेंगे? तुम जिस मंत्रका जप करो, उस मंत्रके शब्दको अपने कानसे सुनो। मन्त्रके एक-एक अक्षरमें दिव्य शक्ति है। कानसे मंत्रके अक्षर सुननेका, जप करनेका अभ्यास डालोगे तो घरमें कोई आवे और बोले तो तुमको सुनाई देगा ही नही। कितने ही लोग ऐसे होते हैं कि नोट गिनने बैठे हों तब कोई बोले तो उनको सुनाई देता नहीं परन्तु माला करने बैठा हों तो सब कुछ सुनाई देता है। ऐसा न करो। कानमें भगवानको पधराओ।

अनेक बार ऐसा होता है कि मानव कानसे भक्ति करता है, परन्तु आँखसे नही करता। कितने ही आँखसे भक्ति करते हैं परन्तु उस समय जीभसे भक्ति करते नही। खूब ध्यानमें रखना कि जिस इन्द्रियसे भक्ति तुम नही करोगे उस इन्द्रियमें-से मारीच-सुबाहु प्रवेश करेंगे और संभव है कि उस इन्द्रिय द्वारा पाप हों।

पाप अति सूक्ष्म है। पाप जब होता है तब जीवको खबर पड़ती नही कि मेरी आँख पाप करती है, मेरी आँखमे पाप आया है, मेरी आँखमे काम आया है, मारीच-सुबाहु आये हैं। मानव अनेक बार ऐसा समझता है कि मैं मन्दिरमें जाता हूँ, मैं भक्ति करता हूँ परन्तु एक इन्द्रियसे यह भक्ति करता है और दूसरी इन्द्रियसे पाप भी करता है।

प्रत्येक इन्द्रियसे भक्ति-रसका पान करना आवश्यक है। ज्ञानी महात्मा इन्द्रियोका दरवाजा बन्द रखते हैं और वैष्णव प्रत्येक द्वारपर परमात्माको पधराते हैं। इन्द्रियरूपी द्वारपर परमात्माको रक्खोगे तो ही यज्ञ सफल होगा। नही तो मारीच-सुबाहु आकर यज्ञमें विघ्न करेंगे।

विश्वामित्रजी जब यज्ञ करते हैं तब मंडपके प्रत्येक द्वारपर श्रीराम-लक्ष्मण पहरा देते हैं। विश्वामित्रजीके यज्ञका परमात्माने रक्षण किया है।

अनिद्रं षडहोरात्रं तपोवनमरक्षताम्।

निद्राका त्याग करके छह दिवस यज्ञका रक्षण किया। मारीच-सुबाहुका प्रभुने उद्धार किया। विश्वामित्रजीका यज्ञ सफल हुआ। विश्वामित्रजीको अतिशय आनन्द हुआ। इन्होंने श्रीराम-लक्ष्मणको अनेक आशीर्वाद दिये। रामायणमे बहुत प्रकारके शस्त्रास्त्रोंका वर्णन है। अग्न्यस्त्र, वायव्यास्त्र, पर्जन्यास्त्र, ब्रह्मास्त्र, इन सब शस्त्रोंका दान और ज्ञान विश्वामित्रजीने रघुनाथजीको दिया। ऋषिने श्रीराम-लक्ष्मणको बला-अतिबला विद्या भी सिखाई। बला-अतिबला विद्या जाननेवालेको भूख-प्यास पीड़ित नहीं कर सकती।

(३५)

श्रीसीताजीका स्वयंवर

विश्वामित्रजीके यज्ञका रक्षण करके श्रीरघुनाथजी सिद्धाश्रममें विराज रहे थे। उसी समय जनकपुरसे कुंकुम-पत्रिका आयी। श्रीजानकीजीका स्वयंवर होना था। विश्वामित्रजीके नामसे यह पत्रिका आयी। विश्वामित्रजीको आनन्द हुआ। उन्होंने श्रीराम-लक्ष्मणसे पूछा, क्या आप जनकपुरीमें पधारेंगे ? रामजीने कहा, गुरुजी ! आप जहाँ जाओगे वहीं आपके पीछे-पीछे हम चलेंगे। आपकी आज्ञाका पालन करेंगे।

धनुष जग्य सुन रघुकुल नाथा। हरषि चले मुनिवरके साथा॥

श्रीराम-लक्ष्मणको लेकर ऋषि विश्वामित्र जनकपुरी जानेके लिए निकले। अनेक ऋषि साथ थे। मार्गमें अहिल्याजीका आश्रम आया। गौतम ऋषिके शापसे उनकी पत्नी अहिल्या पत्थर हो गयी थीं। अहिल्याजी श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करती थीं।

विश्वामित्रजीने कहा, इस पत्थरको चरणसे स्पर्श करो।

श्रीरामजीने पूछा—मुझे चरणसे स्पर्श करनेको क्यों कहते हो ?

विश्वामित्रजीने कहा—ये ऋषि-पत्नी अहिल्या हैं। तुम्हारे चरणस्पर्शसे ही इनका उद्धार होगा।

श्रीरामचन्द्रजीने कहा—गुरुजी ! इनका उद्धार होगा परन्तु मुझको पाप लगेगा। मेरा नियम है, मैं किसी स्त्रीका स्पर्श करता नहीं।

पुरुष बिना कारण किसी स्त्रीका अथवा स्त्री परपुरुषका स्पर्श करे तो पाप है। बहुत भीड़में कदाचित् स्पर्श हो जाये तो भगवान क्षमा देते हैं परन्तु जानकर स्पर्श करें, उनको क्षमा नहीं, सजा है।

रामजीकी प्रत्येक लीलामें मर्यादा है। रामजीको पापका भय लगता है। आजकलके लोगोंको तो पापका जरा भी भय लगता नहीं। तुम किसी मनुष्यका डर रखो नहीं, पापका डर रखना। परन्तु आजकल तो मानव, जीवनमें बहुत पाप करता है, इसके हाथसे पुण्य बहुत कम होता है।

साधारण रीतिसे पापके दो कारण होते है। एक तो पैसेके लिए पाप होता है, दूसरा क्षुद्रजीव कामसुख भोगनेके लिये पाप करते हैं। अपने शास्त्रोंमें धनको साधन माना

है, साध्य नही। जीवनमें पैसा गौण है, परमात्मा मुख्य हैं। बहुत लोग पैसेके लिये पाप करते हैं, पापसे पैसा इकट्ठा करते हैं, और पीछे वह भौतिक सुख भोगते हुये दीखते हैं परन्तु इनको अन्दरकी शान्ति होती नही। जिस कर्मसे मन अशान्त और उद्विग्न हो उसका नाम पाप। पाप करनेवालेको जीवनमें शान्ति मिलती नहीं। जो पापसे भय रखता नही उसका मन अशान्त रहता है। पाप करनेवालेका हृदय सदा जलता और रोता रहता है। पापसे कदाचित् पैसा मिले, परन्तु शान्ति नही मिलती। पापसे कदाचित् थोड़ा सुख मिलता दीखे, परन्तु परमात्मा नहीं मिलते। पापसे खूब पैसा कमाकर दान-पुण्य करनेकी अपेक्षा, नीतिसे, धर्मसे थोडा कमाकर पैसा भी दान न करे, और ठाकुरजीको केवल वंदन करे तो ईश्वरको रुचिकर लगता है परन्तु पापसे पैसा कमाकर जो दान देता है, यज्ञ आदि सत्कर्म करता है, उसका दान-यज्ञ-सत्कर्म भगवानको स्वीकार नही।

मानव ऐसा समझता है मैं थोड़ा पाप करूँ जिससे पैसा भी मिलेगा। पैसेसे मैं आँखका सुख भोगूंगा, शरीरका सुख भोगूंगा, और आराम करूँगा परन्तु पापका पैसा किसीको सुख देता नही, शान्ति देता नही। मानवको सच्चे सुखकी खबर ही नही। सच्चा सुख क्या है? इसका ज्ञान उसे हो तो वह पाप करे ही नही।

पापका पैसा जहरकी अपेक्षा भी भयकर है। पापका पैसा कमानेवालेको तो शांति देता ही नही, अपितु घरके लड़कोंकी भी बुद्धि बिगाडता है। पैसेके लिए पाप न करो। परमात्मा सबका पोषण करते हैं। तुम्हारी चिंता तुमको जितनी है उसकी अपेक्षा परमात्माको ज्यादा है। जीवके लिए भगवान जन्म होनेसे पहले ही सारी तैयारी रखते हैं। माँके स्तनमें दूध कौन उत्पन्न करता है? यह शरीर रुधिर, मास, हड्डीसे भरा है। फिर भी इसमेंसे दूध किस रीतिसे निकलता होगा? यह सब परमात्माकी दया है।

अनेक बार मनुष्य कामसुखके लिए पाप करता है।

सुखतः क्रियते रामाभोगः
पश्चाद्धन्त शरीरे रोगः।
यद्यपि लोके मरणं शरणं
तदपि न मुञ्चति पापाचरणम्॥ भजगोविन्दम्

भोग भोगता हुआ मनुष्य स्वय ही भुगत जाता है। भोगीका शरीर रोगका घर बन जाता है, और अन्तमे कालका ग्रास बन जाता है। फिर भी मनुष्य पाप छोड़ता नही। परधन और परस्त्रीमें मनकी प्रवृत्ति सदृश पाप कोई नही। वे दुर्जन हैं, राक्षस है। दुर्जनका लक्षण बताते हुये कहा गया है—

अकरुणत्वमकारणविग्रहः
परधने परयोषिति च स्पृहा ।।
सुजनबंधुजनेष्वसहिष्णुता
प्रकृतिसिद्धमिदं हि दुरात्मनाम् ।।

दुर्जनमें दया होती नही। वह बिना कारण सबके साथ झगड़ता है। परधन और परस्त्रीपर इसकी नजर होती है। सज्जनोंको, साधु-संतोंको यह त्रास देता है। ये सब राक्षसके लक्षण हैं।

मनुष्य पापका भय रखता नही, इसीसे यह दुःखी है। मनुष्य जीवनमें जाने कहाँ-तक पाप करता है, छलकपट करता है। अनेक जीवोंका अपमान करके वह, जीवन पूरा तो करता है, परन्तु अन्तकालमें वह बहुत पछताता है, बहुत घबराता है। पापसे कदाचित् कोई जीवनको सुखमय बनावे; परन्तु मरणके समय उसकी दुर्दशा होती है। अन्तसमयमें जीवकी छातीपर इसके समस्त पाप चढ़ बैठते हैं, इससे उसको अपार घबराहट होती है।

अंतसमयमें घबराहट उसको होती है जिसके हिसाबमें घोटाला है, जिसके जीवनका हिसाब-किताब खोटा है, पापसे भरा है। मृत्यु अर्थात् प्रभुके दरबारसे आया हुआ इन्कमटैक्सका बुलावा, प्रभुके घर जीवनका हिसाब देनेका दिन। हिसाबमें घोटाला हो तो ही वहाँ जाते समय घबराहट होती है। जिसका हिसाब अति शुद्ध है उसको डर क्या है? रोज मन्दिरमें न जानेवाला मनुष्य इन्कमटैक्सकी देनदारीके समय मन्दिरमें जाकर भगवानसे कहता है कि आज आफीसरको अंधा करके मेरा गलत हिसाब-किताब पास करवा दो। हे प्रभु! मेरा खाता पास हो जायेगा तो दस रुपयेका थाल धरूँगा। लक्ष्मी-पति क्या, हमारे दस रुपयोंकी घूँस लेकर हमारा लाखों रुपयोंका पाप छिपानेमें मदद करें? मनुष्य अपने पापमें भी ईश्वरका साथ ढूँढता है।

मनुष्योंको कदाचित् धोखा दिया जा सके परन्तु ईश्वरको धोखा नही दिया जा सकता। वे तो तनकी और मनकी दोनोंकी जाननेवाले है। इसलिए पापको प्रगट करो। पापके समय सावधान रहो। सदैव पापसे बचते रहो। जीवनके खातेमें घोटाला न हो, उसे देखते रहो। तुम मालिककी चीज समझदारीसे प्रयोग करोगे तो अंतसमयमें, प्रभुको हिसाब देनेके लिए जाते समय कुछ भी घबराहट नही होगी।

मनुष्य मालिक नही, प्रभुका मुनीम है। तुम्हारे घरमें जो कुछ है वह सब परमात्माका है और तुम उनके मुनीम हो। मुनीमको मालिकका पैसा संभव हो वहाँ तक, विवेकसे ही खर्च करना पड़ता है और पूरा हिसाब रखना पडता है। तुम विवेकसे भोगोगे और पूरा हिसाब रखोगे तो प्रभु नाराज नही होगे।

किए हुए पापोके कारण अंतकालमे जीवको पछतावा होता है। उस समय उसको ज्ञान उत्पन्न होता है,परन्तु वह ज्ञान काममें आता नही।उस समय शरीर इतना बिगड़ चुका होता है कि कुछ भी हो नही सकता। इसलिए मनुष्य घबगाता हैं कि मैंने कुछ भी तैयारी नही की। मेरा क्या हाल होगा? जहाँ जानेके बाद वापिस आना है उस मुसाफिरीकी तो मनुष्य बहुत तैयारी करता है, परन्तु जहाँ जानेके बाद लौटकर नही आना है उस अनन्तकी यात्राकी कोई अगाऊ तैयारी नही करता। एक-न-एक दिन मरना तो अवश्य है ऐसा सब किसीको ज्ञान है। फिरभी पाप करता है। कारण मनुष्य मृत्युको भूल जाता है।

तुम मृत्युका डर रखो, पापका डर रखो। तुम अधिक पुण्य न करो तो बाधा नहीं, परन्तु पाप तनिक भी न करो।

श्रीरामचन्द्रजीने कहा कि मैं किसी स्त्रीका स्पर्श करता नही। वाल्मीकि-रामायणके सुन्दरकाण्डमे सीताजीने कहा है कि मैं किसी पुरुषका स्पर्श करती नही। सुन्दर-काण्डमें कथा आती है। श्रीसीताजी लंकामे विलाप करती थी। उसे हनुमानजी सहन नहीं कर सके। उन्होंने माताजीसे कहा, माँ तुम मेरे कन्धे पर विराजो, मैं इसी समय तुमको श्रीरामजीके पास ले जाऊँगा। उसपर माताजीने कहा—बेटा तू मेरा पुत्र है, जितेन्द्रिय है, बालब्रह्मचारी है। तू पवित्र है। परन्तु···

भर्तुर्भक्तिं पुरस्कृत्य रामादन्यस्य वानर।
नाहं स्प्रष्टुं स्वतो गात्रमिच्छेयं वानरोत्तम॥

आज पर्यन्त किसी भी पुरुषका मैंने अपनी इच्छासे स्पर्श नही किया। इस प्रकार तेरे साथ चलूँ तो मुझे पाप लगेगा। अरे, श्रीसीताजीका स्मरण करनेसे तो पाप नष्ट होते हैं। सीताजीको क्या पाप लगना है? परन्तु माताजीने जगत्को एक दिव्य धर्मका आदर्श बतलाया है। पापका भय रखो। परमात्माका भय रखो।

श्रीरामचन्द्रजीने विश्वामित्र ऋषिसे कहा—मैं प्रणाम करूँगा, परन्तु स्पर्श नही करूँगा। विश्वामित्रजीने आग्रह किया। प्रणाम करनेसे इसका उद्धार नही होगा। चरणसे स्पर्श करो तो ही उद्धार होगा। शास्त्रमे ऐसा लिखा है—:

न स्पृशेद् दारवीमपि

दारवी अर्थात् लकडीकी पुतली। जिसको सतत ब्रह्मचर्यका पालन करना है, उसको परस्त्रीके स्पर्शकी तो बात दूर रही, लकडीकी पुतलीका भी स्पर्श करना उचित नही। स्पर्शसे अनेक दोष उत्पन्न होते है। कितने ही ऐसा समझते है कि मन चगा तो कठौतीमे गंगा। स्पर्श करनेमे क्या बाधा है? अरे, तुम्हारा मन चगा नही, यह बहुत बिगडा हुआ है। मन कितना बिगड़ा हुआ है इसकी मनुष्यको खबर नही। इस जगतमें

इतना पाप नहीं होता जितना पाप मनुष्य मनमें रखता है। मनके ऊपर विश्वास रखनेवालेके साथ मन दगा करता है, गड्ढे में फेंक देता है।

रामायणमें वर्णन आता है कि श्रीरामचन्द्रजीने अहिल्याको चरणसे स्पर्श नहीं किया। रामजी वहाँ खड़े रहे, उस समय पवन आए, पवनके कारण श्रीराम-चरणोंकी रज उड़कर पत्थरके ऊपर पड़ी। अहिल्याको श्रीरामचरणका स्पर्श नहीं, श्रीराम-चरण-रजका स्पर्श प्राप्त हुआ। श्रीरामजीकी चरण-रजमे ऐसी शक्ति है कि अहिल्याका उद्धार हो गया। संत-चरण-रज, भगवत्-चरण-रज मनको पवित्र करती है। अहिल्याजीने रामजीकी सुन्दर स्तुति की।

यत्पादपङ्कजपरागपवित्रगात्रा भागीरथी भवविरिञ्चिमुखान्पुनाति।
साक्षात्स एव मम दृग्विषयो यदास्ते किं वर्ण्यते मम पुराकृतभागधेयम्॥

× × ×

यत्पादपङ्कजरजः श्रुतिभिर्विमृग्यं यन्नाभिपङ्कजभवः कमलासनश्च।
यन्नामसाररसिको भगवान्पुरारिस्तं रामचन्द्रमनिशं हृदि भावयामि॥

आपकी चरण-रजसे मैं आज पवित्र हो गयी हूँ। आपकी चरण-रज अतिपावनकारी है, गंगाजी, विष्णु और ब्रह्मा आदि जगदीश्वरोंको पवित्र करनेवाली है। आपकी पवित्र चरण-रजको श्रुतियाँ खोज रही है। आपकी नाभिमें-से ब्रह्माजी प्रगट हुए है। आपके नामामृतका भगवान शंकर अति रसिकता से अहर्निश पान करते रहते हैं। आज तक मै निरन्तर आपका ध्यान करती थी। आज मेरी आँखे साक्षात् आप परमात्माके दर्शन कर रही है। अपने अहोभाग्यका मै क्या वर्णन करूँ? अहिल्याजीने स्तुति करते हुए कहा—

मुनि स्राप जो दीन्हा, अति भल कीन्हा।

मुनिने श्राप देकर मेरे ऊपर उपकार किया है, मेरा कल्याण किया है, कि जिससे आज आपके दर्शन करनेका अवसर मुझे प्राप्त हुआ। मेरा उद्धार हो गया।

बुद्धि कामसुखका चिंतन करती है तो जड़ बनती है, पत्थर जैसी कठिन हो जाती है। ठाकुरजीकी सेवा-स्मरण करनेमें हृदय क्यों नही पिघलता? परमात्माका स्मरण करते समय आखोंमें आँसू क्यों नही आता? उसका एक ही कारण है कि मन कामसुखका बहुत चिंतन करता है। इससे यह पत्थर जैसा बन जाता है, और भगवद्भावमें पिघलता नही। बुद्धि निष्काम बने तो पिघले। बुद्धि निष्काम कैसे बने? बुद्धि जब काम-सुखका त्याग करती है, कामका चिन्तन छोड़ देती है, उस समय निष्काम बनती है, और तभी वह भगवद्भावमें पिघलती है। संत-चरण-रज, भगवद्चरण-रजका स्पर्श हो तो धीरे-धीरे मन-बुद्धि सुधरती हैं।

अहिल्याका उद्धार करके श्रीराम-लक्ष्मण विश्वामित्रजीके साथ जनकपुरीमें पधारे। जनकपुरीके बाहर एक आमोंका बगीचा था। वहाँ श्रीरघुनाथजी विराजे। जनक राजाको खबर पडी कि विश्वामित्र ऋषि पधारे हैं। वे वहाँ स्वागत करनेके लिए पधारे। श्रीराम-लक्ष्मणके दर्शन करनेसे उनको अतिशय आनन्द हुआ। जनक राजाने विश्वामित्र ऋषिसे पूछा—महाराज! ये ऋषिकुमार हैं अथवा राजकुमार ?

कहहु नाथ सुन्दर दोउ बालक। मुनिकुल तिलक कि नृपकुलपालक॥

इनके श्रीअगके लक्षण देखनेसे तो ऐसा लगता है कि ये राजकुमार है। बहुत सुन्दर दीखते है परन्तु तुम्हारे साथ आये हैं तो क्या वे ऋषिकुमार हैं ?

विश्वामित्रजीने तत्काल पूछा—राजन्! तुमको क्या लगता है? ये ऋषिकुमार लगते हैं वा राजकुमार लगते हैं ?

राजा जनक महान् ज्ञानी हैं। गीताजीका उपदेश करते समय परमात्मा श्रीकृष्णको जनक महाराज याद आते हैं। प्रभुने किसी दूसरेका नाम लिया नही। परमात्माने जनक राजाका दृष्टान्त दिया है।

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः॥

जनक राजाकीपदवी थी—विदेह जनक। देहमें होते हुए जिसको देहधर्म (इन्द्रियोंका धर्म) स्पर्श न करे, देहमें होनेपर भी देहसे अलग रहे, उसको विदेही अथवा जीवन्मुक्त कहते हैं।

प्रारब्धकर्मपरिकल्पितवासनाभिः
संसारिवच्चरति भुक्तिषु मुक्तदेहः।
सिद्धः स्वयं वसति साक्षिवदत्र तूष्णीं
चक्रस्य मूलमिव कल्पविकल्पशून्यः॥

प्रारब्धकर्मके अनुसार देह तो प्राप्त हुआ है, परन्तु जो जीवन्मुक्त है वह नया प्रारब्ध खडा होने देता नही। वह संकल्प-विकल्प-रहित होता है। प्रारब्ध कर्मसे प्राप्त वासनाके कारण वह ससारियोकी तरह ससारके भोग भोगता हुआ देखा जाता है।

परन्तु वह जानता है कि आत्मा और शरीर अलग-अलग हैं। शरीरका धर्म अलग है। आत्मा निर्लेप है। आत्मा मनको द्रष्टा है, साक्षी है। ज्ञानीपुरुष आत्मस्वरूपमें स्थित हैं। वे संसारके समस्त व्यवहार करते हुए भी स्वयं कुछ करते नही। ऐसी निष्काम भावनासे उनके सब कर्म सम्पन्न होते हैं।

ज्ञानी महापुरुष अधिकांश भागमें दोनों आँखोंके मध्यमे, ललाटमें नजर स्थिर रखते हैं। दोनों आँखोंके मध्यमें, ललाटमें एक ज्योति है। तुम आँख बन्द करके ललाटमें नजर करोगे तो तुमको भी थोड़ा प्रकाश दीखेगा। ज्ञानी महापुरुष सतत ऐसा अनुसन्धान रखते है कि मैं पुरुष नही, मैं स्त्री नहीं। शरीरका सुख, इन्द्रियोंका सुख मेरा सुख नहीं। मैं शुद्ध चेतन आत्मा हूँ। मैं प्रकाशमय हूँ।

सोऽहं स्वयंज्योतिरनीदृगात्मा।

सर्वको प्रकाश देनेवाला वह ब्रह्म मैं हूँ।

जनक राजा विदेह हैं। इसीलिए विश्वामित्रजीने उनसे कहा कि तुम ही परीक्षा करो कि ये कौन हैं? तब जनक राजा एकटक श्रीराम-लक्ष्मणको निहारने लगे। चरणसे मुखारविन्द पर्यन्त सर्वाङ्गको सूक्ष्म रूपसे देखकर जनक महाराजको विश्वास हुआ कि श्रीराम ऋषिकुमार नही, श्रीराम राजकुमार नही, श्रीराम कोई मानव नही, श्रीराम कोई देव नहीं, श्रीराम परमामात्मा है। मेरे मन- आँखोंका आकर्षण एक ईश्वर ही कर सकते हैं। कोई सुन्दर स्त्री दीखे, कोई पुरुष दीखे, जगतका कोई भी सुन्दर पदार्थ दीखे फिर भी मेरे मनमें जरा भी आकर्षण होता नही। मैं संसारमें रहता हूँ, परन्तु मैं ज्ञानी जनक हूँ। मुझको संसारके समस्त सौन्दर्य तुच्छ लगते हैं। श्रीराम यदि ईश्वर नहीं तो ये मेरे मनको खींच सकते नहीं। जनक महाराजका मन परमात्माने खींच लिया है। जनक महाराज सतत ब्रह्मचिंतन करते हैं। इन्हें मनके ऊपर पूर्ण विश्वास है।

दुष्यन्त राजाकी एक कथा है। एक बार दुष्यन्त राजा शिकारके लिए निकले। घूमते-घूमते कण्व ऋषिके आश्रममें जा पहुँचे, कण्व ऋषि उस समय बाहर गये हुए थे। शकुन्तलाने दुष्यन्त राजाका स्वागत किया। दुष्यन्तने शकुन्तलासे पूछा—तुम कौन हो? किसकी कन्या हो?

शकुन्तलाने कहा—मैं कण्व ऋषिकी कन्या हूँ। दुष्यन्त राजा यह बात माननेको तैयार नही हुए। उन्होंने कहा—आज तक मेरे मनमें पाप नहीं आया।

न हि चेतः पौरवाणामधर्मे रमते क्वचित्।

अपने मनपर मुझे विश्वास है। मेरा मन कुमार्गपर कभी जाता नही। ब्राह्मणकी कन्या तो मेरी माँ है। आज तुमको देखकर मेरा मन चंचल हुआ है। इसलिए मुझे विश्वास है कि तुम मेरी जातिकी कन्या हो, क्षत्रिय-कन्या हो, ब्राह्मण-कन्या नही हो। दुष्यन्त राजाकी बात सच थी। शकुन्तला कण्व ऋषिकी पालिता कन्या थी। जन्मसे वह क्षत्रिय-कन्या थी।

सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः।

सत्पुरुषोके सम्मुख संदेह उत्पन्न करनेवाली वस्तुओमे उनकी अन्तःकरणकी वृत्ति ही प्रमाण है। उनका मन उनको कभी बुरे मार्गपर नही ले जाता। उनका अपने मनके ऊपर दृढ विश्वास होता है। जनक महाराजकी ऐसी निष्ठा है—मेरे मनका आकर्षण एक ईश्वर ही-कर सकते हैं। कोई देव भी मेरे मनका आकर्षण नही कर सकता। मेरा मन पवित्र है। मैं संसारमें रहता हूँ, परन्तु मेरे मनमें ससार नहीं।

संसारमें रहनेसे पाप नही होता, मनमें ससारको रखनेसे पाप होता है। ज्ञानी महापुरुष सदा सावधान रहते हैं कि बाहरका संसार अन्दर नहीं आवे, मनमें प्रवेश न पावे। नाव जलमें रहती है, परन्तु नावमे जल आ जाये तो नाव डूब जाती है। इसी प्रकार, संसार मनमे आ जाय तो मनको डुबा देता है, ज्ञान-भक्तिमें विघ्न करा देता है। संसार, बाधक नही, संसारके विषयोंका चिंतन ही बाधक है। विषयोका चिंतन करनेसे संसारमें जो आसक्ति उत्पन्न होती है, वह बाधक है। विषयोंके चिंतनसे ही मन चंचल होता है। मन जीवित है मनमें रहनेवाले संसारसे ही। मनमें विषय न रहे, संसार न रहे तो मन शांत हो जाता है।

संसार छोड सकते नही, परन्तु मनमे-से संसार निकाल डालो। मन किसीको देना नही। संसारके जड़ पदार्थोंको भी मन देना नही। मन देने लायक इस संसारमें कुछ है ही नही। संसारमे जिसको मन दोगे वह तुमको रुलावेगा। मन देने लायक तो एक श्रीराम ही हैं। मन जब मिलेगा तो परमात्मामें ही मिलेगा। चेतन मन, जड़ पदार्थोंमें मिल सकता नही। मन ईश्वरमे ही स्थिर होता है और इसीलिए ही ज्ञानी महापुरुष मन ईश्वरको ही देते हैं।

जनक राजाके मनमें परमात्मा विराजे हुए हैं। जनक महाराजको विश्वास है कि जगतकी कोई वस्तु मेरे मनको खीच सकती नही। परमात्मा ही मेरे मनको खींच सकते हैं। श्रीरामने मेरे मनको खीचा हैं। श्रीराम परमात्मा हैं। श्रीराम ईश्वर न हों तो मेरे मनको खीच सकते नही।

ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय बेष धरि की सोइ आवा॥
सहज बिरागरूप मनु मोरा। थकित होत जिमि चंद चकोरा॥

× × ×

इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा॥

वेद "नेति-नेति" कहकर जिनका वर्णन करते हैं, भगवान शंकर जिस स्वरूपका नित्य ध्यान करते हैं, वे परब्रह्म ये ही है। आज तक निराकार परब्रह्मका मैं- ध्यान करता था। वे निराकार ब्रह्म ही नराकार श्रीराम है। श्रीराम परमात्मा हैं।

कितने ही लोग ऐसा मानते हैं कि श्रीकृष्णमें सोलह कला हैं और रामजीमें दो कलाएँ कम हैं। कितनों ही का ऐसा थोड़ा आग्रह है परन्तु इस सिद्धान्तको श्री व्यास-नारायणनें सम्मति दी नही। व्यासजीने ऐसा कहा ही नहीं कि रामजीमें दो कलाएँ कम हैं। श्रीकृष्ण और श्रीराम एक ही है। भागवतमें, रामायणमें, वेदोंमें अनेक स्थानोंपर ऐसा वर्णन है कि श्रीराम परिपूर्णतम परमात्मा हैं। रामजीमें दो कलाएँ कम हैं, ऐसा कहना ठीक नहीं। ऐसा बोलनेवाला दुःसाहस करता है। यह सिद्धान्त व्यासनारायणको मान्य नहीं। भागवतमें शुकदेवजी महाराज राजा परीक्षितसे कहते हैं—

स यैः स्पृष्टोऽभिदृष्टो वा संविष्टोऽनुगतोऽपि वा।
कोसलास्ते ययुः स्थानं यत्र गच्छन्ति योगिनः॥

पुरुषो रामचरितं श्रवणैरुपधारयन्।
आनृशंस्यपरो राजन् कर्मबन्धैर्विमुच्यते॥

शुकदेवजी महाराज कहते है कि कौशल देशके वासी महाभाग्यशाली थे। उनमें-से जिस-जिसने रामजीका स्पर्श किया, उनके साथ बातें की, उनका अनुगमन किया, अरे! जिसने रामजीके केवलमात्र दर्शन किए, वे सब उस परमधाममें गये जहाँ बड़े-बड़े योगी जाते हैं। राजन्! श्रीराम-चरित्रका जो शान्तिसे श्रवण करता है, वह कर्मके बंधनोंसे मुक्त हो जाता है।

भागवतके एकादश स्कन्धमें भगवान श्रीरामचन्द्रजीकी सुन्दर स्तुति है।

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं तीर्थास्पदं शिवविरिञ्चिनुतं शरण्यम्।
भृत्यार्तिहं प्रणतपाल भवाब्धिपोतं वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्॥

हे प्रभु! आप शरणागत-दीनवत्सल हो। आपके चरणारविन्द सदा ध्यान करने योग्य हैं। आपके चरणारविन्दकी शरण जो स्वीकार करता है, उसका जीवन सफल बनता है। आपके चरणारविन्द सर्व तीर्थोंके तीर्थ है। शिव, ब्रह्मादि देवता निरन्तर इनकी स्तुति करते हैं। वे चरण भक्तोंका दुःख-कष्ट निवारण करते है। ससार-सागर पार करनेवालेको नौकारूप है। हे महापुरुष! मैं आपके उन चरणारविन्दोका वन्दन करता हूँ।

राजा जनकने परमात्माको पहचान लिया परन्तु श्रीरामचन्द्रजीको प्रगट होना अच्छा नही लगता। श्रीरामचन्द्रजीने आंखके सकेतसे विश्वामित्रजीसे कहा कि गुरुजी मेरा रहस्य खोलना नही। मुझे प्रगट होना नही।

विश्वामित्रजीने राजा जनकसे कहा कि ये महाराज दशरथके पुत्र हैं। मेरे यज्ञ-का रक्षण करनेके लिए आए थे। इन्हें, में साथ ले आया हूँ। तुम ब्रह्मनिष्ठ हो, ब्रह्मदृष्टि रखते हो, तभी तुमको ऐसा लगता है।

ब्रह्मज्ञानी होना बहुत कठिन नही, परन्तु व्यवहार-दशामे ब्रह्मदृष्टि रखना बहुत कठिन है। ब्रह्मज्ञानी मिलेगा, परन्तु शुकदेवजी और जनक विदेही जैसा ब्रह्मदृष्टि रखनेवाला कोई बिरला ही मिलेगा। व्यवहारमे ब्रह्मदृष्टि न रखे, उसका ज्ञान वह जाता है। जिसको ब्रह्मदृष्टि प्राप्त होती है, वह जहाँ जाय वहाँ सर्वत्र उसको परमात्माके दर्शन होते हैं।

विश्वामित्रजीने रामजीको छिपाया है। उन्होने राजा जनकसे कहा—राजन् ! तुम ब्रह्मदृष्टि रखते हो, इसीसे तुमको श्रीराम परमात्मा हैं, ऐसा लगता है परन्तु ऐसा कुछ नहीं, ये तो अयोध्याके सम्राट्के राजकुमार हैं।

राजा जनकने कहा—महाराज ! तुम भले ही कहो कि ये दशरथ महाराजके पुत्र हैं, परन्तु ये किसीके पुत्र नही। ये सबके पिता है, इनका पिता कोई हो सकता नही। ये परमात्मा हैं, ऐसा मुझको लगता है।

राजा जनकने बहुत आग्रह करके कहा—अब राजमहलमे पधारो परन्तु रामजीकी आमके बगीचेमें ही रहनेकी इच्छा थी। इसलिए राजा जनकने वहाँ ही सब व्यवस्था कर दी।

सायंकाल श्रीराम-लक्ष्मण संध्या करते हैं, ऐसा रामायणमे लिखा है। कितने ही लोग तो संध्या करते ही नही। खास करके ब्राह्मणको तीन बार संध्या करनी चाहिए ! ब्राह्मणके ऊपर बहुत उत्तरदायित्व दिया हुआ है। संध्याहीन ब्राह्मण अपवित्र है। तीनों समय सध्या किए बिना भोजन करनेसे शूद्रके समान बनता है। सध्यामे ब्राह्मणोकी अश्रद्धा हुई, तभीसे ब्राह्मणोका पतन होने लगा।

कितने ही संध्या करते हैं, परन्तु सध्याका समय निर्वाह करते नही। सध्या समयपर होनी चाहिए। प्रातःकाल—आकाशमे नक्षत्र हो उस समय प्रातःसंन्ध्या की जाय तो उत्तम संध्या है। नक्षत्र न दिखाई देते हो, परन्तु अभी सूर्यनारायण बाहर न आए हो उस समय की गई सध्या, मध्यम सध्या है। सूर्योदयके पश्चात्की अधम संध्या है। कितने ही प्रातःसंध्या करते हैं परन्तु सुबह आठ नौ बजे वे करने बैठते है। ठीक है। कितने ही कुछ करते ही नही उनकी अपेक्षा ये तो कुछ करें तो क्या बुरा है ? किसीके मामा ही न हो, उसको मामा मिले

तो बेचारा राजी हो जाता है । सत्कर्मका जो समय निश्चित किया गया है, उसी समय उस सत्कर्मको करना चाहिये ।

उदयन्तमस्तयन्तमादित्यमभिध्यायन् कुर्वन् ब्राह्मणाः सकलं भद्रमश्नुते ।

ब्राह्मण अन्य कुछ न करे, परन्तु सूर्योदय और सूर्यास्तका समय साधे और बहुत सावधान होकर संध्या करे, तो उस ब्राह्मणकी चिंता सूर्यनारायण करते है । सूर्यनारायण ब्राह्मणोंके गुरु है । श्रीमहाप्रभुजी तीन बार संध्या करते थे, ऐसा उनके चरित्रमें लिखा है। त्रिकाल संध्या करो । संध्याके समान श्रेष्ठ सत्कर्म एक भी नहीं । प्रातःसंध्यासे रात्रिका पाप नष्ट होता है । मध्याह्नकी संध्या, अन्न-जलका दोष दूर करती है । सायं संध्या दिनका पाप नष्ट करती है । त्रिकाल संध्याकी महिमा बहुत बड़ी है । संध्यामें सूर्यनारायणका जप करते हुए जगदम्बा गायत्रीका ध्यान करना है । संध्यामें गायत्री माताका आह्वान करना है कि माँ ! तुम मेरे हृदयमें पधारो । पापसे मेरा रक्षण करो। संध्यामें अघमर्षण करना होता है । त्रिकाल संध्या करनेवाला कभी मूर्ख रहता नहीं, दरिद्र रहता नहीं ।

आदित्यस्य नमस्कारं ये कुर्वन्ति दिने दिने ।
जन्मान्तरसहस्रेषु दारिद्र्यं नोपजायते ।।

भागवतमें गोकर्णकी कथा आती है । गोकर्णने सूर्यनारायणको अर्घ्य देकर कहा— महाराज ! जरा खड़े हो । मुझे तुमसे कुछ पूछना है । सूर्यनारायण खड़े रहे । यह त्रिकाल संध्याका फल है ।

संध्या करके श्रीराम-लक्ष्मणने कुछ समय विश्वामित्रजीका सत्संग किया । तत्पश्चात् गुरुदेवने शयन किया । तब दोनों भाई गुरुदेवके चरणोंकी सेवा करने लगे ।

मुनिबर सयन कीन्ह तब जाई । लगे चरन चापन दोउ भाई ।।
जिन्हके चरन सरोरुह लागी । करत बिबिध जप जोग बिरागी ।।
तेइ दोउ बंधु प्रेम जनु जीते । गुरुपद कमल पलोटत प्रीते ।।

जिनके चरण-कमलोंका ध्यान करते हुए साधु-महात्मा जप करते हैं, योग करते हैं, वे दोनों भाई गुरुदेवके चरणोंकी सेवा करते हैं । गुरुदेवका हृदय पिघला । उन्होंने आशीर्वाद दिया । हृदय पिघलता है तभी आशीर्वाद मिलता है । कितने ही तो ऐसा समझते हैं कि महाराजके आगे रुपये भेंट धरूँ, जिससे महाराज समस्त आशीर्वाद देंगे । पैसेसे जो आशीर्वाद मिलता है वह जल्दी सफल होता नहीं । तुम सेवा करो । अपने माता-पिताकी सेवा करो, कोई साधु, ब्राह्मण, तपस्वी अथवा वृद्ध मिले, उसकी सेवा करो।

उसका हृदय पिघले, और हृदयमे जो आर्द्रता आये, वह तुमको आशीर्वादस्वरूप होगी।

माँगनेसे नही, आशीर्वाद तो बडोका हृदय प्रसन्न होकर पिघल जाय, ऐसी सेवा करनेंसे ही मिलता है। बडोंके पिघले हुएं हृदयमे-से जो शब्द निकलता है, वह सफल होता है। सान्दीपनि ऋषिके आश्रममें परमात्मा जीकृष्णका अध्ययन पूर्ण हुआ। श्रीकृष्णने गुरुदेवको गुरु-दक्षिणा देनेकी इच्छा प्रगट की। गुरुदेवने कहा—मुझे कोई जरूरत नही, ये वृक्ष फल देते हैं। सरिता जल दे देती है। फल और जलसे मुझे पूर्ण संतोष है। मुझे कोई भी अपेक्षा नही। तुम कुछ भी लेनेकी इच्छा रक्खे बिना विद्याका वंश बढाते रहना, यह ज्ञान जो मैंने तुमको दिया है वह सत्पात्रोंको देते रहना। यही मेरी गुरुदक्षिणा हैं परन्तु श्रीकृष्णने बहुत आग्रह किया तब गुरुपत्नीने सागरमे डूबकर मरणको प्राप्त हुए अपने पुत्रोंको वापिस लाकर देनेको कहा। श्रीकृष्ण, सागरके पास दौडे और उन्होने गुरु-पत्नीको उनके पुत्रोंको लाकर सौंप दिया। गुरुपत्नीका हृदय पिघल गया। उन्होने श्रीकृष्णको अनेक आशीर्वाद दिए—श्रीकृष्ण! तुम्हारी जय होगी। आशीर्वाद देती हूँ कि तुम्हारे घरमें लक्ष्मी, जिह्वामे सरस्वती और जगतमें कीर्ति निरन्तर बढ़ती ही रहेगी। जगद्गुरु श्रीकृष्णने भी अपने गुरु और गुरुपत्नीकी ऐसी सेवा की थी।

चक्रवर्ती सार्वभौम महाराजके बालक श्रीराम और लक्ष्मणजी, गुरुजीके चरणोकी सेवा करने लगे। आजकल कदाचित् कोई मास्टर लडकेसे कहे कि मेरे पैर बहुत दुखते हैं, तू थोडी सेवा करेगा? तो क्या कोई करेगा? आजकलके लड़के तो मास्टरके साथ झगड़ा भी करते हैं। गुरुके प्रति उनका भाव रहा ही नही।

गुरुदेव विश्वामित्रजीकी आंख जब लग गयी तो रामजी यहांसे उठे और उन्होने शयन किया। उस समय लक्ष्मणजीने श्रीरामचन्द्रजीकी सेवा की। उसके पश्चात् लक्ष्मणजी सो गए। सोते समय तो लक्ष्मणजीका क्रम सबसे अन्तिम था, परन्तु उठते समय सबसे पहले रहता। रामजी भी विश्वामित्रजी से पहले उठ जाते। सेवकका धर्म है कि स्वामी शयन करे, उसके पश्चात् सोये, और स्वामी जगे उससे पहले हो उठ जावे। पतिव्रता स्त्रीका भी धर्म है कि पतिदेवके शयन करनेके बाद सोवे और पतिदेव जगे उससे पहले ही उठ जावे। कितनी ही स्त्रियाँ तो चारपाईपर पडे-पड़े ही पतिदेवको हुक्म देती हैं, रात्रिमें मुझको जागरण हो गया था, एक बजा था। इसलिए तुम्ही उठकर आज अँगीठी सुलगा लो। ऐसा करनेसे उसको पाप लगता है। पतिदेव जाग जायें और स्त्री चारपाईपर सोती रहे, यह पाप है। स्त्रीका धर्म है, पति भोजन कर ले उसके बाद स्वयं भोजन करे, जो कुछ बचा हो, उसे प्रेमसे आरोगे। कितनी ही बहने इस प्रकारसे नहीं रहती। स्वयं बारह

बजे खा लेती हैं और पीछे पतिके लिए थाली ढँककर रख देती हैं। यह योग्य नहीं।

प्रातःकाल हुआ। स्नान किया। विश्वामित्रजी शालिग्राम भगवानकी सेवा करने बैठे। उन्होंने राम-लक्ष्मणको आज्ञा दी—बगियामें जाकर फुल-तुलसी ले आओ। कोई शूद्र फूल-तुलसी लावे वह अपवित्र है, अशुद्ध है ऐसा शास्त्रोंमें लिखा है।

समित्पुष्पफलादीनि ब्राह्मणः स्वयमाहरेत्।
शूद्राहृतैः अपवित्रैः कर्म कुर्वन् पतत्यध॥

ठाकुरजीके लिए तुम स्वयं तुलसी लेने जाओ। प्रथम तुलसी माँका वंदन करो। तुलसीजी राधाजीका अवतार हैं। तुलसीजीको नाखूनसे तोड़ो नहीं, नाखूनसे तोड़नेसे तो पाप लगता है। द्वादशीके दिन तुलसी तोड़ो नहीं। सायंकालके बाद तुलसीजीका स्पर्श करो नहीं। सायंकालके पश्चात् तुलसी लीला करने जाती है। तुलसी वृक्ष नही। श्रीगंगाजी, श्रीहनुमानजी, श्रीनर्मदाजी जल नही। गायमाता पशु नहीं। ब्रजरज मिट्टी नहीं। श्रीरामने तुलसीजीका वंदन किया।

तुलसि श्रीसखि शिवे पापहारिणिपुण्यदे।
नमस्ते नारदनुते नमो नारायणप्रिये॥
तुलस्यामृतजन्माऽसि सदा त्वं केशवप्रिये॥
केशवार्थं विचिन्वानि वरदा भव शोभने॥

उसी समय सीताजी सखियोंके साथ वहाँ पधारी। तुलसीदास महाराजने इस प्रसंगमें बहुत वर्णन किया है। श्रीजानकीजीका नित्यका नियम था कि वे पार्वती माताकी पूजा करती। घरमें तुलसीजीकी पूजा करती और मन्दिरमें जाकर पार्वतीजीकी पूजा करतीं। जो स्त्री, तुलसीजीको और पार्वतीजीकी पूजा करती हैं उनका सौभाग्य अखण्ड रहता है। उनके घर सत्पुत्रका जन्म होता है। श्रीसीताजी भी नित्य पार्वतीजीकी पूजा करतीं। बगीचेमें मन्दिर था और उसमे पार्वतीजी विराजती थी। श्रीसीताजीको श्रीरामजीके वहाँ दर्शन हुए। परमानन्द हुआ। श्रीसीताजीने पार्वतीमाँकी प्रार्थना की।

जय जय गिरिबरराज किशोरी। जय महेश मुख चन्द्र चकोरी॥
जय गजबदन षडानन माता। जगत जननि दामिनि दुति गाता॥

× ×

मोर मनोरथ जानहु नीकें। बसहु सदा उर पुर सबही कें।

हे माताजी ! मेरी इच्छा तुम जानती हो । श्रीराम मुझको पति-रूपमे प्राप्त हों । माताजीने आशीर्वाद दिया । श्रीराम-लक्ष्मण फूल-तुलसी लेकर गुरुदेवके पास पधारे । विश्वामित्रजीको पुष्प अर्पण करके वंदन किया, और कहा—गुरुदेव ! हम बगीचेमें गये थे, यहाँ जिन राजकन्याका स्वयंवर होना है, वह भी आयी थी और हमको देख रहीं थीं । राम बहुत सरल हैं । इनको कपट करना आता ही नही । तनिक भी छिपाया नहीं, गुरुदेवसे सब कुछ कह दिया । विश्वामित्रजीने कहा—बेटा ! मैं जानता हूँ कि कन्या वहाँ रोज पूजा करने आती हैं । इसलिए जानकर ही मैंने तुमको वहाँ भेजा था । जिससे सीताजीको भी पता पड जावे कि मेरा राम कितना सुन्दर है । श्रीसीताजीको पार्वतीमाँने आशीर्वाद दिया और श्रीराम-लक्ष्मणको गुरुदेवने आशीर्वाद दिया । जनक राजाकी आज्ञासे विशाल स्वयंवर-मंडप रचा गया । देश-देशके राजा लोग वहाँ आये थे । एक हजार वीर पुरुष शिव-धनुषको उठाकर मंडपमे ले आये । मंडपमें एक बड़ा अखाड़ा बनाया गया था । उस अखाड़ेमें शिव-धनुषको पधरा दिया गया ।

शतानन्दजी विश्वामित्रको बुला लाये । श्रीराम-लक्ष्मणको साथ लेकर विश्वामित्रजी मंडपमे पधारे ।

रंगभूमि आये दोउ भाई । असि सुधि सब पुरबासिन्ह पाई ।
× × ×
जिन्हकें रही भावना जैसी । प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी ॥

श्रीराम तो एक ही है परन्तु सभामे जिन लोगोकी जैसी भावना थी, उसीके अनुसार उनको रामजीके दर्शन हुए । जिनके मनमे जैसा भाव था, उसीके अनुसार सबको अलग-अलग दर्शन हुए । ईश्वर एक ही है परन्तु सभामे जो वड़े-वड़े राजा वैठे थे, उनको लगा कि श्रीरामचन्द्र महावीर है । सभामे जो ऋषि वैठे थे उनको लगा कि ये तो साक्षात् परमात्मा है । जिन परब्रह्मका हम चिंतन करते हैं वे ही ये श्रीराम हैं । स्त्रियोको कामदेव लगे । छिपे वेषमे आये हुए राक्षसोको वे काल जैसे जान पड़े । जनक महाराजको बहुत आनन्द हुआ । उन्होने स्वागत किया । सुन्दर आसनपर उनको पधराया ।

राजत राज समाज महुँ, कौसलराज किसोर ।
सुन्दर स्यामल गौर तन, बिस्व बिलोचन चोर ॥

रामजीने एक-एकका मन खींच लिया, सबका आकर्षण किया । राजा जनकने मंत्रीको आज्ञा दी कि अब तुम शिव-धनुष, और मेरी प्रतिज्ञाकी घोषणा करो । यह भगवान शंकरका धनुष है, जो उनको परशुरामजीने दिया था । इस धनुषसे परशुरामजीने इक्कीस बार पृथ्वीको क्षत्रिय-रहित कर दिया । उसके बाद उन्होने यह धनुष हमारे

घरमें रखा था। हजार वीर पुरुष बहुत जोर करे तो ही इस धनुषको उठा सकते हैं। मेरी कन्या सीता तीन वर्षकी थी, तबसे वह इस धनुषको घोड़ा बनाकर खेलती थी।

सोइ पुरारि कोदण्ड कठोरा। राज समाजु आजु जोइ तोरा।।
त्रिभुवन जय समेत वैदेही। बिनहिं विचार वरइ हठि तेही।।

मैंने ऐसी प्रतिज्ञा की है कि जो वीर राजकुमार धनुषकी प्रत्यंचा चढ़ावेगा, उसको मैं राजकुमारीका दान करूँगा, आधा राज्य दूँगा। मंत्रीजी! तुम खड़े होकर यह घोषणा करो।

मंत्रीजी खड़े हुये और बोलना आरम्भ करनेवाले ही थे कि उसी समय आकाशमें-से रावण सीधा मंडपमें उतरा। रावण उस समय आकाश-मार्गसे चला जा रहा था। रावणको नजर पड़ी। उसने नौकरसे पूछा—इतना बड़ा मंडप किसका बना है? यह क्या है? सेवकने कहा—महाराज! मैंने ऐसा सुना है कि जनकपुरीमें श्रीजानकीजीका स्वयंवर है। देश-देशके राजा एकत्रित हुए हैं। रावणने पूछा कि अपने यहाँ पत्रिका आयी है कि नही? सेवकने कहा, महाराज! अपने घर आमंत्रण नही। रावणको बहुत बुरा लगा कि देश-देशके राजा एकत्रित हो और मुझको आमत्रण भी नही? क्या मैं राजा नहीं? राजा जनकने मेरा अपमान किया है।

रावणको बहुत क्रोध आया और वह सीधा मंडपमें ही उतर आया। राजा जनकसे कहा—मैं लड़ने आया हूँ। मेरा तुमने अपमान किया है। बिना कारण झगड़ा करे, वह रावण। राजा जनक घबराये। कन्याके लग्नमें यह पाप कहाँसे आ गया? ऐसा मूर्ख कि बगैर आमत्रण ही टपक पड़ा।

राजा जनकने हाथ जोड़े, परन्तु रावण माना नहीं। क्रोधमें बोलने लगा कि मैं लड़ने आया हूँ। मेरा तूने अपमान किया है। मुझको क्यों आमत्रण दिया नहीं? मैं राजा नहीं?

राजा जनक हाथ जोड़कर बोले—आप तो सबसे बड़े राजा हो, श्रेष्ठ हो, बलवान हो। मैंने तो मत्रीजीसे कहा था कि सबको आमंत्रण भिजवाना। तुमको आमंत्रण न गया हो तो वह मेरी भूल नहीं। मैंने मंत्रीजीको सूचना दे दी थी।

रावण मंत्रीको धमकाने लगा—मेरा नाम तूने सुना है न? तो क्यों मेरे घर पत्रिका नहीं भेजी? मंत्रीने हाथ जोड़कर कहा—महाराज! पत्रिका लिखनेका काम मेरा, पत्रिका भेजनेका काम मेरा परन्तु एक-एकके घर पहुँचानेके लिए तो मैं जाता नहीं। ये सिपाही किसी समय गलती करते है। किसी ठिकाने जाते हैं, किसी ठिकाने जाते

नही। इनके मनमे आवे वैसा करते हैं। मैंने तो तुम्हारे नामकी पत्रिका लिखी थी। मैं क्या तुमको भूल सकता हूँ? तुम तो सबसे श्रेष्ठ हो, वीर हो। यह मेरी भूल नही, सिपाहीकी भूल है।

रावणने कहा, बुलाओ सिपाहीको। कौन था वह? सिपाही घबराया कि मंत्रीजीने तो मेरे माथे फेंक दिया। परन्तु मंत्रीजी जानते थे कि सिपाही बहुत बुद्धिमान है। रावणको कुछ बनावेगा, ऐसा लगता है। सिपाही बेचारा माथा खुजलाता हुआ आया। वह विचारता था कि कुछ तो जवाब देना ही पड़ेगा। क्या जवाब दूँ? रावण सिपाहीको धमकाने लगा। मंत्रीजी कहते हैं कि इन्होंने पत्रिका दी थी फिर तू लेकर क्यों नही आया? सिपाहीने कहा—महाराज! मैं तो पहले ही तुम्हारे यहाँ दे आया था। रावण बोला कि मुझको पत्रिका मिली नही। तू किसको दे आया?

सिपाहीने कहा—महाराज! ऐसा हुआ कि मैं समुद्र किनारे आया। वहाँ बहुत लोग तुम्हारी प्रशसा करते थे कि रावण महाराज तो ऐसे वीर हैं कि उन्होने इन्द्रादि देवोंका भी पराभव किया है। सभी देवता लंकामे रावण महाराजके नौकर बनकर सेवा करते हैं। मैंने ऐसा सुन रखा था कि समुद्रके पार लकामें सामने किनारेपर आप विराजते हो। मैं साधारण मनुष्य समुद्रको पार करके किस प्रकार आ सकता था? परन्तु बहुतसे देवता तुम्हारी सेवामे हैं, ऐसा मैंने सुना था इसलिए मुझको लगा कि यह समुद्र भी तुम्हारा नौकर होगा। इसलिए मैंने समुद्रसे कहा कि यह पत्रिका तुमको देता हूँ, इसे रावण महाराजको दे देना। पत्रिका समुद्रमे डालकर वापिस आ गया।

रावणने सिपाहीसे कहा—अरे, तुझमे कुछ अक्ल है कि नही? तू पानीमें पत्रिका फेंक आया? सिपाहीने कहा, महाराज! यह मेरी भूल हुई परन्तु अब आपको लड़ना हो तो जाकर समुद्रके साथ लड़ो।

रावणने राजा जनकसे कहा—जो कुछ हुआ सो हुआ, अब तो मैं यहाँ आ ही गया हूँ। तुम्हारी कन्या शीघ्र बाहर आवे और मुझे विजयमाला अर्पण करे।

राजा जनकने कहा—महाराज! राजकन्या बाहर किस प्रकार आवेगी? ऐसा निश्चय किया गया है कि कोई इस धनुषको उठावे, प्रत्यचा चढ़ावे, उसके बाद ही राजकन्या बाहर आवेगी। उससे पहले वह बाहर नही आवेगी।

अभिमानी रावण कहने लगा कि तुम-लोग अभी रावण महाराजको पहचानते ही नही। तुम जानते हो। शकर-पार्वती कैलाशपर बैठे थे। उस समय इस दादाने सम्पूर्ण कैलाश पर्वतको उठा लिया था। मैं तो कैलाश पर्वत उठा सकता हूँ, ऐसा वीर हूँ। इस धनुषमें तो है हो क्या? पुराना धनुष है। एक धक्का मारूँ तो टूट जायेगा।

रावण अभिमानमें बोलने लगा, मनमें आया सो बकने लगा। माता पार्वतीजीको यह ठीक नहीं लगा। उन्होंने शिवगणको आज्ञा की कि राजकन्याने मेरी बहुत सेवा की है। मेरी ऐसी इच्छा है कि सीताजी रामजीको ही विजयमाला अर्पण करें और रावणकी किरकिरी हो। रावणको बहुत अभिमान हो गया है। वह मनचाही बकवास कर रहा है। रावण धनुषको न उठा सके, ऐसा उपाय करो। माताजीकी आज्ञा हुई कि तुरन्त तीन सौ शिवगण गुप्त रूपसे उस शिवधनुषके ऊपर चढ़ बैठे। रावण था तो बड़ा बलिष्ठ। वह महान् वीर था। उसके केवल दो ही हाथ नहीं थे! पूरे बीस हाथ थे। वह वीर तो निश्चय था। तीन सौ शिवगण धनुषके ऊपर बैठे थे, फिर भी इसने उन्नीस हाथोंसे धनुष उठाया। बीसवाँ हाथ पीठपर रखा। अभिमानी रावण सभामें चारों ओर देखने लगा। उसको ऐसा लगा कि मैंने कितनी अच्छी प्रकार धनुष उठाया। इनमेंसे क्या कोई राजा धनुष उठा सका? परन्तु इस सभाके लोग कितने मूर्ख हैं? इस दादाने वह उठा लिया फिर भी रावण महाराजकी जय तक कोई बोलता नहीं। वह ऐसा मूर्ख था कि अपनी जय स्वयं ही बोलने लगा। 'शाबाश! रावण महाराज की जय।'

आत्मप्रशंसा ही, मरण है। इससे पुण्यका नाश होता है। शिवगणोंने जोरसे धनुष जो दबाया तो रावणकी छातीके ऊपर पड़ा। रावण रक्तकी उल्टी करने लगा, चक्कर आने लगे। 'मरा···मरा···मुझको कोई बचाओ, बचाओ···'रावणको मूर्छा आ गयी। लोगोंको बहुत रुलाता था सो आज इसकी बहुत ही फजीहत हुई। राजा जनकने सेवकोंको आज्ञा की कि क्या देखते हो, ब्राह्मणका छोकरा है। मर जायेगा तो अनर्थ होगा। मेरी कन्याकी लग्नमें विघ्न आवेगा। इसकी छातीके ऊपरसे धनुष खीच निकालो। हजार वीर पुरुष कूद पड़े, दौड़ते गये। रावणकी छातीके ऊपरसे धनुष खीच लिया। रावण बहुत अभिमानी था। उसको ऐसा लगा कि मेरा अपमान हुआ है। अब मैं इस सभामें बैठूंगा ही नहीं। रावण वहाँसे चला गया।

रावणके चले जानेपर स्वयंवर-मंडपमें जो राजा थे, वे सावधान हो गये। इन्होंने ऐसा विचार किया कि रावण घबरा गया। मूर्छा आ गयी परन्तु आध घण्टेके बाद होशमें आकरके यहाँसे चलता-चलता सीधा अपने घर गया। हम धनुष उठाने जाएँगे, और कदाचित् वह हमारी छातीपर गिर पड़ा तो हमारा चलकर जाना भी असंभव है। चार जने कंधे पर चढ़ाकर ले जाएँगे। हमारा वहाँ सब कुछ हो सकता है और अन्तिम शव-यात्रा ही निकलेगी। रावण जैसे महावीरकी ऐसी दुर्दशा हुई! यह भगवान शंकरका धनुष है' यह हमारा काम नहीं। रावणकी फजीहतके बाद सभी होशियार हो गए, बातें करने लगे—हम तो सीताजीका विवाह देखनेके लिए आए हुए है। ये हमारी बहिन हैं, पुत्री है। सबको विश्वास हो गया कि यह धनुष भयंकर है। सभी सभा स्तब्ध हो गई।

अब क्या होता है, इसे देखनेके लिए सभी आतुर हो गए। अन्त समय आ गया है, ऐसा जानकर विश्वामित्रजीने रघुनाथजीको आज्ञा दी—अब उठो।

उठहु राम भंजहु भव चापा। मेटहु तात जनक परितापा॥

गुरुदेवकी आज्ञा हुई। रामजी उठकर खड़े हुए। गुरुदेवका वंदन किया। गुरुदेवने आशीर्वाद दिया। विश्वामित्रजी भगवान शंकरको मनाने लगे—भगवन्! आज तक तुमको अभिषेक किए बिना कोई दिवस मैंने पानी पिया नहीं। मैंने आपसे कभी कुछ माँगा नहीं। आज माँगता हूँ। मेरा राम तुम्हारा धनुष उठाने जाता है। इस धनुषमें जो कुछ भार है, जड़ता है, वह उठाकर ये सब राजा बैठे है, इनके ऊपर डाल दो। मेरे रामके लिये धनुषको हल्का कर दो।

करहु चाप गुरुता अति थोरी।

श्रीरामचन्द्रजी धीरे-धीरे धनुषके पास आये। मर्यादापुरुषोत्तमकी प्रत्येक लीलामें मर्यादा है। रामजीने मस्तक नवाया। राजा जनकको आश्चर्य हुआ कि मेरे धनुषको वंदन करनेकी कुछ जरूरत नहीं है। श्रीराम तो परमात्मा हैं परन्तु मुझको कितना मान देते हैं। धनुषको वंदन करके उन्होंने अनायास उसे उठाया। जिस प्रकार बिजली चमकती है उसी प्रकार धनुष चमका। ऐसा प्रकाश निकला कि लोगोंकी आँखोमे चकाचौंध आ गई। शब्द हुआ, धनुषके दो टुकडे हो गये। प्रभुने किस रीतिसे उठाया, किस रीतिसे नवाया यह कोई न देख सका। अति आनन्द हुआ।

यो लोकवीरसमितौ धनुरैशमुग्रं
सीतास्वयंवर गृहे त्रिशतोपनीतम्।
आदाय बालगजलील इवेक्षुयष्टिं
सज्जीकृतं नृप विकृष्य बभञ्ज मध्ये॥

✻✻✻✻✻✻✻✻✻

(३६)

श्रीराम-विवाह

विश्वामित्रजीने राजा जनकसे कहा कि अब श्रीजानकीजी पधारें, मेरे रामको विजयमाला अर्पण करें। श्रीसीताजी पधारीं। श्रीसीताजीके सौन्दर्य और श्रृंगारका वर्णन कौन कर सकता है ? साक्षात् लक्ष्मीजीका स्वरूप था। आठ सखियाँ दाहिनी ओर थीं, आठ सखियाँ बायी ओर थीं। सब सखी मंगलगीत गा रही थी। श्रीजानकीजीके हाथमें सुन्दर विजयमाला थी। सीताजी धीरे-धीरे पधारी। श्रीरामचन्द्रजीने विचार किया कि यह कन्या मुझको विजयमाला अर्पण करने आती है। गुरुदेवकी आज्ञा हुई, इससे मैंने धनुष भंग किया परन्तु अपने माता-पिताकी आज्ञा बिना मुझे लग्न करना नहीं। मैं स्वतंत्र नहीं। मैं अपने माता-पिताके अधीन हूँ। सीताजी बहुत सुन्दर हैं, इससे क्या ? मेरी माँ कौशल्याजी मुझको आज्ञा देवे तो ही मैं लग्न करूँ। रामजी आधुनिक नहीं हैं, हाँ! पुराने जमानेके हैं। आजकलके छोकरे तो माँ-बापको तनिक भी पूछते नहीं। यह ऐसा समझते है कि हम बहुत होशियार हो गये हैं। रामजीने निश्चय किया कि माँकी आज्ञा नहीं, इसलिये विजयमाला पहननेको माथा नहीं नवाऊँ। श्रीसीताजी थोड़ी ठिगनी थी। श्रीरामजी माथा नवावें तो ही सीताजी विजयमाला अर्पण कर सके। श्रीजानकीजी रामजीके पास पधारी। उन्होंने दोनों हाथ ऊँचे किये। श्रीजानकीजीके हाथोंमें सुन्दर रत्नजड़ित कंकण थे। उनमें श्रीरामजीका प्रतिबिम्ब दीखा। सीताजी दर्शनमें तन्मय हुयीं। रामजी अभी तक माथा नवाते नहीं थे। विश्वामित्रजीने यह देखा और दौड़ते गये। उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीके कानमें कहा कि मैं अयोध्यामें-से निकला था, उस समय कौशल्या-जीके साथ सब बात हो गई है। दशरथ महाराजकी बहुत इच्छा है कि अब तुम्हारा विवाह हो जावे।

रामजीने पूछा—गुरुजी ! लग्न हो, ऐसी तो उनकी इच्छा है परन्तु इसी कन्याके साथ लग्न हो, ऐसी इच्छा है ? विश्वामित्रजीने कहा—हाँ, ऐसा ही है। कौशल्या माँने श्रीसीताजीकी बहुत प्रशंसा सुनी है। उनकी बहुत इच्छा है। बेटा ! मैं तुमको ठीक-ठीक कहता हूँ। तुम्हारी माँ राजी होंगी। माँकी आज्ञा है। रामजीने कहा—परन्तु मेरा लक्ष्मण कुँवारा है। इसका विवाह पहले करो।

श्रीराम छोटे भाईको भूले नहीं। विश्वामित्रजीको आनन्द हुआ कि जगत मेरे रामजीकी जो प्रशंसा करता है, वह कम है। राजा जनकके यहाँ उर्मिला नामकी दूसरी कन्या थी। विश्वामित्रजीने रामजीसे कहा—लक्ष्मणका विवाह उर्मिलाके साथ करा

दूंगा। गुरुदेवने जब ऐसा कहा तब प्रभुने माथा नवाया। सखियोने श्रीसीताजीको दूसरा संकेत किया कि अब माथा नवा हुआ है, जल्दी करो। सीताजी तब विजयमाला अर्पण करती हैं। उसी समय—

गावहिं छबि अवलोकि सहेली। सियँ जयमाल राम उर मेली ।।

जनकपुरीके स्त्री-पुरुष न्योछावर करने लगे। श्रीसीतारामजीके दर्शन करते-करते किसीका मन थकता नही था। यह मनोहर जोडी कैसी सुन्दर दिखाई देती है, इनको किसीकी नजर न लग जाय। ये सदा-सर्वदा आनन्दमें बने रहे।

पीछे विश्वामित्रजीकी आज्ञा हुई। उस समय स्वर्ण-अक्षरोमे कुंकुम पत्रिका लिखी गयी। वह सिपाहियोंको दी गई और उनसे कहा गया कि अति शीघ्रताके मार्गसे घोडोको दौड़ाते हुए अयोध्या जाओ। दशरथ महाराजको वंदन करके प्रार्थना करो कि बारात लेकर अयोध्याकी प्रजाके साथ जल्दी पधारे। रामजीने उन सिपाहियोसे कहा—अयोध्यामे मेरे पूज्य पिताजीके चरणोमें वदन कहना। मेरी मांसे कहना कि तुम्हारे आशीर्वादसे मैं खूब आनन्दमे हूँ। मेरे माता-पिताके चरणोमे प्रणाम कहना।

सिपाहीकी आंखे भीनी हो गयी। वह दौड़कर अयोध्या पहुँचा। दशरथ महाराजाका दरबार भरा हुआ था। सिपाहीने जनक महाराजकी पत्रिका दी। दशरथ महाराजको बहुत आनन्द हुआ।

बारि बिलोचन बाँचत पाती। पुलक गात आई भरि छाती ॥

दशरथ महाराज हर्षसे पुलकित हो गये। वशिष्ठ गुरुजीसे प्रार्थना की। रानियोको भी बहुत आनन्द हुआ। बारात ले जानेकी बहुत तैयारी होने लगी। तुलसीदास महाराजने बहुत वर्णन किया है। प्रातःकालमे वशिष्ठ आदिके साथ दशरथ महाराजने जनकपुरी जानेके लिए प्रयाण किया। सीताजीने अष्टमहासिद्धियोको आज्ञा की कि मार्गमें अयोध्याके लोगोका तुम भली प्रकार स्वागत करो। उन्होने मार्गमें ऐसा स्वागत किया कि जिसको जो रुचे, वही तो भोजन मिला, शयन करनेके लिये सुन्दर शैया मिली, नाना-प्रकारके वस्त्र मिले, सबको इतना सुख मिला कि सभी अपने-अपने घरोको भूल गये।

बीच बीच बर बास बनाए। सुरपुर सरिस संपदा छाये ।।
असन सयन बर बसन सुहाए। पावहिं सब निज निज मन भाये ॥
निज नूतन सुख लखि अनुकूले। सकल बरातिन्ह मन्दिर भूले ॥

श्रीसीताजीका यह दिव्य ऐश्वर्य है।

जनकपुरीमें राजा जनकने बारातका सुन्दर स्वागत किया। विश्वामित्रजीके साथ श्रीराम-लक्ष्मण दशरथ महाराजको मिले। दोनों भाइयोंने पिताजीको साष्टाङ्ग प्रणाम किया।

रामायणमें लिखा है कि बारात जनकपुरीमे आई धनतेरसके दिन, और लग्न हुई मार्गशीर्ष सुदी पंचमीके दिन और विदाई मिली रगपंचमीके वसन्तोत्सव होनेके बाद। ऐसा नहीं कि आज आओ और कल चले जाओ।

नारदजीने लग्नका मुहूर्त निकाला—मार्गशीर्ष, शुक्ल पक्ष, पंचमी-तिथि, गुरुवार और गोरज मुहूर्त। श्रीरामजीका वर-घोड़ा निकला। कामदेव स्वयं घोड़ा बनकर आया। श्रीरामचन्द्रजी घोड़ेके ऊपर विराजे। साधारण जीव जब लग्न करने जाता है तब काम उसकी छातीपर चढ़कर बैठता है परन्तु श्रीराम जब लग्न करने गये तब कामकी छातीपर चढ़कर बैठे।

कामोदाता कामः प्रतिग्रहिता कामः समुद्रमातिसा कामेन त्वांप्रतिगृह्णामि।

लग्न निष्काम होनेके लिए है, श्रीराम पूर्ण निष्काम हैं। श्रीरामका सुन्दर वर-घोड़ा निकला। श्रीराम सहज सुन्दर हैं, अतिशय सुन्दर हैं।

मनोभिरामं नयनाभिरामं वचोऽभिरामं श्रवणाभिरामम्।
सदाभिरामं सतताभिरामं वन्दे सदा दाशरथिं च रामम्॥

रामजीका स्वरूप अतिसुन्दर है। रामजी मनमोहक हैं। रामजीका सौन्दर्य नेत्रोंको आनन्द देनेवाला है। परमात्माकी सुन्दरताका वर्णन करते समय वाणीको भी आनन्द होता है। यह वर्णन सुनते समय कानोंको तृप्ति नही होती। रामजी सदा सुन्दर हैं, नित्य सुन्दर हैं। श्रीराम सहज सुन्दर हैं। शृंगार न करें तो भी श्रीराम बहुत सुन्दर लगते हैं। रामजी वनमें पधारे उस समय क्या शृंगार था? वल्कल वस्त्र पहने हुए थे, मस्तकके ऊपर जटा धारण किए हुए थे, फिर भी श्रीराम ऐसे सुन्दर लगते थे कि शूर्पणखा की इच्छा हुई कि श्रीराम मेरे पति हों। शूर्पणखा राक्षसी थी, उसपर भी उसकी रामजीके साथ लग्न करनेकी इच्छा हुई। रामजी शृंगार न करे तो भी सुन्दर लगते हैं। फिर आज तो रामजीने वरराजाका सुन्दर शृंगार किया है। इस सुन्दरताका वर्णन कौन कर सकता है?

श्याम सरीरु सुभायँ सुहावन। सोभा कोटि मनोज लजावन।
कल किंकिनि कटि सूत्र मनोहर। बाहु बिसाल बिभूषन सुन्दर॥

नयन कमल कल कुंडल काना । बदनु सकल सौन्दर्य निधाना ।।
सुन्दर भृकुटि मनोहर नासा । भाल तिलकु रुचिरता निवासा ।।

× × ×

सरद बिमल बिधु बदनु सुहावन । नयन नवल राजीव लजावन ।।
सकल अलौकिक सुन्दरताई । कहि न जाइ मनहीं मन भाई ।।

× × ×

निरखि राम छबि बिधि हरषाने । आठइ नयन जानि पछताने ।।

सीताजीकी माता सुनयना रानीने आरती उतारी। श्रीरामजीका मंगलमय स्वरूप देखते ही सुनयना रानीको आनन्द हुआ कि पुत्री बहुत भाग्यशाली है ।

जो सुखु भा सिय मातु मन देखि राम बर बेषु ।
सो न सकहिं कहि कलप सत सहस शारदा सेषु ।।

श्रीरामजीके दर्शन करते समय रानीके मनमे थोडा ऐसा भाव जगा कि किसी जन्ममे ऐसा वर मिले तो मैं भी भाग्यशाली बनूं। ये कितने सुन्दर हैं। श्रीराम मर्यादा-पुरुषोत्तम हैं। इनके विषयमें मैं सास हूं और ये जमाई हैं, ऐसा लौकिक भाव रखना नही । यह जीव, ईश्वरके साथ परिणय करे तो ही सुखी होता है । कोई स्त्रीके साथ अथवा पुरुषके साथ लग्न करेनेसे थोड़ा सुख मिलता है, परन्तु अन्दरकी शान्ति मिलती नहीं। जो परमात्माके साथ परिणय करते हैं उनको ही शान्ति मिलती है । सुनयना रानीको ऐसी ही भावना जागृत हुई थी ।

सुन्दर सुवर्ण-सिहासनमे श्रीरामचन्द्रजीको विराजमान किया। विश्वामित्रजीने जैसा निश्चित किया हुआ था उसके अनुसार लक्ष्मणजी, भरतजी और शत्रुघ्नजीकी लग्न भी साथ ही साथ की गयी थी । लक्ष्मणजीकी उर्मिलाके साथ, भरतजीकी माण्डवीके साथ और शत्रुघ्नजीकी श्रुतिकीर्तिके साथ लग्न निश्चित हुई ।

मधुपर्क-विधिसे पूजा प्रारम्भ हुयी । पश्चात् तो दिव्य शृंगार करके श्रीसीताजीको वहाँ विराजमान किया। वशिष्ठ ऋषिने अन्तःपट किया। भाग्यशाली वैष्णव श्रीसीतारामजीके दर्शन करने लगे। वशिष्ठजीने मंगलाष्टकका प्रारम्भ किया ।

रामो राजमणिः सदाविजयते रामं रमेशं भजे ।
रामेणाभिहता निशाचरचमू रामाय तस्मै नमः ।।
रामान्नास्ति परायणं परतरं रामस्य दासोऽस्म्यहं ।
रामेचित्तलयःसदा भवतु मे भो राम मामुद्धर ।।

उसके बाद शतानन्दजीने मंगलाष्टक बोला ।

ऐश्वर्यं यदपाङ्गसंश्रयमिदं भोग्यं दिगीशैर्जग-
च्चित्रं चाखिलमद्भुतं शुभगुणा वात्सल्यसीमाचया ।
विद्युत्पुञ्जसमानकान्तिरमितक्षान्तिः सुपद्मेक्षणा
दद्यान्नोऽखिलसम्पदो जनकजा रामप्रिया सानिशम् ॥

अनेक मंगलाष्टक हुए । लक्ष्मण-उर्मिलाकी लग्नविधि भी साथ ही थी । उन ब्राह्मणोंने मंगलाष्टक बोले ।

सौमित्रं रघुनायकस्य चरणद्वंद्वेक्षणं श्यामलम्
बिभ्रंतं स्वकरेण रामशिरसि छत्रंविचित्रं वरम् ।
बिभ्रंतं रघुनायकस्य सुमहत्कोदंडबाणासने
तं वन्दे कमलेक्षणं जनकजावाक्ये सदा तत्परम् ॥

परमानन्द प्रगट हुआ है । पीछे वैदिक विधिसे कन्यादान किया गया । तीन पीढ़ीके पुरुषोंके नामका उच्चारण किया गया ।

रघुवरवर्ण प्रपौत्राय राज्ञः अजवर्णपौत्राय दशरथवर्ण पुत्राय रामचन्द्रनाम वराय मम कन्यां सहधर्मचरणाय तुभ्यमहं सम्प्रददे ।

श्रीसीताजीका हाथ रामजीके हाथमें समर्पण किया । श्रीरामचन्द्रजीसे राजा जनकने कहा—मैं कन्यादान करता हूँ । इस कन्यादानको तुम स्वीकार करो । प्रतिगृह्य-ताम् । श्रीरामजी से कहा कि तुम बोलो, प्रतिगृह्णामि । मैंने यह कन्यादान लिया । रामजी तो बहुत सरल हैं । उन्होंने कहा प्रतिगृह्णामि ।

उर्मिलाका हाथ लक्ष्मणजीके हाथमें दिया और कहा-प्रतिगृह्यताम् । अब तुम बोलो प्रतिगृह्णामि । लक्ष्मणजीने बोलने की मना कर दी । उन्होंने विचार किया कि मंगलाष्टक हो गया । कन्याका हाथ मेरे हाथमें आ गया । अब मैं थोड़ा हठ करूँ तो कोई बाधा नही ।

पुरोहितने पूछा—बोलने की मनाही क्यों कर रहे हो ?

लक्ष्मणजीने कहा—हम क्षत्रिय लोग 'प्रतिगृह्यताम्' बोला करते हैं । प्रतिगृह्णामि, ब्राह्मण बोलते हैं जो दान लेते हैं, हम दान किया करते हैं, दान लेते नहीं । पुरोहितने कहा—तुम्हारे बड़े भाईने भी तो कहा है ।

लक्ष्मणने कहा—बड़े भाई तो भोले हैं । वे भले ही बोलें । मैं कोई उनके जैसा भोला नहीं । उनको तो तुम जैसा कहोगे वैसा ही वे करेंगे । मैं प्रतिगृह्णामि नहीं बोलूँगा । क्षत्रियको ऐसा बोलनेका अधिकार नहीं । हम क्षत्रिय राजा दान लेते नही ।

सभीको खबर मिली कि लक्ष्मणजी मानते नही। तब विश्वामित्रजी आये, वशिष्ठजी आए। वशिष्ठजीने कहा कि एक बार लग्नमे तो ऐसा बोलना ही पड़ता है। लक्ष्मणजीने कहा, गुरुजी! अन्य सब कुछ बोल लूंगा, परन्तु यह प्रतिगृह्णामि नहीं बोलूंगा। पीछे तो विश्वामित्रजीने लक्ष्मणजीके कानमे कहा—लक्ष्मण! तुम प्रतिगृह्णामि नही बोलोगे? लक्ष्मणने कहा—नही। तब फिर विश्वामित्रजीने धीरेसे कहा—याद रखना, तुम प्रतिगृह्णामि नही बोलोगे तो इस कन्याकी लग्न दूसरे राजकुमारके साथ हो जायेगी। फिर…पीछे…तू रह जायेगा।

लक्ष्मणजीने कहा—महाराज! लग्न तो हो गई। मंगलाष्टक तो हो गया। विश्वामित्रजीने कहा—मंगलाष्टक हो गया इससे क्या? प्रतिगृह्णामि नही बोलोगे तब तक लग्न पक्की नही गिनी जायेगी। तुमको बोलना ही पड़ेगा।

लक्ष्मणजीने कहा—गुरुजी! यदि ऐसा हो तो मुझे कोई बाधा नही, मै बोलता हूँ। पीछे लक्ष्मणजीने प्रतिगृह्णामि ऐसा कहा। सबको आनन्द हुआ। माण्डवीकी लग्न भरतजीके साथ और श्रुतिकीर्तिकी लग्न शत्रुघ्नजीके साथ हो गयी।

उसके पश्चात् पंगत हुई। तुलसीदास महाराजने इसका बहुत वर्णन किया है। जनकपुरीमे ऐसा रिवाज था कि जमाईराज जीमने बैठें, उस समय कन्या पक्षकी स्त्रियाँ ढोलक बजावें और जमाई सुने। इस प्रकार गालियाँ देकर गावे। श्रीरामचन्द्रजी भोजन करने बैठे, उस समय जनकपुरीकी स्त्रियाँ बाते करने लगी।

एक स्त्रीने कहा—अरी सखी! मै तुमको क्या कहूँ? ये राम तो निश्चय ही भाग्यशाली हैं कि हमारी कन्या श्रीसीताजीके साथ इनकी लग्न हुई। मुझे ऐसा लगता है कि रामजीने कोई धनुष तोडा ही नहीं। यह तो रावणने तोड़ा था परन्तु वह मरा अभागा था कि उसे एकदम मूर्च्छा आ गयी, और इन भाईने हाथ लगाया, इससे टूट गया।

दूसरी स्त्री बोली, अरी सखी! मैंने तो सुना है कि दशरथ महाराजकी वृद्धावस्था आ गयी और पुत्र-संतान कोई मिली नही इससे वे बड़े दुःखी हुए। पीछे ब्राह्मणोंको बुलाया, कुछ मंत्र-जाप कराया, यज्ञ कराया और रानियोको कोई खीर खिलायी, उस खीरको खानेसे ये बालक हुये हैं। दशरथ महाराजको रानियोको खीर खिलवानेकी क्या जरूरत थी? और खीर खाकर उत्पन्न हुए बालकोमें क्या शक्ति होगी? यह तो ठीक है कि राम भाग्यशाली हैं कि धनुष तोड़ा रावणने और उसका श्रेय भोगते हैं ये रामजी। तीसरी स्त्रीने कहा—इससे तो अयोध्याकी स्त्रियाँ बहुत जबर्दस्त हैं। खीर खातीं हैं, बालकों को जन्म देती हैं।

रामजीने स्मित हास्य किया। कितने प्रेमसे बोलती हैं परन्तु लक्ष्मणजीको यह सुहाया नहीं। उनको खीझ चढ़ी कि मेरी माता कौशल्याजीके लिए ये लोग ऐसा बोलती हैं। रामजी लक्ष्मणजीको समझाने लगे—तू क्यों खीझता है ? ये तो परिहास करती हैं। तू क्रोध मत कर। लक्ष्मणजीने कहा—परन्तु बड़े भाई ! इन लोगोंके घरमें ज्ञानकी कमी है। विनोद भी विवेकसे करना चाहिये। ये तो मनमें आवे सो ही बोलती हैं। लक्ष्मणजीने खाते-खाते जवाब दिया कि अयोध्या की स्त्रियाँ तो बहुत अच्छी है कि खीर खाकर बालकोंको जन्म देती हैं, परन्तु ये जनकपुरकी स्त्रियाँ ऐसी करामाती हैं कि इनको खीर खानेकी भी जरूरत पड़ती नहीं, धरती फटनेसे ही छोकरियाँ जन्मती हैं। तुम्हारे यहाँ तो ऐसा रिवाज है।

लक्ष्मणजीके ऐसा बोलनेसे सबको ऐसा विश्वास हो गया कि बड़े भाई थोड़े भोले लगते हैं, परन्तु ये बहुत प्रवल हैं। हमारे यहाँ-की भी इन्होंने सब बात खुलासा कर दी।

श्रीएकनाथ महाराजने रंग पंचमीके उत्सवका बहुत वर्णन किया है। श्रीसीता-रामजी अन्तःपुरमें खेल रहे थे। माताजीने हाथमें दो रत्न लेकर रामजीसे पूछा—एकी कि द्वैकी ? मेरे हाथमें एक रत्न है कि दो ? रामजीको वशिष्ठने उपदेश दिया था कि जगतमें केवल एक परमात्मा ही सत्य है। ईश्वरके विना जो कुछ भासता है वह सब मिथ्या है। एक ही परमात्मा अनेक रूपसे विराजे हुए हैं। मायासे अनेकता भासती हैं। श्रीराम तो ब्रह्म रूप हैं। रामजीको द्वैत दिखाई देता ही नही। दो दीखते ही नही। इसलिए रामजीने कहा—एको। माताजीके हाथमें दो रत्न निकले। तब सखियाँ हँसने लगीं और रामजीसे कहा—आज तक तो तुम अकेले थे परन्तु अब अकेले नही। अब तो लग्न हो गई है। अब श्रीसीताजी श्रीरामके साथ विराजती हैं।

विनोदमें भी कोई रामजींका अपमान करे, वह लक्ष्मणजी सह सकते नहीं। जहाँ श्रीराम हैं, वहाँ लक्ष्मणजी तो हैं ही। लक्ष्मणजीको लगा कि मेरे राम बहुत भोले हैं। ये लोग इस कारण हँसते हैं—लक्ष्मणजीने सखियोंको जवाब दिया—मेरे श्रीराम जो बोलते हैं, उसका तुम कोई अर्थ समझतीं नहीं। सखियोने पूछा—क्या अर्थ समझते नहीं ? अब तो लग्न हुई है इसलिए अकेले नहीं।

लक्ष्मणजीने कहा—रामजीने जो बोला है उसका अर्थ ऐसा है कि सीता और राम दोनों एक ही हैं। लग्न हुए पीछे दो नहीं, एक ही है। श्रीसीताराम अभिन्न है। आज तक मैं अपने बड़े भाईकी सेवा करता था, अब मैं रोज भाभीकी भी सेवा करूंगा, लक्ष्मणजीने श्रीसीताजीके चरणोंमें वंदन किया। सखी बहुत राजी हुईं कि कैसा सुन्दर अर्थ समझाया है !

लग्न हुए पीछे पति-पत्नी अद्वैत सिद्ध करें तो गृहस्थाश्रम सुखमय होता है। जहाँ भेद है वहाँ ही दुःख है। पति-पत्नीका स्वभाव एक न हो, तब तक लग्न सफल होती नही। तन दो, परन्तु मन एक—इसका नाम लग्न। पति-पत्नी तनसे दो होने पर भी, उनका स्वभाव और उनका मन एक हो तो ही सुख मिलता है। पति और पत्नी-का लक्ष्य अलग हो तो मतभेद होता है। मतभेदसे मनभेद होता है। मनभेदसे झगड़ा होता है और झगड़ेसे अशान्ति होती है, भय होता है। जहाँ भेद है वहाँ ही भय है। जहाँ अभेद है वहाँ ही अभय है। पति और पत्नी तत्त्वसे तो एक ही हैं। रामजीने कहा—

एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म।

परमात्मा एक ही हैं। मायासे ये अनेक रूपमे भासते हैं। सबमे एक ही परमात्माकी सत्ता विलास करती है। जनकपुरीके संत ऐसा कहते हैं कि श्रीरामजी जनकपुरी में पधारे और इनकी श्रीसीताजीके साथ लग्न हुई। उसके बाद राजा रामजी-का वहाँ ही राज्याभिषेक किया था। जनकपुरीके संतोकी ऐसी भावना है कि राजा जनकने कन्यादान किया तब श्रीरामजी को घर-जमाई बनाकर घरमें ही रखनेकी प्रतिज्ञा की थी। वे संत ऐसा कहते हैं कि हमारे रामजी तो जनकपुरी छोड़कर जाते हो नही। जनकपुरीमें श्रीसीतारामजी अखण्डरूपसे विराजते हैं। रामजी अयोध्या जायें तो कैकेयी उनको वनमें भेज देती है न? जनकपुरीके संतो की ऐसी भावना है कि रामजी जनकपुरीमें ही विराजते हैं। सबकी बहुत इच्छा थी कि श्रीसीतारामजीको सुवर्णसिंहासनपर पधराकर जनकपुरीमे ही राज्याभिषेक हो। श्रीरघुनाथजी का पहला राज्याभिषेक जनकपुरीमें हुआ। सुवर्णसिंहासनमे श्रीसीतारामजी विराजते हैं। भाग्यशाली वह प्रजा है जो श्रीसीतारामजी के दर्शन करती है। दर्शन करते मन थकता नही। लोग बातें करते है कि ये श्रीराम हैं। ये साक्षात् आदिनारायण परमात्मा हैं और श्रीसीताजी राजकन्या नहीं, ये तो जगन्माता लक्ष्मी है। वे धरतीमें-से प्रगट हुई हैं। हम प्रत्यक्ष लक्ष्मीनारायण-का दर्शन कर रहे हैं।

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गम् सीतासमारोपितवामभागम्।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम्॥

लग्न-महोत्सवके उपरान्त श्रीसीताजी, श्रीरामजीके साथ अयोध्यापुरी जानेको तैयार हुयीं। श्रीसीताजी साक्षात् महालक्ष्मी हैं। वे इस समय जनकपुरी छोड़कर जा रही हैं। महालक्ष्मी जिस नगरको छोडकर जायें वहाँके लोगोकी कैसी दशा होगी? माताजीने विचार किया कि मैं अब यहाँसे जाती हूँ तो ये लोग क्या खायेंगे? माताजीने चावलसे

थैली भरी और चावल बिखेरे। वे ही चावल आज तक भी मिथिलामें खूब चावल उत्पन्न करते हैं।

श्रीसीतारामजीने सबके साथ जनकपुरीसे अयोध्याके लिए प्रयाण किया। मार्गमें परशुरामजी मिले। रामजीने उनका शिवधनुष तोड़ा था। इस कारण परशुरामजी-ने अत्यन्त क्रोध किया। परशुरामजी आवेश-अवतार है। परशुरामजीके साथ श्रीलक्ष्मणजी-ने बहुत विनोद किया।

टूट चाप नहिं जुरिहि रिसाने। बैठिअ होइहिं पाय पिराने॥
जौं अति प्रिय तौ करिय उपाई। जोरिअ कोउ बड़ गुनी बोलाई॥

लक्ष्मणजीने परशुरामजीसे कहा—महाराज! टूटा हुआ धनुष क्रोध करनेसे जुड़ेगा नही, सन्धान होगा नहीं। अब क्रोध छोड़ो और विश्राम करो। नहीं तो बेकार आपके पैर दुखने लगेंगे। इस धनुषके ऊपर बहुत प्रीति है तो उसका कुछ उपाय करो। किसी बढ़ईको बुलाकर उसे जुड़वा लो। लक्ष्मणजीके वचनोंसे परशुरामजी बहुत ही आवेशमें आ गये। प्रभुने परशुरामजी में जो आवेश था, वह खींच लिया। परशुरामजीने रामजीकी सुन्दर स्तुति की।

जय रघुवंश बनज बन भानू। गहन दनुज कुल दहन कृसानू॥
जय सुर बिप्र धेनु हितकारी। जय मद मोह कोह भ्रमहारी॥

× × ×

करौं काह मुख एक प्रसंसा। जय महेश मन मानस हंसा॥

रामजीकी जयजयकार करके परशुरामजी तप करने चले गये और प्रभु अयोध्यामें पधारे। सब माताओंको अतिशय आनन्द हुआ। अंधेको आँख मिले, जन्म-दरिद्रीको पारसमणि मिले, नित्य रोगीको अमृत मिले, योगीको परमतत्व प्राप्त हो, उस समय उनको जैसा आनन्द होता है, वैसा आनन्द सब माताओंको प्राप्त हुआ। "चार लक्ष्मीनारायण मेरे घर आये है", ऐसी भावनासे कौशल्या मांने पूजा की।

अयोध्याकी प्रजा श्रीसीतारामजीको निहारकर हर्षसे परिपूर्ण हो गयी। उसने बहुत बडा आनन्दोत्सव किया। महाराज दशरथने ऋषि विश्वामित्रका खूब सम्मान किया। रानियोंके समक्ष महाराज दशरथने राजा जनककी बहुत प्रशंसा की। सीताजी वह सुन रही थी। बहुत राजी हुई। कन्याके माता-पिताकी प्रशंसा करोगे तो कन्या राजी होगी। महाराज दशरथने कौशल्यादि रानियोंसे कहा—ये पराये घरकी कन्या अपने घर आयी हैं। पलक जिस प्रकार आँखकी सुरक्षा करती है, उसी प्रकार तुम इनका रक्षण करना।

राखेहु नयन पलक की नाईं।

इनकी पीहर जानेकी इच्छा होगी तो मैं मानूंगा कि तुमने कुछ कालागोरा किया है, ये पीहरको भूल जायें, इस रीतिसे इनको रखना।

चार पुत्रवधू घरमें आयी थी। महात्मा ऐसा वर्णन करते हैं कि महाराज दशरथके सुखकी सीमा न रही। श्रीराम जिनके पुत्र हैं, श्रीसीताजी जिनकी पुत्रवधू हैं, उनके सुखका पूछना ही क्या ? परन्तु अतिसुख मिले वह ठीक नही। महाराज दशरथके सुखको नजर लगी। महाराज दशरथ बहुत ही सुखी थे। वे अब दुखी होनेवाले हैं। सुखके दिन जाते देर लगती नही। संसार का एक नियम है—

सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखम्।
द्वयमेतद्धि जन्तूनामलङ्घ्यं दिनरात्रिवत्॥

दिनके पीछे रात्रि और रात्रिके पीछे दिन की तरह, सुखके पीछे दुःख और दुःखके पीछे सुख, सृष्टिका क्रम है।

एवं परात्मा मनुजावतारो
मनुष्यलोकाननुसृत्य सर्वम्।
चक्रेऽविहारी परिणामहीनो
विचार्यमाणे न करोति किंचित्॥
यत्पादपङ्कजपरागमुरागयोगि-
वृन्दैर्जितं भवमयं जितकालचक्रैः।
यन्नामकीर्तनपरा जितदुःखशोका
देवास्तमेव शरणं सततं प्रपद्ये॥

यन्मायावशवर्तिविश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा
यत्सत्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः।
यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम् ॥

(३७)
राज्याभिषेककी तैयारी

परमात्मा श्रीराम परम सत्यके स्वरूप हैं। सत्य अविनाशी है, अबाधित है। सत्यका कभी विनाश होता नहीं। सत्यके स्वरूपमें कोई परिवर्तन होता नहीं। सत्य शब्दका अर्थ होता है—भूत, भविष्य और वर्तमान, इन तीनों कालोंमें जिसका स्वरूप एकसा ही रहता है। ईश्वरको छोड़कर जो कुछ भासता है वह क्षण-क्षण बदलता है। संसारमें जो कुछ दिखाई देता है, सुना जाता है, वह व्यवहार-दृष्टि से भले ही सत्य है, परन्तु तत्व-दृष्टिसे विचार करनेसे सत्य नहीं। जगत आज जैसा दीखता है, ऐसा कल नहीं था, और आनेवाले कलको भी ऐसा नहीं रहेगा।

यह जगत असत्य है, जगतके पदार्थ दुःखरूप हैं। इससे ज्ञानी पुरुष जगतका चिंतन करते नहीं। स्वपप्नमें-से जागे पीछे स्वप्न जैसे मिथ्या लगता है, उसी प्रकार भगवानके साक्षात्कारसे जगत मिथ्या लगता है। संसार असत्य होनेपर भी मनुष्यको अज्ञानके कारण वह सत्य भासता है। यह सब सपनेका खेल है, भ्रम है। जगतका आभास ईश्वर-विषयक अज्ञानसे होता है। यह दृश्य जगत भ्रमरूप है, खोटा है। इतना होनेपर भी सत्यरूप परमेश्वरके आधारपर टिका होनेसे वह सत्य जैसा भासता है।

परन्तु ईश्वरके अतिरिक्त जो भी दीखता है वह सत्य नहीं। ईश्वरके अतिरिक्त अन्य कुछ भी दीखे, वह ईश्वरकी माया है। मा अर्थात् नहीं और या अर्थात् है—जो न होनेपर भी है। जो नहीं होने पर भी दीखती है। इस भ्रमका नाम माया है। जगत नहीं है फिर भी दीखता है और परमात्मा हैं फिर भी दीखते नहीं। यही माया है। मायाको मानना पड़ता है। माया बगैर व्यवहार हो सकता नहीं। ज्ञानी पुरुष मायाको मानते हैं, परन्तु खोटी मानते हैं। माया असत्य है, ब्रह्म सत्य है।

मनुष्यको सुखी होना हो तो सत्यसे स्नेह करे। मनुष्यको शान्तिसे बैठकर विचार करना चाहिये कि इस जगतमें सच्चा क्या है और मिथ्या क्या है। विचार करते समय ध्यानमें आवेगा कि एक ईश्वर ही सत्य है। ईश्वर बिना जो कुछ दीखता है वह

व्यवहार-कालमें सत्य होगा, व्यवहार-दृष्टिसे भले सत्य होगा, परन्तु परमार्थ-दृष्टिसे बिचार करनेपर वह सत्य नही हैं।

शतरंजके खेलके मोहरे अलग-अलग नामसे पहचाने जाते हैं। इनमें हाथी है घोडा है, ऊँट है, राजा है मंत्री है, सिपाही है। खेलमे ऐसा नियम होता है कि हाथी सीधा चलता है, ऊँट टेढ़ा चलता है। जब तक खेल होता है तब तक ही यह हाथी है कि घोड़ा है कि ऊँट है और जब खेल समाप्त हो जाये तो यह लकड़ीके टुकड़े ही रह जाते हैं। न तो हाथी है, न घोडा है। जो हाथी अथवा घोडा होता तो क्या डिब्बेमे रह सकता है ? खेलते समय ही ऐसा मानते हैं कि यह हाथी है और यह घोड़ा है परन्तु खेल पूरा हुआ कि पीछे वह लकड़ी है।

यह संसार भी एक प्रकारका खेल है। जब तक यह खेल है तब तक संसारके विषय सत्य जैसे लगते हैं परन्तु दृश्य पदार्थोंसे दृष्टि हटकर आत्मस्वरूपमें स्थिर होती है तब सत्यका दर्शन होता है, और दृश्य पदार्थ मिथ्या हैं, अनित्य हैं ऐसा समझमें आ जाता है।

दृश्यवारितं चित्तमात्मनः। चित्त्वदर्शन तत्त्वदर्शनम्॥

जो दृश्य है वह क्षण-क्षण बदलता है। जो दृश्य है वह अधिक भागमें दुःख ही देता है। परमात्मा द्रष्टा हैं। दृश्यमे-से दृष्टिको हटाओ और जगतको देखनेवाले ईश्वरमें दृष्टिको स्थिर करो। दृश्य परिणाममे विनाशरूप होनेसे ज्ञानी पुरुष दृश्यमें दृष्टि रखते नही, दृश्य वस्तुमें मनको जाने देते नही अपितु सबके साक्षी परमात्मामे दृष्टि स्थिर करते हैं। यह जगत असत्य है और सबके द्रष्टा ईश्वर सत्य हैं, ऐसा ज्ञानी मानते हैं।

श्रीराम सत्य हैं। रामजीका स्वरूप किसी दिवस बदलता नही है। रामजीसे राजा दशरथने कहा था कि आनेवाले कल तुम्हारा राज्याभिषेक होनेको है। यह सुनकर रामजी प्रसन्न हुए नही और जब राज्याभिषेकके मुहूर्तमे कैकेयीने कहा—वल्कल वस्त्र पहनकर तुम वनमें जाओ। तब परमात्मा वनमें पधारे, मलिन हुए नही। मानव तो ऐसा है कि इसको कथामे ठीक जगह न मिले तो नाराज हो जाता है कि मेरी जगहमे दुसरा बैठ गया। मनुष्य क्षण-क्षणमे शान्ति गवाँ देता है। कितनों ही का तो हृदय बहुत जलता है।

हृदयको जलाने जैसा कोई पाप नही। चाहे कुछ भी हो परन्तु हृदयको जलाओ नही। तुम्हारे हृदयमें भगवान विराजते हैं। हृदयमे विराजे हुए परमात्मा तुम्हारे मनको, इन्द्रियोंको, बुद्धिको प्रकाश देते हैं। तुम हृदय जलाओगे तो अन्दर विराजे हुये

परमात्माको परिश्रम होगा। कोई कुछ नुकसान करे, अपमान करे, निन्दा करे, इससे क्या ? हृदयको जलानेकी तनिक भी जरूरत नही। कोई तुम्हारी निन्दा करे, इससे तुम्हारा तनिक भी नुकशान होनेका नही। तुम्हारे लिए कोई खराब शब्द बोले इससे तुम्हारा बाल भी बाँका होनेका नही। किसीका हाथ पकड़ा जा सकता है, किसीकी जीभ पकड़ सकते नहीं। मनुष्य जीभका ठीक उपयोग करता नही। जो अच्छा लगता है वैसा बोलता है। बोलता है तब परमात्माका भय रखता नही। कोई तुम्हारी निन्दा करे, तुम्हारे लिए खराब शब्द बोले तो तनिक भी हृदयको जलाना नही। हमेशा ऐसा अनुसंधान रखो कि मेरे हृदयमें तो भगवान विराजे हैं। हृदयको जलाकर परमात्माको कष्ट देना नही हैं। परमात्माके साथ जो स्नेह रखता है, वही सुखी होता है। जो जगतको सत्य समझता है, जिसको जगत सच्चा लगता है, उसकी शान्ति कायम रहती नही।

अब अयोध्याकाण्डका प्रारम्भ होता है। अयोध्याकाण्डमें रामजी वनमें पधारे हैं। जहाँ कलह होती है, वहाँ रामजी विराजते नही। जहाँ कलह नही, वहाँ श्रीसीता-रामजी विराजते हैं। कलह होती है विषमतासे। कलह होती है लोभसे।

महादेवजी पार्वती माँसे एक कथा कहते हैं।

एकदा सुखमासीनं रामं स्वान्तः पुराजिरे।
सर्वाभरणसंपन्नं रत्नसिंहासने स्थितम्॥
नीलोत्पलदलश्यामं कौस्तुभामुक्तकन्धरम्।
सीतया रत्नदण्डेन चामरेणाथ वीजितम्॥
विनोदयन्तं ताम्बूलचर्वणादिभिरादरात्।
नारदोऽवतरद् द्रष्टुमम्बराद्यत्र राघवः॥

एक बार देवर्षि नारदजी श्रीरामचन्द्रजीसे मिलेनेके लिए अयोध्याजी आए। श्रीरामचन्द्रजीको आनन्द हुआ, उठकर खड़े हो गये। नारदजीका स्वागत करके कहा कि संसार में फँसे हुए गृहस्थोंको आपके जैसे संतोंके दर्शन दुर्लभ हैं। आपने बहुत कृपा की। आपकी मैं क्या सेवा करूँ ?

नारदजीने कहा—आप जगतको गृहस्थधर्मका आदर्श बताते हो। आप परमात्मा हो ! मैं आपके सत्यस्वरूपको जानता हूँ।

श्रीरामचन्द्रजीने जगतको गृहस्थधर्मका आदर्श बताया है कि गृहस्थका जीवन कैसा होना चाहिए। शास्त्रमें लिखा है कि गृहस्थ एकपत्नीव्रतका पालन करे तो वह ब्रह्मचारी जैसा है। लग्न, कामका विनाश करने के लिए है। कोई सुन्दर वस्तु दीखे तो आँख और

कान बिना कारण चंचल होते हैं। अनेक बार मन समझता है कि मैं जिसका चिंतन करता हूँ, वह मुझको कभी मिलेगा नही। वह मेरा नही और मेरा हो सकता भी नही। मेरा इसके ऊपर जरा भी हक नही। ऐसा सब समझनेपर भी मनको इसका चिंतन करनेमें कुछ सुखका भास होता है। तुम्हारे मनकी दूसरा कौन रक्षा करेगा? अपने मनका तुमको ही रक्षण करना पड़ेगा। जो मनको मुट्ठीमे रखता है, मनकी रक्षा करता है वह महान् बनता है।

लग्न, मनको पवित्र रखनेके लिए है, कामका विनाश करनेके लिए है। लग्न एक ही स्त्रीमे, एक ही पुरुषमे, काम-भाव स्थिर करनेके लिए है। लग्नको धार्मिक संस्कार माना है। अपने शास्त्रोंमे स्त्रीको धर्मपत्नी कहा है। स्त्री, कामपत्नी नही। स्त्री धर्मपत्नी हैं। अकेला पुरुष अथवा अकेली स्त्री धर्मका पालन कर सकता नही। स्त्रीका हृदय स्नेहार्द्र होता है। पुरुषके हृदयमें विवेक होता है। धर्माचरणमें स्नेह और विवेक एक दूसरेके पूरक हैं। स्त्रीपुरुषका—पतिपत्नीका संबंध धर्मके लिए है, परमात्माके लिए है। श्रीरामजीके चरणोमें जाना है, परन्तु श्रीराम-दर्शनमें, श्रीराम-मिलनमें काम विघ्न करता है। यह शरीर ही काममय है। इस शरीरमे काम बैठा है। माता-पिताके मनमें कामवासना जागृत होनेपर इस शरीरका जन्म हुआ है। शरीरमें काम है और उस कामका विनाश ही लग्नका लक्ष्य है।

लग्न, मनको बिगाड़नेके लिए नही। लग्न, स्वेच्छाचारी अथवा विलासी जीवन बितानेके लिए नहीं। लग्न तो कामको संकुचित करके धर्मकी मर्यादामें रहकर काम-सुख भोगकर, कामका विनाश करनेके लिए है।

श्रीरामचन्द्रजीने गृहस्थधर्मका आदर्श बताया है।

> एकपत्नीव्रतधरो राजर्षिचरितः शुचिः।
> स्वधर्मं गृहमेधीयं शिक्षयन् स्वयमाचरत्॥

गृहस्थका धर्म है कि एकपत्नीव्रतका पालन करे। गृहस्थका धर्म है कि घरमें रोज थोडा सत्संग अवश्य करे। घरमें जाने-अनजाने धूल आती है और इससे बुहारी करनी ही पड़ती है। जिस प्रकार घरमे धूल आती है, उसी प्रकार संसार-व्यवहारका काम करते समय मनमें भी धूल आती है। विकार, वासना, आसक्ति, द्वेष, विषमता—ये सब धूल हैं। इससे सत्संग करनेकी बहुत आवश्यकता है। प्रभु-प्रेमी भजनानंदी संतोका सत्संग करनेसे गृहस्थाश्रम दिव्य बनता है।

नारदजीकी प्रभुने प्रशंसा की और कहा कि तुम्हारे जैसा संत आवे तो गृहस्थाश्रम सफल होता है।

नारदजीने कहा—महाराज ! आप भले ही मुझको मान दें, परन्तु मैं आपके सत्यस्वरूप को जानता हूँ। आप परमात्मा हैं। आप तो लीला करते हैं। मैं तो आपके भक्तोंका भी भक्त हूँ। दासोंका दास हूँ।

अहं त्वद्भक्तभक्तानां तद्भक्तानां च किङ्करः।
अतो मामनुगृह्णष्व मोहयस्वन मां प्रभो ॥

मैं तो दासानुदास हूँ।

नारदजी ऐसा कहते नहीं कि मैं तुम्हारा दास हूँ। नारदजी कहते हैं कि मेरे श्रीरामकी जो भक्ति करता है, जो रामदास है, उस रामदासका भी मैं दास हूँ। जब भक्ति बढ़ती है, तब अभिमान मरता है। भक्तिका यह लक्षण है। कितने भक्ति करते हैं, परन्तु बहुत अकड़में चलते है। समझते हैं कि दूसरे की अपेक्षा मैं श्रेष्ठ हूँ। पड़ोसके लोग तो सात बजे उठते है और मैं तो प्रातःकाल चार बजे उठकर, स्नानकरके सेवा करता हूँ। मैं बहुत भक्ति करता हूँ। भक्ति करनेपर अभिमान बढ़े तो मानना चाहिए कि भक्तिमें कुछ भूल होती है।

नारदजी तो भक्ति-सम्प्रदायके आचार्य हैं। फिर भी कहते है—नाथ ! आप भले मुझको मान दें, परन्तु मैं वैष्णवोंका दास हूँ। आपकी सेवापूजा करनेवाले आपके सेवकोंका मैं नौकर हूँ। मेरे नाथ ! एकदृष्टिसे तो मैं आपका पौत्र हूँ।

त्वन्नाभिकमलोत्पन्नो ब्रह्मा मे जनकः प्रभो।
अतस्तवाहं पौत्रोऽस्मि भक्तं मां पाहि राघव ॥

आपकी नाभिमें-से कमल उत्पन्न हुआ। कमलमें-से ब्रह्माजी प्रगट हुए। ब्रह्माजी मेरे पिता हैं, अर्थात् आप मेरे दादा हो। आप मुझको मान देते हो, यह आपकी प्रभुता है। पीछे कामकी बात करते हुये नारदजीने कहा—नाथ ! आज मैं ब्रह्माजीकी प्रेरणासे आया हूँ। रावण देवताओंको बहुत त्रास देता है। आप रावणका विनाश करनेके लिये प्रगट हुए हैं।

रावणस्य वधार्थाय जातोऽसि रघुसत्तम।

अब आपके पिताजी आपका राज्याभिषेक करके अयोध्याकी गद्दीपर बैठा देंगे तो रावणका वध किस रीतिसे होगा ? ब्रह्माजीने मुझे ऐसी आज्ञा दी है कि अवतार-लीला आप करें, ऐसी प्रार्थना आपसे मैं करूँ। यह प्रार्थना करनेके लिए मैं आया हूँ।

प्रभुने स्मित हास्य करते कहा—

रावणस्य विनाशार्थं श्वोगन्ता दण्डकाननम्।

मेरे ध्यानमें है। आनेवाले कल मैं वनमें जाऊँगा। इधर चक्रवर्ती सार्वभौम महाराज दशरथका दरबार भरा हुआ था। सिंहासनपर विराजे हुए महाराज दशरथकी वृद्धावस्था हो चली है। माथेका मुकुट थोड़ा टेढा था। सेवकोने महाराज दशरथका इस तरफ ध्यान आकर्षण करानेका विचार किया परन्तु सेवक महाराजसे ऐसा किस प्रकार कह सकते हैं कि आपका मुकुट टेढ़ा है। इसलिये उन्होंने दर्पण लाकर महाराजके सम्मुख रखा। दशरथ महाराजने दर्पणमे देखा कि माथेपर रखा हुआ मुकुट बराबर न होकर थोड़ा टेढा था। मुकुट सीधा करते समय कानके ऊपर दृष्टि पड़ी, तो दीख पड़ा कि कानके बाल सफेद हो रहे हैं। कानोके बाल सफेद हों तो समझना चाहिए, अति वृद्ध अवस्था आ गयी है।

महाराज दशरथने विचारा कि ये सफेद बाल मुझे कानमे ज्ञान देते हैं कि तुम अति वृद्ध हो गये हो। रामको गद्दीके ऊपर क्यों नही बैठा देते ? रामका राज्याभिषेक क्यों नही करते ? तुम रामको गद्दीके ऊपर बैठाओ। सफेद बाल मुझको उपदेश देते हैं। मुझे अब रामको गद्दीके ऊपर बैठाना चाहिये। प्रजाकी भी ऐसी भावना है। रामजीके लिये प्रजा बहुत राजी है। राम सबको आनन्द देते हैं।

महाराज दशरथके मनमे सकल्प हुआ कि मै रामका राज्याभिषेक करूं। महाराज दशरथ ऐसा विचार कर रहे थे कि उसी समय दरबारमे वशिष्ठ ऋषि पधारे। वशिष्ठजीका दरबारमे बहुत सम्मान है। वशिष्ठजी पधारे तब सब उठकर खड़े होते है। महाराज दशरथ भी खड़े हुए। वशिष्ठजीकी पूजा की। वशिष्ठजीने कुशल-समाचार पूछते हुए कहा—राजन् ! आज तुम कुछ उदास लगते हो।

महाराज दशरथने कहा—महाराज ! मेरे मनमे एक सकल्प हुआ है। तुम्हारे आशीर्वादसे मैं बहुत सुखी हूँ। सद्‌गुरुका कृपापात्र शिष्य बहुत सुखी होता है। तुमने मेरे ऊपर बहुत कृपा की है। तुम्हारे आशीर्वादसे राम-लक्ष्मण जैसे बालक है। बालक बहुत चतुर हैं। मैं सब बातोसे सुखी हूँ। तुम्हारे आशीर्वादसे मेरे जीवनमे समस्त कार्य पूर्ण सफल हुए हैं। अब एक काम बाकी है। बालक अब बड़े हुए हैं और मेरी यह वृद्धावस्था है। इस शरीरका अब भरोसा नही। शरीर कब छूटेगा, यह कहा नही जा सकता। शरीर अब दुर्बल हुआ है। अभी तक मैंने किसीको कहा नही, परन्तु मेरी एक ऐसी इच्छा है। मेरा एक सकल्प है कि आप आज्ञा करें तो रामका अब राज्याभिषेक करूँ। राम-राज्याभिषेक हो, श्रीसीता-रामजी स्वर्णसिंहासनमे विराजें, उनके मैं दर्शन करूँ, पीछे मेरी कोई इच्छा बाकी रहती नही। पीछे मैं सुखसे मरूंगा। मेरी एक ही कामना है कि अब शीघ्र राम-राज्याभिषेक हो जाय। मेरा राम सबको अच्छा लगता है। आप आज्ञा करदे तो मैं रामका राज्याभिषेक करके गद्दीके ऊपर बैठा दूं।

वशिष्ठजीने कहा—राजन् ! तुम्हारा विचार बहुत सुन्दर है। हमारी भी यही इच्छा है कि रामका राज्याभिषेक हो। महाराज दशरथने कहा—महाराज ! आप कोई ठीक मुहूर्त निकालो। उसी शुभ मुहूर्तमें मैं रामका राज्याभिषेक करके गद्दीके ऊपर बैठाऊँगा।

वशिष्ठजी महान् ज्ञानी थे। उन्होंने विचार किया आज मैं कोई मुहूर्त निकालूं, उस मुहूर्तमें रामजी गद्दीपर बैठनेवाले नहीं हैं। वशिष्ठजी सब जानते थे। इससे वशिष्ठजीने कहा—राजन् ! जिस दिन रामजी गद्दीपर बैठेंगे, वह दिन चाहे जैसा हो परन्तु मुहूर्त बन जायेगा। तुमको मैं क्या मुहूर्त बतलाऊँ ? राम गद्दीके ऊपर बैठें वही दिन मुहूर्त-दिन है। वशिष्ठजीकी वाणी गूढ़ार्थसे भरी हुई थी। वशिष्ठजी मनमें समझते थे कि महाराज दशरथ जिस दिनका निश्चय कर रहे हैं, उस दिन राज्याभिषेक होना नहीं।

महाराज दशरथने कहा—महाराज ! मेरी यह वृद्धावस्था है। मुझको तो अब बहुत उतावली हो रही है। मेरा विचार ऐसा है कि आप आज्ञा करें तो आनेवाले कल मैं राज्याभिषेक कर दूँ। वशिष्ठजीने कहा—राजन् ! बहुत ठीक।

राज्याभिषेककी तैयारीके लिये मंत्री सुमंत्रजीको बुलाकर महाराज दशरथने कहा—

आज्ञापयति यद्यत्वां मुनिस्तत्तत्समानय।
यौवराज्येऽभिषेक्ष्यामि श्वोभूते रघुनन्दनम्॥

मेरे गुरुदेवकी ऐसी आज्ञा है कि आनेवाले कल में रामका राज्याभिषेक करूँगा। राज्याभिषेककी अब तैयारी करो। मंत्रीजीने कहा—महाराज ! सब तैयारी मैंने छह महीनेसे कर रखी है। आप तो आज कह रहे हो, परन्तु अयोध्याके लोग बहुत दिनोंसे बाते कर रहे है। सबकी अब ऐसी इच्छा है कि महाराज अब वृद्ध हुए हैं, वे रामजीका राज्याभिषेक करे तो ठीक है। महाराज दशरथने पूछा—मेरे राज्यमें क्या प्रजा दु.खी है, जो रामको गद्दीपर बैठानेकी सबकी इच्छा है ?

मंत्रीने कहा—ना, महाराज ! प्रजा तो बहुत सुखी है। आप खूब जिओ परन्तु शरीर अब वृद्ध हुआ। लोगोंकी बहुत इच्छा है कि श्रीसीता-रामजी स्वर्ण-सिंहासनपर विराजें और सब दर्शन करे। हम संकोचसे आपसे कहते नहीं थे परन्तु सबकी बहुत इच्छा है।

मंत्रीजीने पहलेसे ही समस्त तैयारी कर रखी थी। राज्याभिषेकमें चार समुद्रोंके जलकी जरूरत पड़ती है। मंत्रीजीने यह भी मँगाकर रखा था। पीछे महाराज

दशरथने मंत्रियो और महाजन लोगोको बुलाया। महाराज दशरथका प्रजारंजन राज्य था। प्रजाकी इच्छा और सम्मति हो तो ही महाराज दशरथ श्रीरामचन्द्रजीको गद्दीपर बैठा सकते थे। महाराज दशरथने कहा—तुम सब मुझको सम्मति दो तो मै राज्याभिषेक करूँ। गुरुदेवकी मुझको आज्ञा हो चुकी है कि यदि सबकी इच्छा हो तो रामको गद्दीपर बैठा दिया जाय।

सबने सम्मति देते हुये कहा—हम सबकी भी यही भावना है कि रामजीका राज्याभिषेक हो। महाराजने पूछा—क्या आनेवाले कल ही राज्याभिषेक कर दिया जाय ? सबने प्रसन्न होकर स्वीकृति दी। परमानन्द हुआ। वशिष्ठजीने मंत्रीजीसे कहा—प्रथम श्रीसीता-रामजीको सोनेके पट्टेपर विराजमान करके वेद-मंत्रोका उच्चारण करते हुये चार समुद्रोके जलसे तीर्थाभिषेक कराया जायगा।

नाना तीर्थोदकैः पूर्णाः स्वर्णकुम्भाः सहस्रशः।

ब्राह्मण तीर्थाभिषेक कराएं, उस पीछे दोनोका सुन्दर शृंगार होगा और शत्रुजय हाथीके ऊपर श्रीसीता-रामजी विराजेंगे। लोगोको दर्शनकी बहुत इच्छा है इसलिए वरघोडा समस्त गांवमें फिरेगा। सोलह कन्या मस्तकके ऊपर कलश धारण कर आगे-आगे चलेगी। ब्राह्मण वेद-मत्र बोलेंगे। तत्पश्चात् श्रीसीता-रामजीको सिंहासनपर बैठाकर मैं राजतिलक करूँगा। गांवमे जितने देवमन्दिर है उन सभी देवमन्दिरोमें आनेवाले कल विस्तृत पूजा होकर सुन्दर भोग अर्पण हो, ऐसा प्रबन्ध करो। मत्रीजीने कहा—महाराज ! आप जो कहते हैं वह सब तैयार है।

तैयारी होने लगी। महाराज दशरथको अतिशय आनन्द हुआ। वे विचार करने लगे कि यह सूर्यवंशकी पवित्र गद्दी है, जिसपर चक्रवर्ती सार्वभौम महाराज भगीरथ बैठते थे। जो महाराज भगीरथ श्रीगंगाजीको लाये थे, उस महान् पुरुषकी यह पवित्र गद्दी है। इस गद्दीके ऊपर महाराज दिलीप बैठते थे, जिन्होने एक गायके रक्षणके लिए स्वयके प्राणका भोग सिंहको दिया था। सूर्यवंशके पवित्र, प्रतापी नरेश इस गद्दीपर बैठते आये हैं। आनेवाले कल मेरा राम इस गद्दीपर बैठेगा। इस गद्दीके ऊपर आज मेरा अंतिम दिवस है।

महाराज दशरथने गद्दीकी परिक्रमा की, गद्दीको बारबार वंदन किया और बोले—माँ ! आनेवाले कलसे मेरा राम तुम्हारी गोदमे बैठेगा। मेरे रामका तुम रक्षण करना। मेरी कोई भूल हुई हो तो क्षमा करना।

महाराज दशरथ बहुत भोले थे, सरल हृदयके थे। उन्होने वशिष्ठजीसे कहा—गुरुजी ! आनेवाले कल मेरे रामका राज्याभिषेक करना है, वह तुमसे किस प्रकार कहूँ ?

गुरुजी ! तुम मेरे रामको राज्याभिषेककी वार्ता सुनाओ। राम तो बहुत जानता-समझता है, परन्तु आप गुरुदेव हो, जो आपको योग्य लगे, ऐसा उपदेश उसे दो। दशरथके द्वारा वशिष्ठ ऋषिसे ऐसी प्रार्थना करनेपर, वशिष्ठजी श्रीरामचंद्रजीके महलमें गये।

गुरुदेवके आनेकी खबर सुनते ही श्रीराम दौड़कर बाहर आये। उन्होंने गुरुदेव-के चरणोंमें वंदन किया और कहा—गुरुदेव ! योग्य तो यह था कि मुझको आज्ञा की होती तो दौड़ते हुए मैं आपके चरणोंमें आता। आप घर पधारे, यह तो आपने बहुत कृपा की।

श्रीराम वशिष्ठजीको अंदर ले गये। गुरुदेवको सुंदर आसनपर बैठाकर उनके चरण पखारे। गुरुदेवकी पूजा की और कहा—आप मेरे सद्गुरु हो। मैं आपका शिष्य हूँ। आपकी आज्ञाका पालन करनेके लिए यह सेवक सदा तैयार है। आज्ञा करें।

वशिष्ठजीने स्मितहास्य करके कहा—राम ! तुम ऐसा कहो, उसमें क्या आश्चर्य है ? सब ही सद्गुण तुममें एकत्रित हुए हैं। तुम मुझको गुरु मानते हो परन्तु गुरुके गुरु तो तुम हो। तुम जगद्गुरु हो।

गुरुर्गुरूणां त्वं देव पितृणां त्वं पितामहः।
अन्तर्यामी जगद्यात्रावाहकस्त्वमगोचरः॥

बड़ोंके भी बड़े तुम हो, तुम परमात्मा हो, अन्तर्यामी नारायण हो। जगतके कल्याण के लिए तुमने यह स्वरूप धारण किया है और मानव जैसी लीला करते हो।

श्रीराम-श्रीकृष्ण मानव जैसी लीला करते है। इससे श्रीराम-श्रीकृष्णका नाम है "नटवर"। नाटकमें काम करनेवाला नट स्वयं-के असली स्वरूपको छिपाये रखता है और देखनेवालोंको दूसरा स्वरूप बताता है। श्रीराम श्रीकृष्ण परमात्मा हैं, परन्तु मानव जैसी लीला करते हैं।

श्रीरामने कहा—ना, ना, मैं ईश्वर नहीं। मैं तो एक साधारण मानव हूँ।

वशिष्ठजीने कहा—तुम मुझको मान देते हो और कहते हो कि मैं तुम्हारा शिष्य हूँ। तुम मुझको गुरु मानते हो तो आज मैं गुरुदक्षिणा मांगता हूँ वह मुझको दो।

गुरुदक्षिणामें वशिष्ठजीने मांगा—

त्वदधीना महामाया सर्वलोकैकमोहिनी।
मां यथा मोहयेन्नैव तथा कुरु रघूद्वह॥

तुम्हारे अधीन रहनेवाली तुम्हारी सर्वलोक-विमोहिनी महामाया मुझको मोहित न कर सके, इसलिए अपने चरणोंमें मुझको अनन्य भक्ति दो। मैं ब्रह्माजीका पुत्र हूँ।

ब्रह्माजीने मुझसे कहा कि सूर्यवंशके तुम पुरोहित बनो। ब्रह्माजीने मुझको पुरोहित होनेकी आज्ञा दी। वह मुझको रुचिकर नही लगी। मैं जानता था कि पुरोहिताई निंदनीय है और दूषित जीविका है। पुरोहितको यजमानका पाप लेना पडता है।

पौरोहित्यमहं जाने विगर्ह्यं दूष्यजीवनम् ॥

परन्तु ब्रह्माजीने मुझसे कहा—सूर्यवशमे परमात्मा प्रगट होने वाले हैं और प्रभुके साथ तुम्हारा सम्बन्ध होगा। अत ब्रह्मतेजका विनाश करनेवाली पुरोहितवृत्ति अच्छी नही लगते हुए भी मैं सूर्यवशका पुरोहित बना, गुरु हुआ। तुम मेरे ऊपर कृपा करो। मुझको अपने चरणोमे अनन्यभक्ति दो। आज एक खास कार्यके लिए आया हूँ। महाराज दशरथने मुझे तुम्हारे पास भेजा है। आनेवाले कल महाराज दशरथकी तुम्हारा राज्याभिषेक करनेकी इच्छा है।

वशिष्ठजीने रघुनाथजीको आदेश किया।

अद्य त्वं सीतया सार्धमुपवासं यथाविधि।
कृत्वा शुचिर्भूमिशायी भव राम जितेन्द्रियः ॥

राज्याभिषेकके पहले दिन राजा धरतीमे शयन करे, ब्रह्मचर्यादि धर्मोंका पालन करे, उपवास करे और पवित्र बने।

श्रीरामचन्द्रजीने वशिष्ठजीसे कहा—गुरुजी! मुझ अकेलेको तुम गद्दीपर बैठाओगे? राज्याभिषेक मुझ अकेलेका होगा? मेरी ऐसी इच्छा है कि मेरे छोटे भाई भरत, लक्ष्मण, और शत्रुघ्न मेरे साथ गद्दी पर बैठें। हम चारो भाई गद्दीके ऊपर बैठेंगे। गुरुजी! आप चारों भाइयोका राज्याभिषेक करो, मुझ अकेलेका नही। हमारा प्रेम ऐसा है कि मैं अकेला गद्दीके ऊपर बैठूं, यह मुझको रुचिकर नही लगता।

जनमे एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई ॥
करनबेध उपबीत बिआहा। संग संग सब भए उछाहा ॥
बिमल बंश यहु अनुचित एकू। बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू ॥

हमारा एक स्थानमे जन्म हुआ, हम एक जगह खेले। और तो क्या? हमारी लग्न भी एक ही घरमे हुई। यह सूर्यवशकी रीति कैसी है कि बड़े पुत्रका ही राज्याभिषेक होता है और छोटे भाइयोका नही होता। मुझको यह सब खोटा लगता है। यह मुझको अच्छा लगता नही। हम चारो भाइयोका राज्याभिषेक कीजिए।

रामजीका बंधुप्रेम कैसा है? आजकल बडे भाइयोको कुछ मान मिलता हो तो वे छोटे भाइयोको क्या याद करेंगे?

वशिष्ठजीने स्मितहास्य करके कहा—ना, ना, ऐसा तो नहीं हो सकता। राजा तो एक ही होता है। चारका राज्याभिषेक नहीं होता। यह तो सूर्यवंशकी रीति है। राजनीति ऐसा कहती है कि बड़ा पुत्र ही राजा हो सकता है। महाराज दशरथने इसलिए यह दृढ़ निश्चय किया है। राम! तुम्हारा बंधुप्रेम मैं जानता हूँ। भाइयोंको तुम जो देना हो, वह दे सकते हो। राज्याभिषेक तो तुम्हारा ही होगा।

रामजीका राज्याभिषेक होनेको है, यह सुनकर सबको आनन्द-ही-आनन्द हो गया, परन्तु रामजीको आनन्द न हुआ। रामजीने बात दुहराकर वशिष्ठजीसे कहा—सूर्यवंशकी यह रीति योग्य नहीं। अपने भाइयोंको छोड़कर मुझको अकेला गद्दीके ऊपर बैठना अच्छा नहीं लगता।

गुरुजीने कहा—तुमको रुचिकर लगे या न लगे परन्तु ऐसा ही होगा।

बातें चल रही थीं, उसी समय लक्ष्मणजी वहाँ आए। श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीसे कहा—लक्ष्मण! मैं नामका ही राजा हूँ। यह सब राज्य तुम्हारा है।

सौमित्रे यौवराज्ये मे श्वोऽभिषेको भविष्यति।

× × ×

लक्ष्मणे मां मया सार्धं प्रशाधि त्वं वसुंधराम्।
द्वितीयं मेऽन्तरात्मानं त्वामियं श्रीरुपस्थिता॥

लक्ष्मण! यह राज्य तुमको ही करना है, तुमको ही मिला है। तुम तो मेरी दूसरी अंतरात्मा हो।

श्रीराम सबके अंतर्यामी हैं परन्तु श्रीरामके अंतर्यामी लक्ष्मणजी हैं। जगतके प्रत्येक जड़ और चेतन पदार्थमें श्रीराम बिराजते हैं और रामजीके हृदयमें लक्ष्मण और भरत हैं।

लक्ष्मणजीको बहुत आनन्द हुआ। लक्ष्मणजीको गद्दीपर बैठनेकी लेशमात्र भी इच्छा नहीं थी। लक्ष्मणजीको अतिशय आनन्द इसलिए हुआ कि मेरे बड़े भाई आनेवाले कल राजा होनेको हैं। कल मैं हाथमें चँवर लेकर खड़ा होऊँगा। मुझको रामजीके साथ गद्दीपर बैठना नहीं। मुझे तो रामजीकी सेवा करनी है।

(३८)

विघ्नेश्वरी अयोध्यामें

एक सेवकने ये सब बातें सुनी। दौड़ता-दौड़ता वह कौशल्याजीके पास गया। कौशल्या माँ-को वंदन करके कहा कि माँ! माँ! बधाई है। आनन्दकी बात कहने आया हूँ। आनेवाले कल महाराज दशरथ रामजीको गद्दीपर बैठा रहे हैं। राज्याभिषेक होनेको है। कौशल्याजीको यह सुनकर अतिशय आनन्द हुआ। आनेवाले कल मेरा राम राजा होगा। कौशल्याजी उमंगसे भरके दास-दासियोको वस्त्र-आभूषण देने लगी। माँ-को बहुत ही आनन्द हुआ।

राम-राज्याभिषेकमे विघ्न हुआ तो रामजीकी इच्छासे ही हुआ। इसमे किसी-का दोष नही। रामजीकी ही वनमे जानेकी इच्छा थी। रामजी विचारते थे कि रावणके मरे पीछे ही मुझे राजा होना है। रावण पृथ्वीके ऊपर जीवित रहे और मैं गद्दीके ऊपर बैठूं, यह शोभा देता नही। वनवास पीछे राज्याभिषेक हो, वह सबको ठीक है।

जो कभी वनमे गया नही, वह राजा हो तो संभव है कि भान भूल जाएगा। कैकेयीने रामजीको चौदह वर्ष का वनवास क्यो दिया? रावण—काम चौदह ठिकाने रहता है। पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार—इन चौदह ठिकानों-में रहनेवाले रावण—कामको मारनेको रामजी चौदह वर्ष तपश्चर्या करें, तो ही उसको मार सकते हैं। रावण अर्थात् काम, जीवको बहुत त्रास देता है। मनुष्य चौदह वर्ष सादा जीवन बितावे, धीरे-धीरे भक्ति बढावे, तो कामको मार सकता है। श्रीकृष्ण वृन्दावनमें नंगे पैर, गायोके पीछे बहुत फिरे हैं। गायोकी बहुत सेवा करनेके पीछे ये द्वारिकाधीश हुए। नंगें पैर वृन्दावनमे फिरने के बाद ही सोलह हजार रानियोंके स्वामी हुए। वनवास बिना राज्याभिषेक हो, यह श्रीराम-श्रीकृष्ण को अच्छा नही लगता। रामजी अपनी इच्छासे ही वनमें गये थे।

भगवद्-इच्छासे ही राम-राज्याभिषेकमे विघ्न आया था परन्तु एक महापुरुषने कहा है कि रामराज्याभिषेकमे विघ्न कौशल्याजीकी एक भूलके कारण आया है। कौशल्याजीकी क्या भूल हुई थी? रामजीका राज्याभिषेक होनेको है, यह सुनकर कौशल्याजी बहुत राजी हुयी। घरके नौकरचाकरोको वस्त्राभूषण दिए। घरकी दासियों-का सम्मान किया परन्तु कौशल्याजीने कैकेयीकी दासीका सम्मान किया नहीं।

व्यवहार बहुत कठिन है, परमार्थ सरल है। व्यवहारमें कोई भूल हो तो लोग क्षमा करते नही, सजा देते है। सेवामें—भक्तिमे कोई भूल हो जाय तो भगवान क्षमा कर

देते हैं। परमात्मा अति उदार हैं। भक्तिमें भूल हो जाय तो भगवान जल्दी दण्ड देते नहीं। इसकी भूल हुई, कहकर भगवान भी भूल जाते हैं परन्तु व्यवहारमें कोई भूल हो जाय तो संसारके लोग उसे जल्दी भूलते नहीं और इसलिए मनुष्य व्यवहारमें सावधान रहता है। भक्तिमें सावधान रहता नहीं। मनुष्य समझता है कि व्यवहारमें भूल करूँगा तो लोग मुझे दण्ड देंगे।

व्यवहार, करो, परन्तु व्यवहारमें डूबना नहीं। व्यवहार करते हुए आत्मस्वरूपका अनुसन्धान न रक्खो, वह पाप है। मनके स्थूल और सूक्ष्म दो भेद हैं। मनका स्थूल भाग भले ही व्यवहारमें हो परन्तु मनका सूक्ष्मभाग परमात्मामें पिरोकर रखना। पनिहारी पानी भरने जाती हैं, उस समय माथेपर तीन-तीन घड़े होते हैं, एक हाथमें घड़ा और दूसरे हाथमें रस्सी होती है। एक-दूसरेके साथ बातें करती हुई जाती हैं परन्तु माथेके ऊपर रखे हुए घड़े गिरते नहीं। कारण कि पनिहारीका स्थूल मन बातोंमें होता है, परन्तु सूक्ष्म मन माथेके ऊपर रक्खे हुए घड़ोंमे ही होता है। इसी प्रकार व्यवहार करते समय भगवानको भूलना नही। परमार्थ सरल है, व्यवहार कठिन है। बालकमें सूक्ष्मरीतिसे मन रखकर जिस प्रकार माँ घरके समस्त कामकाज करती है, उसी प्रकार सूक्ष्मरीतिसे मन परमेश्वरमें रखकर व्यवहार करोगे तो व्यवहारमें सफलता मिलेगी।

कौशल्याजीकी यह थोड़ी भूल हुई कि घरकी दासियोंका तो सम्मान किया, परन्तु कैकेयीको दासियोंका सम्मान नहीं किया। कैकेयीकी दासी मन्थराको दो-चार साड़ियाँ दे दीं होती तो यह सब उत्पात नहीं होता। कौशल्याजीने मन्थराको कुछ दिया नही।

स्वयं-की एक दासीको कौशल्याजीने बहुत मान दिया और कहा—मेरे रामको तूने खिलाया है, बड़ा किया है, मेरा राम तुझको माताके समान मानता है। आज तो मैंने तुझको थोड़ा ही दिया है, परन्तु कल मेरा राम गद्दीके ऊपर बैठेगा, उसके बाद तुझे नौकरी करनेकी भी आवश्यकता नहीं रहेगी। मैं अपने रामसे कहकर तुझे एक-दो गाँव दिलवा दूँगी। मेरे रामके राजा होनेके बाद तू मेरी जैसी हो जायेगी। नौकरका अपमान करना नहीं, परन्तु उसे बहुत अधिक मान देना भी उचित नही। मानको पचाना बहुत कठिन है। शास्त्रमें तो ऐसा लिखा है कि मान-स्तुति तो परमात्मा ही पचा सकते हैं। परमात्माकी ही स्तुति करो। किसी मनुष्यकी प्रशंसा अधिक न करो। कारण कि मनुष्यमें स्तुति पचानेकी शक्ति नहीं होती। किसी मनुष्यकी बहुत प्रशंसा हो तो वह अभिमानी हो जाता है, उसका पतन हो जाता है। वेद और ऋषि लोग परमात्माकी बहुत स्तुति करते हैं, फिर भी प्रभुको अभिमान स्पर्श नहीं करता परन्तु इस जीवकी कोई स्तुति करे तो जीव अभिमानी हो जाता है। मानके पीछे ही अभिमान खड़ा हुआ रहता है। जिसको मान मिलता है, वह अभिमानी बन जाता है।

संसारमें बहुत मान मिले, यह ठीक नहीं। बहुतोंकी तो ऐसी इच्छा होती है कि मेरा कोई तनिक भी अपमान न करे, मेरे लिए कोई तनिक भी अपशब्द न बोले। मैं बहुत समझवाला हूँ। मुझे सब लोग मान दें। ऐसी इच्छा रखना उचित नही। जीवमात्रको मानकी भूख होती है परन्तु ससारमें मान मिले तो प्रसन्न होना नहीं और अपमान मिले तो अप्रसन्न भी होना नही। मेरे लिए संसार क्या कहता है, यह जाननेकी इच्छा ही न करो। जगतमें जो अपने लिए सही बोलता है, उसके लिए सद्भाव जगता है और जो खराब बोलता है उसके प्रति कुभाव आ जाता है। मनमे या तो राग आता है, या फिर द्वेष आता है। दोनों ही बन्धनकारक हैं।

शास्त्रमें लिखा है—

असम्मानात्तपोवृद्धिः। सम्मानात्तपसः क्षयः।

जिसको बहुत मान मिलता है, उसके पुण्यका नाश होता है और जिसका जगतमें कुछ अपमान होता है उसके पापका नाश होता है। कदाचित् तुम्हारा कोई अपमान करे तो हृदय जलाना नही, मनको समझाना कि आज मुझे लाभ हुआ। मेरे पाप घटे। मैंने कथामें सुना है कि कोई अपमान करे तो पापका नाश होता है।

कौशल्याजीने दासीको मान दिया। दासीको बहुत आनन्द हुआ परन्तु वह मान पचा नही सकी। वह वहाँसे जा रही थी। उसको रास्तेमे मंथरा मिली। इसको खूब आनन्दमें देखकर मंथराने पूछा—तू आज किस कारण इतने आनन्दमे जा रही है? इतना अधिक आनन्द किस बातका है?

दासीने कहा—मेरा जैसा भाग्यशाली कौन है ? मैं तो कौशल्याजीकी दासी हूँ। माँने तो आज मुझसे कहा है कि कलसे मुझे नौकरी करनेकी भी आवश्यकता नहीं रहेगी। अब तो मैं दासी न होकर राजमाता जैसी हो गयी? राम मुझको माताके समान मानते हैं। मेरे रामका कल राज्याभिषेक होनेवाला है। मेरे भाग्यका अब उदय होनेवाला है। मैं तो बहुत सुखी हूँ। तू देखती नही, कौशल्या माँने मेरे गलेमे कैसा चंद्रहार पहनाया है। मुझे तो यह चन्द्रहार मिला, परन्तु तू तो कैकेयीकी दासी है। तुझे कुछ भी नही मिला?

एतस्मिन्नन्तरेदेवा देवीं वाणीमचोदयन्।
गच्छ देवि भुवो लोकमयोध्यायां प्रयत्नतः॥
रामाभिषेकविघ्नार्थं यतस्व ब्रह्मवाक्यतः।

रामका राज्यभिषेक होना है, ऐसा जानकर सबको अतिशय आनन्द हुआ, परन्तु देवताओंको दुःख हुआ। इसका एक कारण था। उन्होंने सोचा कि आनेवाले कल राम

गद्दीके ऊपर बैठेंगे तो फिर रावणको कौन मारेगा ? इन राक्षसोंका भय तो बहुत अधिक बढ गया है। उन देवताओंने विघ्नेश्वरी देवीको बुलाकर कहा—तुम अयोध्यामें जाकर रामजीके राज्याभिषेकमें विघ्न करो। रामजीको तो सुख-दुख कुछ भी होता नहीं; वे आनन्दस्वरूप हैं। विघ्नेश्वरीने विचार किया। मै कहाँ जाऊँ ? किसमें प्रवेश करूँ ? यह विचार करते हुए उसकी नजर मंथरा पर पड़ी और मंथरामें ही उसने प्रवेश किया।

मंथराके हृदयमें मत्सर प्रगट हुआ। उसने विघ्न करनेका निश्चय किया। कौशल्याजीने मेरा सम्मान नहीं किया। सबको दिया परन्तु मुझको कुछ दिया नही, इसलिए रामराज्याभिषेकमें विघ्न करूँगी। मंथरा कैकयीके पास गयी, जाकर उसने नाटक आरंभ किया और रोने लगी।

कितनी ही माता ऐसी होती है कि उनको नकली रूपसे रोना भी आता है। ऐसी रोती हैं कि दूसरोंको ऐसा लगने लगता है कि ये बहुत दुखी हैं। वे कोई दुखसे नहीं रोतीं, परन्तु रोनेकी उनके पास कोई कला होती है। ये मातायें लौकिक व्यवहारमें भी जातो हैं और आँखोंसे आँसू बहाती हैं। क्या कोई सम्बन्धकी प्रगाढ़तासे रोती हैं ? वे तो वहाँ जाकर नाटक ही करती हैं।

कैकेयीके आगे मंथराने वही स्त्री-चरित्र किया। आँखसे आँसू निकाल लिए। मंथरा कपटसे रोने लगी। वह क्या कोई दुखसे रो रही थी ? सम्बन्धी बनकर रो रही थी ? इसका तो सब नाटक ही था। कैकेयीको आश्चर्य हुआ। उसने मंथरासे पूछा—तू क्यों रो रही है ? तुझे क्या हो गया है ? लक्ष्मणजीने तुझे कोई सजा दी है क्या ? तू बहुत बोलने वाली है इसलिए कदाचित् तुझे लक्ष्मणजीने सजा दे डाली मालूम होती है। कैकेयी मंथरासे बारबार पूछती थी परन्तु मंथरा बोलती ही नही थी। जोर-जोरसे प्रश्वास छोड़ती थी।

कैकेयीने कहा—तू बोल तो सही। तुझे क्या हो गया है ? क्यों रो रही है ? मेरे राम तो कुशलसे हैं न ? दशरथ महाराज तो आनन्दमे है ? कुशल राम महिपाल ?

कैकेयीका रामजीमें अतिशय प्रेम था। इसलिए कैकेयीने मंथरासे पूछा कि तू क्यों रोती है ? मेरे रामको तो कुछ नहीं हो गया है ?

स्त्रीको पुत्रकी अपेक्षा पतिमें समस्त प्रेम होना चाहिए, ऐसा शास्त्रमें लिखा है। पतिव्रता स्त्री पुत्रकी अपेक्षा समस्त प्रेम पतिमें रखती है।

कैकेयी पहले तो दशरथ महाराजकी कुशल पूछती नही, रामजीकी कुशल पूछती है। दशरथ महाराजकी वृद्धावस्था थी। कदाचित् कुछ हो तो दशरथ महाराजको ही हो,

ऐसा सम्भव था। रामजीको क्या होना था ? परन्तु कैकेयीका रामजीमें इतना प्रेम था कि पतिको कुशल न पूछकर पुत्रकी कुशल पहले पूछी ?

मंथराने कहा, रामजीकी तो कुशल-ही-कुशल है, रामका तो कल राज्याभिषेक होनेवाला है।

रामका राज्याभिषेक होना है, सुनकर कैकेयीको बहुत आनन्द हुआ। कैकेयीके गलेमें चन्द्रहार था। उसको उतारकर कैकेयीने मंथराको दिया और कहा, मेरे रामका राज्याभिषेक होनेवाला है। मंथरा ! आज तो मै तुझे चन्द्रहार देती हूँ परन्तु कल जो तू माँगेगी, वही दूँगी।

न मे परं किंचिदितो वरं पुनः
प्रियं प्रियार्हे सुवचं वचोऽमृतम्।
तथा ह्यवोचस्त्वमतः प्रियोन्तरं
वरं परं ते प्रददामि तं वृणु ॥

मंथरा! तू मेरे पाससे अतिप्रिय वस्तु प्राप्त करने योग्य है। मेरे लिए तो रामजीके राज्याभिषेकके समाचारसे बढ़कर प्रिय और अमृत-समान दूसरा कोई वचन नही। ऐसी परमप्रिय वार्ता तूने मुझसे कही है। तूने ऐसा प्रिय समाचार कहा, इसलिए तेरी इच्छामें आवे, वह माँग ले। मै तुझको अवश्य ही दूँगी। मंथरा! मैने तो अनेक बार परीक्षा की है। रामका मेरे ऊपर कौशल्याकी अपेक्षा भी अधिक प्रेम है।

कौशल्या मां समं पश्यन्सदा शुश्रूषते हि माम् ॥

राम मेरा कहा करता है। मै तो विधातासे प्रार्थना करती हूँ कि दूसरे जन्ममे राम मेरी कोखसे पुत्र होकर आवे।

जौं बिधिजनमु देइ करि छोहू। होहुँ राम सिय पूत पुतोहू ॥
प्रान तें अधिक रामु प्रिय मोरें। तिन्ह कें तिलक छोभु कस तोरें ॥

राम मुझको प्राणसे भी अधिक प्रिय है परन्तु यह तो कह कि रामके तिलकसे तुझे क्यों इतना दुःख हो रहा है ?

मंथराने बराबर वही नाटक चालू रखा। कैकेयीका दिया हुआ सुन्दर चन्द्रहार फेंक दिया। एकदम मूर्च्छा आ गयी हो, ऐसा ढोंग करके वह गिर पडी। मंथरा भूमिके ऊपर पडी, तब कैकेयीको बहुत आश्चर्य होने लगा। कैकेयीको ठीक लगा नही। वह विचार करने लगी, मैने प्रेमसे चन्द्रहार दिया और इसने फेंक दिया है ? परन्तु इसको ऐसा क्या दुःख है ? मूर्च्छा क्यों आयी हुई है ?

मूर्च्छामें पड़ी मंथरा बोली—राम राजा हों अथवा भरत राजा हों, मेरा तो कोई स्वार्थ नही, मै कुछ दासीसे···रानी तो होनेकी नही, परन्तु मेरा यह स्वभाव ही बहुत खराब है। तुम्हारा अकल्याण मुझसे सहन होता नही। रामका राज्याभिषेक होना है यह सुनकर ही तुमको इतना सुख है, परन्तु मुझको तो बहुत दुःख होता है। परन्तु अब मैं नही बोलूंगी। अब मै बोलूंगी तो तुमको ऐसा लगेगा कि तुम्हारे घरमें कुछ कलह जगाने आयी हूँ। मुझे कलह जगानेसे क्या लाभ ? राम राजा हों अथवा भरत राजा हो, मुझे कोई स्वार्थ नहीं। अब मै किसी दिन भी तुम्हारे आगे नही बोलूंगी।

मंथराने कैकेयीके मनके ऊपर ऐसी छाप डाली कि मुझे कोई स्वार्थ नहीं। मुझसे तो तुम्हारा बिगड़ता हुआ काम अथवा तुम्हारा दुःख, देखा जाता नही, इसलिए मैं तुमसे कहने आयी थी परन्तु कोई बात नहीं। तुमको तो राज्याभिषेक होना है, ऐसा सुनकर ही अधिक आनन्द होता है तो ठीक है। मुझे ठीक लगे या न लगे, मुझे कुछ बोलना ही नहीं है।

मूर्च्छामें पड़ी-पड़ी मंथरा बड़बड़ाती थी। कैकेयी उसे सुनती थी। कैकेयीने विचार किया कि यह जो भी बोल रही है वह कुछ बुरी बात भी नहीं है। राम राजा हों अथवा भरत राजा हों, इसका क्या स्वार्थ ? मेरे साथ इसका बहुत लगाव है, इस कारणसे यह कुछ खास बात कहने मेरे पास आयी है। चन्द्रहार फेंक दिया, यह मेरी समझमें नहीं आया परन्तु अब इसका तिरस्कार न करके इसे प्रेमसे मनाऊँगी।

कैकेयी मंथराके पास बैठ गयी और उसकी पीठपर हाथ फेरने लगी। मंथराका स्पर्श करनेसे कैकेयीकी बुद्धि बिगड़ गयी। अति कामीका, अति पापीका स्पर्श करना नही। स्पर्श करनेसे उनके परमाणु अपनेमें आ जाते हैं। स्पर्शसे अनेक दोष उत्पन्न होते है। बिना कारण किसीको भी स्पर्श न करो। किसीको छूना, किसीको न छूना, ऐसी जो स्पर्श-मीमांसा अपने ऋषियोंने की है, वह बहुत समझकर की है। इसमें किसी जीवका तिरस्कार नही किया गया है। आत्मा तो शुद्ध है, परन्तु सबका शरीर शुद्ध नहीं। कदाचित् स्थूल शरीर भले ही ठीक हो, परन्तु सूक्ष्म शरीर बिगड़ा हुआ हो तो वह दूसरोंको बिगाड़ देता है। जिसका चरित्र अति शुद्ध न हो, उसके हाथका पानी भी पीना उचित नही।

कैकेयीने मंथराका स्पर्श नही किया था, तब तक कैकेयीकी बुद्धि नहीं बिगड़ी थी परन्तु जहाँ मंथराका स्पर्श किया कि बुद्धि बिगड़ गयी। कैकेयी मंथराको मनाने लगी। तू ठीक कह रही है, तुझे क्यों इतना अधिक दुख हो रहा है। तू मुझको बहुत अच्छी लगती है, तूने मेरी बहुत सेवा की है।

मंथराने कहा—मैंने तुम्हारा इतना खाया है। तुम्हारे कपड़े मैंने पहने हैं। कैकेयी मंथराको पीहरसे लेकर आयी थी। मंथराका जन्म अयोध्याजीमे हुआ नहीं था। जिसका जन्म अयोध्याजीमें होता है, उसके हृदयमें कलिका प्रवेश नही होता। मंथरा कैकय देशकी थी। कैकेयी जिस समय पीहरसे अयोध्या जाने लगी, उस समय इनके पिताने इनसे पूछा कि मै तुझे क्या दूं? उस समय कैकेयीने कहा—मै तो अयोध्याकी रानी होकर जा रही हूँ। वहाँ सब कुछ है। मुझे किसीकी, जरूरत नही परन्तु यह मंथरा मुझको बहुत अच्छी लगती है। इसलिए कैकेयी पीहरसे मंथराको लेकर आयी थी?

कैकेयी जिस समय मंथराको मनाकर पूछने लगी, उस समय मंथराने कहा—तुम्हारा बिगडे, यह मुझसे देखा नही जाता परन्तु मुझको बोलनेमे भय लगता है।

कैकेयीने कहा—तू जो कहेगी वह करनेको मैं तैयार हूँ। तेरे मनमें जो है उसे ठीक-ठीक कह दे। मुझको तो ऐसा लगता है कि मेरा राम मेरी बहुत सेवा करता है।

मंथरानें कहा—वे दिन अब चले गये। रामको आज तक स्वार्थ था, और इसीसे वह तुम्हारी सेवा करता था। राजा हुए पीछे राम पहले जैसा रहेगा नही। कमल, पानीमें उत्पन्न होता है। कमलको पुष्टि देनेवाले सूर्यनारायण हैं। फिर भी जब कमल पानीसे अलग होता है, तब सूर्यनारायण ही उसको सुखा डालते हैं। कमल पानीमें हो, तब तक ही सूर्यनारायण उसे पुष्टि देते हैं। राम जब तक राजा हुए नही थे, तब तक तुम्हारी सेवा करते थे परन्तु आनेवाले कल रामके राजा हुए पीछे तुम आशा रखना नही कि ये तुम्हारी सेवा करेंगे।

मैं तुमसे ठीक कहती हूँ, यह सब कौशल्याकी करतूत है। कौशल्याने कपट किया है। राजा तुम्हारे अधीन रहते हैं, वह कौशल्याको तनिक भी सुहाता नही। कौशल्या सोचती हैं कि सब मेरी सेवा करते हैं, परन्तु इस कैकेयीको बहुत अभिमान है कि राजा इसके अधीन हैं, इससे मेरी सेवामे वह रहती नही। उस काँटेको निकालनेके लिए ही कौशल्याने यह कपट किया है। घरके छोकरा—भरत और शत्रुघ्न ननिहालमे हैं, और कल ही रामका राज्याभिषेक होनेको है, इसका क्या अर्थ होता है? उसका तुमने कुछ विचार किया? तुमको तो खाना, पीना और पलगमे सोते रहना ही अच्छा लगता है।

कामी राजा मुखसे मीठे होते हैं और मनके मैले होते है। राजा दशरथ तुम्हारे महलमें आते हैं और तुमको ऐसा बताते हैं कि तुम इनको बहुत प्यारी हो, परन्तु तुम्हारा कहा तो वे कुछ करते नही। वे तो कौशल्याजी जो कहती हैं वही करते हैं।

स्त्रीको किसी दिन पतिकी निंदा सुननी नही चाहिए। मंथराने महाराज दशरथकी बहुत निंदा की। कैकेयी वह सुनती रही। मंथराकी हिम्मत बढ गयी। वह आगे कहने लगी।

राजा दशरथ कपटी है। मन मलीन मुँह मीठ। कौशल्याके कहनेसे ही भरतको ननिहाल भेजा है। रोज रातको महाराज दशरथ तुम्हारे महलमें आते हैं, परन्तु आज तक किसी दिन तुमको खबर दी है कि रामका राज्याभिषेक होनेको है? चौदह-पन्द्रह दिनसे राज्याभिषेककी तैयारी हो रही है, और तुमको आज ही खबर पड़ी है। यह कपट है। मैं जानती हूँ कि सूर्यवंशकी यह रीति है कि बड़ा पुत्र ही राजा हो परन्तु मैंने जो एक बात सुनी है, उसके सुननेके पीछे तो मुझको रात्रिमे निद्रा आती नही, दिनको भूख लगती नही। मुझको बहुत घबराहट होती है।

कैकेयीको मंथरामे विश्वास हुआ। उन्होंने पूछा—तूने क्या सुना है? मंथराने कहा—मैंने ऐसा सुना है कि कल रामके राजा होनेपर भरत कैदमे होगे। लक्ष्मण इनके खास मंत्री होगे। भरतको जान-बूझकर कौशल्याने ननिहाल भेजा है। घरके पुत्र तो घरमें नही है और फिर राज्याभिषेककी इतनी शीघ्रता करनेकी क्या जरूरत है? कौशल्याको तुम्हारे प्रति बहुत मत्सर है।

मंथराने पुराणोंकी अनेक बातें कैकेयीको सुनायीं। शोक किस रीतिसे त्रास देता है, वह कैकेयीके मनमें आये, इसलिए कहा—मैंने तो ऐसा सुना है कि कल रामका राज्याभिषेक हुए पीछे तुम्हे अयोध्यामे रहना होगा तो कौशल्याके घरका पानी भरना पड़ेगा। कौशल्याकी दासी होकर ही तुम अयोध्यामें रह सकोगी।

रामे राज्यपदं प्राप्ते कौशल्यायाश्च कैकयि।
दासी भविष्यसि त्वं हि अतो मद्वचनं कुरु॥

मुझको तो कोई स्वार्थ नहीं। यह तो तुम्हारा बिगड़ता है, वह मुझसे देखा नहीं जाता, इसीसे कहने आयी थी। राम कैसे सरल हैं, रामकी माँ कैसी भोली है, वह तुम क्या जानो? ये तो कपट करनेमें बहुत होशियार है।

मंथराके वचन सुनकर कैकेयी बहुत घबरा गयी। शरीरमें पसीना निकल आया। भविष्य अंधकारमय दिखाई देने लगा। कैकेयीने मंथरासे कहा—मैं क्या करूँ? मुझको तीन दिनसे खराब स्वप्न आ रहे है। मैं घबरा गई हूँ। ये स्वप्न विधवा होनेके चिह्नरूप हैं, ऐसा कैकेयी समझती नहीं थी। कैकेयी विचारने लगी—मेरे भरतको इतना अधिक दुःख सहना पड़ेगा? वह हताश हो गयी। रोने लगी।

तब मंथरा उसको समझाने लगी—तुम रोओ मत। अभी बाजी तुम्हारे हाथमें है। मैं जो कहूँ, वह करना, कैकेयीने कहा—मंथरा! मैं जानती नहीं थी कि तुम्हारी बुद्धि ऐसी है। तुम बहुत बुद्धिमान हो। तुम अब मुझको कुएँमे गिरनेको कहोगी तो मैं कुएँमें गिर जाऊँगी। मै तुम्हारे अधीन हूँ। तुम जो कहोगी वह करनेको तैयार हूँ।

मंथराको विश्वास हुआ कि कैकेयी अब उसके अधीन हो गयी थी। उसने कहा—तुम रोओ नही। प्रभु करेंगे तो तुम्हारे भाग्यका उदय होगा, ऐसा मुझको लगता है। जो कौशल्याने तुम्हारे विरुद्ध कपट किया है, विधाता उसके ही प्रतिकूल होंगे। उसको ही रुलायेंगे। एकबार तुमने मुझसे बात कही थी कि महाराज दशरथ के पास तुम्हारे दो वरदान थातीस्वरूप रखे हुए हैं। वे दोनों वरदान माँगकर आज तुम अपनी छाती ठंडी करो।

एक बार देवता और दानवोंके बीच युद्ध हुआ। उस समय आकाशवाणी हुई कि जिसके पक्षमे अयोध्यापति राजा दशरथ होंगे, वह जीतेगा। यह सुनकर पवनदेव एकदम महाराज दशरथके पास पहुँच गये और युद्धमे देवताओंकी सहायता करनेके लिए प्रार्थना की। महाराज दशरथ देवताओंकी मदद करने गये। साथमे रानी कैकेयी भी थी, कैकेयी बहुत सुन्दर थी, वह बहुत बहादुर भी थी। राजा दशरथका दानवोंके साथ तुमुल युद्ध हुआ। इसमे महाराज दशरथके रथकी धुरी टूट गयी और रथ गिरनेका समय आया। कैकेयीने वह देखा। उसने तुरन्त ही धुरीकी जगह स्वयं का वज्र जैसा सीधा हाथ दो पहियोके बीचमें लगा दिया और रथको टिकाये रखा। महाराज दशरथने दानवोंको पराजित किया। कैकेयीके पराक्रमसे महाराज बहुत प्रसन्न हुए और रानीसे दो वरदान माँगनेको कहा। तब कैकेयीने महाराज दशरथसे कहा।

तव्येव तिष्ठतु चिरं न्यासभूतं ममानघ।
यदा मेऽवसरो भूयात्तदा देहि वरद्वयम्॥

वरदान हमारी थातीरूपमें तुम्हारे पास ही भले ही रहे आवें। मुझको जब इच्छा होगी, जब कुछ ऐसा अवसर आवेगा, तब मैं माँग लूंगी। तब महाराज दशरथने कहा—ठीक है, तुम जब माँगोगी, तब तुमको दे दूंगा।

मथराने इन दो वरदानोंकी याद दिलाते हुए कैकेयीसे कहा—अभी बाजी तुम्हारे हाथमे है। आज अवसर आया है। तुम राजासे वे दो वरदान माँग लो।

कैकेयी भोली थी। उसने मंथरासे पूछा—वरदानमें मैं क्या मांगूं ?

मंथराने कहा—अभी क्या माँगना है, वह सब भी मुझे समझाना पड़ेगा ? तुमको भी अक्ल है या नही ? विचार करके, योग्य लगे, वह माँग लो।

कैकेयीने कहा—तुम जैसा समझाओगी, वैसा ही माँगूंगी। तुम कहोगी वही करनेको तैयार हूँ। मंथराने कहा—महाराज दशरथ आज महल में आवे तब दोनों वरदान माँग लो। प्रथम वरदान माँगो कि राम-राज्याभिषेककी जो तैयारी हुई है उससे मेरे भरतका राज्याभिषेक करो। दूसरा वरदान राम-वनवासका माँगो।

रामाय दण्डकारण्यं यौवराज्यं सुताय च।

जिस कौशल्याने तुम्हारे साथ कपट किया है उस कौशल्याका पुत्र वनमें जाय। मैंने सुना है कि चौदह-चौदह दिनसे राम-राज्याभिषेककी तैयारी चल रही है, परन्तु राजाने तुमसे उसकी बात सामान्यरूपसे भी की नहीं। इसलिए तुम चौदह वर्षका राम-वनवास माँगो।

मंथराने यह क्रम सुझाया कि पहले भरतके लिए राज्य माँग लो और दूसरा वरदान राम-वनवासका माँग लो। मंथरा जानती थी कि महाराज दशरथका रामजीमें अतिशय प्रेम था। कैकेयी राम-वनवासका वरदान प्रथम माँगे और कदाचित् महाराज दशरथको मूर्च्छा आ जाय तो भरत-राज्याभिषेकका वरदान माँगनेसे ही रह जायेगा। इससे मंथराने कैकेयीसे कहा कि पहले वरदानसे भरतके लिए राज्य माँग लो और दूसरा वरदान राम-वनवासका माँगो। तुम्हारे भाग्यका उदय होने वाला है। तुम सुखी होगी। मंथराने इस रीतिसे कैकेयीको बहुत शिक्षा दी।

कैकेयीने कहा—अब राजाके घर आनेपर ये दो वरदान मैं माँगूंगी। उनको देने ही पड़ेंगे। मुझसे कहा है कि जो माँगोगी वही दूंगा। दो वरदान थातीस्वरूपमें मैंने रखे हैं।

मंथरा कैकेयीको समझाने लगी—उतावलीसे काम बिगड़ता है। बहुत सावधान होकर काम करना है। महाराज दशरथको तुम सीधे-सीधे कहोगी कि रामको वनवास दो, तो वह कभी रामको वनमें भेजेंगे नहीं। तुमको बराबर कपट करना पड़ेगा। तो ही अपना काम बनेगा।

कैकेयीने पूछा—मुझे कपट करना है, वह किस प्रकारसे करना है? कैकेयी भोली थी। वह मंथराके अधीन हो गयी थी। मंथराने समझाना प्रारम्भ किया—प्रथम तो इस कुंकुम-तिलकको छुट्टी दो। शास्त्रमें लिखा है कि चाहे जितना दुःखका प्रसंग आवे तो भी सौभाग्यवती स्त्री कुंकुम-तिलकका तनिक भी अपमान न करे। फिर भी मंथराने ऐसा सिखाया कि कुकुंम-तिलकको छुट्टी दो, वस्त्र-आभूषणों को फेंक दो। काले वस्त्र पहनो। कोपभवनमें घुस जाओ, और धरतीके ऊपर पड़ जाओ। महाराज दशरथ आकर तुमको मनायेंगे कि कैकेयी तू माँग, तू माँगेगी वही दूंगा परन्तु माँगना नहीं वे तो मनके मैले हैं। प्रारम्भ में ऐसा बोलेंगे परन्तु तुम राम वनवासका वरदान माँगोगी, वह तुमको नहीं देंगे। राजा दशरथ सब कुछ दे सकते हैं, परन्तु रामको आँखोंसे दूर नहीं कर सकते। वे बारंबार तुमको मनावें, तुम्हारे चरणोंके ऊपर हाथ फेरें परन्तु एक अक्षर भी बोलना नहीं। राजाको आँख उठाकर देखना भी नहीं। उनका तिरस्कार करना कि मेरे

साथ बात मत करो, तुम कौशल्याके घर जाओ। राजा दशरथ अनेक प्रकारसे तुमको मनावेंगे, परन्तु तुम मानना नही। वे तुमसे कहेंगे—माँगो, तुम जो माँगोगी वही देनेको तैयार हूँ। राजाको रंक बना दूँ, रंकको राजा बना दूँ। परन्तु एक अक्षर भी मुँहमें-से निकालना नही। बहुत व्याकुल हुए महाराज दशरथ जब ऐसा बोले कि मैं रामकी सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि तुम जो माँगोगी वही तुमको दूँगा, तब ही माँगना। राम-शपथमें राजाको बाँधनेके उपरान्त ही तुम वरदान माँगना। नही तो राजा मुकर जायेंगे।

मंथराकी बात कुछ गलत नही थी। महाराज दशरथ नरकमे जानेको तैयार थे, परन्तु रामको आँखोंसे दूर करनेको तैयार नही थे। महाराज दशरथकी ऐसी इच्छा थी कि मैं झूठ बोलूँ, उसका समस्त पाप मेरे माथे भले ही आवे, परन्तु मेरे राम मेरी आँखोंसे दूर न जायँ परन्तु महाराज दशरथ श्रीरामकी सौगन्ध ले बैठे थे और इसी कारण ही रामजी वनमे गये। उस समय महाराज दशरथने मनाही की नही। उन्होने रामजीसे वनमें जाओ, ऐसा कहा नही, फिर भी रामजी वनमे जाने लगे तो ना भी नही की, कारण कि इनको ऐसा लग रहा था कि मैंने रामजीकी सौगन्ध ली हुई है। मैं राम-शपथसे बँधा हुआ हूँ।

मथराने ही यह पक्की शिक्षा कैकेयीको दी थी कि महाराज दशरथ रामकी सौगन्ध न लें तब तक वरदान माँगना नही।

भूपति रामसपथ जब करई। तब मागेहुँ जेहिं बचनु न टरई॥

मथराकी यह करामात थी। कैकेयीको यह ठीक लगी। इसने कहा—राजा आज आयेंगे उस समय मैं भी कपट करूँगी। उनको बता दूँगी। मंथरा! तूने मुझको बहुत सुन्दर शिक्षा दी है। मेरा पुत्र राजा होगा, तब मैं तेरा सम्मान करूँगी, तुझको अनेक गाँव दिलवा दूँगी।

मंथरा कैकेयीको इस रीतिसे शिक्षा देकर वहाँसे चली गयी। कैकेयीने वस्त्र-आभूषण उतारकर फेंक दिए। कोपभवनमें जाकर वह धरतीपर जा पड़ी। मानव, कुसंग-से दुखी होता है। कैकेयीको मंथराका कुसंग प्राप्त हुआ। सत्संगसे मनुष्यको अपने दोषो-का भान होता है, वह सावधान होता है, उसके अन्तरमे विवेक जगता है, उसका स्वभाव सुधरता है और वह सुखी होता है। कुसंगसे ही मानव बिगड़ता है।

श्रीमहादेवजी पार्वतीजीसे कहते हैं।

अतः सङ्गः परित्याज्यो दुष्टानां सर्वदैवहि।
दुःसङ्गी च्यवते स्वार्थाद्यथेयं राजकन्यका॥

दुष्ट लोगोंके संगसे सदैव दूर रहना चाहिए। नहीं तो पतन होते देरी नहीं लगती। परमात्मा श्रीराम कृपा करते हैं तब अधिक संपत्ति देते नहीं, सत्संग देते है। साधारण मनुष्य ऐसा समझता है कि बहुत पैसा मिले, संसारका सुख अधिक मिले, वही प्रभुकी कृपाका फल है। अरे, जिसको बहुत पैसा मिलता है वह भाग्यशाली नही। अति-संपत्ति मनुष्यको प्रमादी बनाती है। संपत्ति जिसको अतिशय मिलती है उसमें विकार-वासना बढती है। लौकिक सुख मिले तो जीव ईश्वरसे विमुख होता है। लौकिक सुखका प्रयत्न सफल न हो तो मानना चाहिए कि ठाकुरजीने विशिष्ट कृपा की है।

ग्रंथोंमें ऐसा वर्णन आता है कि परमात्मा जिस जीवपर अधिक कृपा करते हैं, उसे संसारका सुख—लौकिक सुख अधिक नहीं देते। शान्तिसे विचार करोगे तो ध्यान-में आवेगा कि संसारका सुख तो पशु-पक्षी भी भोगते हैं। चकवा-चकवी डोलते फिरते हैं, मकान बनाते हैं। बालकोंको भी बड़ा करते हैं। बालकोंको जन्म देना, उनका लालन-पालन करना, विवाह करना इत्यादि तो यह जीव अनेक जन्मोंसे करता ही आया है। कितनी ही बार यह जीव पति हुआ, पत्नी हुआ। इसकी कोई गिनती नहीं। फिर भी इसको शान्ति कहाँ मिली है?

भगवान कृपा करते है तो संसारका सुख अधिक नहीं देते, सत्संग देते है। संसार-का सुख प्रारब्धका फल है, सत्संग परमात्माकी कृपाका फल है। जिस जीवके ऊपर परमात्मा कृपा करते है उस जीवको वे संतोंका संग देते है। सत्संगकी महिमा बहुत बड़ी है। जो सत्संग करते हैं वे हो संत बनते हैं। तुम्हारी अपेक्षा ज्ञान, भक्ति और वैराग्यमें जो आगे बढ़े हुए है, उनका संग करो, उनका अनुकरण करो। जिनको संसारका सुख बहुत अच्छा लगता है, ऐसे लोगोंसे दूर रहो। विलासीके संगको ही कुसंग कहते है। अतिकामीके संगको ही कुसंग कहते हैं।

साधारणतया मनुष्य जन्मसे बिगड़ता हुआ होता नहीं, कुसंगसे बिगड़ा है। संग-का रंग मनको लगता है। तुम्हारा जन्म हुआ था, तब तुमको गर्म पानी पीनेकी टेव थी? जन्म हुआ, तब किसीको चाय पीनेकी आदत नही थी। जन्म हुआ तब बालकको कोई व्यसन नहीं था। वह शुद्ध था। उसको पाप करनेकी अक्ल भी नहीं थी। उसको कपट करना आता नहीं था। बालक तो भोला होता है। अनेक बार माँ बाप ही बालकको कपट करना सिखाते हैं। बालकको कपट करनेकी अक्ल नही होती। बाल्यावस्थामें सब ही ठीक होते हैं। बड़े हुए पीछे जिनके संगमें आते है उनका रंग मनको लगता है।

सत्संग प्रभुकृपासे मिलता हैं, परन्तु कुसंगसे बचना तुम्हारे हाथमें है। तुम्हारा लक्ष्य है परमात्माके चरणोंमें जाना। तुम्हारा लक्ष्य और अन्य जिसका लक्ष्य एक

समान है, उसका ही संग करो। किसीका लक्ष्य काम-सुखका हो, पैसेका हो, उसके संगमें तुमको तनिक भी लाभ होगा नही, नुकसान ही होगा। कुसग अर्थात् अतिकामीका संग अतिलोभीका संग, व्यसनीका संग या नास्तिकका संग। जिसको परमात्माका भय नहीं, उसका संग भी कुसंग है। जो ससार-सुखमे रचा-पचा रहता है उसका संग कुसग है। मानव-जीवन संसार-सुख भोगकर नष्ट कर डालनेके लिए नही, मानव-जीवन परमात्माके लिए है। प्रारब्धसे पैसा मिले तो उसका उपभोग संसारसुख भोगनेमे, शरीर और इन्द्रियोंको लाड़ लड़ानेमें नही, अथवा उसका केवलमात्र संग्रह भी करना नही। पैसेका सदुपयोग करना।

पानी बाढ़ै नाव में, घरमें बाढ़ै दाम।
दोनों हाथ उलीचिए, यही सयानो काम॥

अरे, जिस पैसेका सदुपयोग तुम कर सके नही, उस पैसेका सदुपयोग तुम्हारे छोकरे क्या कर सकते हैं?—कितने ही लोग ऐसी अपेक्षा रखते हैं कि छोकरोके लिए खूब इकट्ठा कर लो, जिससे बेचारे सुखी हो। छोकरोके लिए रखना, परन्तु विवेकसे रखना। अधिक रक्खोगे तो वे प्रमादी होंगे, आलसी होंगे, विलासी होंगे। पैसा जीवनका लक्ष्य नही, परमात्मा ही जीवनका लक्ष्य है। संसारका कोई भी सुख जीवनका लक्ष्य नहीं। भजनानंद ही जीवनका लक्ष्य है।

सत्संग मिले तो करना, और सत्संग न मिले तो सबका संग छोड़कर अलग रहना। किसीका तिरस्कार न करो, परन्तु जिसको भक्तिका रग लगा नही, जिसको संसारका सुख बहुत मीठा लगता है, ऐसे कामी, विलासी गृहस्थोंका सग न करो। नहीं तो तुम्हारा पतन होगा। भागवतमे वृत्रासुर-वधकी कथा आती है। प्रभुने वृत्रासुरका उद्धार किया, उससे पहले उसने प्रभुकी सुन्दर स्तुति करते हुए कहा है।

ममोत्तमश्लोकजनेषु सख्यं संसारचक्रे भ्रमतः स्वकर्मभिः।
त्वन्माययाऽऽत्माऽऽत्मजदारगेहेष्वासक्तचित्तस्य न नाथ भूयात्॥

कर्मानुसार मुझे संसारके चक्करमे भटकना पड़े तो हे नाथ! मैं इतना ही माँगता हूँ कि मुझको भगवानके लाड़ले, उत्तम वैष्णव जनोका सत्सग मिले, जो लोग तुम्हारी मायामें फँसे हुए हैं और शरीर, घर, स्त्री, पुत्रादिमे आसक्त हैं, उनका संग मुझको फिर कभी नहीं हो। कामीके संगसे मनुष्य इन्द्रियोका दास बनता है। कोई जितेन्द्रिय महापुरुष मिलें, तो उनका संग करो। ऐसा न मिले तो श्रीराम-नामका सग करो, रामायणका सग करो। कुसंगसे जीवन बिगड़ता है। कैकेयीका रामजीमे बहुत प्रेम था परन्तु कैकेयीको मंथराका कुसंग हुआ। इससे कैकेयीकी बुद्धि बिगड़ गयी।

(३९)

दो वरदान

महाराज दशरथका नियम था कि वे दरबारका काम-काज पूरा होनेपर सायंकालमें पहले कैकेयीके महलमें जाते थे। महाराज पधारते तब कैकेयी रोज द्वारपर खड़ी रहकर उनका स्वागत करती थी।

नित्यके नियमके अनुसार आज महाराज दशरथ पधारे, तो कैकेयी दीखी नहीं। महाराजको आश्चर्य हुआ कि कभी ऐसा होता नहीं, आज क्या बात हुई? उन्होंने दासियोंसे पूछा—महारानी कहाँ हैं? दिखाई नहीं पड़ती?

ता ऊचुः क्रोधभवनं प्रविष्टा नैव विद्महे।
कारणं तत्र देवत्वं गत्वा निश्चेतुमर्हसि॥

दासियोंने कहा—हमको कुछ विशेष खबर नहीं, परन्तु वह कोप-भवनमें जाकर पड़ी हैं। महाराज दशरथ विचारमें पड़ गये। इन्होंने कोप-भवनमें प्रवेश किया तो देखा कि कैकेयीने वस्त्र-आभूषण फेंक दिए थे, अमंगल-वेष धारण किया था। धरतीके ऊपर पड़ी थी। महाराज दशरथको यह ठीक नहीं लगा। कैकेयीके चरणोंके पास जाकरके महाराज बैठे। चरणोंके ऊपर हाथ फेरने लगे और पूछा—कैकेयी! तुमको क्या हुआ है? जब-जब महाराज दशरथ एकान्तमें कैकेयीके पास आते थे तब कैकेयी बारम्बार कहती थी कि रामका राज्याभिषेक करो, इससे दशरथजीने कैकेयीसे कहा—तुमने मुझसे अनेक बार कहा था, इसलिये तुम्हारी इच्छाके अनुसार कल रामका राज्याभिषेक होना है। तुम सुन्दर वस्त्र-आभूषण धारण करो। महाराज दशरथ महान् ज्ञानी थे, बुद्धिमान थे, राजनीतिमें कुशल थे परन्तु वे स्त्री-चरित्रको समझ नहीं सके।

रामजीका राज्याभिषेक होना है—ऐसा सुननेपर कैकेयीने अतिशय क्रोध किया। क्रूर होकर उसने महाराजसे कहा—मुझसे बोलना नहीं। जाओ तुम यहाँसे। मुझसे क्यों कहने आये हो?

राजा दशरथने पूछा—कैकेयी! तुम क्यों नाराज हो? तुम्हारा किसीने अपमान किया है क्या? क्या हुआ? मुझसे कहो, मैं तो तुम्हारे अधीन हूँ।

स्त्रीके अतिशय अधीन होना पाप है। शास्त्रमें लिखा है कि जो पुरुष स्त्रीके अतिशय अधीन रहता है उसे देखनेमें भी पाप लगता है। स्त्रीके अतिशय अधीन रहनेवाला बहुत दुःखी होता है, उसका पतन होता है। स्त्रीके अतिशय अधीन रहना नहीं।

स्त्रीमें विश्वास रखना, परन्तु अतिविश्वास नहीं रखना। स्त्री बोले, वह सब सोलह आना सच नही मानना।

विश्वासपात्रं न किमस्ति लोके — नारी
द्वारं किमेकं नरकस्य — नारी
किं तद्विषं भाति सुधोपमं यत् — नारी

महाराज दशरथ कैकेयीके अधीन थे। भरत, शत्रुघ्न अगर दशरथजीके पास होते तो महाराज दशरथ कैकेयीके वशमें न होते। भरतजी वैराग्यके स्वरूप हैं। शत्रुघ्न सद्विचारके स्वरूप हैं। ये दोनों दशरथजीसे दूर चले जायें तो दशरथजी कैकेयीके अधीन होते हैं। आज भरत और शत्रुघ्न अयोध्यामे नही थे, इसलिए राजा, कैकेयीके वशमें हो गये। भरतजीको रखें तो कैकेयीकी कुबुद्धिके अधीन न हों। कौशल्या, निष्काम बुद्धि है, सुमित्रा शुद्धा है, कैकेयी कुबुद्धि है।

महाराज दशरथ कैकेयीको बारम्बार मनाने लगे—अरे! तुम क्यों नाराज हुई हो? बोलो, तुम्हारी क्या इच्छा है? तुम्हारी इच्छा हो तो राजाको रंक बनाऊँ, रंकको राजा बनाऊँ। तुम्हारा किसीने अपमान किया है क्या? क्या हो गया है? आज तो मैं तुमसे आनन्दकी वार्ता कहने आया हूँ। एक बार तुम मेरी ओर देखो तो सही। महाराज दशरथ कैकेयीको अनेक प्रकारसे मनाने लगे परन्तु पहले ही इसे बहुत पाठ पढ़ाया हुआ था? मंथराने पक्की- शिक्षा दी थी। कैकेयी एक अक्षर बोलती नही थी, निःश्वास निकालती थी।

महाराज दशरथ अनेक प्रकारसे पूछने लगे—कैकेयी! तू क्यों नाराज हुई है? तेरा किसने बिगाड़ किया है? तुझे क्या चाहिये? इस अयोध्याके राज्य और मेरी समग्र राज्य-संपत्तिके साथ मैं तुम्हारे अधीन हूँ। तू आज्ञा कर। तेरी इच्छाके अनुसार मैं सब करनेको तैयार हूँ। बहुत कुछ मनानेपर भी जब कैकेयो नही बोली, तब दशरथ महाराज बहुत व्याकुल हुए।

राजा फिर कहने लगे—कैकेयी! आज तो अयोध्या नगरीका शृंगार किया गया है। सब सुखी हुए हैं, फिर तुम इस प्रकार काले वस्त्र पहनो, यह योग्य नही। अपने रामका मुझे राज्याभिषेक करना है।

रामहि देउँ कालि जुबराजू। सजहि सुलोचनि मंगल साजू॥

तुम सुन्दर वस्त्र-आभूषण धारण करो।

महाराज दशरथको अभी तक खबर नही थी कि कैकेयीके मनमें क्या था। कैकेयी केवल तिरस्कार करती रही। अत्यन्त व्याकुल होकर दशरथजी बोले—कैकेयी!

तुम्हे क्या हो गया है ? मैं तुमसे ठीक कहता हूँ । आज तक किसी दिन मैंने रामकी सौगन्ध नहीं ली । राम मुझको प्राणोंसे भी अधिक प्यारे लगते हैं । आज मैं रामकी सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि तुम जो माँगोगी, वही मैं तुमको देनेको तैयार हूँ ।

दशरथ महाराजने जो रामजीकी सौगन्ध ली, तब कैकेयीने जीभ चाटी । अब ये मेरे हाथमें आए, अब बन्धनमें आए । अब ये ना नहीं कह सकेंगे, कारण कि रामकी सौगन्ध ले ली है । क्रूर कैकेयी एकदम उठकर खड़ी हो गयी और महाराजसे कहने लगी—माँग-माँग क्या करते हो ? मैं माँगूं वह मुझको दोगे ? दशरथ महाराजने कहा—कैकेयी ! तुमको शंका क्यों हुई ? तुम जो माँगोगी वही दूंगा ।

कैकेयीने कहा—मुझको शंका होती है कि मैं माँगूं वह आप दोगे या नही ।

राजाने कहा—मैं रघुवंशका बालक हूँ ।

रघुकुल रीति सदा चलि आई । प्राण जाहुँ बरु बचनु न जाई ॥

मेरे प्राण जायें तो भले ही चले जायें परन्तु मैंने तुमको जो वचन दिया है कि तुम जो माँगोगी वही दूंगा, उसके लिए ना नहीं करूँगा । मेरा वचन मिथ्या नहीं होगा ।

दशरथ महाराज भोले थे । इन्होंने स्त्रीमें अतिशय विश्वास रखा । वह जानते नहीं थे कि कैकेयी क्या माँगेगी । उन्होंने कहा—कैकेयी ! तुम माँगो । तुम माँगोगी वही मैं तुमको दूंगा । आज मैंने रामकी सौगन्ध ली है । कैकेयीने कहा—तुम्हारा मुझे कुछ चाहिए नहीं परन्तु दो वरदान जो मैंने तुम्हारे पास थातीरूपमें रखे हैं वह मै आज माँगूंगी ।

राजा बोले—दो वरदान क्या माँगती हो, तुम चार वरदान माँग लो । ये दो वरदान लेनेके लिए तूने यह हठ किया । कैकेयी ! यह योग्य नहीं । तुम जो माँगोगी वह मैं तुमको दूंगा । कैकेयीने कहा—तुम ठीक तरह सुनो । पहला वरदान यह माँगती हूँ कि यह जो राज्यअभिषेककी तैयारी हुई है उससे रामका नहीं, मेरे भरतका राज्याभिषेक करो ।

दशरथजी यह सुनकर घबराये । पीछे मनमें विचार किया—भरत राजा हो तो मेरा राम राजी होगा । मेरे रामको तनिक भी बुरा लगेगा नहीं । इसका तो छोटे भाइयोंपर अतिशय प्रेम है । वह ऐसा कहता था कि चारों भाइयोंको गद्दीपर बैठाओ । राम कुछ भी मनमें लावेगा ही नहीं । इससे दशरथ महाराजने कैकेयीसे कहा—कैकेयी ! मैं भरतको राज्य दे दूंगा । मैं भरतका राज्याभिषेक करनेको तैयार हूँ । तू दूसरा वरदान माँग ।

कैकेयीने राजाका तिरस्कार करते हुए कहा—तुम सावधान तो हो न ? ठीक-ठीक सुनना। दशरथ महाराजने कहा—आज तुम इस प्रकार क्यो बोलती हो ? कैकेयी बोली—मुझको शंका है कि मैं जो मांगनेवाली हूँ वह मुझको दोगे कि नही। दशरथजीने कहा—तुम तनिक भी शका रखना नही, मैं तुमको दूंगा। कैकेयीने मांगा—

नव पंच च वर्षाणि दण्डकारण्यमाश्रितः।
चीराजिनधरो धीरो रामो भवतु तापसः॥

मेरी इच्छा है कि आनेवाले कल सबेरे राम वल्कल-वस्त्र पहनकर चौदह वर्षके लिए वनमें जायँ। यह दूसरा वरदान मांगती हूँ।

जैसे ही दूसरा वरदान मांगा कि दशरथ महाराज बहुत व्याकुल हो गये—मैं क्या सुन रहा हूँ ? चेहरा एकदम फीका पड़ गया, निस्तेज हो गये। महाराज बहुत घबराये और कैकेयीसे कहने लगे कि मैंने रामसे कहा है कि मै तुम्हारा राज्याभिषेक करूंगा और अब उनको वनमें किस रीतिसे भेजूं ? कैकेयी ! यह दूसरा वरदान तुम छोड़ दो। मेरे रामने तुम्हारा क्या बिगाडा है ? भरतको राज्य देनेको मै तैयार हूँ। तुम रामको घरमें रहने दो। कैकेयी ! मै तुमसे सत्य कहता हूँ कि अब मै बहुत जिऊँगा नही। राम-वियोगमें तुम मुझको मारो नही।

जीवनु मोर राम बिनु नाहीं।

राम मुझको प्राणोंसे भी अधिक प्यारे हैं। राम बहुत भोले हैं। रामने तुम्हारा क्या बिगाडा है ? तुम रोज रामकी प्रशसा करती थीं। आज तुमको यह क्या हुआ ? तुमसे सच कहता हूँ, रामकी माँ कौशल्याने मुझसे कुछ कहा नही। कौशल्याका स्वभाव बहुत सरल है। तुम्हारे लिए उनके हृदयमें प्रेम है।

कैकेयीने कहा कि अब तुम बहुत बोलो नही।

राम साधु तुम्ह साधु सयाने। राम मातु भलि सब पहिचाने॥

राम कैसा भोला है, कौशल्या कैसी भली है और तुम कैसे सज्जन हो, सयाने हो, वह सब मै जानती हूँ। मुझको मथराने सब बता दिया है। राजा दशरथके प्रेमका और कैकेयीकी निष्ठुरताका वर्णन हो सके, ऐसा सम्भव नही। कैकेयीने अति निष्ठुर होकर दशरथ महाराजका तिरस्कार करते हुए कहा कि अबलाकी तरह क्यों रोते हो ? शर्म आती नही ? तुमने कहा कि रघुकुल रीति सदा चलि आई········ वह किस मुखसे कहा था ? असत्य बोलोगे तो नरकमे पडोगे।

राजा दशरथ कैकेयीसे विनती करने लगे—कैकेयी! किसी भी दिन तू इस तरह नहीं बोलती थी, परन्तु आज क्यों इस तरह बोल रही है ? मैं तुझे ठीक कह रहा हूँ, राम वनको जायेंगे तो क्या सीताजी घरमें रहेंगी ? सीताजी अतिशय कोमल हैं। सीताजी वनमें जायें तो राजा जनकको किस प्रकार मुँह दिखाऊँगा। कैकेयी ! लक्ष्मण भी फिर क्या घरमें रहेंगे ? यह वरदान तू वापिस ले। मेरे रामको राज्यका तनिक भी लोभ नहीं। तूने मुझसे कहा था कि रामको गद्दी पर क्यों नहीं बैठाते ? एक बार नही, अनेक बार तुमने मुझसे ऐसा कहा था। इसीलिए तो मैंने रामके राज्याभिषेकको तैयारी की। परन्तु मुझको लगता है कि मैंने तुझसे पूछे बिना राज्याभिषेककी तैयारी की, यह मेरी भूल हुई। कैकेयी ! मेरी भूल हुई तो तो तू उसे क्षमा कर। कैकेयी ! रामको खबर पड़ेगी तो वें तुरन्त वनमें चले जाएँगे। वह बहुत सरल है, वह प्रसन्नतासे वनमें चला जाएगा। रामको तू पकड़कर रख, वनमें जाने मत दे। कैकेयी ! रामपर मेरा कैसा प्रेम है, यह जाननेके लिए कोई नाटक तो नहीं कर रही ? तू मेरे साथ कोई परिहास तो नही कर रही ? राम वनमें चले जाएँगे तो मेरे प्राण भी उनके पीछे-पीछे चले जायेंगे। भरतका राज्याभिषेक देखनेके लिए तू मुझे जीवित रख।

कैकेयीको महाराज दशरथ अनेक रीतिसे मनाने लगे, परन्तु वह एककी दो हुई नहीं। वह कुछ भी सुननेको तैयार नही हुई। उल्टे अधिक क्रोधसे कहने लगी—अब तुम्हारे इस कपटमें मैं नहीं आनेकी। आज तक तो तुमने मुझे बहुत धोखा दिया, मुझे मंथराने सब कह दिया है। तुम क्या समझते हो ? कैकेयी कोई चना, मुरमुरा खानेके लिए माँगनेवाली थी ? तुमको कुछ होश है कि नहीं ? कल राम वनमें न गये तो मेरा मरण निश्चित है।

कैकेयीके जो मनमें आया सो बकने लगी। महाराज दशरथ उसे मनाते हुए कहने लगे—कैकेयी ! तू यह क्या बोल रही है ? तू मेरे ऊपर दया कर। मेरे रामने तेरा कोई अपराध किया हो तो क्षमा कर। मैं भरतको राज्य देने को तैयार हूँ। कैकेयी ! मैं रामको लेकर अयोध्याके बाहर वशिष्ठजीके आश्रम में रह जाऊँगा, यहाँ नही आऊँगा परन्तु मेरे रामको तू आँखोंसे दूर न कर। मैं तेरे पग लगता हूँ, तुझे आज मेरे ऊपर भी दया आती नहीं ? मैं तुझे ठीक कहता हूँ, तू भरतके लिए राज्यकी माँग करती है, परन्तु मुझे ऐसा लगता है कि भरत गद्दी पर बैठेगा नहीं, वह मना कर देगा। चौदह वर्ष पीछे श्रीसीतारामजी सुवर्णसिंहासन पर विराजेंगे और अयोध्याकी भाग्यशाली प्रजा उनके दर्शन करेगी परन्तु मैं देखनेके लिए जीवित नहीं रहूँगा। मेरे जीवनका अन्तिम मनोरथ अधूरा रहेगा, ऐसा मुझको लगता है। भगवान शंकरकी मेरे ऊपर कृपा हो, मेरे प्राण निकले पीछे राम भले वनमें जायें परन्तु अन्तिम श्वास तक मुझको राम दीखते रहे। मेरी

दूसरी कोई इच्छा नही। कैकेयी ! मेरे रामको मेरी आँखोंसे दूर मत कर। नही तो तुमको पीछे बहुत ही पश्चात्ताप होगा। तुम मान जाओ।

राजाने कैकेयीको अनेक रीतिसे समझानेका प्रयत्न किया, परन्तु वह नही मानी। स्त्री एक बार दुराग्रह करे तो पीछे राक्षसी जैसी हो जाती है। जो कैकेयीको प्यारी लगती थी, ऐसी अनेक ब्राह्मणोंकी पत्नी आकर कैकेयीको समझाने लगी कि यह तुम क्या करती हो ? परन्तु कैकेयी किसीकी मानती नही थी।

महाराज दशरथ बहुत ही घबराये, हताश हो गये। बोले—कैकेयी ! यह तेरा दोष नही। मुझको लगता है कि मेरा काल तेरे शरीरमें आकर बैठा है।

लागेउ तोहि पिशाच जिमि, कालु कहावत मोर।

कैकेयी ! अब तू एक अक्षर भी बोलना नही। तू अपना मुँह मुझको दिखाना नहीं। तुझको जो अच्छा लगे वह तू कर। महाराज अब सूर्यनारायणको मनाने लगे—हे सूर्यनारायण ! तुम आज उदय न होना। मेरे रामको यह खबर पड़ेगी तो राम घरमें नही रहेगा, वनमें चला जावेगा। महाराजने जिह्वासे रामजीसे ऐसा कहा ही नही कि तुम वनमें जाओ। यह तो कैकेयीने ही कहा था। फलतः तुरन्त ही रामजीने वनमे जानेके लिए विदाई ले ली थी। राजाका भय सत्य था। महाराज दशरथने सूर्यनारायणसे कहा—मेरा राम अब घरमें नही रहेगा। मेरा राम वनमे जाएगा तो हे सूर्यनारायण ! तुमको भी बहुत दुःख होगा। देखना, आजकी रात पूरी न होने पावे। हे शंकर भगवान ! तुम तो आशुतोष हो, तुम तो अन्तर्यामी हो। मुझे तुम ऐसा वरदान दो। मुझे दूसरा कुछ नहीं माँगना। भले ही असत्य बोलनेका पाप मेरे सिर आवे, भले ही मैं नरकमे जाऊँ, परन्तु मेरा राम मेरी आँखसे दूर न हो। हे शंकर भगवान ! मेरे रामको ऐसी बुद्धि दो कि मुझे छोड़कर वनमें नही जाये।

महाराज दशरथ पलगपर पड़े-पडे शंकर भगवानको मनाते थे। महाराज बहुत व्याकुल थे। समस्त रात्रि नींद नही आयी। श्रीराम, श्रीराम, श्रीराम रटते हुए पड़े रहे। आधा शरीर पलंगपर था, आधा शरीर पृथ्वीके ऊपर पडा था। मनमें व्याकुल थे कि अब मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? किसमे कहूँ ? राजा दशरथका काल मानो कैकेयीमे बैठा हो और उनकी मृत्युकी घड़ी गिन रहा हो, इस प्रकार कैकेयी वहाँ बैठी थी। कैकेयीकी निष्ठुरताकी सीमा नही थी। उसका वर्णन हो सकता नही।

अयोध्याकी प्रजा श्रीराम-दर्शनके लिए आतुर थी। आतुरता भी इतनी तीव्र थी कि सबको ऐसा लग रहा था कि कब आजकी रात्रि पूरी हो और कब रामजीका राज्याभिषेक हो। श्रीसीतारामजी कल हाथीके ऊपर विराजेंगे, और हम सब दर्शन

करेंगे। लोगोंको रात्रिमें निद्रा भी नहीं आयी थी। अयोध्याकी स्त्रियाँ श्रीसीतारामजीका नाम लेकर मंगलगीत गाती थीं। अयोध्याकी प्रजा खूब आनन्दमें थी।

प्रातःकाल हुआ। राजमहलके आँगनमें लोगोंकी बहुत भीड़ हो गयी। लोग स्नान करके सुन्दर वस्त्र-आभूषण धारण करके आए हुए थे। सभी अत्यन्त उत्साह-आनन्दमें थे कि आज रामजीका राज्याभिषेक होना है। नित्य तो महाराज दशरथ प्रातःकाल चार बजे उठते थे। महाराजका यह नियम था कि वे ब्राह्ममुहूर्तमें किसी भी दिन पलगपर लेटे नहीं। प्रातःकाल चार बजे ब्राह्ममुहूर्तका आरम्भ होता है। ब्राह्ममुहूर्तकी निद्रा पुण्यका विनाश करनेवाली होती है। कितने ही तो ऐसा समझते हैं कि सुबहकी निद्रा बहुत अच्छी होती है। सुबह चार बजे पीछे चारपाईपर जिसको बहुत मजा आता है, उसको ऊपर जानेपर बहुत सजा मिलती है। सुबह चार बजनेके बाद निद्रा नहीं होती, तन्द्रा होनी है। भक्तिमें पूरा आनन्द सुबह चारसे साढ़े पाँच बजे तक होता है।

प्रातःकालमें सुबह चार बजे उठकर मानसिक सेवा करो, ध्यान करो, और जप करो, ईश्वरके साथ एक बनो। चार वर्षपर्यन्त नियमपूर्वक इसके अनुसार करोगे तो अनुभव प्राप्त होगा। प्रातःकालमें जप, ध्यान, प्रार्थना की हुई हो तो पूरे दिन परमात्मा तुमको पाप करनेसे निवारण करेंगे। प्रातःकाल परमात्माकी भक्तिमें हृदय थोड़ा पिघले तो सारा दिन आनन्दसे व्यतीत होता है।

महाराज दशरथ चक्रवर्ती सार्वभौम राजा थे। इनका नियम सवेरे चार बजे उठनेका था। नित्य तो ब्राह्ममुहूर्तमें उठते थे, परन्तु आज महाराज दशरथ क्यों नहीं जागते ? सब विचारमें पड़ गये। भाटजन, वंदीजन महाराजका सुयश कहते हुए महाराजका गुणगान करते थे, मंगलगीत गाते थे। वे शब्द महाराज दशरथके कानोंमें पड़े। महाराज दशरथ घबराये कि अब रात पूरी हो गयी, ऐसा लगता है, सूर्योदय हो गया लगता है। अब आज मुझे क्या दुःख देखना है, इसकी खबर पड़ती नहीं। राम अभी घरमें है, इसलिए अभी मेरे प्राण चले जाये तो ठीक है।

मंत्री सुमंत्रजी आ पहुँचे। उन्होंने देखा कि अभी तक किस कारण महाराज नहीं जागे हैं। उनको आश्चर्य हुआ। थोड़े घबरा भी गये। धैर्य रखकर उन्होंने अन्दर प्रवेश किया परन्तु राजमहल मानो खानेको दौडता हो, ऐसा श्मशान जैसा लग रहा था। काले वस्त्र पहने कैकेयी वहाँ बैठी थी। महाराज मूर्च्छामें थे। मंत्रीजीने रानी कैकेयीसे वन्दन करके कहा—महाराजका शरीर तो ठीक है न ? महाराजको रात्रि निद्रा तो आयी थी न।

महारानी कैकेयीने कहा—मैं कुछ नहीं जानती। सारी रात मुझे भी नींद नहीं आयी और इनको भी नहीं आयी। पूरी रात ये राम-राम रटते रहे हैं।

परी न राजहि नीद निसि, हेतु जान जगदीसु ।
रामु रामु रटि भोरु किय, कहइ न मरम महीसु ॥

अब तो इनका पुत्र आवे और बापसे पूछे । मैं क्या जानूं ? जाओ, रामको जल्दी बुला लाओ । मंत्रीजी समझ गये कि इन्हीं कैकेयीने कुछ कपट किया मालूम होता है । मंत्रीजी बाहर आए । सब लोग पूछने लगे, महाराज आज क्यों नही जाग रहे हैं ? क्या हो गया है ? मंत्रीजीने कहा—अभी जागेंगे । शरीर थोड़ा ठीक नही है । लोग घबराये । मंत्रीजी सीधे रामजीके पास गये ।

मर्यादापुरुषोत्तमकी प्रत्येक लीलामें मर्यादा थी । मत्रीजी आए, उस समय राम उठकर खड़े हो गये । रामजी, मंत्रीजीका पिताकी भाँति सम्मान करते थे । थोड़ा विचार करो । रामजी तो राजा थे और मंत्रीजी इनके सेवक थे । फिर भी रामजी मंत्रीजीको पिताके समान मानते थे । मंत्रीजीका सम्मान करते हुए रामजीने पूछा—आपका किस कारण आगमन हुआ है ?

मंत्रीजीने कहा—महाराज दशरथ आपको याद कर रहे हैं । इसे सुनते ही श्रीराम दौड़ते हुए गये । मेरे पिताजीने मुझे याद किया है, इसी बातका ध्यान रहा । रामजीको न तो वस्त्रोका ध्यान था, न पैरोंमें जूतियोंका ध्यान था । अयोध्याकी प्रजा देखने लगी कि यह क्या ? नगे पैर रामजी दौड़ते चले जा रहे हैं । श्रीरामचन्द्रजीने अन्दर प्रवेश किया, पिताजीको देखा ।

सूखहिं अधर जरइ सबु अंगू । मनहुँ दीन मनि हीन भुअंगू ॥

श्रीरामको बहुत दुःख हुआ—मेरे पिताजीकी यह दशा !

रामः पप्रच्छ किमिदं राज्ञो दुःखस्य कारणम् ।

रामचन्द्रजीने कैकेयी माँ-का वन्दन किया और पूछा—माँ ! मेरे पिताजीको क्या हो गया है ? इनको रात्रिमें निद्रा आयी थी या नही ? आज ये क्यों उदास दीख पड़ते है, इनको क्या चिंता है ? क्या दु.ख है ? मुझे पिताजीकी इच्छा—आज्ञा बताओ । पिताकी आज्ञाका पालन करे, वही पुत्र सत्पुत्र होता है ।

सुनु जननी सोइ सुत बड़ भागी । जो पितु मातु बचन अनुरागी ॥
तनय मातु पितु तोषनि हारा । दुर्लभ जननि सकल संसारा ॥

अपने पिताके लिए मैं प्राण भी दे सकता हूँ । आप तनिक भी सकोच मत रक्खो । मुझसे प्रगट कर दो ।

कैकेयीने कहा—राम ! त्वमेवकारणं ह्यत्र······ । अपने पिताके दुःखके कारण तुम्हीं हो । ये शब्द रघुनाथजीके हृदयमें बाण जैसे लगे । पिताके दुःखका कारण मैं ! अत्यन्त दुखित होकर रामजीने कहा—माँ ! मैंने ऐसा क्या अपराध किया है कि मेरे कारण मेरे पिताजीको दुःख हो रहा है ।

कैकेयीने कहा—बेटा, तेरा ऐसा कोई अपराध नहीं है ।

रामजीने कहा—ना, ना, माँ ! मेरी कुछ भूल हुई होगी और इस कारण पिताजीको कहनेमें कुछ संकोच हो रहा होगा ।

कैकेयीने कहा—ना, बेटा तुमने कोई भूल नहीं की । बात ऐसी है कि इन्होंने मुझे दो वरदान दिये थे । आज मुझे उन्हें माँग लेनेकी इच्छा हुई इसलिए माँग लिए हैं। मैंने एक वरदानमें भरतके लिए गद्दी माँगी है, और दूसरे वरदानमें ऐसा माँगा हैं कि सूर्योदय होते ही चौदह वर्षके लिए राम वनमें जायें । रामका राज्याभिषेक करूँगा, ऐसा कहा था, अब बदलेमें वनवास देनेमें इनको संकोच हो रहा है। ये बहुत शर्माते हैं परन्तु बेटा ! तुम्हारे पिताका कल्याण हो ऐसा तुम्हें करना चाहिए । वृद्धावस्थामें उनके सिरपर अपकीर्तिका, असत्य बोलनेका कलंक न लगे, यह तुम्हें सोचना चाहिए ।

सप्तसप्त च वर्षाणि दण्डकारण्यमाश्रितः ।
अभिषेकमिदं त्यक्त्वा जटाचीरधरो भव ॥

यह अभिषेक छोड़कर तपस्वी बनो ।

रामचन्द्रजीने कैकेयीको वंदन करके कहा—माँ ! मुझको तो ऐसा लगता है कि भरतकी अपेक्षा तुम्हारा मेरे ऊपर विशेष प्रेम है । मेरे ऊपर इस विशेष प्रेमके कारण ही तुमने ऐसा वरदान माँगा है । अम्ब ! तव मयि पक्षपातः । माँ ! तुम मेरा पक्षपात करती हो । मुझको ऋषि-मुनियोंका सत्संग मिले और इस रीतिसे मेरा कल्याण हो इसलिए तुम मुझको वनमे भेजती हो । माँ ! मेरा छोटा भाई भरत राजा होगा, यह सुनकर मुझको बहुत आनन्द हुआ है । माँ ! अब मैं जल्दी वनमें जाऊँगा । परन्तु—

अम्ब एक दुःखु मोहि बिसेषी । निपट बिकल नरनायकु देखी ।
थोरहिं बात पितहि दुःख भारी । होति प्रतीति न मोहि महतारी ॥

माँ ! मुझको दुःख तो यहँ होता है कि यह एक छोटी-सी साधारण बात है और पिताजीको इतना अधिक दुःख क्यों हुआ है ? इतनी छोटी बातके लिए पिताजी इतने अधिक व्याकुल हो गये ? इससे माँ ! मुझको ऐसा लगता है कि मुझसे कोई बड़ा अपराध हो गया है और इसी कारण पिताजी मुझसे कुछ कहते नहीं, मेरे साथ बात भी करते नही ।

कैकेयीने कहा—ना, ना, बेटा ! तेरे द्वारा कोई अपराध हुआ नही।

तुम्ह अपराध जोगु नहिं ताता।

कैकेयी ऐसा बोलती है कि राम निरपराध हैं, राम निर्दोष हैं। श्रीरामचन्द्रजीने महाराज दशरथको वंदन किया। मंत्रीजीने राजाको उठाया और कहा—तुम्हारा राम तुमको वंदन करता है। राजाने दोनों हाथ लम्बे करके श्रीरामको उठाकर छातीसे लगाया। वह अन्य कुछ बोल सके नही, केवलमात्र राम, राम, राम, बोलते थे। श्रीरामचन्द्रजीने कहा— पिताजी ! आप तो बहुत जानते-समझते हो। मैं आपको क्या समझाऊं ? आप तो धर्मधुरंधर हो। विपत्तिके समय महापुरुष प्राणका भी बलिदान देकर धर्मका पालन करते हैं। पिताजी ! चौदह वर्ष पीछे आपका राम वापिस आवेगा। आपके आशीर्वादसे वनमें भी मेरा कल्याण होगा। मैं अब अपनी मांको वन्दन करके जल्दी वनमें जाऊँगा। आप धीरज धरो।

महाराज दशरथ एक अक्षर भी बोल सके नही। उनके हृदयमें दावानल सुलग रहा था। उनके हृदयमें एक ही लालसा थी कि उनके प्राणस्वरूप श्रीराम जैसे भी सम्भव हो, रोके जायें, वनमें न जायें। राम बिना अब सुख कहाँ ? राम बिना प्राण किस रीतिसे टिकेंगे ?

रघुनाथ पियारे आजु रहौ ॥
चारि जाम विश्राम हमारें, छिन-छिन मीठे बचन कहौ ॥
वृथा होउ वर बचन हमारो, कैकइ जीव कलेस सहौ।
आतुर है अब छाँड़ि अवधपुर, प्रान जिवन ! कित चलन कहौ ॥
बिछुरत प्रान पयान करेंगे, रहौ आजु पुनि पंथ गहौ।
अब "सूरज" दिन दरसन दुर्लभ, कलित कमल कर कंठ गहौ ॥

महाराज दशरथका हृदय रुदन करता था। मानो कह रहा था—हे प्यारे रघुनाथ ! मेरे पास तुम रह जाओ, भले मेरा बचन खोटा हो, भले कैकेयीको क्लेश हो। अयोध्या जल्दी छोड़ जानेकी आतुरता है सो कहाँ जाओगे ? तुम्हारा वियोग होते ही मेरे प्राण चले जायेंगे। आजके दिन तो रह जाओ। पीछे जहाँ जाना हो, वहाँ जाना। अब पीछे तुम्हारे दर्शन होनेके नहीं। इस समय तो अपने कोमल हाथ मेरे कण्ठपर लगाओ। महाराज दशरथके हृदयमें ऐसे अनेक भाव उठते थे, उठ-उठकर हृदयमे ही समा जाते थे। वह एक अक्षर भी बोल सकते नहीं थे। राम, राम, राम इतने ही शब्द मुखसे निकलते थे। आँखमें-से आँसू बह रहे थे।

पिताजीको वंदन करके श्रीराम कोशल्या माँ-के पास गये। माँ-को वंदन किया। माँ-को अभी तक कुछ खबर नहीं थी, श्रीरामको आता देखकर वे बहुत प्रसन्न हुईं। कौशल्याको तो यह पता था कि आज रामका राज्याभिषेक है, उसके लिए आशीर्वाद लेने आए हैं। मेरा राम आया, यह बहुत ठीक हुआ। अब मैं इनको हाथीके ऊपर बिठाकर बड़ा वरघोडा निकालूँगी परन्तु मेरा राम बहुत शर्मीला है। इसको भूख लगेगी, परन्तु बोलेगा नही। इसलिए कौशल्याजीने रामजीसे कहा—बेटा! तुम आए, वह ठीक हुआ। आज दरबारमें बहुत समय लगेगा। तुम कुछ आरोग लो।

श्रीरामचन्द्रजीने कहा—माँ! मुझको पिताजीने वनका राज्य दिया है। अब तो मैं वनमें जा रहा हूँ। कौशल्याजी बहुत व्याकुल हो गईं। रामायणके इस प्रसंगकी कथा करते हृदयमें बहुत वेदना होती है। ऐसा होता है कि यह प्रसंग जल्दी पूरा हो तो ठीक है। कौशल्याजीको अपार दुःख हुआ।

विह्वल तन-मन, चकित भई सो, यह प्रतच्छ सुपनाये ॥

माँ-का तन-मन विह्वल हो गया। कौशल्याजीको घड़ीभर तो ऐसा लगा कि यह सत्य है कि स्वप्न है? परन्तु यह श्रीरामकी माँ थी। धीरज रखकर बोली—बेटा! अयोध्यामें अब किसीका पुण्य रहा ही नहीं। राजाका तो तुम्हारे ऊपर बहुत प्रेम था फिर एकदम तुमको वनवास क्यों दिया?

तब मंत्रीजीके पुत्रने माताजीको सब कथा सुनायी। सुनकर कौशल्याजी स्तब्ध रह गयीं। धीरे-धीरे बोलीं—बेटा! तुम वनमें जाओ, उसका मुझको बहुत दुःख नहीं। परन्तु मुझको ऐसा लगता है कि तुम्हारे वियोगमें यह अयोध्याकी प्रजा और तुम्हारे पिताजीका क्या होगा? तुम्हारा वियोग तुम्हारे पितासे सहन नहीं होगा। मैं बहुत आग्रह करती नहीं। मेरी तो एक ही भावना है कि हमारे जीते-जी तुम वनसे लौट आओ। वनके देव और वनदेवियाँ तुम्हारा रक्षण करेंगे। बेटा! मेरी एक ही इच्छा है कि मैं तुम्हारे साथ चलूँ परन्तु मेरा धर्म तो एक ही है—अपने पतिदेवकी सेवा। इनकी सेवा छोड़कर मैं तुम्हारे साथ वनमें जा नही सकती।

श्रीसीताजीको खबर पड़ी। श्रीसीताजी वहाँ आयीं। श्रीसीताजीको देखकर कौशल्याजीकी आँखें भीनी हो गयी। उनको कौशल्याजीने पास बैठाया। कौशल्याजीकी ऐसी इच्छा थी कि श्रीसीताजी घरमें रहें तो मुझको आधार होगा। मेरा पुत्र भले वनमें दुःख सहन करे, परन्तु परायी कन्या जो इस घरमें आयी है, वह दुःखी न हो। माँ-का हृदय कैसा विशाल है? कौशल्याजीने श्रीरामसे कहा—बेटा! मेरी तो ऐसी इच्छा है कि श्रीसीताजी घरमें रहे, ये घरमे रहेंगी तो मुझको आधार होगा।

श्रीरामचन्द्रजीने श्रीसीतासे कहा—माता-पिताकी सेवा करनेके लिए मैं तुमको घरमे रखता हूँ।

दिवस जात नहिं लागिहि बारा। सुन्दरि सिखवनु सुनहु हमारा ॥

चौदह वर्षका वनवास है। दिवस जाते देर नही लगती। जल्दी वनवास पूरा करके मैं वापिस आऊँगा। वनमे अतिशय दु:ख है। वनका दुःख तुमसे सहन होगा नही। तुम दुराग्रह रखना नही। तब सीताजीने दोनो हाथ जोडकर कहा।

अहमग्रे गमिष्यामि वनं पश्चात्त्वमेष्यसि।

श्रीसीताजी तो रामजीके पहले ही वनमे जानेको तैयार हो गयी। कहने लगी—मुझे पति बिना स्वर्ग भी नरकके समान है। जहाँ तुम हो वही मैं हूँ। तुम वनमे दुःख सहन करो और मैं राजमहलमें सुख भोगूँ? यह मेरा धर्म नही। मेरे कारण आपको तनिक भी त्रास नही होगा। मैं तुम्हारी सेवा करूँगी। मेरा त्याग न करो। तुम्हारे साथ ही मैं तो जाऊँगी। प्रश्न इतना ही है कि मेरे-शरीर और प्राण दोनों तुम्हारे साथ जायेंगे अथवा अकेले प्राण ही जावेंगे। साथमे जानेको कौन भाग्यशाली होगा?

चलन चहत बन जीवन नाथू। केहि सुकृती सन होइहि साथू ॥
की तनु प्रान कि केवल प्राना। बिधि करतब कछु जाइ न जाना ॥

चौदह वर्ष पीछे जब तुम वनमेंसे आओगे तब तक यह सीता जीवित रहेगी, ऐसा तुमको विश्वास हो तो भले ही मुझको घरमे रक्खो।

स्वयं वरमां हाथपकड़तां, मंगल वरत्यां चारी,
जीवनभर पालीशने तारीश, अग्निशाख तमारी।
याद करो ये कोल ने आजे, रघुकुलरीत विचारी।

सीता रामने रे, सीता रामने रे,
वीनवे नयणे आँसु ढाणी।
नयणे आँसु ढाणी, हैये दुःख भर्याछे भारी ॥

पुष्कल बातें की···सीताजी प्राण छोड देगी, ऐसा विश्वास श्रीरामचन्द्रजीको हुआ। तब श्रीरामने श्रीसीताजीको वनमे साथ जानेकी आज्ञा दे दी। लक्ष्मणजीको खबर पडी तो लक्ष्मणजी भी दौड़ते आए। लक्ष्मणजीने क्रोधमें कडुवे शब्द कहे—राजा दशरथ स्त्रीके अधीन हैं। जो स्त्रीके अधीन होता है, उसके वचनका विश्वास रखना उचित नही। अपने रामका मैं राज्याभिषेक करूँगा। राम-राज्याभिषेकमे जो कोई विघ्न करेगा उसको मारूँगा। मैं धनुषबाण लेकर खड़ा हूँ।

धनुष्पाणिरहं तत्र निहन्यां विघ्नकारिणः ।

लक्ष्मणजी खूब आवेशमें आकर बोले—श्रीरामचन्द्रजी, लक्ष्मणजीको समझाने लगे कि लक्ष्मणजी तुम क्रोध करो नहीं । यह जो कुछ दीखता है, वह सब मिथ्या है ।

यदिदं दृश्यते सर्वं राज्यं देहादिकं चयत् ।
यदि सत्यं भवेत्तत्र आयासः सफलश्च ते ।

सत्य वस्तुके लिए प्रयत्न करना योग्य है । यह सब मिथ्या है । कौन राजा है, कौन प्रजा है ? लक्ष्मण ! जीवमात्र कालके मुखमें जाता है । संसारके समस्त सुख बिजलीकी चमक जैसे क्षणिक हैं । यौवन क्षणभंगुर है । मानव, कालके मुखमें जाता है, फिर भी संसारके विषयोंको छोड़ता नहीं । सर्पके मुखमें रहता हुआ मेढ़क जो दो-चार मिनटके उपरान्त ही सर्पका ग्रास बनने वाला है वह भी मक्खी खानेका प्रयत्न करता है । लक्ष्मण ! संसारका सुख सच्चा नहीं । सत्यके लिए मानव प्रयत्न करे, यही योग्य है । जो मिथ्या है उसके लिए प्रयत्न क्या करना ? राज्यका सुख तो तुच्छ है । राज्यका हिसाब क्या ? वनमें ऋषि-मुनियोंका सत्संग होगा । वनमें जानेसे मेरी माँ राजी होगी, और पिताजीकी आज्ञाको मैं पाल सकूँगा। आज तो धर्मका पालन करनेका सुन्दर अवसर मुझको मिला है। इसलिए लक्ष्मण ! तुम क्रोध करो नहीं । क्रोध जैसा कोई शत्रु नहीं । क्रोधसे पुण्यका नाश होता है ।

श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीको उपदेश किया । लक्ष्मणजीने रामजीके चरणोंमें वंदन करके कहा—आपने मुझको ज्ञान दिया है । ठीक है, मैं कुछ करूँगा नहीं । परन्तु मुझे अयोध्यामें रहना नहीं । जहाँ राम हैं, वहाँ ही मैं रहूँगा । मैं तुम्हारे साथ जाऊंगा । तुमको अकेले वनमें नहीं जाने दूंगा । मुझको आज्ञा दो ।

रामजीने कहा—लक्ष्मण ! तुमको अयोध्यामें रहकर सबका रक्षण करना है । माता-पिताकी सेवा करनेके लिए घरमें रहना है । लक्ष्मणजीने कहा—माता-पिता तुम हो ।

गुर पितु मातु न जानउँ काहू । कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू ॥
जहँ लगि जगत सनेह सगाई । प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई ॥
मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी । दीनबन्धु उर अंतरजामी ॥

तुम मेरा त्याग करोगे तो मैं किसकी शरणमें जाऊंगा ? मेरा त्याग न करो । तब श्रीरामचन्द्रजीने कहा—तुम्हारी माता सुमित्राकी आज्ञा हो तो तुम जल्दी आ जाओ ।

लक्ष्मणजी सुमित्राजीके पास गये। सुमित्राजी तब सोनेकी थालीमें आरतीकी तैयारी कर रही थीं। रामजीका राज्याभिषेक हुए पीछे रामजीकी आरती उतारनी थी। लक्ष्मणजीने जैसे ही संक्षेपमे सब कथा सुनायी कि सुमित्राजीने हाथमें-से थाली फेंक दी और बोल उठीं—कैकेयी ! तूने यह क्या किया ? पीछे लक्ष्मणजीसे कहा—बेटा !

रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम्।
अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथासुखम्॥

श्रीरामजी तेरे पिताजी और श्रीसीताजी तेरी माँ हैं। माता-पिता साथ हैं। मेरी आज्ञा लेनेकी क्या जरूरत है ? मेरी आज्ञा है। बेटा ! श्रीसीताजी कोमल हैं। ऐसी सेवा करना कि श्रीसीतारामजीको तनिक भी परिश्रम नहीं हो। बेटा ! तुमको सब प्रकारकी सेवाका लाभ देनेके लिए ही श्रीराम वनमें जा रहे हैं। बेटा ! ऐसी रीतिसे सेवा करना कि ये अयोध्याको भूल जायें। मुझको एक बड़ा आनन्द है। मेरा पुत्र श्रीरामकी सेवा करनेके लिए वनमें जा रहा है।

पुत्रवती जुवती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुत होई॥

पुत्रवती और सौभाग्यवती स्त्री वही है कि जिसका पुत्र रामजीका अनन्य सेवक है। पशुपक्षियोंकी स्त्रियाँ भी अनेक बालकोंको जन्म देती हैं, परन्तु वे पुत्रवती या सौभाग्यवती नहीं गिनी जाती।

लक्ष्मणजी जानेको तैयार हुए। इतनेमें लक्ष्मणजीकी पत्नी उर्मिला वहाँ आयीं परन्तु लक्ष्मणजीने पत्नीकी ओर सीधी नजर भी नही डाली। उर्मिलाजी महान् पतिव्रता थीं। वे समझ गयी। मुझे साथ ले जानेकी मेरे पतिदेवकी इच्छा नहीं। मेरे पतिदेवकी इच्छा ही मेरी इच्छा है। ये रामजीकी सेवाके लिए ही जा रहे हैं और मै साथ जाऊँगी तो कदाचित् विक्षेप हो ! मुझे विक्षेप करना नहीं। उर्मिलाजीने मनसे पतिदेवके चरणोंमें वन्दन किया, लक्ष्मणजी एक शब्द भी नहीं बोले, रघुनाथजीके पास जल्दीसे गये।

वन-गमन

अयोध्याके लोगोंको कैकेयीके इस अनर्थकी खबर मिली। लोग बहुत व्याकुल हुए। कैकेयीको समझाया परन्तु कैकेयीने माना नहीं। लोगोंने निश्चय किया कि रामजी चौदह वर्ष वनमें रहेंगे तो हम भी वनमें ही रहेंगे। हमें अयोध्यामें रहना ही नहीं।

श्रीराम-लक्ष्मण और जानकी कैकेयीके महलमें गये। दशरथ महाराज मूर्च्छामें पड़े थे। श्रीराम पिताजीके चरणोंमें बैठे और कहा—पिताजी! अब मुझको वन जानेकी आज्ञा दो। तब कैकेयीको क्रोध आया। उसने श्रीरामसे कहा—राम! तुम्हें वनमें जाना है कि नहीं? तुम्हारे पिताजी तुमको कभी वन जानेकी आज्ञा नहीं देंगे। मैं तुमको आज्ञा देती हूँ।

कैकेयी वल्कल-वस्त्र ले आयी। रामजीने वस्त्र-आभूषण उतारे। घरके दास-दासी रोने लगे। मनमें सब क्रोधित हो रहे थे कि कैकेयी! यह तू क्या कर रही है? कैकेयीने तो श्रीसीताजीको भी वल्कल-वस्त्र दिये। श्रीसीताजीने ये वस्त्र कभी भी पहने नहीं थे, इसलिए हाथमें लेकर खड़ीं रहीं। उस समय वसिष्ठजी दौड़ते हुए आए और श्रीसीताजीके हाथमें-से वल्कल-वस्त्र खींच लिए। कैकेयीका तिरस्कार करते हुए कहा—तू यह क्या कर रही है? रामके लिए तूने वनवासका वरदान माँगा है, पर श्रीसीताजीको वनवास मिला नहीं। ये तो पतिव्रता-धर्मके अनुसार वनमें जा रहीं हैं। वे वस्त्र-आभूषण धारण करके जायेंगी।

श्रीराम-लक्ष्मण-जानकीजीने कैकेयी माँ-को वंदन किया। सब बाहर निकले। दशरथ महाराज बहुत व्याकुल हुए। उन्होंने मंत्रीजीसे कहा—मंत्रीजी! मेरे प्राण क्यों नहीं निकल जाते? अब मुझे क्या दुःख देखना बाकी है? राम वनमें जा रहे हैं, परन्तु मेरे प्राण नही निकलते। मंत्रीजी! मेरी एक अन्तिम इच्छा है। मेरे रामसे कहना कि तुम्हारे पिताकी अन्तिम इच्छा है कि तुम पैदल चलते हुए वनमें नहीं जाना। मंत्रीजी! उनको मेरे रथमें बैठाकर ले जाओ। दो-चार दिन सबको वनमें फिराना और पीछे वापिस अयोध्यामें ले आना। रामजी कदाचित् वनसे नही लौटे तो मेरी बहुत इच्छा है कि श्रीसीताजीको तो वापिस ले ही आना।

जौं नहिं फिरहिं धीर दोउ भाई। सत्यसंध दृढ़व्रत रघुराई॥
तौ तुम बिनय करेहु कर जोरी। फेरिअ प्रभु मिथिलेसकिसोरी॥

सीताजी वापिस आ जायेंगी तो मैं इनको देखकर थोड़े दिन जी सकूंगा। श्रीरामचन्द्रजी बाहर आए तो वहाँ अतिशय भीड़ हो गयी। अयोध्याकी प्रजा व्याकुल थी। किसीको अब अयोध्यामें रहना अच्छा नही लगता था। मंत्रीजी रथ लेकर आए और कहा—आपके पिताजीकी बहुत इच्छा है कि आप रथमें विराजें। पिताजीकी आज्ञा है। श्रीराम-लक्ष्मण-जानकी रथमें विराजे। जहाँ रथ निकला कि अयोध्याकी प्रजा रथके पीछे पीछे दौड़ने लगी।

जहाँ रामु तहँ सबुइ समाजू। बिनु रघुबीर अवध नहिं काजू॥
चले साथ अस मन्त्र दृढ़ाई। सुर दुर्लभ सुख सदन बिहाई॥
राम चरन पंकज प्रिय जिन्हहीं। बिषय भोग बस करहिं कि तिन्हहीं॥

सबने निश्चय किया था कि जहाँ रामजी वहाँ हम। हम भी चौदह वर्ष वनमें ही रहेंगे। हमको अयोध्याका सुख अब अच्छा लगता नहीं। अयोध्यासे हमें अब कोई काम नही। जहाँ श्रीराम वहाँ हमारी अयोध्या। परमात्मा श्रीराममें जिसकी प्रीति होती है, उसको विषय-सुख भोगना अच्छा नही लगता। जिसको भक्तिका रंग लगता है उसको संसार-सुख तुच्छ लगता है। उसे अयोध्याकी प्रजाकी तरह वनमें रहनेकी इच्छा होती है। अयोध्याके लोगोंका रामजीमें अतिशय प्रेम हैं।

श्रीरामचन्द्रजीने सबको समझाया परन्तु कोई मानता नही था। सायंकाल सब अयोध्यासे दूर तमसा नदीके किनारे पहुँचे। रात्रिमें वहीं पड़ाव किया। प्रभुने योगमायाको आज्ञा दी, उस योगमायाके प्रभावसे अयोध्याकी प्रजाको गाढ़ निद्रा आ गयी। मध्यरात्रिके समय श्रीरामचन्द्रजीने मंत्रीजीसे कहा—मन्त्रीजी! ये सब सोये हुए हैं। प्रात:काल होनेपर कोई मुझे छोड़नेको तैयार नहीं होगा। सब मेरे साथ चलना चाहेंगे। मेरे कारण ये प्रजाजन दु:खी हों यह योग्य नही। इनको यहीं छोड़कर हमें आगे जाना चाहिए। इसी समय प्रयाण कीजिए। इस प्रकार रथ चलाइये कि कोई जागे नही और किसीको खबर पड़े नही कि हमने कौन-सी दिशामें प्रयाण किया है। सब गाढ निद्रामें थे, उस समय श्रीराम, लक्ष्मण, जानकीने प्रयाण किया।

सबेरे प्रजाजन जागे तो उन्होंने रामजीको देखा नही। सब विलाप करते-करते अयोध्या वापिस गये। प्रात:काल श्रीराम, लक्ष्मण, जानकीजी शृंगवेरपुरके समीप आए। शृंगवेरपुरके राजा गुह, खबर पड़ते ही स्वागत करनेके लिए आए। अयोध्या छोड़कर वन जाते हुए श्रीरामजीको मार्गमें अनेक देशोंके राजाओंने अपने राज्य अर्पण करने चाहे, परन्तु उन्होंने वह लिए नही। गुह राजाने कहा—

नैषादराज्यमेतत्ते किङ्करस्य रघूत्तम ।
त्वदधीनं वसन्नत्र पालयास्मान् रघूद्वह ॥

यह शृंगवेरपुरका राज्य आपके चरणोमें मैं अर्पण करता हूँ। मैं आपका सेवक हूँ। आप यहाँ ही विराजो। तब प्रभुने कहा—यह सब मेरा है, परन्तु मैंने तुमको दे दिया। मुझे तो चौदह वर्ष कोई ग्राममें अथवा घरमें जाना नहीं।

न वेक्ष्यामि गृहं ग्रामं नव वर्षाणि पंञ्च च।

गंगाजीके किनारे एक शीशमके वृक्षके नीचे मुकाम किया। उस दिन सबने निराहार व्रत किया, केवल जलपान किया। केवलमात्र जलके आधारपर ही सब रहे। समस्त दिवस वहाँ विश्राम किया। रात्रिके समय दर्भकी दो शय्या तैयार कीं। श्रीसीतारामजीने शयन किया। लक्ष्मणजीने तो निश्चय किया था कि चौदह वर्ष तक अब मुझे निद्रा और आहार करना नहीं, रात्रिमें श्रीरामका मैं रक्षण करूँगा। लक्ष्मणजी धनुषबाण लेकर श्रीसीतारामजीकी चौकसी करने लगे। राजा गुह भी लक्ष्मणजीके पास ही बैठे।

श्रीसीतारामजीको कुशाकी शय्यापर सोते देखकर गुहको बहुत दुःख हुआ। गुहने कैकेयीको उलाहना दिया, कैकेयीकी निंदा की। उस समय लक्ष्मणजीने जो सुन्दर उपदेश किया था, उसका नाम लक्ष्मण-गीता है। रामायणमें लक्ष्मण-गीता बहुत सुन्दर है।

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता,
परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।
अहं करोमीति वृथाभिमानः,
स्वकर्मसूत्रग्रथितो हि लोकः॥

× × ×

सुखमध्ये स्थितं दुःखं दुःखमध्ये स्थितं सुखम्।
द्वयमन्योन्यसंयुक्तं प्रोच्यते जलपङ्कवत्॥
तस्माद्धैर्येणविद्वांस इष्टानिष्टोपपत्तिषु।
न हृष्यन्ति न मुह्यन्ति सर्वं मायेति भावनात्॥

सुख-दुःख कर्मोंके फल हैं। मनुष्यको सुख-दुःख देनेवाले उसीके कर्म हैं। कर्मके आधारपर यह सृष्टि है। ज्ञानी महापुरुष इसलिए किसीको भी दोष देते नहीं। कोई किसीको सुख देता नहीं, कोई किसीको दुःख देता नहीं। सुखके पीछे दुःख और दुःखके पीछे सुख खड़ा ही हुआ है। पानी और कीचड़की तरह सुख और दुःख एक दूसरेके साथ सम्मिलित हैं। इसलिए ज्ञानी महात्मा, यह सर्वमाया है, ऐसा-समझकर सुखमें प्रसन्न

होते नही अथवा दुःखमें शोक करते नही। ये सुख-दुःखका कारण बाहर खोजते नही। सुख-दुःखका कारण अन्दर जो खोजते हैं, वे ही संत हैं। मनुष्यको सुख-दुःख देनेवाला इस जगतमें कोई नही है। मुझे कोई सुख देता है, कोई दुःख देता है—यह कल्पना भ्रामक है। ऐसी कल्पना करनेसे अन्यके प्रति राग अथवा द्वेष होता है। किसीकी निन्दा न करो, किसीकी स्तुति भी अधिक न करो। जगतका विचार करोगे तो मन बिगडेगा। जगतमे जो कुछ है, वह सुन्दर नही और खराब भी नही।

श्रीरामजीको न सुख है, न दुःख है। रामजी तो आनन्दस्वरूप हैं। जीव स्वयं के कर्मोसे जन्मता है, जब कि रामजी स्वेच्छासे प्रगट होते हैं। परमात्मा जब लीला करने आते हैं, उस समय कर्मकी मर्यादामें रहते हैं। श्रीराम कर्मसे परे हैं, फिर भी जगतको बताते हैं कि मैं कर्मके बन्धनमें हूँ।

रामायणमें कथा आती है। कैकेयीने श्रीरामको वनवास दिया, उस समय कौशल्या माँ-को अतिशय दुःख हुआ। रामजीने माँ-से कहा—माँ! यह मेरे कर्मोंका फल है। पूर्वजन्ममें मैंने कैकेयीको दुःख दिया था, उसका यह फल है। मैंने परशुराम-अवतारमे जो किया था उसका फल राम-अवतारमें भोगना ही है।

पूर्वजन्ममे कैकेयी रेणुका थी। रेणुका, जमदग्नि ऋषिकी पत्नी और परशुराम-की माँ थी। एक समय एक गन्धर्वको पत्नीके साथ विहार करते देखकर रेणुकाके मनमे विचार आया कि इस गन्धर्व-कन्याको जैसा सुख मिल रहा है, ऐसा सुख मुझे मिला नही। परपुरुषका विहार देखते हुए रेणुकाके मनमें थोड़ा विकार आया। रेणुकाको लौटनेमे विलंब हो गया, इससे जमदग्नि जान गये कि रेणुकाने मनसे व्यभिचार किया है। जमदग्नि-को क्रोध आया, उन्होंने पुत्र परशुरामसे कहा कि तेरी माँ पापिनी है। इसे मार डाल। परशुरामको आज्ञा हुई, इसलिए उन्होने माँको मार डाला, रेणुकाका शिरच्छेद कर दिया।

रामजीने कौशल्या माँ-को समझाया कि मैंने पूर्वजन्ममे माँ-को दुःख दिया था इसलिए इस जन्ममे कैकेयी माँ-ने मुझे दुःख दिया है। महात्मा लोग तो यहाँ तक कहते हैं कि रामावतारमें बालिको मारा। वही बालि कृष्णावतारमे व्याध बनकर आया और भगवानको उसने बाण मारा। किये हुए कर्मका फल भोगना ही पड़ता है।

लक्ष्मणजीने गुहको उपदेश दिया—कैकेयीका कोई दोष नही। श्रीराम तो आनन्द-स्वरूप हैं। सब साधनोंका फल क्या है? रामजीमें प्रेम। रामजीमें प्रेम जागे तो जीवन सफल होता है। जो रामजीके साथ प्रेम करता है उसका जीवन सुधरता है।

सखा परम परमारथु एहू। मनक्रम बचन रामपद नेहू॥
राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अबिगत अलख अनादि अनूपा॥

सकल विकार रहित गतभेदा । कहि निति नेति निरूपहिं बेदा ॥

बातों-बातोंमें ही प्रातःकाल हो गया । श्रीरघुनाथजी जागे । उन्होंने बड़-का दूध मँगाया । उससे श्रीराम, लक्ष्मणने सुन्दर बालोंकी जटा बाँधी । तपस्वी बन गये । गुहसे यह दृश्य देखा नहीं गया । वह मूर्च्छित होकर जमीनपर गिर पड़ा ।

अब गंगापार उतरना था । प्रभुने मन्त्रीजीको अयोध्या वापिस लौटनेकी आज्ञा की । मंत्रीजीने बहुत आग्रह किया कि आप भी अयोध्या वापिस पधारो। रामजीने कहा— मन्त्रीजो ! तुम यह क्या कह रहे हो ? तुम तो धर्मका तत्त्व जानते हो । विपत्तिके समय महापुरुष धैर्य रखते हैं । मेरे पिताजीके चरणोंमे मेरा साष्टाङ्ग प्रणाम कहना । मंत्रीजी ! अधिक तो कुछ कहता नही, मैं इतना ही कहता हूँ कि जो मेरे पिताजीको प्रसन्न रक्खेगा, जो मेरे पिताजीकी सेवा करेगा, वह मुझको बहुत प्यारा होगा । मेरे पिताजीकी देख-भाल करना । पिताजीसे कहना कि आपके आशीर्वादसे मुझे तो अयोध्याकी अपेक्षा भी वनवासमें अतिशय सुख है

साकेतादधिकं सौख्यं विपिने नो भविष्यति ।

चौदह वर्षके बाद आपका राम अयोध्या वापिस आवेगा । मंत्रीजी समझ गये कि श्रीराम, लक्ष्मण तो वापिस चलेगे नही । तब उन्होंने कहा कि महाराज दशरथजीकी ऐसी आज्ञा है कि श्रीसीताजी वापिस लौटे तो ही अच्छा है । श्रीसीताजी वापिस लौटेंगी तो महाराजको कुछ अवलम्ब मिलेगा । इनकी इच्छा आवे तो अयोध्यामे रहे, इच्छा हो तो जनकपुरीमें रहें । सीताजीकी कुछ बोलनेकी इच्छा हुई, परन्तु बोल न सकी । आँखें भीनी हो गयीं । अंतमें कहा कि मंत्रीजी ! आज तक मैं आपसे बोली नहीं । तुम मेरे श्वसुर के समान पूज्य हो । सासूजीके चरणोंमें मेरा वंदन कहना । हमारी तनिक भी चिंता नहीं करें । मैंने जनकपुरी और अयोध्याका वैभव देखा है । परन्तु मंत्रीजी !

बिनु रघुपति पद पदुमपरागा । मोहि केउ सपनेहुँ सुखद न लागा ॥

मेरे पतिदेव जहाँ विराजें वहाँ ही रहना मेरा धर्म है । मंत्रीजीको जानेकी आज्ञा दो । मंत्रीजी स्तब्ध होकर खड़े रहे । एकटक श्रीराम-लक्ष्मण जानकीजोका प्रयाण निरखते रहे ।

गंगा-किनारे एक ही नाव थी । सामनेवाले किनारेपर जाना था । यहाँ पहले केवटका प्रसंग रामायणमें वर्णन किया गया है । लक्ष्मणजीने केवटको बुलाया । केवट आया और हाथ जोड़कर बोला—महाराज ! मेरी नावमें तुमको बैठनेकी इच्छा हो तो तुम मुझे ऐसी आज्ञा दो कि तू हमारे चरण धो ले ।

चरण-सेवा तो मालिक जिसको देते हैं, उसको ही मिलती है। श्रवण, कीर्तन, अर्चन, भक्ति करनेके लिए जीव स्वतंत्र है परन्तु मालिकके चरणकी सेवा तो परमात्मा कृपा करके जिसको देते हैं, उसको ही मिलती है। इसलिए केवटने प्रभुसे कहा—तुम्हें नावमे बैठना हो तो मुझको चरण-सेवा की आज्ञा दो। मैंने ऐसा सुना है कि तुम्हारी चरण-रजमें ऐसी कुछ शक्ति है कि इसका स्पर्श होते ही पत्थरसे एक ऋषिपत्नी उत्पन्न हो गयी। इस नावपर तो मैं जोवित रह रहा हूँ, अपने कुटुम्बका पालन-पोषण करता हूँ। मेरी नाव तुम्हारी चरण-रजका स्पर्श होनेपर स्त्री बन जाय तो पीछे मैं क्या करूँगा? दो स्त्रियोको कहाँसे खिलाऊँगा?

रज तमारी कामणगारी प्रभु, नाव नारी थई जाय जी।
तो अमारा रंक जननी, आजीविका टणी जाय।
पग मने धोवा दो रघुराय।
प्रभु मने रंक पर्यो मनमाँय॥

इसलिए मैं तुम्हारे चरण पखार लूं, ऐसी मुझको आज्ञा करो। रामजीने स्मित हास्य किया, श्रीसीताजी और लक्ष्मणजीकी ओर मुस्कराकर देखने लगे। मालिकने दोनों चरणोंकी सेवा इन दोनों जनोको दी हुई थी। दाहिने चरणकी सेवा लक्ष्मणजी करते थे और बायें चरणकी सेवा श्रीसीताजो करती थी।

दक्षिणे लक्ष्मणो यस्य वामे तु जनकात्मजा।
पुरतो मारुतिर्यस्य तं वन्दे रघुनन्दनम्॥

रामायणमे अनेक कथायें आती हैं। अनेक रामायण हैं। एक जगह वर्णन आया है कि श्रीसीताजीके साथ लग्न होनेके पीछे श्रीसीतारामजी अयोध्यामें पधारे। पहला ही दिन था। रात्रिने रामजी शयन करने गये। श्रीसीताजी अतःपुरमें पधारीं। उनके पहले ही लक्ष्मणजी वहाँ जाकर बैठ गये। श्रीसीताजी पीछेसे आयी। उन्होंने लक्ष्मणजीसे कहा—अब चरण-सेवा मैं करूंगी। चरण-सेवाका अधिकार मेरा है। तब लक्ष्मणजी सीताजीको वंदन करके बोले—भाभी! आज तक मैं ही चरण-सेवा करता था। तुम तो अब आज आयी हो।

सीताजीने रामजोसे कहा—अपने भाईको कुछ समझाओ न। अब यहाँसे जायें तो ठीक है। श्रीराम क्या बोलें? श्रीरामको तो लक्ष्मणजी प्राणसे भी अधिक प्यारे थे। श्रीरामचन्द्रजी विचार करने लगे—मैं लक्ष्मणसे किस प्रकार कहूँ कि तुम यहाँसे जाओ? लक्ष्मणजीने कहा—मुझे चरणोंकी सेवा करनी है। सीताजीने कहा—आज पर्यन्त सेवा तुम करते थे, परन्तु अब चरण सेवाका अधिकार मेरा है। मैं चरणोंकी सेवा करूंगी।

श्रीरामचन्द्रजीने स्मितहास्य करके कहा—कल वसिष्ठ ऋषिसे यह प्रश्न पूछना और गुरुजी जैसी आज्ञा दें उसके अनुसार करना। श्रीसीताजी और लक्ष्मणजी वसिष्ठ ऋषिके आश्रममें गये। लक्ष्मणजीने कहा—देखिए! भाभी अभी हाल आयीं हैं और मुझसे कह रहीं है कि अब चरणोंकी सेवा तुम करना नहीं। गुरुजी! मैं तो छोटा था तबसे ही अपने बड़े भाईके चरणोंकी सेवा करता हूँ। सीताजीने हाथ जोड़कर कहा—गुरुजी! अब आप ही इनको समझाइये। अब तो चरणोंकी सेवाका अधिकार मेरा है।

वसिष्ठजीको भी आनन्द हुआ कि पूछने तो बहुत आते हैं परन्तु ऐसा पूछने कोई नही आता। वसिष्ठजी श्रीसीताजीको समझाने लगे कि बेटा! मेरा लक्ष्मण जितेन्द्रिय है। वह निर्विकार है। बेटा! मनमें तनिक भी शंका रखना नहीं। दाहिने चरणकी सेवा लक्ष्मणको करने दो, और बायें चरणकी सेवा तुम करो। गुरुजीने ऐसा निर्णय कर दिया। मालिकके दोनों चरणोंकी सेवा दोनोंको दे दी। सीताजी बायें चरणकी सेवा करती और लक्ष्मणजी दाहिने चरणकी।

आज गंगा-किनारे रामजीको स्मरण हुआ कि वसिष्ठ गुरुने मुझको आज्ञा की थी कि दाहिने चरणके मालिक लक्ष्मणजी और बायें चरणकी मालिक सीताजी। यहाँ तो यह तीसरा आकर खड़ा हो गया और कहता है कि मुझे चरण दो। अब मैं क्या करूँ? केवटका भाव देखकर सीताजीने कहा—इसकी इच्छा है तो चरणकी सेवा करने दो।

केवट दौड़ता हुआ घर गया। लकड़ीका कठौता लेकर आया। वनवासके चौदह वर्ष तक रामजीने कोई धातुके बने हुए पात्रका स्पर्श किया नहीं। तपस्वी बनकर वनमें रहते थे। चौदह वर्ष पर्यन्त अनाज लिया नहीं। श्रीरामचन्द्रजीने तपश्चर्याका दिव्य आदर्श बताया है। केवट यह जानता था। इसलिए वह लकड़ीका कठौता लाया और उसमें श्रीरामजीके चरण बहुत प्रेमसे पखारने लगा।

यह केवट पूर्वजन्ममें क्षीरसमुद्रमें कछुआ था। उसको नारायणकी चरण-सेवाकी इच्छा थी परन्तु लक्ष्मीजीने और शेषजीने उसे चरण-सेवा करने नहीं दी। आज लक्ष्मीजी सीताजी बनी हुई हैं और शेषजी लक्ष्मणजी बने हुए हैं। केवट मानो उनसे कह रहा था कि उस समय आप दोनोंने मुझे चरण-सेवा नहीं करने दी थी। आज तुम दोनों खड़े हो और मैं सेवा कर रहा हूँ।

परमानन्द हुआ। केवटने पाद-प्रक्षालन किया, चरणोंका जल मुखमें और मस्तकके ऊपर पधराया। उसके पीछे रामचन्द्रजीसे कहा—महाराज! चरणोंकी सेवा तो मुझे मिली परन्तु आप यहाँसे पुनः चलते हुए जाकर नावमें बैठेंगे तो फिरसे तुम्हारे चरणोंमें कुछ रज लग गयी तो?

श्रीरामचन्द्रजीने पूछा—भाई ! तेरी क्या इच्छा है ? केवटने कहा—मेरी ऐसी इच्छा है कि मैं आपको उठाकर नावमे बैठाऊँ, मेरा मनोरथ पूर्ण करो। मुझे और कुछ चाहिए नहीं, मैं कुछ माँगता नही।

श्रीसीताजीको भी बहुत आश्चर्य हुआ कि गाँवका अनपढ़ है परन्तु इसका हृदय कैसा शुद्ध है ! श्रीरामजीमे कैसा प्रेम है। केवटने श्रीरामचन्द्रजीको उठाकर नावमें पधराया। श्रीसीताजी और लक्ष्मणजी भी नावमे विराजे। केवट इनको गगापार लेकर गया। श्रीरामने केवटको मुद्रिका देनेका प्रयत्न किया, परन्तु केवटने लेनेकी मनाही की। उसने प्रभुसे कहा—

नाई नी करी नाई ले नहीं, आपण धंधा भाई
काग लेइ नई खाखानी खाखो उतराई......।

हम तो दोनों जाति-भाई हैं इसलिए उतराई ली जाएगी नही। यह सुनकर लक्ष्मणजी नाराज हो गये। उन्होने केवटसे कहा—तुम्हारी और हमारी जाति एक कैसे है ? हम क्षत्रिय जातिके और तुम भील जातिके हो, फिर भी कहते हो कि जाति एक है ?

केवटने कहा—तुम्हारी और मेरी जाति एक नही परन्तु मेरी और रामजीकी जाति एक है। फिर रामजीसे कहा—महाराज ! आज आपको मैंने गंगापार उतारा है, समय आवे तब मुझे भी इस संसार-सागरसे पार उतार देना। गंगा-सागरका केवट मैं हूँ और संसार-सागरके केवट आप हो।

केवट जानता था कि श्रीराम परमात्मा हैं। गंगाजीके उस पार किनारेपर उतरकर श्रीराम-लक्ष्मण-जानकी आगे चल दिये। श्रीरामजीके पीछे श्रीसीताजी चलती थीं। इनके पीछे लक्ष्मणजी चलते थे।

आगे राम लखन बनि पाछें। तापस बेष बिराजत काछें॥
उभय बीच सिय सोहति कैसें। ब्रह्म जीव बिच माया जैसें॥

चलनेमें भी मर्यादा थी, विनय थी। श्रीसीताजी पृथ्वीपर नजर रखकर चल रहीं थीं। माताजी बहुत सावधान थी। धरतीपर जहाँ रामजीके चरण-चिह्न दिखायी देते, वहाँ अपना पग न पड़े, इसलिए श्रीरामजीके चरण-चिह्नोंको बचाकर श्रीसीताजी चरण रख रही थी। श्रीरामसीताजीके पीछे-पीछे लक्ष्मणजी चल रहे थे। लक्ष्मणजी भी बहुत सावधान थे। श्रीसीतारामजीके चरण-चिह्न जहाँ दीखते थे, वहाँ लक्ष्मणजी मनसे वंदन करते थे और स्वयं उन चिह्नोंको बचाकर चलते थे। ऐसा करते समय सँकरी पगडंडीपर लक्ष्मणजीको चलनेके लिए स्थान रहता नही था। तब लक्ष्मणजी काँटोके ऊपर चलते थे।

रामजीका ध्यान गया। उनसे यह देखा नहीं गया। इसलिए चलनेका क्रम बदला। आगे-आगे लक्ष्मणजी, उनके पीछे श्रीसीताजी और सबसे पीछे श्रीरामचन्द्रजी। इसके अनुसार चलना निश्चित हुआ। चलनेमें मर्यादा। बोलनेमें मर्यादा।

रास्तेमें जहाँ मुकाम करते थे, वहाँ अगल-बगलके गाँवोंके लोग श्रीसीतारामजीके दर्शनोके लिए उमड़ पड़ते थे। गाँवकी स्त्रियाँ माताजीको बारम्बार वन्दन करतीं थी। आपसमें बाते करती हुई वह कहती थीं—

ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन्ह पठए बन बालक ऐसे ॥

ऐसे बालकोंको वनमें भेजा! कैकेयीको शर्म नही आयी? ये स्त्रियाँ श्रीसीताजीसे पूछती थी—इन दोनोंसे तुम्हारा क्या सम्बन्ध है? तब श्रीसीताजी कहती कि गोरे हैं वह मेरे देवर है। रामजीका परिचय देती नहीं, केवल आँखसे इशारा करतीं थीं। श्रुति भी परमात्माका वर्णन विधिसे नही, परन्तु निषेधपूर्वक करती है—नेति-नेति।

श्रीरघुनाथजी प्रयागराजमें आए। वहाँ त्रिवेणी संगममें स्नान किया। गंगाजीकी महिमा रामजीने श्रीसीताजी और लक्ष्मणजीको सुनायी। प्रयागराजके महान् संत श्रीभरद्वाज ऋषि हैं। भरद्वाजजी श्रीराम-चरणके अति अनुरागी थे। बारम्बार श्रीराम-कथा सुनते थे। इस जगतकी बाते सुननेमें सार नहीं। इससे भक्तिमें विक्षेप होता है। सुनो तो प्रभु-कथा सुनो, संतोंकी वाणी सुनो; परमात्माका भजन-कीर्तन सुनो, जगतकी बातें सुननेमें समयको व्यर्थ गवाँओ नही। भरद्वाज ऋषिने श्रीराम-लक्ष्मण-जानकीका प्रेमसे स्वागत किया। ऋषिको बहुत आनन्द हुआ। बोले—

आजु सुफल तपु तीरथ त्यागू। आजु सुफल जप जोग बिरागू ॥
सफल सकल सुभ साधन साजू। राम तुम्हहिं अवलोकत आजू ॥

मेरी तपश्चर्या आज सफल हो गयी। आपने दर्शन दिया। आज तक जितना साधन किया था, उसका फल मुझे मिल गया। सब साधनोंका फल है प्रभुका दर्शन। परमात्माके दर्शन बिना शान्ति मिलती नही, जीवन सफल होता नहीं।

दूसरे दिन प्रातःकाल श्रीरामचन्द्रजीने आगे प्रस्थान करनेकी तैयारी की। भरद्वाज ऋषिने मार्ग बतलानेके लिए चार शिष्योको साथ भेजा। यमुनाजी पार करके आगे चले। वाल्मीकिजीके आश्रममे श्रीरघुनाथजी पधारे। वाल्मीकिजीको अतिशय आनन्द हुआ। उन्होंने कहा—आपके नामका मैने आश्रय लिया इसलिए आप कृपा करके मेरे यहाँ पधारे हो। मै तो कुसंगसे बिगड़ा हुआ था। मैं चोरी करता था। सौभाग्यसे मुझे नारदजीका संग मिला। नारदजीने मुझे राम-नामकी दीक्षा दी।

वाल्मीकिजी आरम्भमें तो राम-राम नहीं, परन्तु मरा-मरा-मरा जप करते थे। तीन बार मरा-मरा-मरा बोलनेपर दो बार राम रामका उच्चारण होता था। कर्मकाण्डमें, यज्ञमें थोड़ी भी भूल हो जाय तो उसकी क्षमा मिलती नहीं; निष्काम शुद्ध भक्ति-मार्गमें कदाचित् भूल हो जाये तो भगवान क्षमा कर देते हैं।

वाल्मीकिजीने कहा—आपके नामकी महिमा मैं जानता हूँ। आपके नामसे ही तो मैं महर्षि हुआ। श्रीरामचन्द्रजीने वाल्मीकिजीसे कहा—मुझे रहनेको कोई स्थान बतलाइये। वाल्मीकिजीने कहा—

त्वमेव सर्वलोकानां निवासस्थानमुत्तमम्।
तवापि सर्वभूतानि निवाससदनानि हि॥

आप तो सर्वव्यापक हो। आपको मैं कौन-सा स्थान बताऊँ? आप ही कोई ऐसा स्थान बताइये जहाँ आप विराजते न हों। दूधके अणु-परमाणुमें जिस प्रकार सूक्ष्म रूपसे मक्खन रहता है, उसी प्रकार जगतके अणु-परमाणुमे भगवान श्रीराम विराजते हैं। वाल्मीकिजीकी बात सुनकर श्रीराम स्मितहास्य करते हुए बोले! यह ठीक है परन्तु मुझे रहनेकी कोई जगह बताइये।

वाल्मीकि ऋषिने अनेक स्थान बताये—महाराज! आपके स्वरूपको हृदयमें रखकर जो नित्य आपका ध्यान करते हैं उनके हृदय-मन्दिरमे आप विराजिए। निंदा और स्तुति समान समझकर जो आपकी सेवा-स्मरणमे सतत तन्मय रहते हैं ऐसे भक्तोंके हृदयमें आप विराजिए।

पश्यन्ति ये सर्वगुहाशयस्थं त्वां चिद्घनं सत्यमनन्तमेकम्।
अलेपकं सर्वगतं वरेण्यं तेषां हृदब्जे सह सीतया वस॥
निरन्तराभ्यासदृढीकृतात्मनां त्वत्पादसेवापरिनिष्ठितानाम्।
त्वन्नामकीर्त्या हतकल्मषाणां सीतासमेतस्य गृहं हृदब्जे॥

× × ×

काम कोह मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा।
जिन्हकें कपट दंभ नहिं माया। तिन्हकें हृदय बसहु रघुराया॥

जिसके हृदयमें छल नहीं, कपट नहीं, दम्भ नहीं, ऐसे वैष्णवोंके हृदयमें आप सीताजी सहित विराजिए। ऐसे अनेक स्थान बतानेके बाद वाल्मीकिजीने कहा—अवतार-लीलाके लिए पासमें ही चित्रकूटमें ही विराजिए।

वाल्मीकिजीने आज्ञा की। श्रीराम-लक्ष्मण-जानकी चित्रकूटमें पधारे। चित्रकूटमें मन्दाकिनी गंगाके किनारे पर्णकुटी बनायी। इस दिव्य आश्रममें श्रीराम-लक्ष्मणजी और जानकी विराजने लगे।

श्रीराम-लक्ष्मण-जानकीजी पधारे हैं यह खबर मिलते ही आस-पासके कोल-भील भी दौड़ते हुए आए। बारम्बार दर्शन-वन्दन करने आने लगे। कोल-भीलोंका जीवन सुधर गया। वे कहने लगे—हमारा भाग्य उदय हो गया। श्रीराम हमारा उद्धार करनेके लिए ही वनमें आए हैं। रामजीके दर्शन करनेके बाद अब हमारी चोरी करनेकी इच्छा होती नहीं, मदिरापान करनेकी इच्छा होती नहीं। इन रामजीकी नजरमें कुछ जादू है। रघुनाथजीने हमको अपनाया है, हमारा जीवन दिव्य बनाया है। वे लोग प्रेमसे रामजीसे कहते कि महाराज! हमें आप अपना सेवक समझिये। आप तनिक भी संकोच रखिए नहीं। हमको आज्ञा दीजिए, हम आपकी सेवा करेंगे।

रामजीको तो केवल प्रेम प्रिय है। इन लोगोंका प्रेम देखकर प्रभुको आनन्द हुआ। उनको अनेक प्रकारसे आश्वासन दिया। श्रीसीतारामजीके दर्शन करनेके बाद अब कोल-भील चोरी करते नहीं, मदिरा पीते नहीं। कोल-भीलोंका पाप छूट गया। इनका जीवन दिव्य बन गया।

परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान करनेसे ही मन शुद्ध हो जाता है। श्रीराम-नामके साथ प्रीति करें तो ही मनका मैल धुल जाता है। संसारमें रहनेसे ही मन नहीं बिगड़ता है। संसारका चिन्तन करनेसे बिगड़ता है। जितना पाप होता है वह संसारका चिन्तन करनेसे ही होता है और पाप छूटता है वह परमात्माका चिन्तन करनेसे ही छूटता है। सबकी ऐसी इच्छा होती है कि मुझको भगवानके दर्शन भले न हो परन्तु मेरा यह पाप छूटे। पापके संस्कार अनेक जन्मोंसे मन, बुद्धिमें दृढ़ हुए होते हैं। इसीसे इच्छा न होनेपर भी मनुष्य पाप कर बैठता है। सबकी पाप छोड़नेकी इच्छा होती है परन्तु पाप छोड़ सकते नहीं, पाप हो ही जाता है। मनुष्य पाप करनेसे पहले संसारका चिन्तन करता है। शान्तिसे विचार करोगे तो ध्यानमें आवेगा कि संसारका चिन्तन किए बिना कोई पाप होता ही नहीं। आँखसे पाप करे, जीभसे पाप करे, इसके पहले तो मन उस विषयका चिन्तन करता है।

ज्ञानी महापुरुष सतत परमात्माका ध्यान करते हैं। मन कुछ-न-कुछ ध्यान-चिंतन किए बिना रहता नहीं। मन परमात्माका ध्यान न करेगा तो पीछे जगतका ध्यान करेगा। मन छूटा रहे और बिना काम रहे तो पाप करता है। मनको थोड़ी फुरसत मिले तो मन पूर्व संस्कारोंके वश होकर पाप करता है। मन बे-काम नहीं रखना। मन बानर

जैसा चंचल है, अकेला होते ही कूदफांद करने लगता है। यह मन जो बेकार रहे तो बावले भूतकी तरह होता है। उसे कोई काम न मिले तो वह खोटा विचार करता है। मनको सतत भक्तिमे जोड़ो। जो मन प्रभुके पास जाता नही वह गड्ढेमें पड़ता है। मनको कुछ आधार मिलना चाहिए। आधार विना मन संसारमें डूबता है। मनको भगवद्-चिंतन, भगवद्-नामका आधार दो। रास्तेमे चलते हुए भी पवित्र विचार करो, नही तो मन खराब विचार करेगा। तुम रास्ते चलते भक्ति नही करोगे तो तुम्हारी आंख बिगडेगी, तुम्हारा मन बिगड़ेगा। संसारके खोटे विचार करनेसे मन बिगडता है, मन पापके मार्गमें, चलता हैं। अपने मनको प्रेमसे समझाओ। समझाकर प्रभुके ध्यान, स्मरण और चिन्तनमे सतत पिरोये रक्खो। विरक्त साधु-महात्मा प्रभुका सतत ध्यान करते हैं।

परमात्माका सतत ध्यान करना अपने जैसे साधारण मनुष्यके लिए शक्य नही। साधारण मनुष्य सतत ध्यान कर सकता नही। परमात्माका ध्यान करना, अति उत्तम है परन्तु कदाचित् प्रभुका ध्यान न हो तो बाधा नही परन्तु बहुत सावधान रहना कि तुम्हारा मन मनुष्यका ध्यान करे तो शरीरका चिंतन न करे। शरीरका चिंतन होगा तो मन बिगड़ेगा। कोई स्त्री-शरीर अथवा कोई पुरुष-शरीरका चिन्तन करनेसे मन बिगड़ता है। ईश्वरका ध्यान न हो तो बाधा नही परन्तु इस शरीरका ध्यान न करो। शरीरका ध्यान छूटेगा तो पाप छूट जाएगा। मानव-शरीर चिंतन करने लायक नही। शरीर बहुत ठीक नहीं। इस शरीरके अन्दर शुद्ध चेतन आत्मा हैं, इस कारण यह शरीर ठीक लगता है।

शरीरमें-से आत्मा बाहर निकल जाय, उसके पश्चात् लोग शरीरको घरमें रखते नही, निकाल देनेकी उतावली करते हैं। इस अनुभवसे सिद्ध होता है कि शरीरमें कोई ठीक वस्तु है, वह अलग है और उसके बाहर निकल जानेपर इस शरीरकी कुछ कीमत नही। शरीरका ध्यान करनेसे ही मन बिगड़ता हैं। कथा सुनते हो, बने तो तुम ऐसा नियम लेना कि मुझे किसीके भी शरीरका ध्यान करना नही। शरीर, चिंतन करने जैसा नही। घरके सभी लोगोपर आत्मदृष्टिसे प्रेम रखना, परन्तु देहदृष्टिका मोह किसीके ऊपर नही रखना। आत्मदृष्टि रखोगे तो प्रेम उत्पन्न होगा, और प्रभुके चरणोमें जानेमें तुमको सहायकरूप होगा परन्तु जो देहदृष्टि रखोगे तो मायाजालमे अटक जाओगे और प्रभुसे दूर खिंच जाओगे। घरमें व्यवहार करते समय भी चित्त तो प्रभुके चरणोंमें ही जोड़े रखना। पति-पत्नीका सम्बन्ध भी रखना पवित्र है। यह भोगके लिए नही, परन्तु त्यागके लिए है।

जितना पाप होता है वह अधिकांशमें इस शरीरका चिंतन करनेसे और शरीरको अच्छी वस्तु समझनेसे होता है। परमात्माने धन सबको एक-सा दिया नहीं, परन्तु

प्रभुने मन सबको एक-सा ही दिया है। धन देनेमें कर्मानुसार प्रभुने थोड़ी विषमता की है। किसीको अधिक और किसीको कम दिया है। सबको इनके कर्मके अनुसार प्रभुने धन दिया है परन्तु मन सबको एकसा ही मिला है।

मन दीपक जैसा है। दीपकके प्रकाश मे तुम कचरा भी देख सकते हो और प्रभु-का स्वरूप भी निहार सकते हो। रात्रिमें दीपकका प्रकाश होता है, इसलिए छिपकली जीवोंको खानेके लिये दौड़ती है। छिपकलीको जीवोंके खानेमें ही सुख मिलता, है, जब कि इसी दीपकके प्रकाशमें कोई रामायणका पाठ करता है, भागवतका चिंतन करता है। दीपक तो दोनोंको प्रकाश देता है। मन भी दीपक जैसा है। मनसे पाप भी होते है और मनसे भक्ति भी हो सकती है। पानीसे कीचड़ होती है। उस पानीसे ही कीचड़ धोयी भी जाती है।

इस मनसे तुम क्या करते हो? पाप अथवा भक्ति? अपने मनके तुम ही गुरु हो। दूसरा कोई तुम्हारे मनका गुरु हो सकता नही। मन दूसरेको दीखता नही। तुम्हारा मन तुमको ही दीखता है। कोई मनुष्य तनसे पाप करता हो तो इसको घरके लोग समझा-कर उसे पाप करनेसे निवृत्त करते है परन्तु कोई मनुष्य घरमें बैठा-बैठा मनसे पाप करता हो तो उसको कौन समझाने जाएगा? मनसे पाप करो, उसकी खबर दूसरेको पड़ती नहीं, तुमको ही पड़ती है। तुम्हारी आत्मा स्वीकार करती है कि मेरा मन अब बिगड़ा है, मेरे मनमें अब पाप आया है।

ऐसे समयमें मनको समझाओ कि तू विषयके संग पड़करे पाप करता है। वे विषय ही तुझे मार पिटवाते हैं। अपने मनको यदि तुम्ही नही समझाओगे तो दूसरा कौन समझावेगा? मनके ऊपर बलात्कार न करो, परन्तु उसे समझाकर वशमें रखो। मनको समझाकर कहो कि जहर तो खाये जानेपर ही मारता है जबकि संसारके विषय-विषका तो केवल विचार कर लेनेसे ही अधोगति हो जाती है। नित्य ठाकुरजीसे प्रार्थना करो—हे प्रभु! आप मेरे मनको खीच लीजिए। मुझमें ऐसी शक्ति नही कि मै अपने मन द्वारा आपको खीच सकूँ। भगवान जिसके मनको खीच लेते है, उसका मन संसारमें जाता नहीं।

मनसे ईश्वरका ध्यान करो तो अति उत्तम है, परन्तु ईश्वरका ध्यान कदाचित् न हो तो बाधा नहीं, परन्तु कोई मनुष्यका ध्यान न हो इससे सावधान रहना। सकाम-का ध्यान करनेसे काम-वासना बढ़ती है, और निष्कामका ध्यान करनेसे निष्कामता आती है पापका मूल चित्तमें है। इस चित्तमें श्रीरघुनाथजी आवें तो चित्त विशुद्ध बनता है।

आचार्योंने अंतःकरणके चार भेद माने हैं। मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार। तत्त्वसे विचार करनेसे चार नही, एक ही अतःकरण है। अतःकरण जब ससारके सकल्प करता है तब मन कहलाता है। अंत करण जब किसी विषयका निश्चय करता है तब अत करणको बुद्धि कहते हैं। अंत करणमें जब मै आता है तब उसको अहङ्कार कहते हैं और अंत.करण जब परमात्माका चिन्तन करता है तब उसको चित्त कहते है। चित्त ही चित्रकूट है। परमात्माका चिन्तन करनेसे अंत.करण ही चित्त बनता है।

प्रभुकी मूर्तिका चिन्तन करो। मन्दिरमे ठाकुरजीके दर्शन किए पीछे मन्दिरके द्वारपर बैठनेका एक नियम है। कितने ही लोग तो ऐसा समझते हैं कि जय, जय, जय बोलते-बोलते जाइये और दर्शन करिये, उससे थोड़ी थकान हो तो मन्दिरके द्वारपर आराम-के लिए थोड़ा बैठना है। कितने ही लोग ससार भरकी बातें मन्दिरके आँगनमे बैठकर करते हैं। मन्दिरका आँगन क्या आराम करनेके लिए बैठनेको है? क्या जगतकी बातें करते-करते बैठने के लिए है? अरे! मन्दिरमें प्रभुके स्वरूपका तुमने दर्शन किया, उस स्वरूपका चिंतन करनेके लिए मन्दिरका आँगन बैठनेको है। जिससे, परमात्माके, वस्त्र, आभूषणों के शृंगारके साथ जिस मंगलमय स्वरूपका दर्शन तुमको आज हुआ, वह स्वरूप आनेवाले कलको फिर दर्शन करने जाओ। तब तक आँखमें-से और मनमें-से खिसके नही, वह स्वरूप तुमको सतत दीखता रहे।

बहुतोंसे दर्शन करनेके बाद पूछो कि आज ठाकुरजीने क्या शृंगार किया था? क्या वस्त्र-परिधान धारण किए थे—तो सिर खुजलाने लगेंगे। तब मन्दिरमे क्या दूसरोंके कपड़े देखनेके लिए आए थे? कितने ही लोग तो मंदिरमें दर्शन करनेके लिए नही जाते, हाजिरी देनेके लिए जाते हैं कि वैष्णवोकी गिनतीमे मेरा भी नाम हो जावे तो ठीक है। मैं वैष्णव हूँ, भक्त हूँ। तब भगवानसे कहते हैं—मैं आया हूँ। अब तुम मन्दिरमे बैठे रहना और मै बाहर बँगलेमे जाता हूँ। भगवान कहते हैं—तू मेरे लिए आया है? तू तो अपनी जातिके वैष्णव कहलानेके लिए आया है। तेरी हाजिरी मैं नही लिखता।

दर्शन तो वे करते हैं जो दर्शन करनेके बाद ठाकुरजीको साथ ले जाते है। ठाकुर-जी केवल मन्दिरमें नही, अपने मनमे भी आकर विराजे, इसकी आवश्यकता है। ठाकुर-जी मन्दिरमे विराजे इससे अपनेको शान्ति नही मिलती परन्तु वे अपने मनमें विराजें तो शान्ति मिलती है। मनमें विषय भरे हुए हैं। जिस प्रकार मनमे ससारके विषय रखते हो, उसी प्रकार मनमे भगवानको रक्खोगे तो जीवन कृतार्थ हो जाएगा। मनसे परमात्माका स्मरण करो। मनसे ठाकुरजीके सान्निध्यका सतत अनुभव करो। मनसे ठाकुरजीको साथ रक्खो। इसलिए ठाकुरजीका दर्शन करो, उस समय प्रभुके मंगलमय स्वरूपको आंखके मार्ग द्वारा अन्दर उतारो। फिर मन्दिरके आँगनमे बैठकर उसका थोड़ा चिन्तन करो। ऐसा

करनेसे अंतःकरण चित्त बन जाएगा और उसी चित्त-रूपी चित्रकूटमें श्रीसीतारामजी विराजेंगे।

चित्रकूट अतिदिव्य भूमि है। संतोंके दर्शन चित्रकूटमें होते हैं। चित्रकूटमें अत्रि ऋषिका आश्रम है। अत्रि ऋषिके आश्रमें-से ही मन्दाकिनी गंगा प्रगट हुई हैं। अत्रि-ऋषिका नित्य गंगा-स्नानका नियम था। अत्रि ऋषिकी वृद्धावस्था हुई तब नित्य गंगा-स्नान करनेके लिए चलकर जानेमे उनको कठिनाई होने लगी। तब उनकी पत्नी अनुसूयाजोने गंगा माँ-की प्रार्थना की—हे गगा माँ! मेरे पतिदेव अब वृद्ध हो गये हैं। गगा-स्नानका इनका नित्यका नियम है। इसलिए हे माँ! तुम मेरे आश्रममे पधारो। अनुसूयाजीकी प्रार्थनासे साक्षात् मन्दाकिनी गंगाजो अत्रि ऋषिके आश्रममें प्रगट हो गयी।

मन्दाकिनी गंगा चित्रकूटमें है। अतिदिव्य है। चित्रकूटमें श्रीतुलसीदास महाराजको श्रीसीतारामजीके दर्शन हुए थे।

चित्रकूट के घाट पर, भइ सन्तन की भीर।
तुलसिदास चन्दन घिसें, तिलक करें रघुवीर॥

तुलसीदासजी रामचन्द्रजोको पहचान नहीं सके। उस समय हनुमानजी महाराजने तोता बनकर यह दोहा बोला है। चित्रकूट अतिदिव्य भूमि है। श्रीरघुनाथजी वहाँ विराजते है।

तुम अपने चित्तको चित्रकूट जैसा पवित्र बनाओगे तो तुम्हारे हृदयमें भी श्रीसीताराम विराजेंगे। श्रीसीताजो पराभक्ति-स्वरूपा है। लक्ष्मणजो वैराग्यके स्वरूप है। वैराग्यसे ही भक्ति दृढ़ होती है। ससारके विषयोंमें वैराग्य न हो तो भक्ति छिन्न-भिन्न हो जाती है। श्रीसीताजीके साथ भगवान चित्रकूटमें विराजे हुए है।

वाल्मीकिना तत्र सुपूजितोऽयं,
रामः ससीतः सह लक्ष्मणेन।
देवैर्मुनीन्द्रैः सहितो मुदास्ते,
स्वर्गे यथा देवपतिः सशच्या॥

बडे-बड़े ऋषि श्रीरामजीके दर्शनके लिए आने लगे। चित्रकूटमें श्रीरामजी रोज नियमपूर्वक मन्दाकिनी गंगामें स्नान करते, श्रीसूर्यनारायणको अर्घ्यदान करते और भगवान शंकरकी पूजा करते थे। लक्ष्मणजी कंद, मूल फल लाते, वह सब आरोगते थे। श्रीसीताजीको और लक्ष्मणको अयोध्या याद न आवे, घरका स्मरण न हो, इसलिए रामजी दोनों-

को पुराणोंकी मंगलमय कथा सुनाते। लक्ष्मण-जानकीजी आनन्दमे चित्रकूटमें विराजते थे। श्रीरामको किसी समय भरतजी भी याद आते थे। जगत श्रीराम-नामका जप करता है, जगत श्रीरामजीका स्मरण करता है, पर चित्रकूटमे विराजे हुए श्रीराम भरतको याद करते हैं।

भरत सरिस को राम सनेही। जग जपु राम राम जपु जेही॥

तुम्हारी भक्ति सच्ची कब?...ठाकुरजी तुमको याद करें जब। ऐसी रीतिसे भगवानका सेवा-स्मरण करो कि किसी दिवस भगवान तुमको याद करें। जीव ईश्वरका स्मरण करे तो साधारण भक्ति, परन्तु जीवका स्मरण ईश्वरको हो तो ही भक्ति सच्ची। जीव तो दुःखी है। इसलिए वह जगतको भूलकर आनन्द प्राप्त करनेके लिए परमात्माका स्मरण करता है। इसको ऐसा लगता है कि मैं जगतको भूल जाऊँ और भगवानका स्मरण करूँ तो मुझको कुछ शान्ति मिलेगी, आनन्द मिलेगा।

लोग गाँवके बाहर बगीचेमे जाकर बैठते है, वह भी जगतको भूलनेके लिए ही बैठते हैं। जब तक जगतका स्मरण है तब तक दुःख है। ससारका विस्मरण हुए पीछे ही सुख मिलता है। इसलिए जीव ईश्वरका स्मरण करता है। इसमे क्या आश्चर्य है? परन्तु आनन्दरूप ईश्वर जीवका स्मरण करे तो जीवकी भक्ति कैसी होगी?

भक्ति ऐसी करो, प्रभुके साथ प्रेम इस रीतिसे करो कि भगवानको तुम्हारा स्मरण हो, भगवान तुमको याद करें। श्रीकृष्ण भगवान स्वधाम पधारे, तब उन्होने विदुर-जीको तीन बार याद किया था। भगवान जिसको अपना कहकर अपनावे, उसका बेड़ा पार है। परमात्मा किसी जीवसे जल्दी नही कहते कि तू मेरा है। ठाकुरजी परीक्षा करेंगे और पीछे कहेंगे कि तू मेरा है। जीव मन्दिरमें जाकर भगवानसे कहता है कि अपना सर्वस्व तुमको अर्पण करता हूँ। मैं तुम्हारा हूँ। पीछे घरमे जाकर बच्चीकी माँ-से कहेगा कि मैं तेरा हूँ। भगवान कहते हैं—बेटा! तेरा सर्वस्व क्या है, वह मैं जानता हूँ। मन्दिरमें जो भगवानका था, वह घर आनेके बाद बच्चीकी माँ-का हो जाता है। जगतमें जब तक यह जीव किसी दूसरेका होकर रहता है, तब तक वह भगवानका हो सकता नही। जो परमात्माके सिवाय अन्य किसीका भी नहो, उसको ही परमात्मा अपनाते हैं।

दशरथ-महाराजका प्राण-त्याग

श्रीरामचन्द्रजीके साथ गुह राजा चित्रकूट तक आए थे। चित्रकूटमें उन्होंने रामजीके लिए सुन्दर पर्णकुटीकी रचना की। पीछे प्रभुने आज्ञा की, तब गुह राजा अपने राज्यमें वापिस गये। गंगाकिनारे गुह राजाने मंत्री सुमंत्रजीको मूर्च्छामें पड़ा हुआ देखा। मंत्रीजी अयोध्या वापिस जा सके नहीं थे। रामजी जिस दिशामें गये हुए थे उस दिशामें देखते हुए मंत्रीजी पड़े हुए थे। मुखसे सीताराम, सीताराम शब्द निकलता था। रामजीके रथके घोड़े भी शोकभरी हिनहिनाहट करते थे। आँखोंसे आँसू निकलते थे। तिनका और पानीका त्याग किया था। मानो पूछ रहे थे—हमारे रामजी कहाँ हैं? हमारे मालिक कहाँ हैं?

यह दृश्य देखकर गुह राजाकी आँखोंमें आँसू आ गये। इन्होंने मंत्रीजीको सावधान किया। कहा—

तुम्ह पंडित परमारथ ग्याता। धरहु धीर लखि बिमुख बिधाता॥

मंत्रीजी! आप वयोवृद्ध हो, बुद्धिमान हो, आपको मैं क्या समझाऊँ? भाग्य टेढा होता है उस समय भी बुद्धिमान मनुष्य धीरज ही रखते हैं। मंत्रीजी अयोध्याकी तरफ प्रयाण करनेको तैयार हुए। गुह राजा समझ गये कि मंत्रीजी अकेले अयोध्यामें जा सकें ऐसी उनकी मनःस्थिति नहीं। गुह राजाने चार भीलोंको साथ भेजा। चार भील मंत्रीजीको रथमें बैठाकर अयोध्याजी ले आए। दोपहरके समय रथ अयोध्याके पास आया। मंत्रीजीने विचार किया कि अभी मैं अयोध्यामें जाऊँगा तो सब लोग दौड़ते-दौड़ते मुझको घेर लेंगे और पूछेंगे कि रामजी कहाँ है? तुम रामजीको कहाँ छोड़ आए? सबको मैं क्या जवाब दूंगा? हाय रे! धिक्कार है मुझको। आज मेरे प्राण चले गये होते तो जगतमे मेरी कीर्त्ति बढ़ती परन्तु मैं तो रामजीको छोड़कर घर वापिस जा रहा हूँ। अब घर जानेके बाद अनर्थ होनेवाला है। यह सब अनर्थ अब मुझे देखना पड़ेगा। महाराज दशरथ अब जीवित नही रहेंगे, ऐसा मुझको लगता है। महाराज मुझसे पूछेंगे कि मेरा राम कहाँ है? मैं इनको किस रीतिसे समझाऊँगा? कौशल्याजी मुझसे प्रश्न करेंगी कि मेरे रामको तुम कहाँ छोड़ आये? अयोध्याकी प्रजा श्रीराम-दर्शनके लिए तरसती है। मै सबको क्या जवाब दूंगा? अभी तो दिनका प्रकाश बाकी है। इसलिए मेरा अयोध्यामें अभी प्रवेश करना उचित नहीं। अन्धकार हो जाये, सब लोग सो जायें उसके बाद ही अयोध्यामें जाऊँगा।

मंत्रीजीने अयोध्याके बाहर एक बगीचेमे मुकाम किया। सायंकाल हुआ। चारों ओर अँधेरा हो गया। उस समय, जिस प्रकार चोर घरमें घुसता है उसी प्रकार मंत्रीजी अयोध्यामें घुसे।

'सुमन्त्रजी श्रीराम-लक्ष्मण-जानकीजीको रथमें बैठाकर जिस समय वनमें ले गये थे उस समय तो महाराज दशरथ कैकेयीके महलोमे थे। रामजी वनमे चले गये उसके पश्चात् राजाने कहा—मुझे कैकेयीके महलमे अब रहना नही। अब मै थोड़े समयके लिए कौशल्या-के महलमें रहूंगा। मुझे वहाँ ले चलो। इसलिए महाराजको कौशल्याजीके महलोमें ले जाया गया।

मंत्रीजी यह जानते नही थे। वे तो सीधे कैकेयीके महल में गये। वहाँ जाकर पूछा कि महाराज कहाँ है? मंत्रीजीका शरीर थर-थर कांप रहा था, आंखोसे आंसू निकल रहे थे, बहुत व्याकुल हो गये थे। दासीने मत्रीका हाथ पकड़ लिया और कहा—महाराज तो कौशल्याजीके महलमें हैं। चलो, मै पहुंचा आऊं। दासी मंत्रीजीको कौशल्याजीके महल-में ले आयी।

महाराज दशरथ गद्दीके ऊपर पड़े थे। बहुत व्याकुल थे। मंत्रीजीने राजाको आशीर्वाद दिया—आयुष्मान् चिरजीव। मंत्रीजीका शब्द राजाके कानमें आया। महाराज दशरथ थोड़े जागृत हुए। आंख उघाडी। मत्रीजीको वन्दन करते हुए देखा। राजाने मंत्री-जीका हाथ पकड़कर पासमें बैठाया। पूछा—मत्रीजी! मेरा राम कहाँ है? तुम रामजीको साथ ले आए या वनमें छोड़ दिया? मत्रीजी! मेरे रामजी जैसा पुत्र आज तक हुआ नही और होनेका भी नही। मैंने उससे कहा था कि मै तेरा राज्याभिषेक करूँगा परन्तु मेरा जैसा कोई दुष्ट नहीं कि स्त्रीके कहनेसे मैंने उसको वनमे भेजा। उसको तनिक भी खोटा लगा नही। उसने मेरे पद-स्पर्श किए और मुझको समझाकर गया कि पिताजी! धीरज रक्खो। चौदह वर्ष पीछे मैं वापिस आऊंगा। मुझको ऐसा लगता है कि राम जैसे लायक पुत्रका पिता होनेके लिए मै लायक नही।

महाराज दशरथ रामजीका स्मरण करने लगे—श्रीराम, श्रीराम, श्रीराम बोलने लगे। आगे कहने लगे कि मंत्रीजी! श्रीराम जहाँ हो वहाँ तुम मुझको नही ले जाओगे? मुझे रामके दर्शन करने हैं। यहाँ थे तब मैंने रामको किसी दिवस बराबर देखा भी नही। मुझको रामके दर्शनकी बहुत इच्छा है। राम कहाँ हैं? सीताजी कहाँ है? मेरा लक्ष्मण कहाँ है? रामजीने मेरे लिए क्या कुछ सदेशा दिया? मंत्रीजी! मेरे रामकी सब वार्ता मुझे सुनाओ।

सुमंत्रजी राजाको आश्वासन देने लगे—महाराज! आप धर्म-धुरंधर हो, बुद्धिमान हो। बड़े-बड़े ऋषि-मुनियोंका आपने सत्संग किया है। यह विपत्तिका समय है।

जनम मरन सब दुःख सुख भोगा। हानि लाभु प्रिय मिलन बियोगा॥
काल करम बस होहिं गोसाईं। बरबस राति दिवस की नाईं॥

तुम शोक छोड़कर धीरज धारण करो। राम-विरह बड़ा दुःख-सागर है। उस सागरके पार उतरना है। तुम कर्णधार हिम्मत हार जाओगे तो हम सबका क्या होगा? म आपको रामजीकी सब कथा सुनाता हूँ।

आपकी आज्ञाके अनुसार तो मै रथ लेकर रामजीके पास गया। रामजीसे कहा कि पिताजी की आज्ञा है कि आप रथमें विराजो। श्रीराम-लक्ष्मण-जानकीको रथमें वैठाकर तमसा नदीके किनारे गया। अयोध्याकी प्रजा भी पीछे दौड़ती-दौड़ती वहाँ आयी। मध्य रात्रिके समय सबको गाढ निद्रा लगी, पीछे हमने वहाँसे प्रयाण किया। प्रातःकाल शृंगवेरपुर पहुँचे। शृंगवेरपुरके राजा गुहने बहुत स्वागत किया। बहुत आग्रह किया कि मेरे राजमहलमें पधारो परन्तु रामजीने मनाही कर दी। एक दिवस गंगाके किनारे शीशमके झाड़के नीचे प्रभुने विश्राम किया। प्रातःकालमें बड़का दुध मँगाकर श्रीराम-लक्ष्मणने सुन्दर बालोकी जटा बनायी। मैंने बहुत-बहुत प्रार्थना की कि महाराजकी तो आज्ञा है कि दो-चार दिन वनमें घुमाकर रामजीको अयोध्यामें वापिस ले आओ।

तब श्रीरामजीने मुझसे कहा—पिताजीकी आज्ञाका पालन करना मेरा धर्म है। ज्ञानी महापुरुष धर्मके लिए प्राणोंका भी बलिदान कर देते हैं। पिताजीके लिए मैं जो करूँ, वह कम है। पिताजीसे कहना कि आपके चरणोमे हमारा प्रणाम है। हमारी चिंता करना नहीं। आपके आशीर्वादसे वनमें हमारा मंगल ही है।

बनमग मंगल कुसल हमारें। कृपा अनुग्रह पुन्य तुम्हारें॥

श्रीसीताजीने भी प्रणाम कहा है। पीछे केवटने चरणोकी सेवा की। श्रीराम-लक्ष्मण-जानकीजी नावमें बैठे और गंगापार गये। उनका दुःख-सुख—यह सब मैंने नजरसे देखा। श्रीराम-लक्ष्मण-जानकीजी सामने किनारेपर उतरकर चलने लगे तो दूर तक मैं देखता रहा। बोलते-बोलते मंत्रीजी बहुत व्याकुल हो गये। आगे कहा—मैं जीवित वापिस आया हूँ। रामजीका संदेशा लेकर आया हूँ।

उस समय महाराज दशरथकी घबराहट बहुत बढ गयी। कहने लगे—रामजीको गये आज छह दिन पूरे हो गये हैं। अभी मेरे पंचप्राण जाते नही। मेरे प्राणोंको धिक्कार है। कौशल्याजी महाराज दशरथको आश्वासन देकर कहने लगी—तुम धैर्य धारण करो। हम सब आपके आश्रित हैं। चौदह वर्ष तो घड़ी-पलकी तरह बीत जायेंगे और आपका राम आपको आकर वंदन करेगा।

दशरथजीने कहा—अब मेरे प्राण बहुत व्याकुल हुए हैं। मेरे हृदयमें बहुत दुःख है। कौशल्याजी महाराजके वक्षपर हाथ फेरने लगी। महाराज दशरथका दुःख देखकर रानियाँ रोने लगी। यह विलाप देखकर शोकको भी शोक होने लगा। महाराज दशरथ, श्रीराम, श्रीराम, श्रीराम रटते थे। रात्रिका समय था। महाराज दशरथके प्राण अतिशय व्याकुल हो गये।

तुमको जब तक ठाकुरजीका वियोग सहन होता है, श्रीरामके वियोगमें जब तक तुम्हारा मन संसारमें रमता है, तब तक मानना कि मैं वैष्णव नहीं। लोग भले कहते रहें कि वैष्णव हो। वैष्णव तो वह है जो प्रभुका वियोग सहन कर सकता नहीं, जो परमात्माके वियोगमें व्याकुल होकर रोता है।

परमात्माके वियोगमें जिसका मन संसारमें रमता है वह भक्ति क्या करता होगा? प्रभुके वियोगमें जिसको बहुत दुःख होता है वही सच्ची भक्ति करता है—मैं अपने भगवानसे बिछुडा हुआ हूँ, अनादिकालसे संसारमें भ्रमता हूँ। फिर भी मुझको श्रीरामके दर्शन होते नही। मुझे श्रीरामसे मिलना है। मुझे प्रभुको आलिंगन देना है—ऐसा भाव जागृत हो और संसारके सभी सुख तुच्छ लगें तब भक्ति का आरम्भ होता है।

परमात्माके वियोगमें जिसके प्राण व्याकुल होते नहीं, प्रभुके दर्शन-मिलनकी जिसको आतुरता नहीं, वह तो संसारकी भक्ति करता है। वह परमात्माकी भक्ति करता नहीं। भक्तिका आरम्भ तो तब ही होता है जब परमात्माके वियोगमें दुःखका अनुभव हो। जीवको जब लगता है कि मैं अपने भगवानसे बिछुड़ा हुआ हूँ, मैं भगवानका अंश हूँ, फिर भी अपने भगवानको भूल गया हूँ। मुझको परमात्माके दर्शन कहाँ होगे? मेरी इतनी उम्र हो गयी, मेरा जीवन अब पूरा होनेको आया है परन्तु मुझको अभी तक प्रभुके दर्शन हुए नही—ऐसी व्याकुलता जागे तब भक्तिका आनन्द मिलता है।

महाराज दशरथकी व्याकुलता बढ़ने लगी। उन्होने कौशल्याजीसे कहा—

इदानीमेव मे प्राणा उत्क्रमिष्यन्ति निश्चयः।
शप्तोऽहं बाल्यभावेन केनचिन्मुनिना पुरा॥

महारानी! अब मैं जीनेका नहीं। मेरे प्राण निकलनेकी तैयारीमें हैं। मुझको श्रवणके पिताका शाप है। राजाने कौशल्याजीको सब कथा सुनायी। पहले जब मैं युवराज-पदपर था तब शब्दवेधी बाण छोड़नेकी धनुर्विद्या सीखा था और इससे मुझमें कुछ मद आ गया था। एक रात्रिको शिकार खेलनेके लिए में सरयूजीके किनारे गया। रात्रिके समय नदीमें पानी पीनेके लिए जंगली पशु आते थे। इनकी आहट सुननेकी आशासे मैं एक वृक्षकी ओटमें छिपा रहा, इतनेमें जलसे भरते हुए घड़ेका शब्द मैंने सुना, परन्तु उस समय

वह शब्द हाथीके नाद जैसा मुझको जान पडा। कोई हाथी पानी पीने आया होगा, ऐसा समझकर जहांसे नाद आया था, उस तरफ लक्ष्य साधकर मैंने बाण फेका परन्तु तुरन्त ही किसी मनुष्यका आर्त्तनाद मेरे सुननेमे आया।

मैं स्तब्ध हो गया। मेरे कानमें शब्द पड़ा—अरे! रात्रिके समय मैं यहाँ जल लेने आया हूँ तब मुझको किसने बाण मारा? मैंने किसका अपराध किया है? मेरे मरणके पीछे मेरे वृद्ध, अंधे माता-पिताका क्या होगा? वे किस रीतिसे जीवित रह सकेंगे?

यह करुणाजनक वाणी सुनकर मुझको अत्यन्त उद्वेग हुआ। मैं उस स्थलपर गया तो एक तपस्वी पुरुषको अपने बाणसे वेधित होकर चित पड़ा हुआ देखा। मुझको देखकर उसने कहा—राजन्! मैं अपने माता-पिताके लिए जल लेने यहाँ आया था। मेरे माता-पिता अत्यन्त प्यासे हैं। वे बहुत आतुरतासे मेरी बाट देखते होंगे। तुम मेरे माता-पिताके पास जाकर शीघ्र ही यह सब समाचार निवेदन करना। मेरे पिता मुनि हैं। वे तुमको शाप नहीं दे, इस रीतिसे उनको प्रसन्न करना।

मुझको अत्यन्त शोक और चिन्तासे विह्वल देखकर वह बोला—राजन्! चिन्ता नहीं करना। तुमको ब्रह्महत्या नहीं लगी। मैं शूद्र जातिकी माताके पेटसे वैश्य जातिके पितासे उत्पन्न हूँ। इतना कहकर श्रवणकुमारने देह छोड़ दिया। मैं उसके माता-पिताके पास गया। अत्यन्त दीन होकर उनको सब कथा सुनायी। वे मूर्च्छाको प्राप्त हो गये। अत्यन्त विलाप करते हुए उन्होंने पुत्रकी अंत्येष्टि क्रिया की। चिता प्रज्वलित की और उन दोनोंने भी चितामें प्रवेश किया। उस समय मुनिने मुझको शाप दिया।

एवं त्वं पुत्रशोकेन राजन् कालं करिष्यसि॥

राजन्! तुम्हारी भी इसी प्रकारसे पुत्रशोकसे मृत्यु होगी। महाराज दशरथने कौशल्याजीसे कहा—देवी! इस शापके फलका समय अब आ गया है। राम बिना जीवनको धिक्कार है।

सो तनु राखि करब मैं काहा। जेहि न प्रेम पनु मोर निबाहा।
हा रघुनंदन प्रान पिरीते। तुम्ह बिनु जिअत बहुत दिन बीते॥

महाराज दशरथको देह-प्राणके प्रति ग्लानि हो गयी। राम-वियोगमें अब तक ये टिंके रहे? इस जगतमें शुद्ध प्रेम कहीं दीखता नहीं। जगतका जो कुछ प्रेम है वह अधिक भागमें स्वार्थसे ही भरा हुआ है। मानव शुद्ध और निःस्वार्थ भावसे जल्दी प्रेम करता नहीं। शुद्ध भावसे प्रेम करे, उसको वियोग होता नहीं, और कदाचित् हो तो वह वियोगमें जीवित रहता नहीं।

महाराज दशरथने कहा कि राम-वियोगमे छह दिन मेरे प्राण रहे। अब प्राणोंको में शुद्ध करता हूँ। छह बार श्रीराम, श्रीराम, श्रीराम बोलते-बोलते राजाने प्राणका त्याग किया।

राम राम कहि राम कहि, राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर बिरह, राउ गयउ सुरधाम ॥

परमात्मा श्रीरामजीके साथ सम्बन्ध रखनेसे जीवन-मरण मंगलमय होता है। परमात्माके साथ सम्बन्ध न रखो तब तक प्रभुका बराबर स्मरण होगा नही। सम्बन्धसे ही स्मरण होता है। सम्बन्धसे ही लगन होती है। गांवमे बहुतोको बुखार आता होगा, परन्तु सम्बन्ध बिना हम उनको देखने भी जाते नहीं। जिसके साथ कुछ सम्बन्ध है, उसके प्रति स्नेह होता है।

ईश्वरके साथ सम्बन्ध जोड़ो। इस जीवका जगतके साथ सम्बन्ध कच्चा है, ईश्वरके साथ ही सम्बन्ध सच्चा है। यह जीव है तो ईश्वरका, फिर भी अज्ञानसे यह जगतका बन गया है। कितने ही ऐसा समझते हैं कि मैं पति हूँ, मैं पिता हूँ, मैं पुत्र हूँ। पिता-पुत्र अथवा पति-पत्नीका सम्बन्ध व्यवहार-दृष्टिसे भले सत्य जैसा भासे, परन्तु तत्त्व-दृष्टिसे विचार करनेपर न कोई पिता है, न कोई पुत्र है, न कोई पति है, न कोई पत्नी है। जीव ईश्वरका अंश है। ईश्वरके साथ ही इसका सम्बन्ध सच्चा है। ईश्वरको भूलकर जीव मायासे जगतके साथ सम्बन्ध जोड़ता है। परिणाममें दुःखी होता है।

परमात्माके अनेक स्वरूपोमें-से किसी एक स्वरूपको इष्टदेव मानो। परमात्माका कोई भी एक स्वरूप, इष्टदेव निश्चित करो। पति एक ही होता है, उसी प्रकार इष्टदेव एक ही रक्खो और उनके साथ सम्बन्ध जोड़कर सेवा-स्मरणमे तन्मय बनो। सब देवोंको वंदन करो परन्तु ध्यान और स्मरण इष्टदेवका करो। एक इष्टदेवमे परिपूर्ण भाव रखो और दूसरे देवोंका स्वयंके इष्टदेवका अंशरूप मानकर वंदन करो। पत्नी अनन्यभाव पति-में रखती है और दूसरे सम्बन्धियोंसे सामान्य प्रेम रखती है। इस संसारमे लोगोंकी रुचि अलग-अलग होती है।

रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥

प्रत्येक नदीका मार्ग अलग-अलग होता है परन्तु सब नदियोंका लक्ष्यस्थान तो एक ही होता है—समुद्र। इस प्रमाणमें रुचि-अनुसार भिन्न-भिन्न शास्त्रोको माननेवालो-के इष्टदेव भिन्न होते हैं, फिर भी सबका लक्ष्यस्थल एक ही है—परमात्मा। परमात्मा एक ही है। दीपकके पास जिस रंगका कांच ढंक दो उसी रंगका प्रकाश दीखेगा।

उसी प्रकार परमात्मा श्रीराम, श्रीकृष्ण, शिवजी, गणेशजी इत्यादि अनेक स्वरूप धारण करते हैं।

इसीलिए तो व्यास महर्षिने भागवतमें मंगलाचरण करते हुए कहा है—सत्यं परं धीमहि। व्यासजीने किसीका विशिष्ट रीतिसे नाम देकर उसका ही ध्यान करनेको कहा नहीं परन्तु सत्यस्वरूप परमात्माका ध्यान करनेको कहा है। जिसको जो स्वरूप अच्छा लगे, उसका ही उसे ध्यान करना है। जिसको जिस स्वरूपमें प्रीति हो, उसके लिए उस स्वरूपका ध्यान उत्तम। ठाकुरजीके जिस स्वरूपके ध्यानमें अपनेको आनन्द आवे, वह अपने लिए इष्ट है। रामजीमें प्रीति हो तो रामजीका ध्यान करे। श्रीकृष्णमें प्रीति हो तो श्रीकृष्णका ध्यान करे। शिवजीमें प्रीति हो तो शिवजीका ध्यान करे परन्तु वंदन-पूजन तो सबका करे।

कितने ही वैष्णव कहते हैं कि हम शिवजीकी पूजा करेंगे तो हमको अन्याश्रयका दोष लगेगा। यह भूल है। सनातनधर्ममें देवता अनेक हैं, परन्तु ईश्वर एक ही है। यह शरीर पंचायतन है, पंचतत्त्वोंसे बना हुआ है। एक-एक तत्त्वके एक-एक देवता हैं। यह पाँच देवता एक ही हैं।

पृथ्वीतत्त्व—गणेश। गणेशकी उपासनासे विघ्नोंका नाश होता है। मनुष्य सत्कर्म करने बैठता है तब मनुष्यके पाप ही उसमें विघ्न करते आते हैं परन्तु गणपति महाराजकी पूजा करें तो उन विघ्नोंका नाश होता है। गणपति महाराज विघ्नहर्त्ता हैं।

अभीप्सितार्थसिद्ध्यर्थं पूजितो यः सुरासुरैः।
सर्वविघ्नहरस्तस्मै गणाधिपतये नमः॥

जलतत्त्व—शिव। शिवजीकी उपासना करनेसे ज्ञान मिलता है।

तेजतत्त्व—सूर्य। सूर्यकी उपासना निरोगी बनाती है।

वायुतत्त्व—माताजी। माताजीकी उपासना धन देनेवाली है।

आकाशतत्त्व—विष्णु। विष्णुकी उपासना प्रेम दान करती है, प्रेम बढ़ाती है।

पाँचों देवता एक ही हैं। उनमें भेद बुद्धि नहीं रखनी चाहिए। ईश्वरके स्वरूप अनेक हैं। परमात्माके किसी भी रूपके साथ तन्मय हो जाओगे तो तुमको मुक्ति मिलेगी। तुमको जिस स्वरूपमें प्रीति हो उसी स्वरूपका चिन्तन करो, ध्यान करो परन्तु भक्तिमें दुराग्रह न रक्खो। भक्तिमें दुराग्रह आनेसे भक्ति छिन्न-भिन्न होती है। वंदन-पूजन प्रत्येक देवताका करो परन्तु ध्यान एक ही देवताका करो। सबका ध्यान न करो, ध्यान एकका ही करो।

केवल एक स्वरूपमें निष्ठा रक्खे, सतत एक ही स्वरूपका मन बारंबार चिन्तन करे तो मन वहाँ चिपक जाता है और मनकी शक्ति बढ़ती है। ध्यानसे तन्मयता होती है। तन्मयता बिना सिद्धि मिलती नही। विषयाकार मन न हो तब तक विषयका ज्ञान होता नहीं। इसी प्रकार ब्रह्माकार मन न हो तब तक ब्रह्मका ज्ञान होता नही। जिस वस्तुका मन बारंबार चिन्तन करेगा, उसका आकार मनमे स्थिर हो जाएगा। भक्तकी चित्तवृत्ति भगवदाकार होती है। इसलिए एक ही स्वरूपका बारंबार ध्यान करो, चिन्तन करो, सेवा करो।

इस पांचभौतिक शरीरसे जीव परमात्माकी सेवा करने योग्य नही हैं। इस शरीर जैसी मलिन वस्तु कोई नही। यह शरीर मल-मूत्रसे भरा हुआ है। इस शरीरसे परमात्माका मिलना अशक्य है। इस शरीरसे ईश्वरको प्राप्त कर सकते नही। ठाकुरजी-से मनसे मिलना होता है। वैष्णव परमात्मासे मन द्वारा मिलते हैं। एक भावात्मक शरीर-की कल्पना करो और मनसे अपने इष्टदेवकी सेवा करो, मानसिक सेवा करो।

मानसिक सेवाका उत्तम समय सुबह चारसे साढे पाँच बजे तक होता है। मान-सिक सेवा किसीका मुख देखनेसे पहले ही करनी चाहिए। प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर ध्यान करो—मैं गंगाजीके किनारे बैठा हूँ। गंगाजीमें स्नान किया। पश्चात् अभिषेकके लिए गंगाजल लाया। मनसे ही लाना है इसलिए चांदी अथवा सोनेके लोटेमे लाया। उसके पश्चात् प्रत्यक्ष सेवा जिस प्रकार करते हो उसी प्रकार मनसे ठाकुरजीकी सेवा करो। आँखें बन्द करके कपालके मध्यमे ध्यान करोगे तो एक ज्योति दीखेगी। इस ज्योतिके दर्शनमें मनको स्थिर करोगे तो इष्टदेवकी झांकी होगी। प्रतिदिन इस प्रकार मानसिक सेवा करनेसे चित्त शुद्ध होता है।

विरक्त साधु जो किसी वस्तुका संग्रह नही करते, वे मानसिक सेवा करे यह उत्तम है परन्तु गृहस्थोको केवल मानसिक सेवा करना उचित नही। गृहस्थको तो मान-सिक और प्रत्यक्ष दोनो सेवा करनी चाहिए। स्नानके पहले मानसिक सेवा करनी चाहिए। मानसिक सेवामें मनकी आवश्यकता है. प्रत्यक्ष सेवामे अनेक वस्तुओंकी आवश्यकता पड़ती है। मानसिक सेवा करनेसे मन शुद्ध होता है, प्रत्यक्ष सेवा करनेसे तन और धन शुद्ध होते हैं।

जब तक अनन्य भक्ति सिद्ध नही होती तब तक अन्य देवताओमे अपने इष्टदेवका अंश मानकर उनका वंदन करते हुए इष्टदेवके चरणोमे अनन्य भक्ति रखनी चाहिए। इस प्रमाणसे दूसरे देवताओमें अंशात्मक प्रेम रक्खोगे तो पीछे भक्तिमे राग-द्वेष नही आवेगा। यही अनन्य भक्ति है।

परमात्माके साथ कोई भी सम्बन्ध रखनेसे ही जीवन सुधरता है। परमात्माको पिता मानो, तुम बालक बनो। तुम्हारे घरमें जो कुछ आमदनी हो उसे ठाकुरजीके अर्पण करो। भगवानसे कहो—तुम्हारी कृपासे यह मुझे मिला है। मनुष्यमें पैसा कमानेकी अक्ल है परन्तु पैसा हाथमें आनेके बाद उसका सदुपयोग करनेकी अक्ल नहीं। तुमको जो कुछ मिले उसे अपने ठाकुरजीके अर्पण करो। बालकको जो कुछ मिलता है वह अपने पिताको ही देता है।

परमात्माको पिता मानो, तुम अज्ञानी बालक जैसे बनो अथवा ईश्वरको स्वामी मानो, तुम सेवक बनो। भगवान तो अति उदार हैं। भगवान कहते हैं—बेटा! मुझे बाप माननेमें तुझे कोई संकोच होता हो तो तू मेरा बाप बन जा। उसमें भी मुझे कोई बाधा नहीं। मैं तेरा बेटा बननेको तैयार हूँ। तू मुझे बालक मान।

वृन्दावनके एक संतकी कथा है। वे श्रीकृष्णकी आराधना करते थे। उन्होंने संसारको भूलनेकी एक युक्ति की। मनको सतत श्रीकृष्णका स्मरण रहे, उसके लिए महात्माने प्रभुके साथ ऐसा सम्बन्ध जोड़ा कि मैं नन्द हूँ, बालकृष्णलाल मेरे बालक हैं। वे लालाको लाड़ लड़ाते। यमुनाजी स्नान करने जाते तो लालाको साथ लेकर जाते। भोजन करने बैठते तो लालाको साथ लेकर बैठते। ऐसी भावना करते कि कन्हैया मेरी गोदमें बैठा है। कन्हैया मेरी दाढ़ी खींच रहा है। श्रीकृष्णको पुत्र मानकर आनन्द करते। श्रीकृष्णके ऊपर इनका वात्सल्य भाव था।

महात्मा श्रीकृष्णकी मानसिक सेवा करते थे। सम्पूर्ण दिवस मनको श्रीकृष्ण-लीलामें तन्मय रखते, जिससे मनको संसारका चिन्तन करनेका अवसर ही न मिले। निष्क्रिय ब्रह्मका सतत ध्यान करना कठिन है, परन्तु लीला-विशिष्ट ब्रह्मका सतत ध्यान हो सकता है। महात्मा परमात्माके साथ पुत्रका सम्बन्ध जोड़कर संसारको भूल गये, परमात्माके साथ तन्मय हो गये। श्रीकृष्णको पुत्र मानकर लाड़ लड़ाने लगे। महात्मा ऐसी भावना करते कि कन्हैया मुझसे केला माँग रहा है—बाबा! मुझे केला दो, ऐसा कह रहा है। महात्मा मनसे कन्हैयाको केला देते। महात्मा समस्त दिवस लालाकी मानसिक सेवा करते और मनसे भगवानको सभी वस्तुयें देते। कन्हैया तो बहुत भोले हैं, मनसे दो तो भी प्रसन्न हो जाते हैं। महात्मा कभी-कभी शिष्योंसे कहते कि इस शरीरसे गंगा-स्नान कभी हुआ नहीं, वह मुझे एकबार कराना है। शिष्य कहते कि काशी पधारो। महात्मा काशी जानेकी तैयारी करते परन्तु वात्सल्य भावसे मानसिक सेवामें तन्मय हुए कि कन्हैया कहने लगते—बाबा! मैं तुम्हारा बालक हूँ, छोटा-सा हूँ। मुझे छोड़कर काशी नहीं जाना। इस प्रकार महात्मा सेवामें तन्मय होते, उस समय उनको ऐसा आभास होता

था कि मेरा लाला जानेकी मनाही कर रहा है। मेरा कन्हैया अभी बालक है। मैं कन्हैया-को छोड़कर यात्रा करने कैसे जाऊं ? मुझे लालाको छोड़कर जाना नहीं। महात्मा अति वृद्ध हो गये। महात्माका शरीर तो वृद्ध हुआ परन्तु उनका कन्हैया तो छोटा-सा ही रहा। वह बडा हुआ ही नही ! उनका प्रभुमें बाल-भाव ही स्थिर रहा और एक दिन लालाका चिन्तन करते-करते वे मृत्युको प्राप्त हुए।

शिष्य कीर्तन करते-करते महात्माको श्मशान ले गये। अग्नि-संस्कारकी तैयारी हुई। इतने ही में एक सात वर्षका अति सुन्दर बालक कन्धेपर गंगाजलका घड़ा लेकर वहाँ आया। उसने शिष्योंसे कहा—ये मेरे पिता हैं। मैं इनका मानस-पुत्र हूँ ! पुत्रके तौरपर अग्नि-संस्कार करनेका अधिकार मेरा है। मैं इनका अग्नि-संस्कार करूंगा। पिताकी अन्तिम इच्छा पूर्ण करना पुत्रका धर्म है। मेरे पिताकी गंगा-स्नान करनेकी इच्छा थी परन्तु मेरे कारण ये गंगा-स्नान करने नही जा सके थे। इसलिए मैं यह गंगाजल लाया हूँ। पुत्र जिस प्रकार पिताकी सेवा करता है, इस प्रकार बालकने महात्माके शवको गंगा-स्नान कराया, सन्तके माथेपर तिलक किया, पुष्पकी माला पहनायी और अन्तिम वंदन करके अग्नि-संस्कार किया। सब देखते ही रह गये। अनेक साधु-महात्मा थे परन्तु किसीकी बोलनेकी हिम्मत न हुई। अग्नि-संस्कार करके बालक एकदम अन्तर्धान हो गया। उसके बाद लोगोंको खयाल आया कि महात्माके तो पुत्र था ही नही।

बालकृष्णलाल ही तो महात्माके पुत्ररूपमें आये थे। महात्माकी भावना थी कि श्रीकृष्ण मेरा पुत्र है, परमात्माने उनकी भावना पूरी की। परमात्माके साथ जीव जैसा सम्बन्ध बाँधता है वैसे ही सम्बन्धसे परमात्मा उसको मिलते हैं। जिस भावसे जीव ईश्वरका स्मरण करता है, उसी भावसे ईश्वर उसको अपनाते हैं। अरे, परमात्मा तो भक्तके लिये नौकर भी बने हैं। भगवान तो अति उदार हैं, प्रेमके वश हैं। जीव परमात्माके साथ किसी भी प्रकारका सम्बन्ध रखे उसको प्रभु अङ्गीकार करते हैं। परमात्माके साथ सम्बन्ध जोडकर रखना। अन्तकालमें वे बहुत काम आवेंगे। किसी भी रीतिसे यह जीव जगतको भूले और परमात्माका स्मरण करनेमें तन्मय बने तो ही इस जीवका कल्याण है। जगतमें रहकर जगतको भूल जाओ। जगतके साथ जीवका सम्बन्ध सच्चा नहीं। परमात्माके साथ कुछ सम्बन्ध रखो। यही सम्बन्ध सच्चा है।

श्रीराम परमात्मा हैं परन्तु दशरथ महाराज तो श्रीरामको पुत्र मानते थे। मेरा यह पुत्र है—ऐसे पुत्रभावसे वह रामजीका स्मरण करते थे। पुत्रभाव, लौकिक भाव होनेपर भी दशरथ महाराजने यह भाव परमात्माके स्वरूपमें रक्खा था। श्रीरामको ये पुत्र समझते थे और पुत्रभावसे रामजीका सतत स्मरण करते थे। अन्तकालमें श्रीरामजी-का स्मरण करते-करते दशरथ महाराज प्रभुके धाममें गये।

समस्त जीवन-भर जिसका तुम चिन्तन करोगे, अन्तकालमें वह भी तुमको याद आवेगा। प्रतिपल ईश्वरका स्मरण करे, उसका अन्तकाल सुधरता है, उसका मरण सुधरता है। समस्त जीवन जिसके पीछे जाएगा, अन्तकालमें वही याद आवेगा। अतिशय सुखमें और अतिशय दुःखमें भगवानको न भूलो। जो संस्कार मनमें दृढ़ होंगे, वे संस्कार ही अन्तकालमें और दूसरे जन्ममें काम आवेंगे।

पैसेके लिये थोड़ा प्रयत्न करो, आठ-दस घंटे मेहनत करो, परन्तु पैसेका बहुत चिन्तन नहीं करो। कितने ही लोग ऐसे होते हैं कि थोड़ी फुरसत मिलते ही विचार करने लगते हैं कि भाव बढ़ेगा कि घटेगा? अब क्या होगा? यदि सम्पूर्ण दिवस द्रव्यका ही चिन्तन करेंगे तो अन्तकालमें पैसा ही याद आवेगा। लोग ऐसा मानते हैं कि पूरी जिन्दगी काम-धंधा करूंगा, काला-गोरा करूंगा और अन्तकालमें भगवानका नाम लूंगा और तर जाऊंगा। यह मान्यता खोटी है। भगवानने गीताजीमें कहा है—'सदा तद्भाव भावितः।' मानव सदैव जिस भावका चिन्तन करेगा उसका ही अन्तकालमें उसको स्मरण रहेगा। इसलिये निरन्तर मेरा स्मरण कर। तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर। पैसा-पैसा करनेवाले-को अन्तकालमें पैसेका ही विचार आता है। पैसा कमाना पाप नहीं परन्तु पैसा मिलनेपर भगवानको भूल जाना पाप है।

जीवनमें पैसा मुख्य नहीं, परमात्मा मुख्य है। जीवन पैसेके लिए नहीं, परमात्मा-के लिए है। अपने ऋषियोंने धनको साधन माना है। धन साध्य नहीं, साधन है। जीवनमें पैसा मुख्य हुआ, तबसे ही पाप बढ़ गया है। लोग चाहे जिस रीतिसे अधिक पैसा कमाने-की इच्छा रखते हैं। जीवनका लक्ष्य पैसा हुआ, इससे पाप बढ़ा है। जीवनमें पैसेकी आवश्यकता है परन्तु मानवके जीवनका लक्ष्य तो परमात्माके चरणोंमें ही जाना है। मानव लौकिक पदार्थोंमें—विषयोंमें ऐसा फंसा हुआ है कि उसे स्वयंके लक्ष्यका भान रहता ही नहीं। शरीर, पुत्र, स्त्री, द्रव्य आदि असत्य हैं, फिर भी उनके मोहमें वह ऐसा पागल बन जाता है कि न तो उसे समयका भान रहता है, न तो लक्ष्यका और जिस किसी प्रकार उसकी आयुष्य पूरी हो जाती है। भागवतमे शुकदेवजी महाराजने कहा है!

निद्रया ह्रियते नक्तं व्यवायेन च वा वयः।
दिवा चार्थेहया राजन् कुटुम्बभरणेन वा।

मनुष्यकी रात्रि निद्रा और विलासमें बीत जाती है और दिवस द्रव्योपार्जनके निमित्त उद्यम करने और कुटुम्बका भरण-पोषण करनेमें पूरा हो जाता है। मनुष्य जीवनके लक्ष्यको चूक जाता है।

आठ-दस घंटेसे अधिक समय पैसेके लिए दो नही। गृहस्थके लिए मनु महाराजकी आज्ञा है कि छह घटे पैसेके लिए प्रवृत्ति करो। परन्तु अब अधिक कठिनाई है इसलिए आठ-दस घंटेका हो तो भी बाधा नही। छह-सात घटे निद्रामे जायें, आठ-दस घटेका समय अर्थोपार्जनमें जाय, अधिक नही तो जीवनमें रोज चार-पाँच घंटेका समय परमात्माके लिए रखना चाहिए। एकदम प्रवृत्ति छोड़ो, ऐसा तो तुमसे कहता नही, परन्तु प्रवृत्ति कम करो। प्रभुके लिए थोड़ा समय निकालो। परमात्मा सम्पत्ति माँगते नही, समय माँगते हैं।

पैसेसे ही परमात्मा मिलते होते तो ये सब श्रीमंत लोग ठाकुरजीको भी खरीद लेते। ये तो लाख-दो-लाख रुपया भगवानको भेंट रखकर घरमें ही बैठा लें परन्तु भगवान क्या पैसेके लिए इनके घर विराजते हैं? भगवान कहते हैं कि मैं तो लक्ष्मीका पति हूँ। मैंने तुझे बहुत दिया है। तू मुझको कुछ अर्पण करता है तो इसमें क्या शेखी मारता है?

परमात्मा पैसा नही, प्रेम माँगते हैं, समय माँगते हैं। प्रभुके लिए समय अलग रक्खो कि यह समय भगवानके लिए मैंने रक्खा है, इस समय अब मैं जगतका नही, भगवानका हूँ। परमात्माके सेवा-स्मरणमें बैठो, तब मनसे संसारका सम्बन्ध छोड़कर बैठो। घरका त्याग तनसे नही, मनसे करना है। भगवत्-सेवा-स्मरण करनेमें कुछ नुकसान हो तो होने दो। तन ठाकुरजीके पास और मन रसोईघरमें, यह भी क्या सेवा कहलाती है? सेवा करने बैठो, उस समय मनसे घर-संसारका सम्बन्ध छोड़ दो और ऐसा भाव रक्खो कि मेरा घर तो भगवानके चरणोंमें है। इस समय मैं अयोध्यामें हूँ। अपने गाँवको, घरको भी भूल जाओ।

शास्त्रमें ऐसा लिखा है कि जिस देवताकी तुम सेवा करते हो, उस देवताके धाममें मनसे न रहो तब तक सेवा-स्मरण बराबर होगा नही। तुमको रामजीकी सेवा करनी है, तो तुम्हें मनसे अयोध्यामें रहना ही पड़ेगा। तुम्हारा शरीर जहाँ है, वहाँ तुम नहीं, परन्तु तुम्हारा मन जहाँ है वहाँ तुम हो।

महाराज दशरथको भले ही रामजीका वियोग हुआ था, परन्तु मनसे तो वे रामजीके पास ही थे! अन्तिम श्वास तक महाराज दशरथने श्रीराम, श्रीराम, श्रीराम जप किया। महाराज दशरथको सद्गति प्राप्त हुई।

महाराज दशरथका प्रयाण हो गया। रानियाँ बहुत विलाप करने लगी; वसिष्ठ ऋषिको खबर पड़ी, वे शीघ्र आए। वसिष्ठजीकी आज्ञाके अनुसार महाराज दशरथका मृत शरीर तेलकी नौकामें पधराया गया। सिपाहियोंको आज्ञा हुई कि कैकयदेशमें जाओ और

भरत, शत्रुघ्नको खबर दो कि गुरुजीने बुलाया है। यहाँ जो कुछ हुआ है उसके विषयमें एक अक्षर भी कहना नहीं। वशिष्ठजी तुमको बुलाते हैं, बस इतने ही शब्द कहना।

सिपाही द्रुतगामी घोड़ोंसे भरतजीकी ननिहाल पहुँचे। अयोध्यामें जबसे अनर्थ प्रारम्भ हुआ, तबसे भरतजीको रोज दुःस्वप्न दिखायी देते थे। भरतजी घबराते थे कि ऐसे खराब स्वप्न मुझे क्यों दीखते हैं? उसी समय अयोध्यासे सेवक आए और कहा कि गुरुजी-ने आपको बुलाया है। भरतजी बैठे थे, खड़े होगये और तुरन्त ही अयोध्याके लिए निकल पड़े। रथमें बैठे। मार्गमें भरतजीको अनेक अपशकुन हुए।

****

(४२)

हित हमार सियपति सेवकाई

भरतजीने अयोध्यामें प्रवेश किया। अयोध्यामें कहीं तनिक-सा भी आनन्द दीखता नहीं था। समस्त अयोध्या वीरान जैसी लगती थी। बाजार सब बन्द थे। लोग काले वस्त्र धारण किए थे। कितने ही लोगोंको भरतके लिए शंका उठी थी और इससे वे भरतको नजरसे देखते भी नहीं थे। भरतजी घबराये कि अयोध्यामें ऐसा क्यों दीख रहा है? क्या हो गया? भरतजी कैकेयीके महलमें गये। खबर पड़ते ही वे दौड़ती आयीं। भरतजीसे कुशलसमाचार पूछा—मेरे भाई आनन्दमें हैं? भरतजीने सूक्ष्ममें बताया—माँ! सभी आनन्दमें हैं। पीछे तुरन्त ही पूछा—माँ! मेरे पिताजी कहाँ हैं?

कैकेयीने कपट किया। बोली—बेटा! सब बात इस मंथराने सुधारी है। थोड़ी गड़बड़ी हो गयी है। तुम्हारे पिताजी स्वर्ग सिधार गये हैं। यह सुनकर भरतजी बहुत व्याकुल हुए। रुदन करते हुए कहने लगे—मुझको पिताजीकी सेवाका लाभ नहीं मिला। मुझको पिताजीके दर्शन भी हुए नहीं और पिताजी प्रयाण कर गये। मुझको रामके अर्पण किए बिना ही पिताजी छोड़ गये।

तात न रामहि सौंपेहु मोही।

माँ! मेरे पिताजीको क्या हुआ था? कैकेयीने सब कथा सुनायी—राम-राज्याभिषेक-की तैयारी हो रही थी। मंथराने मुझको शिक्षा दी। उसके अनुसार मैंने तुम्हारे पिताजीके

पाससे दो वरदान माँग लिए। बेटा ! तेरे लिए मैंने राज्य माँग लिया है। समस्त राज्य अब तेरा ही है। दूसरा वरदान राम-वनवासका माँगा है। उन रामजीके पीछे-पीछे सीताजी गयी और लक्ष्मण भी गया है। रामके वनमे चले जानेके पीछे तुम्हारे पिताजी बहुत व्याकुल हुए और उन्होने प्राण छोड़ दिए।

श्रीराम वनको गये हैं, इसे सुनते ही भरतजी पिताजीका मरण भी भूल गये। भरतजी अतिशय व्याकुल हुए। इन्होंने कैकेयीका तिरस्कार करते हुई कहा—कैकेयी ! तू कौन है ? वरदान माँगते समय तेरी जीभ सड़ क्यों न गयी ? तूने इतना बड़ा अनर्थ किया !

मंथरा भी वहाँ बनठनकर आयी। उस समय शत्रुघ्नजीको बहुत क्रोध आया। शत्रुघ्नजीने मंथराको लात मारी। भरतजीने उसको छुड़ाया। शत्रुघ्नजीको समझाते हुए कहा—इसके पीछे तुम क्यों पड़े हो ? हमको तो कौशल्या माँ-के घर जाना है। शत्रुघ्नजीको समझाकर भरतजी शत्रुघ्नजीके साथ कौशल्याजीके महलमें गये। भरतजी आए हैं, ऐसा जानते हुए भी कौशल्या माँ-को तो ऐसा लगा कि मेरा राम ही वापिस घर आ गया है। कैकैयीकी आँखमें भले ही विषमता हो कि भरत मेरा है और राम कौशल्याका है। कौशल्या माँ-की आँखें तो प्रेम-भीनी थीं। इनकी दृष्टिमें तनिक भी विषमता नही थी। इनका मन तो ऐसा था कि चारों बालक मेरे ही है और इसलिए भरतजी आए तब कौशल्याजीको तो ऐसा लगा कि मेरा राम आया है।

कौशल्याजी उठकर खड़ी हो गयी। भरतजीको देखकर बहुत ही व्याकुल हो गयीं। उनको एकदम मूर्च्छा आ गयी। कौशल्याजी गिरनेको ही थीं तभी भरतजीने दौड़ते हुए जाकर माताजीको पकड लिया। माँ-को वंदन करके कहा—माँ ! मेरे पिताजी कहाँ हैं ? मेरे राम कहाँ हैं ? माँ ! सीताजी कहाँ हैं ? कौशल्याजीने विलाप करते हुए कहा—बेटा ! तुम्हारे पिताजी तो बहुत भाग्यशाली थे। उनका जीवन और मरण मंगलमय हुआ।

> जिऐ मरै भल भूपति जाना........
> जिअत राम बिधु बदनु निहारा। राम बिरह करि मरनु सँवारा ॥

जीवित रहे तब तक रामके दर्शन करते रहे। रामके वनमें चले जानेपर वे जीवित रह सके नहीं। मेरे प्राण अभी भी जाते नही। भरतजीने कौशल्या माँको वंदन करके कहा—माँ ! कैकेयीने यह जो कुछ किया है, उसकी मुझको तनिक भी खबर नहीं थी। माँ ! मैंने इसमें तनिक भी संमति दी नहीं। माँ ! मैं तुमसे ठीक कहता हूँ, राम-वनवासकी जो मेरी संमति हो तो मैं नरकमें पड़ूँ। माँ ! मैं कुछ जानता नहीं। अगर मैं कुछ जानता होऊँ तो सौ ब्रह्महत्याका पाप मेरे माथे आवे।

पापं मेऽस्तु तदा मातर्ब्रह्महत्याशतोद्भवम् ।
हत्वा वसिष्ठं खड्गेन अरुन्धत्या समन्वितम् ॥
भूयात्तत्पापमखिलं मम जानामि यद्यहम् ।
इत्येवं शपथं कृत्वा रुरोद भरतस्तदा ॥

इसमें मैं कुछ जानता होऊँ तो गुरु वसिष्ठजी और गुरुपत्नी अरुन्धतीजीके मारनेका पाप मुझको लगे। ऐसा कहते-कहते भरतजी रुदन कर उठे। कौशल्याजीने भरतजीको छातीसे लगाया और कहा—बेटा ! मैं तुमको पहचानती हूँ। रामजीमें तुम्हारा कितना प्रेम है, यह अच्छी तरह जानती हूँ।

राम प्रानहुँ ते प्रान तुम्हारे। तुम्ह रघुपतिहिं प्रानहुँ ते प्यारे ॥

यह समस्त दोष मेरे भाग्यका है। विधाता आज मेरे प्रतिकूल है। भरतजीने कौशल्या माँ-को अनेक प्रकारसे आश्वासन दिया—श्रीराम-लक्ष्मण-जानकीजी वनमें चले गये हैं परन्तु मैं तुमको जल्दी ही रामके दर्शन कराऊँगा। तुम चिन्ता मत करो।

तत्पश्चात् वसिष्ठजी वहाँ पधारे। वसिष्ठजीने भरतजीको आज्ञा दी—महाराज दशरथके लिए शोक करने की तनिक भी आवश्यकता नहीं। उनका मरण मंगलमय हुआ है। मृतात्माके पीछे बहुत रोनेसे उसको भी वहाँ दुःख होता है। महाराज दशरथ जीवित रहे, तब तक रामजीके दर्शन करके ही जीवित रहे। अन्तिम श्वास तक वे रामजीका स्मरण करते रहे। उनके तो जीवन और मरण दोनों सुधर गये।

मरण, मन्दिरमें हो अथवा घरमें हो, यह महत्त्वकी बात नहीं। मरणके समय मनःस्थिति कैसी रहती है उसीके ऊपर मृत्युके पश्चात्-की गतिका आधार होता है। कदाचित् किसीका मरण एकादशीके दिन मन्दिरमें हो परन्तु उसका मन प्रभुके चरणोंमें न हो तो मरण बिगड़ता है। अन्तिम श्वास तक महाराज दशरथ श्रीरामजीका ही स्मरण करते रहे।

इसलिए वसिष्ठजीने कहा—भरत ! तुम्हारे पिताजी तो प्रभुके धाममें गये। उनके लिए रुदन करना योग्य नहीं। उनकी आज्ञाका पालन करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। वसिष्ठजीने भरतजीको उपदेश किया। पीछे वसिष्ठजीकी आज्ञानुसार तेलकी नौकासे महाराज दशरथका शरीर निकाला गया। पूजा की गई तथा सरयूजीके किनारे वह ले जाया गया। भरतजीके हाथसे अग्नि-संस्कार हुआ। रामायणमें लिखा है कि महाराज दशरथ आज्ञा दे गये थे कि मेरे रामके वन जानेमें भरतकी संमति हो तो मेरा अग्नि-संस्कार भरतके हाथसे न कराया जाय परन्तु सबको विश्वास हो गया था कि कैकेयीने जो कुछ

किया है, उसमें भरतकी लेशमात्र भी संमति नहीं है। इस विषयमें भरतजीको कुछ भी जानकारी नहीं है। इसलिए अन्तिम विधि भरतजीके हाथसे हुई। उस समय कौशल्याजी बहुत व्याकुल हो गयी। अग्निमें प्रवेश करनेके लिए दौड़ती गयीं। भरतजीने कौशल्याजीके चरण पकड़े और कहा—माँ! मैं तुमको शीघ्र ही श्रीरामके दर्शन कराऊँगा। राम-दर्शनके निमित्त आप जीवित रहिए। भरतजीने कौशल्या माँ-को रोक लिया।

पश्चात् गुरुदेवकी आज्ञानुसार श्राद्धादिक विधि की गयी। भरतजीने अतिशय दान दिया। पन्द्रह-सोलह दिन बीतनेके पश्चात् बड़ा दरबार एकत्रित हुआ।

वसिष्ठो मुनिभिः सार्धं मन्त्रिभिः परिवारितः।
राज्ञः सभां देवसभासन्निभामविशद्विभुः॥

दरबारमें वसिष्ठ ऋषि पधारे। भरतजी, शत्रुघ्नजीको बुलाया गया। महाराज दशरथके पीछे शोक-सभा एकत्रित हुई। सभामें वसिष्ठजीका भाषण हुआ। वसिष्ठजीने महाराज दशरथकी अत्यन्त प्रशंसा की और कहा—मुझे ऐसा लगता है कि दशरथके समान कोई राजा हुआ नहीं और भविष्यमें होना भी नहीं। महाराज दशरथका जीवन और मरण मंगलमय हुआ है. महाराज दशरथके लिए शोक करना योग्य नहीं। शोक किसके लिए किया जाता है—

सोचिअ बिप्र जो बेद बिहीना। तजि निज धरमु बिषय लयलीना॥
सोचिअ नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना॥
सोचिअ बयसु कृपन धनवानू। जो न अतिथि सिव भगति सुजानू॥
सोचिअ सूद्र बिप्र अवमानी। मुखर मानप्रिय ग्यान गुमानी॥
सोचिअ पुनि पति बंचक नारी। कुटिल कलहप्रिय इच्छाचारी॥
सोचिअ बटु निज ब्रतु परिहरई। जो नहिं गुर आयसु अनुसरई॥

सोचिअ गृही जो मोहबस, करइ करम पथ त्याग।
सोचिअ जती प्रपंच रत, बिगत बिबेक बिराग॥

बैखानस सोइ सोचै जोगू। तपु बिहाइ जेहि भावइ भोगू॥
सोचिअ पिसुन अकारन क्रोधी। जननि जनक गुर बंधु बिरोधी॥
सब बिधि सोचिअ पर अपकारी। निज तनु पोषक निरदय भारी॥
सोचनीय सबही बिधि सोई। जो न छाड़ि छलु हरिजन होई॥
सोचनीय नहिं कोसलराऊ। भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ॥
भयउ न अहइ न अब होनिहारा। भूप भरत जस पिता तुम्हारा॥

शोचनीय तो वह है कि ब्राह्मण-शरीर मिला होनेपर भी जो त्रिकाल-संध्या करता नहीं, वेदको जानता नहीं, जो सत्कर्महीन है और विषय-भोगमें लीन है। क्षत्रिय राजा वह शोचनीय है जो स्वयंके धर्मको छोड़कर भोग-विलासमें फँसा रहता है। वैश्य वह शोचनीय है, जो घरमें संपत्ति होनेपर भी बहुत कृपण है। देव-सेवामें, परोपकारमें जो संपत्तिका सदुपयोग न करे वह वैश्य शोचनीय है। शूद्र वह शोचनीय है, जो बहुत वाद-विवाद करता है, वाचाल है। वह स्त्री शोचनीय है, जो पतिके साथ कपट करे, जो पति-देवका अपमान करे। जिस स्त्रीको पतिदेवमें परमात्मा दीखते नहीं, वह स्त्री शोचनीय है। वह ब्रह्मचारी शोचनीय है जो विलासी जीवन बिताता है और गुरुकी आज्ञाका पालन करता नहीं। वह गृहस्थ शोचनीय है जो आँगनमें आये हुए अतिथिका मधुरवाणी और जलसे भी सम्मान नहीं करता।

गृहस्थका घर है कि द्वारपर जो कोई आवे, उसको और कुछ नहीं तो ठंडा पानी अवश्य पिलावे, मधुर वाणीसे उसका सम्मान करे। दरवाजेपर आए हुएका सम्मान यदि नहीं होता तो वह अतिथि उसके पुण्य ले जाता है।

वसिष्ठजीने भाषणमें कहा कि वह साधु-संन्यासी शोचनीय है कि जिसको प्रपंच करना सुहाता है, जिसे वैराग्य नहीं, जिसको भक्तिका रंग लगा नहीं। घरमें क्लेश जगाने-वाला, घरमें आग लगानेवाला, चुगलखोर शोचनीय है। अतिशय शोचनीय तो वह है जो इस शरीरका बहुत लाड़ करता है, शरीर-सुखमें और इन्द्रिय-सुखमें ही जिसका मन फँसा हुआ है और जो केवल स्वयंके लिए ही जीवित रहता है। शोचनीय तो वह है जो समय और संपत्तिका दुरुपयोग करता है। जो दूसरोंका अनिष्ट करता है वह शोचनीय है। अतिशोचनीय वह है जो मानव-जीवन प्राप्त करके परमात्माके सेवा-स्मरणमें तन्मय नहीं होता, जो परमात्माके साथ प्रेम नहीं करता।

महाराज दशरथका तो रामजीमें अतिशय प्रेम था। प्रेमका आदर्श उन्होंने जगतको बताया है। श्रीराम-वियोग वे सहन कर सके नहीं। वे तो जन्म-मरणके त्राससे मुक्त होकर प्रभुके धाममें विराजे हुए हैं। कैकेयीने दो वरदान माँगे थे और उनको देनेके निमित्त उन्होंने श्रीरामजीका त्याग करके सत्यका पालन किया और पीछे प्राणका त्याग करके प्रेमका भी निर्वाह किया। महाराज दशरथ तो गुणोंके भण्डार थे, सब प्रकारसे बड़भागी थे। चौदह लोकोंमें उनका प्रभाव था। ऐसा तो कोई राजा आज तक हुआ नहीं।

वसिष्ठजीने पीछे श्रीसीता-रामजीकी भी बहुत प्रशंसा की। रामका स्मरण करते समय ऋषिकी आँखें सजल हो गयीं। कहने लगे—माता-पिताके प्रति रामजीकी कैसी लगन थी! माता-पिताकी आज्ञा शिरोधार्य करके वे आनन्दसे वनमें पधारे। भरत!

श्रीरामजीने जिस प्रकार पिताकी आज्ञाका पालन किया, उसी प्रकार तुम भी पिताकी आज्ञा-का पालन करो। रामजीको वनवासकी आज्ञा हुई थी और तुमको आज्ञा हुई है राज्य करनेकी। हमारी सबकी इच्छा है कि हम आनेवाले कल तुम्हारा राज्याभिषेक करे। भरत ! तुम राजा होओगे तो रामजी भी बहुत प्रसन्न होगे। मैं जानता हूँ, रामजीके लिए तुम्हारे हृदयमें अतिशय प्रेम है परन्तु श्रीराम-लक्ष्मण-जानकी वनमे गये। महाराज दशरथ स्वर्ग सिधार गये। यह अयोध्या आज अनाथ है। बिना राजाके प्रजा दुःखी रहती है इसलिए मैंने निश्चय किया है कि कल राज्याभिषेक करके तुमको गद्दीपर बैठाया जाये। चौदह वर्ष तुमको राज्य करना ही पड़ेगा। चौदह वर्षके पश्चात् श्रीराम अयोध्या पधारें, उसके पश्चात् तुमको योग्य लगे वैसा करना।

वसिष्ठजीने भाषण पूरा किया। कौशल्या माँ विराजी हुई थी। उन्होंने कहा—बेटा भरत ! धीरज रक्खो। राम वनमें हैं। तुम गुरुदेवकी आज्ञाका पालन करो। मेरी भी यही इच्छा है कि भरतका राज्याभिषेक हो।

उसके पश्चात् मंत्रीजीका भाषण हुआ। महाजन लोगोने भी भरतजीके राज्या-भिषेकमें संमति दी। अब भरतजी क्या बोलते हैं, उसे सुननेके लिए सभी उत्सुक हो गये। भरतजीने श्रीसीतारामजीका स्मरण किया—सीताराम, सीताराम, सीताराम। भरतजी खड़े हो गये, उन्होंने गुरुदेवके चरणोंमे वदन किया और बोलना प्रारम्भ किया—गुरुदेवकी आज्ञाका पालन करना मेरा धर्म है। गुरुदेवकी आज्ञा योग्य अथवा अयोग्य है, उसका विचार करनेकी तनिक भी आवश्यकता नही। गुरुदेवकी आज्ञा-पालन करनेमे ही हमारा कल्याण है। सूर्यवंशके राजा तो बालकोको जन्म-मात्र देते है, परन्तु इन बालकोका श्रेय तो गुरुजीके अधीन है। हमारा सबका रक्षण करनेवाले तो हमारे गुरुदेव श्रीवसिष्ठ ऋषि हैं।

गुरुदेवने मुझे आज्ञा दी है। मेरी माँ कौशल्याने भी आज्ञा दी है कि मेरा राज्याभिषेक हो। अयोध्याकी प्रजा भी ऐसी इच्छा रखती है कि राज्याभिषेक होना चाहिए। आज मैं सम्मुख उत्तर देता हूँ, मुझे क्षमा करना। आप सबका वंदन करके मेरे हृदयमें जो भाव आते हैं उनको आज व्यक्त करना चाहता हूँ। मुझको लोगोसे इतना ही पूछना है कि मुझे गद्दीपर बैठाकर अयोध्याकी प्रजा सुखी होगी, ऐसी इनकी मान्यता है या मैं सुखी होऊँगा, ऐसी मान्यता है ?

मैंने तो निश्चय किया है कि मेरा कल्याण श्रीसीतारामजीकी सेवामे है।

हित हमार सियपति सेवकाई।

मैंने अपने मनसे निश्चय किया है कि श्रीराम-सेवासे ही मेरा कल्याण है। इस राज्य-की गणना क्या ? श्रीराम बिना राज्य किस कामका ? जिस प्रकार जीव बिना इस शरीर-की शोभा नहीं, उसी प्रकार श्रीराम बिना इस राज्यकी भी शोभा नहीं। राम-सेवामें मैं जाऊँगा। यह मेरा निश्चय है।

कदाचित् तुम ऐसा मानते होगे कि भरतको गद्दीके ऊपर बैठा देंगे तो अयोध्याका प्रजा सुखी हो जायगी। यह तुम्हारी कल्पना अतिशय खोटी है। तुमसे ठीक कहता हूँ, कैकेयीका बालक कैकेयीकी अपेक्षा भी अधम है। मेरा जन्म इस जगतमें हुआ ही नहीं होता तो आज मेरी अयोध्या दुःखी न होती। अयोध्याके दुःखका कारण भरत है।

इस जगतमें ऐसा कौन है जिसको श्रीसीतारामजी प्राणोंकी अपेक्षा भी प्यारे न लगते हों ?

मो बिनु को सचराचर माहीं। जेहि सिय रामु प्रानप्रिय नाहीं॥

मैं और मेरी माँ कैकेयी—हम दोनोंके सिवाय इस जगतमें ऐसा कोई नहीं जिस-को श्रीसीता-रामजीमें स्नेह नहीं। यह सब अनर्थ मेरे लिए हुआ है। मेरे जन्मसे अयोध्या दुखी हो गयी। मुझको तुम गद्दीपर बैठाओगे तो धरती रसातलमें डूब जाएगी। मैं अधम हूँ, पापी हूँ।

पृथ्वीपर गंगाजीको लेकर आनेवाले महान राजा भगीरथ जिस गद्दीपर विराजते थे, जिस गद्दीपर महाराज दिलीप बैठते थे, जिस गद्दीको राजा रघु सुशोभित करते थे, उस सूर्यवंशकी गद्दीको मैं प्रणाम करता हूँ। इस गद्दीपर बैठनेके लिए मैं योग्य नहीं हूँ।

कौशल्या माँ बहुत सरल हैं और उनका मेरे ऊपर अतिशय प्रेम है। इसलिए मुझे गद्दीपर बैठनेकी आज्ञा कर रही हैं। आज मेरा भाग्य प्रतिकूल है और इसलिए मेरे गुरुदेव भी मुझको ऐसी ही आज्ञा कर रहे हैं। मैं आज सम्मुख उत्तर देता हूँ परन्तु मेरे प्राण निकलते नहीं। लोग मेरे लिए चाहे जैसा बोलते हों, उसका मुझे तनिक भी दुःख नहीं। मेरे पिताजी स्वर्गमें गये, उसका भी मुझे दुःख नहीं है। मुझे एक ही दुःख है कि श्रीसीता-रामजी मेरे कारण दुखी हुए हैं।

एकइ उर बस दुसह दवारी। मोहि लगि भे सिय रामु दुखारी॥

श्रीराम और जानकीजी नंगे पैर वनमें फिरते हैं—यह विचार मेरे मनमें आता है तब मेरा हृदय अकुलाता है। श्रीसीताजीने कभी धरतीके ऊपर पैर नहीं रक्खा; वे आज नंगे पैर चलती हैं। कंद-मूल-फल आरोगती हैं। इस अनर्थका कारण मैं हूँ। श्रीरामके दर्शन बिना मेरी यह वेदना शान्त होगी नहीं। अयोध्याकी प्रजाको मैं बारम्बार वन्दन

करके भीख माँगता हूँ कि तुम मुझको आशीर्वाद दो। कल मैं चित्रकूट जाऊँगा। मैं रामजीको मनाऊँगा कि श्रीसीता-रामजी अयोध्याको वापिस पधारें और इस सूर्यवंशकी पवित्र गद्दीपर विराजें।

वने वसाम्यहं दुर्गे रामो राजा भविष्यति।

मुझको ऐसा आशीर्वाद दो कि श्रीसीता-रामजी वापिस अयोध्या लौटे। चौदह वर्ष वनमें मैं रहूँगा। मैं अपराधी हूँ। इस सब अनर्थका कारण मैं हूँ परन्तु मुझको विश्वास है कि मेरे बड़े भाई मेरे अपराधोकी मुझे क्षमा देंगे।

जद्यपि मैं अनभल अपराधी। भै मोहि कारन सकल उपाधी।
तदपि सरन सनमुख मोहि देखी। छमि सब करिहहिं कृपा बिसेषी॥

मैं कल चित्रकूटमें उनकी शरणमे जाऊँगा। कैकेयीका पुत्र जानकर वे मेरा तिरस्कार नही करेंगे। मेरे ऊपर उनका अतिशय प्रेम है। मैं छोटा था तब खेलमे किसी भी दिवस रामजीने मुझको नाराज किया नही। मैं श्रीरामजीकी शरणमे जाऊंगा, श्रीसीता-रामजीको मनाऊँगा। तुम मुझको आशीर्वाद दो, श्रीसीता-रामजी अयोध्या मे पधारें। राज्यं चाहं च रामस्य। यह राज्य रामजीका है। मैं रामजीका सेवक हूँ।

भरतजी कहते है—मैं भगवानका हूँ। मुझको लौकिक सम्पत्तिका जरा भी लोभ नही। भरतजी बोलते-बोलते द्रवीभूत हो गये। मेरे लिए श्रीसीता-रामजी कदमूल खाते हैं—यह विचार मनमें आया कि भरतजी अतिशय व्याकुल हो गये। आंखोमें-से धारावाहिक आंसू निकल रहे थे। वशिष्ठजीने देखा कि भरत कदाचित् गिर जायेंगे। वशिष्ठजी खड़े हुए। इन्होने भरतजीके दोनो हाथ पकडकर पासमे बिठाया। आज अयोध्याकी प्रजाको भरतजी प्राणकी अपेक्षा भी प्यारे लग रहे थे। सबको ऐसा लगने लगा कि कैकेयी जैसा यह पुत्र नही। भरत तो राम-प्रेमकी मूर्ति है। भरत-चरित्रमे तुलसीदासजीकी भी समाधि लग गयी है।

भरतजीका राज्याभिषेक करनेकी सबकी इच्छा थी परन्तु भरतजीने राजा बननेको मना कर दिया। तुमको कोई दो-चार हजार रुपया दे तो तुम लेनेको क्या मना करोगे? तुम तो हाथ जोडकर आभारके साथ उनको स्वीकार कर लोगे, मनमें मनाओगे कि कोई दे तो कर ही क्या सकते थे? भरतजीको तो कौशल्या मांकी आज्ञा थी कि तुम गद्दीपर बैठो। गुरुदेवकी भी आज्ञा थी। मांकी आज्ञाका पालन करना पुत्रका धर्म है। गुरुदेवको आज्ञाका पालन करना शिष्यका धर्म है परन्तु भरतजीने मांकी आज्ञाका पालन नही किया, गुरुदेवकी आज्ञाका पालन नही किया। राज्य लेनेकी मनाही की।

थोड़ा विचार करोगे तो ध्यानमें आवेगा कि मांका सम्बन्ध देहके साथ है। आत्माका सम्बन्ध रामजीके साथ है। देहकी कोई माँ है और देहका कोई पिता है परन्तु आत्माके पिता, माता, बन्धु तो परमात्मा श्रीराम हैं।

माता रामो मत्पिता रामचन्द्रः स्वामी रामो मत्सखा रामचन्द्रः।
सर्वस्वं मे रामचन्द्रो दयालुर्नान्यं जाने नैव जाने न जाने॥

धर्म दो प्रकारका है—देह-धर्म और आत्मधर्म। भरतजीका देहधर्म ऐसा कहता था कि माता कौशल्याकी आज्ञाका पालन करके गद्दीके ऊपर बैठे परन्तु आत्माका धर्म है *परमात्माके चरणोंमें जाना। भरतजीका आत्मधर्म कहता था कि वनमें जाकर* रघुनाथजीकी शरण लेना। आत्मधर्ममें देहधर्म विघ्न करे तो देहधर्मको गौण मानकर उसका त्याग करके आत्मधर्मका पालन करना चाहिए और इसीसे भरतजीने कहा है—मुझे गद्दीके ऊपर बैठना नहीं। मुझे तो चित्रकूट जाना है।

प्रह्लादजीको इनके पिताने आज्ञा की थी कि तू परमात्माकी भक्ति नहीं कर। प्रह्लादजीने यह आज्ञा नहीं मानी। प्रह्लादजीने किसी दिन पिताजीको सम्मुख जवाब नहीं दिया। पिताजीकी अन्य आज्ञाका भंग किया नहीं। प्रह्लादजी पिताजीकी सेवा करते थे परन्तु भक्ति परमात्माकी करते थे।

भागवतमें गोपियोंकी कथा आती है। शरदपूर्णिमाकी रात्रिमें श्रीकृष्ण परमात्माकी बाँसुरीकी आवाज सुनकर गोपियाँ दौड़ती हुई वृन्दावनमें भगवानके चरणोंमें गयी हैं। उस समय भगवान गोपियोंको घर वापिस जानेकी आज्ञा करते हैं। प्रभुने गोपियोंको देहधर्मका उपदेश किया है, गोपियोंको पतिकी सेवामें जानेका आदेश दिया है। गोपियोंने उनको आत्मधर्मसे जवाब दिया है—पति तो देहका पति है। इस शरीरका कोई पति होगा, शरीरका कोई पिता होगा परन्तु आत्माका कोई पति नहीं, कोई पिता नहीं। आत्माका धर्म तो परमात्माको प्राप्त करना है। स्त्रीका धर्म है कि पतिकी सेवा करे परन्तु जो स्त्री नहीं, जो शुद्ध चेतन आत्मा है वह किसकी सेवा करे? स्त्रीत्व, पुरुषत्व—ये तो देहके धर्म हैं। शरीर स्त्री है, पुरुष है। आत्मा स्त्री नहीं, आत्मा पुरुष नहीं, आत्मा स्त्री-पुरुषसे अलग भी नहीं। शरीरका धर्म अलग है, आत्माका धर्म अलग है। प्रभो! आपने यह तो देहधर्म समझाया है परन्तु आत्मधर्मका क्या हो? शुद्ध चेतन आत्मा, परमात्माको छोड़कर कहाँ जायँ?

देहधर्म और आत्मधर्मका जहाँ विरोध होता है वहाँ महात्मा देहधर्म छोड़ देते हैं। *माता-पिता इस शरीरके माता-पिता हैं। आत्माके माता-पिता परमात्मा हैं।* परमात्माके मार्गमें जानेमें माता-पिता अटकावें तो माता-पिताका भी त्याग कर देना चाहिए।

मीराबाईके चरित्रमे आता है कि मीराबाईको लोगोने बहुत त्रास दिया तब वे व्याकुल हो गई। उन्होने तुलसीदास महाराजको पत्र लिखा कि मैं तीन वर्षकी थी तबमे ही अपने गिरिधर-गोपालसे परिणीत हूं। ये सगे सम्बन्धी मुझको बहुत त्रास देते है। मैं अब क्या करूँ ? तुलसीदासजीने चित्रकूटसे जवाब लिखा है—

जाके प्रिय न राम बैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही॥

जिनको श्रीसीता-रामजी प्यारे न लगे, श्रीराधाकृष्ण प्यारे न लगे ऐसा कोई परम सनेही क्यो न हो तो भी उसका त्याग कर देना चाहिए।

थोडा विचार करोगे तो ध्यानमे आवेगा कि घरके लोगोको मन चाहिए नही, तन और धन चाहिए। ईश्वरको तन चाहिए नही, धन चाहिए नहीं, केवल मन चाहिए। कल्पना करो कि तुम्हारे किसी खास मित्रके घर लग्नप्रसग है। तुम उससे कहो कि भाई ! मै तुमको कुछ दूंगा नहीं, तुम्हारे घरका कोई काम नही करूँगा, तुम्हारे घर नही आऊंगा परन्तु मैं अपना मन तुमको देता हूँ। तो अगला कहेगा कि तेरा मन लेकर मैं क्या करूंगा ? तू मेरे घर आवे, मेरा कुछ काम करे, मुझको कुछ दे तो लाभ है। मानव, तन और धन मांगता है। ईश्वर ही मन मांगते हैं। परमात्माको धन चाहिए नही, वे स्वयं लक्ष्मीपति हैं। लक्ष्मीपतिको धनसे कोई भी राजी नही कर सकता। परमात्माको किसीके तनकी जरूरत नही। परमात्मा मांगते हैं मन।

भरतजीका मन रामजीके चरणोमे है। भरतजीकी निष्ठा है कि रामभक्तिमें कोई विघ्न करेगा तो मुझे मानना नही। मुझे राज्य चाहिए नही। ससारके विषय जिसको बहुत मीठे लगते है वह भगवानकी भक्ति करता ही नही। ससारका सुख सच्चा सुख नही—ऐसा जिसको विश्वास हो गया है वह भगवानकी भक्ति बराबर करता है। भरतजीने राज्य लेनेकी मनाही की। कहा—मुझे तो रामजीकी सेवामे जाना है। मुझे श्रीरामजीके दर्शन करने है। मैं रघुनाथजीकी शरणमें जाऊंगा। सिंहासनपर तो श्रीसीता-रामजी विराजेगे।

सबको बहुत आनन्द हुआ। अयोध्याको प्रजा श्रीराम-दर्शनके लिए तरसती थी। तमसा नदीके किनारे मध्य रात्रिमें सबको गाढ निद्रा आयी और उस समय रामजीने वहां-से प्रयाण किया, तबसे कितने ही लोग तो उपवास करते थे, कितने हो एक बार भोजन करते थे, कितने धरतीके ऊपर सोते थे। इन सबकी—अयोध्याकी प्रजाकी चित्रकूटमे जाकर श्रीसीतारामजीके दर्शन करनेकी तीव्र आतुरता थी। सबने गुरु वसिष्ठजीका वदन करके कहा कि गुरुजी ! हमको भी आज्ञा हो तो हम सब भी चित्रकूट चले।

मंत्री, महाजन लोग—सबने भरतजीका वंदन करते हुए प्रार्थना की—तुम चित्रकूट जाओ तो हमको भी साथ ले चलो। हमको श्रीरामके दर्शन हो जायें। हमको श्रीरामदर्शनकी बहुत आतुरता है। भरतजीने कहा कि जिनको चलनेकी इच्छा हो वे चल सकते हैं। कल सबेरे प्रयाण करना है। सर्वत्र आनन्द-ही-आनन्द हो गया। आनेवाले कल सबेरे श्रीरामदर्शनके लिए जायेंगे। भरतजीके कारण ही हमको श्रीरामदर्शन प्राप्त होंगे इसलिये उस अयोध्याकी प्रजाको आज भरतजी प्राणको अपेक्षा भी प्यारे लगे थे। जो परमात्मा-दर्शन करावे, जो प्रभुके मार्गमें भेजे वह प्यारा लगता ही है? दर्शनकी इतनी अधिक आतुरता थी कि आजका दिन कब पूरा होगा? रात्रि कब पूरी होगी—ऐसा सबको हो रहा था।
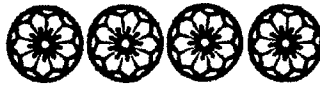
(४३)
सनेही चित्रकूटके

प्रातःकाल प्रयाणके लिए सबकी तैयारी हो गयी। सभी जानेको तैयार हुए।··· अधिक वृद्धोंसे कहा—तुम घर रहो। बैठे-बैठे घरकी सुरक्षा करना। हमें चित्रकूट जाना है। वृद्धोंको बहुत दुःख हुआ। इनकी भी रामजीके दर्शनकी इच्छा थी। घर रहनेको ये तैयार नहीं थे। भरतजीने कहा—जिनकी इच्छा हो, वे सब ही आ सकते हैं। मेरी तरफसे किसीको ना नहीं है। सबके घरका रक्षण राज्यकी तरफसे होगा। कुछ खास सेवकोंको अयोध्यामें रखा। कुछ सेना अयोध्यामें रखी।

भरतजीने रामजीके राज्याभिषेक करनेकी तैयारीके साथ ही प्रयाण किया। चार समुद्रोंका जल साथमें लिया। चतुरंगिणी सेना साथमें ली। वाल्मीकि रामायणमें तो लिखा है कि एक लाख घुड़सवार, साठ हजार रथ और नौ हजार हाथी भरतजीने साथ लिए। ये सब सेना लेकर प्रातःकालके समय भरतजी चले। भरतजीकी ऐसी इच्छा थी कि रामजीका चित्रकूटमें ही पहले राज्याभिषेक करूँगा और इसीलिए सभी तैयारी साथ रखी। राज्याभिषेकमें चार समुद्रोंके जलकी आवश्यकता पड़ता है। उस समय हाथी, घोड़ा, पदाति—सभी सेनाका निरीक्षण राजाको करना पड़ता है। उस अधिकारके कारण भरतजीने सब व्यवस्था की थी।

कितने रथोंमें बैठे। कितने घोड़ोंपर बैठे। कितने ही हाथियोंपर बैठे। सब मातायें भी तैयार होकर पालकियोंमें बैठ गयी। आज कैकेयीका कलि उतर गया था। वह भी श्रीरामके दर्शन करनेके लिए तैयार हो गयी थी। भरतजीके लिए सुन्दर सुवर्णका रथ तैयार किया गया था परन्तु भरतजीने रथको वंदन करके कहा कि मुझे रथमें बैठना नहीं। मैं तो वल्कल वस्त्र धारण करूँगा। रामजी जिस तरह वनमें गये उसी प्रकार मैं वनमें जाऊँगा। भरतजीने वस्त्र-आभूषण उतार दिये, वल्कल पहने और कहा कि मैं सुन्दर वस्त्र-आभूषण धारण करूँ यह योग्य नहीं। मेरे रामजी वनमे पैदल चलते हैं और मैं रथमें जाऊँ? मुझे रथमें बैठना नहीं। जब भरतजी रथमे बैठनेको तैयार नहीं हुए तो सभी व्याकुल हो गये। जो घोड़ोपर बैठे थे वे भी उतर गये। भरतजी पैदल चलें तो हम घोड़ेपर किस प्रकार बैठ सकते हैं? रथोंमे बैठे हुए रथोंसे उतर पड़े।

कौशल्याजीके कानमें बात गयी कि भरतजी पैदल चलकर ही जाना चाहते हैं। वे रथमें बैठनेकी मनाही करते हैं। कौशल्याजीने आज्ञा दी—मेरी पालकी भरतजीके पास ले चलो। कौशल्याजीने भरतके पास जाकर कहा—बेटा! तेरी माँ बलैया लेती है। बेटा! तुम पैदल चलोगे तो अयोध्याके सब लोग भी पैदल चलेंगे। ये अयोध्याके लोग व्रत करते हैं। कितने ही तो केवल मात्र दूधपर ही रहते हैं, रामवियोगमें अनाज लेते नहीं, फलफूलादि भी लेते नहीं। कितने ही फलाहार करते हैं। कितने ही एकबार भोजन करते हैं। कितने ही धरतीके ऊपर शयन करते हैं। अयोध्याकी प्रजा रामवियोगमे दुःखी है और सब पैदल चलेंगे तो अधिक दुखी होंगे। सबको कष्ट होगा।

तात चढ़हु रथ बलि महतारी। होइहि प्रिय परिवारु दुखारी॥
तुम्हरें चलत चलिहि सबु लोगू। सकल सोक कृस नहिं मग जोगू॥

बेटा! ऐसा आग्रह मत करो। मेरी इच्छा है, तुम रथमें बैठो। माँ-ने आज्ञाकी तब भरतजी और शत्रुघ्नजी रथमें विराजे। चतुरंगिणी सेनाके साथ भरतजीने प्रयाण किया। रामायणमें इसका बहुत वर्णन आता है।

पहले दिन शृंगवेरपुर पहुँचे। भील लोगोंने दौड़कर राजा गुहको खबर दी कि कोई भरत नामके राजा आए हैं। उनके साथ चतुरंगिणी सेना है। गुह राजा विचारमें पड़ गये कि भरतजी चतुरंगिणी सेनाको लेकर वनमे क्यों आए हैं? मुझको तो ऐसा लगता है कि रामजी के साथ युद्ध करने जाते होंगे।

का आचरजु भरतु अस करहीं। नहिं विषबेलि अमिअ फल फरहीं॥

भरत कैकेयीका पुत्र है। वह क्या न करे? जहरीली बेलमें कभी अमृतफल फलता होगा? भरतको ऐसा लगा होगा कि मुझको अयोध्याका राज्य मिला है। रामजी

वनमें अकेले है। इनके साथ युद्ध करके अपना राज्य निष्कंटक कर लूं। भरत युद्ध करनेकी इच्छामे जाता होगा। गुह राजाने भील लोगों को आज्ञा दी—

होहु सँजोइल रोकहु घाटा। ठाटहु सकल मरै के ठाटा॥
सनमुख लोह भरत सन लेऊँ। जिअत न सुरसरि उतरन देऊँ॥
समर मरन पुनि सुरसरि तीरा। राम काजु छन भंगु सरीरा॥

तुम सब शस्त्रास्त्र सजाकरके युद्ध करनेके लिए तैयार हो जाओ। मैं लडूंगा। अपने जीते-जी मैं भरतको गंगापार उतरने नहीं दूंगा। रामजीकी सेवाका यह काम है। भील लोग शस्त्रास्त्र सिद्ध करके आ गए। सभी लड़नेके लिए तैयार होकर खड़े हो गये। युद्धके भेरिनाद करने की जहाँ आज्ञा हुई कि गुह राजाके मंत्रीको छींक आ गयी। उत्तर-दिशामें छींक आनेसे वृद्ध मंत्रीने कहा—यह शकुन बताता है कि भरतजीके साथ युद्ध नही होगा। मैत्री होगी, ऐसा लगता है। तुम उतावली न करो। एक बार भरतजीकी परीक्षा करो कि वास्तवमें वे रामजीके साथ युद्ध करने जाते है कि प्रेमसे रामजीसे मिलने जाते हैं। वृद्ध मंत्रीकी सलाहपर गुह राजाने भी विचार किया—अविवेकसे कोई काम करे तो विनाश होता है। बहुत विवेकपूर्वक कार्य करे तो ही सफलता मिलती है। इसलिए मैं एक बार भरतकी परीक्षा करूँ।

गुह राजा भरतजीसे मिलनेके लिए जानेको तैयार हुए। तीन प्रकारकी सामग्री साथ ली—सात्विक, राजस और तामस। कंदमूल फल, मिठाई, और मदिरा-मांसको साथ लिया। गुह राजाने विचारा कि यह तीन प्रकारकी सामग्री मैं भरतजीको अर्पण करूँगा और देखूंगा कि भरतजीकी नजर कहाँ जाती है? मदिरा-मांसपर इनकी नजर पड़े तो मानूंगा कि इनके मनमें तमोगुण है। मिठाईपर नजर पड़े तो मानूंगा कि ये रजोगुणी हैं और कदमूल-फलके ऊपर नजर पड़े तो मानूंगा कि भरतजी सत्वगुणी हैं।

आहारके द्वारा मनुष्यके मनकी थोड़ी परीक्षा होती है। मनुष्यको क्या भाता है, यह क्या खाता है—इससे निर्देश मिलता है कि इसका मन कैसा है। कितने ही तो ऐसे होते हैं कि सेव और भुजियाके ऊपर टूटे ही पडते है। उनको राक्षस हीं समझना और कौन-से राक्षस आते है? राक्षसोंको ऐसा ही भाता है। सात्विक अन्नके प्रति जिसकी रुचि नहीं, वह राक्षस। वे दाल-भात खाते नहीं, लड्डू खाते नही, बाल-भजिया जैसी तामसी खुराकके ऊपर नजर रखते है। आजकल लोग तेल और मिर्च बहुत खाते हैं और इसीसे मिर्च जैसे ही हो जाते हैं। अतिशय मिठाई खाई जावे तो वह भी ठीक नही, मिठाईको राजस आहार कहा है।

भरतजीको-अर्पण करनेके लिए तीन प्रकारकी सामग्री लेकर गुह राजा चला। सबसे पहले वसिष्ठजीसे मिला। चित्रकूटकी यात्रामे सबसे आगे ऋषि वसिष्ठका रथ था। अरुन्धतीजीके साथ वसिष्ठजी रथमे विराजे थे। इनके पीछे भरत, शत्रुघ्नका रथ था। गुह राजाको वसिष्ठ ऋषिके दर्शन करके आनन्द हुआ। गुहने साष्टाङ्ग वन्दन किया तब वसिष्ठजीने पीछे देखकर कहा—भरत! तुमसे रामजीका मित्र मिलने आया है। रामजी-का मित्र—यह शब्द कानमे आनेके बाद भरतजी रथमे नही बैठ सके, रथमे-से कूद पडे। मैंने सुना है कि गुह राजाने मेरे रामजीकी बहुत सेवा की है। रामजीने इनको अपनाया है। मेरे रामके वे मित्र मिलने आए है! इसलिए भरतजी दौडते हुए सामने गये।

गुह राजाने भेंट अर्पण की। भरतजी इस भेंटकी तरफ नजर करनेकी स्थितिमें कहाँ थे? भरतजीकी नजर तो श्रीरामजीमें थी। भरतजी निर्गुण स्थितिमे थे—सत्वगुणसे भी परे। रामजीके ध्यान-स्मरणमे तन्मय थे। गुह राजाने भरतजीका वन्दन किया। भरत-जीने गुहको आलिंगन किया और कहा।

त्वं रामस्य प्रियतमो भक्तिमानसि भाग्यवान्।

मेरे रामको भी आराम तुमने दिया है। रामके तुम प्यारे हो, भाग्यवान हो। तुमको धन्य है। पीछे तो गुहराजने भील लोगोंसे कहा—भरत तो राम-प्रेमकी मूर्ति है। वे रामजीको मनानेके लिए जा रहे हैं, तुम सब सेवा करो।

भरतजीने गुह राजासे कहा—रामजीने जिस वृक्षके नीचे विश्राम किया था, उस वृक्षके मुझे दर्शन करने हैं। गुह राजा भरतजीको गगाके किनारे ले गया और शीशमका वृक्ष दिखाते हुए कहा—समस्त रात्रि श्रीसीता-रामजी इस वृक्षके नीचे विराजे थे।

भरतजी वृक्षसे लिपट गये, प्रेममे पागल हो गये। मेरे राम इस झाडकी छायामें विराजे थे। गुह राजाको यह देखकर आश्चर्य हुआ कि कहाँ कैकेयी और कहाँ यह भरत! गुहने कहा—भरतजी!, इस घाटपर श्रीरघुनाथजीने स्नान किया था तो हमने इस घाटका नाम रखा है रामघाट। हमको रोज श्रीसीता-रामके दर्शन यही होते हैं। हम नित्य स्मरण करते रहते हैं···कि रामजीने इस घाटपर स्नान किया था।

भरतजीने गगामाँ-का वन्दन करके माँगा कि माँ!

जोरि पानि बर माँगउँ एहू। सीयराम पद सहज सनेहू॥

श्रीरामजीके चरणोमे मुझको सहज प्रेम दो। चाहे जैसा प्रसग आवे परन्तु राम जीके चरणोमे मेरा कभी कुभाव न जागे। लोग मेरी निंदा करें, कदाचित् मेरे राम मेरी उपेक्षा करें, तो भी मेरा प्रेम दिनो-दिन बढ़े। गंगाजीने आशीर्वाद दिया।

कौशल्यादि माताओंको गुह राजा वन्दन करने गया। माताजीने आशीर्वाद दिया। भील लोगोंने सबकी खूब सेवा की। भरतजीने एक दिन वहाँ मुकाम किया। दूसरे दिन अनेक नाव गुह राजाने मँगायी। सबको गंगापार उतारा।

गंगापार जाकर भरतजीने वसिष्ठ गुरुजीको वन्दन करते हुए कहा—गुरुजी! मेरे राम यहाँसे चलते हुए गये हैं। गुरुजी! अब मुझको आग्रह न करोगे। मुझको ऐसी आज्ञा न करना कि मैं रथमें बैठूं। इन सबको रथमें, वाहनमें बिठाकर आप आगे ले जाओ। मैं तो पैदल चलकर आऊँगा।

रामु पयादेहिं पायँ सिधाए। हम कहँ रथ गज बाजि बनाए॥
सिर भर जाउँ उचित अस मोरा। सबतें सेवक धरमु कठोरा॥

मैं तो रामजीका सेवक हूं। मेरे मालिक पैदल चलकर गये हैं और मैं रथमें बैठकर जाऊँ तो मुझको पाप लगेगा। वसिष्ठजी समझ गये कि भरतका शुद्ध प्रेम है। इनसे बहुत आग्रह करे तो ये दुःखी होते हैं। वसिष्ठजी सबको वाहनमें बैठाकर आगे ले गये। भरत, शत्रुघ्न और गुह राजा पीछे चलकर गये। भरतजी चलते-चलते सीताराम, सीताराम, सीताराम बोलते जाते थे।

राममेवानुशोचन्तं रामरामेति वादिनम्।

सीताराम, बोलते-बोलते आंखमें-से आंसू निकलते थे। भरतजीको किसी-किसी समय कैकेयी याद आती थी, वे विचारते थे कि कैकेयी! तुम रामजीको मुंह किस रीतिसे दिखाओगी? तुमने यह क्या किया? मेरा मुंह काला किया।

समुझि मातु करतब सकुचाहीं। करत कुतरक कोटि मन माहीं॥

भरतजीके मनमें अनेक तर्क-वितर्क चला करते थे। इनके मनमें थोड़ा भय था, चिन्ता थी, थोड़ा संकोच था कि मैं प्रभुके सम्मुख किस प्रकार जाऊं? मैं अपराधी हूं। मेरे लिये यह बडा अनर्थ हुआ है, मालिकको बहुत परिश्रम हुआ है। मैंने इनको बहुत दुःख दिया है। रामजी मुझको देखकर चले गये तो? यह विचारकर भरतजी अति व्याकुल हो जाते थे। फिर मनको समझाते कि मेरे राम अति उदार हैं। वे मेरे अपराधको क्षमा करेंगे। श्रीराम तो अन्तर्यामी हैं। मेरे हृदयका प्रेम वे जानते है। वे जरूर मुझको अपनावेंगे।

पुनः मनमें सदेह होता कि रामजी तो मुझको अपनावेंगे परन्तु कदाचित् सीताजीके मनमें ऐसा आवे कि हमको इतना त्रास दिया और अब प्रेम बतानेके लिए यहाँ आया है! श्रीसीताजी, रामजीको मुझसे मिलनेकी मनाही करेंगी तो? फिर मनको मनाते हैं कि श्रीसीताजीके हृदयमें तो श्रीरामजी विराजते है। मेरे ऊपर वे कृपा करेंगी। वे

जीवके दोषका विचार करती हो नही। मैं श्रीसीतारामजीके चरणोमे साष्टाङ्ग वन्दन करके कहूँगा, क्षमा करो। श्रीसीतारामजी मुझको क्षमा करेंगे, अपनावेंगे।

भरतजी रामनामका जप करते चलते थे। पैरोमें जूता नही, माथेपर छतरी नही। भीषण गर्मी पडती थी। भरतजीका अंग अति कोमल था, इस कारण चरणोमे फफोले पड़ गये परन्तु भरतजीको इसका भान नही था। भरतजी देहातीत दशामें थे। श्रीराम-प्रेममें देहभान भूल गये थे। श्रीसीतारामजीके स्मरणमें तन्मय थे।

प्रयागराजमें सभी आकर बैठे थे, स्नान कर रहे थे। भरतजी पीछेसे आए। गुरुजीको और माताओंको वन्दन करके सभी व्यवस्था की। त्रिवेणी गंगाको साष्टाङ्ग प्रणाम किया। भरतजीने उसमें स्नान किया। प्रयागराज सब तीर्थोंका राजा है। प्रयागराजमें श्रीगंगाजी और श्रीयमुनाजीका संगम हुआ है।

सितासिते सविते यत्र सङ्गते,
तत्राप्लुतासी जीवमुत्पतन्ति।
देहैः सर्वं विसर्जन्ति धीराः,
ते जनाः सहामृतत्वं भजन्ते॥

सितासिते सविते यत्र सङ्गते। सिता अर्थात् श्रीगंगाजी और असिता अर्थात् श्रीयमुनाजी। दोनोका मधुर संगम हुआ है—जहाँ ज्ञान और भक्तिका मधुर मिलन है। ज्ञानी होना बहुत कठिन नही, प्रभुप्रेमी होना कठिन है। भक्तिके बिना ज्ञान लँगड़ा है, और ज्ञान-वैराग्यके बिना भक्ति अंधी है। ज्ञानका अनुभव वैराग्य और भक्ति बगैर होता नहीं। भक्ति बगैर ज्ञान शब्दमय बने तो इससे जीवको लाभ होता नही। ज्ञानसे आँख उघड़ती है। ज्ञानसे हृदय विशाल बनता है और भक्तिसे हृदय कोमल बनता है। ज्ञान, त्यागकी भावना लाता है और भक्ति समर्पण की।

कितने ही भक्ति तो करते हैं परन्तु जब दु:ख आता है तब करते हैं। संपत्ति में—सुखमें वे भक्ति करते नहीं। यदि उनका ज्ञान परिपूर्ण हो तो वे सुखमे भी भक्ति करने लगें। ज्ञान और भक्ति—ये दोनो हों तो जीव परमात्माके चरणोमे जा सकता है।

कितने ही ज्ञानी ऐसा मानते हैं कि हमको भक्तिकी जरूरत नही। वे भक्तिका तिरस्कार करते हैं। कितने ही भक्त मानते हैं कि हमको ज्ञान-वैराग्यकी जरूरत नही। इन दोनोंमें-से कोई भी विचार उचित नही। भक्ति, ज्ञान-वैराग्यके बगैर रोती है। भक्ति ज्ञान-वैराग्यके साथ आवे तो ही दृढ बनती है। ज्ञान-वैराग्यके बिना भक्ति कच्ची है। वैसे ही ज्ञान, भक्ति बिना हो तो उसमें अभिमान आता है और अभिमानके कारण ज्ञानी-का पतन होता है। ज्ञान भक्तिके साथ आवे तो नम्रता लाता है।

ब्रह्मज्ञान हुआ हो—परमात्माका ज्ञान हुआ हो परन्तु परमात्माके स्वरूपमें प्रीति न हो तो परमात्मा का अनुभव होता नही। सच्चा ज्ञानी वह है जो परमात्माके साथ प्रेम करता है। गीताजीमें भगवानने आज्ञा की है।

श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः।

ज्ञानीको भी भक्तिकी जरूरत है। ज्ञान भक्तिसे ही परिपूर्ण होता है। ज्ञानी प्रभु-प्रेमी होना ही चाहिए। प्रभु-प्रेमके बिना ज्ञान शुष्क है। ईश्वरका ज्ञान हो परन्तु ईश्वरके साथ प्रेम न हो तब तक ज्ञान सफल होता नही। ज्ञान मिले पीछे भी परमात्माके साथ प्रेम करना पड़ेगा। रामायणमे एक जगह वसिष्ठजीने कहा है।

सो सुखु करमु धरमु जरि जाऊ। जहँ न राम पद पंकज भाऊ॥
जोगु कुजोगु ग्यानु अग्यानू। जहँ नहिं रामप्रेम परधानू॥

राम-प्रेम बिना वैराग्य, वैराग्य नहीं। राम प्रेम बिना ज्ञान, अज्ञान है। जीवका सोलह आना प्रेम मुझमें है, ऐसा विश्वास हुए पीछे ही प्रभु मायाका पर्दा हटाते हैं। जिसकी आंखमे प्रभु-दर्शनके लिए आंसू नही, जिसके हृदयमें परमात्माकी झांकीके लिए आतुरता नही, उसका ज्ञान किस कामका? केवल ज्ञानसे नहीं, प्रभुके प्रति प्रेममें हृदय पिघले तो ही हृदयकी शुद्धि होती है।

इसी प्रकार भक्ति ज्ञानके साथ न हो तो ईश्वरके व्यापक स्वरूपका अनुभव होता नही। ईश्वर ऐसी वस्तु नही कि एक ठिकाने रहे। एक ही ठिकाने ईश्वरको निहारे, वह अधम वैष्णव है। जहाँ-जहाँ नजर जाये वहाँ जिसको ईश्वर दीखें, वही महान् वैष्णव है। भक्ति, ज्ञान-रहित होगी तो ईश्वरके दर्शन एकमें ही होंगे, सर्वत्र नहीं होंगे। अकेली भक्तिसे तो घरके गोपालजीमें अथवा जो मूर्ति होगी, उसमे ही भगवान दीखेंगे, दूसरेमे नही दीखेंगे परन्तु उसको ज्ञानका साथ मिले तो भगवान सर्वत्र दीखेंगे।

केवल सगुणका साक्षात्कार करे, इससे मन शुद्ध होता नहीं। साक्षात्कारसे मनकी चंचलता जाती नही। सगुणका प्रेम और निर्गुणका अनुभव एक साथ होना चाहिए। निर्गुणका अनुभव और सगुणका प्रेम हो तब मायाका बंधन टूटता है। सगुण और निर्गुण भक्ति हो तभी जीवका कल्याण होता है।

भक्तिको ज्ञानकी अपेक्षा है और ज्ञानको भक्ति को। श्रीगंगाजी ज्ञान-स्वरूपा है। श्रीयमुनाजी भक्तिका स्वरूप है। सितासिते। किसी समय प्रयागराज जाओ तो ध्यान रखकर दर्शन करना। श्रीगंगाजी गौर हैं, श्रीयमुनाजी श्याम है। प्रत्यक्ष दीखती हैं। सविते यत्र सङ्गते। यहाँ सरस्वती गुप्त हैं।

सब तीर्थोंका राजा प्रयाग है। प्रयागराजके मुख्य मालिक माधवराय हैं। प्रयागराजमें वेणी-माधव विराजते हैं। माधवरायको वेणी अत्यन्त प्रिय हैं। ठाकुरजीको यहाँपर वेणीका दान होता है, इसीसे इनका नाम है वेणी-माधव। प्रयागराजमे अक्षयवट है। प्रयागराजमे भरद्वाज ऋषिका आश्रम है। प्रयागराजका ऐसा नियम है कि वहाँ कोई भी जा सकता है परन्तु वहाँ-से निकलना हो तो भरद्वाज ऋषिको आज्ञा लेनी पड़ती है। तीर्थोंकी शोभा सन्तोंके कारण है। भरद्वाजजी वयोवृद्ध, महान् ज्ञानी ऋषि है। जो कोई प्रयागराज जाये तो भरद्वाजजीका वन्दन करके आज्ञा माँगे।

भरद्वाज ऋषिके पास जानेकी भरतजीकी हिम्मत हुई नही। भरतजीको संकोच होता था कि मैं वहाँ किस प्रकार जाऊँ ? कदाचित् ऋषि मुझसे कुछ पूछेंगे तो मैं क्या जवाब दूंगा ? मैं सन्त-समाजमे जा सकता नही परन्तु लोगोने कहा—हमारे तीर्थका नियम है कि यहाँ जो कोई आता है, वह भरद्वाज ऋषिका वन्दन करता है। प्रयागराजका ऐसा कायदा था इस कारणसे अन्त में भरतजी, शत्रुघ्न और गुहके साथ भरद्वाजजीके आश्रममे गये। भरतजी परम संकोचके साथ दूरसे वन्दन करके कोनेमे बैठ गये। नजर धरतीमें थी। सीताराम, सीताराम का स्मरण चालू था।

शिष्योंने भरद्वाज ऋषिको भरतजीके आनेकी खबर दी। भरद्वाज ऋषि दौड़ते आए। भरतजीको उठाकर अन्दर ले गये। बोले—भरत! मैं जानता हूँ, तुम यहाँ न आये होते और गद्दीपर बैठकर राज्य करते तो भी अनुचित नही था परन्तु मुझको तो ऐसा लगता है कि श्रीराम-प्रेमका आदर्श बतानेके लिए ही तुम्हारा अवतार हुआ है। तुम श्रीराम-प्रेमकी मूर्ति हो।

तुम्ह तौ भरत मोर मत एहू। धरें देह जनु राम सनेहू॥

भरत ! हम इस तीर्थराजमे निवास करते हैं, हमको किसीकी मिथ्या प्रशसा करनी आती ही नही। तुम्हारे दर्शनसे हमको बहुत ही आनन्द हुआ है। भरत ! बहुत वर्षों तक हमने इस तीर्थराजमें तपश्चर्या की और उस तपके फलस्वरूप हमको श्रीसीताराम-जीके दर्शन मिले। मैं विचार करता था कि तपश्चर्याके फलस्वरूप श्रीरामदर्शन मिले परन्तु श्रीराम-दर्शनका फल क्या हो ? मुझको तो ऐसा लगता है कि श्रीराम-दर्शनका फल ही भरतका दर्शन है।

सुनहु भरत हम झूँठ न कहहीं। उदासीन तापस बन रहहीं॥
सब साधन कर सुफल सुहावा। लखन रामसिय दरसनु पावा॥
तेहि फल कर फलु दरस तुम्हारा। सहित पयाग सुभाग हमारा॥

भरद्वाज ऋषिने भरतजीकी खूब प्रशंसा की। संत-समाजमें भरतजीका सुन्दर भाषण हुआ। भरतजीने कहा—मेरे पिताजी स्वर्गमें गये, इसका मुझको बहुत दुःख नहीं। कैकेयीके कलंकका विचार करूं इसका भी मुझको बहुत दुःख नहीं होता परन्तु एक ही विचारसे मेरा हृदय बहुत जलता है और वह यह कि श्रीरामजीके दुःखका कारण मैं हुआ। मुझको जब मनमें विचार आता है कि मेरे लिए अतिकोमल श्रीसीता-रामजी वनमें फिरते हैं, कंदमूल-फल आरोगते हैं, तब मेरे दुःखका पार रहता नहीं। अब मुझको शान्ति तो तब मिले कि जब श्रीसीतारामजी अयोध्यामें पधारें। मुझको ऐसा आशीर्वाद दो कि श्रीसीता-रामजी वापिस अयोध्यामें पधारें।

भरद्वाज ऋषि बोले—भरत! रामजीका तो तुम्हारे ऊपर बहुत प्रेम है। तुम कहोगे वैसा रामजी करेंगे। रामजी तो भक्तोंके अधीन हैं। वे परतंत्र हैं, स्वतंत्र नहीं। तुम्हारी इच्छा पूर्ण करेंगे। भरत! रामजीका तुम्हारे ऊपर कैसा प्रेम है, वह मैं जानता हूं। श्रीसीतारामजी यहाँ पधारे और त्रिवेणी गंगामें स्नान किया, तब संकल्प करानेके लिए मैं ही गया था। मैं संकल्प करा रहा था, उस समय उसमें—भरतखण्डे ऐसा बोलना होता है। भरत! मैं तुमसे क्या कहूँ? जब मैंने भरतखण्डे बोला तब रामजीकी आँखें भीनी हो गयीं। मैंने रामजीसे पूछा—आपको क्या हुआ है? रामजीने मुझसे कहा—गुरुजी! मेरा भरत मुझको याद आता है। भरत! श्रीराम तुम्हारा स्मरण करते है।

भरतजीकी भक्ति कैसी है कि ईश्वर उनका स्मरण करते हैं। भरद्वाज ऋषिकी बात सुनकर भरतजीको आनन्द तो हुआ। ऋषिने कहा—भरत! तुम रामजीके छोटे भाई हो, राम-भक्तोंमें सबसे श्रेष्ठ हो। तुम्हारा स्वागत करना हमारा धर्म है। मेरी ऐसी इच्छा है कि आजकी रात तुम यहाँ ही रहो। आज जाना नहीं। मुझको तुम्हारा सम्मान करना है।

भरतजीको संतोष हुआ। हाथ जोड़कर भरद्वाजजीसे कहा कि आपको मुझे परिश्रम नहीं देना। भरद्वाज ऋषि छोटी-सी झोंपड़ी में रहते थे। भरतजीको थोड़ी शंका हुई कि ये ब्राह्मण उस अयोध्याकी प्रजाका कैसे स्वागत करेंगे? भरतजीने कहा—गुरुजी! मेरी इच्छा है कि रामजीका चित्रकूटमें ही अभिषेक करूं और इसीलिए मेरे साथ चतुरंगिणी सेना है। हाथी, घोड़ा साथ हैं। अयोध्याकी प्रजा भी आयी है। हजारों लोग साथ आए है। समाज बहुत बड़ा है।

तब भरद्वाज ऋषिने कहा—भरत! इनकी चिंता तुम मत करो। परमात्मा सर्वसमर्थ है। भरद्वाज ऋषिके आश्रममें कामधेनु—गाय माता थीं। गाय माताकी सेवा होती

थी। गायकी सेवाकी बहुत महिमा है। गाय की सेवा खूब करो। गाय खाती है घास और देती है दूध। भगवानने जो संपत्ति दी हो तो गाय रखना परन्तु आजकल यदि पैसा मिले तो लोग कुत्ता पालते हैं। कुत्तेका अनादर नही करना परन्तु मर्यादा छोड़कर—उसके साथ बहुत प्रेम भी नही करना। कुत्ता आँगनमें आवे तो इसको रोटी डालना धर्म है परन्तु कितने ही तो ऐसे होते हैं कि वे कुत्ता बगर एक क्षण भी चलते नही। घूमने जायें तो कुत्ते-को मोटरमें साथ ले जाते हैं। हम अधिक तो कुछ नहीं कह सकते परन्तु यह दूसरे जन्म-में कुत्ता बननेकी तैयारी है। कुत्तेकी बहुत सेवा करोगे तो कुत्तेमें मन फँसेगा और कुत्तेका जन्म लेना पड़ेगा।

गाय-मातामें सब देवोंका वास है।

पृष्ठे ब्रह्मा गले विष्णुर्मुखे रुद्रः प्रतिष्ठितः।
मध्ये देवगणाः सर्वे रोमकूपे महर्षयः॥

जिस घरमें गायमाताकी सेवा होती है, जिस घरमें गायके गोबरका लेप होता है, उस घरमें लक्ष्मीका निवास होता हैं। शास्त्रमें तो ऐसा लिखा है कि गायके गोबरका लेप न होता हो वह घर अशुद्ध है। गायके गोबरमे लक्ष्मीजीका और गायके मूत्रमें गंगा-का वास है। गोमूत्रमें पवित्र करनेकी शक्ति है। गोमूत्रका पान करनेसे और गोमूत्रसे स्नान करनेसे शरीर निरोगी होता है। गोमूत्रमे बहुत गुण हैं। गोमूत्र शरीर का मल तो दूर करता है परन्तु वह मनका मैल भी दूर करता है। गोमूत्रसे मनके पाप दूर होते है, मन शुद्ध होता है। छह मास गोमूत्रका पान करनेसे मनुष्यके स्वभावमें बहुत परिवर्तन आता है। इसका स्वभाव सुधरता है। स्वभाव सुधरे नही तब तक ज्ञान-भक्तिमें आगे बढ़ सकते नही।

गायका गोबर त्वचाकी अतिरिक्त गर्मीको खींच लेता है और चमड़ीको मुलायम बनाता है। गायका दूध बुद्धिको निरोगी बनाता है। भारतमें जब तक लोग गाय रखते थे तब तक निरोगी थे।

भरद्वाज ऋषिके आश्रममें कामधेनु गाय थी। ऋषिने माताजीकी पूजा की और कहा—आज रामभक्तोकी मुझे सेवा करनी है। हे माताजो! कृपा करो। भरद्वाज ऋषि-ने जहाँ सकल्प किया कि अष्टमहासिद्धि सेवामे हाजिर हो गयी। उनकी आज्ञा होते ही हजारो सेवक उत्पन्न हो गये, अनेक साथी प्रगट हुए। बडे-बड़े भवन उस समय बनकर तैयार हो गये। प्रत्येकके लिए अलग-अलग भवन प्रगट हुआ। एक-एक भवनमें विशाल छत्रपलंगोके ऊपर सुन्दर गद्दियाँ बिछी हुई थी। संकलपसे उत्पन्न हुए सेवकोने अयोध्याकी

प्रजाका वन्दन किया, प्रत्येकका स्वागत किया। प्रत्येकको अलग-अलग सेवक मिल गये। जिसको जो भावे वह भोजन प्राप्त हुआ। सुखमय शयनकी सुविधा मिली।

तपोबलेन भूस्वर्ग निर्माय।

तपोबलसे भरद्वाज ऋषिने पृथ्वीके ऊपर स्वर्ग खड़ा कर दिया। भरद्वाज ऋषिको यह सिद्धि थी। संयम बढ़ानेके लिये जो सतत भक्ति करता है उसको अनेक प्रकारको सिद्धियाँ मिलती हैं। भरद्वाज ऋषिने किसी दिन सिद्धिका उपयोग किया नहीं था। आज इनको ऐसी भावना हुई कि यह अयोध्याको प्रजा है, राम-भक्त हैं, राम-भक्तोंका मुझे सम्मान करना चाहिए। जो रामजीके दर्शन करने जाये उसका लोग रास्तेमें स्वागत करते है। जो परमात्माके लिए घरका त्याग करता है, रास्तेमें अष्टमहासिद्धियाँ उसको सेवा करती हैं।

चार दासियोंको भरद्वाज ऋषिने खास आज्ञा की कि समस्त रात्रि तुमको भरतजीकी सेवामे रहना है। भरद्वाज ऋषिकी आज्ञासे वे दासियाँ अनेक प्रकारकी मिठाइयोको लेकर भरतजीके पास गयी, भरतजीको मनाने लगी—तुम भोजन करो। भरतजीने हाथ जोड़कर कहा कि मुझे भोजन नही करना। श्रीराम कंदमूल-फल आरोगते हैं और मैं भोजन करूँ? भरतजीने आँख ऊँची करके देखा भी नही। दासियोंने सुन्दर पलंग तैयार किया। गद्दी बिछायो। भरतजोसे प्रार्थना की कि समस्त दिन बहुत परिश्रम किया हैं, आप अब आराम करो। इस गद्दीके ऊपर विराजो। भरतजीके हृदयमें तो श्रीराम-दर्शनकी बहुत आतुरता थी। उनको आराम करनेकी कहाँ फुरसत थी?

रात्रिके समयमें पलंगके पास भरतजी दर्भासनपर बैठे थे। भरतजीको नजर नासिकाके अग्रभागमें स्थिर हो गयी थी। सीताराम, सीताराम, सीताराम जप करते-करते तन्मय हुए थे। अष्टमहासिद्धियोंने विचार किया कि रात्रिमें इनका जपका कुछ नियम होगा, दूसरे प्रहरमें भरतजी शयन करेंगे। दूसरा प्रहर शुरू हुआ। भरतजी बैठे थे। अष्टमहासिद्धियोंने आग्रह किया कि अब आप आराम करो। भरतजीने कहा—मेरा जप चल रहा हैं। भरद्वाज ऋषिने दासियोंसे पूछा कि भरत क्या करते है? दासियोंने कहा—वे जप करने बैठे है। वे भोजन करते नही, शयन करते नही। गद्दीके ऊपर बैठते नही। दर्भासनके ऊपर बैठकर हाथमें माला लेकर, प्रेमसे सीताराम, सीतारामके जपमें तन्मय हो रहे है। रात्रिके दूसरे प्रहरमें भी भरतजी श्रीसीतारामजीके स्मरणमें तन्मय थे।

रात्रिका तोसरा प्रहर शुरू हुआ। भरद्वाज ऋषि स्वयं वहाँ पधारे। भरतजोसे कहा—भरत! तुम यहाँ क्या करते हो? समस्त रात्रि जागरण करो, यह योग्य नहीं। अब तुम सो जाओ। भरतजीने कहा—गुरुजी! तुम मेरी चिन्ता न करो। मैं पीछे सो

जाऊँगा। भरद्वाज ऋषिको परम आश्चर्य हुआ। चौथा प्रहर शुरू हुआ। भरतजीको निद्रा नही। श्रीरामदर्शनके लिए उनके प्राण तरसते थे।

निंदा और निद्रा—इन दोनोंके ऊपर जिसको विजय मिल सकी है वह ही सतत भक्ति कर सकता है। निंदा सुनकर जिसको थोडा भी दुख होता है वह भक्ति कर सकता नही। जो निद्राके अधीन है वह भक्ति कर सकता नही। भरतजीने निद्राके ऊपर विजय प्राप्त की थी।

ब्राह्ममुहूर्तका समय हुआ। भरद्वाज ऋषि जागे। उन्होने दासियोंको बुलाकर पूछा कि भरत आराम कर रहे हैं कि नही? अष्टसिद्धियोने कहा कि वे तो आसनपर बैठे हैं। शय्याका स्पर्श तक किया नही। भरद्वाज ऋषिको विश्वास हुआ कि भरतजीका प्रेम सच्चा है। भरद्वाज ऋषिने बहुत सिद्धियाँ दिखायी परन्तु भरतजी उनमे फँसे नही। भरतजीके पास अनेक सिद्धियाँ आयी परन्तु वे अलिप्त रहे। ऋषियोंने भरतजीको मानपत्र दिया कि हम तपस्वी हैं परन्तु तुम्हारे जैसा प्रभु-प्रेम अब तक हमको मिला नही।

चकवा-चकवी एक ठिकाने रहते नही। चकवा-चकवीको एक पिंजडेमे बन्द करके रखो तो भी रातको उनका सयोग होता नही। इस प्रकार ऋषिकी आज्ञा पिंजड़ा है। सिद्धियाँ—भोग-विलासकी सामग्री चकवी हैं। भरतजी चकवा हैं। भोग-विलासकी सामग्रीका भरतजीने मनसे भी स्पर्श किया नही। जिसका श्रीराममे अनुराग हुआ है उसको संसारके भोग, रोग जैसे लगते हैं। वमन किये हुए अन्नके ऊपर जैसे किसीका मन जाता नही, वैसे ही ऐसे राम-भक्तोका मन ससार-सुखकी तरफ जाता नही। निरस्तरागा विनिरस्तभोगा।

जिसको भक्तिका रंग लगता है उसको संसारका भोग रोगके समान लगता है। ससारके विषय जब तक जीवको मीठे लगते हैं, तब तक उसको भक्तिका रग लगता नही। भोग और भक्ति एक ठिकाने रह सकते नही। लोग ऐसा समझते है कि भक्ति करनी सरल है परन्तु यह समझ सच्ची नही। भक्ति करनी कठिन है। यह तो मस्तकका बलिदान है। कबीरजीने कहा है।

यह तो घर है प्रेमका खाला का घर नाहिं।
सीस उतारै, भुइँ धरै, तब पैठे घर माँहि॥
सीस उतारै भुइँ धरै, तापर राखे पाँव।
दास कबीरा यों कहै, ऐसा होय तो आव॥

संसारके किसी विषय-सुखमे जिसका मन फँसा हो उसको भक्तिका रंग लगता नही। संसारके विषय-सुखका मनसे भी त्याग करे तब भक्तिका रग लगता है। संसारके

विषयोंसे मन हटा लो। परमात्माके साथ प्रेम करो। मनको वारंबार समझाओ कि संसार-के भोग-पदार्थोंमें आनन्द नहीं। काम—क अधिक आम—अर्थात् कच्चा सुख। क अर्थात् सुख और आम अर्थात् कच्चा। कच्चा सुख कामका स्वरूप है। गीताजीमें भगवानने आज्ञा की है कि अर्जुन तेरा शत्रु बाहर नहीं। तेरा शत्रु तेरे अन्दर है।

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥

काम हितशत्रु है। वह तुमको ऐसा बताता है कि मैं तुमको सुख देता हूँ परन्तु वह सुख सच्चा नहीं, वह सुखका आभास है और अन्तमें वह अहितकारी है। इस कामको हृदयमें-से निकालो। हृदय शुद्ध करो और हृदयसिंहासनपर परमात्माको पधराओ।

एक सेठ था। उसका पुत्र वेश्याके संग में फँस गया। पिताने कहा—इस कुसंगको तू छोड़ दे तो तेरा विवाह अच्छी कन्याके साथ हो जायेगा। पुत्रने कहा—पिताजी ! पहले मुझको अच्छी कन्या मिले, पीछे मैं यह संग छोड़ दूंगा। पिता पुत्रको समझाता है कि वेश्याका संग छोड़े बगैर अच्छे कुटुम्बकी अच्छी कन्या मिलेगी ही कहाँ-से ?

यही हम सबकी कथा है। मनुष्य विषय-भोग छोड़ना चाहता नहीं और पीछे कहता है कि मुझको भक्तिमें आनन्द मिलता नहीं। आनन्द कहाँ-से मिले ? भोग बाधक नहीं, भोगासक्ति बाधक है। भोग-वासनामें मन फँसा कि वह ईश्वरसे दूर जाता है।

भरतका त्याग अति दिव्य है। अष्टसिद्धियाँ दासी होकर खड़ी थीं परन्तु भरतजी-ने नजर भी डाली नहीं। वैराग्य बिना भक्ति रोती है। वैराग्य न हो तो भक्ति किस कामकी ? भरतजीका वैराग्य परिपूर्ण था। भोगके अनेक पदार्थ होनेपर भी भरतजीका मन उनमें गया नहीं। सब भोग-पदार्थों की उपलब्धि होनेपर भी जिसका मन उनमें जाता नहीं, वह ही सच्चा वैष्णव है, वह ही सच्चा भक्त है। भक्तको तो भरतजीकी तरह दूसरी इच्छा नहीं। अर्थ, काम, धर्म, मोक्ष इनमें-से भक्त कुछ भी माँगते नहीं। भक्त माँगता है अनन्य भक्ति। भक्तको तो मुक्तिकी भी इच्छा होती नहीं। जो भक्ति-रसमें सराबोर हो उसको मोक्षका आनन्द तुच्छ लगता है। भगवान मुक्ति देते हैं परन्तु भक्ति जल्दी देते नहीं ?

साधु, भरतजीकी प्रशंसा करने लगे—हमारे वैराग्यकी अपेक्षा भरतका वैराग्य श्रेष्ठ है। पीछे तो प्रयागराजके अनेक साधु-महात्मा भरतजीके दर्शन करने आए। भरत-जी वहाँ-से आगे चले। पड़ोसी गाँवोंके लोग दर्शन करने आए। भरतजी रामजी जैसे श्याम थे और शत्रुघ्नजी लक्ष्मणजी जैसे गौर थे। कितनों ही को तो प्रथम शंका हुई, अरी !

सखी ! श्रीराम, लक्ष्मण फिर-से आए हैं क्या ? तब कोई कहता कि श्रीसीतारामजी साथ नहीं हैं। श्रीराम-लक्ष्मण तो प्रसन्न थे परन्तु ये दु:ख कर रहे हैं।

वेषु न सो सखि सीय न संगा। आगें अनी चली चतुरंगा ॥
नहिं प्रसन्न मुख मानस खेदा। सखि संदेहु होइ एहिं भेदा ॥

लोग भरतजीकी प्रशंसा करते हुए कहते थे—हमने सुना है कि पिताने राज्य दिया परन्तु भरतजीने लिया नहीं। राज्यका त्याग करके श्रीरामचन्द्रजीको मनानेके लिए ये जा रहे हैं। कैकेयीके लायक पुत्र नहीं है। कैकेइ जननि जोगु सुत नाहीं।

(४४)

जीव-ईश्वरका मिलन

नौ दिन इस रीतिसे मुकाम करते भरतजी चले। तब चित्रकूटके दर्शन हुए। जहाँ चित्रकूटके दर्शन हुए कि भरतजीकी सभी ग्लानि दूर हो गयी। भरतजी चित्रकूटके दर्शनमात्रसे आनन्दरूप हो गये। रात्रिमें तलहटीमें ही विश्राम किया।

इधर श्रीसीताजीको स्वप्न हुआ कि भरतजी मिलने आए हैं। साथमें अयोध्याकी प्रजा है परन्तु सासूजीका वेष अमंगलमय है। रामजीने कहा—यह स्वप्न ठीक नहीं है। कुछ दु:खकी वार्ता सुननी पड़ेगी।

उस समय भील लोग दौड़ते हुए रामजीके पास आए। इन्होंने कहा—कोई भरत नामका राजा आपसे मिलने आया है। साथमें चतुरंगिणी सेना है। जिससे ये पशु-पक्षी घबराहटमें दौड़ रहे हैं। रामजी विचारमें पड़ गये। तब लक्ष्मणजीके मनमें कुछ कुभाव आया। लक्ष्मणजी बोले—मैं जानता हूँ कि भरत साधु है परन्तु राज्य मिलनेके पश्चात इनकी बुद्धि बिगड़ गयी है और स्वयं-के राज्यको निष्कंटक करने आये हैं। सत्ता मिलते ही मनुष्य पागल बन जाता है।

केहि न राजमद दीन्ह कलंकू।

लक्ष्मणजीको बहुत क्रोध आया। रघुनाथजीने लक्ष्मणजीका हाथ पकड़कर अपने पासमें बैठाया। श्रीरामने कहा—लक्ष्मण! भरतको ब्रह्मलोकका राज्य मिले तो भी इसको मद होगा नहीं।

भरतहि होइ न राजमदु, बिधि हरि हर पद पाइ।

इस जगतमें भरत जैसा भाई हुआ नही और होना भी नहीं। प्रातःकाल हुआ। भरतजीने वसिष्ठ ऋषिको वंदन करके कहा—गुरुजी! मुझको आज्ञा दो। मुझे ऊपर जाना है। श्रीसीतारामजीकी पर्णकुटीमें जाऊँगा। आप सब पीछेसे आना। वसिष्ठजीने कहा—तू जा बेटा! तेरी बहुत भावना है। तू आगे जा। हम पीछे आ रहे हैं।

शंकर भगवान् माता पार्वतीजीसे कहते हैं कि भरतजीके प्रेमका वर्णन कौन कर सकता है? भरतजी चित्रकूटको साष्टाङ्ग वन्दन करते हुए चले।

करत प्रनाम चले दोउ भाई।

भरतजीकी भावना थी कि मेरे रामजी नंगे पैर वनमें चलते हैं। मैं रामजीका हूँ। यहाँ मैं पैरोंसे चलकर नहीं जाऊँगा। इसलिये भरतजी साष्टाङ्ग प्रणाम करते हुए गये। अब देहका भान रहा नहीं। भरतजी रास्ता भूल गये। उस समय देवताओंने पुष्प-वृष्टि करके मार्गका संकेत दिया। भरतजीका प्रेम देखकर चित्रकूटके पत्थर भी पिघल गये।

दूरसे श्रीसीतारामजी पर्णकुटी दिखाई दी। तब तो भरतजी सब कुछ भूल गये। पर्णकुटीके दर्शन होते ही सबकी विस्मृति हो गयी। सुख नही, दुःख नहीं, देहका भान नहीं। भरतजी आनन्दमें तन्मय हुए और रामकीर्तन करते जाने लगे। श्रीरामजी जहाँ विराजते हैं वह रामजीका धाम भी आनन्दरूप है वहाँ शोक आ सकता नही, वहाँ दुःख आ सकता नहीं। इस भूमिके ऊपर श्रीरामके चरण-चिह्न पड़े थे। उन्हें देखकर भरतजी रजमें लोट रहे थे।

अहो सुधन्योऽहममूनि रामपादारविन्दाङ्कितभूतलानि।
पश्यामि यत्पादरजो विमृग्यं ब्रह्मादिदेवैः श्रुतिभिश्चनित्यम्॥

अहो! मैं कृतार्थ हो गया। आज मैं श्रीरामचन्द्रजीके चरणारविन्दके चिह्नसे सुशोभित भूमिके दर्शन कर रहा हूँ। जिस चरणरजकी ब्रह्मादि देवता और श्रुतियाँ निरन्तर शोध कर रहे हैं।

पर्णकुटीके चबूतरेपर श्रीसीतारामजी विराजे थे। अनेक ऋषि वहाँ पधारे थे। सत्संग चल रहा था। लक्ष्मणजी हाथ जोड़कर सेवामें खड़े थे। भरतजी—श्रीसीताराम, श्रीसीताराम कीर्तन करते वन्दन करते वहाँ गये।

अथ गत्वाऽऽश्रमपदसमीपं भरतो मुदा ।
सीतारामपदैर्युक्तं पवित्रमतिशोभनम् ॥

भरतजीने पर्णकुटीकी परिक्रमा की । श्रीसीतारामजीके दर्शन करते हुए अतिशय आनन्द हुआ । रामजीके एकदम सम्मुख जानेकी उनकी हिम्मत हुई नही। गला भर आया। मुखमें-से एक शब्द भी नही निकला । 'मेरे राम' कहकर साष्टाङ्ग वन्दन किया।

लक्ष्मणजीने कहा—रघुनाथजी ! भरत आए हैं। भरत आया है, यह शब्द कानमें आया कि रामजीको अतिशय आनन्द हुआ । कन्धेपर धनुष था, उसका भी भान रहा नही । धनुष गिर गया, बाणोका तरकस गिर गया, वल्कल-वस्त्र गिर गया । बोले—मेरा भरत कहाँ है ? कहाँ है भरत ? रामजीकी आँखें भीनी हो गयी । भरतजी दीखे नही । लक्ष्मणजी रामचन्द्रजीको आगे ले आये । रामजीने भरतजीको साष्टाङ्ग प्रणाम करते देखा । इन्होंने भरतजीको उठाकर आलिङ्गन किया ।

रामस्तमाकृष्य सुदीर्घबाहुर्भ्यां परिष्वज्यसिषिञ्च नेत्रजैः ।
जलैरथाङ्कोपरि संन्यवेश्यत् पुनः पुनः संपरिषस्वजे विभुः ॥

चित्रकूटमे जीव-ईश्वरका मिलन हुआ । चित्रकूटमे भगवान् श्रीरामजी, लक्ष्मणजी और जानकीजीके साथ विराजते है । लक्ष्मणजी अर्थात वैराग्य । सीताजी अर्थात् पराभक्ति । वैराग्य और परा भक्तिको साथ लेकर भगवान् चित्रकूटमें अर्थात् चित्तमे—अंतरमें विराजते हैं । उनको जीव अर्थात् भरत मिलने जाते हैं । इस मिलनका चिन्तन भी पापोंको नष्ट करता है ।

श्रीराम-भरतके मिलनके आनन्दका वर्णन कौन कर सकता है ? परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीके चरणारविन्दोंमें शान्ति है । परमात्मासे बिछुड़ी हुई जीवात्माको जहाँ भी जाये, वहाँ अशान्ति ही मिलती है । यह जीव जगतका अंश नही, श्रीरामजीका अंश है । संसार तो सुख और दुःखसे भरा हुआ है । संसार, सुख देता है और अतिशय दुःख भी देता है । इस जीवको आनन्दकी भूख है । श्रीराम-चरण बिना जगतमे कही आनन्द नही ।

यह जीव जब ईश्वरसे अलग हुआ, संसारमे आने लगा, तब उसने परमात्मासे कहा कि महाराज ! आप ऐसी कृपा करो कि मैं संसारमें रह न जाऊँ, फिरसे आपके चरणोंमें आऊँ । प्रभुने कहा कि बेटा ! संसार अशान्तिसे भरा हुआ है । तू मेरे चरणमे नही आवेगा तब तक तुझे शान्ति नही मिलेगी । तू भले ही बड़ा राजा हो या स्वर्गका देवता हो परन्तु मेरे चरणमें नही आवेगा तब तक तुझको शान्ति नहीं ।

मानव स्वर्गमें जाये अथवा बड़ा ज्ञानी बने परन्तु जब तक वह परमात्माके चरणोंमें जाता नही तब तक अशान्त ही रहता है । प्रभुने संसारको अपूर्ण बनाया है,

संसारमें अशान्ति रखी है। जीव, ईश्वरसे किञ्चित् भी पृथक् होगा तो अन्तमें इसको रोना ही है। पूर्ण आनन्द तो इसको तब मिलता है जब जीव रामचन्द्रजीकी शरणमें आता है। जिस ईश्वरका यह अंश है, उस अंशीमें—ईश्वरमें यह मिल जाये, परमात्माके साथ एकरूप हो जाय तो ही यह कृतार्थ बनता है।

ईश्वरके बिना जगतमें यह जहाँ जाता है वहाँ इसके पीछे काल चलता है। काल इसको किसी ठिकाने शान्तिसे नहीं रहने देता। कालका भय सबको लगता है। परमात्मा श्रीराम कालके भी काल हैं। जो श्रीराम-चरणोंमे आया है उसको ही कालका भय नहीं लगता। कालके भी काल परमात्माके साथ जो बराबर प्रीति करता है, उसका ही डर दूर होता है।

जीव ईश्वरका अंश है, जगतका अंश नहीं। जगतके साथ जीवका सम्बन्ध सच्चा नहीं, कच्चा है। इस जीवका सम्बन्ध ईश्वरके साथ ही सच्चा है। थोड़ा विचार करोगे तो ध्यानमें आवेगा कि पति-पत्नीका सम्बन्ध जन्मसे नहीं और मरे पीछे भी नहीं रहता। पति-पत्नीके सम्बन्धका अन्त जीवनमें ही आ जाता है। जगतके सम्बन्ध सापेक्ष हैं देश-कालकी कुछ मर्यादाओंमें रहनेवाले हैं। जीवका ईश्वरके साथ सम्बन्ध सच्चा है। सदा-सर्वदा अनुसन्धान रखो कि मैं परमात्माका अंश हूँ। मुझे प्रभुके चरणोंमें जाना है। मुझे परमात्माके साथ एक होना है।

कितनों ही को शंका होती है कि महाराज! यह जीव ईश्वरका अंश है तो जीव ईश्वरसे बिछुड़ा क्यों पड़ा है? कहाँसे पड़ा है? जीव ईश्वरका अंश है, यह बात सच्ची है। अब क्यों बिछुड़ा और कहाँसे बिछुड़ा, ऐसे विचारसे क्या लाभ है? रोग हुए पीछे, रोग क्यों हुआ, कहाँसे हुआ; इस विचारमें ही समय गवाँनेसे तो रोग बढ़ जाएगा। रोग हुए पीछे तो सावधान होकर पथ्यके साथ दवाका सेवन करे तो रोग शान्त होता है। इस जीवको बड़ा वियोग-रोग लगा है। परमात्माका वियोग ही महान् रोग है। यह रोग क्यों हुआ, कहाँसे हुआ, इसका विचार बहुत न करो। उसकी दवा करो। ईश्वरके साथ सम्बन्ध जोड़ो। ईश्वरके साथ एक होनेका साधन करो।

परमात्माके चरणोंमें न जाये, तब तक जीवको शान्ति मिलनेवाली नहीं। वह बड़ा ज्ञानी हो अथवा अतिशय उदार हो, संसारमें इसको सुख, दुःख मिलेगा परन्तु शान्ति नही मिलेगी। प्रभुने संसारमें अशान्ति रखी है। संसारमें परमात्माने कालका भय रखा है। काल सबके माथे है। उससे छूटना हो तो कालके भी काल श्रीरामकी शरणमें जाओ। ईश्वरमें अंश मिल जाय—जीव ईश्वरके साथ एक बने तब काल इसका नौकर बनता है।

निर्भय होना हो तो परमात्माका दृढ़ आश्रय करो। परमात्माका आश्रय लिये विना जीव निर्भय होता नही।

मनुष्यको जीवनका लक्ष्य निश्चित करना चाहिए कि मुझे परमात्माके चरणोमे जाना है और इस लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए किसी संतकी आज्ञानुसार साधन करना चाहिए। जीव ईश्वरके चरणोमें जाता है तब वह आनन्दरूप परमात्माके स्वरूपमें लीन होता है। फिर वहां न सुख है न दु.ख, न हर्ष न शोक। केवल मात्र परिपूर्ण आनन्द है।

श्रीराम और भरतका दिव्य मिलन हुआ। भरतजी पूर्ण आनन्दरूप बने। दस मिनट तो एक शब्द भी नही बोल सके। जहाँ आनन्दका अनुभव होता है वहाँ वाचा भी बंद होती है। आनन्दका वर्णन वाणीसे नहीं हो सकता। आनन्दकी अनुभूति होती है परन्तु शब्दसे बराबर इसका वर्णन कोई कर सकता नही। सुखका वर्णन हो सकता है, दुःखका वर्णन हो सकता है परन्तु आनन्दका वर्णन शब्दसे नही होता। जहाँ जीव-ईश्वरका मिलन हुआ, अति आनन्दमें वाणी बन्द हो गयी, मौन छा गया।

अगम सनेह भरत रघुबर को। जहँ न जाइ मनु बिधि हरि हर को॥

श्रीराम-भरतका प्रेम ऐसा था कि उसको देखते ही गुह राजाकी समाधि लग गयी। दस मिनट तो ऐसी ही रीतिसे तन्मयता हो गई। पीछे श्रीरामचन्द्रजी सावधान हुए, शत्रुघ्नसे मिले। श्रीरामचन्द्रजीको खबर पड़ी कि वसिष्ठादिक ऋषि आए हैं, माताएँ आयी हैं। भरतजीको आश्रममें रखकर श्रीराम, लक्ष्मण, वसिष्ठ गुरुजीको वंदन करने चले। वसिष्ठ ऋषि संध्यादिक नित्यकर्मको परिपूर्ण कर चित्रकूट पर्वतपर चढ रहे थे। रास्तेमे ही दर्शन हुए।

साष्टाङ्ग प्रणिपत्याह धन्योऽस्मीति पुनः पुनः।

श्रीरामचन्द्रजीने गुरुदेवको साष्टांग वन्दन किया। अयोध्याकी प्रजा भी आयी। सबको श्रीरामदर्शनकी और मिलनकी तीव्र आतुरता थी। प्रभुने विचार किया कि एक-एक करके सबसे मिलूँगा तो जिसकी अन्तिम बारी आएगी उसको बहुत देर होगी। इन सबका बहुत प्रेम है। मेरे लिए ही सब आए हैं। इसलिए सबमे एकसाथ ही मिलूँ। इस जीवको ईश्वरसे मिलनेकी जितनी आतुरता है उसकी अपेक्षा अधिक आतुरता ईश्वरको जीवसे मिलनेकी है। प्रभुने उस समय अनेक रूप प्रगट किए और एक ही समयमे परमात्मा सबसे मिले। सबको प्रभुने आनन्दका दान किया। प्रत्येकको ऐसा ही लगा कि रामजीका मुझपर विशेष प्रेम है। मुझसे ही पहले मिले, पीछे दूसरोसे मिले। सबसे कुशल-समाचार पूछा।

श्रीराम-लक्ष्मणने माताओंका वन्दन किया। रामजीको देखते ही माताओंकी आँखोंमें आँसू आ गये। माताओंने श्रीराम-लक्ष्मणको आशीर्वाद दिया। कौशल्यादिक माताओंको लेकर रामजी आश्रममें आए। सासुजीको देखते ही सीताजी व्याकुल हो गयीं। सीताजीका तापसीका वेष देखकर कौशल्या माँ-का हृदय भर आया। वसिष्ठजीको आसन-पर बैठाकर प्रभुने प्रथम पिताजीकी कुशल पूछी। वसिष्ठजीने कहा—तुम्हारा स्मरण करते हुए महाराज दशरथने प्राणोंका त्याग कर दिया। यह सुनकर रघुनाथजीकी आँखोंमें आँसू आ गये। पिताजीका मुझपर कितना प्रेम था कि अन्तिम श्वास तक मेरा चिन्तन करते रहे। महाराज दशरथकी सत्य-निष्ठा और प्रेम-निष्ठा दोनों दिव्य थीं। रामजीमें उनका ऐसा सच्चा प्रेम था कि राम-वियोगमें वे जीवित नहीं रह सके।

पिताजीकी मृत्युके समाचारसे आज मालिककी आँखें भीनी हो गयीं। लक्ष्मणजी रोने लगे। श्रीसीताजीको भी खबर पड़ी। प्रभुने पीछे स्नान किया, महाराज दशरथका श्राद्ध किया, फलका पिंडदान किया। रामजीने वनवासके चौदह वर्ष तक अन्नका सेवन नही किया, अनाजका और धातुके पात्रका स्पर्श भी नहीं किया।

वयं यदन्नाः पितरस्तदन्नाः।

श्रीरामचन्द्रजीने वनवासमें कंदमूल-फलका ही सेवन किया था। इसीसे फलका पिंडदान किया। वालमीकि रामायणमें ऐसा वर्णन आता है कि महाराज दशरथ कह गये थे—रामजी वनमें जायँ, इसमें यदि भरतकी संमति हो तो भरत मेरा श्राद्ध न करे। महा-राज दशरथकी ऐसी भी इच्छा थी कि रामजी मेरा श्राद्ध करें। रघुनाथने विधिपूर्वक पिताजीका श्राद्ध किया।

श्राद्धमे श्रद्धा प्रधान है। पितृ जिस योनिमें होते हैं, उस योनिका आहार उनको मिलता है। अधिकांशत: अन्नमें वासना रखकर ही जीव शरीर छोड़ते हैं। दो-चार दिन-का उपवास करें तो उस पीछे दाल-भातमे भी मिठास लगती है। मृत्युकी शैयामें अनेक बार जीव अन्नका संकल्प करता है—मैं ठीक हो जाऊँगा, तब दाल-भात खाऊँगा। शास्त्र-में तो ऐसा लिखा है कि जिसके मनमें कोई विकार नहीं, वासना नहीं, जो वासनाहीन होकर, पूर्ण निर्विकार होकर परमात्मा का स्मरण करते हुए शरीर छोड़ता है, उसका श्राद्ध न हो तो भी उसकी सद्गति होती है। विकार-वासनामें रहकर जो शरीरका त्याग करता है, उसके लिए श्राद्धकी बहुत जरूरत है।

समय तो ऐसा आ गया है कि पुत्र श्राद्ध करेगा, ऐसी आशा रखना व्यर्थ है। एक बार एक पुत्रसे हमने पूछा—लाला! तू अपने पिताजीका श्राद्ध क्यों नहीं करता? तब उसने जवाब दिया—मै अपने बापकी कुछ मिल्कियत नहीं भोग रहा। यह सब

मिल्कियत मेरी अपनी कमाई-की है। इसलिए बापकी मिल्कियत मिली हो तो ही बापका श्राद्ध करना, नही तो नहीं—ऐसी आजकी बात है। अरे! बापकी अटूट सम्पत्ति भोगनेवाले भी बापका श्राद्ध नही करते।

इसलिए अपना श्राद्ध अपने हाथसे करके ही जगतको जय श्रीकृष्ण करना। जीवनको परमात्मामे और परोपकारके कार्यमें जोड़ देना ही सच्चा श्राद्ध है। ऐसा श्राद्ध किया होगा तो पीछे पुत्रसे श्राद्ध करानेकी इच्छा नही रखनी पड़ेगी। पुत्र श्राद्ध करेगा और मेरा उद्धार करेगा—ऐसी आशा नही रखना। पुत्र द्वारा नही, सद्‌गति तो स्वयं-के सत्कर्मों द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। पुत्र हो तो ही सद्‌गति हो, यह मान्यता ठीक नही। अपना उद्धार स्वयं-को ही करना है। उद्धरेदात्मनात्मानम्। आजके वातावरणमे उछलकर चलनेवाले पुत्र तो श्राद्ध भी करनेके नही, तो पीछे उद्धार करेंगे ही कहाँसे? जीवका उद्धार जीव स्वयं न करे तो दूसरा कौन करनेवाला है? तुम्हारा अपनेसे जितना सम्बन्ध है उससे अधिक दूसरेका तुमसे कैसे सम्भव है? मनुष्यका स्वयं-के सिवाय दूसरा कौन बड़ा हितकारी हो सकता है? अपना कल्याण तुम न कर सको तो तुम्हारे छोकरे तुम्हारा कल्याण क्या करेंगे? उपनिषदमें वर्णन आता है—

न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः॥

न प्रजया—प्रजाका निषेध किया है। पुत्रसे पिताको मुक्ति नही मिलती, ऐसा लिखा है। पुत्र श्राद्ध करे, तो उस श्राद्धके करनेसे पुत्रका कल्याण होता है। यदि पिंडदान-से ही मुक्ति मिल जाती हो तो ऋषि लोग ध्यान-धारणाका काम क्यो करें? पिंडदानका अर्थ है, इस शरीर-पिंडको परमात्माके अर्पण करना, परमात्माके लिये जीना। ईश्वरके लिए जो जीवित रहता है उसको अवश्य मुक्ति मिलती है। मरनेसे पहले जो भगवानको पहचान लेता है उसको मुक्ति मिलती है। जीवनमें परमात्माका अपरोक्ष साक्षात्कार किए बिना दूसरी किसी भी रीतिसे मुक्ति नही मिलती। जिसको जीवनकालमें मुक्ति न मिले उसको मृत्यु पीछे मुक्ति मिलनी कठिन है।

तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।

परमेश्वरको जाननेसे ही मनुष्य मृत्युको लाँघ सकता है। परमपदको प्राप्ति-के लिए इसके सिवाय दूसरा कोई मार्ग है ही नही। मृत्युके पीछेके पिंडदानसे मुक्ति नही मिलती। प्रभुके द्वारा दिया हुआ यह मानव-देहरूपी पिंड प्रभु प्रसन्न हो ऐसे परोपकारके कार्योमें घिस डालो, इसका नाम पिंडदान है। श्रद्धापूर्वक किये गये सत्कर्मों द्वारा प्रभु-प्रीत्यर्थ जीवन जीना, इसका नाम है सच्चा श्राद्ध। ऐसा श्राद्ध, ऐसा पिंडदान जो करे उसको मुक्ति

मिलती है। ऐसा श्राद्ध और पिंडदान स्वयं-के द्वारा किया गया होगा तो पीछे पुत्रसे करवानेकी अपेक्षा रखनी ही नहीं पड़ेगी।

रामजीकी प्रत्येक लीला मानव-समाजको धर्मका शिक्षण देनेके लिए है। महाराज दशरथको पिंडदानकी जरूरत ही नहीं थी, कारण कि महाराज दशरथ तो अन्तिम श्वास तक श्रीरामजीका ही स्मरण करते थे। फिर भी रघुनाथजीने पिताजीका श्राद्ध किया। वसिष्ठादिक ऋषियोंकी आज्ञाके अनुसार आदर और भक्तिपूर्वक सब क्रिया की।

भोरु भएँ रघुनंदनहि, जो मुनि आयसु दीन्ह।
श्रद्धा भगति समेत प्रभु, सो सबु सादरु कीन्ह ॥

और इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीने जगतको एक आदर्श बताया। चित्रकूटमें भील और कोल लोगोंने अयोध्याकी प्रजाका सुन्दर स्वागत किया। चित्रकूटमें जितने वृक्ष थे, वे सब रामजीकी सेवाके लिए एकदम फलित और पुष्पित हो गये।

सब तरु फरे राम हित लागी। रितु अरु कुरितु काल गति त्यागी ॥

छह ऋतुओंमें पृथक-पृथक प्रगट होनेवाले फूल और फल एक ही समयमें प्रगट हो गये। भील लोग उन फलोंको लाते और अयोध्याकी प्रजाको देते। अयोध्याकी प्रजा प्रेमसे कंदमूल-फलका सेवन करने लगी। कैसे मधुर फल थे। ऐसे मधुर फल तो शहरमें—अयोध्यामें कहाँसे मिलें ?

अयोध्याके लोगोंको आश्चर्य होता था कि इन भील लोगोंका कैसा प्रेम है। इनको हम क्या दें? कोई मूल्य देने लगता तो कोई वस्त्र धरता परन्तु भील लोगोंने लेनेको मनाही की, हाथ जोड़कर कहा—तुम रामजीकी प्रजा हो, हमारे लिए पूज्य हो। रामजीने हमको अपनाया तबसे हम सनाथ हो गये हैं। अब हम तुमसे अधिक तो क्या कहें? पन्द्रह-बीस दिन पहले तुम यहाँ आए होते तो हमने तुम्हारा अलग ही प्रकारका स्वागत किया होता। हमने तुमको लूट लिया होता। हमको रास्तेमें जो कोई मिलता है उसको लूट लेते हैं। चोरी करते हैं, फिर भी हमको खानेको मिलता नहीं परन्तु रामजी चित्रकूटमें पधारे, तबसे हमारी चोरी करनेकी आदत छूट गयी।

हम जड़ जीव जीव गन घाती। कुटिल कुचाली कुमति कुजाती ॥
पाप करत निसि बासर जाहीं। नहिं पट कटि नहिं पेट अघाहीं ॥
सपनेहुँ धरमबुद्धि कस काऊ। यह रघुनंदन दरस प्रभाऊ ॥
जब तें प्रभु पद पदुम निहारे मिटे दुसह दुःख दोष हमारे ॥

श्रीरामजी चित्रकूटमें पधारे, तबसे हम चोरी-लूट करते नही, मदिरा-पान करते नही, हम जरा भी पाप करते नही। श्रीरामचन्द्रजीने हमारा जीवन सुधारा है। तुम रामजीकी प्रजा हो, हमारे लिये पूज्य हो। तुम्हारा स्वागत करना हमारा धर्म है। हमको कुछ भी नही लेना।

अयोध्याके लोगोंको भी लगा कि निश्चय ही ये भील लोग भाग्यशाली हैं। अवध अभागी बनु बड़भागी। हम भी अब यहाँ ही रहेगे। हमारी ऐसी इच्छा है कि चौदह वर्षका समय यहाँ ही पूरा हो जाये तो ठीक है।

वसिष्ठजीने भरतजीसे पूछा—भरत! अब क्या करोगे? भरतजी बोले—गुरुजी! आप मुझसे पूछते हो? आप यहाँ बैठे हो, आप जैसी आज्ञा, दो वैसा करूँ। वसिष्ठजीका भरतजीके ऊपर ऐसा प्रेम था कि उन्होने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा कि मेरी तो दूसरी कोई इच्छा नही, भरत राजी हो ऐसा तुम करो। गुरुदेवका छोटे भाईके ऊपर अलौकिक प्रेम देखकर श्रीरामचन्द्रजीको बहुत आनन्द हुआ। श्रीरामचन्द्रजीने कहा—मैं अपने भाईकी क्या प्रशंसा करूँ?

भयउ न भुअन भरत सम भाई।

मैं भरतके अधीन हूँ। यह जरा भी सकोच न रखे। इसकी जो इच्छा हो वह मुझसे कहे। तब भरतजीने प्रार्थना की—

सानुज पठइअ मोहि बन, कीजिअ सबहि सनाथ।
नतरु फेरिअहिं बंधु दोउ, नाथ चलौं मैं साथ॥

नतरु जाहिं बन तीनिउ भाई। बहुरिअ सीय सहित रघुराई॥
जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई। करुना सागर कीजिअ सोई॥

मेरी तो यही भावना है कि आप श्रीसीताजीके साथ वापिस अयोध्या पधारो। चौदह वर्ष वनमें मैं रहूँगा अथवा हम तीनों भाई वनमें रहेंगे, आप अयोध्यामें राज्य करो और प्रजाको सुखी करो अथवा लक्ष्मणजीको अयोध्या जानेकी आज्ञा दो और मुझको अपनी सेवामें साथ रखो। मैं दुःखी हूँ। आर्त्त हूँ। दुखीका विवेक कम होता है। मैं तो शरणमें आया हूँ। आपने मुझको अपनाया है। मैं कृतार्थ हुआ हूँ। मैं तो आपका सेवक हूँ।

सेवक हित साहिब सेवकाई। करै सकल सुख लोभ बिहाई॥ ॥

सेवकका हित तो स्वामीकी सेवा है। सेवकको स्वयं-के सुखका विचार नहीं करना चाहिए। मेरा यही धर्म है कि आप जो आज्ञा दें, उसका पालन करूँ। आप जरा भी संकोच नही रखें। आप जो आज्ञा देंगे उस आज्ञाका मैं पालन करूँगा।

उस समय वहाँ राजा जनकका दूत आया। प्रातःकालमें राजा जनक भी वहाँ पधारे। उनका स्वागत हुआ। अनेक प्रकारकी बातें हुईं। सीताजीका तपस्वी-वेष देखकर जनकजी का हृदय भर आया।

जनकजीने कहा—मैं सीताजीको अपने साथ ले जाऊँगा। बेटा! तूने दोनों कुलोंका उद्धार किया। तूने दोनों कुल पवित्र किए। सीताजीने कहा—मेरे पतिका वनवास तो मेरा भी वनवास है। पिताजी! मुझसे अधिक आग्रह न करो।

कौशल्याजीने कहा—इस भरतको समझाओ। भरत चौदह वर्ष तक किस रीतिसे जियेगा? रामविरह यह सहन नहीं कर सकेगा। भरतको सन्तोष हो वैसा करो। तब जनकजीने कहा।

भरत कथा भव बंध विमोचनि।
धरम राजनय ब्रह्म विचारू। इहाँ जथामति मोर प्रचारू॥
सो मति मोर भरत महिमाही। कहै काह छलि छुअति न छाँही॥

लोग मुझको ब्रह्मज्ञानी कहते हैं परन्तु भरतके प्रेमके आगे मेरी बुद्धि कुछ काम नहीं करती। जनकजीने भरतजीकी बहुत प्रशंसा की। उसके पीछे तीसरा दरबार जुड़ा। भरतजीने आज्ञा माँगी। श्रीरामचन्द्रजीने अन्तिम निर्णय किया। बोले—भाई भरत! आज तक मैंने तुमको कभी नाराज किया नहीं परन्तु आज मुझको कहनेमें दुःख होता है। भरत! तू जानता है, पिताजीकी आज्ञाका पालन करना तेरा धर्म है और मेरा भी धर्म है।

सो तुम्ह करहु करावहु मोहू। तात तरनिकुल पालक होहू॥

भरत! पिताकी एक आज्ञाका पालन मुझको करना है, एक आज्ञाका पालन तुझको करना है। चौदह वर्ष वनमें मुझे रहना है, चौदह वर्ष अयोध्याका राज्य तुझको करना है।

भरतजीने कहा—जो आज्ञा। मुझको शान्ति है। आपने आज्ञा की, वह मुझे शिरोधार्य है। मैं चौदह वर्ष आपका स्मरण करता हुआ अयोध्यामें रहूँगा परन्तु······

कृत्वा चतुर्दशे वर्षे पूर्णे गुप्ते रवौ स्वहम्।
प्रवेक्ष्याम्यनलं राम सत्यमेतद्वचो मम॥

चौदह वर्षकी अवधि परिपूर्ण हुए पीछे एक दिन भी विलम्ब करोगे तो मैं प्राणोंका त्याग कर दूंगा।

श्रीरामचन्द्रजीने कहा—नही, मैं बराबर अवधि परिपूर्ण होते ही अयोध्यामें आऊँगा। परमानन्द हुआ। भरतजीका निष्ठा थी—अपने मालिकको मुझे परिश्रम देना नही। प्रेमका लक्षण है—प्रेममें प्रियतमके सुखका ही विचार होता है। काम और प्रेम—इन दोनोका आकार थोडा समान है परन्तु तत्त्वसे इन दोनोमें बहुत अन्तर है। सुखको स्वयं-की तरफ खीच लेना, इसको काम कहते है और सुख प्रियतमको अर्पण करना, इसको प्रेम कहते हैं। भरतजी तो प्रेमकी मूर्ति है। भरतजीको कोई सुख भोगनेकी इच्छा नही। भरतजीकी तो इतनी ही इच्छा है कि श्रीरामजी आनन्दमे विराजे। श्रीराम-वियोगमे भरतजीको अतिशय दुःख है परन्तु भरतजीकी भावना है, मैं दुख सहन करूँगा। मेरे रामजी आनन्दमें विराजें।

भरतजी श्रीरामके चरणोंमें वंदन करके बोले—मेरे प्राण टिकानेके लिए मुझको कोई आधार दीजिये।

पादुके देहि राजेन्द्र राज्याय तव पूजिते।
तयोः सेवां करोम्येव यावदागमनं तव ॥

भागवतमें कथा आती है कि प्रभुने द्वारिकाका उपसंहार करनेका निश्चय किया तब उन्होने उद्धवसे कहा—उद्धव! तुमसे यह उपसंहार देखा नही जाएगा। अब तू बदरिकाश्रममें जाकर रह। उद्धवने कहा—आप साथमे चलो। तब श्रीकृष्णने कहा—उद्धव! तुमको अकेले ही जाना पडेगा। चैतन्यरूपमें मैं तुझमे निवास करता ही हूँ। तू ऐसी भावना रख कि मैं तेरे साथ ही हूँ। उद्धवजी प्रार्थना करते है—नाथ! भावना, आधार बिना नही हो सकती। निराधार भावना होती नही। आप मुझको ऐसा कोई आधार दें, जिसमे मैं भावना करूँ। श्रीकृष्ण भगवानने उद्धवजीको स्वय-की चरण-पादुका दी। उद्धवजीने मान लिया कि द्वारिकानाथ अब मेरे साथ हैं। मैं अनाथ नही। मैं सनाथ हूँ। यह पादुका नही परमात्मा मेरे साथ आए हैं। उद्धवजीका प्रेम ऐसा है कि उस चरण-पादुकामें उनका श्रीकृष्णके दर्शन होते हैं।

श्रीरामचन्द्रजीने भरतजीको चरणोकी पादुका दी। भरतजीको तो ऐसा आनन्द हुआ कि यह चरण-पादुका नही, ये प्रत्यक्ष श्रीसीतारामजी है। मेरे राम मेरे साथ है। मै अकेला नही। मैं रामजीके साथ अयोध्या जाता हूँ। प्रेममे यह शक्ति है—प्रेम जडको चेतन बनाता है। लौकिक दृष्टिसे विचार करो तो पादुका जड है परन्तु श्रीरामचरणकी पादुकामे भरतजीको श्रीरामके दर्शन होते है। जो वस्तु जैसी है, उस वस्तुको उसके यथार्थ रूपमें जाने, उसका नाम ज्ञानी। ज्ञानसे किसी वस्तुमे फेरफार होता नही। ज्ञानमे किसी वस्तु-का परिवर्तन करनेकी शक्ति नही परन्तु परिवर्तन करनेकी शक्ति प्रेममे अवश्य है। प्रेम

तो जड़को चेतन बनाता है। प्रेम निष्कामको सकाम बनाता है, निराकारको साकार बनाता है, स्वतत्रको परतंत्र बनाता है। भरतजीका प्रेम ऐसा है कि भरतजोको चरण-पादुका दोखती नही, प्रत्यक्ष श्रोसीतारामजोके दर्शन होते है।

भरतजीने पादुकाको माथेपर पधराया। मस्तक बुद्धि-प्रधान है। इसमें प्रभुको पधराओगे तो तुम्हारे मनमें कोई विकार नहीं होगा। जो अकेला फिरता है वह दुःखी होता है। परमात्माको साथ रखकर जो फिरता है वह सुखी होता है। भरतजी पादुकाके साथ अयोध्यामें पधारे, नन्दीग्राममें वास किया। भरतजीने सिंहासनके ऊपर पादुकाकी स्थापना की।

तत्र सिंहासने नित्यं पादुके स्थाप्य भक्तितः॥
पूजयित्वा यथारामं गन्धपुष्पाक्षतादिभिः।
राजोपचारैरखिलैः प्रत्यहं नियतव्रतः॥

भरतजी पादुका-की रामजीके समान नित्यपूजा करने लगे। कठिन तपश्चर्या आरंभ की।

फलमूलाशनो दान्तो जटावल्कलधारकः।
अधःशायी ब्रह्मचारी............

रामजो वनमें कंदमूल, फलका सेवन करते थे इसलिए भरतजीने भी अनाज लेना बंद कर दिया था। भरतजीका नियम था कि आँगनमें कोई साधु, ब्राह्मण आवे तो उसका सम्मान करना और उसको मिष्टान्न खिलाना परन्तु भरतजीने चौदह वर्ष तक अनाज नहीं लिया। भरतजी गोमुखवायक व्रत करने लगे। गायको जौ खिलाते, गोबरके साथ निकलनेवाले उन जौको बीन लेते। उनको गोमूत्रके साथ उबालकर उनकी लस्सी बनाते। इस प्रकार उबाले जौ चोबीस घंटेमें एकबार भरतजी आरोगते थे। भरतजीने जटा-वल्कल धारण-किए थे। वे भूमिके ऊपर सोते और ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करते थे।

रामजीकी तपश्चर्याकी अपेक्षा भरतजीकी तपश्चर्या सहज नहीं थी। वनमें रहकर तप करना बहुत कठिन नहीं, राजमहलमें रहकर तप करना बहुत कठिन है। सब प्रकारकी अनुकूलता हो फिर भी मन किसी विषयमें नहीं जाये, वह सच्चा वैराग्य। संपत्ति मिले फिर भी संपत्तिमें मोह नहीं हो, यह है वैराग्यका स्वरूप। जंगलमें वृक्षके नीचे बैठकर संयम रखना कदाचित् शक्य है, अशक्य नहीं। कारण, आंखको और मनको चंचल करने-वाली कोई वस्तु वहाँ दीखती नही।

मिली नहिं नारी तो सहज बाबा ब्रह्मचारी।

भिखारीको खानेको न मिले तो वह उपवास करता है। भिखारी एकादशी करे, उसका कुछ विशेष अर्थ नही। इसके पासमे कुछ नही, इसको कुछ मिला नही, इसीसे यह उपवास करता है। सब कुछ होनेपर भी मन किसी विषयमें न जाये, उसका उपवास ब्रह्म-चर्यके बराबर है। भरतजीका वैराग्य दिव्य था। उनकी तपश्चर्या अलौकिक थी।

राजकार्याणि सर्वाणि यावन्ति पृथिवीतले।
तानि पादुकयोः सम्यङ् निवेदयति राघवः॥

समस्त राजकार्य पादुकाको निवेदन करके करते थे। भरतजी कोई भी काम पादुकाकी आज्ञा बिना नही करते थे। तुमसे बने तो तुम भी ऐसा नियम लो। अपने ठाकुरजीसे कहकर प्रत्येक काम करो। तुम जब बाहर जाओ तो घरके ठाकुरजीको वंदन करके जाओ। कोई भी काम करना हो वह भगवान्-से कहकर करोगे तो किसी दिन दु:खी नही होगे। कोई भी समस्या आनेपर किसी जीवकी सलाह लो, वह ठीक है परन्तु भगवान्-की सलाह लो, यह अति उत्तम है। सलाह ठाकुरजीकी लेनी। जीवकी सलाह अधिकांश भागमें राग-द्वेषवाली होती है।

परन्तु साधारण मनुष्य व्यवहारका कोई भी काम करता है तब ईश्वरसे विमुख होता है। व्यवहारका काम करते हुए मानव, प्रतिक्षण ऐसा अनुसन्धान रखकर ही व्यवहार करता है कि मैं पति हूँ, मैं पत्नी हूँ, मैं अमुक हूँ। इसकी बजाय कोई भी काम करो तब परमात्माका ऐसा सतत अनुसन्धान रक्खो कि मैं परमात्माका सेवक हूँ, मैं ईश्वरका अंश हूँ। भक्तिका अर्थ होता है—परमात्माके साथ परिणित होना। लग्न दो-चारके लिए होती नही। लग्न हुए पीछे जीवनमें अन्तिम श्वास तक यह सम्बन्ध टिकाना पड़ता है। ईश्वरका सतत अनुसधान रक्खो।

तुम्हारी कुछ भी समस्या हो तब ठाकुरजीका शृंगारकर, भोग धर, आरती उतार-कर, पीछे शांतिसे हाथ जोड़कर इस महामन्त्रका जप करो।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः।

यह श्लोक महामन्त्र है। इस श्लोकका जप करो और इस श्लोकका जप करते-करते भगवानके चरणोंमें सो जाओ। भगवान स्वप्नमे मार्गदर्शन देगे। परमात्माको साथ रखकर किया हुआ व्यवहार सुखमय होता है। ईश्वरसे विमुख होकर किया हुआ व्यवहार अभिमान उत्पन्न करता है।

भरतजी प्रत्येक काम पादुकाको निवेदन करके करते थे। भरतजी तनसे तो अयोध्यामें थे परन्तु भरतजीका मन रामजीके चरणोमे था। भगवान् शंकर भरतजीको—ब्रह्ममुनिर्यथा—ब्रह्मनिष्ठ महापुरुषकी उपमा देते है।

स्थितो रामार्पितमनाः साक्षाद्ब्रह्ममुनिर्यथा ॥

रामजीकी प्रतीक्षामें भरतजी अयोध्यामें इस रीतिसे तपश्चर्या करते थे। भरतजीका रोजका नियम था। सायंकालमें पादुकाका फूलोंसे सुन्दर शृंगार कर, पादुकामें नेत्र स्थिर करके—सीताराम, सीताराम, सीतारामका जप करना। भरतजी पादुकामें दृष्टि स्थिर रखते थे।

तुम्हारा मन चंचल हो तो भले हो, आँखको चंचल नहीं होने देना। तुम जब जप करने बैठो तब आँख ठाकुरजीके चरणोंमें रखना। मनको स्थिर करना कठिन है परन्तु आँखोंको भगवद्स्वरूपमें स्थिर रखना बहुत कठिन नहीं। साधारणत: ऐसा नियम है कि जागृत अवस्थामें मन आँखोंके ऊपर होता है। आँख जहाँ जाती है, वहाँ अधिकांशत. मन जाता है। आँख चंचल हों तो ही मन चंचल होता है। आँखोंको प्रभुके स्वरूपमें रखो। आँख स्थिर होंगी तो मन भी स्थिर होगा।

भरतजी पादुकामें दृष्टि स्थिर करके "सीताराम, सीताराम, सीताराम" का जप करते। कोई-कोई समय ऐसा होता कि भरतजीको रामजीका वियोग असह्य जान पड़ता। भरतजीको बहुत याद आ जाती और हृदय चीत्कार कर उठता कि "कैकेयीने यह क्या किया? मेरे रामको वनवास दिया।" भरतजी खूब व्याकुल हो जाते। श्रीराम-दर्शन के लिए उनके प्राण तरसने लगते। भरतजी श्रीराम-वियोगमें जब अत्यन्त व्याकुल हो जाते और श्रीराम-नाम का जप करते तब पादुकामें-से...... श्रीसीता-रामजी बाहर आते। भरतजीको फिर तो संयोगका अनुभव होने लगता—श्रीरामचन्द्रजी वनमें गये थे ऐसा भरतजी उस समय भूल जाते। भरतजी को ऐसा लगता कि "श्रीसीतारामजी यहाँ ही विराजे हैं, प्रेमसे मुझको देखते हैं।" भरतजीको समझाते—"भाई! मैं तो घरमें ही हूँ।" रामजीका एक स्वरूप वनमें था और दूसरा स्वरूप भरतजीके पास था। श्रीराम तो सर्वव्यापक हैं। जितने भक्त है, उतने ही रामजी हैं।

तुम जहाँ बैठकर रामजीका स्मरण करोगे वहीं रामजी प्रगट होंगे। ऐसी कोई जगह ही नही कि जहाँ रामजी विराजते न हों, परन्तु सर्वव्यापक परमात्मा मायाके आवरणमें ढँके हुए होते हैं। उन सर्वव्यापकको वैष्णव प्रेमसे प्रभुके नामका जप करके प्रगट करते है। ईश्वर तो सर्वत्र हैं परन्तु वे सर्वव्यापक ईश्वर अपने उपयोगमें बहुत नही आते। वे ईश्वर तभी सर्वव्यापकतासे हटकर मानवके लिए प्रत्यक्ष प्रगट होते हैं, जब मनुष्यके कल्याणके लिये परमात्माको प्रगट करता है-प्रभुका नाम। परमात्माको प्रगट करता है प्रभुका प्रेम।

प्रभुका रूप नामके आधीन है। जिस नामका जप करोगे उस रूपमें परमात्मा तुम्हारे समक्ष प्रगट होंगे। जहाँ प्रेमसे परमात्माके नामका जप हो, वहाँ भगवानको प्रगट होना ही पड़ता है। किसीको बहुत प्यास लगी हो और वह "पानी-पानी" का जप करे इससे पानी मनुष्यके पास कही आता नहीं। जिसको प्यास लगे उसको पानीके पास जाना पडेगा। पानी जड़ है। पानी किसी दिन तुम्हारे पास आवेगा नही। तुमको पानीके पास जाना पड़ेगा परन्तु कोई अतिशय प्रेमसे "सीताराम सीताराम" का स्मरण करते हुए जप करे तो रामजी वहाँ प्रगट होते है।

भरतजी को ऐसा अनुभव होता कि "श्रीरामजी तो यहाँ ही विराजे हैं।" श्रीकृष्ण परमात्मा जब मथुरामें और द्वारिकामे विराजते थे तव प्रत्येक गोपीको ऐसा अनुभव होता था कि "मेरे श्रीकृष्ण मेरे साथ ही हैं।" जितनी गोपियाँ हैं, इतने श्रीकृष्ण हैं। उद्धवजी गोपियोको समझानेके लिए गये तब गोपियो ने कहा कि "उद्धव! वे श्रीकृष्ण कोई अलग होगे जो मथुरा में रहते हैं। मेरे श्रीकृष्ण तो मुझको छोड़कर गये ही नही। मेरे कृष्ण निरंतर मेरे साथ ही हैं। चौबीसो घटे मेरा और इनका नित्य सयोग है।" गोपियोका प्रेम अतिशुद्ध है। गोपियाँ जव ठाकुरजीका स्मरण करती है तब ठाकुरजीको प्रगट होता पडता है। गोपियोकी निष्काम भक्ति ऐसी है कि वह भगवानको खींच लेती है। जहाँ भक्त है वहाँ भगवान हैं। भक्त और भगवान एक ही है। भक्त और भगवान अलग नहीं रह सकते।

जिस प्रकार प्रत्येक गोपीको ऐसा अनुभव कराया कि "मैं तो तेरे पास ही हूँ।" उसी प्रकार परमात्माने भरतलालको भी ऐसा अनुभव कराया है कि मैं यहाँ ही विराजा हुआ हूँ। भरतजी ने प्रेमलक्षणा भक्तिका दिव्य आदर्श जगतको बताया है। संयोगमें सेवा किस रीतिसे करना, यह आदर्श लक्ष्मणजीने जगत्‌को बताया है, और श्रीरामवियोग-में मानव-जीवन कैसा होना चाहिए, मानवको किस रीतिसे पवित्र जीवन विताना चाहिए, यह आदर्श भरतजीने वताया है। अपनेको श्रीरामका वियोग है। मनुष्यका जीवन भरतजो जैसा हो तो श्रीराम मिलें। भरतजीका चरित्र मनुष्यके लिए अनुकरणीय है। भरतजीके सत्संगसे अयोध्याकी प्रजा कदमूल-फलका सेवन करती थी। बहुत लोग केवल-मात्र एक बार भोजन लेते। वहुत-से लोग श्रीराम-दर्शनके लिए व्रत-उपवास करते, बहुत-से ब्रह्मचर्यका पालन करते। चौदह वर्ष तक अयोध्याकी प्रजाने श्रीरामचन्द्रजीकी तपश्चर्यापूर्वक प्रतीक्षा की।

मनुष्य पैसेके लिए प्रवृत्ति करता है, परमात्माके लिए क्या करता है? मनुष्य-को पैसे जितनी भी परमात्माकी आवश्यकता प्रतीत नही होती। लोग कहते हैं कि

"भगवानके दर्शन हमको नहीं होते।" भगवानके दर्शन तुमको किस रीतिसे हों? तुमको प्रभुकी क्या आवश्यकता पडती है? परमात्माके लिए तुम क्या करते हो? यह जीव ईश्वरके लिए लौकिक सुखका त्याग न करे तब तक भगवानको भी दया नहीं आती। परमात्मा तो व्यापक होनेसे तुम्हारे पास ही हैं, साथमें ही रहते हैं। तुम सावधान होकर प्रभु के लिये कुछ साधन करो, भरतजीके जैसा पवित्र जीवन बिताओ तो परमात्मा अवश्य प्रगट होंगे।

सोइ सर्वज्ञ गुनी सोइ ज्ञाता। सोइ महि मंडित पंडित दाता।
धर्म परायन सोइ कुल त्राता। रामचरन जाकर मन राता॥
नीति निपुन सोइ परम सयाना। श्रुति सिद्धान्त नीक तेहिं जाना।
सोइ कवि कोविद सोइ रनधीरा। जो छल छाँड़ि भजइ रघुबीरा॥

ध्यायेदाजानुबाहुं धृतशरधनुषं बद्धपद्मासनस्थं,
पीतं वासोवसानं नवकमलदलस्पर्धिनेत्रं प्रसन्नम् ।
वामांकारूढसीता मुखकमलमिलल्लोचनं नीरदाभं,
नानालंकारदीप्तं दधतमुरुजटामण्डलं रामचन्द्रम् ॥

(४५)

अत्रि-अनसूया

परमात्मा श्रीरामचन्द्रजी, श्रीसीताजी तथा लक्ष्मणजीके साथ चित्रकूट पर्वतके ऊपर थोडे समय रहे। अनेक ऋषि-मुनि वहाँ सत्संगके लिए आते थे। आसपासके नगर-वासी भी प्रभुके दर्शनके लिए आया करते थे। श्रीरामचन्द्रजीने विचार किया कि यहाँ मैं रहता हूँ तो बहुत लोग आते हैं और इसीसे श्रीरामचन्द्रजीने चित्रकूट छोडकर आगे जानेका निश्चय किया।

दृष्ट्वा सज्जनसंनाध रामस्तत्याज तं गिरिम्।

चित्रकूटका त्याग करके प्रभु आगे चले। चित्रकूटके महान् संत अत्रि ऋषि थे। अत्रि ऋषिके आश्रममें प्रभु पधारे। यह जीव बहुत लायक हो, तभी परमात्मा इसके पास आते हैं, बिना आमन्त्रणके आते है। साधारण जीव ईश्वरको आमन्त्रण नही दे सकता। थोड़ा विचार करो। जो अनन्तकोटि ब्रह्माण्डके नायक हैं, उन परमात्माको कौन आमन्त्रण दे सकता हैं कि तुम मेरे घर आओ? अरे, राजाको तुम आमन्त्रण दोगे तो वह तुम्हारे घर आवेगा? नही आवेगा। एक मनुष्य जैसा राजा न आवे तो परमात्मा तो आवे ही कहाँसे? परन्तु यह जीव पवित्र जीवन बितावे, यह जीव लायक बने तब भगवान कृपा करके बगैर आमन्त्रणके उसके घर आते हैं। परमात्मा श्रीकृष्णको धृतराष्ट्र दुर्योधनने स्वयंके राजमहलमें पधारनेका आमन्त्रण दिया परन्तु श्रीकृष्ण वहाँ नही गये। वे तो बगैर आमन्त्रणके विदुरजीकी झोपड़ीमे गये है। विदुरजीके जैसा, अत्रि ऋषिके जैसा जीवन बिताओगे तो भगवान आपके घर आवेगे।

सच्चे वैष्णवको जिस प्रकार ठाकुरजीके दर्शनके लिए आतुरता होती है, उसी प्रकार भगवान भी स्वयंके प्यारे भक्तोके दर्शनके लिये आतुर होते है। संत तुकारामके चरित्रमें कथा आती है। पंढरपुरमे भगवानके दर्शनोके लिये इतनी अधिक भीड़ होती है कि सुबहके गये हुए मनुष्योंको संध्या समय तक विट्ठलनाथजीकी झांकी मिल पाती है। एक समय लक्ष्मीजीने भगवानसे पूछा कि इतने अधिक भक्त आपके दर्शनोंके लिए आए हैं, फिर भी आप उदास क्यो हो?

प्रभुने कहा—ये सब तो स्वार्थी एकत्रित हुए हैं। ये सब मुझे देखने आए हैं परन्तु जिसके दर्शन करनेकी मेरी इच्छा है वह अभी तक आया नही। लक्ष्मीजीको आश्चर्य हुआ। उन्होंने प्रभुसे पूछा—ऐसा कौन है जिसके दर्शनकी आपको इच्छा हो रही है। प्रभुने कहा—मेरा तुका मुझे दीख पडता नहीं।

तुकारामको उस दिन बुखार आ गया था। शैया पर पड़े-पड़े विठोबाको याद करते हुए तुकाराम मनमें विचारते थे, मुझे बुखार आया हुआ हैं। आज विठोबाके दर्शन करने जा सकूंगा नहीं। प्रभुके दर्शनके बिना दिन चला जाएगा? मेरे विठ्ठलनाथजी मेरे घर क्या दर्शन देने नहीं आयेगे?

यहां भक्तके दर्शन करनेके लिए भगवानकी आतुरता बढ़ी। उन्होंने लक्ष्मीजीसे कहा—ये सब मेरे लिये नहीं आए हैं। एक तुकाराम ही मेरे लिए आता है। ज्वरके कारण वह आज आ सकता नही। चलो, मैं ही उसके यहाँ चलूं। हजारों वैष्णव पंढरपुरमें विट्ठलनाथजीके दर्शन करनेके लिये आये थे और परमात्मा पधारे थे तुकारामके यहाँ।

भगवान शिवजी पार्वती मांको श्रीराम-कथा सुनाते हैं। अत्रि ऋषि श्रीरामके पास आए, ऐसा रामायणमें नहीं लिखा। रघुनाथजी स्वयं अत्रि ऋषिके आश्रममें पधारे। मन्दाकिनीके किनारे अत्रि ऋषि विराजते थे। अत्रि ऋषिका आश्रम आज भी चित्रकूटमें है। श्रीराम-लक्ष्मण-जानकी वहीपर पधारे।

ऋषि-दम्पतिकी तपश्चर्या दिव्य थी। 'अत्रि' शब्दका थोड़ा विचार करो। न+त्रि= अत्रि। जो तीनों गुणोंका उल्लङ्घन करके, निर्गुण परमात्माके साथ मनसे सम्बन्ध जोड़कर रक्खे, उसे ही अत्रि कहते हैं।

परमात्मासे शरीरसे मिलना संभव नहीं। मनुष्यका शरीर तो विष्ठा, मूत्रसे भरा अमंगल है। इस शरीर जैसी मलिन वस्तु दूसरी कोई नहीं। यह शरीर गन्दा है। इसमेंसे सतत दुर्गन्ध निकलती है। शरीरका बीज अपवित्र है। देवता अपने शरीरसे दूर-दूर खड़े रहते हैं। इस शरीरसे ब्रह्मसम्बन्ध हो सकता नहीं। ब्रह्मसम्बन्ध मनसे करना पड़ता है। शरीरसे परमात्माको मिलना असंभव है। जिन संतोंको भगवान् प्रत्यक्ष मिले हैं उनका शरीर अपना जैसा नहीं। सतत भक्ति करनेसे उनका शरीर भी कुछ दिव्य बन जाता है।

आध्यात्मिक शरीरका—सूक्ष्म शरीरका ही ईश्वरके साथ मिलन होता है। सूक्ष्म शरीर सत्रह तत्त्वोंका बना हुआ है। पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच प्राण, मन और बुद्धि। यह मन मरता है तभी सूक्ष्म शरीर मरता है। यह मन मरता है तभी भक्ति-रस मिलता है। मन मरता है तभी मुक्ति मिलती है। शरीर मरनेसे मुक्ति मिलती नहीं।

पूर्वजन्मके शरीरका नाश हो जाता है परन्तु पूर्वजन्मके मनको लेकर यह जीवात्मा आता है। जीवात्माके साथ मन जाता है। मन मरनेसे मुक्ति मिलती है। मनका निरोध ही मुक्ति है। परमात्मासे तनसे नही, मनसे मिलना है।

तीनों गुणोका उल्लंघन करके, निर्गुण परमात्माके साथ जो मनसे सम्बन्ध जोड़कर रखता है वही अत्रि है। मनुष्य तीनो गुणोमे फँसा हुआ रहता है। दिनमे रजोगुणमें, रात्रिको तमोगुणमें और भगवद्भजनमे हृदय आर्द्र बने तब सत्वगुणमे। सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुणका वर्णन करनेमे तो बहुत लम्बी बात हो जाएगी। रामायणमे इन तीनो गुणोंका उदाहरण आया है। विचार करके देखो तो इन तीनो गुणोका स्वरूप ध्यानमे आ जाएगा।

विभीषण सत्वगुणके स्वरूप हैं। रावण रजोगुणका स्वरूप है। कुम्भकर्ण तमोगुणका स्वरूप है। कुम्भकर्णका चरित्र कैसा है ? वह बहुत खाता है और सोया रहता है। निद्रा, आलस्य—यह तमोगुणका धर्म है। कितने ही लोग रोज तो नही परन्तु रविवारके दिन कुम्भकर्ण जैसे हो जाते हैं। वे ऐसा समझते हैं कि रविवार तो छुट्टीका दिन है। छुट्टीके दिन खूब खाना और खूब आराम करना चाहिये। अरे, खूब खानेसे और खूब आराम करनेसे तन और मन दोनो बिगड़ जाते हैं।

जिसका समय निद्रामे, प्रमादमे और आलस्यमें बहुत जाता है तो समझना कि यह मनुष्य तमोगुणी है।

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महारिपुः।

मनुष्यका आलस्यके समान कोई शत्रु नही। इस यन्त्रयुगमे लोगोकी अब काम करनेकी इच्छा नही होती, बैठा रहना ही बहुत अच्छा लगता है। प्राचीन कालमे सब मेहनत करते थे परन्तु इस यंत्रयुगमे शक्तिका नाश हुआ, मनुष्यमे आलस्य बढ गया। यंत्रसे थोड़े समयमें बहुत काम हो जाता है। लोग ऐसा समझते है कि हमको बहुत सुख भोगना चाहिये। मनुष्यको बहुत आराम मिले वह ठीक नही। आराम मिले पीछे प्रभुका स्मरण नही करे, भक्ति न करे तो तन-मन दोनो बिगड़ जाते हैं।

बहुत आराम न करो। परोपकारमे शरीरको थकने दो। शरीर थक न जाय तब तक खाटमें न पड़ो। दो-तीन मिनिटमें ही निद्रा आ जानेका विश्वास हो तब ही खाटपर पड़ो। निद्रा न आवे तब तक सतत जप करो। निवृत्तिके समय खाटमें पड़नेके पीछे तुमको जो सतत याद आवे उसमें ही तुम फँसे हो ऐसा मानना। कितने ही जीव खाटपर पड़नेपर व्यापारके बारेमे विचार करने लगते हैं। कितने ही खाटमें पड़े पीछे कामान्ध बनते हैं। बहुत थोड़े भाग्यशाली जीव खाटमें पड़े पीछे ईश्वर-स्मरण करते हैं। प्रभुके

नामका जप करते-करते ही सो जाओ और ब्राह्ममुहूर्तमें उठो परन्तु प्रभुके नामका जप करते-करते ही उठो तो तुम्हारी निद्रा भी भक्ति बन जाएगी।

कुम्भकर्ण तमोगुणका स्वरूप है। रावण कुम्भकर्णकी अपेक्षा ठीक है। कुम्भकर्ण तो खूब खाता है। बिना कुछ किये ही बैठा रहता है या ऊँघता रहता है और तनिक भी प्रवृत्ति करता नही। रावण आलस्यमे न तो सोता रहता है, न फालतू बैठा रहता है; सारे दिन कुछ-न-कुछ खटपट किया ही करता है परन्तु इसकी प्रवृत्ति बलहीन है।

तमोगुणकी अपेक्षा रजोगुण ठीक है परन्तु रजोगुणी मनुष्यका मन चंचल होता है। काम और क्रोध, रजोगुणके पुत्र हैं।

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।

रजोगुण मनमे आवे तो मन चंचल हो जाता है। बुद्धि ईश्वरसे विमुख बने तो रजोगुण आ जाता है। रजोगुण मनको बहुत चंचल बनाता है। रजोगुणीको सच्चे सुखकी खबर नही होती, शरीर-सुख और इन्द्रिय-सुखके लिए जो समस्त दिन प्रवृत्ति करे वह रजोगुणी। इस शरीरको थोड़ा सुख देनेकी जरुरत है परन्तु शरीरका सुख, इन्द्रियोंका सुख—यह तुम्हारा सुख नही। तुम शरीरसे अलग हो।

अहं द्रष्टुतया सिद्धो देहो दृश्यतया स्थितः।
ममायमिति निर्देशात् कथं स्याद्देहकः पुमान्॥

मनुष्य बोलता है—मेरी आँख, मेरी जीभ, मेरा शरीर। यह शरीर जो दीखता है, उसको देखनेवाला शरीरी अलग है। जड़ शरीर की इन्द्रियोंसे चेतन आत्मा अलग है। आत्मा जो शरीरसे अलग है तो आत्माका सुख भी शरीर-सुखसे अलग होना चाहिए परन्तु अधिकांश भागमें मनुष्य समस्त दिवस शरीर की इन्द्रियोंके सुखमें ही फँसा रहता है और इसीलिए प्रवृत्ति करता है।

रावणके दस माथे थे अर्थात् पाँच ज्ञानेन्द्रिय और पाँच कर्मेन्द्रिय। इन दस इन्द्रियोंके सुखके लिए ही जो सतत प्रयत्न करता है वह रावण जैसा है। इन्द्रियोंका सुख तो पशु और पक्षी भी भोगते हैं। मनुष्यको मिठाई खानेमें जो मजा आता है, वह मजा तो घास खानेमें बैलको भी आता है। दोनोंका मजा समान है। कितने ही गरीब लोगोंको दुःख होता है कि हमको कुछ सुख नहीं मिलता। बंगलेमें रहनेवाले और मोटरमें फिरनेवाले बहुत सुख भोगते हैं। कोई विलासी गृहस्थ संसारका सुख बहुत भोगता हो, उसे देखकर तुम किसी दिन हृदय नहीं जलाना।

कोई मनुष्य संसारका सुख भोगता हो, उसका चिंतन नही करना। इस मनुष्यकी बुद्धि तो बिगडी हुई है। इसको सच्चे सुखको खबर नही और इसीसे यह भुलावेमें पड़ा है परन्तु अनेक बार लोग ऐसा समझते हैं कि यह जैसा सुख भोगता है, ऐसा मुझको नहीं मिलता। इन श्रीमत लोगोको मोटरमे फिरते हुए बहुत मजा आता है। बगलेमे रहता है, पलंगपर मखमलकी गद्दीमें लोटता है, इसलिए बहुत सुखी हैं। इन श्रीमानको पलगमे लोटते हुए जो मजा आता हैं वैसा मजा तो गधेको धूलपर लोटनेमे भी आता हैं। दोनोका मजा समान है।

संसारके सभी मजे परिणाममें मोटी सजा देनेवाले होते हैं। यह जीव अनेक जन्मोसे तथा इस जन्ममें भी ससारकी सभी मौजोका अनुभव कर लेता है परन्तु फिर भी इसे शान्ति मिलती नही। यह जीव अनेक बार अनेक प्रकारकी योनियोमे पुरुष बना है तथा स्त्री भी बना है। हजारो जन्मसे यह इन्द्रिय-सुख भोगता है परन्तु इसकी तृप्ति होती नही। तृप्ति भोगसे होती भी नही। तृप्ति तो त्यागसे ही होती है। संसारके विषयमें आनन्द खोजनेवाला अधिक दुखी होता जाता है। आज सुख देनेवाला पदार्थ कल दुखदायी सिद्ध होता है। जो सुख देता है वह दु.ख भी देता है।

संयोगसे सुख होता है परन्तु क्या यह संयोग स्थिर रहता है? संयोग तो वियोगके लिए ही होता है। संयोगमें जितना सुख होता है उससे हजार गुना दु ख वियोगमें होता है। एक दैवी जीव था। जन्मसे ही उसको प्रभु-भक्तिका रंग लग गया। घरमें पुष्कल संपत्ति थी। उसका त्याग करके वह वृन्दावनमे जाकर रहा। श्रीराधाकृष्णकी सतत उपासना करता, सेवा-स्मरणमे देहानुसंधान भूल जाता। सर्व इन्द्रियोका संयम रखकर सतत भक्ति करता था। मुखपर दिव्य तेज विलसता था।

एक बार कोई राजा-रानी फिरते-फिरते वहाँ आ पहुँचे। उस समय संत तो वृक्ष-के नीचे बैठकर मानसिक सेवा कर रहे थे, परमात्माको मनसे रिझाते थे। चौबीस-पच्चीस वर्षकी अवस्था थी। मुखके ऊपर दिव्य कांति थी।

रानीको आश्चर्य हुआ कि इतना सुन्दर युवक! उघाड़े शरीर बैठा है। सुन्दर कायाको घिस डाला हैं। युवावस्थाको व्यर्थ कर रहा है। इसकी अपेक्षा तो यह बेचारा संसार-सुख भोगे तो बहुत सुखी रहेगा।

राजाको भी यह बहुत अच्छा लगा। उसने बहुत आग्रह किया—मेरे राजमहल-मे चलो। तुमको संसारके सुखकी कुछ खबर ही नहीं है। मेरी इच्छा है कि तुम संसारका सुख भोगो। आजसे तुम मेरे भाई हो।

अत्यन्त आग्रह करके राजा संतको राजमहलमें ले आया। उसको नहला-धुलाकर सुन्दर कपडे पहनाये। सुन्दर भोजन कराया। महात्मा पहुँचा हुआ था। अन्दरसे भक्तिका पक्का रंग लगा हुआ था। पागल जैसा रहता था। राजा इसको समझाता था—तुम ससारमे आए हो परन्तु कोई सुख भोगते नही। तुमको कुछ भी खबर नही। तुम यहींपर सुखसे रहो।

महात्माने कहा—संसारमें सुख भोगनेवाले को दुःख भी होता है। मुझे सुख-दुःख कुछ भी नही चाहिए। राजाने कहा—तुमको कुछ भी दुःख नहीं होना है। रानीजीकी बहिनके साथ तुम्हारा विवाह कर दूंगा। अपना आधा राज्य तुमको दे दूंगा। फिर तुमको क्या दुःख है ?

महात्माने पूछा—यह विवाह करनेकी बात तुम करते हो परन्तु सन्तान होगी उसका क्या होगा ?

राजाने कहा—उनका कुछ नही, उनकी तुमको तनिक भी चिन्ता नहीं करनी। आधा राज्य तुमको मिल जाएगा, फिर किस बातकी चिन्ता है ? फिर भी तुमको ऐसा लगता हो तो उनके पालन-पोषण करनेकी जवाबदारी मेरी, फिर और क्या ? तुम्हारे स्वरूपको देखकर मुझे अतिशय आनन्द होता है। संसारमें आए हो तो सुख भोगो। कुछ भी कष्ट नही आवेगा। मैं समस्त व्यवस्था कर दूंगा।

महात्माने कहा—तुम सब व्यवस्था तो कर दोगे, सुख भी दे दोगे, परन्तु सन्तान होनेके बाद कदाचित् मर जाये तो ? सन्तान मर जाये उसका दुःख तुमको होगा कि मुझको ? राजाको कहना पड़ा कि वह दुख तो मुझको नही, तुमको ही होना है। महात्मा ने कहा—तो फिर मुझे ऐसा सुख चाहिए नहीं। मैं वृन्दावनमें श्रीराधाजीकी सेवा करता था, यही योग्य था। महात्मा फिर राजमहलको छोड़कर चलता बना।

जो सुख भोगता है उसको इच्छासे अथवा अनिच्छासे दुःख भोगना ही पड़ता है। संसारमें आनन्द कहाँ है ? संसार तो दुःखका समुद्र है। संसारमें प्रत्येक जीव दुःखी है। कबीरजी ने कहा है।

जो देखा सो दुखिया देखा तन धरि सुखी न देखा।
उदै अस्त की बात कहत हौं, ताकर करौ बिबेका॥
बाट बाट सब कोई दुखिया, क्या गिरही, बैरागी।

× × ×

जोगी दुखिया, जंगम दुखिया, तापस को दुख दूना।
आसा तृष्णा सब घर ब्यापैं, कोई महल नहीं सूना॥

संसारके सुखकी आशा-तृष्णा जीवको बहुत दुःखी करती है। भोगकी भूख ही मोटा दुःख है। शान्ति उसकी कायम रहती है, जिसका मन प्रभुके चरणोमे रहता है। शान्ति उसकी कायम रहती है जो अन्दरसे ईश्वरका अनुसन्धान रखता है। ईश्वर-से जो दूर है उसकी शान्ति कैसी ? कुछ भी सुख भोगना नही है ऐसा दृढ निश्चय करके संसारके विषय-भोगोसे विमुख रहनेवालेको ही सच्चा आनन्द, सच्ची शान्ति प्राप्त होती है। आत्माके स्वरूपमें जो स्थित रहता है उसे ही स्थिर शान्ति और आनन्दका अनुभव मिलता है।

एक-एक इन्द्रियके सुखमें जिसका मन फँसा हुआ है, जो आँखके सुखके लिए, कानके सुखके लिए, जीभके सुखके लिए—प्रत्येक इन्द्रियके सुखके लिए प्रवृत्ति करता है वह रावण है। ऐसे मनुष्यको सच्चे सुखकी खबर ही नही।

रावण ज्ञानी था। फिर भी उसकी गणना राक्षसोमें हुई है। ब्राह्मण होने पर भी गिनती राक्षसोमें हुई है। रावण ब्राह्मण था, तपस्वी था, ज्ञानी था परन्तु इन्द्रिय-सुखमें ही जिसका मन फँसा हुआ है, वह ब्राह्मण हो या ज्ञानी हो, राक्षस जैसा ही है। वेदान्तकी और ब्रह्मज्ञानकी बातें करे और प्रेम संसारके विषयके साथ करे, वह राक्षस जैसा ही है। रावण रजोगुणका स्वरूप है।

विभीषण सत्वगुणके स्वरूप हैं। रावणकी लंकामें सतोगुणी केवल विभीषण ही थे। विभीषणकी कथा आगे आएगी। श्रीहनुमानजी महाराज समस्त लंका जलाते हैं परन्तु विभीषणका घर छोड़ देते हैं। विभीषण रामजीके परम भक्त हैं, सत्वगुणके मूर्तिमन्त स्वरूप हैं। राक्षस-वंशमें जन्म होने पर भी विभीषणजी परमात्माकी भक्तिमें और धर्म-पालनमे जीवन व्यतीत करते हैं। धर्मके लिए इन्होने घरका, कुटुम्बका, सगे स्नेहियोंका और वतनका भी त्याग कर दिया। विभीषणजी सत्वगुणी होनेपर भी सत्वगुणका तनिक भी अभिमान नही करते। ये तो स्वयंको अधम ही मानते हैं। रामजीकी शरणमे गये उस समय भी विभीषण यही कहते हैं।

निसिचर बंस जनम सुरत्राता।
सहज पापप्रिय तामसदेहा। जथा उलूकहि तम पर नेहा॥

× × ×

मैं निसिचर अति अधम सुभाऊ। सुभ आचरनु कीन्ह नहि काऊ॥

महाराज ! मैं तो राक्षसवंश मे जन्मा हूँ। स्वभावसे पापी हूँ, अधम हूँ, तामसी हूँ। कभी कोई सत्कर्म नही किया। मुझसे कोई साधन नही हुआ। विभीषणजी रातदिन रामजीका स्मरण करते हैं, फिर भी कहते है मैं कोई साधन नही करता। विभीषणमें

अतिशय दैन्य है, अभिमानका लेश भी नहीं। ऐसे तो रावणने भी कोई कम तपश्चर्या नही की थी परन्तु उसके पीछे दीनता नहीं थी, भरपूर अहंकार था और भोगकी लालसा थी। अभिमान तपको, भक्तिको छिन्न-भिन्न करता है।

कितने ही लोग जो भक्ति करते हैं, सेवापूजा करते है, वे ऐसा समझते हैं कि दूसरे लोगोंकी अपेक्षा मै बहुत श्रेष्ठ हूं। जगतमें बहुत जीव बहिर्मुख हैं, दुष्ट हैं। मैं तो बहुत भक्ति करता हूं। मैं श्रेष्ठ हूं। क्या धर्म भी तुच्छ समझनेके लिए है? क्या भक्ति किसी को छोटा समझनेके लिए है? धर्म और भक्तिका लक्ष्य तो यह है कि मनसे सबमें भगवद्भाव दृढ़ करना। सबमें भगवानके दर्शन करनेके लिए धर्म और भक्ति हैं। धर्म और भक्ति हृदयमें दीनता लानेके लिए हैं। जहाँ नजर जाये वहाँ ईश्वरका दर्शन हो, इसका नाम दीनता। प्रभुको प्रसन्न करनेका साधन दीनता है।

न हि साधनसंपत्या हरिस्तुष्यति कस्यचित्।
भक्तानां दैन्यमेवैकं हरितोषणसाधनम्॥

भगवानको राजी करनेके लिए भक्तोंका एकमात्र साधन दैन्य ही है। प्रभुको दीनता अच्छी लगती है! मानव जब तक हृदय से दीन बनता नहीं, तब तक वह ईश्वर-को अच्छा नही लगता। अनेक वार मनुष्य दुःखमें तो दीन बनता है परन्तु वही मानव यदि बहुत सुखी हो तो अभिमानी भी हो जाता है। दुःखमें दैन्य आवे यह दैन्य सच्चा नहीं। सुखमें दैन्य आवे सो ही सच्चा दैन्य है।

भक्तिका सिंहासन दीनता है। किसी भी जीवको छोटा गिने उसकी भगवद्भक्ति सिद्ध नहीं होती। किसी भी जीवको छोटा मानोगे तो हृदय शुद्ध नहीं रहेगा। जीव खूब नम्र बने और साधन करे तो वह ईश्वरको अच्छा लगता है। ईश्वर उसके ऊपर कृपा करते हैं। जो निःसाधन बनकर भक्ति करता है वह श्रेष्ठ है। निःसाधन बनना अर्थात् साधन बहुत करना, फिर भी मेरे हाथोंसे कुछ भी नही होता, ऐसा मानना, निरभिमानी बनना। अनेक बार ऐसा होता है कि मनुष्य साधन करता है अर्थात् इसमें साधनका अभिमान बढ़ने लगता है और इस कारण उसका पतन हो जाता है।

स्वधर्मका पालन करनेवाला, परमात्माकी भक्ति करनेवाला कोई ऐसा मानता हो कि मैं श्रेष्ठ हूं और दूसरा छोटा है—यह उसकी भूल है। साधन किए पीछे 'मैं' अर्थात् अहम् बढ़े, किसी जीवके लिए मनमें कुभाव आवे, किसी जीवका थोड़ा भी तिरस्कार करनेकी वृत्ति आवे तो ठाकुरजीको इसकी सेवा अच्छी नहीं लगती।

एक गृहस्थके घर दो पुत्र थे। एक पुत्र सुबह चार बजे उठकर, स्नानकर, सेवा-पूजा करता। दूसरे पुत्रका संग ठीक नहीं था, वह सुबह छह-सात बजे उठता। सबेरे चार

बजे उठकर सेवा-पूजा करनेवाला पुत्र मनमें ठसक रखता कि मैं बहुत चतुर हूँ। एक दिन इसने बापसे कहा कि तुम्हारे दूसरे पुत्रको क्या कुछ अक्ल है ? वह अब भी खाटपर सो रहा है। कैसा मूर्ख है ! बापने कहा—भले वह मूर्ख होगा परन्तु किसीकी निन्दा नही करता। खाटपर सोता रहता है उतना ठीक है। तू जागकर इसकी निन्दा करता है, इसके लिए मनमें कुभाव रखता है।

किसी व्यक्तिका पाप मनमें नही रखना। नही तो उस व्यक्तिके प्रति कुभाव रहेगा। दूसरेके पापोंका विचार करना भी पाप है। दूसरेके पापको सुनते ही उसको विवेकरूपी अग्निसे जला डालो। जगतके किसी जीवके प्रति कुभाव रखना, ईश्वरके प्रति कुभाव रखने जैसा है। सब भूतोंमेसे, पदार्थोमेसे द्रोहका त्याग करो। जीव तो क्या परंतु किसी जड़ वस्तुसे भी द्रोह न करो। सबके प्रति सम-भाव रक्खो।

सबमें सद्भाव—समभाव रखनेवालेके मनमे अभिमान नही आता, काम भी नही आता। विकार-वासना और अहकारका विनाश करनेके लिए यह श्रेष्ठ उपाय है। सबमें सद्भाव रक्खे, सबमे ईश्वरका भाव रक्खे और साधन करे तो वह सफल होता है। सबमे ईश्वरका भाव रखना, अनेकमें एकके दर्शन करना तप है, यही ज्ञान है। ज्ञानीका लक्षण यह है कि उससे किसीको भी उद्वेग और अशाति न हो।

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।

जो प्रतिक्षण सावधान है वह सत है। वैष्णव, संत सब कालमें सावधान होते है कि मेरे व्यवहारसे किसीको दुःख न हो। किसीके भी लिए कुभाव रखना अर्थात् मनको अतिशय बिगाड़ना। भक्तिमे मन मुख्य है। किसी भी जीव अथवा जड़ वस्तुके लिए मनमे कुभाव आवे तो भक्तिमें आनन्द नही आता। सत्वगुण ठीक है, परन्तु सत्वगुणका अभिमान बहुत खराब है। अनेक बार सत्वगुणियोंका भी पतन होता है।

इन तीन गुणोका जो उल्लंघन करे उसको अत्रि कहते हैं। अत्रि वह है जो निर्गुण ब्रह्म स्वरूपमें ही स्थिर रहता है। तमोगुणका नाश रजोगुणसे होता है, और रजोगुणका नाश सत्वगुणसे। गीताजीमें प्रभुने आज्ञा की है—

रजस्तमश्चाभिभूय सत्वं भवति भारत।

सत्कर्मसे सत्वगुण बढ़ता है। सत्वगुण शुद्ध आहार, शुद्ध आचार और शुद्ध विचारसे बढ़ता है। सत्वगुण बढ़ता है संयमसे सदाचारसे। सत्वगुण बढ़नेसे ज्ञान, स्फुरण पाता है फिर भी सत्वगुण भी बन्धन करता है। इसमें थोड़ा अहंभाव रह जाता है। सत्वगुणमें जो अभिमान आता है, उस अभिमानका नाश सतत भगवद्-स्मरणसे करना है।

सत्वगुणको सत्वगुणसे मारना है। सत्वगुणीको ऐसा नही लगना चाहिए कि मैं सत्कर्म करता हूँ, मैं भक्ति करता हूँ। भक्ति सहज होनी चाहिए। भक्ति करनेका उसको व्यसन होना चाहिए। जब इसमें ऐसा भाव आता है कि दूसरा भक्ति करता है कि नहीं, यह देखनेकी मुझको क्या जरूरत है, तभी अभिमान मरता है। अन्तमें सत्वगुणका भी त्याग करना है और निर्गुणी होना है। अत्रि ऋषि त्रिगुणातीत थे।

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।

तीन गुणोंको लाँघकर निर्गुण ब्राह्मी स्थितिमें जो कायम रहता है, परमात्माको जा सतत मनसे मिलता है, वही अत्रि ऋषि है। त्रिगुणातीत ब्रह्मस्वरूपको जो प्राप्त हुआ है वह अत्रि है।

बड़े-बडे ज्ञानी पुरुष जगतको जब बोध देते हैं तब ज्ञानमुद्रा करते हैं। अँगूठेकी पासकी अंगुलीको तर्जनी कहते हैं। अँगूठा और तर्जनी—इन दोनोंका सयोग इसको ज्ञानमुद्रा कहते हैं। भगवान् श्रीशङ्कराचार्य स्वामीने ज्ञानमुद्राका वर्णन दक्षिणामूर्ति-स्तोत्रमें किया है—

स्वात्मानं प्रकटीकरोति भजतां यो मद्रया मुद्रया।
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्री दक्षिणामूर्तये।

अँगूठा ब्रह्म है। छिगुनी अँगुली सत्वगुण है। अनामिका अँगुली ही रजोगुण है। सबसे बडी जो अँगुली है वह तमोगुण है। तर्जनी जीव-स्वरूप है, जीवकी प्रतीक है। जोवमें अभिमान रहता है और इसीसे संस्कृत भाषामें इसको तर्जनी कहते हैं। पीछेके वैरको याद करके किसीका बदला लेनेकी इच्छा हो तो छिगुनी अँगुली आगे नही जाएगी, अँगूठा भी आगे नही जाएगा। तर्जनी ही आगे जाएगी और ऐसा कहेगा कि समय आने दो, पीछे इसको मैं देख लूंगा। इस अँगुलीमें अभिमान है। इस अँगुलीसे तिलक नही होता है। माला करने बैठो तो इस अँगुलीका मालासे स्पर्श नही होना चाहिये। इस अँगुलीमें अभिमान है। यह जीवस्वरूप है।

यह जीव तीन गुणोंमें मिलता है। इस जीवमें सत्वगुण बहुत कम है। सुबह घंटे-दो-घटे भगवद्-सेवा स्मरण करनेमें थोड़ा हृदय पिघलता है तब जीव सत्वगुणमे होता है। बाकी समस्त दिवस यह अधिकांश भागमें रजोगुणमे होता है। रात्रिके समय तमोगुणमें जाता है। इस प्रकार यह जीव तीन गुणोंमें मिला है।

इन तीन गुणोंका सम्बन्ध छोड़कर, अँगूठा जो ब्रह्मका प्रतीक है उस ब्रह्मके साथ मनसे सतत सम्बन्ध जोड़े, ब्रह्म-सम्बन्धको सतत टिकाये रक्खे वह अत्रि बनता है। ब्रह्म-

सम्बन्ध करना बहुत कठिन नहीं, ब्रह्म-सम्बन्धको टिकाये रखना कठिन है। तुम जितने समय कथा सुनो, जितने समय प्रभुके नामका जप करो, उतने समय तो कुछ अंशमें तुम्हारा ब्रह्म-सम्बन्ध होता है परन्तु यहाँसे घर गये पीछे जीमने बैठोगे तब तुम्हारा ब्रह्म-सम्बन्ध रहेगा कि नहीं इसकी शंका है। कितने ही तो कढीमे ही तन्मय हो जाते हैं और कढ़ीके साथ ही सम्बन्ध करते हैं। कढ़ी पीनेमें इनको घूंट-घूंटपर ब्रह्मानन्द मिलता है।

भोजन करना बुरा नही परन्तु भोजन करते समय भगवानको भूलोगे तो वह अन्न मनको बिगाड़ता है। भगवानका स्मरण करते-करते भोजन करो। भगवानको ऐसा कहकर भोजन करो कि यह अपना प्रसाद, कृपा करके आपने ही मुझको दिया है। इस अन्नके पेटमें जानेके बाद मेरा मन न बिगडे, मैं सतत आपकी भक्ति करूँ।

ब्रह्म-सम्बन्धको सतत टिकाये रक्खो। सावधान रहो कि फिर से मायाके साथ सम्बन्ध न हो। ब्रह्म-सम्बन्ध होता है तब बन्धन टूटता है परन्तु ब्रह्म-सम्बन्ध छोड़कर मायाके साथ सम्बन्ध करे तो फिरसे बन्धन आता है। सतत ब्रह्म-सम्बन्ध करोगे तो तुम भी ब्रह्मरूप होगे। अपने ठाकुरजीके साथ एकरूप होकर सेवा करो। ईश्वरके साथ एक होना, ईश्वर जैसा बनना, इसका आशय क्या ? अपनी इच्छाको भगवद्-इच्छामें मिला देना, अपनी इच्छा और भगवद्-इच्छाको एक बना देना। घरमे लाभ हो तो भी भगवद्-इच्छा, और नुकसान हो तो भी भगवद्-इच्छा। सुख आवे तो भी भगवद्-इच्छा और दुःख आवे तो भी भगवद्-इच्छा। मान मिले तो भी भगवद्-इच्छा और अपमान मिले तो भी भगवद्-इच्छा। लोग प्रशंसा करते हैं तो भी भगवद्-इच्छा और निंदा करते हैं तो भी भगवद्-इच्छा।

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकांचनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिंदात्मसंस्तुतिः॥
मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।
सर्वारंभपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते॥

मनुष्यकी धारणासे कुछ नहीं होता। धारणा तो धनीकी होती है। जो कुछ बनता है, वह भगवद्-इच्छासे बनता हैं। ऐसा समझकर जीवनमें संभव हो, वहाँ तक विपरीत प्रसंगोमें भी जो धैर्य रखता है जो स्वस्थ रहता है, जिसमे विषमता अथवा कुभाव नही आता, वह गुणातीत कहलाता है। भगवद्इच्छामें जीव जब स्वयंकी इच्छाको मिला देता है, तभी वह भक्तिमार्गमें आगे बढता है, ईश्वरके साथ एकरूप होता है। ईश्वरके साथ जो सतत एकरूप रहता है, वही अत्रि है।

जीव अत्रि हो तो इसकी बुद्धि अनसूया बने। असूया-रहित बुद्धि अनसूया। अत्रिऋषिकी पत्नीका नाम था अनसूया। जिसमें असूया नहीं, ईर्ष्या नहीं, मत्सर नहीं उसको अनसूया कहते हैं।

किसीकी प्रशंसा सुनकर थोड़ा भी डाह हो, यह असूया है। किसीको बहुत सुख मिले, संपत्ति मिले, इसको देखकर मनमें थोड़ा भी ईर्ष्याभाव जागे उसको असूया कहते हैं। असूयासे बुद्धि बिगड़ती है। सतत ऐसा भाव रक्खो कि किसी भी जीवका दुःख, मेरा दुःख है, इसका सुख मेरा सुख है। किसीको भी सुखी देखकर राजी होओ परन्तु किसीको दुःखी देखकर राजी होना नही।

बुद्धिका बड़े-से-बड़ा दोष असूया है, मत्सर है। दूसरेको अच्छा देखकर जले, यही असूया है, यही मत्सर है। मत्सर करनेवालेका यह लोक तथा परलोक दोनों बिगड़ते हैं। असूया, ईश्वरके मार्गमें जानेमें खूब विघ्न करती है। असूया ज्ञान-शक्तिके विकासमें अवरोधक है। बुद्धिमें जब तक असूया होगी तब तक ईश्वरका चिंतन नहीं कर सकोगे। मनमें असूया नही रखना। मनमें रहनेवाली असूयाको निकालोगे तो परमात्माका स्वरूप मनमें आवेगा। सबमें भगवानके दर्शन करे, सबमें ब्रह्मका दर्शन करे, तब ही ईश्वरके साथ सतत सम्बन्ध टिकेगा। बुद्धि अनसूया बनती है तब वह ईश्वरके साथ सतत सम्बन्ध टिका सकती है।

मनुष्यकी उन्नतिमें विघ्न करनेवाला मत्सर है। मत्सरकी ही बहिन असूया है। असूयामें और मत्सरमे कुछ विशेष अंतर नही। एक बार एक ब्राह्मण राजाके दरबारमें माँगने गया। उसने राजासे कहा—मैं गरीब ब्राह्मण हूँ। आपको योग्य लगे वह कुछ दो।

राजाको देनेकी इच्छा तो हुई परन्तु उसने पहले इस ब्राह्मणकी थोड़ी परीक्षा करनेका विचार किया। राजाने ब्राह्मणसे कहा—महाराज! मैं पूछूं, जवाब दोगे? ब्राह्मणने कहा—महाराज! मैं कुछ पढ़ा-लिखा तो नहीं परन्तु मैं अपने भगवानको याद करके जो वे सुझावेंगे वह जवाब दे दूंगा।

राजाने पूछा—महाराज! तुम्हारे सब शरीरपर बाल दीखते है परन्तु तुम्हारी हथेलीमे बाल क्यों नही? इसका जवाब दो। सब शरीरपर बाल हैं और हथेलीमें बाल क्यों नही? इसका जवाब क्या देवें? ब्राह्मण बहुत पढ़ा नही था परन्तु भोला था। उसने भगवानका स्मरण किया। उन भगवानने ही उसको बुद्धि दी।

ब्राह्मणने जवाब दिया कि महाराज! मैं रोज दान लेता रहता हूँ, इसीसे मेरी हथेलीमे बाल नही रहे? राजाने कहा—तुम दान लेते हो परन्तु मैं कुछ दान लेता नहीं। मेरी हथेलीमें बाल क्यों नहीं?

ब्राह्मणने प्रभुका स्मरण करके जवाब दिया कि तुम रोज दान देते हो इससे तुम्हारी हथेलीमें बाल नही रहे ! तुम दान देते हो इस कारण तुम्हारी हथेलीमे बाल नही है और मै दान लेता हूँ इसलिए मेरी हथेलीमें बाल नही।

राजाने कहा—महाराज ! तुम बोलते हो वह ठीक है परन्तु इस दरबारमे जितने पुरुष बैठे हैं, तथा ये सब सिपाही लोग हैं—ये लोग न तो दान देते हैं न दान लेते हैं। तो फिर इनकी हथेलीमें बाल क्यों नही हैं ?

ब्राह्मणने कहा—यह तो ऐसा है महाराज ! कि तुम मुझको दान देते हो वह इन लोगोंसे देखा जाता नही, सहन होता नही। वे बैठे हाथके ऊपर हाथ घिसा करते हैं। इसलिए उनकी हथेलीमें बाल नही हैं।

मनुष्यकी बुद्धिमे जब तक असूया है—भाईके लिए, मित्रके लिए, अरे, जगतके किसी भी जीवके प्रति जब तक असूया है—तब तक बुद्धिमें भगवत्-प्रवेश नही होता। अनसूयाके साथ अत्रिका सम्बन्ध होता है। जीव अत्रि बने तो उसकी बुद्धि अनसूया बनती है।

अनसूया महान् पतिव्रता थी। ब्रह्मा, विष्णु और शङ्करको उन्होने बालक बना लिया था, यह सब कथा बहुत दिव्य है। एक समय देवर्षि नारदजी कैलाशपर पधारे। शिवजी उस समय समाधिमे बैठे थे। पार्वतीजीने नारदजीका सत्कार किया। उनका पूजन किया और पीछे प्रसाद दिया। तब नारदजीने कहा—आज तुम्हारे हाथका प्रसाद मिला। यह लड्डू बहुत सरस है परन्तु लड्डू तो अनसूयाके घरका जैसा श्रेष्ठ होता है वैसा लड्डू अभी तक दूसरी जगह मैंने नही देखा।

पार्वतीजीने पूछा—यह अनसूया भला कौन है ? नारदजीने कहा—तुम पतिव्रता हो परन्तु अनसूया महान् पतिव्रता हैं। पार्वतीजीके मनमे ईर्ष्या उत्पन्न हुई कि मुझसे अनसूया अधिक है ? शिवजी समाधिमे-से जगे तो पार्वतीजीने वन्दन किया। घरका आदमी बहुत वन्दन करे, बहुत सेवा करे तो जानना कि कुछ गड्ढेमे उतरनेकी तैयारी है। शिवजीने पूछा—देवी ! क्या है ?

पार्वतीजीने नारदजीकी सब कथा सुनानेके बाद आगे कहा—किसी भी प्रकारसे अनसूयाके पातिव्रत्यका भंग हो, ऐसा करो। शिवजीने कहा—देवी ! इसमें कल्याण नही होगा।

परन्तु पार्वतीजीने बहुत हठ किया। तब शिवजीने कहा—यदि तुम्हारी बहुत इच्छा है तो प्रयत्न करूँगा। इधर नारदजी कैलाससे निकलकर वैकुण्ठको गये। वहाँ

लक्ष्मीजीसे मिले तब लक्ष्मीजीने पूछा—आज क्या बात है, जिससे इतने अधिक आनन्द-में हो रहे हो ?

नारदजीने ठसकसे कहा—बैकुण्ठकी महिमा पहले थी परन्तु इस समय तो अनसूयाका आश्रम छोड़कर दूसरे स्थानपर कहीं जानेकी इच्छा होती नहीं। मैं वहींसे आया, हूँ इसलिए बहुत आनन्दमें हूँ।

लक्ष्मीजीको आश्चर्य हुआ। अनसूया कौन है ?—ऐसा पूछा। नारजीने कहा—अरे, अनसूयाको कौन नहीं पहचानता ? वे तो महान् पतिव्रता हैं। न भूतो न भविष्यति। लक्ष्मीजीने विष्णुसे कहा—आप ऐसा कुछ कीजिए कि जिससे अनसूयाके पातिव्रत्यका भंग हो।

नारदजी वहाँसे ब्रह्माणीके पास गये। उनकी बात सुनकर ब्रह्माणीको भी ईर्ष्या हुई। उन्होंने ब्रह्मासे विनती की।

पार्वतीजी अर्थात बुद्धि। बुद्धि अर्थात् विद्यामें मत्सर है। लक्ष्मीजी अर्थात् द्रव्य-में मत्सर है। ब्रह्माणी अर्थात रजोगुणमें मत्सर है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश इकट्ठे मिलकर चित्रकूटमें अनसूया के आश्रममें गये। भिक्षान्नं देहि, कहकर खड़े रहे। अनसूया भिक्षा देने लगीं, उस समय देवोंने कहा—तुम नग्न होकर भिक्षा दो तो हम लेंगे।

अनसूया विचारमें पड़ीं कि नग्न होकर भिक्षा दूं तो मेरा पातिव्रत्य भंग होगा, भिक्षा न दूं तो द्वार पर आए अतिथि वापिस जाते हैं। दोनों प्रकारसे पाप लगता है।

प्रभु नग्न होकर भिक्षा देनेकी माँग करते हैं। इसका अर्थ कि वैष्णव मुझको वासना-रहित होकर भिक्षा दे। ईश्वरको सब वस्तु वासना-रहित होकर, निष्काम होकर अर्पण करनी होती हैं। अनसूयाके मनमें कोई वासना नहीं थी। मनमें जो सूक्ष्म वासना भी रही होती तो ये तीनों देवता आते ही नहीं।

अनसूयाने ध्यान किया और तीनों देवताओंके ऊपर जल छिड़का। उससे तीनों ही बालक बन गये। पातिव्रत्यमें ऐसी शक्ति है। बहुत समय होनेपर देवता वापिस नही लौटे, तब पार्वतीजी, लक्ष्मीजी और ब्रह्माणीजी अपने पतिदेवोंको ढूंढ़ने निकलीं। तीनों, नारदजीसे मिली। देवियोंने नारदजीसे पूछा कि तुमको कुछ खबर है कि हमारे पतिदेव कहाँ हैं ? नारदजीने कहा—पहले यह बतलाओ कि कौन बड़ा है—तुम कि अनसूया ?

देवियोंने स्वीकार किया कि अनसूया बड़ी हैं। पीछे नारदजीने कहा—मैंने सुना है कि तुम्हारे पतिदेव बालक बने हुए हैं और अनसूयाके घरमें हैं। देवियाँ घबराने लगीं कि वहाँ जायें और कदाचित् अनसूयाजी शाप दे दें तो ?

नारदजीने कहा—तुम भले ही मत्सर करो परन्तु अनसूयाजी मत्सर करनेवाली नही। अनसूयाजी तुम्हारे प्रति सद्भाव रखेंगी। देवियाँ चित्रकूटमे अत्रि ऋषिके आश्रममें गयी। पीछे तो अनसूयाजीने देवोंसे प्रतिज्ञा करायी कि किसी पतिव्रताको कभी त्रास देना नही। उसके बाद तीनो बालकोंके ऊपर जल छिडका। तीनो महादेव प्रगट हुए। उन्होने अनसूयाजीसे कहा—तुम्हारे आँगनमें हम बालक बनकर खेले हैं। ऐसा सुख तुमको स्थिर रूपसे देते हैं। इन तीनों देवताओंका तेज एकत्रित हुआ और गुरु दत्तात्रेय अत्रि अनसूयाजी-के यहाँ पुत्र-रूपमें प्रगट हुये।

अत्रि ऋषि अनसूयाजीके साथ गंगा-किनारे चित्रकूटमे परमात्माकी आराधना करते थे। वही श्रीसीतारामजी लक्ष्मणजीके साथ पधारे। परमानन्द हुआ। अत्रि-ऋषि उठकर खड़े हुए। उन्होंने श्रीराम, लक्ष्मण, जानकीजीका स्वागत किया।

वन्यैः फलैः कृतातिथ्यमुपविष्टं रघूत्तमम्।
सीतां च लक्ष्मणं चैव संतुष्टो वाक्यमब्रवीत्॥

कंदमूल-फल अर्पण किये। फिर अत्यन्त प्रसन्नतासे ऋषिने रामचन्द्रजीसे कहा—आज मेरी तपश्चर्या सफल हुई। तुम्हारे दर्शनसे ही आँख सफल होती है। श्रीराम-दर्शन बिना आँख सफल होती नही। आँख जगतको देखनेके लिए नही। आँख श्रीरामका दर्शन करनेके लिए हैं। आपने मेरे ऊपर बहुत कृपा की। आज तक तो मैं अन्दर आपके दर्शन करता था परन्तु आज तो मैं आपको प्रत्यक्ष बाहर देख रहा हूँ।

ज्ञानमार्गमे भगवान चर्मचक्षुओंसे दीखते नही। जो आँखोंको देखनेकी शक्ति देते हैं. उनको आँखें देख सकती नही। जो सबके द्रष्टा हैं वे दृश्य बन सकते नही। ज्ञानी पुरुष अन्दरकी आँखोसे भगवानको देखते हैं। तुमको स्वप्न दीखता है। क्या वह चर्म-चक्षुओसे दीखता है? स्वप्न जो दीखता है वह अन्दरकी आँखोसे दीखता है। ज्ञानी महापुरुष भगवानको ज्ञान-चक्षुसे देखते हैं।

परन्तु भक्तिमें ऐसी शक्ति है कि भगवान चर्म-चक्षुसे भी दीख जाते हैं। भक्ति द्रष्टाको दृश्य बना सकती है। प्रभु-प्रेमकी पराकाष्ठापर पहुँची हुई गोपियाँ उघडी आँखोसे ब्रह्म-चिंतन कर सकी थी और चर्म-चक्षुसे प्रत्यक्ष दर्शन पा सकी थी। जिसको उघडी आँखोसे जगत दिखायी पड़ता है उसे ब्रह्मका चिंतन करनेके लिए आँख बन्द करनी पडती हैं—चर्म-चक्षु बन्द करने पड़ते हैं और वह अन्दरकी आँखसे—ज्ञान-चक्षुसे परमात्माकी अपरोक्षानुभूति करनेका प्रयत्न करता है परन्तु प्रेम-रूपा गोपियोको तो खुली आँखोसे भगवानके दर्शन होते थे।

अत्रि ऋषिने रामचन्द्रजीसे कहा—आज मैं आपके प्रत्यक्ष दर्शन कर रहा हूँ। आज मैं कृतार्थ हुआ हूँ। आपका मंगलमय स्वरूप मेरे हृदयमें स्थिर हो, ऐसी कृपा करो। पीछे कहा—अन्दर अनसूयाजी बैठी है। महान् तपस्विनी हैं, पतिव्रता वयोवृद्धा हैं। श्रीसीता-जी अन्दर जायँ ऐसी मेरी इच्छा है।

अनसूयाजीके दर्शन करने श्रीसीताजी अन्दर पधारीं। अनसूया माताको वंदन किया। अनसूयाजीने आशीर्वाद दिया। श्रीसीताजीकी बहुत-बहुत प्रशंसा करते हुए कहा—रामजीके पीछे-पीछे तुम वनमें आयीं, यह बहुत ठीक किया। स्त्रीका यह धर्म है। पति उसके लिए परमात्मा हैं।

जिस स्त्रीको पतिमें परमात्मा दीखते नही उसको किसी मन्दिरमें या मूर्तिमें भगवानके दर्शन नहीं होते। जो स्त्री पतिकी आज्ञा न माने उसकी भक्ति व्यर्थ जाती है। पतिको जिमानेके पहले जो स्त्री जीमती है उसको बहुत पाप लगता है। पति भोजन न करे तो पतिव्रता स्त्रीका धर्म है कि भोजन नहीं करे। पतिके घरमें सुख-संपत्ति हो और स्त्री पतिके साथ प्रेम करे इसमें कुछ आश्चर्य नही परन्तु घरमे खानेको न हो, पहननेको कपड़ेकी पूर्ति न हो और पतिसे प्रेम करे वह महान् पतिव्रता है। कितनी ही तो जरा दुःख आ पड़े तो पतिका अपमान करती हैं कि तुझमें सामर्थ्य नही थी तो फिर विवाहका क्या काम था ? मेरी जिंदगी बिगाड़नेकी क्या आवश्यकता है ? पति वृद्ध हो, रोगी हो, मूर्ख हो, धनहीन हो, अंधा, बहरा अथवा अपंग हो, क्रोधी हो, अतिदरिद्र हो फिर भी पतिमे परमेश्वरका भाव रखकर उसकी सेवा करे, वह पत्नी धन्य है। पतिमें भगवद्भाव रखकर पतिदेवकी सेवा करनेवाली स्त्रीके यह लोक और परलोक दोनों सुधरते हैं।

अनसूयाजीने श्रीसीताजीको पतिव्रता-धर्म समझाया। पतिवृता स्त्री परमात्माको भी वशमें कर सकती है। पतिवृताके तीन भेद बताये हैं।

उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं॥
मध्यम परपति देखइ कैसे। भ्राता पिता पुत्र निज जैसे॥
धर्म बिचारि समुझि कुल रहई। सो निकिष्ट त्रिय श्रुति अस कहई॥

उत्तम पतिव्रता स्त्री वह है जो स्वप्नमें भी किसी पुरुषका विचार नही करती। मध्यम पतिव्रता स्त्री परपुरुषको पिता, भाई अथवा पुत्रके समान देखती है। तीसरे प्रकार-की जो निकृष्ट पतिव्रता स्त्री है वह स्वयंके धर्म और कुलकी मर्यादाको समझकर पतिनिष्ठ रहती है।

पीछे तो अनसूयाने श्रीसीताजीको दो दिव्य कुण्डल दिये और दो दिव्य वस्त्र दिये। ये ऐसे दिव्य वस्त्र थे कि जो किसी दिन भी नहीं बिगड़ते, स्नान करनेपर भी गीले

नही होते। भविष्यके लिये ही यह तैयारी थी। पीछे जब श्रीसीताजी लंकामें अशोक वनमे थी तब ये वस्त्र इनको बहुत उपयोगी सिद्ध हुए। दिव्य वस्त्र और दिव्य अंगराग अनसूयाने श्रीसीताजीको अर्पण किये।

भागवतमें चीर-हरणके प्रसंगमें भगवानने भी गोपियोंको दिव्य वस्त्र दिये हैं। सखियोके साथ गोपियाँ जलमें खेलती हैं तब भी वस्त्र नहीं भीगते। सगे सम्बन्धियोके साथ ससारमें रहती हैं परन्तु संसारमें लिप्त होती नही। लौकिक वासनारूपी वस्त्रका हरण करके परमात्माने अलौकिक वासनाका दान किया है। प्रभुमे पूर्ण आसक्ति ही अलौकिक वासना है। अनसूयाने श्रीसीताजीको अनेक आशीर्वाद दिये।

पातिव्रत्यं पुरस्कृत्य राममन्वेहि जानकि।
कुशली राघवो यातु त्वया सह पुनर्गृहम्॥

जानकी! तुम पातिव्रत्यका पालन करती हुई सदा रामजीकी छाया बनकर रहना। रघुनाथजी तुम्हारे साथ कुशल-क्षेमसे घर वापिस पधारेंगे, ऐसा मेरे अन्तरका आशीर्वाद है। श्रीरामचन्द्रजीने अत्रि ऋषिसे कहा कि महाराज! हमको रास्ता बताओ। मार्गदर्शन देनेवाले कोई ऋषिकुमार हमको साथ दो।

मार्गप्रदर्शनार्थाय शिष्यानाज्ञप्तुमर्हसि।

तब अत्रि ऋषिने हँसकर जवाब दिया कि जगतको मार्गदर्शन आप कराते हैं।

सर्वस्य मार्गद्रष्टा त्वं तव को मार्गदर्शकः।

तुमको कौन मार्गदर्शन करा सकता है? ऋषिने चार शिष्योंको आज्ञा की। वे शिष्य अत्रि ऋषिके सेवक थे। वे रघुनाथजीको रास्ता बतानेके लिए साथमे चले। रास्तेमें विराध नामका एक राक्षस आया। उस राक्षसका प्रभुने वध किया। विराधका उद्धार हुआ। पूर्वजन्ममें वह एक विद्याधर था और दुर्वासा ऋषिके शापसे राक्षस हुआ था। रामजीके द्वारा उद्धार होते समय विद्याधरने रामजीकी सुन्दर स्तुति की।

इतः परं त्वच्चरणारविन्दयोः स्मृतिः सदामेऽस्तु भवोपशान्तये।
त्वन्नामसङ्कीर्तनमेव वाणी करोतु मे कर्णपुटं त्वदीयम्॥
कथामृतं पातु करद्वयं ते पादारविन्दार्चनमेव कुर्यात्।
शिरश्च ते पादयुगप्रणामं करोतु नित्यं भवदीयमेवम्॥

आपके चरणारविन्दका स्मरण संसार-बंधनको दूर करता है। आप मेरे ऊपर कृपा करो। अबसे आपके चरणारविन्दका मुझको निरन्तर स्मरण रहे, मेरी वाणी सदा-सर्वदा आपका नाम-संकीर्तन करती रहे, मेरे कान हमेशा आपकी कथारूपी अमृतका पान करते रहें, मेरे हाथ आपके चरण-कमलोंकी पूजा करते रहें और मेरा मस्तक सदा आपके चरण-कमलोंमें प्रणाम करता रहे।

(४६)

ऋषियोंका सत्सङ्ग

विराधका उद्धार करके प्रभु शरभंग ऋषिके आश्रममें पधारे। शरभंग ऋषिको बहुत आनन्द हुआ। शरभंग ऋषि विचारने लगे— मैं अनन्य भावसे भगवान श्रीरामचन्द्रजी-का नित्य स्मरण करता था और इसीलिए आज दयालु परमात्मा मेरे आँगनमें पधारे हैं। ऋषिने श्रीराम-लक्ष्मण-जानकीका स्वागत किया। प्रभुकी प्रार्थना करते हुए कहा—

सीता अनुज समेत प्रभु नील जलद तनु स्याम।
मम हियँ बसहु निरन्तर सगुण रूप श्रीराम॥

शरभंग ऋषिने परमात्माके दर्शन और स्तुति करते-करते पाचभौतिक देहका त्याग किया और ब्रह्मलोकमें चले गये।

वहाँसे श्रीराम-लक्ष्मण-जानकीजी सुतीक्ष्ण ऋषिके आश्रममें पधारे। सुतीक्ष्ण ऋषिने दिव्य तपश्चर्याका आदर्श बताया है। सुतीक्ष्ण ऋषि अगस्त्य महर्षिके अनन्य सेवक थे, शिष्य थे, श्रीराम-नामका सतत जप करते थे। जिसकी बुद्धि तीक्ष्ण होती है उसको भगवान दर्शन देनेके लिए घर आते हैं। यह बुद्धि जब तक शरीरका चिन्तन करती है, शरीर-सुखका विचार करती है, तब तक वह स्थूल है। तीक्ष्ण बुद्धि उसकी है जो किसी भी दिन इस स्थूल शरीरका चिन्तन नहीं करता। बुद्धिसे काम हटे, बुद्धि निष्काम बने, तब यह सुतीक्ष्ण बनती है, सूक्ष्म बनती है, और तब वह परमात्माको खींचकर लाती है।

सूक्ष्म बुद्धिसे ही परमात्माका अनुभव होता है। सकाम बुद्धिसे प्रभुका अनुभव नहीं होता। महापुरुष निष्काम बुद्धिसे परमात्माका साक्षात्कार करते हैं। अरे, सूर्यका

प्रकाश सर्वत्र होता है, परन्तु सूर्यके प्रकाशमे-से अग्नि किसी ठिकाने उत्पन्न नही हो सकती परन्तु यह प्रकाश सूर्यकान्तमणि द्वारा कपासके ऊपर पड़े तो वह अग्निको जिस प्रकार प्रगट करता है, उसी प्रकार सर्वव्यापक परमात्मा निष्काम बुद्धि द्वारा प्रगट होते हैं। सुतीक्ष्ण ऋषि परमात्माका सतत ध्यान करते थे। इनकी भक्ति अलौकिक थी।

अविरल प्रेम भगति मुनि पाई।

प्रभुको पधारे हुए देखकर सुतीक्ष्ण ऋषिको अतिशय आनन्द हुआ। प्रभुका स्वागत किया। सुन्दर स्तुति करते हुए कहा—

त्वन्मन्त्रजाप्यहमनन्तगुणाप्रमेय
सीतापते शिवविरिञ्चिसमाश्रिताङ्घ्रे।
संसारसिन्धुतरणामलपोतपाद
रामाभिराम सततं तव दासदासः॥
मामद्य सर्वजगतामविगोचरस्त्वं
त्वन्मायया सुतकलत्रगृहान्धकूपे।
मग्नं निरीक्ष्य मलपुद्गलपिण्डमोह-
पाशानुबद्धहृदयं स्वयमागतोसि॥

× × ×

जानन्तु राम तव रूपमशेषदेश-
कालाद्युपाधिरहितं घनचित्प्रकाशम्।
प्रत्यक्षतोऽद्य मम गोचरमेतदेव
रूपं विभातु हृदये न परं विकाङ्क्षे॥

हे सीतापते! हे अनन्तगुण परमात्मा! मैं नित्य निरंतर आपका ही जप करता हूँ। हे श्रीराम! शिव और ब्रह्मा आपके चरणोके आश्रित हैं। आपके चरण संसार-सागर पार करनेके लिये नाव हैं। हे नाथ! मैं तो आपके दासोका भी दास हूँ। महाराज! आपने मेरे ऊपर बहुत कृपा की। मैं तो माया-मोहसे घिरा हुआ हूँ, इस संसाररूपी अँधेरे कुएँमें पड़ा हुआ हूँ, मल-मूत्रसे भरे हुए इस शरीरके मोहमें फंसा हुआ हूँ परन्तु मेरी इस करुण दशामें-से मुझको उबारनेके लिए आपने आज मेरे ऊपर कृपा की और आप इन्द्रियोका विषय न होने पर भी आज मुझको दर्शन देने यहाँ पधारे हो। हे राम! कितने ही लोग कहते हैं कि आप देश-कालकी उपाधिसे रहित हो, अरूप हो, चिद्घन-प्रकाशरूप हो परन्तु मेरे हृदयमें तो आज आपने जिस स्वरूपमें यहाँ मुझको प्रत्यक्ष दर्शन दिये हैं, वह

ही आपका स्वरूप सदा-सर्वदा अंकित होकर रहे। आजसे अन्य किसी स्वरूपकी मुझको इच्छा नहीं हो। महाराज! थोड़ी अधिक कृपा करो। थोड़े दिन आप यहींपर विराजो।

अति आनन्द हुआ। सुतीक्ष्ण ऋषिके आश्रममें श्रीरघुनाथजी विराजने लगे। सुतीक्ष्ण ऋषि समझ गये थे कि प्रभु यहाँसे अगस्त्य ऋषिके आश्रममें पधारनेवाले हैं। सुतीक्ष्ण ऋषि विचारने लगे कि अगस्त्यजी मेरे गुरु हैं। मुझे उनको गुरुदक्षिणा देनी है।

रामायण अनेक हैं। अनेक रामायणोंमें अनेक कथा आती हैं। एक रामायणमें कथा आती है कि सुतीक्ष्णजीने अगस्त्य ऋषिके आश्रममें रहकर वेदशास्त्रका अध्ययन किया था। विद्या परिपूर्ण हुए पीछे इन्होंने अगस्त्य ऋषिसे कहा—महाराज! आप कुछ दक्षिणा माँगो।

तब अगस्त्य ऋषिने कहा—बेटा! दक्षिणा लेनेकी इच्छासे मैंने तुझको विद्या नहीं दी। मेरे आश्रममें अनेकानेक झाड़ हैं जो मुझको फल देते हैं। पासमें सरिता है। वह निर्मल शीतल जल देती है। मुझको सन्तोष है। मेरी कोई इच्छा नही। मुझे कुछ नहीं लेना।

जिसको परमात्माका अनुभव हुआ है, उसके जीवनमें संतोष और शान्ति होती है। लक्ष्मी मिलनेके बाद सन्तोष नहीं होता, भले पीछे लाख मिलें या करोड़ मिले। लक्ष्मीपति जिसको मिलते हैं उसको शान्ति होती है। प्रभुका सतत ध्यान किए बिना लक्ष्मीपति नही मिलते। सतत ध्यान तब हो सके जब लक्ष्मीका मोह छूटे। प्रभुका जो सतत ध्यान करते हैं वे अधिकांश भागमें गरीब ही रहते हैं। समस्त दिन ध्यान करे वह लक्ष्मीजीको ठीक नहीं लगता। सतत भक्ति करनेसे लक्ष्मीजीको ऐसा लगता है कि यह मुझे नारायणके साथ एकान्तमें पाँच मिनट भी बात करने नही देता। लक्ष्मीजी नाराज होकर उसका त्याग कर देती हैं। सम्पूर्ण दिवस भक्ति करे उसे लक्ष्मीपति मिलते हैं, लक्ष्मीजी नहीं मिलतीं। ऐसे भक्तको लक्ष्मीजीकी आवश्यकता भी नहीं।

अगस्त्य ऋषिने सुतीक्ष्णजीसे कहा—बेटा! मुझे कुछ भी आवश्यकता नहीं। सुतीक्ष्णजीने कहा—महाराज! आपको कुछ लेना भी नहीं है परन्तु मुझे दक्षिणा देनी ही है। कुछ भी दक्षिणा दिए बिना गुरुका ऋण किस प्रकार चुक सकता है? इसलिए आप कुछ दक्षिणा माँगो। आप माँगोगे वही दूँगा।

अगस्त्यजी बोले—जो माँगूँगा वह देगा? भाई! तुझमें शक्ति हो तो तू मुझे श्रीरामजीके दर्शन करा दे। यही मेरी दक्षिणा है। मुझे अन्य कुछ भी माँगना नहीं है। सुतीक्ष्णजी विचारमें पड़े—गुरुजी तो दक्षिणामें परमात्माके दर्शन माँग रहे हैं। यह किस

प्रकार संभव हो ? परन्तु उस दक्षिणाके लिए ना किस प्रकार की जाये ? 'अच्छी बात है' ऐसा कहकर उस समय तो सुतीक्ष्णजीने गुरुजीसे विदा ले-ली।

अब आज जब सुतीक्ष्णजी जान गये कि मेरे आश्रमसे रामजी अगस्त्य ऋषिके आश्रममें पधारनेवाले हैं, तब उन्होंने विचार किया कि मैं साथ-साथ जाऊँ और गुरुजीसे कहूँ कि तुम्हारी दक्षिणा देनेके लिए आया हूँ। श्रीराम अगस्त्य ऋषिके आश्रममें तो पधारने-वाले ही हैं। मुझे दक्षिणा चुकानी है, इसलिए मेरा काम भी बन जाएगा।

सुतीक्ष्णजीने भगवानसे प्रार्थना की कि प्रभु ! मुझे भी साथ ले चलो। प्रभुने कहा—हम किसीको साथ नहीं ले जाते। सुतीक्ष्णजीने कहा—मुझे आपकी सेवामें साथ ही रहना है।

रामजी तो समझते ही थे कि ये सेवाके लिए नहीं चल रहे। ये तो गुरुदक्षिणा चुकानेके लिए चलना चाहते हैं। इनकी बहुत इच्छा है तो भले ही चलें। प्रभुने सम्मति दे दी। उससे सुतीक्ष्णजीको अतिशय आनन्द हुआ।

वाल्मीकिजीने वर्णन किया है कि शरभंग, सुतीक्ष्ण आदि एक-एक ऋषिके आश्रममें थोड़े-थोड़े दिन निवास करते हुए रघुनाथजी आगे पधारते हैं। अब अगस्त्य ऋषि-के आश्रममें जानेको निकले। सुतीक्ष्णजीके पीछे श्रीराम-लक्ष्मण-जानकीजी चलने लगे। सब अगस्त्य ऋषिके आश्रम जा पहुँचे। श्रीराम-लक्ष्मण-जानकीजी आश्रमके बाहर विराजने लगे और सुतीक्ष्णजी दौड़ते हुए आश्रममें गये। अन्दर जाकर गुरुदेवको साष्टाङ्ग वन्दन किया।

उस समय अगस्त्य महर्षि शिष्योंको श्रीराम-मन्त्रका अर्थ समझा रहे थे।

रेफोऽग्निरहमेवोक्तो विष्णुः सोमो म उच्यते।
आवयोर्मध्यगो ब्रह्मा रविराकार उच्यते॥

"र"—यह अग्निका बीज है। "अ" कार यह सूर्यका बीज है। "म" कार यह चन्द्रका बीज है। अग्नि जलानेका काम करती है, इसलिए श्रीराम-नाममें "र" का सतत अनुसन्धान रखनेवालेके पाप भस्म होते हैं। सूर्यनारायण अर्थात् "अ" कार बुद्धिको शुद्ध करते हैं और चन्द्र—मकार शीतलता देते हैं, शान्ति देते हैं, आनन्द देते हैं। ओंकार-की जो महिमा है, ओम्कारमें जो दिव्य-शक्ति है, वही महिमा, वही दिव्य शक्ति राम-नाममें है।

सुतीक्ष्णजीने साष्टांग वन्दन करके कहा—गुरुजी ! आप जिन रामके मन्त्रका अर्थ शिष्योंको समझा रहे हो, आपने जो गुरुदक्षिणा मुझसे माँगी थी उन श्रीरामजीको

प्रत्यक्ष यहीं ले आया हूँ। गुरुजी ! आपने तो गुरुदक्षिणामें केवल रामजीके दर्शन करानेको कहा था परन्तु घने वर्ष हो गये, मैं दक्षिणा चुका नहीं सका था और उसका व्याज बढ़ गया था, इसलिए आज श्रीसीताजी और लक्ष्मणजीको भी साथ ले आया हूँ। आपने श्रीसीताजीके दर्शनोंकी दक्षिणा तो मांगी नहीं थी। आपने तो श्रीराम-दर्शनकी ही मांग की थी। मैं आपको श्रीसीतारामजीके दर्शन कराता हूँ। साथ में लक्ष्मणजीके भी दर्शन कराता हूँ। आज आपका ऋण व्याज के साथ चुक गया।

अगस्त्यजीने सुना कि श्रीराम, लक्ष्मण-जानकीजी पधारे हैं, तो उनको अतिशय आनन्द हुआ। दौड़ते हुए बाहर आए। रघुनाथजी-लक्ष्मणजी और जानकीजीने वन्दन किया। ऋषिने आशीर्वाद दिया। सबको आश्रममें ले गये।

अगस्त्यजीने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—तुम्हारी कृपा जिस जीवके ऊपर होती है, वही तुमको जान सकता है और जिसे तुम्हारा बराबर ज्ञान हो गया है, जो तुमको बराबर जानता है, वह फिर एकक्षण भी तुमसे अलग रह सकता नहीं।

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहिं तुम्हहि होइ जाई ॥

परमात्माकी कृपाके बिना प्रभुका ज्ञान होता नहीं परन्तु एकबार जो परमात्मा-को बराबर जान ले, अनुभव कर ले, वह भगवानसे अलग होता नहीं। परमात्माके स्वरूप-का ज्ञान अद्वैतभावसे भरा हुआ है। परमात्माका ज्ञान हो जाय तो ज्ञाता और ज्ञेय एक बन जाते हैं।

ज्ञातृज्ञानज्ञेयभेदः परे नात्मनि विद्यते।

सेवा-स्मरण करनेसे तन्मयता होती है, ईश्वरका अपरोक्ष साक्षात्कार होता है और उससे वह जीव ईश्वरमें मिल जाता है। श्रुति वर्णन करती है कि उस समय 'मैं' 'तू' रहता नहीं। वृत्ति ब्रह्माकार बन जाती है। सबमें ईश्वरको देखनेवाला स्वयं ईश्वर बन जाता है।

ज्ञानमार्गमें भेदका निषेध किया गया है। ज्ञानी पुरुष ऐसा मानते हैं कि एककी ही सत्ता सर्वत्र है। जो भेद भासता है वह मायाके कारण भासता है। भक्तिमार्गमें भक्तिसे भेदका नाश करनेमें आता है। अतिशय भक्ति बढ़ती है, उस समय भक्त और भगवान—दोनों मिलकर एक हो जाते हैं। भक्ति भेदका विनाश करती है, ज्ञान भेदका निषेध करता है। भक्तिमें आरम्भमें भेद है परन्तु पीछे भक्तिद्वारा भेदका विनाश होता है—भक्त और भगवान एक बन जाते हैं। भक्त और ज्ञानी—दोनोंका ध्येय एक ही है, उपासना भिन्न है।

ज्ञानमें दृश्यका निषेध करना पड़ता है। जबकि भक्त कहता है—जो दृश्य है वह भी भगवत्स्वरूप है। ज्ञान-मार्गमें द्रष्टाकी उपासना है, भक्ति-मार्गमे दृश्यकी उपासना है। ज्ञानी जगत्को असत्य मानता है, भागवतजन जगतको सत्य मानते हैं। वैष्णव अनेकमें एक वस्तुको देखते हैं। अनेकमें एक वस्तु देखना ही भक्ति है, एकमें अनेक देखना ही ज्ञान है। ज्ञान-मार्गमें और भक्ति-मार्गमें शब्दमें थोड़ा फर्क है, थोड़ा भेद है परन्तु तत्त्वमें भेद नहीं। दोनोंकी निष्ठा एक ही है परन्तु मार्ग अलग-अलग हैं। दोनोंका लक्ष्य एक ही है, साधन अलग-अलग हैं।

वेदान्तका विवर्तवाद है और वैष्णवोंका परिणामवाद है। वेदान्ती विकृत ब्रह्म, परिणामवादमें मानते हैं, वैष्णव अविकृत ब्रह्म परिणामवादमें मानते है। विवर्तवाद कहता है—दूधका दही होता है परन्तु दही, दूध नहीं।

तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म क्षीरे सर्पिरिवाखिले ॥

वैष्णव कहते हैं कि जगतका ईश्वरमेंसे जो परिणाम हुआ है वह दूधमेसे दहीकी तरह नहीं परन्तु सोनेकी शलाकामेसे सुवर्णका आभूषण बनता है, उस प्रकारसे है। सोनेकी शलाका थी, तब भी वह स्वर्ण था और उसका आभूषण बन गया तब भी सुवर्ण ही रहा।

जगद्गुरु श्रीशङ्कराचार्य स्वामी कहते हैं कि ब्रह्म सत्य है, जगत मिथ्या है, असत्य है, मृगजाल जैसा है। अधिष्ठाता—ब्रह्म सत्य होनेसे यह जगत सत्यस्वरूप भासता है। वास्तविक रीतिसे ईश्वर एक ही हैं। एक ही परमात्मा अनेक स्वरूप धारण करते हैं, परन्तु वे स्वरूप सत्य नहीं। अविद्यासे जगत सत्यरूप भासता है।

जगद्विलक्षणं ब्रह्म ब्रह्मणोऽन्यन्न किंचन।
ब्रह्मान्यद्भाति चेन्मिथ्या यथा मरुमरीचिका ॥

श्रीमहाप्रभुजी कहते हैं कि जगत ब्रह्मका परिणाम है और इसीसे सत्य है। ब्रह्म निर्विकार रहकर भी ब्रह्मका परिणाम कर सकता है। यह जो कुछ दीखता है वह ईश्वरका परिणाम है। ब्रह्म ही अनेक स्वरूपोंमें परिणमित होता है। ब्रह्म सत्य है और ब्रह्मके स्वरूप भी सत्य हैं।

ज्ञानी परमहंस जगतको मिथ्यारूपमें देखते हैं, भागवत परमहंस जगतको श्रीसीताराम-स्वरूपमें—सियाराममय—देखते हैं। ज्ञानी पुरुष जगतको मिथ्या मानकर जगतके पदार्थोंके साथ प्रेम नहीं करते, केवल ईश्वरके साथ प्रेम करते हैं। तब वैष्णव जगतको ब्रह्मरूप मानकर जगतके प्रत्येक पदार्थको ब्रह्मरूपमें निहारते हैं और उनके साथ प्रेम करते हैं।

ज्ञानीकी नजर स्त्रीके ऊपर पड़ेगी तो वह मानेगा कि यह हाड़-चामकी पुतली है, मल-मूत्रसे भरी हुई है। इसमें क्या सार है? ऐसा मानकर ज्ञानी स्वयंकी दृष्टि वहाँसे हटा लेगा। ज्ञानी स्त्रीका तिरस्कार करेंगे। वैष्णव स्त्रीको सद्भावसे देखेंगे। वैष्णवकी नजर किसी स्त्रीके ऊपर पड़ेगी तो उसको ऐसा लगेगा कि यह साक्षात् लक्ष्मी है और ऐसा मानकर उसको नमन करेगा।

अगस्त्य महर्षि ज्ञानी भक्त थे। श्रीरामचन्द्रजीने वहाँ अस्थिका भारी समूह देखा। उनको आश्चर्य हुआ। उन्होंने ऋषियोंसे पूछा कि यह क्या है? तब ऋषियोंने कहा—राक्षस ऋषियोंको मार डालते हैं। ये हाड़ सब ऋषियोंके हैं। यह देखकर और सुनकर मालिककी आँखें भीनी हो गयीं।

प्रतिज्ञामकरोद्रामो वधायाशेषरक्षसाम् ॥

श्रीरामचन्द्रजी हाथ ऊँचे करके प्रतिज्ञा करते हुए बोले कि मैं सब राक्षसोंका विनाश करूँगा। इन राक्षसोंने ऋषियोंको मारा है। अगस्त्यजीने कहा—पासमें गोदावरीके किनारे पंचवटी है। इस पंचवटीमें आप निवास करो।

जहि राघव भूभारभूतं राक्षसमण्डलम् ।
यदर्थमवतीर्णोसि मायया मनुजाकृतिः ॥

खर, दूषण, त्रिशिरा इत्यादि अनेक राक्षसोंका भी वहाँ निवास है। आप इन राक्षसोंका विनाश करो। पंचवटीमें आपका अवतार-कार्य सिद्ध होगा।

(४७)

पंचवटी-निवास

श्रीराम-लक्ष्मण-जानकीजी गोदावरी गंगाके किनारे आए। गोदावरीमे श्रीरामजीने स्नान किया। इस स्थलको लोग रामकुण्ड कहते हैं। प्रभुने पंचवटीमें मुकाम किया। गोदावरीके तटपर आश्रम बनाया। पंचवटी अर्थात् पाँच प्राण। पाँच प्राणोमे परमात्मा विराजते है।

एक बार श्रीसीतारामजी विराजे हुए थे। उस समय इन्द्रका पुत्र जयंत, कौवेका स्वरूप धारण करके आया, माताजीके चरणोमें चोच मारने लगा। श्रीरामजीकी सेवामे होनेसे माताजी कुछ नहीं बोली। जयंतने चरणके ऊपर प्रहार चालू रखा। चरणमे-से रुधिर निकलने लगा। रामजी सचेत हुए। रुधिर देखा। आश्चर्य हुआ कि यह कौन है? मेरा अपराध कर रहा है! रघुनाथजीने उसे सजा देनेके लिए अस्त्र छोड़ दिया।

जयंत भागा। वह रक्षाके लिए अनेक देवताओके पास गया। अनेक ठिकाने जाकर उसने क्षमा माँगी। भय और शोकसे व्याकुल हो गया।

ब्रह्मधाम सिवपुर सब लोका। फिरा श्रमित व्याकुल भय सोका॥
काहूँ बैठन कहा न ओही। राखि को सकइ राम कर द्रोही॥

किसीने उसको आश्रय नही दिया। जो रामजीके साथ विरोध करता है, उसे कौन घरमें रख सकता है? इसके पिताजीने भी रक्षा नही की। यह जहाँ जाता वहीं उसके पीछे-पीछे रामजीका छोड़ा हुआ ब्रह्मास्त्र जाता था। फिर जयंत बहुत घबड़ाया। अन्तमें नारदजीके कहनेसे यह रामजीकी शरणमें गया। आकर चरणोमे गिर पडा। परन्तु वह भय-से इतना अधिक व्याकुल हो रहा था कि उसे होश रहा नही, इस कारण इसके पैर रामजीकी तरफ और मस्तक श्रीसीताजीकी तरफ रहा। जयंतने अपराध तो श्रीसीताजीका किया था, फिर भी माताजीको इसके ऊपर दया आ गयी। इससे उन्होंने मस्तक उठाकर रामजीके चरणोमें रख दिया।

तच्छिला: योजयामास पादयोस्तस्य जानकी॥

जयंतकी शरणागति माताजीने सिद्ध की। प्रभुको यह ठीक नही लगा। अपराधीको सजा देनी थी। श्रीसीताजी रामचन्द्रजीको मनाने लगीं—आप इसको क्षमा कीजिए।

श्रीरामचन्द्रजीने कहा—यह क्षमा करने लायक नही। इसका अपराध असह्य है। श्रीसीताजीने कहा—यह लायक नही, परन्तु आपतो लायक हो।

श्रीसीता माँ बहुत दयालु थीं। प्रभुने पीछे जयंतकी एक आँख फोड़ दी। परमात्मा सजा तो देते है, परन्तु दया रखकर सजा करते हैं। जयंतकी दोनों आँखें नहीं फोड़ीं, एक ही फोड़ी।

भागवतमें कथा आती है कि वामन भगवानने भी शुक्राचार्यकी एक ही आँख फोड़ी थी। वामन भगवानने राजा बलि से तीन पग पृथ्वी मांगी। राजा बलि दानका संकल्प करनेको तैयार हो गये थे। राजा बलिके गुरु शुक्राचार्य एकटक नजरसे वामन भगवानको निहार रहे थे। वे समझ गये कि यह कोई साधारण ब्राह्मण नहीं, परमात्मा ही हैं। देवताओंका कार्य करनेके लिए वामन रूपमें प्रगट हुए है। उन्होंने राजा बलिको सावधान करते हुए कहा—गृहस्थको विवेकसे दान देना चाहिए। ऐसा दान नहीं देना चाहिये, जिसको दिए पीछे घरके लोग दुःखी हों। इनको तीन पग दोगे तो तुमको खड़े रहनेकी भी जगह नही रहेगी।

परन्तु राजा बलि नहीं माना। तब शुक्राचार्यने दानका संकल्प करानेकी मनाही की, इसलिए राजा बलिके कहनेसे वामनजी दानका संकल्प कराने लगे। उन्होंने राजा बलि-से कहा—इस झारीमेंसे जल पधराओ। इस दानका संकल्प न हो सके, इसलिए शुक्राचार्यने सूक्ष्मरूपमें झारीमें प्रवेश किया। वे झारीकी टोंटीमें घुसकर बैठ गये। झारीमेंसे जल बाहर नहीं आया। वामन महाराज समझ गये। इन्होंने दर्भकी एक सलाई लेकर झारीकी टोंटीमें डाली, शुक्राचार्यकी एक आँख फोड़ डाली।

इस प्रकार भगवान्‌ने शुक्राचार्यको बोध दिया कि तुम ज्ञानी तो हो परन्तु जगतको दो आंखोंसे देखते हो। इससे तुम्हारा ज्ञान बह जाता है। समता न आवे तबतक ब्रह्मज्ञान नहीं होता, और होता है तो वह टिकता नहीं। जगतको एक ही आँखसे देखो। दो आँखोंसे—भेदभावसे देखोगे तो आँख बिगड़ेगी, मन बिगड़ेगा। एक नजरसे जगतको देखो तब समता है, दो-से देखो तब विषमता है। भाव एक समान ही रखो। क्रियामें विषमता कदाचित् हो पर भावमें विषमता नहीं होनी चाहिये। जो दो प्रकारकी आँखोंसे जगतको देखता है, उसका जीवन बिगड़ता है। यह काला है, यह गोरा है, यह जवान है, यह बुड्ढा है—जिसकी आँखोंमें ऐसी विषमता है, उसका मन बिगड़ता है।

रामजीने जयंतकी एक ही आँख फोड़ी, उसको अंधा नहीं किया। प्रभुने ज्ञान दिया कि बेटा! तू सबको एक ही आँखसे देखनेकी टेव डाल। जो सबको एक ही आँखसे देखता है, उसका जीवन मंगलमय होता है। सबको एक ही आँखसे देखो।

सबको एक ही आँखसे देखना, इसका क्या तात्पर्य है? एक ही ईश्वर सबमें हैं, ऐसी दृष्टि रखकर सबको देखना। अनेकोंमें एक ही भगवान रहते हैं, ऐसे भावसे देखे

उसको समान भाव कहते हैं। एक ही ईश्वर अनेक रूपोमें क्रीड़ा करते हैं, इस प्रकार देखे उसको समता कहते हैं।

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥

यह मेरा और यह दूसरेका—मामका पांडवाश्चैव—ऐसी दृष्टिसे मत देखो। किसीके साथ कपट न करो। यह सब भगवानके अंशस्वरूप हैं, ऐसा मानो।

इस गांवके लोग तो बहुत अच्छे दीखते हैं, पीछेसे कोई आता है तो स्थान न होते हुए भी उसके लिए स्थान देते हैं। कितने ही तो हाथ ऊँचा करके बुला भी लेते हैं कि यहाँ आओ, यहाँ आओ, जगह छोड रखी है। कथामें जो दूसरोको स्थान दे देते हैं उनको ऊपर जानेपर बहुत अच्छी जगह मिलती है परन्तु होता ऐसा है कि अपना सम्बन्धी आवे तो ही स्थान देते हैं। पराया यदि कोई आवे तो पग फैलाकर बैठ जाते हैं। मनुष्य दो आँखोंसे जगतको देखता है। यह मेरा है और यह पराया है।

एक ही आँखसे जगतको देखनेका अभ्यास डालो। ज्ञानी महापुरुष एक ही आँखसे जगतको देखते हैं। सबमें श्रीराम ही रमण करते हैं। ऐसी निष्ठा रक्खो कि मैं जिस देवताकी भक्ति करता हूँ, जिस देवताकी पूजा करता हूँ, वह देव मेरे घरमें सिंहासन पर ही बैठा है, ऐसा नही, वह सबमें विराजता है। उसीकी सत्तासे इस जगतकी सत्ता है। सर्वव्यापक परमात्माका अनुभव करनेवालेका ही मन बिगड़ नही पाता।

परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीकी लीला मानव-समाजका कल्याण करनेके लिए ही है। रामचन्द्रजी रावणको मारनेके लिये नही आए। श्रीराम तो कालके भी काल हैं। रामजीके संकल्पमात्रसे ही रावण न रहता। रावणको मारनेके लिए प्रभुका प्राकटच नही। रामजी मानव-समाजको धर्मका शिक्षण देनेके लिए प्रगट हुए हैं। मनुष्यका आचरण रामजीका जैसा होना चाहिए।

श्रीराम, वनमें रहकर तप करते थे। वनवासके विना वासनाका विनाश होता नही। मनुष्य-समाजमे रहकर मानव होना सरल है, परन्तु विलासी लोगो के संगमें रहकर वासनाका विनाश करवा अशक्य है। वासनाका विनाश करनेके लिये थोड़े दिन वनमें रहना आवश्यक है। ग्रन्थोंमें ऐसा वर्णन आया है कि गृहस्थका घर भोगभूमि है। गृहस्थके घरमें कामके परमाणु रहते हैं। गृहस्थके घरमे पाप रहता है। गृहस्थ घरमें विषमता भी करता है। विषमता किए बिना मन मानता ही नही। विषमतामें-से ही वैरका जन्म होता है। विषमतामे से ही पाप उत्पन्न होता है। सबमें समभाव रखनेसे ही मन शान्त रहता है।

वासनाका विनाश वनमें रहकर तप करनेसे ही होता है। बारह मास नहीं तो बारह महीनोंमें कम-से-कम आधा महीना वनमें रहनेकी आवश्यकता है। सरकार भी तो छुट्टी देती है परन्तु छुट्टी मिलने पर कितनों ही की आदत और अधिक बिगड़ जाती है, आलस्यमें, आराममें, मौज-शौकमें छुट्टियाँ व्यतीत करते हैं। तुमको जब छुट्टी मिले तब गंगा-किनारे, यमुना-किनारे, श्रीनर्मदाकिनारे—किसी सात्विकभूमिमें रहकर साधन करो। घरमें भक्ति भले हो, परन्तु घरमें भक्ति बढ़ती नही। घरमें कामके परमाणु फिरते हैं। ये भक्तिमें बहुत विघ्न करते हैं।

मार्कण्डेय पुराणमें रामायणकी कथा है। महर्षि व्यासकी ऐसी पद्धति है कि प्रत्येक पुराणमें कुछ निमित्तसे ये श्रीराम-चरितका वर्णन करते हैं। कोई पुराण ऐसा नही जिसमें व्यासजीने राम-कथा नहीं की। प्रत्येक पुराणमें श्रीराम-कथा आती है। कहीं कुछ थोड़ा हेर-फेर भी होता है। मार्कण्डेय पुराणमें व्यासजीने वर्णन किया है—वनमें फिरते थे उस समय एक बार श्रीराम-लक्ष्मण-जानकीजी एक क्षेत्रमें प्रवेश कर रहे थे। छोटो-सी पगडंडी थी। यह ऐसी भूमि थी कि इसमें आनेके बाद लक्ष्मणजीके मनमें थोड़ा कुभाव आया!

लक्ष्मणजीके मनमें विचार आया कि कैकेयीने रामको वनवास दिया है, मुझे नहीं। मुझे वनमें भटकनेकी क्या आवश्यकता है। मैं राजाका पुत्र हूँ। मैं राज-महलमें रहकर सुख क्यों नहीं भोगूँ? मैं भाईके पीछे-पीछे चलता हूँ परन्तु बड़े भाईका मेरे ऊपर प्रेम कहाँ है? भाभी तो बैठी रहती हैं। सारा काम तो मुझे ही करना पड़ता है। इन लोगोंका मेरे ऊपर तनिक भी प्रेम नहीं। इन्होंने किसी दिन मुझसे पूछा भी नही कि लक्ष्मण! तूने भोजन किया या नहीं? तूने निद्रा ली या नहीं? इनके पीछे मुझे वनमें भटकनेकी क्या आवश्यकता है?

लक्ष्मणजीके मनमें श्रीसीतारामजीके प्रति ऐसा कुभाव आया। श्रीरामचन्द्रजी जान गये कि लक्ष्मणका मन आज थोड़ा बिगड़ा हुआ है। श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीको आज्ञा की, लक्ष्मण! इस क्षेत्रकी थोड़ी-सी मिट्टी तो ले लो। लक्ष्मणजीने थोड़ी मिट्टी ली, उसकी पोटली बनाकर अपने साथ रख ली।

यह मिट्टी जब-जब लक्ष्मणजीके पास होती तब-तब लक्ष्मणजीके मनमें बुरा विचार आता था कि रामजीकी सेवा करनेकी मुझे क्या आवश्यकता है? मैं घर लौट जाऊँ अर्थात् अयोध्या चला जाऊँ। मेरी पत्नी उर्मिला वहाँ है। मैं वहाँ सुख भोगूँ। रामजीके पीछे-पीछे भटकनेसे मुझे कोई लाभ नहीं।

लक्ष्मणजी स्नान करते समय पोटलीको अलग रख देते थे। स्नान करते ही मन पवित्र हो जाता और उस समय उनके मनमें ऐसा विचार आता कि श्रीसीतारामजी तो

प्रत्यक्ष परमात्मा हैं। मुझे इनकी सेवाका लाभ मिला है। मुझे संसारका कोई सुख भोगना नहीं। मुझे अपना जीवन सफल करना है।

मिट्टीकी पोटली पास होती, उस समय लक्ष्मणजीके मनमें बुरा विचार आता था और उस मिट्टीको छोड़ देते थे। उस समय मनमें पवित्र भावना जग जाती। तीन-चार दिन तक ऐसा होता रहा। लक्ष्मणजीको आश्चर्य हुआ। अन्तमें एक दिन लक्ष्मणजीने श्रीरामचन्द्रजीसे पूछा कि मुझे ऐसा क्यों होता है ? लक्ष्मणजीने रामजीसे ऐसा होनेका कारण पूछा।

रामचन्द्रजीने कहा—लक्ष्मण ! इसमे तुम्हारा दोष नहीं। यह मिट्टी ही उसका कारण है। यह मिट्टी तुम फेंक दो। जिस भूमिमें जो काम होता है, उसके परमाणु उस भूमिमें और उस भूमिके वातावरणमें रहते हैं। यह जिस क्षेत्रकी मिट्टी है, उस क्षेत्रमें बहुत वर्ष पहले सुन्द और उपसुन्द नामके दो राक्षस रहते थे।

श्रीरामचन्द्रजीनें सुन्द-उपसुन्दकी समस्त कथा सुनायी—ये दोनों सगे भाई थे। दोनोंके बीच अतिशय प्रेम था। इन दोनो राक्षसोंने उग्र तपश्चर्या की। उनके तपसे ब्रह्माजी प्रसन्न हो गये। ब्रह्माजीने कहा—वरदान माँगो।

दोनों भाइयोंने माँग की कि हमको कोई मार न सके, ऐसा वरदान दो। ब्रह्माजीने कहा—जिसका जन्म होता है उसको मरना तो पड़ता ही है। तुम मरनेका कोई क्रम रक्खो।

दोनों भाइयोंके बीच अतिशय प्रेम था। इस कारण दोनोने विचार किया कि हममें कोई भी दिन विरोध तो होना नहीं, वैर भी होना नही है, इसलिए किसी भी दिन हम एक दूसरेको मारनेवाले हैं नहीं। इसलिए अमर होनेका उपाय ठीक है। इस प्रकार मारनेकी वारी भी रह जाएगी और कभी मरण सम्भव भी नही होगा। ऐसा विचार करके उन्होने ब्रह्माजीसे माँगा कि हमको दूसरा कोई नही मार सके। हम दोनों भाइयोंके बीच किसी दिन झगड़ा हो तो भले ही हमारा मरण हो जाय परन्तु अन्य कोई भी हमको मार सके नही, ऐसा वरदान दीजिए। ब्रह्माजीने कहा—ऐसा ही होगा।

तपके प्रतापसे दोनों राक्षसोंकी शक्ति बहुत बढ़ गयी थी। शक्तिका दुरुपयोग करे, वही राक्षस। शक्तिका सदुपयोग करे वही देवता। तुम राक्षस हो या देवता हो, इस बातका तुम्हीं विचार करके निश्चय करो। प्रभुने तुमको जो कुछ शक्ति दी है उसका तुम सदुपयोग करते हो तो तुम देवता हो। पवित्र विचार करनेके लिए प्रभुने मन दिया है।

मनमें अद्‌भुत शक्ति रहती है। मन जब ईश्वरके स्वरूपमें लीन होता है तब उसकी शक्तिका विकास होता है और जब मन विषयोंमें भटकता है तब उसकी शक्तिका विनाश होता है। ईश्वरकी जीवके ऊपर अनन्त कृपा है। प्रभुने जीवको शक्तिके अलावा और भी अधिक दिया है परन्तु जीवको उसका उपयोग करना नहीं आता।

इन राक्षस भाइयोंकी—सुन्द और उपसुन्दकी शक्ति बहुत बढ़ गयी। तब वे इन्द्रादिक देवताओंको त्रास देने लगे। देवता ब्रह्माजीके पास गये और ब्रह्माजीसे कहा कि आपने इनको वरदान दिया है, इसलिए ये किसीके हाथोंसे नहीं मरते। इनको दूसरा कोई नहीं मार सकता।

ब्रह्माजीने युक्ति की। इन्होंने तिलोत्तमा नामकी एक अप्सरा उत्पन्न की और तिलोत्तमासे कहा—इन दोनों भाइयोंमें तू वैर उत्पन्न कर। अप्सरा तिलोत्तमा सुन्द-उपसुन्द जहाँ रहते थे वहाँ गयी। उस सुन्दर अप्सराको देखते ही सुन्दको ऐसा विचार हुआ कि यह मुझको मिले, उपसुन्दको भी ऐसा विचार हुआ कि मुझको मिले। इव भाइयोंमें झगड़ा होने लगा, अप्सराने कहा—मैं तुममेंसे अच्छा लगे उस एकके साथ लग्न करनेको तैयार हूँ।

सुन्द, उपसुन्दसे कहने लगा—यह मेरी है। यह तेरी भाभी है। उपसुन्दने कहा—यह तेरी भाभी है, यह तो मेरी है। "हमारी, हमारी" करनेपर पीछे मारामारीपर आ गये। दोनोंका मरण हो गया।

श्रीरामचन्द्रजीने सुन्द-उपसुन्दकी बात करते हुए लक्ष्मणजीसे कहा—इस भूमिमें वैरके संस्कार आए हुए है। दो सगे भाई इस भूमिपर परस्पर युद्ध करके मरे हैं। भूमि-का असर मनके ऊपर होता है।

अशुद्ध भूमि भक्तिमें बाधक है, शुद्ध भूमि भक्तिमें साथ देती है। गृहस्थका धर्म है कि वह बारह महीनेमें अधिक नहीं तो एक आध महीना ही कोई पवित्र तीर्थमें रहकर साधन करे। एकान्तमें रहकर कोई सत्कर्म करे, सादा भोजन करे। कितने ही लोग तीर्थ-में तो जाते हैं परन्तु अचार और मुरब्बेकी बरनियो भी साथ ले जाते हैं। तीर्थमें रसनाका लाड़ करना उचित नहीं। तीर्थमें सादा भोजन करना है। जिसका भोजन सादा है, जिसका वेष सादा है वह किसी दिन भी साधु हो सकता है।

बारह महीना नहीं तो एक-आध महीना तीर्थमें रहकर साधन करना बहुत आवश्यक है। रामजीने भी वनमें रहकर तप किया था। रामजी तो जगतको एक आदर्श बतलाते हैं। रावणको मारना हो तो तुम भी वनमें तप करो। तप बिना रावण मरता नहीं। रावण शब्दका अर्थ होता है रुलानेवाला। मनुष्यको रुलानेवाला 'काम' है। इस कामका विनाश करनेके लिए वनमें रहकर सात्विक जीवन व्यतीत करो।

रामजी वनमें रहे थे तो अकेले नही रहे थे। श्रीसीताजी साथ थी फिर भी रामजीने पूर्ण संयम रक्खा और तप किया। रामायणमें लिखा है कि रामजी वृद्धावस्थामें वनमें नही गये थे। वनवास तो यौवनमें ही होना चाहिए। वृद्धावस्थामे शरीर दुर्बल होनेके बाद वनमे रहकर क्या कर सकोगे? वृद्धावस्थामे कुछ नही हो सकता, शरीर रोगका घर बन जाता है। शरीर शक्ति-हीन हो जाय उसके बाद भक्ति नही होती।

भक्ति वह कर सकता है, जिसके शरीरमे—इन्द्रियोमे शक्ति है। जब तक यह शरीररूपी घर स्वस्थ है, जब तक वृद्धावस्थाका आक्रमण नही होता, इन्द्रियोंकी शक्ति क्षीण नहीं होती, तब तक चतुर पुरुषोको आत्मकल्याणके लिए प्रयत्न कर लेना चाहिए। नहीं तो पीछे, घरमें आग लग जानेपर कुआँ खोदने जानेका कोई लाभ है?

यावत् स्वस्थमिदं कलेबरगृहं यावच्च दूरे जरा,
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्,
प्रोद्दीप्ते भवने च कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः॥

शरीर दुर्बल होनेके बाद देहकी ही भक्ति हो पाती है, परमात्माकी भक्ति नही होती। वृद्धावस्थामें देहकी सेवा होती है, देवकी सेवा नही हो सकती। श्रीरामचन्द्रजी यौवनमे वनमें रहे थे। श्रीसीताजी साथ थी। रामायणका विचार करते हुए ऐसा लगता है कि रामजी वनमें पधारे, तब उनकी अवस्था छब्बीस वर्षकी थी, श्रीसीता माँ अठारह-उन्नीस वर्षकी थी। भरे यौवनमे इनका वनवास हुआ था। यौवनमे ही वनवासकी आवश्यकता है। वृद्धावस्थामें वनमे जानेकी अधिक आवश्यकता नही। शरीर दुर्बल होनेके बाद समझदारी आती ही है। शरीर दुर्बल होनेके बाद जो समझदार होता है, वह सच्चा समझदार नही। जवानीमे जो मनको अंकुशमे रखता है वही चतुर है। आँखोंसे न देख सकनेपर कितने लोग फिल्म देखने नही जाते, चतुराईकी बाते करने लगते है। इस चतुराईका क्या अर्थ है?

इन्द्रियाँ दुर्बल होनेके बाद संयम रक्खे, वह सयम सच्चा नही। शक्ति हो, सब प्रकारके भोग प्राप्त हुए हो, फिर भी मन विषयोमें न जाये, वह सच्चा सयम है। प्रभुने दो वस्तुओंमें आसक्ति रखी है, स्त्रीमें और धनमे। इन दोनोमे आसक्तिरूपी मद रहता है। इन दोनोसे बचना चाहिये। इन दो वस्तुओमे माया है। इन दो वस्तुओसे मनकी रक्षा करो। अनेक बार मनुष्य तन द्वारा कामका त्याग कर देता है परन्तु मनसे त्याग नही करता। मनुष्य, विषयोंका शरीरसे तो त्याग कर दे परन्तु मनसे न करे, यह दम्भ है। संसारके विषयोंमें मन दौडे तो मनको समझाओ कि विषयोमें विष है। अरे, ससारके

विषय तो जहरसे भी अधिक भयंकर हैं। जहर तो खानेपर ही मनुष्य मरता है, जहरका चिन्तन करनेसे कोई नहीं मरता, जब कि संसारके विषयोंका चिन्तन करनेमात्रसे ही मनुष्यका विनाश हो जाता है। खराब विचारोंसे मनुष्यका जितना नुकसान होता है, उतना अन्य किसीसे नहीं होता। सुखी होना हो तो संयम करो। शरीरमें शक्ति हो तब तक ही धीरे-धीरे संयम बढ़ाना है।

मनुष्यको सब प्रकारसे सुख देनेवाला संयम है। सुख मिलता है संयमसे, सुख-मिलता है सदाचारसे। सुख मिलता है अच्छे संस्कारोंसे। सुख मिलता है प्रभुकी भक्ति-से। सुख मिलता है त्यागसे। संयम और वैराग्य खूब बढ़ाओ। मानवको संपत्तिसे थोड़ा-सुख मिलता है, संयमसे अतिशय सुख मिलता है। सम्पत्तिमे शान्ति नहीं मिलती। सम्पत्ति-से तो विकार-वासना बढ़ती है। विषय-सुखके त्यागसे ही विकार-वासनाका धीरे-धीरे नाश होता हैं। एक बार त्याग करनेके बाद विषय-सुखकी इच्छा करो नहीं। एक बार जिस सुखका, जिस विषयका त्याग कर दिया, वह सुख अथवा वह विषय भोगनेकी दुबारा इच्छा हो तो वह वमन किए हुएको खाने जैसा है। जीवनमें संयम बिना दिव्यता आती नहीं।

श्रीरामचन्द्रजीने जगतको दिव्य आदर्श बतलाया है। पंचवटीमें रामजी रोज गोदावरी गंगामें स्नान करते, भगवान शङ्करकी पूजा करते, त्रिकाल संध्या करते, ऋषि-मुनियोंका सत्संग करते और कंदमूल-फलका सेवन करते थे।

(४८)

राम-गीता

एकदा लक्ष्मणो राममेकान्ते समुपस्थितम् ।
विनयावनतो भूत्वा पप्रच्छ परमेश्वरम् ॥

एक दिन रघुनाथजी एकान्तमे विराजे थे। प्रभु अतिशय आनन्दमे थे, प्रसन्न थे। उस समय लक्ष्मणजीने आकर रामजीको प्रणाम् किया। पीछे अत्यन्त विनयपूर्वक लक्ष्मणजीने प्रभुसे प्रश्न किया—महाराज ! मोक्ष किसे कहते हैं ? बन्धन किसे कहते हैं ? ईश्वरमें और जीवमे क्या भेद हैं ? मुझे बहुत थोड़े शब्दोमें इस तत्वज्ञानका उपदेश कीजिए।

रामजीको अधिक बोलना आता नही था। रामजी बहुत ही सीमित बोलते थे। रामजीने बन्धन और मोक्षका स्वरूप लक्ष्मणजीको समझाया। महापुरुष इसे 'राम-गीता' कहते हैं।

रामजीने कहा—लक्ष्मण ! बन्धन मनका है और मुक्ति भी मनको मिलती है। ईश्वरके अतिरिक्त संसारमें किसी भी विषयका चिन्तन मन करे, तब मन बन्धनमे आता है। मन विषयोका चिन्तन छोडे तो मुक्ति जैसा आनन्द मिलता है। मनका निर्विषय बनना मुक्ति है, मनका विषयोंमें फँसना बन्धन है।

बन्धाय विषयासक्तं मुक्तं निर्विषयं स्मृतम् ॥

मनुष्यको मरनेसे पहले ही मुक्ति मिले तो मरनेके बाद भी उसे मुक्ति मिलती है। जिसको मरनेके पहले मुक्तिका आनन्द नही मिला, लक्ष्मण ! उसे मरनेके बाद भी मुक्ति नही मिलती।

विषयोंका चिन्तन करते-करते मन विषयाकार बन जाता है। मनके विषयाकार होनेके बाद वे विषय सूक्ष्मरूपसे मनमें आते हैं। ये ही बन्धनका कारण बनते है। वही मन परमात्माका चिन्तन करे तो वह परमात्माके स्वरूपमे मिल जाता है। मन किसी दिन भी संसारके विषयोमें मिलता नहीं। संसारके विषयोमें तो मन फिरता है परन्तु मन जब मिलता है तब परमात्माके स्वरूपमें ही मिलता है।

दूधमें पत्थर डालकर उबालो तो यह पत्थर किसी दिन भी दूधमे मिलेगा नही। दूधमें खाँड डालकर उसे गरम करोगे तो खाँड दूधमे मिल जाएगी। पत्थर दूधमे मिलेगा नही। पत्थर और दूध—ये दो विजातीय तत्त्व हैं। सजातीय, सजातीयमे ही मिलता है।

दूध और खांड सजातीय हैं। उसी प्रकार मन और कोई जड़ वस्तु—ये दोनो विजातीय है। मन पत्थर जैसा जड़ नही। मन एक क्षणमें अनेक देशोंमें जाकर आ जाता है। मन, जड न होनेसे किसी भी जड़ वस्तुमे मिलता नहीं। मन जब मिलता है तो चेतन परमात्माके स्वरूपमे ही मिलता है।

बन्धन और मोक्षका कारण मन है। चाबीसे लोग ताला बन्द करते है। जिस चाबीसे ताला बन्द होता है उसी चाबीसे वह खुलता है। बन्द करना और खोलना—ये दोनो क्रिया परस्पर विरुद्ध होनेपर भी दोनो काम एक ही चाबी करती है। इसी प्रमाणसे मन बन्धन करता है, और यही मन बन्धनसे मुक्ति भी दिलाता है।

लक्ष्मण! बन्धन मनका है। समस्त साधन मनको लय करनेके लिए हैं। मनका परमात्माके स्वरूपमें लय हो, उसे ही मुक्ति कहते है। मनका जब लय होगा तो इन जड़ पदार्थोमे होना नहीं है, ईश्वरमें ही होगा।

परमात्मा सर्वव्यापक होनेपर भी दीखता नही। यह जगत तत्वदृष्टिसे नही है, फिर भी भासता है। इसका कारण माया है। मायया कल्पितं विश्वम् परमात्मनि केवले। मायाके कारण ईश्वर है फिर भी दीखता नही, और जगत नही, फिर भी भासता है।

मैं अरु मोर तोर त माया। जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया।
गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई॥

यह सभी माया है। अंधकार दो काम करता है। जो है उसको ढँकता है और जो नहीं है उसको बताता है। अंधकार वस्तुको ढँककर रखता है। अँधेरेमें डोरी पड़ी हो तो वह डोरी नहीं दीखती। अंधकार डोरीको ढँककर रखता है। वह अंधकार ही डोरीमें सर्पका आभास कराता हैं। अंधकारमें पड़ी हुई डोरी सर्प जैसी लगती है। सर्प नहीं है फिर भी सर्प दीखता है, और डोरी है फिर भी डोरी नही दीखती है।

जो है उसको ढँककर रक्खे इसको आवरण-शक्ति कहते हैं और जो नही है उसको बतावे इसका नाम है विक्षेप-शक्ति। अंधकाररूपी मायाकी ये दो शक्तियाँ हैं। आवरण-शक्ति और विक्षेप-शक्ति।

रूपे द्वे निश्चिते पूर्व मायायाः कुलनन्दन।
विक्षेपावरणे……………………

आवरण-शक्तिसे माया, परमात्माको ढँककर रखती है। विक्षेप-शक्तिके द्वारा माया ईश्वरके आधारसे जगतका भास कराती है। तत्वदृष्टिसे विचार करनेपर, माया

सत्य नही, खोटी है, फिर भी वह रुलाती है। स्वप्नसे जागे पीछे जिस प्रकार स्वप्न असत्य था, ऐसा भान होता है, उसी प्रकार जिसको परमात्माका ज्ञान होता है उसको ससार असत्य है, ऐसी प्रतीति होती है।

संसारः स्वप्नतुल्यो हि रागद्वेषादिसङ्कुलः ।
स्वकाले सत्यवद्भाति प्रबोधे सत्यसद्भवेत् ॥

सब जानते है कि स्वप्न खोटा है परन्तु स्वप्नकालमे—जब स्वप्न दीखता है तब स्वप्न खोटा है ऐसा ज्ञान नहीं होता। स्वप्नकालमे स्वप्न सच्चा लगता है। इसीलिए स्वप्नके सुख-दु खका असर भी होता है। स्वप्नमे किसीको लाख-दो-लाख रुपया मिल जाये तो वह बहुत राजो होता है, और कदाचित् स्वप्नमे घरमे कुछ नुकसान हो, चोरी हो तो दु खो भी होता है। खोटा स्वप्न भी जिस प्रकार सुख दु ख-देता है उसी प्रकार खोटी माया भी सुख-द् ख देती है।

माया सत्य होती तो मायाका नाश नही होता। माया खोटी है इसलिए ही इसका नाश होता है। माया अज्ञानका स्वरूप है।

एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा। जा बस जीव परा भवकूपा ॥

अनादि कालसे मनुष्यका मायाके साथ युद्ध होता आया है। जीव सब प्रकारका मोह छोड़कर ईश्वरके पास जाय, वह मायाको अच्छा नही लगता। मायाका एक स्वरूप नही, ईश्वर जिस प्रकार व्यापक है, उसी प्रकार माया भी व्यापक जैसी है। जीव-ईश्वरके मिलनमे माया विघ्न करती है। माया मनको चंचल बनाती है। माया जीवको ऐसा समझाती है—इस ससारमे ही सुख है। स्त्रीमे सुख है, सपत्तिमे सुख है, संततिमे सुख है। स्त्रीपुत्र-घरबार-रूप अंधेरे कुएँमे जीवको वह फेंकती है। सुत कलत्रगृहान्धकूपे। माया अनेक रीतिसे जीवको ईश्वरसे दूर फेकती है। माया जीवको हराती है। जीवकी हार होती है और मायाकी जीत होती है। जीव शुद्ध चेतन है, परन्तु मायाके वश होकर वह बधनमे आता है।

जागे पीछे जिस प्रकार स्वप्नका सुख-दु ख नही रहता उसी प्रकार ससारमे भी जो जागता है उसको परमात्माके आनन्दस्वरूपका अनुभव होता है, और इस आनन्द-स्वरूपका अनुभव करनेवालेपर ससारके सुख-दु खका असर नही होता। न जागे तब तक स्वप्न है। कदाचित तुमको ऐसी शका होगी कि महाराज! सारी रात जागरण करके बैठनेको कह रहे हैं? इस ससारमे जागा हुआ कौन है? सोया हुआ कौन है? जगतमे सोया हुआ वह है जो कामके अधीन है, सोया हुआ वह जीव है जो इन्द्रियोका दास है। जिसने एक-एक इन्द्रियका सयम बढाया है, जिसको कामके ऊपर विजय मिली है, वह जागा हुआ है।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुने ॥

जो जागा नहीं है उसको संसार मिलता है और जो जागा है उसको परमात्माका अनुभव होता है। स्वप्नकालमें जो जगत दीखता है, वह जाग्रत अवस्थामें नही दीखता। स्वयंके स्वरूपका अज्ञान ही स्वप्न है, स्वयंके स्वरूपका ज्ञान हो तो स्वप्न नही दीखता। स्वप्नमें मनुष्य, स्वरूपको भूलता है। स्वयंके स्वरूपको भूले तब स्वप्न आता है। जीव, स्वरूप भूला है इसीलिए यह जगतरूपी स्वप्न उसको दीखता है। जीवको ईश्वरका अज्ञान है, इसीसे यह संसार है।

अनुभूतोऽप्ययं लोको व्यवहारक्षमोऽपि सन्।
असद्रूपो यथा स्वप्न उत्तरक्षणबाधतः ॥

संसारमें न जागे, तभी तक क्लेश है। जाग जानेपर उसको भगवानका अनुभव होता है। स्वप्नमें एक मनुष्यको तीन वर्षकी सजा हुई। दो वर्षकी सजा भोगकर नींद उड़ गयी। स्वप्न पूरा हुआ। विचार करो, अब बाकी एक वर्षकी सजा कौन भोगेगा? यह एक वर्षकी सजा भोगनेको बाकी नहीं रहती। उसी प्रकार यह जीव भी जगतमें जागे तो सुखी हो, इसके दुःखोंका अन्त आवे। वह अज्ञान-निद्रामें सोता रहता है इसीलिए दुःखी है। आत्म-स्वरूपका विस्मरण ही माया है। इस अज्ञान-निद्रासे जागते ही जीव संसारसे तर जाता है और इसको परमात्माका साक्षात्कार होता है। परमात्माका साक्षात्कार करनेके लिए सबसे सरल और सुगम साधन भक्ति है।

..............................सो मम भगति भगत सुखदायी ॥
सो सुतंत्र अवलम्ब न आना। तेहि आधीन ज्ञान बिज्ञाना ॥
भगति तात अनुपम सुखमूला। मिलइ जो संत होइ अनुकूला ॥
भगति कि साधन कहउँ बखानी। सुगम पंथ मोहि पावहिं प्रानी ॥

परमात्माकी जो सतत भक्ति करता है उसको ज्ञान-विज्ञान, वैराग्य आदि जल्दी प्राप्त होते हैं और उसको मोक्ष मिलता है। मायासे तरनेके लिए, उसे जीतनेके लिए बहुत साधन हैं परन्तु भक्त केवल भक्तिसे ही अनायास मायाको तर जाता है। श्रीकृष्ण भगवानने भी गीताजीमें आज्ञा की है—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥

जो मेरी शरणमें आता है, वह मायाको तर जाता है। लक्ष्मणको मायाका स्वरूप, परमात्माका स्वरूप, मायाकी आवरण-शक्ति और विक्षेप शक्ति, बन्ध-मोक्षका स्वरूप, भक्तिकी महिमा इत्यादि बहुत सक्षेपमें प्रभुने समझाई। लक्ष्मणको अतिशय आनन्द हुआ। भगवान शंकर माता पार्वतीजीसे कहते हैं—

एकदा गौतमी तीरे पञ्चवट्याः समीपतः।

श्रीराम-लक्ष्मण-जानकीजी गोदावरीके किनारे पंचवटीमें विराजे हुए थे। एक बार ऐसा हुआ कि शूर्पणखा घूमती-फिरती वहाँ आ पहुँची। शूर्पणखा राक्षसी थी, रावणकी बहिन थी। श्रीराम-लक्ष्मणके दर्शन करते हुए इसको आश्चर्य हुआ। शूर्पणखाने विचार किया कि राम अति सुन्दर हैं। शूर्पणखाने स्वयंका राक्षसी स्वरूप छिपाया और सुन्दर शृङ्गार करके रामजीके पास आयी।

शूर्पणखा वासनाका स्वरूप है। शांतिसे विचार करो तो ध्यानमें आवेगा कि वासना भी राक्षसी है। वह स्वरूपको छिपाकर शृङ्गार करके जो संसार-अरण्यमे फिरता रहता है, उससे मिलने आती है। संसार अरण्यका स्वरूप है। इसलिए अरण्य-काण्डमें ही शूर्पणखाकी कथा आती है जो संसार-अरण्यकमें फिरता हैं, उसको ही वासना-रूपी शूर्पणखा मिलने आती है। कोई पुरुष परस्त्रीको अथवा कोई स्त्री परपुरुषको आसक्ति-पूर्वक देखे, यह पाप है। किसीके सौन्दर्यमें आँख फँसे तो मानना चाहिए कि आँखमें शूर्पणखा आई हुई है। स्त्रीको स्त्रीस्वरूपमे, पुरुषको पुरुषस्वरूपमे न देखो, सबको ब्रह्मरूपमें देखो। जगतके किसी भी व्यक्तिको भगवद्भावसे देखनेके अलावा कामभावसे देखोगे तो मानना कि शूर्पणखा आई है, वासना आयी है।

यह वासना अन्दरसे अच्छी नही, केवल बाहरसे अच्छी लगती है। शूर्पणखा है तो राक्षसी परन्तु बनठनकर आती हे। वासना बाहरसे सुन्दर लगती है। वह जीवको ऐसा बतलाती है कि मैं तुमको बहुत सुख दूँगी परन्तु वासना तो जीवको रुलाती है। वासना, अविद्या लाती है, अज्ञान लाती है। अविद्या अपने साथ पाँच दोष लाती है—देहाध्यास, इन्द्रियाध्यास, प्राणाध्यास, अन्तःकरणाध्यास और स्वरूपविस्मृति। विवेकका भान भूल जाये, उसे स्वरूपविस्मृति कहते हैं। इन सबके कारण वासना बढ़ती जाती है, घटती नही। यह वासना ऐसी राक्षसी है कि इसकी कभी तृप्ति होती ही नही। यह तो ऐसी भयंकर है कि खिलानेवालेको भी खा जाती है। खिलानेवालेको खा जानेपर भी इसकी तृप्ति होती ही नही।

अनेक बार मनुष्य ऐसा मानता है कि इन्द्रियाँ जो माँगती हैं, उन विषयोंको मैं भोगूँ, जिससे मन शान्त होगा। अरे, भोगसे शान्ति मिलती होती तो आज तक शान्ति

मिल जानी चाहिए थी। आज तक अनेक जन्मोंसे जीवने संसारमें सभी विषयोंका अनुभव किया है, उपभोग किया है, फिर भी इसे शान्ति नहीं मिली। इन्द्रियोंको जो सुख एक बार दिया, वही सुख वह फिरसे माँगेगी। इसलिए ऐसी वासना जागे, उस समय उन विषयोंके भोगनेसे पहले मनको समझाओ कि आज तक कितना खाया ? तृप्ति हुई क्या ? विषयोंमें जब तक आकर्षण है, तब तक विषयेच्छाका नाश नहीं होता। विषयोंका आकर्षण न रहे तो विषयेच्छाका विनाश हो जाता है। वासनाकी शान्ति भोगसे नहीं, त्यागसे होती है।

शूर्पणखा सुन्दर स्वरूप धारण करके श्रीरामचन्द्रजीके पास आयी।

कामार्ताहं न शक्नोमि त्यक्तुं त्वां कमलेक्षणम्।

श्रीरामचन्द्रजीका स्वरूप देखकर शूर्पणखा कामान्ध हो गयी। इसलिए रामचन्द्रजीसे कहा—मैं रावणकी बहिन हूँ। आज तक मैंने विवाह किया ही नहीं। थी तो वह विधवा परन्तु वह झूँठ बोली।

तुम सम पुरुष न मो सम नारी। यह संजोग बिधि रचा बिचारी॥
मम अनुरूप पुरुष जग माँहीं। देखेउँ खोज लोक तिहुँ नाहीं॥
तातें अब लगि रहेउँ कुमारी। मन माना कछु तुम्हहिं निहारी॥

मुझे अपने लायक कोई सुन्दर पुरुष आज तक मिला ही नहीं, इसलिए मैं कुंवारी हूँ परन्तु आज तुमको देखकर मेरा मन कुछ माना है। इसलिए मैं विवाह करने आयी हूँ। भव भर्ता मम प्रभो। तुम मेरे साथ विवाह कर लो।

रामायणमें लिखा है कि शूर्पणखाको जवाब देनेके लिए जब श्रीरामचन्द्रजी उसके साथ बात करते थे, तब प्रभुकी नजर तो श्रीसीताजीपर ही रहती थी। रामजी शूर्पणखाके साथ जब बोलते थे, तब वे शूर्पणखापर दृष्टि नहीं डालते थे। वासना-राक्षसी आँखसे अन्दर घुस जाती है।

संसारके सुन्दर विषयोंको देखकर आँख उसके पीछे दौड़ती हैं। आँखके पीछे मन जाता है। मन जानता है कि यह मेरा नहीं। मुझको मिलनेवाला भी नहीं। फिर भी यह पाप करता है। मनमें जितने पाप आते हैं वे आँखके मार्गसे ही आते हैं। आँख बिगड़ी तो मन बिगड़ा। विषय पहले आँखमें आते हैं। काम पहले आँखमें आता है। कामको अगर आँखमें नही आने दो, तो पीछे यह मनमें भी नही आवेगा। वासना आँखमें नही आवे, इसलिए आँखको बन्द रखो। आँखको बन्द रखोगे, आँखको सुरक्षित रखोगे तो मन पवित्र रहेगा। खूब ध्यानमें रखो कि तुम आँख किसको देते हो ? किस भावसे देते हो ? तुम जिसको आँख दोगे, उसको अपना मन देना ही पड़ेगा। तुम जिसको आँख देते हो, उसका

चित्र, उसका स्वरूप तुम्हारे मनमे आता है। आँख देनेके पहले विचार करो कि यह कौन है? कैसा है? मैं किस भावसे इसपर दृष्टि डाल रहा हूँ।

श्रीरामचन्द्रजी, श्रीसीताजीपर नजर रखकर शूर्पणखाको उत्तर देने लगे। शूर्पणखापर नजर नही डाली। रामायणकी शूर्पणखा और भागवतकी पूतना एक ही है। पूतना भी वासना है। पूतना आती है तब कन्हैया आँख बन्द कर लेते हैं, पूतनापर नजर नही डालते। पूतना आयी, तब कन्हैया छह दिनके थे। अभी राधाजी नही आयी थी। इसलिये नजर कोनेमे रखते थे। इसलिए कन्हैया आँख मीच लेते थे। रामावतारमे तो सीताजीके साथ थे। इसीसे श्रीसीताजीपर नजर रखकर, शूर्पणखापर नजर नही डाली।

भगवान बोध देते हैं कि जिसके मनमे पाप भरा है, उसपर मैं दृष्टि नही डालता। उसको सामनेसे मैं देखता नही। जिसका मन मैला है, उसको सामनेसे भगवान देखते नही। बाहरका शृंगार प्रभु देखते नही। परमात्मा तो अन्दरका—सूक्ष्म शरीरका—मनका शृंगार देखते हैं। स्थूल शरीरका विचार करे, वह जीव तथा सूक्ष्म शरीरका विचार करे वह ईश्वर।

शास्त्रमें तीन प्रकारके शरीर कहे हैं—स्थूल, सूक्ष्म और कारण। आँखको दीखता है वह स्थूल शरीर है। सूक्ष्म शरीर सत्रह तत्वोंका बना हुआ है। पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पंच प्राण, मन और बुद्धि। सूक्ष्म शरीरमे मन मुख्य है। मनमे वासनाका समुदाय रहता है। उसको कारण शरीर कहते हैं। इन तीनो शरीरोसे परे आत्मा है। स्थूल, सूक्ष्म और कारण—ये तीनो उपाधि हैं।

प्रभुके सम्मुख जाओ तब अपने मनका शृंगार करके जाओ। बहुत-से लोग मन्दिरमें कपडे बदलकर जाते है। कपड़ा नहीं, हृदय बदलनेकी जरूरत है। भगवान कपड़े-को नही, हृदयको देखते हैं। निश्चय करो—ठाकुरजी मुझपर दृष्टि डालें, उस योग्य बनकर परमात्माके पास जाऊँगा।

तामाह रामनामाहमयोध्याधिपतेः सुतः।
एषा मे सुन्दरी भार्या सीता जनकनन्दिनी।

श्रीरामचन्द्रजीने शूर्पणखासे कहा—मेरी तो लग्न हो गयी है। ये श्रीसीताजी मेरी पत्नी हैं। तू जैसी कुवाँरी है वैसा मेरा भाई भी कुवाँरा है। तू वहाँ जा। परस्त्रीमें मातृभाव रखनेवाला मैं मर्यादापुरुषोत्तम हूँ, इसलिए मैं तो लग्न नही करूँगा परन्तु तुझको बहुत इच्छा हो तो तू लक्ष्मणजीके पास जा। लक्ष्मण कुमार है।

मार शब्दका अर्थ है काम—उत्थितः मारः॥ लक्ष्मणजी निष्काम थे। इसीलिए श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीके लिए कुमार शब्दका प्रयोग किया। कहनेका भावार्थ था कि लक्ष्मण जितेन्द्रिय हैं।

इत्युक्त्वा लक्ष्मणं प्राह पतिमभव सुन्दर ॥

लक्ष्मणजीके पास जाकर शूर्पणखाने कहा—तुम मेरे पति हो जाओ। लक्ष्मणजी तो इसको पहिचान गये थे कि यह राक्षसी है। शृंगार करके आयी है। लक्ष्मणजीने कहा—

अहं दासोऽस्मि रामस्य त्वंतु दासी भविष्यसि ।

मैं तो दास हूँ। तुम मेरे साथ लग्न करोगी तो तुमको दासी होना पड़ेगा। तुम रामजीके पास जाओ। वे राजाधिराज हैं। राजा तो अनेक लग्न कर सकता है। तुम वहीं जाओ।

तमेव गच्छ भद्रं ते स तु राजाखिलेश्वरः ।

लक्ष्मणजीका वचन सुनकर शूर्पणखा रामजीके पास गयी। रामजीने मनाही की, तब शूर्पणखाने स्वयंका मूल स्वरूप प्रगट किया—उसने राक्षसी स्वरूप धारण करके रामजीसे कहा—अब तेरी पत्नीका मैं भक्षण करूंगी। वासना भी शूर्पणखाकी तरह पहले सुन्दर लगती है, परन्तु पीछे स्वयं प्रकाशित होती है, जीवको फँसाती है। वासना आरम्भमें कोमल लगती है, परन्तु यह भयङ्कर होती है। वासनाकी पकड़मेंसे जल्दी छूट पाते नहीं।

शूर्पणखा श्रीसीताजीकी तरफ दौड़ी। रघुनाथजीने लक्ष्मणजीको इशारा किया। लक्ष्मणजी दौड़ते आए, शूर्पणखाके कान पकड़ लिए।

विच्छेद नासा कर्णौ च लक्ष्मणो लघुविक्रमः ।

लक्ष्मणजीने शूर्पणखाके दो कान काटे, तथा नासिका काट ली। रुधिर निकलने लगा। शूर्पणखा बहुत व्याकुल हुई। वहाँसे वह खर, दूषण; त्रिशिरा आदि राक्षसोंके पास गयी और कहा—रामजीके भाईने मेरी ऐसी दुर्दशा की है। समस्त राक्षस रघुनाथजीके साथ युद्ध करनेको तैयार हुए। राक्षस-सेना युद्ध करने आयी। भयङ्कर घर्षण हुआ।

जघान प्रहरार्धेन सर्वानेव रघूत्तमः ॥

बहुत थोड़े समयमें प्रभुने सब राक्षसोंका विनाश कर दिया। जो धनुषबाण सजाकर रखता है उसको कोई भी राक्षस नहीं मार सकता। रामजी वनमें ही धनुषबाण सजाकर रखते थे ऐसा नहीं। ये, तो सिंहासनमें श्रीसीताजीके साथ विराजते हैं तब भी

धनुषबाण सजाकर रखते हैं। धनुष ज्ञानका स्वरूप है, बाण विवेकके स्वरूप हैं। गाफिलको राक्षस मारते हैं। जो प्रतिक्षण सावधान रहता है, वह ही साधु है। प्रतिक्षण जो सावधान रहता है, उसको कोई राक्षस मार नही सकता।

श्रीरामचन्द्रजी एक क्षण भी गाफिल नही रहते थे। प्रतिक्षण सावधान थे। थोड़े समयमें ही इन्होने राक्षसोकी अति भयङ्कर और बहुसख्यक सेनाका विनाश किया। श्रीसीताजीको आनन्द हुआ। शूर्पणखा रोती रोती रावणके पास गयी। उसने रावणको उलाहना दिया कि—तेरे शत्रु तेरा विनाश करनेके लिए गोदावरीके किनारे आ गये है। अभी तक तुमको कुछ खबर नही।

करसि पान सोवसि दिनराती। सुधि नहिं तव सिर पर आराती।
राज नीति बिनु धनबिनु धर्मा। हरिहि समर्पे बिनु सत्कर्मा॥

× × ×

प्रीति प्रनय बिनु मदते गुनी। नासहिं बेगि नीति अस सुनी॥

राजनीति तू जानता नही। अब तेरा विनाश होनेवाला है। रावणने पूछा—बहिन। ये तेरे कान और नाक किसने काटे हैं। शूर्पणखाने सब कुछ उलटकर ही कहा—रामजीकी पत्नी सीता बहुत सुन्दर है। इसलिये मैंने विचार किया कि इन सीताजीको अपने भाई रावणके लिए मैं ले जाऊँ। तेरे लिए मैं वहाँ गयी थी। वहाँ रामजीके भाई लक्ष्मणने मेरे नाक-कान काट दिए। तेरे राक्षसोका भी विनाश कर दिया।

रावणको आश्चर्य हुआ। यह विचारमे पड गया—खरदूषण और त्रिशिरा तो मेरे जैसे ही बली हैं। इन राक्षसोका विनाश करनेवाले राम मानव नही, परमात्मा हैं। राम जो मनुष्य होंगे तो मै सीताजीको ले आऊँगा, और वे मेरा कुछ भी नही कर सकेंगे। यदि राम परमात्मा होगे और मुझको मारेंगे तो मेरा कल्याण होगा। मुझको ऐसा लगता है कि आदिनारायण परमात्मा मेरे लिए ही मानव-स्वरूप धारण करके श्रीरामरूपमें प्रगट हुए हैं। यदि राम मानव होते तो अकेले इन राक्षसोका विनाश किस प्रकार कर सकते थे ?

वध्यो यदि स्यां परमात्मनाहं वैकुण्ठराज्यं परिपालयेमऽहम्।
नो चेदिदं राक्षसराज्यमेव भोक्ष्ये चिरं रामम‍तो व्रजामि॥
इत्थं विचिन्त्याखिलराक्षसेन्द्रो रामं विदित्वा परमेश्वरं हरिम्।
विरोधबुद्धयैव हरिं प्रयामि द्रुतं न भक्त्या भगवान् प्रसीदेत्॥

श्रीराम मानव नहीं, ईश्वर हैं। रामजी मुझको मारेंगे तो मैं प्रभुके धाममें जाऊँगा। रामजीके साथ मैं विरोध करूँगा। विरोध-भक्तिसे मेरा कल्याण होगा, मेरे वंशका भी उद्धार होगा।

तौ मैं जाइ बैरु हठि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ॥

रावणने ऐसा विचार किया और पीछे शूर्पणखासे कहा—तू चिन्ता मत कर। अब मैं वहाँ जाता हूँ। इधर श्रीरामचन्द्रजीने सीताजीसे कहा—अब मुझे लीला करनी है। प्रत्यक्ष श्रीसीताजीका रावण स्पर्श नहीं कर सकता था। श्रीसीताजी तो परमात्माकी आह्लादिका शक्ति हैं। श्रीसीतारामजी तो साथ ही रहते हैं। सूर्य और सूर्यकी प्रभा किसी दिन अलग नहीं हो सकती। श्रीसीतारामजी अलग नहीं रह सकते। यह तो प्रभुने लीला की है।

श्रीरामचन्द्रजीने श्रीसीताजीसे कहा—अपनी छायाको तुम आश्रममें रखना। तुम्हारी छायाको रावण ले जाएगा। मुझे रावणका विनाश करना है। श्रीसीताजीकी जैसी ही आकृतिवाली छायाजानकीको आश्रममें रक्खा। प्रत्यक्ष सीताजी तो श्रीरामजीके स्वरूपमें ही लीन हो गयीं। किसी-किसी रामायणमें लिखा है कि श्रीसीताजीने अग्निमें प्रवेश किया।

श्रुत्वा रामोदितं वाक्यं सापि तत्र तथाकरोत्।
मायासीतां बहिः स्थाप्य स्वयमन्तर्दधेऽनले॥

आनन्द रामायणमें ऐसा लिखा है कि श्रीरामचन्द्रजीने श्रीसीताजीसे कहा—देवी? अब तुम तीन रूप धारण करो।

सीते त्वं त्रिविधा भूत्वा रजोरूपा वसानले।
वामांगे मे सत्त्वरूपा वस छाया तमोमयी॥

रजोरूपसे तुम अग्निमें प्रवेश करो, सत्त्वरूपसे मेरे स्वरूपमें लीन हो जाओ और तमोमयी बनकर, छायारूप धारण करके आश्रममें रहो। श्रीसीताजीने इसी प्रकार किया अपना छायास्वरूप आश्रममें रक्खा।

✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦

(४९)

रावणका कपट

रावणने श्रीरामचन्द्रजीसे विरोध करनेका निश्चय किया और वह मारीचके आश्रममें गया।

विचिन्त्यैवं निशायां स प्रभाते रथमास्थितः।
रावणो मनसा कार्यमेकं निश्चित्य बुद्धिमान्॥
ययौ मारीचसदनम्......................

समुद्रके किनारे मारीच रहता था। रावण वहाँ गया। मारीचने रावणका स्वागत किया। रावणने कहा—महाराज दशरथके पुत्र राम-लक्ष्मण राक्षसोंका विनाश कर रहे हैं। रामजीने वैर किया है। रामजीकी आज्ञासे लक्ष्मणने निर्दोष शूर्पणखाके नाक, कान काटे हैं। मैंने इनके साथ अब विरोध करनेका निश्चय किया है। तू मेरी मदद कर। तेरी मददसे मै सीताजीको वहाँसे उठाकर ले आऊँगा।

मारीच रावणको समझाने लगा। उसने कहा—तुम्हारी बुद्धि बिगड़ गयी है। तुम रामजीके साथ विरोध करने चले हो। रामजीके बाणकी तुमको खबर नहीं। रामजीको तुम नहीं जानते। राम छोटे थे, तभी एक बार मुझको इनके दर्शन हुए थे। विश्वामित्रके यज्ञका रक्षण करनेके लिए रामजी पधारे थे। मैं वहाँ विघ्न करनेके लिए गया था। रामजीके बलका मुझको वहाँ अनुभव हो चुका है। एक बाण मुझको मारा, उससे मैं समुद्रके किनारे आकर पड़ा हूँ। तबसे सतत रामजीका ध्यान करता हूँ। इसलिए—

त्यज विरोधमतिं भज भक्तितः
परमकारुणिको रघुनन्दनः।

तुम रामजीके प्रति विरोध-बुद्धि छोड़ दो और प्रेमसे रामजीका भजन करो। मारीचने रावणको उपदेश दिया परन्तु रावणके गले वह नहीं उतरा। रावणको क्रोध आया और वह मारीचको मारनेके लिए तैयार हो गया। मारीचने विचार किया—

यदि मां राघवो हन्यात्तदा मुक्तो भवार्णवात्।
मां हन्याद्यपि चेद्दुष्टस्तदा मे निरयो ध्रुवम्॥

रावणके हाथसे मरूँ तो मरण बिगडेगा। रामजीके हाथसे मरूँगा तो मेरा मरण मंगलमय होगा। ऐसा विचारकर मारीचने रावणको सहायता देनेकी सम्मति दे दी।

रावणने मारीचसे कहा— तू सुन्दर हिरणका स्वरूप धारण करना। राम तेरे पीछे दौड़ते-दौड़ते आवेंगे। तू रामजीको दूर ले जाना। रामजी तुझको बाण मारें तब तू रामजीकी जैसी आवाज करके लक्ष्मणको बुलाना। इससे लक्ष्मण भी वहाँ दौड़ता आवेगा। सीताजी आश्रममें अकेली रह जायेंगी, उसी समय मैं उनको उठाकर लंकामें ले जाऊँगा।

इस प्रकारकी योजना करके रावण और मारीच दोनों पचवटीमें आए। मारीचने सुन्दर स्वर्णमृगका स्वरूप धारण किया।

रत्नशृंगो मणिखुरो नीलरत्नविलोचनः।
विद्युत्प्रभो विम्रुग्धास्यो विचचार वनान्तरे ॥

सीताजीकी नजर पड़े, इस रीतिसे हिरण वहाँ फिरने लगा। इसको देखकर श्रीसीताजीने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—यह हिरण बहुत सुन्दर है। मुझको बहुत अच्छा लगता है। इसको पकड़कर लाओ। प्रत्यक्ष श्रीसीताजीने रामजीसे ऐसा नहीं कहा। यह तो जो छाया-जानकी आश्रममें थी, वे ऐसा कहने लगीं। लक्ष्मणजीको भी पीछेसे जो कड़ुवा शब्द कहा, वह श्रीसीताजीने नहीं, छाया-जानकीने कहा था।

प्रभुने लक्ष्मणजीसे कहा—लक्ष्मण ! मैं जाता हूँ। तुम श्रीसीताजीका रक्षण करना। लक्ष्मणजीने कहा—नाथ ! यह हिरण नहीं।

एवं भूतो मृगः कुतः।

ऐसा भी मृग कहीं होता है ? यह तो कोई राक्षस है। रामजीने कहा—राक्षस होगा तो इसको मारूँगा और हिरण होगा तो इसको पकड़कर ले आऊँगा परन्तु तुम सावधान रहना। लीला करनी थी, इसलिए परमात्मा नाटक कर रहे थे।

तब रघुपति जानत सब कारन। उठे सकल सुर काज सँवारन ॥

श्रीरामचन्द्रजी मायामृगके पीछे दौड़े। मृग-मारीच बारम्बार निहारने लगा और दौड़ने लगा। ऐसा करते-करते वह रामजीको दूर ले गया। पीछे तो रामचन्द्रजीने इसको बाण मारा। माया-मृग घायल हुआ और उसने हा लक्ष्मण ! हा लक्ष्मण ! ऐसा आर्त्तनाद किया। श्रीसीताजीने यह शब्द सुना।

सीताजीने लक्ष्मणजीसे कहा—तुम्हारे भाई कुछ विपत्तिमें हैं। तुमको बुला रहे हैं। लक्ष्मणजीने कहा—माँ ! तुम चिन्ता न करो।

भृकुटि बिलास सृष्टि लय होई। सपनेहुँ संकट परइ कि सोई ॥

जिनकी भृकुटि जरा बाँकी होते ही सृष्टिका लय हो जाता है उन रामजीपर विपत्ति कैसी ? यह तो कोई राक्षस बोल रहा है। तब श्रीसीताजीने कुछ कड़वे शब्द लक्ष्मणजीको सुनाए। लक्ष्मणजीने व्याकुल होकर कहा—माँ ! तुम ऐसा मत बोलो। मैं जाता हूँ। लक्ष्मणजी वन्दन करके चले गये। जैसे ही लक्ष्मणजी आश्रममें-से गये कि रावण तपस्वीका वेष धारण करके भिक्षा माँगनेके लिए वहाँ आया। छाया-जानकी उसको भिक्षा देने बाहर आयी।

रावणने पूछा—तुम कौन हो ? यहाँ क्यों रहती हो ? सीताजीने कहा—महाराज दशरथके ज्येष्ठपुत्र रामजीकी मैं धर्म-पत्नी हूँ। लक्ष्मणजी मेरे देवर हैं। श्रीराम पिताकी आज्ञासे चौदह वर्ष दण्डकारण्यमे निवास करने आए हैं।......अब आप हमको अपना परिचय दो। तब रावण बोला—मैं राक्षसोंका राजाधिराज रावण हूँ।

त्वत्कामपरितप्तोऽहं त्वां नेतुं पुरमागत ॥

तुमको लेनेके लिए आया हूँ, इस वनके दुःखोंसे तुमको छुड़ाने आया हूँ। तपस्वी राम तुमको क्या सुख देंगे ? तुम मेरे साथ चलो। यह सुनकर सीताजी थोड़ी घबरायी परन्तु हिम्मत रखकर बोली—दुष्ट ! जरा खड़ा रह। सिंहके आगे शृगालकी क्या बिसात है ? अभी तुरन्त रामजी आ पहुँचेंगे और एक ही बाणसे तुझे यमपुरी भेज देंगे।

भएसि कालबस निसिचर नाहा।

श्रीसीताजीके वचन सुनते ही रावणको अतिशय क्रोध आया। रावणने महा-पर्वताकार स्वरूप धारण किया। सीताजी घबरायीं। रावण सीताजीको उठाकर ले जाने लगा। सीताजी क्रन्दन करने लगी। गृध्रराज जटायुने वह आर्तनाद सुना। वह दौड़ता आया। वृद्ध जटायु और रावणका भयंकर युद्ध हुआ। जटायुने रावणको घायल कर दिया। रावणने जान लिया कि यह वृद्ध है परन्तु बलवान है। रावणने कपट किया और जटायुसे कहा कि तेरे इष्टदेवकी तुझको सौगन्ध, तेरा मरण कहाँ है वह तू मुझको बता।

जटायुने कहा—मेरे पंख कोई काट डाले तो पीछे मैं जीवित नहीं रह सकता। अब तुम मुझको बताओ कि तुम्हारा मरण कहाँ है ? तेरे इष्टदेवकी तुझको सौगन्ध है। रावण तो दुष्ट था। उसने कपट करके कहा—मेरा मरण मेरे पगके अँगूठेमें है। मेरे पग-का अँगूठा कोई काट डाले तो मैं मरण पाऊँ।

जटायुने निश्चय किया कि इसके अँगूठेके ऊपर मैं चोंचका प्रहार करूँगा। रावणके पगके अँगूठेमें जटायु प्रहार करने गया तब कपटी रावणने तलवारसे इसके दोनों पंख काट डाले। जटायु घायल होकर गिर पड़ा, श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करने लगा।

एक महान् पतिव्रता स्त्रीको एक राक्षस ले जाता है, तब पक्षी भी इसके साथ युद्ध करते हैं। पक्षीसे भी यह सहन नहीं हुआ। जटायुको कपटसे घायल करके रावण श्रीसीताजीको लंकामें ले गया। प्रत्यक्ष सीताजीका तो रावण स्पर्श नही कर सकता था। श्रीसीताजीको छायाको—छाया-जानकीको वह ले गया।

स्वान्तःपुरे रहस्येतामशोकविपिनेऽक्षिपत्।
राक्षसीभिः परिवृतां मातृबुद्ध्यान्वपालयत् ॥

लंकामें ले जाकर रावणने श्रीसीताजीको अशोक वनमें रक्खा। भगवान शंकर पार्वती माँ-को समझाते हैं—श्रीसीताजी तो परमात्माकी आह्लादिनी शक्ति थीं। जहाँ श्रीसीताजी विराजती है वहाँ किसीको शोक-दुख होता ही नहीं है। इसीलिए इस वनका नाम है अशोक वन। अशोक वनमें श्रीसीता विराजीं हुई थीं। रावण श्रीसीताजीको मनानेका प्रयत्न करने लगा परन्तु यह श्रीसीताजीमें मातृभाव रखता था। रावणने विचार किया—मेरे वशमें होजानेपर में काम-भाव रखूंगा। अशोक वनमें रावणने राक्षसियोंका पहरा रक्खा।

कृशातिदीना परिकर्मवर्जिता
दुःखेन शुष्यद्वदनातिविह्वला।
हा राम रामेति विलप्यमाना
सीता स्थिता राक्षसवृन्दमध्ये ॥

श्रीसीताजी राक्षसियोंसे घिरी हुई थी। शरीर अति कृश था। सब प्रकारके शृंगार त्याग दिए थे। समस्त समय रामजीका ध्यान धरतीं थीं। ध्यान, संयोगमें नहीं होता, वियोगमें होता है। भागवतमें वर्णन आया है कि वसुदेव-देवकीजीके यहाँ प्रत्यक्ष श्रीकृष्ण प्रगट हुए तब प्रभुने वसुदेव-देवकीजी से कहा—तुम ध्यान धरो। में गोकुलमें जा रहा हूँ। ग्यारह वर्ष पीछे तुम्हारे पास आऊँगा। तब तक तुम ध्यान करो। परमात्मा पुत्ररूपमें प्रगट हों तो भी प्रभुका ध्यान करना पड़ता है।

श्रीकृष्ण भगवान्‌ने गोपियोंको भी आज्ञा की थी कि वियोगमें मेरा ध्यान बराबर होता है। वियोगमें प्रेम पुष्ट बनता है, वियोगमें गुणदर्शन होता है, संयोगमें अधिकाश भागमें दोषदर्शन होता है। वियोगमें अपेक्षा जागती है, संयोगमें कुछ-न-कुछ उपेक्षा जागती है। तुम्हारा प्रेम शुद्ध होगा तो मेरा ध्यान करते हुए तुम मेरे स्वरूपको प्राप्त करोगी।

ध्यान धरते हुए देह-भान भूल जाये, तब ही बराबर दर्शन होते हैं। जिसको याद आती है कि मै स्त्री हूँ, मै पुरुष हूँ। जो देहभानमें है, वह परमात्माके दर्शन बराबर नहीं कर सकता। ध्यानमें देहभान भूलता है तब ही परमात्माका साक्षात्कार होता है।

श्रीसीताजी भी रावणकी लंकामें अशोक वनमें श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान करतीं थी। रामजीकी सेवामें थी तब तो एक ही रामजीके दर्शन करती थी, परन्तु अब रामजीके वियोगमें, ध्यानमे ऐसी तन्मयता हो गयी थी कि लंकाके एक-एक झाड़में श्रीराम दीखते थे, झाड़के पत्ते-पत्तेमें श्रीरामजीके दर्शन होते थे।

रामायण अनेक हैं। अनेक रामायणोंमें अनेक कथा आती हैं। एक रामायणमे वर्णन आता है कि माताजी जब अशोक वनमे विराजी थी तब इनकी सेवामें जो अनेक राक्षसियाँ रहती थी, उनमे एक त्रिजटा नामकी राक्षसी थी। त्रिजटा माताजीकी सेवा करती थी।

एक बार अशोक वनमे श्रीसीताजी ध्यान करते-करते तन्मय हो गयी। तन्मयतामें जगतको तो भूली, परन्तु रामजीका ध्यान स्मरण करते-करते सीता हूँ, मै स्त्री हूँ यह भी भूल गयी। ध्यान करनेवाला धीरे-धीरे जगतको भूलता है। ध्यान करनेवाला उसके पीछे मै ध्यान करता हूँ यह भी भूलता है। ध्यानमें अतिशय तन्मयता हो जानेपर यह मै-को भी भूल जाता है। ध्यान करनेवाला जब मै-को भूलता है तब ध्यान करनेवाला ध्येयमें मिल जाता है। प्रारम्भमें तो ध्यान करनेवाला और ध्येय दोनो जुदा होते हैं परन्तु ध्यानमें तन्मयतासे जगतकी विस्मृति होती है। उसके पीछे ध्यान करनेवाला, मै ध्यान करता हूँ यह भी भूल जावे तब ध्याता और ध्येय दोनो एक होते हैं।

दृश्य पदार्थमें-से दृष्टि हट जाय और द्रष्टामें दृष्टि स्थित हो जाये तब आनन्द मिलता है। दृश्यके द्रष्टाको साक्षी कहते हैं। दृश्य दुःखरूप है। द्रष्टामात्र आनन्दरूप है। दृश्यमें-से दृष्टि हटाकर द्रष्टामे स्थिर करोगे तो आनन्द मिलेगा।

द्रष्टृदर्शन दृश्यानां विरामो यत्र वा भवेत्।
दृष्टिस्तत्रैव कर्तव्या.................. ॥

ध्यानमे द्रष्टा, दृश्य और दृष्टि एक होनी चाहिए। साधक, साध्य और साधन—एक बनने चाहिये। ध्याता और ध्यान, द्रष्टा, दृश्य और दर्शन—एक हो तो समझना कि ध्यानमें और दर्शनमे एकतानता हुई, तन्मयता हुई। परमात्माका ध्यान करते हुए जीव ईश्वरमे मिल जाय, ध्यान करनेवाला ध्येयमें मिल जाय, ध्यान, ध्याता और ध्येय तीनों एक हो जायें; तब त्रिपुटिका परमात्मामे लय होता है। यही अद्वैत

हैं। यही मुक्ति है। ज्ञानी पुरुष परमात्माके स्वरूपके साथ ऐसे मिल जाते हैं कि पीछे यह नही कह सकते कि मैं जानता हूँ कि मैं नही जानता।

अहमिनाशभाज्यहमहंतया ।
स्फुरति हृत् स्वयं परमपूर्णसत् ॥

जब देह-भान भूलता है, 'मैं' पनका नाश होता है, तब जीव और शिव एक होते हैं। उपनिषदमें एक दृष्टान्त है। खाँड़की पुतली सागरकी गहराई नापने गयी। वह सागरमें विलीन हो गयी, वापिस ही नहीं आयी। वह सागरके साथ मिल गयी। ईश्वरमें मिले हुए मनको कोई अलग नहीं कर सकता। जैसे-जैसे ध्यान करता है वैसे-वैसे जीवका लय परमात्मामें होता है। पीछे जीवमें जीवपन नहीं रहता। यह जीव खाँड़की पुतली जैसा है। परमात्मा समुद्रकी तरह व्यापक है। ब्रह्मतत्त्वको जाननेवाला ब्रह्मके साथ एकरूप होता है। जीव परमात्माका ध्यान करते भगवद्‌स्वरूपमें लीन हो जाय, उसके पीछे जगतमें वापिस नहीं आता। यद्‌गत्वा न निवर्तन्ते। इसको ही अद्वैत मुक्ति कहते हैं, कैवल्यमुक्ति कहते हैं।

ध्यान करनेसे मन स्थिर होता है। ध्यानके बिना दर्शन परिपूर्ण नहीं होते। भगवद्‌ध्यान में जगत भूले, तब ब्रह्मसम्बन्ध होता है। जिसको परमात्माका ध्यान करना है, वह एक आसनसे बैठता है। भूमिका असर मनके ऊपर होता है। ध्यान करनेवाला पवित्र और एकांत स्थानमें ध्यान करने बैठे।

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरासनमात्मनः।

× × ×

समं कायाशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥

ध्यानमें प्रथम शरीरको स्थिर करो, आँखको स्थिर करो। शरीर और आँख स्थिर न हों तब तक मन स्थिर नही होता। आँखमें परमात्माका स्वरूप स्थिर हो तब मन शुद्ध होता है।

ध्यान करने बैठो, तब संसारको मनमेंसे बाहर निकाल दो। ध्यान करनेवालेको पवित्र और परिमित अन्नका सेवन करना चाहिए। आहार अल्प और सात्विक होना चाहिए। शरीरको बहुत लाड़ करे, उसको परमात्मा नहीं मिलते। शरीरका बहुत लाड़ करोगे तो शरीर बिगड जाएगा। जिसका पेट भारी हो, जिसके पेटमें अजीर्ण हो, वह ब्रह्मचर्य नही पाल सकता। बहुत पेट भरकर भोजन नहीं करना। उपवास करो परन्तु अतिशय

उपवास नहीं करना। शरीरको बहुत त्रास दोगे तो इससे भी शरीर बिगड़ जाएगा। भगवानने आज्ञा की है—

> नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः।
> न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥
> युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
> युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥

ध्यान करनेके लिए परिमित आहार और परिमित निद्रा आवश्यक हैं। जिसको ध्यान करना है, वह कभी चोरी न करे। अनेक बार मनुष्य आँखसे और मनसे चोरी करता है। पराई वस्तु देखकर मनसे उसका चिन्तन करे, यह भी चोरी है। ध्यान करनेवालेको ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिए। प्रत्येक इन्द्रियसे ब्रह्मचर्य पालना चाहिए। बहुत लोग शरीरसे तो ब्रह्मचर्य पालन करते हैं परन्तु मनसे पालन नहीं करते। ब्रह्मचर्यका मनसे भंग हो जाये, वह शरीरसे भंग हुएके समान ही है। ध्यान करनेवालेको स्वधर्मका पालन करना चाहिए।

इस प्रकार ध्यान करते हुए ध्यान करनेवाला ध्येयमें मिल जाता है। श्रीसीताजी रोज ध्यान करती थीं परन्तु आज ध्यानमें ऐसी तन्मय हो गयी थी कि मैं रामजीकी पत्नी हूँ, यह भी याद नहीं रहा—स्त्री हूँ, यह भी भूल गयीं। श्रीरामके ही दर्शन करती थीं। जगतमें एकमात्र श्रीराम ही रह गये थे। श्रीरामके बिना अन्य कोई नहीं रहा, दृश्य और द्रष्टा दोनों एक हो गये। ध्याता और ध्येय—दो मिटकर एक हो गये। माताजीकी परिपूर्ण तन्मयता हो गयी। इस प्रकार तीन-चार घंटे तक तन्मयतामें देहभान भी रहा नहीं। तदनन्तर जागीं।

उस समय त्रिजटा वहाँ आयी। माताजीको वन्दन करके उसने कहा—आज तुम उदास क्यों लग रही हो? सीताजीने कहा—मुझे अब बहुत दुःख होता है। रामजीका वियोग अब मुझसे सहन होता नहीं। श्रीराम-वियोगमें श्रीरामजीका ध्यान करते-करते मैं आज तो इतनी तन्मय हो गयी कि मैं सीता हूँ, यह भी मुझे याद रहा नहीं। मैंने एक बार कथामें सुना था कि कीट, भँवरीका ध्यान करते-करते भँवरी बन जाता है।

> कीटको भ्रमरं ध्यायन् भ्रमरत्वाय कल्पते ॥

मुझे अब डर लगता है कि इसी प्रकार रामजीके वियोगमें रामजीका सतत ध्यान-स्मरण करते-करते मैं भी राम हो जाऊँ तो? त्रिजटाने कहा—माताजी! यह तो बहुत ठीक है। तुम रामजीका ध्यान करते-करते श्रीरामरूप हो जाओगी तो फिर तुमको

किसी दिन रोना रहेगा ही नहीं। तुम श्रीरामरूप होओ तो तुम ही रावणको मारो। तुम श्रीरामरूप होओ, यह ठीक है, इसमें क्या बुराई है ?

जीव-शिव एक हो जायें, तब जीव कृतार्थ हो जाता है। जीव ब्रह्म-चिन्तन करता-करता ब्रह्मरूप हो जाता है।

ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति।

श्रीसीताजी, रामजीका ध्यान करते-करते श्रीरामरूप हो जायं, वह तो त्रिजटाको बहुत ठीक लगता था। त्रिजटाको मनमें वह बहुत योग्य लगता था परन्तु श्रीसीताजीको यह अच्छा नहीं लगता था।

श्रीसीताजीने कहा—मैं रामजीका ध्यान करती हूँ, मुझको आनन्द आता है परन्तु मैं रामजीके चरणोंकी जब सेवा करती हूँ, श्रीरामजी प्रेमसे जब मुझको अपनाते हैं, श्रीराम-सेवामें मुझको जो आनन्द मिलता है, वह आनन्द राम होनेमें नहीं।

अरे ! खांड़ होनेमें आनन्द है अथवा खांड़ खानेमें आनन्द है ? खांड़को क्या खबर है कि मुझमें मिठास कैसी है ? श्रीसीताजीने कहा—मैं रामजीका ध्यान करते-करते राम हो जाऊँ, यह मुझको अच्छा नहीं लगता। तुमको ऐसा लगता है कि मैं राम हो जाऊँ तो मैं बहुत सुखी हो जाऊँगी ? मुझको तो श्रीरघुनाथजीके चरण गोदमें लेकर उनकी सेवा करनेमें जो आनन्द आता है, ऐसा आनन्द किसीमें नहीं। प्रभुने प्रेमसे मुझको अपनाया है। रामजीकी मैं दासी हूँ, राम-पत्नी हूँ। मुझे राम नहीं होना। मुझे तो रामजीकी सेवा करनी है। पूर्णाद्वैतमें सेवा किस प्रकार हो ? मैं भी रामरूप हो जाऊँ तो रामजीकी सेवा कौन करेगा ? मैं राम और वे भी राम—हम दो राम···तो पीछे सेवा कौन करेगा ? जगतमें पीछे श्रीसीता-रामजीकी जोड़ी भी नहीं रहेगी।

श्रीसीताजी, रामजीका ध्यान करते-करते रामरूप बनें, वह ज्ञानी पुरुषोंकी कैवल्य मुक्ति है परन्तु वैष्णवोंको परमात्माके साथ एकरूप होना अच्छा नहीं लगता। वैष्णव प्रेमसे तो प्रभुके साथ-एकरूप होनेपर भी सेवाके लिए थोड़े भेद-भावकी इच्छा रखते हैं।

भक्त्यर्थं कल्पितं द्वैतमद्वैतादपि सुन्दरम्।
अद्वैत सुखबोधाय द्वैतं भजन हेतवे॥
तादृशी यदि भक्तिः स्यात्सा तु मुक्तिः शताऽधिका॥

शंकराचार्य महाराजने ज्ञानसे अद्वैत माना है। ज्ञानी ज्ञानसे अद्वैत सिद्ध करते हैं। ज्ञान-मार्गमें जीव ईश्वरके साथ एक होता है, ईश्वरमें मिल जाता है। तब वैष्णव आचार्य थोड़ा द्वैत रखकर अद्वैत मानते हैं। भक्तिका आरम्भ भले द्वैतसे हो परन्तु उसकी समाप्ति

अद्वैतमें होती है। भक्त और भगवान अलग नही रह सकते। भगवानसे विभक्त न रहे, वह भक्त। जो जीव भगवानमें मिल गया उसको पीछे भगवान स्वयं-के स्वरूपसे अलग नहीं कर सकते। वैष्णव पहले प्रेमसे द्वैतका नाश करते हैं, अद्वैत प्राप्त करते हैं। तब बादमें वे काल्पनिक द्वैत रखते हैं कि जिससे कन्हैयाको गोपी-भावसे भज सकें। वैष्णव कहते हैं कि मुझे श्रीकृष्ण नहीं होना। मुझे तो गोपी होकरके श्रीकृष्णकी सेवा करनी है। निष्काम भक्ति उत्तम है। वैष्णव मुक्तिकी भी अपेक्षा नही रखते।

हरिना जन तो मुक्ति न माँगे माँगे, जन्मोजनम अवतार रे।
नित सेवा नित कीर्तन ओच्छव, नीरखवा नंदकुमार रे॥

भागवतमें भगवानने कहा है—

सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यकत्वमप्युत।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः॥

मेरे निष्काम भक्त किसी भी प्रकारकी मुक्तिकी इच्छा नहीं करते। सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य या सायुज्य—किसी भी प्रकारकी मुक्ति आवे तो वे मेरी सेवा छोड़कर नहीं लेते। मेरी सेवा विना दूसरी कोई भी इच्छा वे नहीं रखते।

अरे! मुक्तिकी बात तो दूर रही, भक्त तो भगवानके लिए नरकमें जानेको भी तैयार हैं। गोपियोंकी इस प्रकारकी निष्ठाका एक प्रसंग है—श्रीकृष्ण एक समय बीमार पड़ गये। प्रभु तो क्या बीमार पड़ते? परन्तु परमात्माने ऐसा नाटक किया। कोई दवा सफल नहीं हुई, तब प्रभुने कहा—कोई वैष्णव अपने चरणकी रज, दवाकी तरह दे तो यह रोग दूर हो जाये। श्रीकृष्णकी पटरानियोंके पास पदरजकी मँगनी की गयी। सब रानियोंने आश्चर्य अनुभव किया। उनको लगा कि प्राणनाथको रज देंगे तो बड़ा पाप लगेगा और नरकमें जाना पड़ेगा। नरकमें जानेको कौन तैयार हो? किसी भी रानीने पदरज नहीं दी। अन्योंके पास पदरजकी मँगनी हुई परन्तु प्रभुको पदरज कौन दे? कोई भी तैयार नही हुआ।

अंतमें बात गोपियोंके पास गयी। गोपियोंने कहा—हमारे श्रीकृष्ण बीमार अवस्थासे ठीक होते हों तो अपने चरणोंकी रज हम देनेको तैयार हैं। उसके बदलेमें हमे जो दुःख भोगना पड़ेगा वह हम भोग लेंगी। हमारा कन्हैया सुखी होता हो तो हम नरककी भी यातनाओंको सहन करने के लिये तैयार हैं। गोपियोंने चरणरज दे दी। श्रीकृष्णने यह सच्चे निष्काम प्रेमकी परीक्षा ली। गोपियाँ उसमें पार उतरीं। श्रीकृष्णका सुख ही हमारा सुख, ऐसे प्रेमका आदर्श गोपियोंका था। निष्काम भक्ति श्रेष्ठ है। गोपियों-को मुक्तिकी भी इच्छा नहीं थी।

धन्य वृन्दावन, धन्य ये लीला, धन्य ये व्रज नां वासी रे,
अष्ट महासिद्धि आँगणिये रे ऊभी, मुक्ति छे एमनी दासी रे।
भूतल भक्ति पदारथ मोटुं, ब्रह्मलोक माँ नाँहि रे·········

वेदान्ती मानते हैं कि आत्माको बंधन नहीं तो मुक्ति कहाँसे ? वैष्णव मानते है कि मुक्ति तो मेरे भगवानकी दासी है। दासीकी अपेक्षा मेरे भगवान बड़े हैं। मुक्तिकी अपेक्षा भक्ति श्रेष्ठ है। निष्काम भक्तिमें मुक्ति की तुलनामें दिव्य आनन्द है। जिसको भक्तिका आनन्द नहीं मिला, वही मुक्तिकी आशा रखता है। मुक्तिकी तुलनामें भक्तिमें अलौकिक आनन्द है। भक्तिमें जिसको आनन्द मिल जाता है, उसको मुक्तिका आनन्द तुच्छ लगता है।

वैष्णव आचार्य भेदाभेदभावको मानते हैं। उपनिषदमें ईश्वरका वर्णन आता है कि रसो वै सः—ईश्वर रसरूप है। जलमें रहनेवाली मछली पानी नहीं पी सकती। पीना हो तो मछलीको बाहर पानीकी सतहसे ऊपर आना पड़ता है। वह बाहर आकर पानी पीती-पीती अन्दर पानीमें जाती है। पानीमें सब प्रकार डूबा हुआ पानीका स्वाद नहीं ले सकता। उसी प्रकार जीव ईश्वरमें डूब जानेके पश्चात् ईश्वरके स्वरूपका रसानुभव नहीं कर सकता। व्यापकब्रह्ममें लीन हुआ उसमें से किस प्रकार पृथक हो सकता है ? जो ब्रह्मरूप हो गया, जो ब्रह्मरसमें डूब गया वह फिर, परमात्माके रसात्मक स्वरूपका अनुभव नहीं कर सकता। जीव ब्रह्मरूप हो जाये, इससे दुःखकी निवृत्ति तो हो जाती है परन्तु आनन्दका अनुभव नहीं होता।

ब्रह्म जो रसात्मक है, आनन्दात्मक है, उसका अनुभव लेनेके लिए जीवको थोड़ा अलग रहना पड़ेगा, थोड़ा द्वैत रखना पड़ेगा। इसी कारणसे वैष्णव महापुरुष थोड़ा द्वैत रखकर भगवानके सेवा-स्मरणमें कृतकृत्यता अनुभव करते हैं। वे कहते है कि मैं अपने परमात्माका अंश हूँ। मैं अपने भगवानकी गोपी हूँ। मुझे अपने परमात्माके साथ एक होना नहीं। मुझे परमात्माकी सेवा करनी है। ज्ञानियोंकी कैवल्यमुक्ति है। वैष्णवों-की भागवती मुक्ति है। वैष्णवोंको भगवद्-सेवामें इतना आनन्द आता है कि उनको मुक्ति मिलती हो तो भी चाहते नहीं।

ज्ञानमार्ग कठिन माना गया है। ज्ञानमार्गमें इन्द्रियोंके साथ झगड़ा करना पड़ता है, सब इन्द्रियोंको वशमें रखना पड़ता है। समाधिमें सभी इन्द्रियोंके दरवाजे बन्द करने पड़ते हैं। आँख-नाक बन्द करनी पड़ती हैं। इन इन्द्रियोंके दरवाजोंको बन्द रखनेपर भी वासना-रूपी धूल उनमें आ जाती है। योगीजन भी जब तक आँख बन्द रखकर समाधिमें बैठते हैं, तब तक उनका मन स्थिर रहता है परन्तु योगमें-से उठनेके पश्चात् आँख

उघाड़नेपर मन संसारमें चञ्चल होने लगता है। समाधिमें-से जगनेके बाद मन कूदफांद करने लगता है। मनके ऊपर बलात्कार करनेवालेको किसी समय मन धोखा दे जाता है। विश्वामित्र ऋषिने आंख बन्द करके सात हजार वर्षकी समाधि लगायी, परन्तु आंख उघाड़नेके पश्चात् मेनकामें फँस गये। आंख उघड़ी हो और समाधि लग सके वह समाधि सच्ची है। आंख-कान उघडे रहें ऐसी ही समाधि लगानी चाहिए।

यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधयः।

भक्ति मार्गमें इन्द्रियोंके साथ झगड़ा नही होता। भक्तिमार्गमें परमात्माको कान देने होते हैं आंख परमात्माको देनी होती हैं। आंख उघाडनेपर जगत न दीखे और परमात्मा ही दीखे, यही सच्ची समाधि है, आंख मिचनेके बाद समाधि लगे तो समाधि कच्ची है। समाधि उघड़ी आंखोंसे लगनी चाहिए। सच्चे ज्ञानीको खुली आंखोसे समस्त जगत ब्रह्ममय दीखता है। खुली आंखोंसे प्रभु न दीखें तो ज्ञान कच्चा है।

गोपियोंकी खुली आंखोसे समाधि लगती है। गोपियां आंख-कान बन्द करके बैठतीं नही। गोपियां आंख-कान खुले रखकर श्रीकृष्णके ध्यानमें तन्मय बन जाती है। गोपियां आंखमें श्रीकृष्णको रखती हैं, कानमें श्रीकृष्णको रखती हैं। उनकी दृष्टि जहाँ जाती है, वहीं उनको श्रीकृष्णके दर्शन होते हैं। गोपियोकी दृष्टि परमात्मामें ही स्थिर थी। वे जहाँ जातीं, वहीं उनको कन्हैया दीखते थे। श्रीकृष्ण मथुरामें विराजते थे तो भी गोपियोंको गोकुलमें दीखते थे।

श्रीकृष्णका संदेश लेकर उद्धवजी मथुरासे गोकुलमे आए, उस समय गोपियोंने उद्धवजीसे कहा—उद्धव! किसका सदेश लाये हो? कन्हैया तो हमारे साथ ही हैं। व्यापक ब्रह्मको क्या तुम अकेले मथुरामें रखते हो? हमारे श्रीकृष्ण तो वृक्षोमें, गायोंमें, हममें—सबमें हैं, उनको तुम कहते हो कि श्रीकृष्ण मथुरामें विराजते हैं? श्रीकृष्ण तो हमारे पास ही हैं। हमारे हृदयमें ही हैं, हमारे रोम-रोममें हैं।

उद्धवको श्रीकृष्ण मथुरामें दीखते हैं परन्तु गोपियोको तो जहाँ-जहाँ उनकी दृष्टि जाती है, वहाँ सर्वत्र श्रीकृष्ण दिखायी देते हैं। परमात्माके प्रत्यक्ष दर्शन होंगे तो उसके बाद योगसमाधिकी आवश्यकता रहती नही। इन गोपियोंकी खुली आंखोंसे समाधि लगती है। अनायास ही समाधि लगी रहती है।

उद्धवजी गोपियोंसे कहते हैं, तुम निर्गुण-निराकार ब्रह्मका आराधन करो, तो गोपियाँ उत्तर देती हैं कि हमको तो खुली आंखोसे सर्वत्र साकार ब्रह्म श्रीकृष्णका दर्शन होता है। तो इन साकार ब्रह्मको छोड़कर तेरे निराकार ईश्वरका ध्यान-चिंतन कौन करे उद्धव! जिसको खुले नेत्रोंसे ब्रह्म न दीखे, वह नेत्र बन्द करके ललाटमें ब्रह्मके दर्शन करके-

का साधन करता है। हम तो सर्वत्र श्रीकृष्णके दर्शन करती हैं, उनका चिंतन करती हैं, उनका ध्यान करतीं हैं।

उद्धव विचार करते हैं कि मैं व्यापक ब्रह्मका चिन्तन करता हूँ परन्तु मुझे व्यापक ब्रह्मका अनुभव हुआ नहीं। ऐसा अनुभव तो ये गोपियाँ करती, हैं। ज्ञान होना एक बात है परन्तु उसको जीवनमें उतारना, उसका अनुभव करना, अलग बात है।

गोपियोंके श्रीकृष्ण-प्रेमको देखकर उद्धवजीका ज्ञानाभिमान उतर गया। प्रेम-भक्तिके बिना ज्ञान व्यर्थ है, इसका अनुभव हुआ। ज्ञानकी अपेक्षा प्रेम श्रेष्ठ है, ऐसा विश्वास हुआ। जहाँ प्रेम हैं वहीं परमात्मा है। उद्धवजीने गोपियोंके चरणोंमें वन्दन किया। उद्धवजी गोकुलमें गये थे गुरु बनकर परन्तु वहाँसे वापिस लौटे शिष्य बनकर। उद्धवजी-को अब कैवल्य मुक्तिकी इच्छा न रही। उनको अब वैष्णवोंकी तरह श्रीकृष्णका दासानु-दास बनकर रहना था। श्रीकृष्णके भक्तोंकी सेवामें रहना था और इस कारणसे उद्धवजीने भगवानके पास गोपियों जैसी अनन्य भक्तिकी याचना की। श्रीकृष्णसे कहा—मुझे अन्य कुछ भी नहीं चाहिए। मुझे केवल प्रेमलक्षणा भक्ति दीजिए। उद्धवजीने अन्तमें अभिलाषा की है कि गोपियोंकी चरणरजका मुझे स्पर्श प्राप्त हो। इसके लिए वृन्दावनमें मैं लता या वृक्ष बनूँ।

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्॥

महामुनियोंके द्वारा भी शोधन किए जाने योग्य भगवानको गोपियोंने बिना प्रयासके ही प्राप्त कर लिया। ऐसी इन गोपियोंकी चरणरजमें स्नान करके मैं धन्य बन जाऊँ। इस वृन्दावनमें इन गोपियोंकी चरण-रजका सेवन करता हुआ वृक्ष, लता अथवा वनस्पतिमें-से किसी भी जातिका मुझे जन्म मिल जाय तो मैं कृतार्थ हो जाऊँगा। प्रभो! मेरी इतनी ही याचना है।

वैष्णवोंको भगवद्-सेवामें ही आनन्द आता है। इनको मुक्ति सुहाती नहीं। श्रीसीताजीने त्रिजटासे कहा—मुझे तो श्रीराम-सेवामें ही आनन्द आता है। मुझे राम बनना नहीं। मुझे रामजीकी सेवा करनी है। रामजीका ध्यान करते-करते मैं राम हो जाऊँगी तो श्रीसीतारामजीकी जोड़ी जगतमें नहीं रहेगी।

त्रिजटाने कहा—माताजी। तुम चिन्ता न करो। श्रीसीतारामजी तो जगतमें अखण्ड बिराजते हैं। तुम राम बन जाओगी तो रामजी तुम्हारा ध्यान करते-करते सीता बन जायेंगे और तुम्हारी सेवामें आयेंगे। श्रीसीताजीको आनन्द हुआ। श्रीसीताजी अशोकवनमें एकान्तमें परमात्माके मंगलमय नामका जप करते-करते ध्यानमें तन्मय होकर रहने लगीं।

रामजीकी लीला

रामो मायाविनं हत्वा राक्षसं कामरूपिणम् ।
प्रतस्थे स्वाश्रमं गन्तुं ततो दुरादर्श तम् ॥
आयान्तं लक्ष्मणं दीनं मुखेन परिशुष्यता ।

भगवान शंकर माता पार्वतीको कथा सुनाते हैं। इस ओर श्रीरामचन्द्रजी माया-मारीचको मारकर आश्रमकी ओर वापिस लौटे। मार्गमें दीन और उदास मुखवाले लक्ष्मणजीको आता हुआ देखा। प्रभुने ऐसा विचार किया कि मैं ऐसा नाटक करूँ, ऐसी लीला करूँ कि लक्ष्मणजी भी घबरा जायें और श्रीसीताजीकी खोजके लिए कुछ प्रयत्न करें।

श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीसे पूछा—मैंने तुम्हे सीताजीकी रक्षा करनेकी आज्ञा दी थी, फिर तुम आश्रम छोड़कर यहाँ क्यो आए ?

गहि पद कमल अनुज कर जोरी। कहेउ नाथ कछु मोहि न खोरी ॥

लक्ष्मणजीने हाथ जोड़कर कहा—हे भाई! मेरी भूल नही। श्रीसीताजीने अच्छे न लगनेवाले शब्द मुझको सुनाए, इसीसे मैं चला आया। श्रीरामजीने कहा—लक्ष्मण! वह भले ही कहती परन्तु तुमको तो विचार करना था। तुम चले आए। यह ठीक नहीं किया।

सेवक होना सहज नहीं, बहुत कठिन है। ज्ञानी होना सरल है, योगी होना सरल है परन्तु सेवक होना अतिशय कठिन है। सेवक वह हो सकता है जो मनको मारता है। सेवक वह हो सकता है जो अतिशय सहन करता है। सेवकके लिए तो मालिकका मन ही मेरा मन, मालिककी इच्छा ही मेरी इच्छा। अधिकांशतः सेवकके माथे अपयश आता है। जगतमें अपयश मिले, अपमान मिले, इसका दुःख जिसको जरा भी नहीं होता, वह ही सेवा कर सकता है। निंदाका असर जिसके मनपर होता है वह सेवा क्या करेगा ? वह तो ऐसी अपेक्षा रखता है कि लोग मेरी प्रशंसा करें। इसको क्या प्रभुसे प्रेम है ? लोगोको अच्छा लगे सो कहें परन्तु निंदाका असर जिसके ऊपर जरा भी नही होता, वह ही सेवा कर सकता है।

रामस्तु लक्ष्मणं प्राह तथाप्यनुचितं कृतम् ॥

रामजी लक्ष्मणजीको उलाहना देते हुए कहने लगे—तुमने यह बुरा किया। मैंने तुमसे कहा था फिर भी तुम क्यों यहाँ चले आये ? बड़े दो प्रकारसे बोलते हैं। लक्ष्मणजी नहीं आए होते तो कदाचित् रामजीने ऐसा कहा होता कि तु क्यों नहीं आया ? तेरी भाभीने जो कहा, वह करना चाहिए था न ? मैं और तेरी भाभी क्या कुछ अलग हैं ? रामजी ऐसा भी कह सकते थे और लक्ष्मणजी आए तब उन्होंने कहा कि वह भले ही ऐसा कहें, उनको इतना विवेक नहीं है। तुमको तो विचार करना चाहिए। तुम उनको छोड़कर चले आए, यह बहुत बुरा किया। मालिक तो चाहे जैसा कह सकता है। सेवकको उसे सुनना पड़ेगा।

लक्ष्मणजी शर्माये। उनके मनमें आया—मैं छोटा भाई हूँ और सेवा करता हूँ, इसीलिए इस प्रकार मुझको उलाहना देते हैं। ये दोनों प्रकारसे दोष दे सकते हैं। मुझसे तो इनके सामने जवाब नहीं दिया जा सकता। लक्ष्मणजी संकोच करने लगे। प्रभुने देखा—लक्ष्मणको मैंने उलाहना दिया, उसका इसको दुःख हुआ है। यह मेरा छोटा भाई है। यह मेरी बहुत सेवा करता है इसके बदलेमें इसको मैं क्या दूँ ? कृष्णावतारमें मैं छोटा भाई होकर इसकी सेवा करूँगा ? कृष्णावतारमें लक्ष्मणको मैं बड़ा भाई बनाऊँगा। कृष्णावतारमें लक्ष्मणजी बलराम हुए।

रामजीने कहा—लक्ष्मण ! मुझको दुःख हो रहा है। मुझको ऐसा लगता है कि कोई राक्षस सीताजीको ले गया। श्रीराम-लक्ष्मण दौड़ते हुए आश्रममें आए। आश्रममें सीताजी नहीं थीं। तब प्रभु विलाप करने लगे। मेरी सीता कहाँ गयी ? श्रीरामचन्द्रजीने ऐसा विलाप किया कि वनके पशु-पक्षी भी दुःखको प्राप्त हुए।

रामः परात्मा पुरुषः पुराणो नित्योदितो नित्यसुखो निरीहः।
तथापि मायागुणसङ्गतोऽसौ सुखीव दुःखीव विभाव्यते बुधैः॥

श्रीराम आनन्दरूप हैं। परमात्माको सुख, दुःखका स्पर्श नहीं होता। यह तो ऐसी लीला करते हैं। परमात्मा जो कुछ करते हैं, उसका नाम लीला और मनुष्य जो कुछ करता है उसका नाम क्रिया।

श्रीशङ्कराचार्य स्वामीका सिद्धान्त है—परमात्मा निष्क्रिय हैं परन्तु जीव मायाके कारण उनमें क्रियाका आरोप करता है। ईश्वरमें क्रिया नहीं हो सकती, मायासे ईश्वरमें क्रियाका आरोप होता है। मायाकी क्रिया ईश्वरके अधिष्ठानमें भासती है। लोग गाड़ीमें बैठकर अहमदाबाद जाते हैं, तब कहते हैं—अहमदाबाद आया। क्रिया अहमदाबादकी नहीं परन्तु गाड़ीकी है।

ईश्वर व्यापक हैं, निराकार रूपसे सर्वत्र रहनेवाले हैं। ईश्वर यदि किसी ठिकाने आवें-जावें तो उनको व्यापक क्यों कहा जाए? व्यापक उसको कहते हैं, जिसका किसी ठिकाने अभाव नहीं। ब्रह्म सर्वव्यापक और निर्विकार है। ब्रह्मकी कोई क्रिया नहीं। लोटे-में-से पानी बाहर निकाल सकते हैं परन्तु उसका आकाश बाहर नहीं निकाला जा सकता। ईश्वरको कोई नहीं निकाल सकता। ईश्वर निष्क्रिय है।

आत्मनो विक्रिया नास्ति।

निष्क्रिय ईश्वरमें मायासे क्रिया भासती है।

व्यापृतेष्विन्द्रियेष्वात्मा व्यापारीवाविवेकिनाम्।
दृश्यतेऽभ्रेषु धावत्सु धावन्निव यथा शशी॥

आकाशमें बादल दौड़ते होते हैं, तब ऐसा लगता है कि चंद्रमा दौड़ रहा है। दौड़नेकी क्रिया बादलकी है, चंद्रमाको नहीं, फिर भी चंद्रमाकी क्रिया है, ऐसा भासता है। उसी प्रकार देहमें—इन्द्रियोंमें जो क्रिया है, वह अन्दर रहनेवाली आत्मा करती है, ऐसा अज्ञानियोंको लगता है। उपाधिको लेकर क्रिया भासती है। श्रीशङ्कराचार्य स्वामीका यह सिद्धान्त दिव्य है। अकेली माया कुछ क्रिया नहीं कर सकती। माया क्रिया करती है, वह ईश्वरके आधारपर करती है। क्रिया मायाकी और सत्ता ईश्वरकी। इन दोनोंसे जगत उत्पन्न हुआ है।

महाप्रभुजीका भी सिद्धान्त दिव्य है। वैष्णव मानते हैं कि ईश्वरकी क्रिया नहीं है यह बात सच्ची, परन्तु ईश्वर लीला करते हैं यह बात भी सच्ची है। ईश्वर क्रिया नहीं करते, लीला करते हैं। जगतकी उत्पत्ति लीला है, स्थिति लीला है और संहार भी लीला है।

क्रिया और लीला—इन दोनोंमें बहुत फेर है। जहाँ थोड़ा भी स्वार्थ है और मैं करता हूँ ऐसा अभिमान है—स्वार्थ और अभिमानके साथ जो करनेमें आता है, उसका नाम क्रिया है। जहाँ कोई स्वार्थ नहीं और मैं करता हूँ, ऐसा अभिमान नहीं—निःस्वार्थतः और निरभिमानतः जो करनेमें आवे, उसका नाम लीला है।

दोनों सिद्धान्त सच्चे हैं। ईश्वर निराकार और निर्विकल्प हैं और माया क्रिया करती है। ईश्वर परिपूर्ण सम है और जगत विषम है, विषमता तो इस मायाकी है। यह सिद्धान्त भी सच्चा है, और ईश्वर स्वेच्छासे लीला करते हैं और अनेक स्वरूप धारण करते हैं, मैं करता हूँ, ऐसी भावनाके बगैर निष्काम भावसे दूसरोंको सुखी करनेके लिए लीला करते हैं—यह सिद्धान्त भी सच्चा है।

रामजी जो करते है वह लीला कही जाएगी, परन्तु मनुष्य जो कुछ करता है यह लीला नहीं कही जा सकती, क्रिया कहलाएगी। क्रिया बंधन करती है और लीला बंधनमें-से मुक्ति देती है। जीवकी समस्त क्रिया, भगवानकी समस्त लीला। श्रीकृष्ण करे उसका नाम लीला, मनुष्य करे उसका नाम क्रिया। श्रीकृष्ण माखनकी चोरी करते है, वह लीला कहलाती है परन्तु कोई मनुष्य चोरी करे, यह लीला नही कही जा सकती। करो तो खबर पडे कि क्या होता है।

परमात्मा जैसी लीला और कोई नही कर सकता। मनुष्य कोई भी क्रिया करता है तब कुछ-न-कुछ स्वार्थ रखकर करता है। प्रभु जो लीला करते है उसमें परमात्माका कोई स्वार्थ नही। ये तो सबके लिए ही प्रत्येक लीला करते हैं। जिस प्रकार गगाजीको प्यास नहीं लगती, अग्निनारायणको ठंडी हवा नही लगती, सूर्यनारायणके घर दीपकी जरूरत नही, उसी प्रकार आनन्दरूप ईश्वरको किसी भी वस्तुकी जरूरत नही। ईश्वर पूर्ण निरपेक्ष है, निःस्वार्थी हैं। इश्वरको कोई सुखकी इच्छा नही—कन्हैया चोरी करते हैं, वह दूसरोके लिए करते है। परमात्मा हम सबके लिए समस्त लीला करते हैं। श्रीमद्भागवतमें शुकदेवजी महाराजने कहा है—

संसारसिन्धुमतिदुस्तरमुत्तितीर्षोर्नान्यः प्लवो भगवतः पुरुषोत्तमस्य ।
लीलाकथारसनिषेवणमन्तरेण पुंसो भवेद्‌ विविधदुःखदवार्दितस्य ॥

संसारके अनेक प्रकारके दुःखोंसे आर्त्त हुए मनुष्यके लिये भगवानकी लीला-कथाका रस-सेवन ही उत्तम रसायन है। इस अत्यन्त दुस्तर संसार-सागरको पार करजानेकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यके लिए भी परमात्माकी लीला-कथाका आश्रय ही एकमात्र नौका है। भगवानकी लीला-कथा मोक्ष देनेवाली है।

तुलसीदासजीने कहा है।

जीवनमुक्त महामुनि जेऊ। हरि गुन सुनहिं निरंतर तेऊ।
भवसागर चह पार जो पावा। राम कथा ता कहँ दृढ़ नावा॥
बिषइन्ह कहँ पुनि हरिगुनग्रामा। श्रवन सुखद अरु मन अभिरामा॥

परमात्माकी लीला-कथा दुःखसे तप्त हुएको ठंडक देती है, मनको शांत करती है। कथामृत कुछ साधारण नहीं। कितना भी दुःखी जीव हो, संसार-तापसे उसका हृदय अतिशय तप्त हुआ हो, फिर भी वह कथामें जाकर बैठे और वक्ता प्रेमसे कथा करता हो तो कथा सुननेसे वह स्वयंके दुःखको भूल जाता है। मनुष्य कथा न सुने, तब तक भय, शोक और मोह इसको त्रास देते हैं, रुलाते हैं। जो कथा सुनते हैं, उनको स्वरूपका भान

होता है कि मैं भगवानका हूँ, मैं प्रभुकी सेवा-स्मरण करता हूँ। मेरी समस्त चिन्ता मेरे भगवानकी है। कथा सुननेसे मन शान्त होता है।

शुकदेवजी जैसे जीवन्मुक्त वर्णन करते हैं कि स्वर्गके अमृतकी अपेक्षा भी कथामृत श्रेष्ठ है। स्वर्गका अमृत तो कथामृतके आगे तुच्छ है। बहुत यज्ञ करे, दान-पुण्य करे, वह जीव स्वर्गमें जाता है। वहाँ इसको अमृत मिलता है, सुख होता है। स्वर्गका अमृत पीनेसे पुण्यका नाश होता है, किन्तु कथामृतका पान करनेसे पापका नाश होता है।

स्वर्गका अमृत पीनेसे विकार-वासना बढ़ती हैं। जब कि कथामृतके पानसे इनका विनाश होता है। स्वर्गका अमृत बहुत थोड़ा है, जब कि कथामृत तो व्याप्त है। जो वस्तु बहुत थोड़ी होती है उसकी सुरक्षा करनी पड़ती है। स्वर्गके देवता उसको घड़ेमें बहुत सुरक्षित रखते हैं, बहुत ही देख-रेखसे रखते हैं। जल्दी किसीको वह नही देते। स्वर्गका अमृत छूटसे सबको नही मिलता, कारण कि वह थोड़ा है। कथामृत तो सबको मिलता है। गरीब हो वह भी कथा सुन सकता है। शास्त्रमें ऐसा लिखा है कि कोई हजार-दो-हजार रुपया खर्च करे, उसको कथा-श्रवणसे जितना पुण्य मिलेगा, उतना ही पुण्य एक पैसेका भी खर्च किए बिना एक गरीब वैष्णव वन्दन करके बैठे और प्रेमसे कथा सुने, उसको भी मिलता है। स्वर्गका अमृत अल्प है, कथामृत अनल्प है, अनंत है, व्याप्त है।

स्वर्गका अमृत सबको सुलभ नही। जो श्रीमंत हैं, जिन्होने यज्ञ किया है, दान-पुण्य किया है, उनको ही वह प्राप्त होता है। कथामृत तो सबको सुलभ है। प्रभुकी लीला-कथा सुननेसे जीवका कल्याण होता है। कथा सुने पीछे भक्ति करो, वह अलग बात है परन्तु कथा सुननी भी भक्ति है। तुम प्रेमसे जिसकी कथा सुनते हो वह तुम्हारे मनमे आता है। श्रीराम, श्रीकृष्ण कानमेंसे अंदर प्रवेश करते हैं। परमात्माकी लीला-कथा सुनने-से कल्याण होता है। अरे, प्रभुकी लीला-कथा सुनना ही कल्याणमय है।

कर्मकाण्डकी कथा सुनने मात्रसे कल्याण नही होता, कर्मका अनुष्ठान करे तो कल्याण है। कोई बड़ी-बड़ी बातें करता है—मुझे विष्णुयज्ञ करना है, बारहकुण्डी करना है और एक सौ आठ ब्राह्मणोका वरण करना और खीरका हवन करना है। ऐसी बातें करे अथवा सुने उससे कोई कल्याण होता है क्या ? इसका अनुष्ठान हो तो ही कल्याण है। अनुष्ठान बिना कर्म कल्याणप्रद नहीं।

उसी प्रकार ब्रह्मज्ञानकी भी बातें करे अथवा सुने, इससे बहुत कल्याण नही परन्तु ब्रह्मका अनुभव करे तो कल्याण होता है। परमात्माके स्वरूपका अनुभव करे तो ही ब्रह्मविद्या सफल होती है। ब्रह्मविद्याकी केवल बातें करनेसे अथवा सुननेसे सफलता नहीं मिलती। जगत खोटा है और ब्रह्म आनन्दरूप है, ईश्वरके बिना जो कुछ भासता है, वह

मिथ्या है और दुःखरूप है, परमात्मा हृदयमें हैं। मैं प्रभुका स्वरूप हूँ, मैं ब्रह्मसे अलग नहीं। ऐसी ब्रह्मविद्याकी बातें करे और सुने, वह ठीक है परन्तु इससे कुछ कल्याण नहीं होता। ब्रह्मज्ञानकी बातें सुननेके बाद प्रवचन पूरा होते ही देखे कि मेरी चप्पल तो कोई नहीं उठाकर ले गया? उस समय याद आती है कि ठीक है कि जगत खोटा है, दुःखरूप है, आनन्दरूप ब्रह्म तो मेरे हृदयमें ही हैं। पर इस समय तो चप्पल हो तो ही आनन्द है, न हो तो दुःख है······ब्रह्मविद्या सुननेसे विशेष लाभ नहीं परन्तु ब्रह्मका अनुभव करे तो लाभ है।

अनुष्ठान करे तो ही कर्मकाण्ड कल्याण करता है। परमात्माकी अनुभूति करे तो ब्रह्मविद्या यथार्थ है जब कि प्रभुकी लीला-कथा तो श्रवण मात्रसे ही कल्याण कर देती है। तुम कथा सुननेके पीछे सेवा-स्मरण करो यह ठीक है परन्तु मान लो कि कोई जीव कथा सुननेके पीछे सेवा-स्मरण नहीं करता। फिर भी वह जितने समय प्रेमसे कथा सुनता है, उतने समय जगतको भूल जाता है। उतने समय वह भक्ति ही करता है।

रामजीने लीला की है, वह इसलिए कि लोग भविष्यमें मेरी कथा सुनेंगे तो इतने समय तक तो जगतको भी भूल जायेंगे और मेरा स्मरण करेंगे और इनका कल्याण हो जाएगा।

मायया मोहिताः सर्वे जना अज्ञानसंयुताः।
कथमेषां भवेन्मोक्ष इति विष्णुर्विचिन्तयन् ॥
कथां प्रथयितुं लोके सर्वलोकमलापहाम्।
रामायणाभिधां रामो भूत्वा मानुषचेष्टकः ॥

विष्णु भगवानने विचार किया कि लोग मायामें फँसे हुए हैं, अज्ञानमें डूबे हुए हैं। इनका उद्धार किस रीतिसे हो? वे मेरी लीला-कथा सुनें तो इनका कल्याण हो। इसीलिए रामायण नामकी लीला-कथाका संसारमें विस्तार करनेके लिए मानवरूप धारण करके परमात्मा श्रीरामरूपमें प्रगट हुए।

कथामें तुमको एक बड़ा लाभ यह होता है कि घंटे-दो-घंटे जितने समय तुम शांतिसे कथा सुनते हो, उतने समय तुम जगतको भूल जाते हो। कथामें जगतकी विस्मृति होती है। यहाँ जितने बैठे हैं इनको शान्ति है परन्तु जो कथामें नहीं बैठे हैं, जो बाहर हैं, बहिर्मुख हैं, उनके हृदयमें तो संभव है कि होली सुलग रही होगी। उनको शान्ति नहीं। कथामें बैठनेसे संसारको भूला जाता है। रामजी लीला इसलिए करते हैं कि लोग मेरी लीला-कथा सुनेंगे, तो मुझको याद करेंगे। मेरी कथा सुनेंगे तो मुझमें थोड़ा प्रेम भी जागृत होगा। मेरी कथा सुनेंगे तो जगतको भूल जायेंगे, इनका कल्याण होगा।

श्रीसीताजीके वियोगमें रामजी रोते हैं, ऐसा रामायणमें लिखा है। अरे, रोना तो मायाका धर्म है। दुःख किसको होता है? दुःख तो मायामें फँसे हुए जीवको होता है। श्रीराम तो मायासे परे हैं, आनन्दरूप हैं। दुःख अज्ञानसे आता है। रामजीको तो अज्ञानका स्पर्श होता ही नहीं।

नाहो न रात्रिः सवितुर्यथा भवेत्
प्रकाशरूपाव्यभिचारतः क्वचित्।
ज्ञानं तथा ज्ञानमिदं द्वयं हरौ
रामे कथं स्थास्यति शुद्धचिद्घने॥

सूर्यके पास अंधकार जा सकता नहीं। सूर्यनारायण जहाँ हैं वहाँ तो केवल प्रकाश ही है। जिस प्रकार सूर्यनारायणके पास अन्धकार नहीं आ सकता; उसी प्रकार श्रीरामजीके पास अज्ञान भी नहीं आ सकता।

अज्ञानमें जीव रोता है, दुःखी होता है। रामजी भले ही रोवें परन्तु रामजीको दुःख नहीं होता। यह आनन्दस्वरूप हैं परन्तु शुद्ध ब्रह्म मायाके संसर्ग बिना अवतार नहीं ले सकता। सौ टंचका सोना इतना पतला होता है कि उसमेंसे आभूषण गढा जा सकता नहीं। उसे गढ़नेके लिए सोनेमें दूसरी धातु मिलानी पड़ती है। उसी प्रकार परमात्मा भी मायाका आश्रय लेकर प्रगट होते हैं परन्तु ईश्वरको माया बाधक नहीं होती, जीवको माया, बाधक होती है।

माया बस्य जीव अभिमानी। ईश बस्य माया गुन खानी॥
परबस जीव स्वबस भगवंता.........................

श्रीराम अब नाटक करने लगे कि मेरी सीता कहाँ गयी? सीताजीका वियोग मुझसे सहन होता नहीं। कामी पुरुष स्त्रीके वियोगमें जिस प्रकार रोता है, उसी प्रकार थोड़ा नाटक प्रभुने किया।

कामानां दर्शयन्दैन्यम्।

श्रीसीतारामजीका कभी वियोग नहीं। ये तो सदैव साथ ही विराजते हैं परन्तु प्रभुने थोड़ी लीला की। श्रीरामकी, श्रीकृष्णकी लीलामें तुमको मायाका धर्म दीखे तो भी ऐसा मानो कि ये मायारहित शुद्ध परमात्मा हैं। रोना तो मायाका धर्म है, अज्ञानका धर्म है। श्री रामचन्द्रजी भले ही रोये परन्तु अन्दरसे वे सावधान हैं। वे आनन्दरूप ही है। मनुष्य जब रोता है तब वह अपने स्वरूपको भूल जाता है परन्तु परमात्मा जब रोते हैं तो अपने स्वरूपमें स्थिर होकर ही रोते हैं।

श्रीराम, श्रीकृष्णकी लीलामें तुमको मायाका धर्म दिखायी पड़ेगा। ऐसा लगेगा कि हमारे जैसा ही भगवान कर रहे हैं। भगवानमें और हममें क्या कोई भेद है? भेद केवल यह है कि जीव स्वरूपको भूला हुआ है परन्तु परमात्मा लीला करते हैं, उस समय भी अपने स्वरूपको नहीं भूलते, अपने स्वरूपमें स्थिर होकर ही लीला करते हैं। भगवान आनन्दरूप हैं। प्रभुका स्मरण जो करते है उनको भी दुःख नहीं होता, तो भगवानको फिर दुःख किस प्रकार हो सकता है?

जो प्रेमसे रामजीको याद करते हैं, रामजीका ध्यान करते हैं, वे भी आनन्दरूप हो जाते है, उनको कभी दुःख नहीं होता। तो फिर रामजीको किस प्रकार दुःख हो सकता है? रामजी श्रीसीताजीके वियोगमें रोते है यह तो थोड़ा नाटक ही है। सगुण भगवान नटवर हैं, नाटक करनेमें बहुत चतुर हैं।

यथा अनेक वेष धरि, नृत्य करै नट कोय।
सोइ सोइ भाव दिखावइ, आपुन होय न सोय॥

नाटक करनेमें चतुर जो गिना जाता है वह कौन है? इसका असली स्वरूप कैसा है, उसकी नाटक देखनेवालेको खबर ही न पड़े। श्रीराम ईश्वर हैं परन्तु ईश्वर होनेपर भी ऐश्वर्यको छिपाकर रामजी एक साधारण मनुष्य जैसी लीला करते हैं। मैं एक साधारण मनुष्य हूँ, ऐसा जगतको बताते हैं, परन्तु अन्दरसे अपने ब्रह्मस्वरूपमें स्थिर हैं। अरे, जगतमें आनेके बाद नाटक तो सबको ही करना पड़ता हैं। घरमें थोड़ा-थोड़ा नाटक तुम भी करते ही होगे। संसारमें जो आया है उसे नाटक करना ही पड़ेगा। भगवान कहते है—मैं भी नाटक करता हूँ। रावणको मारना है, इसलिए थोड़े समयके लिए पृथ्वीके ऊपर मनुष्यभावसे रहूँगा।

अहं मनुष्यभावेन जातोऽस्मि ब्रह्मणार्थितः।
मनुष्यभावमापन्नः किंचित्कालं वसामि को॥

परमात्मा ऐसी लीला करते हैं। रामजी विलाप करते हुए कहने लगे—हा प्रिये! तुम कहाँ हो? रामजी ऐसा प्रदर्शित करते हैं कि मानो श्रीसीताजीका वियोग सहन नहीं हो रहा है। एकनाथजी महाराजने श्रीसीता-वियोगका बहुत सुन्दर रीतिसे वर्णन किया है।

रामजी कहने लगे—लक्ष्मण! मुझको बहुत घबराहट हो रही है। मेरी सीता मुझको कहाँ मिलेगी? सीताके बिना मुझको तनिक भी अच्छा नहीं लगता है। मेरे वियोगमें वह नहीं रह सकती। कोई राक्षस उनको ले गया है। अनर्थ हो गया। अब मैं कहाँ जाऊँ? अयोध्यामें किस प्रकार मुँह दिखलाऊँगा? लक्ष्मण! मैं बहुत दुःखी हो गया हूँ। मैं नहीं जिऊँगा।

लक्ष्मणजी मनमें विचार करने लगे कि ये कैसे बोलते है ! लक्ष्मणजी रामजीके पीछे-पीछे चलते थे। वे रामजीको समझाने लगे—हे भाई ! धीरज रक्खो। हम प्रयत्न करके श्रीसीताजीकी खोज करेंगे। श्रीसीताजी अवश्य मिलेंगी।

श्रीराम-लक्ष्मण दण्डकारण्यसे जा रहे थे। रामजी रो रहे थे, वृक्षोंसे श्रीसीताजीका पता पूछते थे। किसी-किसी समय पागल जैसे होकर 'यह ही मेरी सीता है, मैं सीतासे मिलता हूँ,' ऐसा कहकर झाड़को आलिङ्गन देते थे। लक्ष्मणजी समझाते थे, परन्तु रामजी कुछ मानते ही नहीं थे। किसी स्थानपर वे आँखें बन्द करके मार्गमे ही बैठ जाते थे।

लक्ष्मणजीने बारबार समझाते हुए कहा—अब आंख तो खोलो। रामजीने कहा—लक्ष्मण ! मुझको शर्म आती है। मैं आंख उघाड़कर ऊपर नजर करता हूँ तो सूर्यनारायण मुझको दीखते है। ये सूर्यनारायण मेरी भर्त्सना करते है कि मेरे वंशमें तू ऐसा उत्पन्न हुआ है, कि पत्नीका भी रक्षण नही कर सका। सूर्यनारायण मुझको देखकर हँसते हैं, इसलिए मुझको शर्म आती है। यदि मैं आंख ऊपरसे नीचे करता हूँ तो मुझको धरती माँ धमकाती है कि विवाहित पत्नीका रक्षण करनेकी तुममें शक्ति नहीं थी तो तुमने विवाह क्यों किया ? मेरी पुत्री तुमने किसलिए ली ? मेरी पुत्री दुःखी हो गयी। श्रीसीताजी धरती माँ-की कन्या हैं। इससे रामजीने कहा—धरती मेरी सासूजी होती हैं। इसलिए मैं नीचे नजर करता हूँ तो सासूजी मुझको उलाहना देती हैं। मैं धरतीको देख नही सकता। मै ऊपर भी नही देख सकता। इसीलिए मै आंख बन्द करके बैठा हूँ।

रामजी यह लीला करके हमको ज्ञान देते है कि ऊपर देखना नही, नीचे भी नहीं देखना, आंख बन्द रखकर दोनो आँखोंके मध्यमें ज्योतिर्मय ब्रह्मको देखो। ऊपर या नीचे देखे, वह बहिर्मुख होता है। दोनोके मध्यमे एक ज्योति है जो मन-बुद्धि-इन्द्रियो—सबको प्रकाश देती है। तुम आंख बन्द करके ललाटमें नजर करोगे तो तुमको थोड़ा प्रकाश दीखेगा। वहाँ दृष्टि स्थिर करो। सतत ऐसा चिंतन करो कि मै स्त्री नही, मै पुरुष नही, मै पति नही, मैं पत्नी नही। इस शरीरका सुख मेरा सुख नहीं। मै तो प्रकाशमय आनन्दरूप ब्रह्म हूँ।

ब्रह्मैवाहं समःशान्तः सच्चिदानन्दलक्षणः ।
नाहं देहो ह्यसद्रूपो ज्ञानमित्युच्यते बुधैः ॥

दोनो आंखोंके मध्यमें ज्योतिर्मय आनदरूप परमात्माका निवास है। ज्ञानी महापुरुष ब्रह्मदृष्टि सिद्ध करते हैं। सृष्टिको सुधारनेके जंजालमें मत पड़ो। अपनी दृष्टि सुधारो। आजकल लोगोको समाज सुधारनेकी बहुत इच्छा होती है। अरे भाई ! तुम अपना घर सुधारो न ! विकार-वासनासे जिसका मन भरा हुआ है, वह समाजको नहीं

सुधार सकता। किसी मनुष्यमें ऐसी शक्ति नहीं कि समाजको सुधार सके। हम जैसा साधारण मनुष्य जो इन्द्रियोंका दास है, वासनाका गुलाम है वह समाजको क्या सुधारेगा ?

किसीको सुधारनेकी तुमको इच्छा हो तो अपने मनको सुधारो, अपनी आँखको सुधारो। तुम अपनी हृदयकी आँख, मन, बुद्धिको सुधारोगे तो जगत सुधर जाएगा। किसीको भी भोग-दृष्टिसे नही देखना। सबको भगवद्दृष्टिसे देखो। जगतको भोगबुद्धिसे नहीं देखना। भगवद्बुद्धि से देखो। अज्ञानी जीव जब जगतको देखता है तब उसका मन चचल होता है परन्तु ज्ञानी महात्माका मन चंचल नहीं होता। अज्ञानीकी दृष्टिमें भोग-लालसा है, ज्ञानीकी दृष्टिमें भगवद्भाव है, ब्रह्मभाव है :

दृष्टिं ज्ञानमयीं कृत्वा पश्येद् ब्रह्ममयं जगत्।

जगतको भेद-भावसे मत देखो, अभेदभावसे देखो। जिसकी दृष्टिमें भेद है तो उसके मनमें भी भेद आता है। भेद विकार-वासनाको उत्पन्न करता है। ज्ञानी सबको अभेद-भावसे देखते हैं। अनेकमें एकका अनुभव करना हो ज्ञान है।

अपनी दृष्टिको सुधारो। तुम स्वयं अपनेको सुधारो। तुममें बहुत शक्ति हो तो अपने भाईको सुधारो, अपने पड़ोसियोंको सुधारो परन्तु इससे बहुत आगे नहीं जाना। कारण, अनेक बार समाजको सुधारनेवाला मनुष्य, लक्ष्यसे दूर हो जाता है। जो दूसरेको सुधारनेके जंजालमें पड़ता है वह स्वयंके लक्ष्यको भूल जाता है। समाजको सुधारनेकी भावना ठीक है परन्तु उसके पीछे अहङ्कार आता है। अहङ्कार अनेक अवगुणोंको साथ लाता है। जो समाजको सुधारनेके लिए जाता है उसको स्वयंकी भूल नहीं दीखती। उसको ऐसा लगता है कि मैंने अपनेको तो बहुत सुधार ही लिया है।

अरे, जिसने स्वयंकी आँख नहीं सुधारी, मन नहीं सुधारा, जो स्वयंके घरके लोगोंको नहीं सुधार सका, वह समाजको क्या सुधार सकता है ? समाजको कोई नहीं सुधार सका। प्रत्यक्ष श्रीमहाप्रभुजी या श्रीशङ्कराचार्यजी प्रगट हों तो कदाचित् समाज सुधरे। अन्यथा यह समाज सुधरे ऐसी आशा रखने योग्य यह समय नहीं है। अब समाज सुधरना सम्भव नहीं।

'मैं अपने मनको और अपने जीवनको सुधारूँगा'; ऐसी भावना रक्खो। अपनी दृष्टिको सुधारो। दृष्टिके ऊपरसे मनुष्यके मनकी परीक्षा होती है। जिसकी दृष्टि शुद्ध है, उसीकी क्रिया शुद्ध है। जिसकी क्रिया शुद्ध है उसका ही मन शुद्ध है। इच्छा-शुद्धि बिना क्रिया-शुद्धि नहीं होती। शान्तिसे थोड़ी अन्तर्दृष्टि करके स्वयं-से पूछो कि मेरा मन कैसा है ? मेरे मनमें कैसी इच्छा उत्पन्न होती है ? अरे, अपना मन बहुत खराब है। कथामें कोई मनुष्य अपने खूब निकट आकर बैठ जाये तो अपनेको गर्मी लगने लगती है परन्तु

अपना परिचित मनुष्य आकर पास बैठ जाय तो ठंडक अनुभव होती है। मन इतना धोखे-बाज है। जगत नहीं बिगडा है, मन बिगड़ गया है, आँख बिगड़ गयी हैं। अपने मनको सुधारो, अपनी दृष्टिको सुधारो। सृष्टिको सुधारनेके जंजालमें मत पड़ो।

सृष्टि तो सुख-दुःखसे भरी हुई है। सृष्टिमें आनन्द है ही नहीं। आनन्द तो दिव्यदृष्टिमें है, सृष्टिमें नहीं है। दृष्टिके अनुसार सृष्टि बनती है। मनुष्यकी जैसी दृष्टि होगी वैसी ही सृष्टि उसको दीखेगी। दुर्जनको जगतमे कोई सन्त दिखायी नहीं देता, सभी दुर्जन दिखायी देते हैं। सन्तको जगतमें कोई दुर्जन दिखायी नहीं देता, सभी सज्जन दिखायी देते हैं। वे सबमें भगवद्स्वरूपके दर्शन करते हैं।

संसारमें पाप है, ऐसी कल्पना न करो। संसारमे पाप हो तो उसकी जवाबदेही तुम्हारी नहीं। तुम्हारी जवाबदेही तो उस पापकी है जो तुम्हारे मनमें है। जगतका पाप तुम दूर कर सकते नहीं। तुम अपना पाप दूर करनेका प्रयत्न करो। स्वयं अपनेको सुधारो। जगतको सुधारने कहाँ जाओगे ? जगत रहेगा और मैं भी रहूँगा। जगतको जिस दृष्टिसे देखता हूँ, यह दृष्टि ही मुझे बदलनी है, ऐसा निश्चय करो। जगतको कोई नहीं बदल सकता। जो दृष्टिको सुधार लेता है उसकी सृष्टि बदल जाती है।

श्रीरामचन्द्रजी स्वयंकी लीलासे जगतको ऐसा दिव्यज्ञान देते हैं। रामजी आँखें बन्द रखकर विलाप कर रहे थे।

निर्ममो निरहङ्कारोऽप्यखण्डानन्दरूपवान्।
मम जायेति सीतेति विललापातिदुःखितः॥

रामजी आनन्दरूप हैं। ममता-अहकार रहित हैं, सुख-दुःखसे परे हैं, फिर भी अत्यन्त दुःखी हो, हा सीते ! सीते ! कहकर विलाप कर रहे थे। लक्ष्मणजी उनको समझा रहे थे, धैर्य रखनेको कह रहे थे।

इस प्रकार श्रीराम-लक्ष्मण दण्डकारण्यमेंसे जा रहे थे। उसी समय भगवान शंकर श्रीसतीजीके साथ उसी मार्गसे आ रहे थे। दक्षिण भारतमें अगस्त्य ऋषि विराजे हुए थे। स्कन्दपुराणमें कथा आती है कि अगस्त्य ऋषि मूलरूपसे तो काशीमें रहकर शिवजी-की आराधना करते थे परन्तु एक कारण बना, जिससे काशी छोड़नी पड़ी। विन्ध्याचल पर्वत अगस्त्य ऋषिका शिष्य था। वह जब बहुत बढ़ने लगा और संसारको बहुत त्रास देने लगा तो देवताओंने अगस्त्य ऋषिसे कहा कि तुम इसको समझाओगे तो ही यह मानेगा। विन्ध्याचल पर्वतको बढ़नेसे रोकनेके लिए अगस्त्य ऋषिको काशी छोड़कर जाना पड़ा, इससे उनको बहुत दुःख हुआ। काशी विश्वनाथका वियोग उनको असह्नीय लगने लगा। उस समय शिवजीने उनसे कहा—तुम वहाँ जाओ। पीछेसे मैं वहाँ आऊँगा।

अगस्त्य ऋषि काशी छोड़कर विन्ध्याचलके पास गये। गुरुदेवके आगमनसे विन्ध्याचल पर्वतको आनन्द हुआ। उसने गुरुदेवको साष्टांग प्रणाम किया। उस समय गुरुदेवने आशीर्वाद देते हुए कहा—भाई ! मै दक्षिण-यात्रा करने जा रहा हूँ। मैं यात्रा करके वापिस न लौटूं, तब तक तू उठना नहीं। गुरुदेवकी आज्ञा हो गयी इससे बेचारा लम्बा होकर पड़ा रहा और आज भी उठता ही नहीं।

अद्य श्वो वा परश्वो वा ह्यागमिष्यति वै मुनिः।

मुनि आज आवेंगे, कल आवेंगे, परसों आवेंगे, इस आशामें बेचारा पड़ा हुआ है परन्तु अगस्त्य ऋषि दक्षिणमें यात्रा करने जो गये तो पीछे लौटे ही नहीं। अगस्त्यका वायदा पूरा हुआ ही नहीं और विन्ध्याचल पर्वत साष्टांग करके लम्बा होकर जो पड़ा, वह उठता ही नहीं।

काशी छोड़ते समय अगस्त्य ऋषिसे शिवजीने जो कहा कि मैं पीछेसे वहाँ आऊँगा, उसके अनुसार ऋषिको दर्शन देनेके लिए भगवान काशीविश्वनाथ श्रीसतीजीके साथ दक्षिण भारतमें गये। वहाँ अगस्त्य महर्षिको शिवजीने श्रीरामकथा सुनायी। अगस्त्य ऋषिको कृतार्थ करके भगवान शङ्कर सतीजीके साथ दक्षिणसे वापिस लौट रहे थे। जिस मार्गसे रामजी रोते हुए जा रहे थे, उसी मार्गसे भगवान शंकर सतीजीको लेकर आ रहे थे।

एहि विधि खोजत बिलपत स्वामी। मनहुँ महा बिरही अति कामी॥
पूरन काम राम सुख रासी। मनुज चरित कर अज अबिनासी॥

एक साधारण मनुष्यकी भाँति विलाप करते हुए रामजीके दर्शन शिवजीको हुए। शंकर भगवानको आनन्द हुआ। मुखमें स्मित हास्य किया कि परमात्मा कैसा नाटक कर रहे हैं।

जय सच्चिदानन्द जगपावन। अस कहि चलेउ मनोज नसावन॥
चले जात शिव सती समेता। पुनि पुनि पुलकत कृपानिकेता॥

शिवजीने मन-ही-मन 'जय सच्चिदानन्द' कहकर रामजीको प्रणाम किया। सतीजीको आश्चर्य हुआ। उन्होंने शिवजीसे पूछा—महाराज ! तुम किसको वन्दन करते हो?

शिवजीने कहा—अपने रामजीको प्रणाम करता हूँ। सतीजीने पूछा—ये राम कौन हैं ? शिवजीने जवाब दिया—राम परमात्मा हैं। सतीजी बोली—ना, ना, ये परमात्मा नहीं। ये तो दशरथके पुत्र हैं और रोते-रोते जा रहे हैं। शिवजीने कहा—देवी ! यह तो नाटक करते हैं। ये तो परमात्मा हैं। ये आनन्दरूप हैं। जो निर्गुण, निराकार, सर्वव्यापक ब्रह्म हैं वे ही श्रीराम हैं।

सतीजीने कहा—महाराज ! तुम कहते हो परन्तु मेरे ध्यानमें नहीं आता। निर्गुण, निराकार ब्रह्म तो सर्वव्यापक हैं। ये राम किस प्रकारसे हो सकते हैं ? शिवजीने कहा—इसमें क्या बाधा है ? ये तो अनेक आकार धारण कर सकते हैं।

सतीजीने कहा—महाराज ! परमात्मा तो आनन्दरूप हैं और ये तो रोते है। शिवजी बोले—रोते हैं इससे क्या हुआ ? ये तो लीला करते हैं। सतीजीने पूछा—महाराज ! जो रोता है उसको प्रणाम करनेसे क्या लाभ ?

शिवजीने कहा—ये रोते नहीं। अन्दरसे शान्त हैं, आनन्दरूप हैं। रोना मायाका धर्म है। मायाका धर्म रामजीमें भले दीखे परन्तु ये दुःखी नहीं। ये आनन्दरूप हैं, ईश्वर हैं।

राम ब्रह्म व्यापक जग जाना। परमानन्द परेस पुराना॥

× × ×

जगत प्रकास्य प्रकासक रामू। मायाधीस ज्ञान गुन धामू॥
जासु सत्यता तें जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया॥

शिवजी सतीजीको समझाते हैं परन्तु सतीजीका मन नहीं मानता। इन्होंने कहा—महाराज ! तुम्हारी बात मेरे ध्यानमे नहीं आती। ये आनन्दरूप हैं फिर भी रोते हैं ! ये क्यों रोते हैं ?

शिवजीने कहा—यह तो रावण सीताजीको ले गया है, इसलिए रोते हैं।

सतीजीने पूछा—कितने दिन हुए ?

शिवजी बोले—दो-तीन दिन हुए।

सतीजीने कहा—जो स्त्रीके वियोगमें रोता है, जिसको स्त्रीका वियोग सहन नहीं होता है उसके तुम पग लगते हो ? महाराज ! तुम तो सर्वज्ञानी पुरुषोंमें अतिशय श्रेष्ठ हो, फिर भी स्त्रीके वियोगमें रोनेवाले एक साधारण राजकुमारको तुम प्रणाम करो, यह ठीक नहीं।

शिवजीने कहा—ये राजकुमार नहीं। ये किसीके पुत्र नहीं। ये तो सबके पिता हैं। ये सबसे श्रेष्ठ हैं।

सतीजीने कहा—महाराज ! मुझको यह ठीक नहीं लगता। ये तो स्त्रीके वियोगमें रोते हुए जा रहे हैं। तुम तो किसी दिन मेरे सामने देखते भी नहीं।

शंकर दादाका गृहस्थाश्रम दिव्य है ही। श्रीसीता-रामजी साथ बैठते हैं। श्रीराधा-कृष्ण साथ विराजते हैं। लक्ष्मी-नारायण साथ विराजते हैं परन्तु शंकर भगवान

एक तरफ और पार्वती माता एक तरफ। शंकर-पार्वती साथ बैठे हैं, इस प्रकार मंदिरमें दर्शन होते हैं ?

शिवजी वैराग्यके स्वरूप है। ज्ञान-वैराग्य शिवजीमें परिपूर्ण हैं। द्वारिकानाथने शंकरदादासे बहुत आग्रहकिया—तुम लग्न करो, लग्न करो, तब शिवजीने लग्न की। लग्न करनेके बाद पार्वतीजीको श्रीकृष्ण-कथा, श्रीराम-कथा सुनायी और कहा—एक तरफ बैठो-बैठी तुम राम राम राम करो और एक तरफ मैं राम राम राम करूँ। मेरे पास मत आना। दूर रहो।

प्रकृतिका स्पर्श होनेके बाद कुछ विकार जागता है। इसलिए प्रकृतिसे दूर रहना चाहिए। प्रकृतिसे अलग रहना और परमात्माका सतत ध्यान करना—शिवजी जगतको यह आदर्श बताते हैं। भगवान श्रीकृष्ण राधाजीके साथ विराजते हैं। श्रीराम सीताजीके साथ विराजते हैं। ज्ञान देते हैं कि भले प्रकृति साथ हो, परन्तु प्रकृतिके अधीन नहीं होना। प्रकृतिके अधीन हो तो बंधन है। प्रकृतिके साथ रहना, परन्तु प्रकृतिसे अलिप्त रहना, लिप्त नहीं होना। शिवजी महाराज तो कहते हैं कि प्रकृतिसे अलिप्त ही नही, परन्तु दूर रहना ही ठीक है, तत्वसे दोनों एक हैं ही !

भगवान शंकर निवृत्ति-धर्मके आचार्य हैं। श्रीराम, श्रीकृष्ण प्रवृत्ति धर्मका आदर्श बताते हैं कि निरपेक्ष होकर प्रवृत्ति करो। निष्काम भावसे कर्म करो। श्रीराम, श्रीकृष्ण अत्यन्त ही प्रवृत्तिमें है, फिर भी अंदरसे इनकी निवृत्ति है। बहुत प्रवृत्ति करते हैं, फिर भी किसी भी प्रवृत्तिमें आसक्त नही। ये प्रवृत्ति करते हैं, परन्तु इनकी प्रवृत्ति निवृत्तिके समान है।

भगवान शंकर कहते हैं कि जिसको ब्रह्मानन्द लेना है, उसको निवृत्ति लेनी ही पड़ेगी। प्रवृत्तिमें रहकर भजनानन्द मिलना अशक्य है। भजनानन्दकी चाहना हो तो विषयानन्द छोड़ना ही पड़ेगा। निवृत्तिका आनन्द लेना हो तो प्रवृत्ति छोड़नी ही पड़ेगी। समस्त दिवस संसारमें फँसा हुआ रहे, उसको आनन्द नहीं मिलता। अति भक्ति और प्रवृत्ति-का विरोध हे। इसीलिए शिवजी कहते हैं—प्रवृत्ति बाधक है। इसलिए निवृत्ति लेकर परमात्माका ध्यान करो।

श्रीराम, श्रीकृष्ण प्रवृत्ति करते हं, परन्तु प्रवृत्तिमें लिप्त नहीं होते। शिवजी प्रवृत्तिसे दूर ही रहते हं। इसीलिए तो अधिक अवतार शिवजीके नही होते। शिवजीकी अवतार धारण करनेकी इच्छा नहीं। भगवान शंकरको इस संसारमें आना अच्छा नहीं लगता। संसारमें आता है, उसको माया घेरती है। मायासे दूर रहना ही निवृत्ति-धर्मका

आदर्श है। मायाके साथ होना फिर भी मायामें आसक्त नहीं होना यह श्रीराम, श्रीकृष्ण बताते हैं। वेदान्तमें अन्वय और व्यतिरेककी भाषा आती है।

कारणं व्यतिरेकेण पुमानादौ विलोकयेत्।
अन्वयेन पुनस्तद्धि कार्ये नित्यं प्रपश्यति ॥

कार्यके पीछे कारण रहता है। कार्यमें कारणकी सत्ता, कारणका अनुभव ही अन्वय। कार्यके अभावमें कारणका अभाव समा जाता है। कार्य और कारण सापेक्ष हैं। कार्य नही तो कारण किसका ? कार्य नही तो कारण भी नहीं रहता। केवल एक स्वतन्त्र तत्व रहता है। कार्य और कारण—दोनोका अभाव होनेपर जो कुछ अवशेष रहता है, वह शून्य नही, परन्तु वह ही ब्रह्म है। इसको कहते हैं व्यतिरेक।

जिस प्रकार मिट्टीके घडेमें मिट्टी साथ ही रहती है, जिस प्रकार मिट्टीका घड़ा मिट्टीसे अलग नही रह सकता, उसी प्रकार ईश्वरसे उत्पन्न हुआ जगत ईश्वरसे अलग नहीं रह सकता। परन्तु जैसे मिट्टी घडेसे अलग रह सकती हैं, घडेके सिवाय भी मिट्टीकी सत्ता हो सकती है उस प्रकार ईश्वर जगतसे अलग रह सकते है। जगतके साथ भी ईश्वर हैं और जगतसे अलग भी ईश्वर हैं। प्रकृतिके साथ भी ईश्वर हैं और प्रकृतिसे अलग भी ईश्वर है।

व्यतिरेकका वर्णन शिवजो करते हैं, अन्वयका वर्णन श्रीराम, श्रीकृष्ण करते हैं। विष्णु भगवान लक्ष्मीजीके साथ विराजते हैं परन्तु वे किसी दिन लक्ष्मीके अधीन नहीं होते। प्रकृतिका तिरस्कार करनेकी जरूरत नही परन्तु प्रकृतिके अधीन नही होना। जो प्रकृतिका दास बनता है, वह दुखी होता है। शिवजो महाराज तो ज्ञान-वैराग्यके स्वरूप हैं। शिवजो कहते हैं कि प्रकृतिसे दूर ही रहना।

सतीजीको यह अच्छा नही लगता। इसीलिए सतीजीने शिवजीसे कहा—महाराज ! किसी दिन भी तुम तो मेरे सामने देखते भी नही और ये राजकुमार तो स्त्रीके वियोगमे रोते हुए जा रहे हैं।

शिवजीने कहा—रोते जा रहे हैं, इससे क्या होता है ? ये तो परमात्मा ही हैं। सतीजीने पूछा—ये परमात्मा किस प्रकार हो सकते हैं ? जो सर्वव्यापक हैं, क्या ये वही है ?

शिवजीने कहा—हाँ ! जो सर्वव्यापक हैं वही ये हैं। सतीजीने पूछा—महाराज ! सर्वव्यापक परमात्माका तुम वन्दन करते हो तो वे परमात्मा मेरे अंदर भी हैं या नहीं ? शिवजीने कहा—तुम्हारे अन्दर भी हैं। सतीजीने पूछा—तो फिर मुझको वन्दन क्यों नहीं करते ?

शिवजीने कहा—तुम्हारी बहुत इच्छा हो तो तुम्हारी भी वन्दना किया करूँ। मुझको कोई बाधा नहीं। सतीजी बोलीं—महाराज ! कदाचित् तुम मुझे वन्दन करो परन्तु सर्वव्यापक परमात्माका वन्दन किस प्रकार होगा ?

शिवजीने कहा—सर्वव्यापक परमात्माका वन्दन मनसे होता है और साकार परमात्माका प्रत्यक्ष वन्दन होता है। ज सर्वव्यापक है, जो सबमें विराजा हुआ है, उसका मनसे वन्दन करो। सबमें परमात्माका अनुभव बुद्धिसे होता है। दूधके अणु-परमाणुमें माखन होता है परन्तु वहाँ आँख द्वारा दिखाई पड़ता नहीं, दूध पीनेसे माखनका स्वाद आता नहीं, दूधमें कोई हाथ डाले तो माखन हाथमें आता नहीं, फिर भी दूधमें माखन है, यह बात सत्य है। बुद्धि कबूल करती है कि दूधके एक-एक कणमें माखन है। बुद्धि जानती है कि दूधका दही बनाया जाये और उसका मन्थन किया जाये तो माखन निकलता है। जो ब्रह्म सर्वव्यापक है, वह बुद्धि-ग्राह्य है। बुद्धि-ग्राह्य जो परमात्मा है, उसका मनसे वन्दन किया जाता है।

सतीजीने पुनः-पुनः शिवजीसे कहा कि महाराज ! इन रामको तुम परमात्मा कहते हो परन्तु ये तो रुदन कर रहे हैं। शिवजीने कहा—यह तो माया है। इस प्रकार लीला कर रहे हैं। ये आनन्दरूप हैं। ईश्वर ही राम हैं और राम ही ईश्वर है।

विष्णु जो सुरहित नर तनु धारी। सोउ सर्बग्य जथा त्रिपुरारी॥
खोजइ सो कि अग्य इव नारी। ग्यानधाम श्रीपति असुरारी॥

× × ×

सोइ मम इष्टदेव रघुबीरा। सेवत जाहि सदा मुनि धीरा॥

शिवजीने सतीजीको बारम्बार समझाया परन्तु सतीजीके कण्ठमें बात नहीं उतरी। तब शिवजीने कहा—तुमको शंका होती हो तो तुम परीक्षा कर लो। मैं यहींपर बैठा हुआ हूँ। भगवान शंकर एक वटकी छायामें बैठ गये। सतीजीने शंकर भगवानके वचनोंमें विश्वास नहीं रक्खा। उन्होंने निश्चय किया कि मैं परीक्षा लेती हूँ।

सतीजीने श्रीसीताजीका स्वरूप धारण किया। श्रीराम 'हे सीते ! हे जानकी !' इस प्रकार बोलते-बोलते रोते हुए जा रहे थे। उसी रास्तेमें थोड़ी दूरपर श्रीसीताजीके स्वरूपमें सतीजी खड़ी रहीं। रामजीने वह रास्ता छोड़ दिया और वे दूसरे रास्तेसे होकर जाने लगे। सतीजीने ऐसा समझा कि ये दुःखी अधिक हैं, इस कारणसे मुझे सामने देख ही नहीं पाए हैं। मैं फिरसे इनके रास्तेमें खड़ी रहूँ। सतीजी फिर दूसरे रास्तेपर जाकर खड़ी रहीं।

लक्ष्मणजीको थोड़ा आश्चर्य हुआ कि ये सीता कहाँसे आ गयी ? परन्तु मेरे बड़े भाई भले ही रोते हों, अन्दरसे वे सावधान हैं। मुझे कुछ भी बोलनेकी आवश्यकता नहीं। सतीजी इस दूसरे मार्गपर भी आकर खड़ी हुईं, इस कारण रामजीने वह रास्ता भी छोड़ दिया और तीसरे रास्तेसे चलने लगे।

सतीजीने विचार किया कि इनकी दृष्टि अभी तक मेरे ऊपर ही नहीं पड़ी। अब तो एकदम इनके पास ही जाकर खड़ी होऊँगी और कहूँगी कि मैं तो यहाँ ही हूँ और तुम क्यों रोते हो ?

सतीजी रामजीके एकदम नजदीक जाकर खड़ी हो गयी और रामजीसे कहा—मैं तो यहाँ......आप रोओ मत। सतीजीने स्त्रीधर्मकी तरह थोड़ी लीला की परन्तु श्रीरामचन्द्रजी बहुत ही सावधान थे।

सती कपटु जानेउ सुरस्वामी। सबदरसी सब अन्तरजामी।

श्रीरामचन्द्रजीने धरतीके ऊपर मस्तक करके सतीजीका वंदन किया और कहा—

कहेउ बहोरि कहाँ वृषकेतू। विपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू॥

माँ ! शंकर भगवान कहाँ हैं ? तुम अकेली क्यों जंगलमें फिर रही हो ? मुझे तो शिवजीके दर्शन करने हैं। तब सतीजीको आश्चर्य हुआ कि ये भले रोते हैं, परन्तु अंदरसे सावधान हैं। ये ज्ञानस्वरूप हैं। चाहे जैसा बादल आवे परन्तु सूर्यके स्वरूपमें जरा भी विकार नहीं होता। अरे, बादल उत्पन्न करनेवाले तो सूर्य ही हैं। सूर्यनारायण-की किरणोंसे बादल उत्पन्न होता है और इस बादलमें सूर्य स्वयंको ढँक लेते हैं परन्तु सूर्यमें तनिक भी विकार नहीं होता। श्रीरामचन्द्रजी ज्ञान-सूर्य हैं, ज्ञान-स्वरूप हैं। सतीजीको इसका विश्वास हो गया।

दक्षिण भारतमें तुलजा भवानी हैं। इनका नाम "तूकाई" है। तूका आई है ? दक्षिणके लोग माँको आई कहकर बुलाते हैं। तूकाई पार्वती माताका स्वरूप है। रामजीने कहा—माँ, तुम अकेली यहाँ क्यों आयीं ?—तु का आई ? इसीलिए तूकाई नाम पड़ा है। सतीजीको विश्वास हुआ कि श्रीराम परमात्मा हैं। मुझसे जो भगवान शिव कहते थे, वह बात सच्ची है।

सुमिरत जाहि मिटइ अज्ञाना। सोइ सर्बज्ञ राम भगवाना॥

रोना मायाका धर्म है। सगुण परमात्माकी लीलामें मायाके धर्म भले दीखें, परन्तु ये मायारहित शुद्ध ब्रह्म हैं। ये ईश्वर ही हैं। सतीजीको परम आश्चर्य हुआ।

परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीके अनेक स्वरूपोंका वर्णन ग्रन्थोमें हुआ है। परमात्मा सगुण-साकार है और परमात्मा निर्गुण-निराकार भी है।

सगुण-साकार परमात्माके साथ प्रेम होता है। जो निर्गुण-निराकार हैं उन ईश्वरके साथ प्रेम नहीं होता। ज्ञानी पुरुष ब्रह्मचिंतन करते हैं, परन्तु घंटे-दो-घंटे पीछे इनको थकान लगने लगती है। निराकार निष्क्रिय ब्रह्मका चिंतन करनेसे आनन्द तो आता है, परन्तु बादमें मन थक जाता है। जो परमात्मा हिलते नहीं, चलते नही, बोलते नहीं, उन प्रभुका ध्यान करते हुए मन थक जाता है।

वैष्णव निष्क्रिय ब्रह्मका चिंतन नहीं करते, परन्तु लीला-विशिष्ट ब्रह्मका ध्यान करते हैं। वैष्णवोंका ब्रह्म तो बोलता है, चलता है, हँसता है, खेलता है, नाचता है, प्रेम करता है। छम-छम करता हुआ कन्हैया जिस प्रकार चलता है, ऐसा चलना भी किसीको नहीं आता। वैष्णव अष्टयामकी सेवाका चिंतन करते है। सबेरे कन्हैया उठता है, यशोदा माँ कन्हैयाका सुन्दर शृंगार करती हैं, माताजी लालाको माखन-मिसरी आरोगवाती हैं, कन्हैया गाय लेकर जाता है, गायोंकी सेवा करता है। सबेरेसे लेकर रात्रिको रासलीला हो, तब तककी एक-एक लीलाका वैष्णव बहुत प्रेमसे चिंतन करते हैं।

सगुण-साकार परमात्माके साथ प्रेम होता है, निर्गुण-निराकार ईश्वरका बुद्धिमें अनुभव होता है। निराकार ब्रह्म इतना ही है परन्तु इस निराकार ब्रह्मका अपनेको बहुत उपयोग नही। लकड़ीमें अग्नि होती है। सब जानते हैं, कि लकड़ीके एक-एक कणमें अग्नि है परन्तु बहुत सर्दी लगे तब किसी लकड़ीका स्पर्श करो इससे लकड़ीमें रहने वाली अग्नि कुछ गरमी देती है? लकड़ीमें अग्नि है इतना ही ज्ञान मात्र है। लकड़ीके अणु-परमाणुमें अग्नि है, दूधके एक-एक कणमें माखन है, परन्तु ये निराकार हैं। निराकार ईश्वर सर्वव्यापक हैं, परन्तु किसी को दीखते नहीं। बुद्धिसे ही इनका अनुभव होता है।

सगुणके साथ प्रेम करो और निर्गुण ईश्वर सबमे हैं, ऐसा हर समय अनुभव करो। परमात्मा सबमें है, ऐसा हर समय जो समझता है, उसको पाप करनेकी जगह नहीं मिलती। जो लोग ऐसा मानते हैं कि भगवान वैकुण्ठमें और मन्दिरमें ही बैठते हैं, उनके हाथसे पाप होता है। तुम जहाँ हो, वहाँ ईश्वर हैं। जगतमें ऐसी कोई जगह नहीं जहाँ भगवान नहीं विराजते हों। परमात्मा सर्वव्यापक हैं।

राजा राजमहलमें रहता है परन्तु राजाकी सत्ता इसके राज्यमें सब ठिकाने होती हैं, राज्यमें अणु-परमाणुमें है। सत्ताका कोई आकार नहीं, कोई रंग नहीं। सत्ता काली, सफेद अथवा पीली नहीं। राजा भले ही राजमहलमें होगा परन्तु सत्ताके रूपमें राजा सब-

में है। राजामें सत्ता न रहे तो राजाका अस्तित्व नही। कल्पना करो। एक अतिशय श्रीमंतको मोटर रास्तेमें जा रही है। श्रीमंतको बहुत महत्त्वका काम है। वह मोटर बहुत वेगसे जा रही है। फिर भी रास्तेके ऊपर वाहनका नियमन करता खड़ा हुआ एक सिपाही हाथ ऊँचा करे तो श्रीमंतको भी मोटर खड़ी रखनी ही पड़ती है। यह सम्मान सिपाहीका नहीं, राजसत्ताका है। श्रीमंतको कदाचित् मनमें घमण्ड हो कि ऐसे तो बहुत सिपाहियोको मैं घरमें नौकर रख सकता हूँ। उसकी बात सच्ची है परन्तु इस सिपाहीमे राजसत्ता है। सत्ताका कोई रंग नही। सत्ताका कोई आकार नहीं परन्तु सत्ता है, यह बात सच्ची है।

निर्गुण-निराकार ईश्वर सबमें सर्वकाल विराजते हैं। निर्गुण और सगुण, भगवानके इन दो स्वरूपोंका वर्णन ग्रन्थोमें आता है। वेदमें अनेक ठिकाने ऐसा भी वर्णन आता है कि ईश्वरका कोई आकार नही, ईश्वर निराकार हैं, तेजोमय हैं। ईश्वरका आकार नहीं। इसका अर्थ यह है कि परमात्माका आकार अपने जैसा नही। ईश्वरका आकार नहीं, इसका अर्थ यह है कि ईश्वरका कोई एक आकार नही।

अरे, शंख-चक्र-गदा-पद्म हाथमें हो, उसको ही ईश्वर कहा जाएगा ? हाथमें त्रिशूल धारण करनेवाला ईश्वर नही ? धनुषबाण हाथमे हो, वह ईश्वर नही ? ईश्वरका कोई एक स्वरूप निश्चित नही कि इस स्वरूपमें दीखे वह ही ईश्वर कहलाते है। जगतमें जितने रूप दीखते हैं, तत्त्वसे परमात्माके ही स्वरूप हैं।

अनेक रूप रूपाय विष्णवे प्रभविष्णवे।

आकार भले भिन्न दीखे परन्तु वह सब प्रकारके आकारोमें ईश्वर-तत्त्व एक ही हैं। मालामें फूल अनेक हैं, अनेक प्रकारके हैं परन्तु धागा एक ही है। गीतामे भगवानने आज्ञा की है।

मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥

आकार अलग-अलग हैं परन्तु सबमे रहनेवाला ईश्वर-तत्त्व एक ही है। गाय काली हो, सफेद हो अथवा लाल हो, उसका दूध सफेद ही होता है। रूप-रंग अथवा आकारका महत्त्व नही, आकारमे रहनेवाले परमात्म-तत्त्वका महत्त्व है। नरसिंह मेहताने कहा है।

अखिल ब्रह्माण्ड मां एक तुं श्रीहरि,
जूजवे रूपे अनंत भासे।
वेद तो एम वदे, श्रुति-स्मृति शाख दे,
कनक कुण्डल विशे भेद न होये,
घाट घड़िया पछी नाम-रूप जूजवां,
अंते तो हेमनुं हेम होये।

सुवर्णके आभूषण अनेक होते है, अनेक प्रकारके आकार होते हैं परन्तु इन सब आभूषणोंमें सुवर्ण एक ही होता है। तुम बाजारमें चन्द्रहार लेकर जाओ तो क्या तुमको मूल्य चन्द्रहारका मिलता है ? नहीं, मूल्य केवल सुवर्णका ही मिलता है। सुवर्ण दस तोला हो तो उस दस तोले सुवर्णका मूल्य मिलता है। चन्द्रहारकी कीमत मिलती नही। आकारका मूल्य नहीं, मूल्य सुवर्णका होता है।

एक महात्माके पास सुवर्णके गणपति और सुवर्णका मूषक था। शरीर वृद्ध हो गया था। काल समीप आया हुआ जानकर महात्माने विचार किया कि मेरे जानेके पश्चात् मूर्तिके लिए ये चेले झगड़ा करेंगे। इसलिए उचित यही है कि मूर्तियोंको बेच दिया जाय और उसमेंसे भण्डारा कर दिया जाय। महात्मा मूर्तियाँ बेचने गये। गणपतिकी मूर्ति दस तोलेकी बैठी और मूषककी ग्यारह तोलेकी। सुनारने कहा—गणपतिका मूल्य चार हजार रुपया और मूषकका मूल्य चवालीस सौ रुपया होता है। महात्माने कहा—अरे, गणपति तो मालिक हैं। उनका मूल्य कम क्यों देते हो ? स्वर्णकारने कहा—मैं तो सुवर्णका मूल्य देता हूँ मालिकका नही।

आकारका मूल्य बहुत नही। परमात्मा निराकार है, ऐसा जहाँ वर्णन किया गया है वहाँ उसका यह अर्थ होता है कि ईश्वरका कोई एक आकार निश्चित नहीं किया गया है। जगतमें जितने आकार दिखाई देते है, वे सभी तत्त्व-दृष्टिसे भगवानके ही आकार हैं।

सुवर्णाज्जायमानस्य सुवर्णत्वं च शाश्वतम्।
ब्रह्मणो जायमानस्य ब्रह्मत्वं च तथा भवेत्॥

सुवर्णमेंसे बनाये हुए आभूषणोंमें सुवर्णतत्व जिस प्रकार एक ही है, उसी प्रकार ईश्वरमेसे उत्पन्न हुए सृष्टिके इन सब जीवोमें, अरे, सब पदार्थोंमें, ईश्वर-तत्व एक ही है। ईश्वर सर्वाकार है। ईश्वरका कोई एक आकार निश्चित नही। इसलिए भगवानको निराकार कहते है।

अपने सनातन धर्ममे देव अनेक है परन्तु ईश्वर अनेक नही। एक ही ईश्वर अनेक स्वरूप धारण करते है। हाथमें धनुषबाण धारण करते है तब लोग कहते हैं कि ये श्रीराम-जो विराजे है और वही परमात्मा हाथमें बाँसुरी धारण करते हैं, तब लोग कहते हैं कि ये मुरलीमनोहर श्रीकृष्ण हैं। ठाकुरजीको रोज पीताम्बर पहनते-पहनते आलस्य लगने लगता है तो कन्हैया किसी दिन यशोदा माँसे कहते हैं कि माँ! मुझे तो आज बाघम्बर ओढ़कर साधू होकरके बैठना है। लालाको तो नित्य नया अच्छा लगता है। कन्हैया पीताम्बर फेंक देते है और बाघम्बर ओढ़कर बैठ जाते है। उस समय लोग कहते है कि ये शंकर भगवान बैठे हैं।

गर्ग संहितामें एक कथा आती है। श्रीराधाजी व्रत करती थी। श्रीकृष्णसे मिलनेके लिए, श्रीकृष्णके दर्शन करनेके लिए राधाजीका यह व्रत था। तुलसीजीमें श्रीबालकृष्णलालको पधराकर श्रीबालकृष्णलालकी सेवा करती, परिक्रमा करती परन्तु राधाजीके पिता वृषभानुजीने ऐसी व्यवस्था कर रखी थी कि श्रीराधाजीके महलमे कोई पुरुषका प्रवेश न हो सके, कोई पुरुष राधाजीके महलमें नही जा सके, राधाजीसे मिल न सके। श्रीराधाजीके महलमे पहरा भी सखियोंका ही था। तुम बरसाना गये होगे। बरसानेधाममें श्रीराधिकाजीका महल है। वहाँ सखियोका पहरा है।

श्रीराधिकाजीको अत्यन्त आतुरता हुई कि मुझे श्रीकृष्णसे मिलना है, श्रीकृष्णके दर्शन करने हैं। इस ओर लालाको भी दर्शन-मिलनकी आतुरता जागी। लालाने विचार किया कि मैं पीताम्बर पहनकर जाऊँगा तो मुझे कोई अन्दर जाने देगा नही। मुझे तो अन्दर जाना है। उस समय चन्द्रावलि सखिने प्रभुसे कहा—आज तुम्हारा सभी शृंगार मैं करती हूँ। चन्द्रावलिने लालाका सभी शृंगार सखी-स्वरूपका किया। श्रीकृष्ण सखीका स्वरूप धारण करके वहाँ गये। वृषभानुजी वहाँ विराजे हुए थे। उनको ऐसा लगा कि राधाकी कोई सखी उनसे मिलने आयी है। श्रीकृष्ण अन्दर गये और राधिकाजीसे मिलन किया।

भगवान साड़ी पहनते हैं, उस समय लोग कहते है कि ये माताजी हैं। श्रीकृष्ण, श्रीराम अनेक स्वरूप धारण करते हैं परन्तु ये सभी स्वरूप तत्त्वसे एक ही हैं। देव अनेक हैं, परमात्मा एक है। एक ही परमात्मा अनेक स्वरूप धारण करते हैं। अरे, एक मनुष्य भी दिनमे अनेक बार कपड़े बदलता है, घरमें अंगोछा पहनकर फिरता है और बाहर जाना हो तो ठीक कपड़े पहनता है। कपड़े बदले इससे व्यक्तिमे क्या फेर होता है?

एकः सद् विप्राः बहुधा वदन्ति।
एकं सत्यं बहुधा समुपयन्ति।

एक ही परमात्मा अनेक प्रकारकी लीला करनेके लिए अनेक स्वरूप धारण करते हैं। परमात्मा निर्गुण, निराकार हैं और परमात्मा सगुण साकार भी है। निराकारका अर्थ यह हैं कि कोई एक आकार निश्चित नही, वह तो तेजोमय हैं, जैसा स्वरूप धारण करनेकी इच्छा होती है वैसा स्वरूप प्रगट करते हैं। भगवान कहते हैं कि मेरा कोई आकार नहीं और मेरा कोई शृंगार भी नही। मेरे भक्तोंको जैसा आकार और शृंगार अच्छा लगता है वैसा स्वरूप और शृंगार मैं धारण करता हूँ।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

मैं अपने भक्तोंके अधीन हूँ। तत्त्व-दृष्टिसे विचार करनेसे, सगुण और निर्गुण एक ही हैं, जैसे कि राजा और राजाकी सत्ता दोनों एक ही हैं। सत्ता न रहे तो बादमें यह राजा कहाँका ? परन्तु निराकार सत्ता कोई कार्य तो साकार स्वरूप धारण करके ही करते हैं। आँखमें जो देखनेकी शक्ति है वह निराकार है। आँख साकार है। निराकार और साकार एक बनते है, तब क्रिया होती है। निराकारको क्रिया नहीं। आँखमें जो शक्ति है उस शक्तिका कोई आकार नहीं। आँखका आकार है। यह फूल साकार है परन्तु इसमें जो सुगन्ध है, वह निराकार है। निराकार और साकार दोनोंके मिलनेपर क्रिया होती है।

श्रीराम निर्गुण-निराकार है और श्रीराम सगुण-साकार भी हैं। तत्त्व-दृष्टिसे दोनों अलग नहीं। निर्गुण-निराकार ब्रह्म और सगुण-साकार परमात्मा एक ही हैं। निराकार, निर्विकार ब्रह्म परमात्मा सबके अन्दर बिराजे हुए हैं। वे प्रकाशमय हैं। वे स्वरूपको छिपाते हैं। वे आँखसे नहीं दीखते, बुद्धिग्राह्य हैं। निराकार ब्रह्म सर्वव्यापक हैं। वे किसीका आकर्षण नहीं करते, निग्रह नहीं करते अथवा अनुग्रह नहीं करते, न मेरे हैं न तुम्हारे है।

यह लीला तो श्रीराम करते हैं, श्रीकृष्ण करते हैं। लीलाके लिए निराकार ब्रह्म ही साकार स्वरूप धारण करते हैं। निर्गुण ब्रह्म ही सगुण लीला-शरीर धारण करते हैं और अनेक प्रकारकी लीला करते हैं।

आनन्दस्वरूप परमात्माकी ऐसी दिव्य लीला देखते हुए शिवजीको तनिक भी मोह नहीं हुआ। शिवजीको दृढ़ विश्वास था कि 'श्रीराम ईश्वर ही हैं' परन्तु सतीजीके मनमें थोड़ा विकल्प हुआ, और सतीजी परीक्षा करनेके लिए गयीं। सतीजीको विश्वास हो गया कि 'यह परमात्मा ही हैं।'

वहाँसे श्रीराम-लक्ष्मण आगे चल पड़े। रास्तेमें घायल जटायुके दर्शन हुए। दोनों पंख कट गये थे। रुधिर वह रहा था। वृद्ध जटायु धरतीके ऊपर पड़ा था। जटायुकी यह दशा देखते ही रामजीकी आँखें भीनी हो गयीं, श्रीसीता-वियोगका दुःख यह भूल गये। रामजी जटायुको काका कहकर बुलाते थे। वाल्मीकि रामायणमें कथा आती है कि दशरथ महाराजके साथ जटायुकी मित्रता थी। दशरथ महाराज जब शनैश्चर ग्रहके साथ युद्ध करनेके लिए गये हुए थे तब जटायुने इनकी मदद की थी, ऐसी कथा पुराणोंमें आती है। पिताका मित्र होनेसे मालिक जटायुको काका कहकर बुलाते थे। मेरे पिताके मित्र जटायुकी यह दशा हो गयी ! देखते ही रामजीकी आँखे भीनी हो गयीं। श्रीसीताजीको भूल ही गये। जटायु बहुत भाग्यशाली गिना जाता है। इसके जैसा सौभाग्य तो महाराज

दशरथको भी नही प्राप्त हुआ । अंतकालमे दशरथ महाराजको रामजीका वियोग हुआ था किन्तु अंतकालमें जटायुके पास रामजी पधारे ।

श्रीराम अतिशय सरल हैं, प्रेम की मूर्ति हैं। इन्होने जटायुको गोदमें लिया। जटायुकी पीठके ऊपर हाथ फेरते हुए पूछा—काका ! तुम्हारी यह दशा हुई। तुम्हारे पख किसने काट डाले ? बहुत व्याकुल होते हुए जटायुने धीरज रखकर कहा।

सा देवी मम च प्राणा रावणेनोभयं हृतम् ॥

रावण सीताजीको ले जा रहा था । तब मैंने युद्ध किया। रावणने कपट किया और मेरे पंख काट डाले। रामजीने कहा—काका ! मेरे लिए तुम्हारी यह दशा हुई। तुमने मेरे लिए प्राण दे दिए। जटायुने कहा—मेरी एक ही इच्छा थी कि अंतकालमें मैं श्रीरामके दर्शन करूँ। मैं आपके दर्शन के लिए प्राण रोककर पड़ा हुआ हूँ कि जब रामजी यहाँ आवें तब मे यह सब कथा कहकर प्राणोंको छोड़ूँ। मुझे आपका दर्शन हो गया, अबमे सुखसे शरीर छोड़ूँगा ।

श्रीरामचन्द्रजीने कहा। काका ! तुम कहो तो तुम्हारे शरीरको सुन्दर बना दूं। तुम शरीरको धारण करके रक्खो ! जटायुने स्मित हास्यसे कहा—

जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमउ मुकुत होइ श्रुति गावा ॥
सो मम लोचन गोचर आगें। राखौं देह नाथ केहि खाँगे ॥

मरते समय जिसका नाम मुखसे निकले तो अधम भी मुक्तिको प्राप्त हो जाता है, ऐसे आप मेरे नेत्रोंके विषय बनकर खडे हुए हो फिर हे नाथ ! अब क्या इच्छा बाकी रह जाती है ? अब किस हेतु इस देहको रखनेकी आवश्यकता है ?

जटायुने मना किया। रामजीकी गोदमे माथा टेक दिया, रामजीके दर्शन करता हुआ, श्रीराम, श्रीराम बोलते हुए जटायुने देह छोड़ दिया। प्रभुने कहा कि मेरे लिए इसने प्राणोंका बलिदान किया है।

मम हेतोरयं प्राणान् मुमोच पतगेश्वरः ।

उसके पश्चात् प्रभुने जटायुकी विधिपूर्वक अन्तिम क्रिया की। लक्ष्मणजीने जंगलसे लकड़ी लाकर चिता बनायी। प्रभुने जटायुका अग्नि-संस्कार किया और उन्होंने तिलाञ्जलि दी। पशु-पक्षियोंको भोज्य पदार्थ खिलाकर श्राद्ध किया।

ईश्वरके साथ कोई भी सम्बन्ध जोड़कर रक्खोगे तो अन्त समयमें बहुत काम आवेगा। जीव मरते समय संसारका सम्बन्ध छोड़ता है, इसलिए बहुत अकुलाता है, बहुत तड़पता है। इसको घबराहट होती है कि अब मेरा क्या होगा ? परमात्माके साथ

कोई भी सम्बन्ध रखा हुआ हो तो मरण-सुधर जाता है। मरणका निवारण नही हो सकता परन्तु सुधारा तो जा ही सकता है। ज्ञानी पुरुष मरणको टालनेका प्रयत्न करते नही, मरणको सुधारनेका ही प्रयत्न करते हैं। जिसका मरण सुधरता है उसको फिरसे जन्म नहीं लेना पड़ता है। मरणको सुधारता है परमात्माके साथ जोड़ा हुआ सम्बन्ध।

वैष्णवको मृत्युका तनिक भी डर नही लगता। कारण कि उसका ब्रह्म सम्बन्ध है, परमात्माके साथ सम्बन्ध है। वैष्णव जानता है कि मरनेके बाद मुझे अपने ठाकुरजीकी नित्य सेवामें जाना है, अपने भगवानके चरणोंमें जाना है। मरण यदि आनेवाले कल आता हो तो आज ही आ जाये। सन्त मानते हैं कि मृत्यु ईश्वर-मिलन कराती है। सन्तोंका ईश्वरके साथ पक्का सम्बन्ध है।

इस जगतका सभी सम्बन्ध कच्चा है, झूठा है आज तक संसारके तो अनेक सम्बध किये। यह जीव अनेक जन्मोंमें कितनी ही बार पति हुआ, पत्नी हुआ, पिता हुआ, पुत्र हुआ। इसकी कोई गणना है?

मातृपितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च।
संसारेष्वनुभूतानि यान्ति यास्यन्ति चापरे॥

ये सम्बन्ध कहाँ गये? और इनका अन्त अब कहाँ आनेवाला है? कब तक यह चलता रहेगा? अब तो प्रभुके साथ प्रेम बाँधो, प्रभुके साथ सम्बन्ध बाँधो। प्रभुके साथका सम्बन्ध ही तुमको संसारके बन्धनसे छुड़ावेगा। यह जन्म-मरणका चक्कर तो चलता ही रहनेवाला है। झूठे सम्बन्ध बँधते और छूटते है। उनका कोई अन्त भी नहीं। अन्त तो तब होगा जब परमात्माके साथ सम्बन्ध हो जाएगा। यही सम्बन्ध सच्चा है, स्थायी है।

जटायु गीध पक्षी है। पक्षियोंमें भी गीध अधम गिना जाता है परन्तु रामजीके साथ इसका सम्बन्ध हुआ और इस कारण श्रीराम इसको काका मानते थे। तुम भी रामजीके साथ कोई सम्बन्ध जोड़कर रक्खोगे तो मरण मङ्गलमय होगा। परमात्माके साथ सम्बन्ध बाँधनेसे ही मरण सुधरता है।

संसारके सम्बन्ध तो स्वार्थसे भरे हुए हैं। जिस पुत्रके लिए बाप लाखों रुपयोंकी सम्पत्ति छोड़कर जाता है, अरे! वह पुत्र भी अन्तकालमें दगा करता है, बापके पास बैठता भी नहीं। बापका जीव तीव्र वेदना सहन करता होता है और पुत्र बापकी सम्पत्ति-की वसीयत करानेकी चिन्तामें होता है। कितने ही तो राह देखते हैं कि अब कैसे होगा? अब जल्दी छुटकारा हो तो ठीक है। आज छुट्टी पूरी हो रही है। जिनके लिए पैसेका त्याग किया, जिनके लिए समयका त्याग किया, वे ही कुटुम्बी ऐसी अपेक्षा रखते हैं कि

अब बहुत दिन हो गये। जल्दी ही कुछ हो जाये तो ठीक है। जल्दी ही कुछ हो जाये इसका अर्थ क्या ? यही कि मर जाये तो ठीक है परन्तु ऐसा स्पष्ट रीतिसे बोलते नही। पुत्र भी पिताके साथ दगा करता है। परमात्मासे सम्बन्ध जोड़कर रक्खा होगा तो अन्तकाल-में बहुत काम आवेगा।

जटायुका श्राद्ध प्रभुने किया। जटायुकी दिव्य सद्‌गति हुई। श्रीरामचन्द्रजीने उसे सारूप्य मुक्ति दी, स्वयका जैसा दिव्य-स्वरूप दिया। आकाशमे वह प्रगट हुआ और श्री-रघुनाथजीको वन्दन करके जटायुने स्तुति की।

अगणितगुणमप्रमेयमाद्यं
सकल जगत्स्थितिसंयमादिहेतुम्।
उपरमपरमं परात्मभूत
सततमहं प्रणतोऽस्मि रामचन्द्रम्॥

× ×

परधनपरदारवर्जितानां
परगुणभूतिषु तुष्टमानसानाम्।
परहितनिरतात्मनां सुसेव्यं
रघुवरमम्बुजलोचनं प्रपद्ये॥

श्रीरामचन्द्रजी अनंत, अचिन्त्य सद्‌गुणोके भण्डार है। अगणितगुणमप्रमेय-माद्यम्। जगतमें जितने दिव्य सद्‌गुण है वे सब श्रीरामजीमें एकत्रित हुए हैं। श्रीराम अर्थात् कौन ? सब सद्‌गुणोंके भण्डार हो श्रीराम। रामजीके दरबारमें भी दर्शन करने वह ही जा सकता है जो रामजी जैसे दिव्य सद्‌गुण जीवनमें उतारता है। यदि कोई दर्शन करने जाये तो हनुमानजी बाहर गदा लेकर खडे रहते हैं।

हनुमानजी कहते हैं—अंदर मत जाओ। तुम प्रत्येक स्त्रीमें मातृ-भाव रखते हो ? तुम माता-पिताकी सेवा बराबर करते हो ? मेरे रामजी जैसा बन्धु-प्रेम रखते हो ? यह मर्यादापुरुषोत्तमका दरबार है। वेद-शास्त्रकी मर्यादाका पालन करते हो ? परस्त्री-में मातृ-भाव रखे, माता-पिताकी जो सेवा करे, भाईमें जो शुद्ध प्रेम रखे, उसको ही हनुमानजो दर्शन करने जाने देते है। नही तो पीछे गदा ही दिखाते हैं। जो मर्यादाको भग करता है, उसको हनुमानजी दर्शन करने नही जाने देते। उसको तो गदा दिखाकर कहते हैं कि तेरे लिए ही गदा लेकर यहाँ बैठा हूँ। तू मर्यादाको भंग करता है ? कथा सुनता है और पाप छोड़ता नही ?

कथा सुननेके बाद भी जो पाप करना चालू रक्खे उसको बहुत सजा मिलती है। जिसने कथा सुनी ही नहीं वह पाप करे तो उसको भी सजा तो होती है परन्तु जिसने कथा सुननेके बाद भी पाप नहीं छोड़ा उसको भगवान दो-चार कोड़े अधिक मारते हैं। भगवान कहते हैं—तू कथामें जाता था। तू मन्दिरमें दर्शन करने भी जाता था। लोग तुझको वैष्णव कहते थे। तूने कथामें सुना था फिर भी पाप नहीं छोड़ा। इसलिए तुझको अधिक सज़ा है।

कथा सुनो और कथाके सिद्धान्त जीवनमें भी उतारो। ज्ञान जब क्रियात्मक होता है तब ही सार्थक होता है। कथा सुननेके बाद अपनी करनीको सुधारो। कथा सुननेके बाद पाप न छूटे तो कथा सुनना किस कामका ? कथा सुननेके पश्चात् भूतकालमें किए पापोंका पश्चात्ताप होना चाहिए, स्वभाव सुधारना चाहिए, आगे कोई पाप न किया जाएगा ऐसा निश्चय होना चाहिए और हृदयमें प्रभु-प्रेम जगना चाहिए। कथा सुननेके पश्चात् नये जीवनका प्रारम्भ होना चाहिए। ऐसा नहीं करते उनको अधिक सजा मिलती है। हनुमानजी महाराज प्रत्येक पापकर्त्ताको सजा करते हैं। हनुमानजीको किसीसे डर लगता है, क्या इसलिए गदा हाथमें रखते हैं ? अरे, हनुमानजीतो पापियोंको सजाके लिए गदा रखते हैं।

जटायुने कहा—मर्यादापुरुषोत्तमके दरबारमें पूर्ण धर्म-मर्यादाका पालन करने वाला ही जा सकता है। जिसको बहुत धन मिलता है, जिसे जगतमें बहुत सम्मान मिलता है, वह सनातन धर्मकी मर्यादा तोड़ता है परन्तु सुखसम्पत्ति मानप्रतिष्ठा—यह सभी अनित्य है। नित्य तो है केवल एक धर्म।

धर्मो नित्यः सुखदुःखे त्वनित्ये जीवो नित्यः हेतुरस्य त्वनित्यः ॥

यह जीवन भी अनित्य है क्षणभंगुर है। आत्मा नित्य है। नित्य आत्माको शुद्ध रखनेकी बहुत आवश्यकता है धर्मसे ही यह शुद्धि आती है, टिकती है। इसलिए धर्मकी मर्यादाका हमेशा पालन करो।

परन्तु, ये बहुत पढ़े-लिखे लोग और बहुत श्रीमंत लोग धर्मकी मर्यादा पालते नहीं। उनको ऐसा लगता है कि संध्या-वंदन करनेकी क्या आवश्यकता है ? एकादशी करनेकी क्या आवश्यकता है। एकादशी अवश्य करना चाहिए। एकादशीके समान कोई श्रेष्ठ पर्व नहीं। अपना सनातन धर्म अतिशय श्रेष्ठ है। परन्तु जहाँ ज्ञान बढ़ा, जगतमें बहुत मा मिला कि मनुष्य धर्म की मर्यादाको भंग करने लग जाता है। उसको ऐसा लगता है कि मुझसे कौन पूछने वाला है ? भगवान कहते हैं, कि तू ऊपर आ, फिर बताता हूँ। धर्म की मर्यादा पालनेके लिए ही ज्ञान है। धर्मकी मर्यादामें रहनेके लिए ही धन है।

श्रीमंत होकर, ज्ञानी होकर धर्मकी मर्यादाको भंग करे, उसे भगवान बहुत सजा देते हैं। परमात्माको धर्म अतिशय प्रिय है। धर्मके लिए ही ईश्वर जगतमें आते हैं।

धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।

कितने ही लोग भक्तिका थोड़ा नाटक करते हैं, और पुस्तकें पढ़कर ज्ञानको कुछ थोड़ी बातें भी करते हैं, परन्तु धर्म पालते नहीं। भक्ति यदि धर्म-विरुद्ध हो, ज्ञान यदि धर्मानुकूल न हो, तो ऐसी ज्ञान-भक्ति सफल नहीं है। ज्ञानभक्ति धर्मानुकूल हों तो ही वे सफल है। कितने ही लोग ऐसा समझते हैं कि हम तो भक्ति कर लेते हैं। अब हम धर्म न भी पालें तो कोई बाधा नहीं। भगवान हमको क्षमा कर देंगे। भगवान ऐसी क्षमा किसीको नहीं देते। भगवानको धर्म अतिशय प्रिय है। अरे, धर्मके लिए ही तो प्रभुने भी अत्यन्त दुःख सहन किए हैं। दुःख सहन करके भी स्वधर्मका पालन करो।

आज कल कितने ही लोगोंको मस्तकपर तिलक करनेमें शर्म आती है। शास्त्रमें ऐसा लिखा है कि जिसके मस्तकपर तिलक नहीं है, उसका मुंह देखनेसे अपशकुन होता है। जिसके मस्तकपर तिलक नहीं, जिसके गलेमें तुलसीकी कंठी नहीं, रुद्राक्षकी माला नहीं उसका मुँह देखना नहीं। अपने सनातन धर्मके ये प्रतीक हैं। मस्तकपर तिलक होना ही चाहिए। गलेमें कंठी होनी ही चाहिए। परन्तु ज्ञान बहुत बढ़ा, लोग बहुत सुधर गये, इस कारणसे यह सब चला गया।

मस्तकपर तिलक करनेमें शर्म आती है परन्तु पाप करनेमें तनिक भी शर्म आती नहीं! झूठ बोलनेमें अथवा चुगली करनेमें शर्म आती नहीं! एकादशीके दिन अनाज खानेमें लज्जा आती नहीं। धर्म पालनेमें लज्जा लगती है! तुम अधिक भक्ति न करो तो बाधा नहीं, परन्तु बने वहाँ तक स्वधर्मके पालन करनेका आग्रह रक्खो। अपना धर्म अतिशय श्रेष्ठ है।

श्रीराम मर्यादापुरुषोतम हैं। जो धर्मकी मर्यादाको भंग करते हैं वे परमात्माको तनिक भी सुहाते नहीं। जटायुने रामजीकी बहुत सुन्दर स्तुति की। जटायुको प्रभुने दिव्य गति दी। जटायुका श्रीरामचन्द्रजीने उद्धार किया।

शिवजी महाराज पार्वतजीको कथा सुनाते हैं कि देवी! जटायु जैसा हीन पक्षी रामजीके चरणोंमें कैसा प्रेम रखता है। जीव परमात्माके साथ प्रेम न करे तो इसका बहुत पतन होता है। ऐसा जीव बहुत अभागा है। प्रभुके साथ प्रेम करे तो जीवका बहुत कल्याण होता है। हीन पक्षी जटायुको भी प्रभुने सारूप्य मुक्ति दे दी। योगी जिस गतिको दृष्टिमें रखकर योग, ध्यान, तप करते हैं वह गति परमात्माने जटायुको दी।

कोमल चित अति दीनदयाला । कारन बिनु रघुनाथ कृपाला ॥
गीध अधम खग आमिष भोगी । गति दीन्ही जो जाचत जोगी ॥
सुनहु उमा ते लोग अभागी । हरि तजि होहिं बिषय अनुरागी ॥

श्रीराम अति उदार हैं। श्रीरामजीको छोड़कर, संसारके विषयोंके साथ जो बहुत प्रेम करता है, उसकी बुद्धि बिगड़ती है, उसका जीवन बिगड़ता है। शरीरके साथ रमण करनेमें जो सुख मानता है, वह पाप करता है। संसारके जड़ पदार्थोंके साथ जो रमता है वह पाप करता है। ईश्वरके साथ जो प्रेम करता है, उसके हाथोंसे पाप नहीं होता। प्रभुने जोवके पास दो प्रकारके आनन्दका सृजन किया—विषयानंद और भजनानंद। दोनोंमेंसे तुम किसको पसन्द करोगे ? जिसको भजनानन्द मिला है, भक्तिका आनन्द मिला है, उसको विषयानन्द अच्छा नहीं लगता। विषयानन्द क्षणिक सुख देता है परन्तु परिणाममें दुःख देता है। भजनानन्द प्रारम्भमें थोड़ा दुःख देता है परन्तु परिणाममें सुख देता है। भक्तिमें जल्दी आनन्द नही मिलता। नियमसे भक्ति करे, उसको धीरे-धीरे आनन्द मिलता है। यह आनन्द ही सच्चा आनन्द है परन्तु मनुष्य क्षणिक विषयानन्द भोगनेके लिए समस्त दिवस माथेपर चिन्ता और उपाधि रखकर फिरता है। अति दुःख सहन करके वह थोड़ा सुख भोगता है परन्तु संसार-सुखके लिए मनुष्य जितना दुःख सहन करता है, उतना दुःख परमात्माके लिए सहन करे तो परमात्मा उसके ऊपर प्रसन्न होते हैं।

प्रभुने जटायुको दिव्य सद्गति दी।

प्रपयौ ब्रह्मसुपूजितं पदम् ॥

जटायुका उद्धार करके, श्रीराम-लक्ष्मण सीताजीको खोजते हुए चले। रास्तेमें कबन्ध नामका एक भयंकर राक्षस मिला। प्रभुने कबन्धका उद्धार किया, कबन्धको मारा। कबन्धकी मृत्यु हुई, उसके शरीरमेंसे एक तेजस्वी पुरुष उत्पन्न हुआ और उसने श्रीरामचन्द्रजीको साष्टाङ्ग वन्दन करते हुए कहा—

धन्योऽहं यदि रामस्त्वमागतोऽसि ममान्तिकम् ।
पुरा गन्धर्वराजोऽहं रूपयौवनदर्पितः ॥

पूर्व जन्ममे मैं एक महान् गन्धर्व था, अति सुन्दर था, भोग-विलासमें फँसा हुआ था। एक समय गंगा किनारे अष्टावक्र महर्षि बैठे थे, उस समय अनेक गन्धर्वकन्याओंके साथ रमण करता हुआ मैं वहाँ गया।

अष्टावक्र ऋषिका शरीर काला था, उनका अंग आठ जगह टेढ़ा था। पिताजीका शाप लगा हुआ था, इस कारण आठ स्थानपर शरीर टेढ़ा हो गया था। कबन्धने

कहा—अष्टावक्र ऋषिको देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। मुझे सौन्दर्यका अतिशय अभिमान था कि मैं बहुत ही सुन्दर हूँ।

चमडीका सौन्दर्य सच्चा सौन्दर्य नही। चमडीका चिंतन करना पाप है। किसीकी भी चमडीका चिंतन करो तो दूसरे जन्ममे चमारका घर मिलता है। चमार वह जो चमडीका चिन्तन करे। ससारके सौन्दर्यका चिन्तन करनेसे मन चचल होता है, परमात्माके सौन्दर्यका विचार करनेसे मन शान्त होता है। ससार सुन्दर है, ऐसी कल्पनामे-से पाप प्रारम्भ हो जाता है और ईश्वर सुन्दर है, ऐसी कल्पनामेसे भक्तिका प्रारम्भ होता है। ज्ञानीकी दृष्टिमे ससार सुन्दर नही। ज्ञानी पुरुष इस ससारको सुन्दर मानते नही परन्तु मान लो कि यह संसार सुन्दर है, तो सुन्दर ससारको उत्पन्न करनेवाला अति सुन्दर होना चाहिए।

संसारको भोग-दृष्टिसे नही परन्तु भगवद्दृष्टिसे मनुष्य देखे तो सुखी होता है। प्रभुने यह ससार सबको सुखी करनेके लिए बनाया है परन्तु मनुष्य उसमें विवेक नहीं रखता। इस कारणसे दुःखी रहता है।

एक गांव था। गांवमें पानीकी तंगी थी। गावके लोग बहुत दुःखी रहते थे। एक सेठने लोगोका उपकार करनेके लिए पर्याप्त खर्च करके बडा कुआं बनवा दिया। लोग जल-पान करके सुख प्राप्त करते और सेठको आशीर्वाद देते। एक दिन किसीका लड़का खेलते-खेलते कुएँमें गिर पड़ा। लड़का डूबकर मर गया। अति दुःखमें विवेक नही रहता है। लड़केका बाप कुआं बनवानेवाले अपने सेठको गालियां देने लगा कि तुमने कुआं बनवाया इसलिए ही मेरा लड़का मरणको प्राप्त हुआ। सेठने तो लोगोके सुखके लिए कुआं बनवाया था। लड़का डूबकर मरा। उसमें सेठका क्या दोष ?

यह संसार भी एक कुआं है। भगवानने जीवको सुखी करनेके लिए ही यह बनाया है। भगवान कहते हैं—मैंने किसीको डूब मरनेके लिए ससार नही बनाया। मनुष्यको विवेक रखना चाहिए। शरीर सुन्दर है, इस कल्पनासे कामका जन्म होता है। शरीरमें कुछ भी सुन्दर नहीं। इस शरीरमें मल-मूत्र और हड्डियां भरी हुई हैं, शरीरमें रहनेवाला चैतन्य ही सुन्दर है। सुन्दर तो अन्दर विराजनेवाला परमात्मा ही है।

कबंधने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—मै अतिशय सुन्दर था, इसलिए काले कुरूप अष्टावक्र मुनिको देखकर हँसने लगा। उनका मैंने उपहास किया। तब ऋषिने कहा—तू मेरी आकृति देखता है परन्तु कृति नही देखता। मेरी आकृति चाहे जैसी हो परन्तु कृति खराब नहीं। आकृति देखकर तू हँसता है परन्तु मनुष्यकी कृति देखनी चाहिए। आकृति तो पूर्वजन्मके प्रारब्धसे मिलती है। महत्त्व है कृतिका। इसलिए मेरी कृति देख।

परमात्मा कृतिको देखता है, मनुष्य आकृतिको देखता है। किसीके आकारको बहुत देखोगे तो मनमें विकार आवेगा। आकारमेंसे ही विकारका जन्म होता है। इसलिए व्यक्तिका आकार, व्यक्तिका रूप, रंग मत देखो। जो आकारको नहीं देखता उसके मनमें विकार नहीं आता। ज्ञानी पुरुष आकारको देखता नहीं। ज्ञानी पुरुष सृष्टिको निर्विकार भावसे देखता है। सभी आकारोंमें ईश्वरतत्त्व निवास करता है।

कवन्धने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—अष्टावक्र ऋषिने मुझसे कहा कि मेरी आकृति चाहे जैसी हो परन्तु मैं त्रिकाल संध्या करनेवाला तपस्वी ब्राह्मण हूँ। तू मेरा उपहास करता है, मैं तुझे शाप देता हूँ कि तू राक्षस हो जा। ऋषिके शापसे मुझे बहुत दुःख हुआ। मैंने अष्टावक्र ऋषिके चरण पकड़ लिए, क्षमा माँगी। ऋषिको दया आ गयी। मुझे आज्ञा दी थी कि राक्षस होनेके बाद एक बार तुझे श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन होंगे। श्रीरामचन्द्रजी तेरा उद्धार करेंगे। भगवान ! आपके दर्शनोंसे अब मैं शापसे मुक्त हो गया हूँ।

हासो मोहकरी माया सृष्टिस्तेऽपाङ्गमोक्षणम्।
धर्मः पुरस्तेऽधर्मश्च पृष्ठभाग उदीरितः॥

× × ×

सर्वे ते मायया मूढास्त्वां न जानन्ति तत्त्वतः।
नमस्ते रामभद्राय वेधसे परमात्मने॥

हे प्रभु ! सबको मोहित करनेवाली माया आपका हास्य है। आपकी मायासे मोहित हुए लोग आपका सच्चा स्वरूप नही जानते। यह सृष्टि आपका कटाक्ष है। संसारको रचना करनेवाले आप हो। श्रीराम ! मैं आपका वंदन करता हूँ।

कबन्धने श्रीरामचन्द्रजीकी सुन्दर स्तुति की और वह गन्धर्वलोकमें चला गया।

(५१)

प्रेममूर्ति शबरी

श्रीराम-लक्ष्मण वहाँसे पंपा सरोवरके पास आए। वहाँ श्रीशबरीजीका आश्रम था।

अपने भारतमें चार सरोवर प्रधान हैं। गुजरातमें बिन्दु सरोवर है। यह बिन्दु सरोवर सिद्धपुरमें श्रीसरस्वती नदीके कंठमें स्थित है। कर्दम ऋषिने वहाँ तपश्चर्या की थी। परमात्मा नारायण वहाँ प्रगट हुए और कर्दम ऋषिको देखकर ठाकुरजीकी आँखोंमें आँसू आ गये। आँसुओंका सरोवर हो गया। इसीलिए उसको बिन्दु सरोवर कहते हैं।

भागवतमें यह सब कथा आती है। कर्दम ऋषि जितेन्द्रिय महात्मा थे। जितेन्द्रिय होनेके लिए सरस्वतीके किनारे रहना पड़ता है। सरस्वतीका किनारा अर्थात् सत्कर्मका किनारा। कर्दम ऋषि सिद्धपुरके पास सरस्वतीके किनारे समस्त दिवस तप करते थे, आदिनारायण भगवानका आराधन करते थे। शरीर, प्राण और मनको सत्कर्ममें निरन्तर पिरोये रखते थे, एक पल भी व्यर्थ नहीं बैठते थे।

निष्क्रिय बैठने जैसा कोई पाप नहीं। समयका नाश, सर्वस्वका नाश है। परमात्मा सब प्रकार उदार हैं, परन्तु समय देनेमें उदार नहीं। भगवान अतिशय सम्पत्ति देते हैं, परन्तु समय नहीं देते। भगवान कहते हैं—तुमको दो लाख रुपयेकी आवश्यकता हो तो दूं परन्तु तेरी आयुमें दो घड़ी भी अधिक नहीं दूंगा। समयको सुवर्णकी अपेक्षा भी कीमती समझो। अतिशय थकान न लगी हो और मनुष्य आराम करे, यह ठीक नहीं।

कर्दम ऋषिने दिनचर्या ऐसी व्यतीत की कि किसी विषयमें मन नहीं जाये। दुःख सहन करके जो तप करता है, वह ही महान् होता है। जो बुद्धिपूर्वक दुःख सहन करता है, उसके पाप जल जाते हैं। कर्दम ऋषिने खूब तपश्चर्या की। शरीरमें हाड़ ही बाकी रहे। कर्दम ऋषिकी तपश्चर्या सिद्ध हुई। प्रभु प्रसन्न हुए। कर्दम ऋषिके सम्मुख चतुर्भुज नारायण प्रगट हुए। भगवानकी आँखोंसे हर्षके बिन्दु निकले। उनका हुआ बिन्दु सरोवर। सिद्धपुरकी यात्राके समय इस बिन्दु सरोवरमें स्नान करना पड़ता है। कर्दम ऋषिको यहाँ पुत्र-रूपमें जन्म लेनेका भगवानने वरदान दिया था। भगवानको जगतमें सांख्य शास्त्रका उपदेश करना था, इसलिए कपिल भगवान कर्दम ऋषिके यहाँ प्रगट हुए थे। यह बिन्दु सरोवरकी महिमा है।

दूसरा है नारायण सरोवर। वह भी गुजरातमें ही कच्छ प्रान्तमें स्थित है। यह नारायण सरोवर वह स्थल है जहाँ प्रचेताओंने तपश्चर्या की थी और जहाँ आदि-

नारायण परमात्मा इनको दर्शन देनेके लिए प्रगट हुए थे। अर्चन भक्तिके आचार्य पृथु राजाके वंशमें प्राचीनबर्हि राजा हुए। प्राचीनबर्हिके यहाँ प्रचेताओंने जन्म लिया। प्रचेता नारायण सरोवरके किनारे गये। वहाँ शिवजीने उनको रुद्रगीताका उपदेश करते हुए कहा कि तुम तप करो। तप बिना सिद्धि नहीं मिलती। तप न करे, उसका पतन हो जाता है। यह आज्ञा देकर शिवजी अन्तर्धान हो गये।

प्रचेताओंने शिवजीके द्वारा बताये हुए स्तोत्रका जप करते हुए तपश्चर्या आरम्भ की। जपसे मनकी शुद्धि होती है। जप बिना जीवन सुधरता नहीं। प्रचेताओंने दस हजार वर्ष तक नारायण सरोवरके किनारे जप किया, तब उनके समक्ष नारायण भगवान प्रगट हुए। प्रचेता भगवान नारायणका दर्शन करके अत्यन्त कृतार्थ हुए। नारायण भगवानने प्रचेताओंको आज्ञा की—तुम विवाह करो। विवाह करना, पाप नहीं। गृहस्थाश्रम भक्तिमें बाधक नहीं, साधक है। एक-दो सन्तान होनेके पश्चात् संयम-का पालन करना। प्रतिदिन तीन घंटे मेरी ही सेवा-स्मरण करोगे तो तुम्हारा पापोंसे मै निवारण करूँगा।

एक आसनपर बैठकर तीन घंटे भगवत्-स्मरण करें, उनका भगवान पाप करनेसे निवारण करते हैं। प्रचेताओंके चरित्रमें भगवानने ज्ञान दिया है कि नित्य तीन घंटे उनका ध्यान करो तो फिर इक्कीस घंटे वे तुम्हारा ध्यान रखेंगे।

प्रचेता घर गये। प्रत्येकका विवाह हुआ। एक-एक पुत्र होनेके पश्चात् प्रचेता नारायण सरोवरके किनारे वापस आए। उस समय नारदजी वहाँ तप कर रहे थे। प्रचेताओंका नारदजीके साथ वहाँ मिलन हुआ। नारदजीने उनको ज्ञानका उपदेश किया।

दयया सर्वभूतेषु संतुष्ट्या येन केन वा।
सर्वेन्द्रियोपशान्त्या च तुष्टत्याशु जनार्दनः॥

सब जीवोंके प्रति दयाभाव, जो कुछ प्राप्त हो, उसीमें सन्तोष और सब इन्द्रियोंका सयम—इन तीनोंसे प्रभु जल्दी प्रसन्न होते हैं।

इस प्रकार प्रचेताओंका नारायण सरोवरके किनारे नारदजीसे सत्संग हुआ, शिवजीके और नारायण भगवानके दर्शन हुए। नारायण सरोवरकी महिमा बहुत बड़ी है।

उत्तर भारतमें हिमालयमें कैलाश पर्वतकी तलहटीमें मानसरोवर है। वहाँ भगवान शंकर विराजते हैं। मानसरोवर अति पवित्र है, दिव्य है। तुलसीदास महाराजने अपनी रामायणका नाम "रामचरितमानस" रक्खा है।

रामचरितमानस मुनि भावन। बिरचेउ संभु सुहावन पावन ॥
त्रिविध दोष दुःख दारिद दावन। कलि कुचालि कुलि कलुष नसावन ॥

चौथा सरोवर दक्षिण भारतमे शबरीजीका जहाँ आश्रम था, उसके पास स्थित है। इसको पंपा कहते हैं।

जिन वैष्णवोंने ब्रज चौरासी कोसकी परिक्रमा की है, उनको खबर है कि ब्रजमें एक प्रेम सरोवर है। ये पाँचो सरोवर अति दिव्य हैं। प्रेम सरोवरपर श्रीराधाकृष्णका प्रथम मिलन हुआ था। एक बार श्रीकृष्ण मित्रोके साथ......खेल,खेल रहे थे......। कन्हैया तब पाँच वर्षके थे। श्रीराधाजी तीन वर्षकी थी। श्रीराधाजी भी वहाँ सखियोके साथ आयी हुई थी और सखियोसे उनका विछोह हो गया था। श्रीकृष्ण जहाँ खेल रहे थे, वहाँ श्रीराधाजी आ-पहुँची। श्रीराधाजी सामनेसे आ रही थी। कन्हैयाकी और राधाजीकी नजर एक हुई, चार आँखें मिली। श्रीकृष्ण-राधिकाजीका प्रथम मिलन हुआ। प्रथम दर्शनमे ही इतना अधिक प्रेम प्रगट हुआ कि वह आंखोमें से आँसू बनकर बाहर निकलने लगा। उनका यह प्रेम सरोवर हुआ। प्रेम सरोवर ब्रजमे है।

पंपा सरोवर दक्षिण भारतमें है। वहाँ श्रीरघुनाथजी पधारे। शबरीजी वहीं विराजती थी। शबरीजीकी कथामें एकनाथ महाराजको समाधि लग गयी है। एकनाथ महाराजने अनेक रामायण एकत्रित करके "भावार्थ रामायण" लिखी है। शबरीजीके चरित्रमें तो इनको समाधि लगी है। शबरीजीके पूर्वजन्मकी कथा भी इन्होने लिखी है।

शबरीजी पूर्व जन्ममें एक महारानी थी। राजमहलका विलासी जीवन उनको सुहाता नही था। राजमहलमे बहुत सुख था परन्तु शबरीजीको यह सुख सुहाता नहीं था। शबरीजी विचारने लगी कि प्रभुने यह जन्म क्यो दिया ? यहाँ तो भोग-विलासके अतिरिक्त अन्य कोई बात ही नही है। सत्संग मिलता नही। शबरीजी राजमहलमें विराजती थी परन्तु उनको संसारका सुख-तुच्छ लगता था।

व्यवहारमे रानीका सुख श्रेष्ठ मानते हैं। राजा बहुत सुखी कहलाता है, परन्तु राजाको राज्य चलानेकी कुछ चिन्ता होती है परन्तु रानीको तो कोई भी चिन्ता होती नहीं। राजाकी अपेक्षा भी रानीका सुख अधिक होता है। रानी निश्चिन्त होती है। इस लौकिक दृष्टिसे तो महारानी बहुत सुखी हैं, परन्तु शबरीजीको यह सुख तुच्छ लगता था। उनको रानी बननेका सुख सहन नहीं होता था। शबरीजीको दु:ख रहता था कि प्रभुने मुझे महारानी बनाया, यह बहुत खोटा हुआ। मेरा जीवन बिगड़ता है। मैं किसी सन्तकी सेवा भी नही कर सकती।

शबरीजी महारानी थी, इस कारण पर्देमें ही रहना पड़ता था। वे बाहर नहीं निकल सकती थीं। किसी सन्तकी सेवा नहीं कर सकतीं थी, कथा-श्रवण नहीं कर सकती थीं, राजाकी इच्छाका सम्मान करना पड़ता था। ऐसा जीवन शबरीजीको तनिक भी सहन नहीं होता था। वे बहुत दुःखी हो गयीं। एक समय महारानी शबरीजी प्रयागराजके कुम्भ-मेलामें गयीं। वहाँ सन्तोंके दर्शन होनेसे उनको बहुत आनन्द हुआ। सन्तोंका दर्शन तो उनको हुआ परन्तु बहुत इच्छा होनेपर भी वे महारानी होनेके कारण संतोंकी सेवा नहीं कर सकीं। इसलिये अतिशय दुःखी होकर उन्होंने निश्चय किया कि आत्महत्या कर डालूं, जिससे अगले जन्ममें मुझको संतोंका सत्संग प्राप्त हो, संतोंकी सेवाका लाभ मिले।

आत्महत्या महापाप है परन्तु प्रयाग त्रिवेणीमें कोई आत्महत्या करे, उसे पाप नहीं लगता। महारानीने त्रिवेणी गंगामें स्नान करते समय आत्महत्या कर ली। वे महारानी दूसरे जन्ममें शबरीजी हुईं।

वे एक भील राजाके घर, कन्यारूपमें प्रगट हुई। सन्त-सेवाके लिए ही शबरीजीने जन्म लिया था। छोटी अवस्थाकी थीं तभी से इनका हृदय बहुत कोमल था। प्रभुमें अतिशय प्रेम था। शबरीजी शुद्ध प्रेमलक्षणा भक्ति हैं। बड़ी होनेपर इनका विवाह निश्चित हुआ। उस समय उनके पिताने तीन सौ बकरे मँगाये। शबरीने पूछा कि ये क्यों मँगाये हैं? पिताने कहा—बेटा, आज बरात आने वाली है। उसमें लोगोंका स्वागत करना पड़ेगा। बरातियोंको भोजन देना पड़ेगा। शबरीजीको आघात लगा। मेरी लग्नमें इन अनेक जीवों को हिंसा होगी? मुझे विवाह नहीं करना। शबरीजीने निश्चय कर लिया और लग्नके पूर्वकी मध्य रात्रिमें घर छोड़कर निकल गयीं। घरका त्याग करके दौड़ती हुई गयीं और पंपा सरोवरकेपास जहाँ मातंग ऋषिका आश्रम था, वहाँ पहुँच गयीं।

मातंग ऋषि एक हाथीको मारते और सम्पूर्ण वर्ष इस हाथीका मांस खाकर भक्ति करते। इससे अन्य ऋषि मातंग ऋषिकी बहुत निन्दा करने लगे। तब मातंग ऋषिने कहा—मैं तो वर्षमें एक ही जीवको मारता हूँ। तुम असंख्य जीवोंको रोज मारते हो। शबरीजी इन मातंग ऋषिके आश्रमके पास पधारीं। शान्त, पवित्र, सात्त्विक वातावरण था। अनेक ऋषियोंके वहाँ आश्रम थे। शबरीजीको वहाँ बहुत अच्छा लगा। शबरीजीने विचार किया—मैं भीलनी हूँ, हीन हूँ। कदाचित् ये ऋषि मेरी सेवाको स्वीकार न करें तो? मैं गुप्तरूपसे सेवा करूंगी।

शबरीजी पूरे दिन जंगलमें फिरती, सुन्दर फल-फूल इकट्ठे करतीं और ऋषि जब सो जाते, तब एक-एक ऋषिके आश्रममें फल-फूल गुप्तरूपसे रख आतीं। ऋषि बहुत सवेरे नित्य पंपा सरोवरमें स्नान करने जाते थे। किसी ऋषिके चरणमें कांटा-कंकड़ नहीं

लगे इसके लिए शबरीजी अँधेरेमें बहुत ही भोरमें उठकर सीताराम, सीताराम, सीतारामका जप करती हुई मार्गमे बुहारी लगाती और कांटा-कंकड़ दूर करती। इस प्रकार गुप्तरूपसे सेवा करने लगी।

किसीको भी खबर नहीं पड़ती थी। सब ऋषियोंको आश्चर्य होता था कि यह फल कौन रख जाता है? यह फूलकी माला कौन बनाता है? रात्रिमे ऋषि सो जाते, तब शबरीजी वहाँ आती। दिनके पूरे समयमें जंगलमें फिरती रहतीं। बहुत निद्रा आती, उस समय किसी वृक्षके ऊपर चढ़ जाती और नींद ले लेती।

भक्ति करना सरल नहीं। जिसे भक्ति करनी है, उसे संसारके सभी सुखोका मनसे त्याग करना ही पड़ता है। संसारका कोई भी सुख जिसको अच्छा लगता है वह भक्ति क्या करता होगा? वह शरीर और इन्द्रियोंको लाड़ करता है। शबरी जैसा दृढ भक्ति-भाव जाग्रत हो तो भगवान कहेंगे, मैं तेरी देखरेख करूंगा। भगवान जिसकी देखरेख करते है, उसका मन हमेशा के लिए पवित्र रहता है। रामजी जिसकी देखरेख करते हैं वह इन्द्रियोंके अधीन नही होता। इन्द्रियोका विषयों के साथ संयोग हो, उनमें आसक्ति हो तो विषयासक्ति जहर है। इस वासनारूपी जहरसे रामजी बचाते हैं। प्रभुसे बारबार कहना कि मेरी इन्द्रियोंमें वासनारूपी विष नहीं आवे। एक-एक इन्द्रियका प्रभुके साथ परिणय करोगे तो भक्तिमें आनन्द आवेगा और विषयासक्तिसे बच सकोगे।

भक्तिमार्गमें आनेके बाद सुख भोगनेकी इच्छा मत करो, दूसरेको सुखी करनेकी इच्छा रक्खो। जिसको सुख भोगनेकी इच्छा है, वह इन्द्रियोंका गुलाम है, इन्द्रिय-सुखमें फँसा हुआ है, वह भगवानकी सेवा क्या करेगा...? विषयासक्ति साधकके लिए मरण है। कितनों ही को ठाकुरजीकी सेवा करते-करते, माला फेरते-फेरते भी 'गर्म पानी' याद आ जाता है। चाय पीनेकी आदत हो और सवेरेसे न मिली हो तो घड़ी-घड़ी याद आ जाती है। कितनी मातायें तो मंदिरमें भी तम्बाकू-सुपारीकी डिब्बी साथ ले जाती हैं और बादमें बहुत उदारता दिखाकर, पास में जो बैठी हो उनके भी सम्मुख रखती हैं।

संसारके किसी भी जड़ पदार्थमें आसक्ति ही वैष्णवके लिए मृत्यु है। श्रीराम, श्रीकृष्णके सिवाय—परमात्माके सिवाय किसी भी विषयमें आसक्ति हो तो मनुष्यका पतन होता है। भक्ति-मार्गमें विलासी लोग आवें तो भक्तिमार्गको भी छिन्न-भिन्न कर डालते हैं। भक्तिमार्गकी स्थापना करनेवाले जितने आचार्य जगतमें हुए हैं, उन सबमें वैराग्य, ज्ञान और भक्ति परिपूर्ण हैं और इसीलिए ही तो वे भक्ति-संप्रदायकी स्थापना कर सके हैं।

पीछे-से लोग भक्तिका लक्ष्य चूक गये। भक्तिका अर्थ होता है, भगवानमें अनुराग। धीरे-धीरे ऐसा हुआ कि शरीर-सुखमें और इन्द्रियसुखमें अनुराग होने लगा। शरीरका सुख—इन्द्रियोंका सुख, जिसको बहुत मीठा लगता है वह बराबर भक्ति नहीं कर सकता। कितने ही तो भक्तिका बहाना करके इन्द्रियोंको लाड़ करते हैं। मंदिरमें तुम जाते हो ठाकुरजीके दर्शन करने। वहाँ कोई भी स्त्री आवे, पुरुष आवे—उनका मुँह देखनेकी क्या आवश्यकता है? परन्तु आँखोंमें रावण—काम आकर बैठा है। इसलिए आँख श्रीरामके दर्शनके लिए बहुत आतुर न होकर, संसारके विषयोंमें दौड़ती हैं।

श्रीरामके सिवाय किसी भी मनुष्यमें आँख आसक्तिपूर्वक जाये तो मानना कि आँखोंमें रावण-काम भरा है। श्रीरामकी कथाके अतिरिक्त अन्य कुछ भी सुननेमें तुमको रस मिले तो मानना कि कानोंमें विकार-राक्षस आया है। अनेक बार ऐसा होता है कि कोई दो व्यक्ति बात करते हों तो कान झट दौड़कर वहाँ जाते हैं। अरे, तुमको सुननेको क्या जरूरत है? तुम तो कथा सुननेके लिए आए हो, भगवानके लिए आए हो।

संसारका सुख जिसको दुःखरूप लगता है वह ही परमात्माके साथ प्रेम कर सकता है। जिसको ठीक-ठीक खानेकी इच्छा होती है, इन्द्रिय-भोग भोगनेकी इच्छा होती है, उसका बहुत समय जीभके और अन्य इन्द्रियोंके लाड़में जाता है। जिसको भजनानंद नहीं मिला, वह बाहरके विषयोंमें आनन्द खोजने जाता है। ईश्वरके लिए जो लौकिक सुखका त्याग न करे तो उस जीवके लिए प्रभुको दया नहीं आती।

अरे, यह शरीर भोग भोगनेके लिए नहीं, भगवत्सेवाके लिए है। भगवत्सेवामें शरीरको कसो। परोपकार करनेमें शरीरको घिसो। ठाकुरजीके उपयोगमें मेरा शरीर न आवे तो यह वृथा है। इस प्रकारकी शबरीजी जैसी भावना रक्खो।

शबरीजी झाड़के ऊपर सो जातीं, समस्त दिवस जंगलमें फिरकर फलफूल एकत्रित करतीं और रात्रिके समय ऋषियोंके आश्रममें रख आतीं। मातंग ऋषिको आश्चर्य हुआ कि यह कौन चोरीसे सेवा करता है? गुप्तरूपमें सेवा करता है, यह स्वरूप छिपाता है। मातंग ऋषिने निश्चय किया कि आज मैं निद्राका नाटक करूँगा परन्तु जाग्रत रहूँगा और नजर रक्खूंगा कि कौन आता है, यह फल कौन रख जाता है।

दर्भके आसनके ऊपर मातंग ऋषि सो रहे थे, रातके बारह बज गये थे। उस समय शबरीजी धीरे-धीरे वहाँ आयीं और फल रखे। मातंग ऋषि जाग्रत हो गये। इन्होंने पूछा—बेटा, तू कौन है? जाति छिपाना पाप है। शबरीजी घबरायीं कि मैं तो भीलनी हूँ। इसलिए अब ये ऋषि मेरे हाथके फलोंको स्वीकार नहीं करेंगे। ये तपस्वी ब्राह्मण हैं और

मैं तो हीन जातिकी हूँ। शबरीजी थर-थर कांपने लगी। ऋषिका बारंबार वंदन करके कहने लगीं कि मैं एक अपराधिनी हूँ, तुम्हारी दासी हूँ।

मातंग ऋषिने पूछा—रोज रात्रिमे तू ही यहाँ आती है? सेवा तू ही करती है? शबरीजीने कहा, हाँ। ऋषिने पूछा—तू दिनमें क्यों नहीं आती है? रात्रिमें क्यों आती है? शबरीजीने कहा—मेरी सेवा कदाचित् ग्रहण न हो सके इसलिये मैं रात्रिको आती हूँ।

कस्तूरी उघाड़ी रक्खोगे तो उड़ जाएगी। भक्ति बहुत जाहिर हो तो भक्ति भी उड़ जाती है। लोग बहुत मान देवें इसलिए भक्तको लगे कि मैं कुछ हूँ। साधकको सावधान रहनेकी बहुत जरूरत है। जिसको बहुत मान मिले, उसमें अभिमान आता है। 'मैं' आया कि भक्तिमें उपेक्षा आयी। भक्त पीछे ऐसा मानने लगता है कि भक्ति हो तो ठीक है, न हो तो ठीक है। मैं तो मनसे भक्ति करता हूँ। ऐसा न करो।

भक्ति अलौकिक धर्म है। इसको गुप्त रक्खो। भक्ति जगतको दिखानेके लिए नहीं। भक्ति तो मालिकको राजी करनेके लिए है। सेवा जगतको दिखानेके लिए न करो, भगवानको राजी करनेके लिए करो। सत्कर्मको जाहिर करनेसे पुण्यका विनाश होता है।

मातंग ऋषिको आश्चर्य हुआ कि यह कैसा बोलती है! यह चाहे किसी जातिकी होगी परन्तु यह जीव दैवी है। यह जीव कोई साधारण नहीं। उन्होंने शबरीजीसे पूछा—बेटी! तू कौन है?

शबरीजी बोलीं—महाराज, मैं एक भीलनी हूँ, हीन जातिकी हूँ, मेरा नाम शबरी है। मातंग ऋषिने विचार किया कि भले यह जाति-हीन है परन्तु कर्म-हीन नही। यह कोई महान् दैवी जीव भील योनिमें आया है।

ऋषिने शबरीजीसे पूछा—बेटी! तू कहाँ रहती है? शबरीने कहा—महाराज, जंगलमें फिरती हूँ, झाड़के ऊपर रहती हूँ। मातंग ऋषिका हृदय पिघल गया। इन्होंने कहा—बेटी, इस आश्रममें एक तरफ निवास करो। झोपड़ी मैं तैयार करवा दूंगा। तुम यहीं रहना। तू आजसे मेरी पुत्री है।

मातंग ऋषिने शबरीजीके लिए आश्रममें एक तरफ एक झोंपड़ी बनवायी, शबरीसे कहा—तुझे सेवा करनी है। तू इस झोंपड़ीमें रह। शबरीजी शुद्ध हृदय थीं। फिर भी कितने ही ऋषियोंने थोड़ा विरोध किया कि इस भीलनीको आश्रममें क्यों रखते हो?

मातंग ऋषिने कहा—मैंने इसका किसी दिन स्पर्श नहीं किया। मैं धर्मकी मर्यादाको नहीं तोड़ता। इसकी जाति चाहे जो हो परन्तु मुझे लगता है कि यह जीव बहुत योग्य है, अतिशय शुद्ध है। यहीं पर एक तरफ रही आवे तो मुझे क्या बाधा है?

परन्तु ऋषिने कहा कि महाराज, यह ठीक नहीं। कितने ही ऋषियोंने तो मातंग ऋषिसे कहा कि हम तुमको जाति-बाहर कर देंगे। मातंग ऋषिने जवाब दिया—तुम्हारी पंगतमें मुझे जीमने आना भी नहीं है। तुमको जो अच्छा लगे वही करो।

मातंग ऋषि नित्य श्रीराम-कथा करते। शबरी रोज उसे सुनती, मातंग ऋषिको दया आयी। उन्होने कृपा करके शबरीको श्रीराममंत्रकी दीक्षा दी। श्रीराममन्त्रका अर्थ समझाते हुए मातंग ऋषिने शबरीसे कहा कि ओंकारका भावार्थ श्रीराम-नाममें भरा हुआ है। ओंकारका ओ पृथ्वीतत्त्वका अक्षर है, म् आकाश तत्त्वका अक्षर है। बिन्दु ही सूर्य है। रामनाममें र अग्नितत्त्व का अक्षर है, आ वायुतत्त्वका अक्षर है। म् आकाशतत्त्व है। यह अग्नि-तत्त्वरूपी वाक् (वाच) और वायुतत्त्वरूपी प्राणके सहयोगसे ओऽमका उच्चारण होता है। वाक् —ऋक् और प्राण "साम" है। "ऋक्" "साम" यही प्रणवके रूप हैं। इन "ऋक्" "साम" मैंसे व्यञ्जनोंका अर्थात् क् तथा स् का लोप करने से ऋ, आम इस प्रकार—राम शब्द बनता है। इस प्रकार "राम" यह प्रणवका ओंकारका आग्नेय रूप है।

मातंग ऋषिने शबरीसे कहा—बेटो, सम्पूर्ण दिवस "श्रीराम, श्रीराम, श्रीराम" जप करती रहो, यह सर्व वेदोंका सार है। यह मंत्र अतिदिव्य है, श्रेष्ठ है। गुरुदेव द्वारा दिए हुए "श्रीराम" नामके मंत्रका शबरी निरन्तर जप करती। संतोंकी सेवा करती।

एक दिन ऐसा हुआ कि ब्राह्म मुहूर्तमे शबरी बुहारी दे रहीं थीं, अँधेरा था। एक ऋषि स्नान करने आ रहे थे, उनका पैर बुहारीसे कुछ स्पर्श पा गया। ऋषिको बुरा लगा इससे उनको क्रोध आ गया। उन्होंने शबरीका तिरस्कार किया कि यह भीलनी मुझको छू गयी। ऋषिने शबरीका बहुत तिरस्कार किया वह परमात्माको सुहाया नही। जैसे ही यह ऋषि पंपासरोवरमें दुवारा स्नान करने गये वैसे ही पंपासरोवरका जल रुधिर जैसा हो गया, जलमें कीड़े पड़ गये।

तब कितने ही लोगोंने ऐसा उल्टा माना कि इस भीलनीको मातंग ऋषिने आश्रममें रखा है, इससे सरोवरका जल बिगड़ गया है परन्तु जल तो बिगड़ा था शबरीका अपमान होनेसे। मातंग ऋषिने कहा कि मैंने सनातन-धर्मकी मर्यादाका तनिक भी भग नहीं किया। शबरीने भी कोई भूल नहीं की। अँधेरेमें ऐसा हो गया, इसमें शबरीका क्या दोष है?

मातंग ऋषिका सत्सङ्ग शबरीजीको बहुत काल तक मिला। कुछ दिन बाद मातंग ऋषिं विचार किया कि मेरा समय अब पूरा होता है। इस शरीरका प्रारब्ध अब पूरा होनेको है। मुझे ब्रह्मलोकमें जाना है। उन्होंने शिष्योंसे कहा—अब, मैं जाता हूँ।

शबरीजीको खबर पड़ी तो दौड़ती हुई वहाँ आयी। गुरुदेवको वन्दन करके कहा—आप पधारते हो तो अब मेरा क्या होगा ? मातग ऋषिने कहा—बेटी ! तुमको तो यहीं रहना है। तुम तो मुझसे भी अधिक भाग्यशाली हो। मैंने रामनामकी कथा की है, श्रीरामनामका जप किया है, परन्तु आजतक मुझे श्रीरामजीके प्रत्यक्ष दर्शन नही हुए। तुम तो बहुत भाग्यशालिनी हो। श्रीराम तुम्हारे घर आवेंगे।

शबरीको अतिशय आनन्द हुआ कि श्रीराम मेरे घर आवेंगे ? शबरीने मातग ऋषिसे कहा—जो अनन्त कोटि ब्रह्माण्डके नायक है, जो लक्ष्मीजीके स्वामी है, वे क्या मुझ भीलनीके घर आवेंगे। मैं तो कुछ भी पढी-लिखी नही, पासमे पैसा भी नहीं।

ऋषिने कहा—परमात्मा तो प्रेम देखते हैं। श्रीरामचन्द्रजी एक दिन अवश्य तुम्हारे घर आवेगे। मेरा तुमको आशीर्वाद है। ऋषिने शबरीको आशीर्वाद दे दिया।

शबरीने पूछा—महाराज! श्रीराम कब आवेंगे? ऋषि बोले—यह नही कह सकता पर आवेंगे अवश्य। अभी श्रीदशरथ महाराजको पुत्रकामेष्टि यज्ञ करना है। वह यज्ञ होनेके उपरान्त अग्नि नारायण प्रसादी खीर देगे। उसके बाद श्रीरामजीका जन्म होगा। श्रीरामजी बाललीला करेंगे। सोलह वर्षके होनेके बाद विश्वामित्रजीके यज्ञका रक्षण करने पधारेंगे। वहाँसे जनकपुरी जायेंगे। वहाँ धनुषको भग करेंगे। श्रीसीताजीके साथ उनका विवाह होगा। उसके बाद बारह वर्ष तक अयोध्याजीमे विराजेंगे। फिर दशरथ महाराज उनका राज्याभिषेक करेंगे। मथराके कुसगसे कैकेयीकी बुद्धि बिगडेगी। कैकेयी दो वरदान मांगेगी। रामजीके लिए चौदह वर्षका वनवास मांगेगी। माता-पिताका वंदन करके श्रीराम वनमें पधारेंगे, वे चौदह वर्षके वनवासमें किसी दिन भी तेरे घर आवेंगे। वे कब आवेंगे, यह मैं नही जानता। वे तो कालके भी काल हैं। उनको कालका बधन नहो परन्तु एक-न-एक दिन तेरे घर आवेंगे अवश्य।

वैष्णव आशासे जीवित रहते है कि मुझको भगवानके दर्शन होगे। एक दिन मेरे भगवान मुझको जरूर दर्शन देंगे, मुझको अपनावेंगे। मुझे निरन्तर भक्ति करनी है। ......मुझसे भक्ति होती नही और इसीलिए ठाकुरजी मुझसे नही बोलते। आजतक मैं लायक नही हुआ। मेरे साथ नही बोलते। आजतक मैं लायक नही हुआ। मेरे भगवान......भले नहीं बोलें, परन्तु मै ठाकुरजीके साथ बातें करूँगा। मुझको विश्वास है कि प्रभु किसी दिन तो कृपा करेंगे ही, मेरे जीवनके अन्तिम दिन तो वे जरूर मुझको दर्शन देंगे।

मीराबाईके चरित्रमें आया है कि मीराबाई गोपालजीका सुन्दर शृंगार करती, दरवाजा बन्द रखकर एकान्तमे कीर्तन करती और ठाकुरजीके साथ बातें करती थीं।

मनमें जो कोई भाव जागता उसे ठाकुरजीसे निवेदन करती कि आज मेरे मनमें ऐसा भाव हुआ है। हृदयका भाव प्रभुके सम्मुख प्रगट करनेसे हृदय शुद्ध होता है।

मीराबाईकी सेवामें वीणा नामकी एक दासी रहती थी। एक दिन वीणाने मीराबाईसे पूछा—तुम किसके साथ बातें करती हो? मीराबाईने कहा—मैं तो गिरिधर गोपालके साथ बाते करती हूँ। दासीने कहा—मीराबाई! तुम ठीक कहना कि तुम ठाकुरजीके साथ बोलती हो परन्तु ठाकुरजी कभी तुम्हारे साथ बोलते हैं क्या?

मीराबाईने कहा—मेरे ऐसे कहाँ सौभाग्य है कि ये मेरे साथ बोले? मैं ऐसी लायक नहीं कि मेरे गोपालकृष्ण मेरे साथ बोलें? वीणाने कहा—वे बोलते नहीं तो पीछे तुम क्यों बोलती हो? तब मीराने जवाब दिया—ये बोलते नहीं। परन्तु मुझको आशा है कि ये एक दिन मुझसे बोलेंगे। इस आशासे मैं बोलती हूँ। मुझको आशा है कि मेरे श्रीकृष्णको दया आवेगी और ये दो बरस बाद बोलेंगे, बारह बरसमें तो बोलेंगे ही। मेरे पाप अधिक हों और इसलिए बारह वर्ष बाद भी कदाचित न बोलें, परन्तु मुझको दृढ विश्वास है कि जीवनके अन्तिम दिन तो वे बोलेंगे ही।

किसी मनुष्यसे कभी आशा नहीं रखना और परमात्माकी आशा कभी छोड़ना नहीं। मातंग ऋषि शबरीको 'परमात्मा' आवेंगे ऐसी आशा देकर ब्रह्मलोक सिधार गये। शबरी आशाके ऊपर जीने लगी। परमात्माकी आशा रखना ही महान् सुख है, संसारके विषय-सुखकी आशा रखना ही महान दुःख है। संसार-सुख भोगनेकी इच्छा ही महान दुःख है। जिसको कोई सुख भोगनेकी इच्छा नहीं, वही संसारमें सुखी है। ऐसा सादा जीवन व्यतीत करो कि कोई सुख भोगनेकी वासना मनमें जगे नहीं। वासना बुरी है। वासनाके अनुसार विषय-सुख न भोगा जाय तो मन व्यग्र हो जाता है और भोगा जाय तो मन अधिक विषय-सुख भोगनेकी इच्छा करता है, चंचल बनता है। वासना जगनेसे तेजका नाश होता है। सुख भोगनेका संकल्प हुआ कि मानवमें रहनेवाली बुद्धि-शक्ति क्षीण हो जाती है। मनपर सदा भक्तिका अंकुश रक्खो।

शबरी सेवा करतीं। शबरीजी विचारती कि मैंने सुना है कि राम-लक्ष्मण वनमें जूता नहीं पहनते। वे तपस्वी होकर वनमें फिरते हैं। वे बहुत-ही कोमल हैं। उनको मेरे घर आना है। इसलिए घरकी चारों दिशाओंमें शबरी बुहारी करती। इस रास्तेसे आवेंगे। कदाचित् उस रास्तेसे आवें। इस मार्गमें भी कचरा पड़ा रहे, यह ठीक नहीं। समस्त दिन शबरीका यही धंधा था।

शबरीजी श्रीरामकी प्रतीक्षा करती, रामजीके लिए सुन्दर-सुन्दर फल लेकर आती। "आज आवेंगे मेरे राम" ऐसी आशासे सायंकाल तक रामजीकी प्रतीक्षा करती।

परन्तु प्रभु नही पधारते, तब शबरी विचार करती कि अब तो अन्धेरा हो गया। आज उनको आनेकी फुरसत नही मिली होगी। अब नही आवेंगे। मैं पापी हूँ, इसलिए मेरे घर नही आते। अब तक मै लायक नही हुई इसलिए परमात्मा प्रत्यक्ष दर्शन नही देते। मै लायक नही इसलिए मेरी सामग्री भगवान् नही आरोगते। रामजीके लिए जो फल एकत्रित किए होते, उनको शबरी बालकोको अर्पण कर देती। ऐसी भावना रखती थी कि मेरे राम बालकोमें हैं। कोई गरीब आवे तो गरीबमे रामजीके दर्शन करती। गरीबको भी वह फल देती। कोई साधु-संत आते तो उनको भी फल देती। गायमें भी मेरे रामजी विराजते हैं, ऐसी निष्ठा रखकर गायको भी फल खिलाती।

शबरी नियमित रूपसे चारों दिशाओमे बुहारी देती। दो-दो मील तक रास्तेमें बुहारी करती और बुहारी करते-करते शबरीजी श्रीराम, श्रीराम, श्रीरामका जप करती।

बहुत वर्षों तक शबरी माँने इस प्रकार दिव्य तपश्चर्या की। तप करते-करते अब शबरी बहुत वृद्ध हो गयी। शबरी महायोगिनी थी। शरीरमे वृद्धावस्था आयी। शरीर अब दुर्बल हो गया था परन्तु आशा रखी हुई थी कि गुरुदेवने कहा है कि तेरे घर रामजी पधारेंगे। श्रीरामके दर्शन किए बिना मैं नही मरूँगी। श्रीराम-दर्शनके लिए शबरी जीवित थी। शबरी रघुनाथजीकी प्रतीक्षा कर रही थी। मनमे निश्चय था कि श्रीराम-दर्शन करनेके पश्चात् मुझे प्राण छोड़ना है। श्री राम आवेंगे, अवश्य आवेंगे। मैने सुना है कि अब इस ओर पधारे हुए हैं। परन्तु मै उनको आमन्त्रण देने किस प्रकार जाऊँ? मै तो नीच जातिकी भीलनी हूँ।

भक्ति जब बढ़ती है तब अभिमान मरता है। शबरीको ऐसा लगता है कि परमात्माको आमन्त्रण देनेके लिए कुछ योग्यता तो होनी चाहिए। साधारण जीव ईश्वर-को आमन्त्रण दे सकता नही। अरे! राजाको आमन्त्रण दो तो क्या वह तुम्हारे घर आवेगा? नही आवेगा। जीवमें पहले योग्यता होनी चाहिए। राजाओके राजा परमात्मा किस प्रकार आ सकेंगे?

शबरीजी मनमे विचारती कि मै क्या लायक हूँ? मै जातिकी भील हूँ, अधम हूँ। मुझे ऐसा लगता है कि गुरुदेवने कहा है उस प्रमाणसे रामजी यहाँ पधारेंगे तो अवश्य परन्तु मेरे आश्रममें नही आवेंगे। बडे-बडे ऋषि यहाँ विराजे हुए हैं, वे उनको ले जायेंगे। मेरे घर कहाँसे आवेंगे? परन्तु रामजी कोई ऋषिके आश्रममे पधारेंगे, तभी मैं दूरसे उनके दर्शन कर लूँगी। मैं अधम जातिकी भीलनी हूँ, प्रभु मेरे यहाँ पधारेंगे। साथ-ही-साथ शबरीको ऐसा लगने लगता था कि श्रीगुरुदेवने मुझे आशीर्वाद दिया है इसलिए जरूर आवेंगे।

रघुनाथजी चलते-चलते पंपा सरोवरके पास पधारे। बड़े-बड़े ऋषियोंको खबर पड़ी, वे दौड़ते आए। ये ऋषि रघुनाथजीके पीछे पड़े, रघुनाथजीको मनाने लगे कि आप मेरे आश्रममें पधारो। आप मेरे आश्रममें पधारो। परन्तु श्रीराम तो सबसे यही पूछते कि श्रीशबरी कहाँ हैं ? मुझे तो शबरीके घर जाना है।

रामहि केवल प्रेम पियारा।

प्रभुने विचार किया कि इन ऋषियोंने शबरीका अपमान किया है। ये ऋषि ज्ञानी हैं, तपस्वी हैं, साधु हैं परन्तु अभिमानी हैं।

तपश्चर्या ठीक है, परन्तु तपका अभिमान पतन करनेवाला है। ज्ञान ठीक है, परन्तु ज्ञानका अभिमान पाप कराता है, पतन करता है। शब्दज्ञानी जल्दी नमन नहीं करता। इसके हृदयमें ठसक होती है कि ज्ञानी हूँ। चेला बखान करते हैं इसलिए गुरुको लगने लगता है कि मैं ब्रह्मरूप हो गया हूँ। बहुत से लोगोंके द्वारा सम्मान देनेके कारण मनुष्य भान भूल जाता है। इसके उपरान्त सेवा स्मरणमें उपेक्षा लग जाती है, और अभिमान किसीको झुकने नहीं देता। विनय जहाँ होती है वहीं समस्त सद्गुण आते हैं। और अभिमान होता है, वहीं समस्त दुर्गुण आते हैं। अभिमान पतन कराता है। अहमता ममता होती है, वहाँ तक ज्ञान नहीं पचता।

ज्ञानियोंको विघ्न करने वाला अभिमान है। अभिमानके मूलमें क्रोध है। तपमें विघ्न करने वाला यह क्रोध ही है। जीव जब सर्वस्व छोड़कर परमात्माके साथ प्रेम करता है, जब स्वयंके अभिमानको छोड़ देता है, जब जीवत्व भूल जाता है, उस समय ईश्वर भी ईश्वरत्व भूल जाता है और जीवके साथ रमण करता है। जीव अभिमानमें अह रखता है, जीव मानता है कि मैं शास्त्री हूँ, मैं पण्डित हूँ, मैं ज्ञानी हूँ, मैं तपस्वी हूँ, तो भगवान उससे कहते हैं कि मैं तेरा दादा लगता हूँ। तुझे यदि मेरी परवाह नहीं है तो मुझे तेरी क्या परवाह है ?

जीव अहंता ममता न छोड़े तब तक भगवान मिलते नहीं। जीव मैं-मन अर्थात् अभिमान न छोड़े तब तक उसे भगवद्दर्शन नहीं होते। जब तक अहंकार है, तब तक भगवान आते नहीं। जहाँ अहंकार है वहाँ हरि नहीं और जहाँ हरि वहाँ अहंकार नहीं।

रामजीने विचार किया कि मुझे किसीके आश्रममें जाना नहीं। रामजी ऋषियोंसे पूछने लगे कि शबरी कहाँ है ?

जिस दिन प्रभु पधारे उस दिन शबरी घरमें ही थी, श्रीराम, श्रीरामका जप करती हुई बैठी थी। शबरी को आशा नहीं कि श्रीराम उनके पधारेंगे। शबरीको ऐसा

लगता था कि आज तक मैंने बहुत प्रतीक्षा की परन्तु ये आए नहीं। मैंने सुना है कि वे इस ओर पधारे हैं। उनको तो कोई ऋषि अपने आश्रममे ले गये होंगे। श्रीराम मेरे यहाँ नही आयेंगे।

परन्तु जो सम्पूर्ण जीवनभर परमात्माकी खोज करते है, उनकी खोज करते हुए किसी दिन परमात्मा उनके घर आते हैं। बारह वर्ष तपस्या करे उसको अवश्य ही सिद्धि मिलती है। परमात्माने शबरीके बहाने से ज्ञान दिया है कि समस्त जीवन जो मुझको खोजता है उसे एक दिन मैं खोजने निकलता हूँ, मिलता हूँ। मुझको सदैव खोजते रहो। जो मुझे सबमें सतत खोजता है, उसे खोजता हुआ मैं आता हूँ।

महाभारतमे कथा आती है कि द्वारिकानाथ सन्धि करानेके लिए हस्तिनापुर जाते हैं। वहाँ धृतराष्ट्र उनको अपने राजमहलमे पधारनेके लिए निमंत्रण देते हैं। छप्पन प्रकारकी भोजन-सामग्री तैयार करायी जाती है परन्तु भगवान स्वीकार नहीं करते। भगवान विचारते है—यह जीव लायक नहीं हुआ। इसका हृदय कुटिल है। मुझे इसके घर जाना नही है। सभामें बडे-बड़े राजा विराजे हुए थे। राजाओंको आशा थी कि श्रीकृष्ण हमारे यहाँ आयेंगे। भगवानने राजाओंको भी स्वीकार नही किया। द्रोणाचार्य-ने कहा—सबको अस्वीकार करते हो तो क्या आज भोजन नहीं करना है? भोजनका समय हो गया है। कहीं तो भोजन करना ही पड़ेगा? दुर्योधनके यहाँ भोजन करनेमें आपत्ति हो तो मेरे यहाँ भोजनके लिए पधारो।

भगवान विचार करने लगे कि ब्राह्मण बहुत विद्वान हो जाये तो ज्ञानाभिमान उनको मारता है, और अपढ़ रह जायें तो अज्ञान मारता है। मुझे किसी ब्राह्मणके यहाँ जाना ही नही, द्रोणाचार्य और समस्त ब्राह्मणोंको उन्होने अस्वीकार कर दिया। भगवानने कहा—आज गंगा किनारे एक भक्तके यहाँ मुझे जाना है।

भगवानने सारथीको आज्ञा की कि विदुरजीकी झोपड़ीकी ओर रथ ले चलो। भगवानने निश्चित किया हुआ था कि मेरा विदुर बहुत समयसे मेरी प्रतीक्षा कर रहा है। आज मैं वहाँ जाऊँगा। इस ओर विदुरजी विचारते थे कि अभी मैं इस योग्य नही हूँ, इसलिए भगवान मेरे घर नहीं आते हैं। झोपड़ीका द्वार बन्द करके विदुरजी और उनकी पत्नी भगवानका कीर्तन कर रहे थे परन्तु उनको खबर नहीं थी कि जिनका वे कीर्तन कर रहे हैं, वे ही आज उनके द्वार आकर खड़े थे।

मनुष्यका जीवन पवित्र बनेगा तो भगवान बिना निमंत्रण उनके घर आयेंगे। आज शबरीके आश्रममे श्रीरामलक्ष्मण पधारे हैं। शबरीको अतिशय आनन्द हुआ। जगतके

मालिक अनन्त कोटि ब्रह्माण्डके स्वामी मेरे घर पधारे। श्रीराम-लक्ष्मणके दर्शन करते-करते शबरी निःशब्द हो गयी।

प्रभुने वल्कल वस्त्र धारण किया हुआ है। माथे पर सुन्दर जटा-मुकुट है। श्रीअग मेघके समान श्याम है। लक्ष्मणजो गीरे है।

सरसिज लोचन बाहु बिसाला। जटामुकुट सिर उर बनमाला॥
स्याम गोर सुन्दर दोउ भाई। सबरी परी चरन लपटाई॥
प्रेम मगन मुख वचन न आवा। पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा॥
सादर जल लै चरन पखारे। पुनि सुन्दर आसन बैठारे॥

शबरीने दर्भके दो आसन दिए। उन आसनोंपर श्रीराम-लक्ष्मण विराजे। श्री-राम-लक्ष्मणके दिव्य प्रेमको देखकर शबरी दर्शनमे इतनी तन्मय हो गयी कि उनकी आँखें आँसुओंसे भर गयी।

परमात्माके दर्शन करते-करते आँखोंमें आँसू आवे और प्रभुका स्वरूप भी बराबर न दीखे, उस दिन ही बराबर दर्शन होते हैं। दर्शन करते हुए आँखोंमे आँसू न आवे तब तक बराबर दर्शन होते ही नही। सेवा करते समय हृदय पिघले और आंखोमेंसे आंसू निकले तो मानना कि सेवा की।

शबरी रामजीके सम्मुख विराजी हुयी थी परन्तु आंख आंसुओसे भर जानेके कारण वह बराबर दर्शन नही कर सकती थो। परमात्मा आज मेरे घर पधारे और मैं हीन जातिकी एक भोलनी। मेरे घर भगवान् पधारे। मेरे भगवान कैसे उदार है? इनका मैं क्या स्वागत करूँ? इनको मैं क्या अर्पण करूँ?

शबरीने बीन-बीनकर सुन्दर बेर रख रखे थे। श्रीरामचन्द्रजीके लिए...... तैयार करके रखे हुए वे फल शबरीने रघुनाथजीको निवेदन किए। बारबार वन्दन करके कहा।

केहि विधि अस्तुति करौं तुम्हारी। अधम जाति मैं जड़मति भारी॥
अधमते अधम अधम अति नारी। तिन्ह महँ मैं मतिमंद अघारी॥

महाराज! मैं तो हीन जातिकी हूँ, अधम हूँ। मुझे कुछ भी आता नही। मुझे कोई ज्ञान नहीं। पूरे दिन में "श्रीराम-श्रीराम" करती हूँ। आपने मुझे अपनाया, इससे मैं आज कृतार्थ हो गयी। मेरी दूसरी कोई इच्छा नहीं। कोई सुख भोगनेकी तनिक भी वासना नहीं। बहुत वर्षोंसे एक ही संकल्प है। श्रीराम आवेगे, उन्हें मै अपनी आंखोंसे निहारूँ। मेरी आपके पास कोई याचना नहीं परन्तु आप आरोगे और मै दर्शन करूँ।

शबरीका यह मनोरथ था कि परमात्मा आवेंगे और मै दर्शन करूँ। वेदमें ऐसा वर्णन आया है कि ईश्वरको भूख लगती नही, प्यास लगतो नही। परमात्मा तो निष्काम हैं।

द्वौ सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्य. पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति॥

ससार-रूपी वृक्ष पर दो पक्षी बैठे हैं अर्थात् जीव और शिव। यह जीवरूपी पक्षी विषयरूपी फल खाता है। अन्य पिप्पलं स्वादु अत्ति। परन्तु यह दुर्बल है, बहुत दु.खी है। जब कि शिवरूपी पक्षी—परमात्मा फल खाता नहीं, साक्षीरूपसे निहारता है, फिर भी पुष्ट है—अन्योऽनश्नन्नभिचाकशीति।

परमात्मा खाता नही। भगवान तो जगतको खिलाता है, जगतका पोषण करता है। भगवान विश्वम्भर है। अरे, भगवानको भूख लग जाय तो फिर जगतमे क्या बाकी रहेगा? परमात्मा खाते नही।

ज्ञानी लोग मानते हैं कि परमात्मा निर्गुण-निर्विकार हैं। वे कुछ खाते नही। ब्रह्म खाता नही, बोलता नही, चलता नही, आता नही, जाता नही। जो ज्ञानी ऐसा कहते हैं कि परमात्मा खाता नही, उनको स्वयंको तो खाना ही पड़ता है। परमात्मा कहते हैं—इन ज्ञानियोंके घर रहकर मुझे नित्य एकादशी करनी पड़ती है। ज्ञानी पुरुष अपने पेटकी पूजा करते हैं और मुझे भूखा रखते हैं। परमात्मा खाते नही, वेदान्तका यह सिद्धान्त दिव्य है, परन्तु परमात्मा कभी-कभी खाते हैं, यह भी सच्चा है।

वेदान्तका सिद्धान्त खोटा नहीं। ईश्वर नित्यतृप्त हैं, ईश्वर नित्य आनन्द-स्वरूप है परन्तु आनन्दमें भगवानको भी भक्तका प्रेम देखकर खानेकी इच्छा होती है। भागवतका यह सिद्धान्त भी सच्चा है। ईश्वर तृप्त है, परन्तु किसी भक्तके हृदयमें अत्यन्त प्रेम उभरे, उस समय निष्काम भी सकाम बन जाते हैं, उसी समय भगवान आरोगते हैं।

ईश्वर तो निष्काम हैं परन्तु शबरी जैसा प्रेम हृदयमें प्रगट हुआ हो तो वह प्रेम निष्काम ईश्वरको सकाम बना देता है। आज श्रीरामजीको भी भूख लगी है। शबरीका मनोरथ था कि श्रीराम आरोगे और मैं इन आँखोंसे देखूँ। इसलिए श्रीरामजीको भूख लगी। शबरीसे कहा कि माँ! मैं भूखा हूँ, मुझे कुछ दो।

शबरीने मेवा अर्पण की। श्रीराम-लक्ष्मण उसे आरोगने लगे। परमात्मा श्रीराम सर्वतन्त्रस्वतन्त्र होनेपर भी प्रेम-परतन्त्र हैं। जीव परमात्माको परिपूर्ण प्रेम देता नहीं

इसलिए परमात्मा उनसे दूर रहता है। परमात्मा पूरा (सोलह आने) प्रेम माँगता है। प्रेम परमात्माको परतंत्र बनाता है। परमात्माको प्रसन्न करनेके लिए बहुत पैसा कमानेकी आवश्यकता नहीं। परमात्माको राजी करनेके लिए बहुत पढ़ने-लिखनेकी आवश्यकता नहीं। शरीर-बल, बुद्धि-बल, ज्ञान-बल, द्रव्य-बल इन सबकी अपेक्षा प्रेमबल अति श्रेष्ठ है। प्रेमबलके आगे, अन्य सभी बल गौण हैं। सभी प्रकारके बलोंकी अपेक्षा प्रेमबल अति श्रेष्ठ होनेसे परमात्माके साथ प्रेम करो। द्रव्यबल अथवा ज्ञानबलसे परमात्माको जीत सकते नहीं। परमात्माको प्रेमबलसे जीत सकते हैं।

परमात्माके साथ प्रेम करना हो तो जगतके पदार्थोंके साथका प्रेम छोड़ना पड़ेगा। परमात्माके साथ प्रेम तब होता है जब जीव जगतके पदार्थोंके साथका प्रेम छोड़ता है। परमात्माको प्रसन्न करनेके लिये शुद्ध प्रेमकी आवश्यकता है। ज्ञान इत्यादि-की महानता ओछी है। शब्द-ज्ञानकी आवश्यकता नहीं। शब्द-ज्ञान अनेक बार भक्तिमें विघ्न करता है।

बहुत पढ़नेसे क्या प्रभु प्रसन्न होते हैं? जिनमें बहुत ज्ञान होता है, उनको कपट करनेमें अथवा दूसरोंको धोखा देनेमें तनिक भी भय लगता नहीं। बहुत विद्वान तो ठाकुरजीको भी धोखा देते हैं। विद्वान लोग चर्चा बहुत करते हैं, एक शब्दके अनेक अर्थ करते हैं। बहुत-से विद्वान बहुत तर्क-कुतर्क करते हैं। वे फिर भगवानकी सेवा स्मरण बराबर कर सकते नहीं। आरम्भमें तो श्रद्धा रखकर सेवा-स्मरण किए बिना चलता ही नहीं।

व्यवहारमें भी अंधश्रद्धा रखनी पड़ती है। डाक्टरसे अनेक रोगी बिगड़ जाते हैं, फिर भी ठीक करेगा, ऐसी श्रद्धा रखनी पड़ती है। डाक्टरसे कहो कि पहले चमत्कार बताओ, तब दवा लेंगे तो वह बता सकेगा नहीं। डाक्टरमें विश्वास न रखो तो डाक्टर दवा नहीं देता और दवा पेटमें गये बिना रोग जाता नहीं।

व्यवहारमें जिस प्रकार श्रद्धा रखनी पड़ती है, उसी प्रकार परमार्थमें भी रखनी पड़ती है। बहुत पढ़े-लिखे मनुष्यमें एक मोटा दोष आ जाता है। जो बहुत विद्वान् होता है, वह चमत्कारके बिना नमस्कार करता ही नहीं। वह कहता है कि पहले तुम्हारे बालकृष्ण कोई चमत्कार करें, पीछे उनकी पूजा करूँगा। चमत्कार बताओ, उसके पश्चात् तुम्हारे ठाकुरजीको नमस्कार करूँगा। पहले चमत्कार, पीछे नमस्कार। यह व्यवहारका कायदा है। भगवान ऐसा करते नहीं। ईश्वरके पहले नमस्कार, पीछे चमत्कार है। अत्यन्त श्रद्धा-से सेवा-स्मरण करो, उसके पीछे वे चमत्कार दिखते हैं। ईश्वरका सेवा-स्मरण करो, फिर देखो कैसा परिवर्तन आता है, कैसा चमत्कार होता है? तनिक विचारो, यह जगत

क्या चमत्कार नहीं ? फूलमें सुगन्ध किस प्रकार रमी है ? एक तनिकसे बीजमेसे इतना विशाल वटवृक्ष किस प्रकार हो जाता है ? नारियलके अन्दर भगवान पानी किस प्रकार भरते होंगे ? यह सब चमत्कार नही तो क्या है ?

चमत्कारके बाद नमस्कार, यह तो अभिमान है। चमत्कारके बिना नमस्कार ही मानवता है। यही विनय है। बहुत विद्वान लोगोमे अंधश्रद्धा नही होती। उनका ऐसा विचार होता है कि महाराज कुछ चमत्कार बतावे तो उसके बाद मै मानूं। सच्चा संत कोई भी दिन चमत्कार करता ही नही। चमत्कार तो जादूगर करता है। जिसे बहुत पैसा कमानेकी इच्छा है, जिसे प्रतिष्ठाका मोह है, वह चमत्कार करता है। 'मुझे लोग सम्मान दें' ऐसी इच्छा सन्तकी होती नही। सन्तको धन और मानका मोह नहीं होता। वह चमत्कार दिखलाता नही। कोई सन्त बुद्धिपूर्वक चमत्कार करता है तो उसकी बहुत दिन की हुई तपश्चर्याके पुण्यका नाश होता है। सिद्धि मिलती है, इससे प्रसिद्धि बढती है। प्रसिद्धि बढ़ती है, उससे ज्ञानी साधन छोड़ देता है। साधन छूट जाता है, इस कारणसे वह प्रभुसे विमुख हो जाता है। ज्ञानी महात्माओंको यह माया-सिद्धि फँसाती है। पीछे माया जोरसे धक्का मारती है। यह जितना ऊँचा चढा हुआ होता है, उतना ही नीचे गिर पड़ता है। सच्चे ज्ञानी महात्मा सिद्धिका उपयोग नही करते।

पढ़े-लिखे लोग ऐसी अपेक्षा रखते हैं कि हमे कोई चमत्कार बतावे, तो फिर हम मानें। एक गाँवमें हमको अनुभव हुआ। एक प्रोफेसर साहब बैठे थे, बहुत पढे-लिखे थे। उन्होंने कहा कि महाराज ! तुम कथामे कहते हो कि ठाकुरजीको अर्पण किए बिना पानी भी मत पिओ। तुम्हारी कथा सुननेके बाद मुझे ऐसा लगा कि घरमें ठाकुरजीकी सेवा करनी चाहिये परन्तु तुम सिद्ध कर दो कि भगवानको जो भोग अर्पण करते हैं, वह भगवान आरोगते हैं। तुम कहते हो, उसे हम माननेको तैयार नहीं। यह तो विज्ञानका युग है। तुमको सिद्ध कर देना पड़ेगा। भगवान खाते नही, पीते नही, तो पीछे भगवानको भोग रखनेकी क्या आवश्यकता है ? ठाकुरजीका भोग रखनेके बाद भी तनिक भी घटता नही।

ठीक है, इस युगमें भगवान प्रत्यक्ष आरोगने लगें तो लोग ठाकुरजीको थाली धरें भी नही। ये तो जानते हैं कि जितना धरेंगे, उतना प्रसाद वापिस मिल जानेवाला ही है।

आजकलके लोग जितनी-जितनी शका करते हैं, उसमें एक भी शंका ऐसी नहीं कि जिसका समाधान व्यास महर्षिने तथा वाल्मीकिजीने लिखा न हो। भगवान आरोगते हैं, यह बात सत्य है और वजन घटता नही, यह भी सत्य है। दोनों सिद्धान्त सत्य हैं।

ऋषियोंने जो इन ग्रन्थोंकी रचना की है, वह अत्यन्त विचारपूर्वक की है। यह ग्रन्थ क्या किसीको धोखा देनेके लिए लिखे गये हैं ? बँगलोंमें रहनेवाला और विलासी जीवन बितानेवाला झूँठ बोलता है। हमारे ऋषि तो बहुत पवित्र जीवन व्यतीत करते थे। वे दाल-भात भी खाते नही थे। फल और जलसे ही उनको सन्तोष था। वे लँगोटी पहनते थे। वृक्षके नीचे रहते थे। ऐसे ऋषियोंने जो कुछ लिखा है वह सब ही उचित है।

शास्त्रका कोई सिद्धान्त समझमें न आवे तो शास्त्र खोटा है, ऐसा बोलनेका साहस न करो। ऐसा मानो कि बुद्धि खोटी है, मेरी बुद्धि पाप से बिगड़ी हुई है, और इस कारण शास्त्रमें लिखेहुएको मैं समझ नही सकता। शास्त्र सच्चा है।

शास्ति इति शास्त्रः ॥

हितका शासन जो करता है, वह शास्त्र है। क्या करना और क्या न करना, इसका निर्णय शास्त्रसे पूछकर करो। किसीको धोखा देनेके लिये ये ग्रन्थ नही लिखे गये। समाजको सन्मार्ग बतानेके लिए ऋषियोंने बहुत दुःख सहन करके हमारे लिए इन ग्रन्थोंकी रचना की है। ऋषियोका अपने शिरपर बहुत बड़ा ऋण है। ऋषियोंने हमको ज्ञान दिया है, इसीसे तो श्रावणीके दिन ऋषियोंका पूजन होता है। ऋषियोंका तर्पण रोज करना पड़ता है।

परमात्माको तुम जो कुछ अर्पण करते हो, उसे भगवान आरोगते हैं, यह बात सत्य है। जहाँ अतिशय प्रेम है वहाँ भगवान प्रत्यक्ष आरोगते हैं। जहाँ प्रेम होता है, वहाँ माँगकर भी खाते हैं। प्रेम होनेपर तो कन्हैया कहते हैं कि तू मेरे लिए माखन ले आ। गोपियोंके माखनमें मिठास थी या गोपियोंके प्रेममें ? जो परमात्मा जगतको खिलाता है, वह गोपियोंसे माँगकर माखन खाता है ! कन्हैयाके माखन माँगनेपर गोपियाँ कहती है, कि तुम थोड़ा नाचो तो तुम्हें माखन दें। तब कन्हैया गोपियोंके आगे नाचने लगते हैं !

ताहि अहीरकी छोहरियाँ छछिया भर छाछ पे नाच नचावैं।

क्या छाछ-माखनके लिए कन्हैया नाचते हैं ? परमात्माको नचाता है गोपियोंका प्रेम। श्रीकृष्ण जगतको नचाते हैं, परन्तु ये ही श्रीकृष्ण गोपियोंके प्रेमके आगे नाचने लगते हैं। अरे ? गोपियोंका प्रेम तो ऐसा है कि कन्हैया अधिक माखन माँगनेकी भी कहाँ आवश्यकता मानते हैं ? ये तो स्वयं ही गोपियोंके घरसे माखन लेकर आरोगने लग जाते हैं ?

जहाँ अतिशय प्रेम है, वहाँ परमात्मा प्रत्यक्ष आरोगते हैं। जहाँ ओछा प्रेम है, वहाँ भगवान सुगन्धरूपसे आरोगते हैं। गन्ध द्वारा आरोगते हैं, रसरूपसे आरोगते हैं।

यह गुलाबका फूल है। गन्ध लेनेके पहले तुम इसका वजन करो और गन्ध लेकर फिर इसका वजन करो। वजन घटेगा नही। एक मनुष्यमे ऐसी शक्ति है कि फूलमें-से यह सुगन्ध खीच लेता है, फिर भी फूलका वजन घटता नही है। फूलमें-से यह सुगन्ध खीच लेता है फिर भी फूलको धक्का लगता नही। अरे, फूलका वजन नही घटता तो क्या ऐसा माना जाय कि सुगन्ध ली ही नही गयी? परमात्मा रसरूप है। उपनिषदमें वर्णन आया है·

रसो वै सः। रसह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।
सोऽश्नुते सर्वान्कामान् ब्रह्मणा सहोपस्थित॥

परमात्मा रसरूप है, रस भोगता है। इसलिए परमात्माको तुम जो सामग्री अर्पण करते हो उसमें से दिव्य रसको भगवान खीच लेते है। जिस प्रकार मनुष्य फूलमे-से सुगन्ध खीच लेता है, उसी प्रकार परमात्मा रसको खींच लेते हैं। परमात्मा रसरूपके आरोगते हैं। तर्क-कुतर्क न करो वाद-विवा॰ न करो। अपने ऋषियोके वचनमे विश्वास रखकर सेवा-पूजा करो। अघ श्रद्धा बिना भक्ति सफल नही होती।

ईश्वर कहते हैं कि यह सब मैंने बनाया है, मैंने तुझे दिया है। तू मुझे अर्पण करता है, इसमें क्या अहसान करता है परन्तु मुझे अर्पण किए बिना खाता है तो तू हरामखोर है। ईश्वरको खानेकी इच्छा नही। ईश्वर तो निष्काम है। भक्तोको र जी करनेके लिए भगवान आरोगते हैं। जहाँ साधारण प्रेम है, वहाँ परमात्मा रसरूपसे आरोगते हैं, परन्तु जहाँ अतिशय प्रेम है, वहाँ परमात्मा प्रत्यक्ष आरोगते है। भ वना देखकर भगवान प्रसन्न होते हैं। सुदामाजीके तन्दुल द्वारिकानाथ प्रत्यक्ष आरोगते है। विदुरजीकी भाजी परमात्माने प्रत्यक्ष आरोगी है। मीराबाई भोग धरती, उसे ठाकुरजी आरोगते। वैष्णवोके हृदयमे अतिशय प्रेम न उभरे, तब तक परमात्माको भूख लगती नहीं।

आज शबरीजीका प्रेम देखकर प्रभुको भूख लगी। शबरी माँ-ने रघुनाथजीको बेर अर्पण किए! शबरी चख-चखकर बेर देती हैं। कदाचित् खट्टा बेर न चला जाय। अत्यन्त प्रेममें शबरीको भान नही रहा कि वे जूँठे फल रामजीको खिला रही हैं।

'दो सौ बावन वैष्णवनकी वार्ता' मे सत पद्मानाभदासकी कथा आती है। पद्मनाभदास भागवतकी कथा करते और उससे स्वयका निर्वाह करते। एक समय श्रीवल्लभाचार्यजीके मुखसे सुना कि भागवतकी कथामें-से द्रव्योपार्जन नही करना चाहिए। श्रीमद्भागवत आत्मकल्याणके लिए है, उदर-निर्वाहके लिए नही। शास्त्रियोने इसे उदर-निर्वाहका साधन बना दिया है। उस दिनसे पद्मनाभदासने भागवतकी कथासे द्रव्य लेना

छोड़ दिया। आर्थिक स्थिति दुर्बल हो गयी। फिर भी वे तो अत्यन्त प्रेमसे भागवत-कथा करते।

एक बार उनकी पुत्री तुलसीने कहा—पिताजी ! घरमें चनेकी दालके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। पद्मनाभदासजीने कहा—बेटी ! जो हो सो ले आओ ? मेरे भगवान तो भावनाके भूखे है। चनेकी दाल बनाकर उसमें मीठा डाला। भगवानको उसका भोग धराया। पद्मनाभदास प्रभुको मनाने लगे। नाथ ! आज घरमें दालके अलावा और कुछ नही है परन्तु यह मैंने आपका मोहनथाल, श्रीखंडपूरी शाक इत्यादि भोग धराया है, ऐसा मानना। तब चनेकी दालमें-से मोहनथाल और श्रीखंडकी सुगन्ध आने लगी। प्रभुने चनेकी दाल छप्पन भोगके भावसे आरोगी। भगवान यह नही देखते कि मुझे क्या देता है, प्रभु तो ये देखते हैं कि किस भावसे देता है।

रामजी बेरको देखते नहीं, शबरीके शरीरको देखते नहीं, शबरीके हृदयके भावको देखते हैं। शबरीका शरीर दुर्बल है। शबरीका शरीर सुन्दर नहीं। कपड़े भी मैले हैं, परन्तु हृदय बहुत धवल है, बहुत शुद्ध है। किसीका भी कपड़ा तुम देखो मत। कपड़ेमें माया होती है, कपड़ा बहुत देखनेसे आँख और मन बिगड़ते है। परमात्मा किसी-के वस्त्र देखते नहीं।

इस अरण्यकाण्डमें दो कथाएँ है। शबरीकी कथा और शूर्पणखाकी कथा। शूर्पणखा सुन्दर कपड़े और श्रृंगार धारण करके रामजीके पास आयी थी, परन्तु रामजीने उसपर दृष्टि नहीं डाली। संसाररूपी अरण्यमें फिरे उसे शूर्पणखा मिलती है और शबरी भी मिलती है। शूर्पणखा, काम है और शबरी, प्रेम है। शूर्पणखाके साथ श्रीराम-चन्द्रजी थोड़ा बोले थे। ऐसा रामायणमें लिखा है। भले ही बोले थे परन्तु रामजीने उसपर दृष्टि नहीं डाली। जब कि शबरी प्रेमसे फल देती है और रामजी उसे प्रत्यक्ष आरोगते हैं।

रामजीने शबरीके बेरोंकी अत्यन्त प्रशंसा की। मिठास प्रेममें ही है। रामजी शबरीके फल आरोगते गये। शबरी कृतार्थ हो गयी। महापुरुषोंने वर्णन किया है कि इन बेरोंकी गुठलियाँ द्रोणाचल पर्वतके ऊपर वनस्पति बनीं, जिस वनस्पतिने लंकाके युद्धमें घायल हुए लक्ष्मणजीको जीवन-दान दिया था।

शबरीका चरित्र याद रखना, भूलना नहीं। शबरीके चरित्रका मनन करो। कितने ही कथामें-से उठते हैं, तब सब कुछ झाड़कर ही घर चले जाते हैं। कथामें-से एकाध सिद्धान्त भी नित्य साथ लेकर जाओ। तुम बहुत सहन करके कथामें बैठते हो। तुमको कथामें-से कुछ भी न मिले तो यह परिश्रम सफल नहीं।

एक गृहस्थका नियम था कि भागवतकी कथा रोज सुनना। ब्राह्मण रोज कथा कहने आते। बारह वर्षसे इसी प्रकार चलता था। एक दिन सेठको बाहर जाना हुआ। उसने ब्राह्मणसे पूछा—मुझसे कल कथा नहीं सुनी जा सकेगी, मेरे नियमका क्या होगा ?

ब्राह्मणने कहा—तुम्हारे बदले तुम्हारा पुत्र कथा सुनेगा तो चलेगा। गृहस्थने कहा—तुम वैराग्य और प्रेमकी बातें करते हो। अभीसे वह ऐसी बातें सुन लेगा और पढ़ना-लिखना छोड़ देगा तो क्या होगा ? कथा सुनकर उसे कदाचित् संसारसे वैराग्य हो जाय तो ?

ब्राह्मणने कहा—तुम बारह वर्षसे कथा सुनते हो। तुमको वैराग्य नहीं आया और एक दिनकी कथा सुननेसे पुत्रको वैराग्य आ जाएगा ? गृहस्थने कहा—लड़का कच्ची उम्रका है। उसकी बुद्धि कच्ची है। कथा सुननेसे उसकी बुद्धि सुधर जाय तो मेरे धन्धेका क्या होगा ? मेरी बात पृथक् है। मैं तो पक्की बुद्धिवाला हूँ। मैं तो रोज कथा सुनने पर भी मनकी बात नहीं छोड़ता।

ऐसा न करो। कथा सुनकर मनकी गाँठ छोड़ो। बहुत जाननेकी अपेक्षा जो जाना हुआ है, उसे जीवनमें उतारनेका प्रयत्न करो। ज्ञान क्रियात्मक न बने तब तक उस ज्ञानका कोई मूल्य नहीं।

शबरीकी कथा दिव्य है। इसमेंसे तुम कुछ नियम ग्रहण करो। आज से निश्चय करो कि मैंने कथा में सुना है कि अन्ध श्रद्धा रखकर भी सेवा-पूजा करनी चाहिए। अब मैं नित्य नियमित रूपसे सेवा-पूजा ध्यान-जप करूँगा। ऐसा करोगे तो धीरे-धीरे मन शुद्ध होगा, अनुभव होगा।

शबरीका कैसा प्रेम है ? शबरीकी ऐसी निष्ठा है कि मुझको प्रभुसे कुछ माँगना नहीं। मेरे राम आरोगें, वह मुझे आँखोंसे निहारना है। रामायणमें शबरीका चरित्र अतिशय दिव्य है। शबरीके घरमे श्रीरघुनाथजी विराजे हुए थे। शबरीने स्तुति करते हुए कहा।

तव सन्दर्शनं राम गुरूणामपि मे न हि।
योषिन्मूढाप्रमेयात्मन् हीनाजतिसमुद्भवा ॥

× × ×

स्तोतुं न जाने देवेश किं करोमि प्रसीद मे ॥

महाराज ! मेरे गुरुदेवको भी आपके दर्शन नहीं हुए। मैं तो हीन जातिकी एक साधारण स्त्री हूँ। मुझको कुछ आता नहीं······। बहुत ज्ञान बढ़नेके बाद तर्क-कुतर्क करे,

इसकी अपेक्षा अज्ञान अच्छा है। कितने ही पढ़े-लिखे लोग बातें ही बहुत करते हैं। ये प्रेमसे सेवा-स्मरण कुछ भी करते नहीं। ज्ञानी यदि प्रभु-प्रेमी हो तो ज्ञान सफल हो जाता है। ज्ञान जगतको उपदेश करनेके लिए नहीं है। ज्ञान पैसा कमानेका साधन नहीं है। ज्ञान परमात्माका अनुभव करनेके लिए है।

षडङ्गादि वेदो मुखे शास्त्रविद्या
कवित्वादि गद्यं सुपद्यं करोति।
हरेरङ्घ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥

समस्त वेदोंका ज्ञान हो और छहों शास्त्र आदि याद हों, उससे क्या? सुन्दर गद्य और पद्यकी रचना करनेमें समर्थ हो तो इससे क्या? यदि परमात्माके चरणोंमें चित्त लगा हुआ न हो तो फिर इस सबका क्या प्रयोजन है? इस ज्ञानका क्या अर्थ है? यह सब कुछ हो तो उससे क्या? परमात्मामें प्रेम न हो, तब तक सब नाकाम है। ज्ञान तो परमात्माके साथ प्रेम करनेके लिए है।

शबरी अन्य कुछ नही जानती। वह कहती है कि मैं अपढ़ हूँ परन्तु शबरी सब कुछ जानती है क्योंकि परमात्मामें इसका अनन्य प्रेम है। आज बड़े-बड़े ऋषियोंके आश्रम-में प्रभु नही पधारे, शबरीको ही कृतार्थ किया। शबरीने कहा—नाथ! आपने बहुत कृपा की।

श्रीरामचन्द्रजीने शबरीसे कहा—मुझे प्रसन्न करनेके लिए बहुत विद्वत्ताकी आवश्यकता नहीं। मुझे प्रसन्न करनेके लिए ब्राह्मणके घर जन्म लेना पड़े, ऐसा नही। चाहे जिस जातिका हो, उसे भक्ति करनेका अधिकार है।

पुंस्त्वे स्त्रीत्वे विशेषो वा जातिनामाश्रमादयः।
न कारणं मद्भजने भक्तिरेव हि कारणम् ॥

यज्ञ करनेका अधिकार सबको नहीं। गायत्रीका अधिकार सबको नहीं। वेदाध्ययन करनेका अधिकार सब किसीका नही परन्तु प्रभुकी भक्ति करनेका अधिकार सबका है।

यज्ञ करनेके लिए खूब धन चाहिए। यज्ञ करनेवालेका कुल श्रेष्ठ होना चाहिए। बालो, विधुर अथवा विधवा यज्ञ नहीं कर सकते। यज्ञके लिए देश-कालकी अन्य मर्यादायें भी बतलायी गयीं हैं।

इसके अनुसार वेदमंत्रोंका भी अधिकार सबका नही है। मंत्रके उच्चारणमे अथवा पाठमें भूल हो जाय तो अनर्थ हो जाता है। ब्राह्मण ही शुद्ध रीतिसे वेदका पाठ कर सकता है। अतिकामीके हाथमें ये वेदमंत्र जायें तो मंत्रके अर्थका अनर्थ करके मन्त्रोंकी दुर्दशा कर देता है। कामी लोग स्वयंकी वासना पूर्ण करनेके लिए मंत्रके अर्थका अनर्थ करते हैं। विलासी व्यक्ति वेद-मन्त्रका गलत अर्थ स्वयकी वासनाके लिए अथवा स्वयके लाभके अर्थमें करता है।

वेदान्तका अधिकार भी विलासीको नही। वेदान्तका अधिकार विरक्तको है, बातें ब्रह्मज्ञानकी करे और प्रेम पैसेके साथ करे, स्त्रीके साथ करे, संसारके जड़ पदार्थोंके साथ करे, उसे कभी ब्रह्म-ज्ञान पचता नही।

भक्ति-मार्ग अत्यन्त सुगम और सरल है। सब कोई उसके अधिकारी है। भक्ति कोई भी कर सकता है। किसी भी जातिका कैसा भी स्थान हो, कोई-सा भी समय हो, भक्ति हो सकती है। भक्तिमें देश-कालकी कोई मर्यादा नही।

परमात्माके साथ प्रेम करो। कदाचित् तुमको ऐसी शंका होगी कि महाराज! तुम रोज कहते हो कि प्रभुके साथ प्रेम करो, प्रेम करो परन्तु प्रभुमे प्रेम जागे, ऐसा कोई उपाय बताओ।

तुम घरके लोगोंके साथ क्यो प्रेम करते हो? पति ऐसा समझता है कि पत्नी मुझको बहुत सुख देती है। पत्नी ऐसी कल्पना करती है कि पतिको लेकर मैं सुखी हूँ। घरके लोग बहुत सुख देते हैं, ऐसा समझनेसे प्रेम होता है। कोई ऐसा विचार करे कि स्त्री मुझको बहुत दुःख देती है; तो इसका स्त्रीमें प्रेम नही रहेगा। तुम आजसे ऐसी दृढ भावना करो कि ठाकुरजीकी कृपासे मैं सुखी हूँ। मुझको प्रभुने सुख दिया है। मैं बहुत अयोग्य हूँ, फिर भी प्रभुने मुझको धन दिया है, मान दिया है।

जीवमात्रके ऊपर भगवान अनेक उपकार करते हैं परन्तु जीव यह उपकार भूल जाता है। अपने मनसे पूछो कि मुझको जो सुख-सपत्ति मिली है, मान मिला है, उसके लिए मैं क्या लायक हूँ? मैंने आँखसे, मनसे बहुत पाप किए हैं, फिर भी परमात्माने यह सब मुझको दिया है। जरा विचार करो कि अपने कर्मसे क्या बरसात होती है? परमात्मा हमारे कर्मोंको भूलकर हमपर उपकार करके बरसात करते हैं। परमात्माके उपकार मत भूलो।

कितने ही तो ऐसे होते हैं कि ठाकुरजीके उपकारका स्मरण नही करते। किसी समय गंभीर बीमारी आवे और मनुष्यको लगे कि इस बीमारीसे अब मैं उठनेका नहीं, तब वह घबराता है परन्तु ठाकुरजी कृपा करते हैं तो ठीक हो जाता है। परन्तु

उस समय वह ठाकुरजीको याद नहीं करता, डाक्टर साहबकी पूजा करता है। डाक्टर बहुत ठीक है। समस्त रात्रि बैठा रहा था। घंटेमें इन्जेक्शन देता रहा। अरे, डाक्टरमें बचानेकी शक्ति है ? डाक्टरके इन्जेक्शनमें जो बचानेकी शक्ति हो तो इसके घरमें कभी भी अच्युतं केशवम् हो ही नहीं—किसीका मरण नही हो। परन्तु ऐसा कही नही दीखता। बचानेवाले तो भगवान हैं। मुझको प्रभुने बचाया है, कहकर परमात्माका उपकार मानो, प्रभुके चरणोंका वंदन करो।

दुखमें भी प्रभुकी कृपा माननी चाहिए। प्रतिकूल परिस्थितिमें भी वैष्णव ईश्वरका अनुग्रह ही देखते हैं। वे ऐसा मानते हैं कि मेरे पाप तो बहुत हैं परन्तु पापोंके बदलेमें प्रभुने सजा कम ही दी है। मनुष्यके पापके बदलेमें परमात्मा सजा दें तो मनुष्यको खानेको भी न मिले। परमात्मा बहुत दयालु हैं।

महाभारतमें लिखा है, कि धर्मराज जीवनमें एक ही बार और वह भी सिर्फ आठ आना झूँठ बोले थे। इसकी इनको सजा हुई। धर्मराजको नरकके दर्शन करने पड़े। हमको होश हुआ तब से आजतक कितना झूँठ बोल गये, इसका कोई हिसाब रक्खा है क्या ? लोग पुण्यका हिसाब रखते हैं, पापका हिसाब नहीं रखते। किसी गरीबको दो सौ, पाँच सौ रुपये दिये हों तो याद रखेंगे और अनेक वार बोलेंगे—वह भाई माँगने आया था तब मैंने दो सौ रुपये उसको दिये थे। मनुष्य मौज-शौक करनेमें कितना खर्च करता है, इसका कुछ हिसाब रखता है ? आजतक जीभको लाड़ कितना किया है? कितने ही ऐसे होते हैं कि एकादशी आवे तो इनको ऐसा लगता है कि दिवाली ही फिर-से मिलने आयी है ! एकादशी क्या दिवाली है ? मनुष्य शरीर-इन्द्रियोंका लाड़ करनेमें पैसेका बहुत दुरुपयोग करता है। मनुष्य किए हुए पुण्यको याद रखता है, परन्तु किए हुए पापोंको याद नही रखता। पापके बदलेमें जीवको प्रभु सजा नहीं देते, निष्ठुरता नहीं रखते। परमात्माके उपकारोंको याद करोगे तो प्रभुमें प्रेम जागृत होगा।

मनुष्य प्रेम तो करता है, परन्तु जगतके जड़ पदार्थोंके साथ प्रेम करता है। आजकल सुधरे हुए लोग तो कपड़ोंके साथ और चप्पलके साथ बहुत प्रेम करने लगे हैं ! लोग तो चप्पल पहनकर रसोईमें भी जाते हैं, और कहते हैं कि इसमे क्या बाधा है ? हम सुधारवादी हैं। सुधरे हैं कि बिगड़े हैं यह तो भगवानको खबर है। चप्पल पहनकर रसोईमें जानेसे सुधरे नही कहलाओगे ? चमड़ेके साथ प्रेम करनेसे क्या सुधरे कहलाते हैं ? कितने ही लोग मन्दिरमें दर्शन करने जाते हैं तो दर्शन करते-करते भी कपड़ोंको याद रखते हैं कि मेरे कपड़े बहुत अच्छे है। वे भीड़में कहीं खराब न हो जायें। बहुत पढ़े हुए और बहुत सुधरे हुए लोग मन्दिरमें अधिकांशतः दर्शन करने नही जाते, और जाते

हैं तो वे कपड़ोंकी सुरक्षा रखते हुए ही भगवानका वदन करते हैं। कोट बहुत सुन्दर हो तो दर्शन करते-करते याद आ जाती है कि कोट बहुत अच्छा है और लोहा किया हुआ है। हे भगवान ! तुम्हारे दर्शन करने आया हूँ इसलिए मेरे कोटकी हिफाजत करना। भगवान कहते है कि मै तेरे बापके बापका बाप लगता हूँ। मैं तुझे अच्छी तरह पहचानता हूँ। तुझे मेरी अपेक्षा अपना यह कोट बहुत अच्छा लगता है।

मनुष्य कपड़ोका खयाल रखता है, हृदयका खयाल नहीं रखता। विषयोका चिंतन करता है और हृदयका काला हो जाता है। कपडा बिगड़े यह भी मनुष्यको सहन होता नही, परन्तु उसको पता नही कि हृदय कितना बिगड़ गया है, हृदयमें कितने धब्बे लग गये हैं।

नर कपड़न कों डरत हैं, नरक पड़न कों नाहिं।
यश दातन को जोत है, यशुदा तनय को नाहिं॥

प्रेम तो मनुष्य करता है परन्तु यह ईश्वरके साथ प्रेम करता नही, जगतके जड़ पदार्थोंके साथ, जड़ वस्तुके साथ प्रेम करता है। जेबमे दो-चार हजार रुपये हों तो मन्दिरमे दर्शन करते-करते तुमको रुपया याद आता है या भगवान? कितने ही लोग तो ऐसे विवेकी होते हैं कि जेबमे हाथ फेरते ही रहते है। जेबमें रुपया है न। कोई जेबकट जेब न काट ले जाय। तुम पैसेके साथ तो प्रेम रखते हो।

प्रेम करना मनुष्यको आता है। मनुष्य स्त्रीके साथ प्रेम करता है। पुरुष ऐसा समझता है कि स्त्री उसे सुख देती है। कोई स्त्री अथवा पुरुष सुख दे सकता नही। कारण कि सुखकी चाहना तो सभीको होती है। मनुष्यका ऐसा स्वभाव है कि स्वय इसको जिस वस्तुकी आवश्यकता होती है वह दूसरोको नही देता। किसी समय तो स्त्री दुःखका कारण बन जाती है—पतिके साथ कपट करती है, पतिका अपमान करती है। यह ऐसा समय है कि पत्नी पतिका तिरस्कार करे तो भी उसे पत्नी प्रिय लगती है, पत्नीके साथ वह प्रेम करना चाहता है। मनुष्यका प्रेम अनेक स्थानो पर बिखरा हुआ है, कई खण्डोमें बँटा हुआ है। मनुष्यका प्रेम कपडोमे है, स्त्रीमे है, पैसेमे है, घरमे है। अनेक स्थानोंपर बिखरे हुए प्रेमको एकत्रित करके उसे प्रभुके अर्पण कर दो। जगतका तिरस्कार न करो परन्तु जगत बहुत प्रेम करने लायक भी नहीं है, यह याद रखो। तुम जिस जीवके साथ अधिक प्रेम करोगे, वही तुम्हारे दुःखका कारण बन जाएगा। जिस जीवके ऊपर तुम प्रेम करते हो, पैसा व्यर्थ करते हो, जिसके लिए शरीर घिसते हो, वह कोई भी कारण मिलने पर एक दिन तुम्हारा शत्रु हो जाएगा। मनुष्य बहुत प्रेम करने लायक नहीं। जीव कब धोखा दे देगा, यह कहा नही जा सकता।

जगतका सम्बन्ध कच्चा है। जिस जीवके साथ तुम प्रेम करते हो, एक दिन वह तुमको छोड़ जाएगा अथवा तुम उसको छोड़ जाओगे। आज जो लोग तुम्हारे साथ हैं, उनका संयोग क्या कायम रहनेवाला है? संयोग वियोगके लिए ही होता है। संसारका अर्थ ही यह है कि जो क्षण-क्षणमें बदलता है। संयोगमें जितना सुख होता है इससे हजार-गुना दुःख वियोगमें होता है।

संयोग वियोगके लिए ही है। जगतके प्रत्येक पदार्थका संयोग वियोगके लिए ही है। संयोगमें सुख होगा तो वियोगमें हजारगुना दुःख भी हैं। इस जीवका ईश्वरके साथ ही संयोग सच्चा है।

बाल्यावस्थामें बालक मातासे बहुत प्रेम करता है। माँकी गोदमें एक-दो वर्षका बालक हो और तुम सौ रुपयेका नोट दिखाकर उससे कहो कि अपनी माँको छोड़कर आ तो यह सौ रुपया दूंगा। तो बालक माँको छोड़कर क्या तुम्हारे पास आयेगा? नहीं आवेगा। बालक माँके साथ बहुत प्रेम करता है परन्तु यह थोड़ा बड़ा होकर माँका प्रेम धीरे-धीरे भूल जाता है। खेलने लगता है और खेलमें इतना अधिक तन्मय हो जाता है कि माँके बुलानेपर भी जल्दी नहीं आता।

अति बाल्यावस्थामें माँके साथ प्रेम करता है। थोड़ा बड़ा होनेपर खेलके साथ प्रेम करने लगता है। थोड़ा अधिक बड़ा हुआ। माँ-बाप इसको पढ़ने बैठाते हैं। इसको धमकाते हैं, मारते हैं, तब धीरे-धीरे पढ़नेमें प्रीति होती है। अब खेलका प्रेम भूल जाता है। अब पुस्तकके साथ प्रेम करने लगता है। इसको परीक्षामें पास होनेकी उत्कण्ठा होती है।

परन्तु प्रेम क्या कायम रहता हैं? बड़ा हुआ। दो-चार डिग्री मिलीं, बादमें तो पुस्तकोंका भी प्रेम कम हो जाता है। अब भाई पैसेके साथ प्रेम करता है। यौवनमें प्रवेश किया। विवाह हुआ। फिर यह पत्नीके साथ प्रेम करता है। कितने ही तो ऐसे होते है कि माता-पिताको सामने जवाब देते हैं। स्त्रीका पक्ष लेकर माँको जो सम्मुख जवाब दे, माँका अपमान करे उसके पुण्यका नाश होता है। स्त्रीका तिरस्कार न करो परन्तु स्त्रीका बहुत पक्ष लेकर वृद्ध माता-पिताका अपमान न करो परन्तु, स्त्रीमें ऐसा मोह हो जाता है कि मनुष्य भान भूल जाता है।

स्त्रीके साथ भी प्रेम स्थिर रहता नहीं। दो-चार सन्तान हो जानेके बाद ही कष्ट लगने लगता है, स्त्रीमें मोह कम हो जाता है। प्रभुकी माया विचित्र है। जीव एक ही वस्तुके साथ प्रेम करे तो ईश्वरको सहन हो जाता है। संसारमें बहुत विवेकके

प्रेम करो। जगतके जड़ पदार्थोंके साथ प्रेम न करो। प्रेम करने लायक एक परमात्मा हैं। परमात्माके साथ प्रेम करो।

शबरीने परमात्माके साथ प्रेम किया है। प्रभुका आकर्षण हुआ। वैष्णव प्रेमकी डोरीसे परमात्माको बाँधते हैं। अन्य किसी बलसे जीव प्रभुको बाँध नहीं सकता, केवल प्रेमसे ही बाँध सकता है। परमात्मा परम प्रेमके स्वरूप हैं। वैष्णव परमात्माको प्रेमसे वशमे करते हैं। परमात्माको प्रसन्न करनेका एकमात्र साधन प्रेम है।

****

(५२)
भक्तिके नौ साधन

प्रभुने शबरीसे कहा कि मेरी भक्ति करनेके लिए बहुत ज्ञानवान होनेकी अथवा ब्राह्मणके घरमें जन्म लेनेकी आवश्यकता नहीं। पैसेकी भी आवश्यकता नहीं। भक्तिमें तो प्रेम मुख्य है।

प्रभुमें प्रेम जाग्रत करनेके लिए नौ साधन रामजीने शबरीको बताये हैं। यह साधन करे तो प्रभुमें प्रेम जागता है। पहला साधन है सत्संग। जो महापुरुष परमात्माके साथ प्रेम करते हैं, उनका तुम संग करो।

सतां सङ्गतिरेवात्र साधनं प्रथमं स्मृतम् ॥

प्रभु-प्रेमी वैष्णवोंका सत्संग करो। विलासी लोगोका संग न करो। विलासी लोगोंका संग बुद्धिको बिगाड़नेवाला होता है।

तुम जिसके संगमें रहोगे, उसी जैसे होओगे। संगका रंग मनको लगता है। मनुष्य जन्मसे बिगड़ा हुआ नही होता। जीव जब जन्मा था, तब वह शुद्ध था। विचार करो। बालक जब जन्मा था तब उसको कोई व्यसन नहीं था, कोई कुटेव नहीं थी, पाप करनेकी आदत नही थी, अभिमान नहीं था। बालक पवित्र होता है, निर्दोष होता है परन्तु वह बड़े होनेके बाद जिसके संगमें आवे, वैसा बनता है। कुसंगसे जीव बिगड़ता है, सत्संगसे सुधरता है। तुमको जैसा होनेकी इच्छा हो, वैसे लोगोंके संगमें रहो। विलासी-

का संग होगा तो मनुष्य विलासी होगा। विलासीका संग मनमें विकार उत्पन्न करता है। भक्ति बढानेकी भावना हो तो विलासी लोगोंका संग न करना। विरक्तके संगमें रहोगे तो विरक्त बनोगे। तुम्हारी अपेक्षा ज्ञानमें, सदाचरणमें, भक्तिमें, वैराग्यमें जैसी हो वैसे महापुरुषोंका आदर्श दृष्टिके आगे रखो।

रोज इच्छा करो—भगवान शङ्कराचार्य जैसा ज्ञान, महाप्रभु जैसी भक्ति और शुकदेवजी जैसा वैराग्य मुझको प्राप्त हो। प्रातःकालमें ऋषियोंको याद करनेसे उनके गुण हममें उतर आते है। हरेक गोत्रके ऋषि होते हैं। स्वयंके गोत्रके ऋषिको भी रोज याद करना पड़ता है। आज तो स्वयके गोत्रका भी किसीको खयाल नही। वैश्य काश्यप गोत्रके हैं। रोज गोत्रोच्चार करो। रोज पूर्वजोंको वन्दन करो। मुझे ऋषि जैसा जीवन बिताना है, ऋषि होना है, विलासी नहीं होना है। ऐसा सतत अनुसंधान रखो। श्रीरामजी भी रोज वसिष्ठको वन्दन करते, मान देते।

संसार-व्यवहारमें रहकर ब्रह्मज्ञान स्थिर रखना, खूब भक्ति करना—यह सब कठिन है। संगका असर बहुत होता है। चोरी और व्यभिचार दोनों महापाप गिने जाते हैं। ये पाप सगा भाई करे तो उसका संग भी छोड़ देना। किसी जीवका तिरस्कार न करना परन्तु उसके पापका तिरस्कार कर देना। महापापीके संग रहनेसे बुद्धि बिगड़ती है। सगा भाई भी परमात्माकी सेवा-स्मरण न करता हो तो उसके संगमें बहुत नहीं रहना। घरमें सेवा-स्मरण न हो, घरमें कुसंग हो तो घरमें नही रहना। श्रेष्ठ संतोंका संग हमेशा रक्खो।

सत्सङ्गः परमा गतिः।

सत्सङ्गके बिना ज्ञान प्राप्त नहीं होता। सत्सङ्गसे मनका मैल दूर होता है। रोज थोड़ा सत्सङ्ग करनेकी जरूरत है। योगवासिष्ठमें वसिष्ठजीने कहा है।

यः स्नातः शीतसितया साधुसङ्गतिगङ्गया।
किं तस्य दानैः किं तीर्थैः किं तपोभिः किमध्वरैः॥

सत्संग तो स्वच्छ, शीतल ज्ञान-गंगा है। इसमें स्नान करनेसे मनका मैल धुल जाता है। जो इस सत्संगरूपी गंगाजीमें स्नान करता है उसको दान, तीर्थयात्रा, तप अथवा यज्ञकी आवश्यकता नही रहती। जिन महापुरुषोंको भक्तिका रंग लगा है, ऐसे संतों-के चरणोंका आश्रय लो, ऐसे संतोंके चरित्र पढ़ो। प्रभु-प्रेमी संतोंके मनके साथ अपना मन मिला दो। मनको बराबर समझाओ—इनका मन कैसा है? मुझे ऐसा ही मन रखना है।

प्रभुके प्रति प्रेम जाग्रत करनेके लिए प्रेमी महापुरुषोंका संग करो—सता सङ्गतिः।

रामजीने शबरीको दूसरा उपाय बताया है—कथा-श्रवण।

द्वितीयं मत्कथालापः।

किन्हीं अधिकारी महापुरुषोंके मुखसे कथा सुनो। जिसकी कथा तुम सुनते हो उसके लिये प्रेम जागता है। तुम रामजीकी कथा बहुत सुनोगे तो रामजीमें थोड़ा प्रेम जागेगा। कथा सुननेके बाद प्रभुमें प्रेम जागे तो ही कथा सफल है। कथा सुननेके बाद पाप छोड़ने-की इच्छा हो, पापके प्रति घृणा उत्पन्न हो और भक्ति करनेकी दृढ़ भावना हो तो ऐसा मानना कि मैंने कथा ठीक प्रकारसे सुनी है। कथा सुननेके बाद विषयोंके प्रति अरुचि न हो और ईश्वरके प्रति रुचि न बढ़े तो कथा सुनी ही नहीं, ऐसा मानना चाहिए। कथा सुननेसे परमात्मामें प्रेम होता ही है।

कथा सुननेका दूसरा लाभ यह है कि प्रभु-कथा जगतका विस्मरण कराती है। जगतको भुलानेके लिए योगीजन प्राणायाम-प्रत्याहार करते हैं, फिर भी जगतको भुला पाते नहीं। प्रभु-कथा मे अनायास ही जगत भूल जाया जाता है। कथा-कीर्तनमें देहधर्म कुछ अंशमे भुला दिए जाते हैं।

मनुष्य कथा न सुने, तब भय, शोक और मोह उसको त्रस्त करते हैं, रुलाते हैं। भविष्यमें क्या होगा?—भविष्यमें कालका ऐसा विचार करनेसे भय लगने लगता है। भूतकालका विचार करनेसे शोक होता है, और वर्तमानका चिन्तन करनेसे मोह होता है। परन्तु जो कथा सुनता है, उसे स्वरूपका ज्ञान हो जाता है कि मैं भगवानका हूँ। मैं प्रभुका सेवा-स्मरण करता हूँ। मेरी समस्त चिन्ता मेरे भगवानको है। कथा सुननेसे मन शान्त होता है। परमात्माकी कथा सुननी चाहिये।

तृतीयं मद्गुणेरणम्।

भक्तिका तीसरा साधन है, परमात्माकी स्तुति। जब तुमको अवकाश मिले, तब तुम क्या करते हो? तुम अकेले बैठते हो, तब भी कुछ बात करते ही हो। मानव कदाचित् जीभसे न बोले परन्तु मनसे बोलता है। मानव अकेला बैठता है तब अधिकांश भागमें किसी की निन्दा करता है, अथवा किसीकी प्रशंसा करता है। यह ठीक है, यह खराब है। शान्तिसे विचार करोगे तो ध्यानमें आवेगा कि इस जगहमें श्रीरामके बिना कुछ भी ठीक नहीं। इस जगतमें कुछ खराब भी नहीं। यह तो मनमे जैसा भाव जागता है, उसी भावके अनुसार तुमको ऐसा लगता है, यह अच्छा है, और यह बुरा है।

आज तुमको जो अच्छा लगता है वह संभव है कि थोड़े दिन पीछे खराब लगने लगे। तुम छोटे थे तब तुमको खिलौने बहुत अच्छे लगते थे। इस अवस्थामें खिलौने अच्छे लगेंगे क्या ? मनके भाव बदलते ही रहते हैं। इस संसारमें ईश्वरके बिना कुछ भी अच्छा नही। एकान्तमें बैठनेपर जगतकी निंदा न करो और जगतके किसी भी जीवकी अधिक प्रशंसा भी न करो। परमात्माका बखान करो।

ज्ञानमार्गमें ध्यान प्रधान है। ध्यान बिना ज्ञानमार्गमें सफलता मिलती नहीं। भक्तिमार्गमें भगवद्‌गुणगान प्रधान है। भगवानका भजन प्रधान है। संसारमें रहनेसे संसारको देखने से मन बिगड़ता नहीं, संसारका चिंतन करनेसे मन बिगड़ता है। इसलिए ज्ञानी पुरुष सतत परमात्माका ध्यान करते हैं। जब कि भक्त परमात्माके दिव्य सद्‌गुणोंका गान सतत करते हैं। भगवद्‌गुणगानसे मन सुधरता है, प्रभुमें प्रेम जागता है। भगवानके गुणोंका वर्णन करो। परमात्माके उपकारोंका स्मरण करो। स्वदोषका वर्णन करो। भगवद्‌गुणोंका बखान करोगे तो भगवानको तुम पर दया आवेगी। वैष्णवोंको समय मिलता है, तब वे भगवानका बखान करते हैं।

भागवतमें कथा आती है कि रासलीला खेलते-खेलते श्रीकृष्ण एकाएक अंतर्धान हो गये। गोपियोंसे परमात्माका वियोग सहन नहीं हुआ, वे परमात्माके लिए रुदन करती हुई प्रभुकी स्तुति करने लगीं। गोपियों की इस स्तुतिको महापुरुष गोपीगीत कहते हैं। गोपीगीत अति दिव्य गीत है। गोपी भगवानका बखान करती हैं, प्रभुके गुणोंका वर्णन करतीं हैं, परमात्माकी स्तुति करतीं है और इसीलिए प्रभुको दया आती है। परमात्मा प्रत्यक्ष प्रगट होते हैं।

तुम जब-जब शान्तिसे बैठो, जब तुमको फुरसत मिले, निवृत्तिका समय मिले तब परमात्माकी स्तुति करो। कितने ही लोग तो ऐसे होते है कि इनको फुरसत मिलती है तब ये पड़ोसियोंके यहाँ गप्पे मारनेके लिए चले जाते हैं। कितने ही तो ऐसे रसिक होते हैं कि पड़ोसियोंके साथ बातें करने पर भी इनको सन्तोष नहीं होता और वे, रास्तेमें कोई जा रहा हो उसको भी बुलाते हैं कि यहाँ आओ, यहाँ आओ, यहाँ आओ। ऐसा क्यों कहते हैं, जानते हो ? ये कहते हैं कि मेरा तो सत्यानाश हो ही गया है। तू मेरे पास आ जिससे तेरा भी सत्यानाश हो जाय।

वाणीका दुरुपयोग महापाप है। पानी और वाणीका दुरुपयोग करनेवाला परमात्माका अपराधी है। वाणीका विवेकसे उपयोग करो नहीं तो अन्तकाल में वाक्‌देवी दगा देगी। अन्तकालमें कितनों ही की वाणी बन्द हो जाती है। वे बोल नहीं सकते। वाणीका लय मनमें होता है। वे मनसे समझाते हैं, परन्तु बोल नहीं सकते। फिर तो

अन्तकालमें मनका लय प्राणमे हो जाता है। उसके वाद समझनेकी शक्ति भी नहीं रह पाती, केवल प्राण ही रह जाते है। उसके पश्चात प्राणोंका भी लय तेजमें हो जाता है, ऐसा ग्रन्थोमे वर्णन आया है।

पहले वाणीका लय होता है। जिसने वाणीका दुरुपयोग किया है, अन्तकालमें वाग्देवी उसके पाससे उठ जाती है। कितनो ही की ऐसी इच्छा होती है कि अब मैं प्रभुके नामका जप करूँ। हरे राम, हरे कृष्ण बोलूं। परन्तु यह बोल सकता नही। जब-जब फुरसत मिले तब-तब नामस्मरणका अभ्यास करो तो ही अन्त समयमें नामस्मरण कर सकोगे। एकान्तमें बैठो तब किसी की निन्दा न करो, किसी की प्रशसा भी न करो। प्रभुके उपकारोका स्मरण करो कि परमात्माने मेरे ऊपर वहुत कृपा की है। प्रशंसा भगवानकी करो, प्रभुकी बार-बार प्रशंसा करनेसे प्रभुमे प्रेम जाग्रत होता है।

श्रीरामचन्द्रजी शबरीको भक्तिका साधन बता रहे हैं।

व्याख्यातृत्वं मद्वचसां चतुर्थं साधनं भवेत् ॥

मेरे वचनोंकी व्याख्या करना यह चौथा साधन है। परमात्माकी आज्ञाओंका चिंतन मनन करके उनको योग्य रीतिसे समझनेकी और जीवनमें उतारनेकी श्रीरामचन्द्र-जी आज्ञा करते हैं।

उसके बाद 'आचार्योपासना' यह पंचम साधन है। जिसके संगमें आनेके बाद कुछ पाप छूटे, भक्तिका कुछ रंग लगे, ऐसे किसी संतकी—सद्‌गुरुकी सेवा करो।

आचार्योपासनं भद्रे मद्बुद्ध्यामायया सदा।
पंचमं पुण्यशीलत्वं यमादि नियमादि च ॥
निष्ठा मत्पूजने नित्यं षष्ठं साधनमीरितम्।

परमात्मामें प्रेम जाग्रत करनेके लिए शास्त्रमें जो नियम बताये हैं—यम, नियम, आसन, प्राणाहार, प्रत्याहार—इनका कुछ पालन करो। उपवास करो। एकादशी हो, जयंती हो—उस दिन अवश्य उपवास करो। कितने ही लोग तो डाक्टर कहे उसके बादमें एकादशी करते हैं परन्तु व्यासजीके वचनोंमें विश्वास नहीं रखते। डाक्टर ऐसा कहता है कि···चार-पाँच दिन अनाज नहीं लेना। दूध और मोसम्मी पर ही रहना है, तो ऐसा करते हैं। आज-कलके लोग डाक्टरमें विश्वास रखते हैं। अपने ऋषियोंके वचनोंका विश्वास नहीं रखते।

शास्त्रमें तो ऐसा लिखा है कि एकादशीके दिन कोई मेहमान घरमें आया हो और कदाचित् ऐसा कहे कि मैं एकादशी नहीं करता, तो उसको हाथ जोड़कर नम

श्रीकृष्ण' करके कहना कि मेरे घर आये हो इसलिए आज तो करनी ही पड़ेगी। कदाचित् उसको खोटा लगेगा तो दूसरी बार तो तुम्हारे घरपर नहीं आवेगा और दूसरा क्या करनेवाला है वह ? भले न आवे। शास्त्रमें ऐसा लिखा है कि एकादशीके दिन ज़िमानेवालेको पाप लगता है। एकादशीके दिन अन्नदान पाप है। एकादशीके दिन अन्नमें सब प्रकारके पाप आकर निवास करते है। खानेवाले और खिलानेवालेके माथे वे पाप जाते हैं।

कदाचित् तुमको ऐसा लगता होगा कि महाराज ! तुम तो बहुत कड़क-कड़क बोलते हो। मैं कड़क नही कहता, मेरे घरके तो किसीने नहीं कहा है। ऋषियोंने लिखा है वह कहता हूँ। शास्त्रमें जो यम, नियम आदि साधन बतलाये हैं उन्हें पालन करनेकी बहुत आवश्यकता है। छठा साधन बतलाया है।

निष्ठामत्पूजने नित्यं

घरमें भगवानका स्वरूप पधराकर परमात्माकी सेवा-पूजा करो। कोई भी स्वरूपकी मूर्ति रखकर भाव और प्रेम-पूर्वक सेवा करो। कितने ही लोग घरमें चित्रमय स्वरूप पधराते हैं परन्तु मूर्ति-स्वरूप पधरावें तो अधिक ठीक है। चित्र-स्वरूपमें स्नान नहीं हो पाते, अभिषेक नही हो पाता। जहाँ कम शृङ्गार किया कि सेवा पूजा जल्दी पूर्ण हो जाती है। मूर्ति स्वरूप हो तो तुम दूधसे स्नान कराओ, गर्म जलसे स्नान कराओ, श्रीअंगको पोंछो, फिर वस्त्र अर्पण करो। इस प्रकार सेवा-पूजामें अधिक समय लगा सकोगे। शृङ्गार हो उतने समय तक आंख ओर मन भगवानमें लगाये हुए रहें, शृङ्गार करनेवाला भगवत् स्वरूपके साथ एक हो जावे। शृङ्गार करनेसे क्या भगवानकी शोभा बढ़ती है ? नहीं, नहीं, वे तो सहज सुन्दर है। शृङ्गार करनेसे अपना ही मन शुद्ध होता है। बड़े बड़े योगियोंको समाधिमें जैसा आनन्द मिलता है वैसा आनन्द वैष्णवोंको अनायास ही ठाकुरजीके शृङ्गारमें मिल जाता है। खुली आँखोंमें ही समाधि जैसा आनन्द मिल जाता है। शृङ्गार करनेके पश्चात् भोग अर्पण करना चाहिए।

ठाकुरजीकी सेवा करनेकी बहुत आवश्यकता है। शास्त्रमें तो ऐसा लिखा है कि जिस घरमें ठाकुरजीकी सेवा न हो उस घरका जल भी नहीं पीना चाहिए। जिस घरमें भगवान्‌की सेवा नहीं वह घर, घर नही, स्मशान है।

तुम घरमें ठाकुरजीकी सेवा रक्खो। सम्पत्तिके प्रमाणसे खर्च करो। अपने ठाकुरजीके लिए सुन्दर सिंहासन बनाओ, नये-नये वस्त्र बनाओ। ठाकुरजीने बहुत दिया हो तो खर्च करनेमें तनिक भी संकोच मत रक्खो। सेवाके प्रारम्भमें ध्यान करो। मनुष्य ध्यान करनेमें जब तक मनसे संसारका सम्बन्ध नहीं छोड़ता, तब तक उसे सेवामें आनन्द नहीं आता। ध्यानके साथ भावना करो कि मेरे घरमें जो सेव्य स्वरूप हैं उनमें भगवान

प्रवेश किए हुए हैं। मूर्तिमें प्रभु आकर विराजे हैं, ऐसी भावना रखनेसे मूर्ति भगवद्स्वरूप बन जाती है।

सेव्यमें मनको पिरोकर रखना यही सेवा है। तुम शरीर में जैसा प्रेम रखते हो ऐसा प्रेम ठाकुरजीके स्वरूपमें रक्खो। सेवा स्नेहसे करो, समर्पण भावसे करो। मूर्तिमे भगवद्भाव न जागे तब तक प्रत्येक पदार्थमे ईश्वर भाव नही जागेगा। सेवा करनेमें ऐसी निष्ठा रक्खो कि ये प्रत्यक्ष परमेश्वर हैं। सेवा में दास्यभाव मुख्य है। नाथ ! मैं तुम्हारा दास हूं। अधम हूं, परन्तु तुम्हारा ही हूं। दास्य भाव हृदयको जल्दी दीन बनाता है। दैन्य आने पर हृदय-पिघलता है। प्रभु सेवामें हृदय न पिघले तब तक सेवा सफल नही होती। दास्यभाव विना सेवा फलती नही। दास्यभावसे जीवन सुधरता है, मरण सुधरता है। दास्यभाव बिना ईश्वरको जीव पर दया नही आती।

सेवामें प्रेम मुख्य है। सेवा भावसे करो। प्रभु प्रसन्न होंगे। सेवाके पश्चात् प्रार्थना करो। ऐसा नही कि संस्कृतमे ही प्रार्थना हो। तुम्हारी जो भाषा हो उसीमे प्रार्थना स्तुति करो। भगवानको सभी भाषा आती हैं। स्तुतिके पश्चात् चिंतन करो। सेवाकी समाप्तिमें ठाकुरजीको साष्टाङ्ग-प्रणाम करो।

सेवा और पूजामे थोड़ा फेर है। जहाँ मंत्र मुख्य है और प्रेम गौण है उसे पूजा कहते हैं। जहाँ मंत्र गौण है और प्रेम मुख्य है उसे सेवा कहते हैं। ब्राह्मण ठाकुरजीकी पूजा करते हैं। ब्राह्मण जो मंत्र बोलते हैं उन मंत्रोके अधिष्ठाता देव उन मंत्रोके आधीन हो जाते हैं। पूजामें ब्राह्मण प्रभुको जिमाते हैं।

प्राणाय स्वाहा। अपानाय स्वाहा। व्यानाय स्वाहा। उदानाय स्वाहा। समानाय स्वाहा। ब्रह्मणे स्वाहा।

जहाँ मंत्र पूरा हुआ कि ठाकुरजीको भोजनभी पूरा करना पड़ता है। ब्राह्मण तो तुरन्त ही भगवानको आज्ञा देते हैं हस्तप्रक्षालनं समर्पयामि। मुख प्रक्षालनं समर्पयामि। अब हाथ धो डालो। एक मिनटमें भगवानके हाथ धुला देते हैं। भगवानको अभी खानेकी इच्छा वाकी है परन्तु भगवान ब्राह्मणके वचनोंको आदर देते हैं। भगवान कहते हैं मैं तुम्हारे आधीन हूं। तुम जैसा कहोगे वैसा मैं करूंगा। भगवान ब्राह्मणोके आधीन रहते हैं। भोजन बन्द करके हाथ धो डालते हैं। तुमको कोई भोजनको बुलाये और थाल तुम्हारे आगे रक्खे, पीछे प्राणाय स्वाहा। अपानाय स्वाहा। व्यानाय स्वाहा—ऐसा मंत्र बोले और पीछे थाल उठाकर ले जाय तो ? तुम्हारी क्या दशा होगी ? तुमको भोजन करनेमें पन्द्रह मिनट लगें तो भगवान भी पंद्रह बीस मिनिट आरोगेंगे न ? आँख बन्द रखकर

कीर्तन करते करते लालाको मनाओ। प्रभुको आरोगाओ। तुम रोज भाव पूर्वक आरोगाओगे तो किसी दिन प्रभु प्रत्यक्ष आरोगेंगे।

नामदेवके चरित्रमें आता है कि घरमें विठ्ठलनाथजीकी पूजा थी। एकबार नामदेवके पिताजीको किसी बाहर गाँवमें जाना पड़ा। नामदेवजी तब तीन वर्षके थे। पिताने पूजाका काम बालक नामदेवको सौंप दिया। पिता समझाते हैं कि बेटा! घरके मालिक विठ्ठलनाथ है। उनकी सेवा किए बगैर खाएगा तो पाप लगेगा। इस घरमें जो कुछ भी है वह विठ्ठलनाथजीका है। ठाकुरजीको अर्पण न करोगे तो पाप लगेगा। प्रसाद-रूपसे ग्रहण करोगे तो दोष नहीं लगेगा।

नामदेवजी ने कहा—पिताजी! सेवा किस प्रकार की जाती है वह बताइये। पिताजी ने कहा—बेटा! प्रातःकाल जल्दी उठना। स्नान करके पवित्र होकर भगवानकी प्रार्थना करना। इसके बाद ठाकुरजीको जिमाना। परन्तु उससे पहले भोग सामग्री तैयार रखना। ठाकुरजीको स्नान कराके धीरे-धीरे झाँकी करना। पीछे भगवानका शृङ्गार करना। उसके पश्चात् ठाकुरजीको दूध भोग रखना। विठ्ठलनाथजी शर्मीले है। अनेक बार प्रार्थना करोगे तब ठाकुरजी दूध लेंगे। पिताने नामदेवजीको सेवाकी समस्त बिधि बतलादी।

बालक नामदेवके मनमें बात भर गयी कि यह मूर्ति नहीं, प्रत्यक्ष परमात्मा हैं। प्रातःकाल चार बजे बालक उठा। पिताजीके बताये हुए प्रमाणसे प्रेमसे उसने प्रभुकी सेवा करनी प्रारम्भ की। पीछे दूध रक्खा। नामदेवने बारबार विठ्ठलनाथजीको मनाया कि विठ्ठल! तुम तो जगतको जिमाने वाले हो, मैं तुमको क्या जिमा सकता हूँ? तुम्हारा ही तुमको अर्पण करता हूँ।

परन्तु विठ्ठलनाथ दूध नहीं पीते थे। नामदेव बिनती करते हैं—दूध क्यों नहीं पीते हो? जल्दी दूध पिओ। तुमको भूख लगी होगी। क्या दूधमें खांड कम पड़ी है इसलिए नहीं पीते हो? नामदेव रसोई घरमें जाकर खांड़ ले आए। दूधमें फिरसे खांड डाली। जीव ईश्वरको मानता नहीं, इसलिए परमात्मा मानते नहीं। नामदेव मना रहे हैं विठ्ठल! तुम दूध नहीं पिओगे तो तुम्हारे आगे माथा फोड़ लूंगा। बालक अतिशय व्याकुल हो गया।

बालक जब माथा फोड़नेको तैयार हुआ उस समय परमात्माने दूधका कटोरा उठा लिया। आज मूर्ति चैतन्य बनी। नामदेवके प्रेमसे विठ्ठलनाथजी प्रसन्न हो गये। विठ्ठलनाथजीने दूध पिया और नामदेवको गोदमें लेकर उसे भी दूध पिलाया।

सेवा मार्ग अति दिव्य है। सेवा करनेसे सेवकको सुख होता है। सेवासे भगवान-को क्या सुख मिलता है? वे तो परमानन्द स्वरूप हैं परन्तु सेवा और स्मरणसे परमात्मा वशमें हो जाते हैं। भक्ति भगवानको परतन्त्र बना लेती है।

श्रीरामचन्द्रजी शबरीको भगवानमें प्रेम जाग्रत करनेके साधन बता रहे थे। श्री-रामचन्द्रजीने बताया कि किसी संत द्वारा मंत्रकी दीक्षा ग्रहण करके उस मंत्रके साथ मैत्री करो तो प्रभुमें प्रेम जगे।

मम मन्त्रोपासकत्वं साङ्गं सप्तममुच्यते।

मनको मन्त्रमें रक्खो। परमात्माका स्वरूप प्रत्यक्ष दिखायी नही देता और कदाचित् दीख भी जाय तो उस स्वरूपको कोई पकड़ नही सकता। एक-दो मिनट या पाँच एक मिनट दर्शन देकर भगवान अंतर्ध्यान हो जाते हैं। तुम परमात्माके कोई भी मन्त्रको पकड़कर रक्खो।

मद्भक्तेष्वधिका पूजा सर्वभूतेषु मन्मतिः।
बाह्यार्थेषु विरागित्वं शमादि सहितं तथा॥
अष्टमम्.........................

आठवाँ साधन बतलाया है—सबमे मेरे इष्टदेव बिराजे हुए हैं—ऐसा भाव रखो। भगवानकी अपेक्षा भागवतमें अधिक स्नेह रखना चाहिए।

नवमं तत्त्वविचार।

तत्व विचार करना ये नवाँ साधन है। प्रभुने शबरीको उपदेश किया कि इन नौ प्रकारके साधन करनेसे प्रभुमें प्रेम जागता है। अरे! भक्ति करते-करते अंदरसे जब ज्ञान स्फुरित होता है वह ज्ञान स्थिर रहता है। पुस्तके पढकर बाहरके साधनोसे मिला हुआ ज्ञान भूल जानेवाला होता है। पुस्तकोके पीछे पडे वह विद्वान् और प्रभुके प्रेममें परमात्माके पीछे पडे वह सन्त। विद्वान् शास्त्रके पीछे दौडता है जबकि शास्त्र सन्तके पीछे दौड़ते हैं।

भक्ता एकान्तिनो मुख्याः। सच्छास्त्री कुर्वन्ति शास्त्राणि॥

शास्त्रोंको पढकर बोले वह विद्वान्। प्रभु-प्रेममें पागल होकर प्रभुको रिझानेके लिए बोले वह सन्त। सन्त अन्दरकी पोथी पढकर प्रभु प्रेरणासे बोलता है। भक्ति द्वारा हृदय शुद्ध हो जाता है, मन शुद्ध हो जाता है। इस कारणसे, अन्दरसे, हृदयसे ज्ञान स्वतः प्रगट होता है। ज्ञानको प्रगट करो। ज्ञान कोई पुस्तकोंमें ही हो ऐसा नही। ज्ञान तुम्हारे पास ही है परन्तु यह अज्ञानसे ढका हुआ है। आकाशमें सूर्यनारायण हों फिर भी बादलोंसे जैसे वह ढक जाते हैं, उसी प्रकार प्रत्येक बुद्धिमें सूक्ष्मरूपसे ज्ञान रहता है परन्तु यह ज्ञान अज्ञानसे ढका हुआ है। बादल दूर होने पर जिस प्रकार सूर्यनारायणके दर्शन होते हैं उसी प्रकार जो परमात्माके साथ प्रेम करता है, सेवा-स्मरण करता है, उसके अज्ञानका आवरण दूर हो जाता है और अन्दरसे परमात्माके स्वरूपका ज्ञान प्रगट हो जाता है।

श्रीरामचन्द्रजीने शबरीको नवधा भक्तिका उपदेश किया। श्री तुलसीदास महाराज-ने यह नवधा भक्ति सुन्दर रीतिसे वर्णन की है—

नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं। सावधान सुनु धरु मन माहीं॥
प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा॥

गुरु पद पंकज सेवा, तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुन गन, करइ कपट तजि गान॥

मन्त्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा॥
छठ दम सील बिरति बहु करमा। निरत निरन्तर सज्जन धरमा॥
सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोतें संत अधिक कर लेखा॥
आठवँ जथा लाभ संतोषा। सपनेहुँ नहिं देखइ पर दोषा॥
नवम सरल सब सन छल हीना। मम भरोस हियँ हरष न दीना॥

सुनकरके शबरीको अतिशय आनन्द हुआ। श्रीरामचन्द्रजी तो मनुष्य जैसी लीला करते थे, उन्होंने शबरीसे पूछा—श्रीसीताजी कहाँ हैं ? तुम जानती हो तो मुझे बताओ। शबरीने कहा—नाथ ! आप तो सर्वज्ञ हो। सब जानते हो। मैं आपसे क्या कहूँ ? सीता-जीको रावण ले गया है। सीताजी लंकामें विराजी हुयीं हैं। यहाँ पास ही पंपासरोवर है। वही ऋष्यमूक पर्वतपर सुग्रीव बिराजते हैं। आप वहाँ पधारो।

सुग्रीवके साथ मैत्री करो। सुग्रीव आपकी सेवा करेगा। अब मुझे आपका दर्शन करते-करते प्राणोंका त्याग करना है। रामजीने पूछा—तुम्हारी कुछ इच्छा है ? शबरीने रामजीकी विनतीकी—इस पंपासरोवरका जल बिगड़ गया है, वह सुधारो। आप उसमें स्नान करो तो जल शुद्ध हो।

एक ऋषिने शबरीको लात मारी थी, इसलिए यह जल बिगड़ गया था। यह प्रसंग पहले आ गया है। शबरीको महिमा बढ़ानेके लिए रामजीने वहाँ आए हुए लोगोंसे कहा—मेरे स्नानसे कुछ होने वाला नहीं। उस जलको सुधारनेकी मेरी शक्ति नहीं। शबरीके चरण धोकर, उसको तीर्थ-सरोवरमें पधराओ तो जल शुद्ध हो जाएगा। रामजीने लोगोंसे कहा—तुम शबरीका चरण-तीर्थ उसमें पधराओ। शबरीने इस जलमें स्नान किया। सरोवरका जल अतिशुद्ध और मधुर बन गया।

बादमें श्रीराम-दर्शन करते-करते शबरीने योगाग्निमें शरीर जला दिया। शबरी कृतार्थ हुयी। सियावर रामचन्द्रकी जय···रामजीने शबरीका उद्धार किया।

रामसंदर्शनान्मुक्ति प्राप्ता वैकुण्ठमाययौ ।

इस प्रकार श्रीरामके दर्शनसे मुक्ति प्राप्त करके शबरी वैकुण्ठ सिधारी। परमात्मा-का खूब भजन करो । साधु-सन्तोंमें खूब विश्वास रक्खो । तुम्हारा कल्याण हो जाएगा । शबरीका चरित्र मनुष्यके लिए आश्वासनरूप है ।

भक्तिर्मुक्तिविधायिनी भगवतः श्रीरामचन्द्रस्य हे ।
लोकाः कामदुघाङ्घ्रिपद्मयुगलं सेवध्वमत्युत्सुका ॥
नाना ज्ञान विशेषमन्त्रवितर्ति त्यक्त्वा सुदूरे भृशं ।
रामं श्यामतनुं स्मरारि हृदये भान्त भजध्वं बुधा ॥

× × ×

नरविविध कर्म अधर्म बहु मत सोकप्रद सब त्यागहू ।
बिस्वास करि कह दास तुलसी रामपद अनुरागहू ॥
जातिहीन अघ जन्म महि, मुक्त कीन्हि असि नारि ।
महामंद मन सुख चहसि, ऐसे प्रभुहि बिसारि ॥

अम्भोधिसमुद्भवं कलिमलप्रध्वंसनं चाव्ययं
श्रीमच्छम्भुमुखेन्दुसुन्दरवरे संशोभितं सर्वदा ।
संसारामयभेषजं सुखकरं श्रीजानकीजीवनं
धन्यास्ते कृतिनः पिबन्ति सततं श्रीरामनामामृतम् ॥

(५३)

जीव-शिवकी मैत्री

परमात्मा श्रीराम जीवमात्रके सच्चे सुहृद् है। सुहृद और मित्र—इसमें अन्तर है। मित्र थोड़ा भी स्वार्थ रखकर प्रेम करता है, सुहृद निरपेक्ष प्रेम करता है। श्रीराम मित्र नहीं सबके सुहृद हैं।

सुहृदं सर्व भूतानाम् ।

ईश्वर जीवके साथ प्रेम करते है तब कोई भी अपेक्षा रखकर नहीं करते। परमात्मा स्वयं आनन्दरूप है। आनन्दरूप श्रीरामको, श्रीकृष्णको किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं। जिसका आनन्द बाहर है, जिसका आनन्द दूसरेमें है, उसको सबकी अपेक्षा रखनी पड़ती है। जो स्वयं ही आनन्द अनुभव करता है, जो स्वयंके आनन्दमें ही मस्त है, उसे किसी वस्तुकी आवश्यकता नही।

जीवको जब तक अन्य किसीसे सुख मिलता है तबतक वह सापेक्ष है, कुछ अपेक्षा रखता है। आनन्द तो जीवके पास ही है परन्तु जीव आनन्द अपनेसे बाहर ढूंढता है, अपने अंदर नहीं। स्त्रीसे, कपड़ोंसे, धनसे आनन्द मिले तो उनके वियोगसे तुमको दु.ख भी होगा। तुम्हारा आनन्द किसीके आधीन नहीं होना चाहिए, परतंत्र नही होना चाहिए। यदि वह किसीके आधीन होगा तो वह दुःख देगा ही। अन्तर दृष्टि करके परमात्माको अपने अन्दर निहारो। एकमात्र भगवान ही आनन्दरूप हैं। बाकी यह जगत तो दु:खरूप है।

अरे कही स्त्रीसे आनन्द मिलता है ? पुरुषसे आनन्द मिलता है ? संसारके किन्ही भी विषयोमें यदि आनन्द होता तो सब कुछ छोड़कर किसी दिन भी सोनेकी इच्छा होती ही नहीं। जगतमें आनन्द नहीं है इसलिए ही तो निद्रामें आनन्द मिलता है। मनुष्य चारपाई पर पड़नेके बाद सब कुछ भूल जाता है। उस समय उसे स्वयंका ही आनन्द मिलता है।

आनन्द बाहर नहीं, आनन्दरूप श्रीराम सबके अन्दर विराजे हुए हैं।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ॥

श्रीराम प्रेम करते है तब कोई भी अपेक्षा रखकर प्रेम नही करते। यह वर्षा कौन करता हैं ? वर्षा करनेकी शक्ति क्या किसी मनुष्यमें है ? किसी विज्ञानमे ऐसी शक्ति है कि वर्षा कर सके ? वर्षा तो श्रीरामजी करते है। गीताजीमे प्रभुने कहा है —

"तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च।"

वर्षा परमात्माकी इच्छासे होती है। प्रभु क्या अपने लिए वर्षा करते हैं ? ईश्वरको तो कोई अपेक्षा ही नही।

भगवान कहते हैं—बेटा, एक काम तू कर दूसरा काम मैं करूंगा। धरती जोतनेका काम तुझे करना है, वर्षा मैं करूंगा।

पानी बरसनेके बाद बीज बोनेका काम मनुष्यका है, बीजमें से अंकुर उत्पन्न करनेका काम ईश्वरका है।

खेतकी सुरक्षा मनुष्य करता है, अनाज भगवान उत्पन्न करते हैं।

अनाज उत्पन्न करनेके पश्चात् मनुष्य उसको खाता है, परमात्मा खाये हुए को पचाते हैं।

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रित.।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥

परमात्मा खाते नही, परन्तु प्रत्येकके अन्दर वैश्वानर अग्निरूपमें विराजे हुए भगवान उदरस्थ अन्नका पाचन करते हैं।

ईश्वरको कोई भी स्वार्थ नहीं। वे निस्वार्थभावसे जीवके साथ प्रेम करते हैं।

खानेके बाद मनुष्य सो जाता है। भगवान कहते हैं कि मैं तेरे पास समस्त रात्रि बैठकर......जीव सो जाता है ईश्वर जागकर इसका रक्षण करते हैं।

परमात्मा सोते नही हैं। अगर भगवान सो जायें तो सबका ही अच्युत केशवम् हो जाय। गाड़ीमें तुमको ठीक जगह मिल जाये तो तुम आराम करते हो, सो जाते हो, परन्तु इन्जन चलाने वाला ड्राइवर विचार करे कि मैं घंटे दो घंटे अब आराम करूं, तो तो गाड़ीका क्या हो ?

भगवान कहते हैं कि जीव तो मुसाफिर है। ये गाड़ीमें बैठा है। मैं गाड़ी चलाता हूं। परमात्मा सोते नहीं, परमात्मा जागते हैं।

प्रत्येक कार्यमें जीवकी ईश्वर मदद करते हैं। ईश्वर कोई भी अपेक्षा रखे बिना जीवको सुख देत हैं।

हमारे लिए ही भगवान अनाज उत्पन्न करते हैं, हमारे लिए ही वर्षा करते हैं। ये फलफूल भी अपनके लिएही प्रभुने उत्पन्न किए है।

परन्तु यह जीव इतना वड़ा दुष्ट है कि भगवानका भी भगवानको अर्पण किए बिना ही खा जाता है। यह सब ईश्वरका ही है। परमात्माका परमात्माको जो अर्पण नही करता वह हराम खोर है, दुष्ट है। वह कृतघ्नी है कि जो ईश्वरको नही देता।

सबके सच्चे सुहृद परमात्मा हैं। भगवान विचार नहीं करते कि यह गरीब है कि धनवान है, ज्ञानी है कि अपढ़ है, वालक है कि प्रौढ़ है, स्त्री है कि पुरुष है, ऊँचे कुलमें जन्मा है कि नीच जातिका है। ऐसी विषमता तो मनुष्य रखता है। मालिक की आँखोंमें तो प्रेम है।

जीव परमात्माके साथ मैत्री करे तो प्रभु उसको परमात्मा बनाते हैं। भगवान अतिशय उदार हैं। परमात्मा जीवको जब देते हैं तब देनेमे जरा भी संकोच नहीं रखते। जीव देता है तब विचार करके देता है। ईश्वर ऐसा विचार नहीं करते कि अपने लिए कुछ रखूं।

परमात्माके साथ मैत्री करनेवाले जीवको प्रभु पूर्ण बनाते है। यह जगत अपूर्ण है, जीव अपूर्ण है। जीव परिपूर्ण तब बनता है जब वह ईश्वरके साथ मैत्री करता है। किष्किन्धाकाण्डमें जीव और ईश्वरकी मैत्रीकी कथा है। भगवान शंकर माता पार्वतीजीसे कहते हैं—

ऋष्यमूकगिरेः पार्श्वे गच्छन्तौ रामलक्ष्मणौ।
धनुर्बाणकरौ दान्तौ जटावल्कलमण्डितौ।
पश्यन्तौ विविधान्वृक्षान् गिरेः शोभां सुविक्रमौ॥

शबरीका उद्धार करके श्रीराम-लक्ष्मण धीरे-धीरे ऋष्यमूक पर्वतके समीप पधारे। ऋष्यमूक पर्वतके ऊपर सुग्रीव चार मन्त्रियोंके साथ बैठे थे। उन्होंने श्रीराम-लक्ष्मणको आता हुआ देखा।

सुग्रीवने हनुमानजीसे कहा कि ये दो महापुरुष कौन हैं? वालिने मुझको मारनेके लिए तो कहीं इनको यहाँ नहीं भेजा? ये कौन हैं? तुम परीक्षा करो।

तथेति बहुरूपेण हनुमान् समुपागतः।
विनयावनतो भूत्वा रामं नत्वेदमब्रवीत॥

श्री हनुमानजी महाराजने ब्रह्मचारीका स्वरूप धारण किया। बादमें रघुनाथजीके पास जाकर, उनको वन्दन करके हनुमानजीने पूछा—आप कौन हो ? आप नर-नारायण जैसे लगते हो। आप यहाँ क्यो पधारे हो ? आपको देखकर मुझको बहुत आनन्द होता है।

हनुमानजीने बहुत सुन्दर भाषण किया। प्रभुने लक्ष्मणजीसे कहा कि लक्ष्मण ! इस ब्रह्मचारीने व्याकरण-शास्त्रका अध्ययन खूब किया है। यह इतना बहुत बोला परन्तु उसमे एक शब्द भी अशुद्ध नही बोला। अनर्थ नही बोला। विचार करके बहुत सुन्दर बोलता है। यह व्याकरण-शास्त्रमे निष्णात है। लक्ष्मण ! तुम देखो तो इस ब्रह्मचारीकी लगोटी बहुत दिव्य है।

श्री हनुमानजी महाराज प्रगट हुए तब जन्मसे ही दिव्य कोपीन धारण करके ही प्रगट हुए थे। अजनी माताने हनुमानजीसे कहा था कि तेरी कोपीनको जो............
वे हो तेरे गुरू हैं।

प्रभुने लक्ष्मणजीसे कहा कि यह ब्रह्मचारी है, ज्ञानी है, जितेन्द्रिय है। इसकी कोपीन अति उज्ज्वल है। यह सुनकर हनुमानजीको विश्वास हो गया कि यह परमात्मा हैं, यह ही मेरे गुरू हैं।

लक्ष्मणजोने हनुमानजोको सक्षेपमे सब कथा सुनायो कि हम महाराज दशरथके दोनों बालक है। श्रीराम-लक्ष्मण हमारा नाम है। महाराज दशरथकी आज्ञासे हम वनमें आए हैं। श्रीसीताजी भी साथ थी। उनको रावण ले गया है और हम श्रीसीताको खोजने निकले हैं। ब्रह्मचारीजी महाराज ! आप कौन हो ?

बादमें श्रीहनुमानजीने श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें साष्टाग वन्दन किया और कहा—

मोर न्याउ मैं पूछा सांई। तुम्ह पूछउ कस नर की नांईं॥
तव माया बस फिरऊँ भुलाना। ताते मैं नहिं प्रभु पहिचाना॥

मायामें फँसा हुआ जीव तुमको भूल जाता है, परन्तु नाथ ! तुम भूल गये, इसलिए मुझको पूछते हो कि तू कौन है ? मैं तुम्हारा सेवक हूँ। मैं वायुपुत्र हनुमान हूँ। आपने मेरे सत्यस्वरूपको जाना है। आपही मेरे गुरू हो। मैं सुग्रीवका मंत्री हूँ।

सुग्रीवो नाम राजा यो वानराणां महामतिः।
चतुर्भिर्मन्त्रिभिः सार्धं गिरिमूर्धनि तिष्ठति॥

वानरोंका राजा सुग्रीव पर्वत-शिखरपर बिराजता है और उसने ही मुझको भेजा है। सुग्रीवके साथ आप मैत्री करो। वह आपकी सेवा करेगा। रामजीने कहा—सुग्रीवका नाम मैंने सुना है। सुग्रीवके साथ मैत्री करनेके लिए ही मैं आया हूँ।

सुग्रीव जीव है। श्रीराम ईश्वर है। परन्तु श्रीराम जीवके साथ मैत्री कब करते हैं? सुग्रीवको हनुमानजी अपनाते है तब। हनुमानजीका बल यदि सुग्रीवको न मिले तो श्रीराम सुग्रीवके साथ मैत्री नहीं करते।

हनुमानजी जिसको न अपनावे उसको श्रीराम् मित्र नहीं मानते। परमात्माके साथ प्रेम न हो तो जीवन सुन्दर हो सकता नही। दो जगहोंमें परमात्माने मोह रक्खा है द्रव्यमें और कामसुख में। इन दो सुखोंका त्याग करे उसको हनुमानजी अपनाते हैं। ब्रह्मचर्यका पालन करोगे, जितेन्द्रिय बनोगे तो परमात्माके साथ मित्रता होगी।

यह जीव और ईश्वरकी मित्रताकी कथा है। सुग्रीव यह जीवात्मा है। 'ग्रीव' शब्दका अर्थ है कंठ। जिसका कंठ सुन्दर है उस जीवके साथ ईश्वर मैत्री करते हैं।

इन गाने वाले लोगोंका कंठ तो बहुत सरस होता है। क्या भगवान इनके साथ मैत्री करते होंगे? अरे, कंठकी शोभा तो परमात्माके नामसे है। जिह्वासे जो प्रभुके नामका जप करता है, कंठसे जो प्रभुके नामका स्तवन करता है, जिसकी नाममें निष्ठा है, वही सुग्रीव है। परन्तु उसे हनुमानजीका—ब्रह्मचर्यका बल मिले तो ही वह ईश्वरके साथ मित्रता कर सकता है। जो सर्व इन्द्रियोंसे ब्रह्मचर्यका पालन करता है वही हनुमानजीके ब्रह्मचर्यका बल प्राप्त कर सकता है।

हनुमानजीकी महिमाका वर्णन कौन कर सकता है? श्री हनुमानजी रामलक्ष्मणको कन्धे पर चढ़ाकर ऋष्यमूक पर्वतके ऊपर जहाँ सुग्रीव बैठे थे वहाँ ले गये।

यत्र तिष्ठति सुग्रीवो मन्त्रिभिर्बालिनोभयात्।

सुग्रीव बालिके भयसे वहाँ रहते थे। श्रीहनुमानजीने अग्निको प्रगट किया, अग्निकी साक्षीमें श्रीरामचन्द्रजीके साथ सुग्रीवकी मित्रता करायी। सुग्रीवने रघुनाथजीको सुन्दर आसन दिया। रघुनाथजी आसनके ऊपर बिराजे। लक्ष्मणजीने संक्षेपमें कथा सुनायी।

उस समय सुग्रीवने कथा सुनायी कि इस ऋष्यमूक पर्वतके ऊपर मैं बैठा था उस समय एक राक्षस एक सुन्दर स्त्रीको आकाशमार्गसे ले जा रहा था। उसे मैंने देखा था।

गगनपंथ देखी मैं जाता। परबस परी बहुत बिलपाता॥
राम राम हा राम पुकारी। हमहिं देखि दीन्हेउँ पट डारी॥

उस स्त्रीने हमको देखकर सुन्दर आभूषण नीचे फेंक दिए। वे मेरे पास रखे हैं। वे बहुत करके श्रीसीताजीके होंगे ऐसा हमको लगता है। सुग्रीवने वे आभूषण मँगाए और श्रीरामचन्द्रजीको दिखाकर पूछा—ये आभूषण क्या सीताजीके है ?

श्रीरामचन्द्रजीको उन आभूषणोको देखते ही आश्चर्य हुआ। आखें भीनी हो गयीं। ओ हो, यह जानकीका चन्द्रहार है। यह कर्णफूल है।

प्रभुने लक्ष्मणजीकी परीक्षा ली। पूछा—लक्ष्मण ! तुम्हारी भाभीका यह चन्द्रहार तुम पहचानते हो ? लक्ष्मणजीने कहा—बडे भाई। मैंने किसी दिन इन्हें नही देखा।

श्रीरामचन्द्रजीने फिर पूछा—लक्ष्मण ! यह तुम्हारी भाभीकी अंगडियां है तुम पहचान सकते हो ? लक्ष्मणजीने कहा—वे मैंने कभी नही देखी। रामजीने पूछा यह कर्णफूल तुम्हारी भाभीका है ? लक्ष्मणजीने कहा—मैं कुछ नही जानता। रामचन्द्रजीने कहा—लक्ष्मण। तू तो 'ना' ही करता है क्या ये तेने कभी देखे ही नही ? तू किसी आभूषणको पहचानता ही नही ?

लक्ष्मणने कहा—बडे भाई ! आँख ऊँची करके मैंने किसी भी दिन भाभीको सामने देखा ही नही। मैं नित्य भाभीके चरणोमे वदन करता था। इसलिए मैंने चरणके दर्शन किए हैं। इन चरणोके नूपुरोंको मैं जानता हूँ।

नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले।
नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्॥

जिसने एक-एक इन्द्रियका संयम बढाया हुआ है ऐसा इन्द्रियजित् पुरुष इन्द्र राजाकी भी अपेक्षा बड़ा है। श्रीसीताजीके साथ अनेक वर्ष लक्ष्मणजी सेवामें रहे थे, परन्तु आँखें ऊँची करके किसी भी दिन सामने नही देखा। हमेशा माताजीके चरणोमें ही नजर रखते।

श्रीरामचन्द्रजी उठकर खड़े हुए। प्रभुने लक्ष्मणजीको आलिंगन किया और कहा—मेरे लक्ष्मण जैसा जितेन्द्रिय महापुरुष कोई हुआ नही और होगा भी नही।

श्रीसीताजीके आभूषणोको देखकर श्रीरामचन्द्रजीने कुछ विलाप किया। सुग्रीव समझाने लगे—महाराज ! आप चिन्ता न करो मैं आपकी मदद करूँगा, श्रीसीताजीको खोजनेके लिए बानर भेजूंगा राक्षसोका विनाश करूँगा। सीताजी जरूर मिल जायेंगी।

श्रीरामचन्द्रजीने सुग्रीवसे पूछा—भाई ! तुम यहाँ पर्वतके ऊपर क्यों रहते हो ? सुग्रीवने कहा—महाराज ! मेरे भाईका मुझको बहुत त्रास है। वह मुझको बहुत मारता है। मेरे सर्वस्वका उसने अपहरण कर लिया है।

सुग्रीवने श्रीरामचन्द्रजीको अपनी सब कथा सुनायी—मायावी राक्षस किष्किन्धा नगरीके पासमें आया था वह बालिके साथ लड़ने लगा। युद्ध करते-करते वह राक्षस एक गुफामें चला गया तब बालिने मुझसे कहा कि तू गुफाके बाहर खड़ा रहना। मैं अन्दर लड़ने जाता हूँ। एक महीने तक मेरी प्रतीक्षा करना। तब तक मैं न आऊँ तो मेरी मृत्यु हो गयी ऐसा मानकर तू घर जाना।

परिखेसु मोहि एक पखवारा। नहिं आवौं तब जानेसु मारा॥

मैं बाहर खड़ा रहा। बालि गुफामें मायावीके साथ लड़ने चला गया। बाहर मैने एक महीने तक प्रतीक्षाकी परन्तु बालि बाहर नहीं आया। बादमें अन्दरसे रुधिर आने लगा यह देखकर मुझको ऐसा लगा कि मायावीने बालिको मार दिया होगा। मैं घर चला आया। मेरी अनिच्छापर भी वानरोंने मुझको गद्दीके ऊपर बैठाकर राज्याभिषेक कर दिया।

अनिच्छन्तं मंत्रिणो मां तत्पदे संन्यवेशयन्।

छह महीने बाद मायावीको मारकर बालि आया। मैं गद्दीपर बैठा था, वह उसको अच्छा नहीं लगा। मुझको मारकर निकाल दिया। मेरी स्त्रीका अपहरण कर लिया। महाराज! मैं अतिशय दुःखी हूँ।

श्रीरामचन्द्रजीने सुग्रीवको आश्वासन दिया कि मैं बालिको मारूँगा। किष्किन्धाका राज्य मैं तुमको दूँगा। तब सुग्रीवने कहा—महाराज! वह बालि कोई साधारण वीर नहीं है, बहुत बलवान है।

श्रीरामचन्द्रजीने कहा—तुम चिन्ता नहीं करना। सुग्रीवने कहा—महाराज! बालिका बल कुछ ओछा'''नहीं। बड़े-बड़े ताड़के ये सात वृक्ष हैं। एक ही बाणसे इन सातों वृक्षोंको जो प्रहार करेगा, वह बालिको मार सकता है।

रामजीने एक बाणसे सातों ताडोंका विनाश कर दिया, तब सुग्रीवको विश्वास हो गया कि श्रीराम कोई मनुष्य नहीं, कोई देव नही, श्रीरामतो परमात्मा हैं। सुग्रीवने रामजीको स्तुति करते हुए कहा—

सुख संपति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहउँ सेवकाई॥
ए सब राम भगति के बाधक। कहहिं संत तवपद अवराधक॥
सत्रु मित्र सुख दुख जग मांहीं। माया कृत परमारथ नाहीं॥
× × ×
अब प्रभु कृपा करहु एहि भांती। सब तजि भजनु करौं दिन राती॥

महाराज ! अब तो मुझे राजा होनेकी इच्छा नही। आपके दर्शन होनेके बाद अब मुझको राज-सुख तुच्छ लगता है। मैं तो आपकी सतत भक्ति करूँगा। सुग्रीवको ज्ञान प्राप्त हुआ। प्रभुने कहा—तू जो कहता है वह सच है, परन्तु भविष्यमे लोग बातें करेंगे कि रामचन्द्रने सुग्रीवको अपनाया परन्तु सुग्रीवको क्या मिला ? मेरी इच्छा है कि मैं बालिका विनाश करके तुझको किष्किन्धाका राजा बनाऊँ। तू बालिके साथ युद्ध करनेके लिए जा।

सुग्रीव. प्रभुकी आज्ञा होते ही, बालिके साथ युद्ध करने गया। जाकरके युद्ध करनेके लिए गर्जना की। बालि युद्ध करनेके लिए तैयार हुआ। वालिकी पत्नी ताराने वालिको जानेकी मनाही की।

ताराने बालिसे कहा—मैंने सुना है कि सुग्रीवको किसीका बल मिला है, इस कारणसे वह गर्जना करता है। श्रीराम-लक्ष्मण फिरते-फिरते यहाँ आए हुए हैं। सुग्रीवने उनके चरणोका आश्रय लिया है। सुग्रीवके साथ तुम वैर न करो।

वालिने कहा—रामजी आए होगे तो रामजीको मनाकर मैं घर ले आऊँगा। इस समय मैं सुग्रीवके साथ मित्रता करने किस प्रकार जाऊँ। मैं वीर हूँ।

ताराको समझाकर बालि सुग्रीवके साथ युद्ध करनेके लिए गया। दोनोके बीच भयकर युद्ध हुआ। रामायणमें वीररसका विशद वर्णन किया गया है।

युद्धमें दोनो अत्यन्त लोहूलुहान हो गये। सुग्रीव अतिशय थक गये और वालि जहाँ सुग्रीवको मारनेके तैयार हुआ कि पेड़की ओटमें बैठे हुए श्रीरामचन्द्रजीने बाण मारा। छातीमें बाणका प्रहार होते ही बालि जमीन पर गिर पडा और रुधिर वमन करने लगा।

वाण किसने मारा है इसे खोजनेके लिए वालि चारो तरफ देखने लगा। उसकी नजर श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर पड़ी। बालि समझ गया। वह श्रीरामचन्द्रजीको ठपका देने लगा—तुमने यह क्या किया? क्षत्रिय राजा वानरकी हिंसा नही करते। शिकार खेलने जाये तो क्षत्रिय राजा बाघ सिंह जैसे हिंसक पशुओंकी हिंसा करते हैं। वानरकी हिंसा करना यह क्षत्रियके लिए अधर्म है।

धर्मिष्ठ इति लोकेऽस्मिन कथ्यसे रघुनन्दन।

तुम धर्मिष्ठ हो ऐसी जगतमें ख्याति है, तुम इस प्रकार अधर्म करते हो? मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? सुग्रीवने तुम्हारी क्या सेवा की है? मैंने सुना है कि रावणके पाससे श्रीसीताजीको वापिस प्राप्त करनेके लिए तुम सुग्रीवकी शरण गये हो। अरे,

तुम्हारा यह काम तो मैं आधी घडीमें कर डालता। रावणको तो एक बार मैंने बगलमें दबाया था। आपने यह अधर्म किया है;

श्रीरामचन्द्रजीने बालि से कहा—तू अपने दोषका विचार नही करता और मुझे ठपका देता है।

अनुज वधू भगिनी सुत नारी, सुनु सठ कन्या सम ए चारी।
इन्हहिं कुदृष्टि विलोकइ जोई, ताहि बधें कछु पाप न होई॥

तेरी बुद्धि बिगड़ी हुई है। बहिन कन्या छोटे भाईकी पत्नी और पुत्रवधू—ये चारों समान गिनी जाती है फिर भी तुमने छोटे भाईकी पत्नीका अपहरण किया है। तू अधर्मी है, पापी है। तूने बहुत पाप किया है और इसलिए मैं तुझे मारने आया हूँ।

बालिने भगवानसे कहा—कि किसी ग्रन्थमें ऐसा लिखा है कि पापीको तुम्हारे दर्शन हो सकते हैं? मैं तो बहुत पुण्यशाली हूँ। मैंने बहुत पुण्य किया है कि जिससे अन्तकालमे तुम्हारे दर्शन कर रहा हूँ

प्रभुने बालिसे कहा—तू पुण्यशाली नही। तू तो पापी है। परन्तु तेरा भाई सुग्रीव मेरी शरणमें आया है। शरणागतके कुटुम्बका मैं उद्धार करता हूँ। इसीलिए मै तुझको दर्शन देने आया हूँ।

प्रणत कुटुम्ब पाल रघुराई।

जो शरणागत है उसके कुटुम्बकी भी चिन्ता मालिकको होती है। मालिकने कहा—मेरे दर्शन तुझको हुए वह तेरा प्रताप नहीं, परन्तु सुग्रीवके कारण। तू सुग्रीवके कुटुम्बका है। तूने पाप तो किया है, परन्तु तू सुग्रीवका भाई है इसलिए मै तुझको मिलने आया हूँ। तुझको खबर नही महापुरुष जगतका कल्याण करनेके लिए फिरते है। महापुरुषो के साथ किसी भी दिन वाद-विवाद नहीं करना चाहिए।

त्वं कपित्वान्न जानीषे महान्तो विचरन्ति यत्।
लोकं पुनानाः सञ्चारैरतस्तान्नातिभाषयेत्॥

महापुरुषोंके साथ वाद-विवाद करे उसका कल्याण नहीं होता। कितनी ही रामायणोंमें ऐसा वर्णन आया है कि बालिने प्रभुके साथ बहुत झगड़ा किया और कहा—

धर्म हेतु अवतरेउ गोसाईं, मारेहु मोहि ब्याधकी नाईं।

पारधी जिस प्रकार बाण मारता है उसी प्रकार आपने मुझको बाण मारा है। यह बहुत अनुचित है। तब परमात्माने कहा—तू पारधी होकरके मुझको बाण मारने आयेगा।

भित्वा प्रभासे बाणेन पूर्ववैरेण वानर ।

कृष्णावतारमे वह बालि जरा पारधी हुआ । जरा पारधीने प्रभुके चरणमे बाण मारा । परमात्माको तो कौन बाण मार सकता है ? प्रभुने ऐसी लीला की है। महापुरुषोंके साथ बादविवाद करने वालेको कुछ लाभ नही होता ।

बालिको विश्वास हो गया कि श्रीराम परमात्मा है । बालि रुधिर वमन करने लगा, बहुत ही व्याकुल हुआ । बालिकी स्थिति देखकर सुग्रीवका हृदय पिघल गया । सुग्रीवने बालिके चरणोमे वदन किया और कहा—मैं अपराधी हूँ । क्षमा करो ।

वालिने सुग्रीवको आलिगन दिया और उसको धन्यवाद देते हुए कहा—तेरे कारण मुझको रामज के दर्शन हुए । मैं तेरा उपकार मानता हूँ । तब सुग्रीवने कहा—बड़े भाई ! तुम्हारे कारण मुझको रामजीके दर्शन हुए । तुमने मुझको निकाला न होता तो मुझको रामजीके दर्शन क्या होने के थे ? मैं अपराधी हूँ । मेरे पापको क्षमा करो ।

वालि और सुग्रीव दोनो भाई वैर छोडकर प्रेमसे मिले । मरनेके पहले वैरका विनाश करो । वैर और वासना रखकर मरे उसको सद्गति नही मिलती । वैर रखकर मरे तो मरण बिगडता है । महापुरुष मानते हैं कि मरणका निवारण भले ही अशक्य हो, परन्तु अच्छे जीवन द्वारा मरणको सुधारना शक्य है ।

किसी जीवके साथ अनबन हुई हो तो एकाध बार उसको घर जाकर 'जय श्रीकृष्ण' करके आना ।

मरणान्तानि वैराणि निवृत्तं प्रयोजनम् ।

वैर रखकर नही मरना । वालिने उसके बाद परमात्माकी स्तुति की—

अब नाथ करि करुना बिलोकहु देहु जो वर मागऊँ ।
जेहि जोनि जन्मौं कर्म बस तहँ रामपद अनुरागऊँ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन करते हुए वालिने प्राणोका त्याग कर दिया । वालिकी मृत्यु होते ही उसकी पत्नी तारा वहाँ आयी और बहुत बिलाप करने लगी । श्रीरामचन्द्र जीने उसको उपदेश किया ।

छिति जल पावक गगन समीरा । पंच रचित अति अधम सरीरा ॥
प्रगट सो तनु तव आगें सोवा । जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा ॥

शरीरके लिए तू रोती है कि आत्माके लिए रोती है ? शरीर तो पंच महाभूतका है, यह तेरे आगे ही पडा है । आत्माको रोती हो तो आत्मा नही मरती । आत्मा तो नित्य है ।

मरने वालेके पीछे बहुत रोनेसे उसको भी दुःख होता है। मरने वालेके पीछे बहुत रोना यह ठीक नही। उसके द्वारा जो काम बाकी रहा हो उसको आगे बढ़ाओ। यह ही सच्ची ममता है। बहुत 'हाय-हाय' करे यह ममता नही। अधिक ममता हो तो हरिके नाम-का जप करके उसका पुण्य मरने वालेको दो।

अपने गुजरातमें 'हाय-हाय' करनेकी यह पद्धति कहाँसे आयी, यह कुछ खबर ही नहीं पड़ती। मरनेवालेके पीछे तो हरिस्मरण हो, हाय-हाय नहीं होनी चाहिए। एक मरता है, तब उसके पीछे अनेक रोते है। परन्तु रोनेवाला विचार नही करता कि मैं दूसरेके लिए रो रहा हूँ, परन्तु अपने लिए कभी नहीं रोता। मुझे भी एक दिन जाना तो पड़ेगा ही।

मरणका प्रारब्ध भयंकर होता है। मरणका पाप ऐसा होता है कि इसका निवारण साधारण पुण्यसे नही होता। अतिशय भक्ति बढ़े तो हो मरण सुधरता है। साधारण भक्तिसे अथवा अतिशय दानसे भी मरण नहीं सुधरता। अतिशय भक्ति करे तभी अन्तकालके पाप भस्म होते हैं। मनुष्य दूसरोंके लिए रोनेकी अपेक्षा, सावधान होकर अपने लिए रोवे और साधन करे तो कल्याण होगा। जो गया है वह तो प्रभुके चरणोमें गया। उसकी अब चिन्ता न करो, उसका स्मरण न करो।

प्रभुने ताराको सुन्दर उपदेश किया। बालिके शरीरका विधि-पूर्वक अग्नि संस्कार कराया गया। किष्किन्धाका राज्य श्रीरामचन्द्रजीको मिला। परन्तु रामजीने एक पैसा भी लिया नहीं। किष्किन्धाकी गद्दीपर सुग्रीवको बैठाकर राज्याभिषेक किया। प्रभुने सुग्री से कहा—कुछ दिन तक तुम राज्य करो। पश्चात् श्रीसीताजीको खोजनेके लिए वानरोको भेजना। पास हो प्रवर्षण पर्वत है और यह चातुर्मासका समय है। वर्षा बहुत पड़ती है इसलिए चातुर्मासमे, मैं प्रवर्षणपर ही रहूँगा।

भगवान शकर माता पार्वतीजीको यह कथा सुनाते है—

उमा राम सम हित जग मांहीं। गुरु पितु मातु बंधु प्रभु नांहीं॥
सुर नर मुनि सबकै यह रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती॥

देवी! श्रीरामके समान हित करनेवाला जगतमें कोई नही है। देवता, मनुष्य और मुनि—सबको यही रीति है कि स्वारथके लिए ही सब प्रीति करते है। श्रीरामचन्द्रजीने मित्रताका आदर्श जगतको बताया है।

जे न मित्र दुःख होहिं दुखारी। तिन्हहि बिलोकत पातक भारी॥
निज दुःख गिरि सम रज करि जाना। मित्र के दुख रज मेरु समाना॥

सुग्रीवको किष्किन्धाका राज्य दिया और श्रीराम-लक्ष्मण प्रवर्षण पर्वतके ऊपर पधारे। चातुर्मासमें तुमको भी प्रवर्षण पर्वतके ऊपर जाकर रहना चाहिए। कदाचित तुम

ऐसा कहोगे—महाराज ! हमारा बंगला तो यही पर है। क्या उसको छोडकर वहाँ जाना पडेगा ?

ज्ञान, भक्ति और वैराग्यकी जहाँ वर्षा हो, उसका नाम प्रवर्षण है। जहाँ ज्ञान और भक्ति तथा वैराग्यकी वर्षा बरसती है ऐसी सात्विक भूमि खोज निकालो। जहाँ जानेके पश्चात् भक्ति बढे, सात्विक-भाव जागृत हो ऐसी कोई पवित्र-भूमि खोजकर एकान्त-मे बैठकर ध्यान करो, प्रभुका कीर्तन करो।

चार महीने तक रामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके साथ प्रवर्षण पर्वतपर बिराजे। सुग्रीव-को किष्किन्धाका राज्य मिला। राज्य-सुखमे सुग्रीव इतने फँस गये कि चार महीनेमें एक बार भी वे श्रीरामजीके दर्शन करने नही गये। रामजीकी सहायता करनेके निमित्त दिए गये वचनोको भी भूल गये।

राम काज सुग्रीव बिसारा।

अत्यन्त सुखमे जीव भान भूल जाता है। सुग्रीवको सुखी करनेके लिए प्रभुने महाबलवान बालिको मारा, सुग्रीवको किष्किन्धाका समस्त राज्य दिया। प्रभुने एक पैसा भी लिया नही। श्रीराम तो निष्काम हैं। परन्तु चार महीनेमे एकबार भी सुग्रीवको प्रभु-के दर्शन करनेकी इच्छा नही हुई। परमात्माके पास वे गये नही।

यह जीव दुष्ट है। यह जीव कृतघ्नी है। ईश्वरके उपकारको यह बारम्बार भूल जाता है। जीव जगतके साथ प्रेम करता है, परन्तु यह परमात्माके साथ प्रेम नही करता। प्रभुके उपकारका स्मरण भी नही करता।

प्रभुने हमारे ऊपर बहुत उपकार किये है। भगवानकी बड़ी कृपा है कि हम सब प्रवृत्ति छोडकर आज कथामें बैठे हुए है। हमे श्रीराम-कथा सुननेका सुयोग मिला हुआ है। यह श्रीराम-कृपाका ही फल है।

जीव तो ईश्वरको भूल जाता है। ईश्वरसे विमुख रहता है। परन्तु ईश्वर जीव-को प्रत्येक काममे साथ देता है। श्रीमद्भागवत्‌मे पुरजनकी कथा आती है। इस पुरजन-का अविज्ञात् नामका मित्र था। अविज्ञात् सदैव पुरजनकी गुप्त सहायता किया करता था। यह पुरजन ही जीव और अविज्ञात् ही ईश्वर है। जीव ईश्वरका बिछुडा हुआ अंश है। अंशके प्रति अंशीकी अपार करुणा है और इस कारणसे वह जीवकी प्रत्येक क्षण गुप्त सहायता किया ही करता है।

यह पृथ्वी किसकी है ? मनुष्य परमात्माकी भूमिपर बैठा हुआ है। मनुष्य प्रभु-की पृथ्वीके ऊपर चलता है। मनुष्य परमात्माके दिये हुए जलका पान करता है। परमात्मा-के उपकारोंका स्मरण करो।

तुम सुखमें प्रभुकी भक्ति करोगे तो तुम्हारे घर कभी दुःख नही आवेगा। बहुत-से जीव ऐसे होते हैं कि वे दुःखमें ही भक्ति करते हैं। दुःखमें की गयी भक्ति कच्ची भक्ति है।

एक ही लड़का था। वह बहुत बीमार हो गया। उसे विषमज्वर (टायफाइड) हो गया था। डाक्टरोंने भी जवाब दे दिया। इसलिये उसने ठाकुरजीसे प्रार्थना की। दुःखमें अधिकाश लोग भक्ति करते हैं। सुखमें सबका स्मरण किया जाता है और दुःखमें रामका स्मरण किया जाता है। बालक ठीक हो गया, बडा हुआ। उसका विवाह हुआ और उसके घर पुत्र भी उत्पन्न हुआ। परन्तु जब टायफाइड हुआ था, जब मृत्युकी शय्यापर पड़ा था, तब जैसा भाव भगवानमें था वैसा भाव सुखमें कहाँ रह सका ?

दुःखमें तो सभी ईश्वरकी भक्ति करते हैं। परन्तु दुःखमें जो परमात्माकी भक्ति की जाती है वह भक्ति कच्ची है। सुखमें जो भक्ति करता है उसीकी भक्ति सच्ची है।

भगवान तुमको अधिक सुख देवें तो तुम क्या करोगे ? कितने ही तो आराम कुर्सीपर पडे-पड़े आराम करेंगे कि ठाकुरजीने बहुत सुख दिया है। प्रभुने बहुत कुछ दिया है; बहुत सुख मिले तो अधिक भक्ति करो। आज जगतमें अधिक जीव दुःखी हैं। अपनेको प्रभुने बहुत सुख दिया है। जिसको प्रभुने बहुत सुख दिया है उसको अधिक परोपकार करना चाहिये।

कितने ही ऐसा समझते हैं कि जो हमको मिला है वह हम मौज शौकमें क्यों न खर्च करे ? हम मजा क्यों न उड़ायें ? अरे, परमात्मा क्या मौज शौकके लिए धन देते हैं ? किसी जीवको ईश्वर जब अधिक धन देते हैं तब प्रभु ऐसी अपेक्षा रखते हैं कि मेरे बालकोंकी यह कुछ सेवा करेगा। दूसरोके आँसुओंको पोंछेगा, दूसरोको सुखी करनेके लिए परमात्मा अधिक धन देते हैं।

सुखमें जो भक्ति करता हैं, सुखमें जो परमात्माको साथ रखता है, वह प्रभुकी कृपासे किसी दिन भी दुःखी नहीं होता। दुःखमें जो भगवानको साथ रखता है, परमात्मा उसको दुःख सहन करनेकी शक्ति देते है। दवाखानेमें आपरेशन करना होता है तो उस समय शरीरके जिस स्थान पर चाकू चलाना होता है उस स्थान पर कोई दवा लगायी जाती है। उस दवासे वह अंग सुन्न हो जाता है। उसके पश्चात् चाकू चलाते हैं। चाकू चलाने पर भी दवाके कारण मनुष्यको खबर नही पड़ती कि मेरे शरीर पर कोई शल्यक्रिया हो रही है। एक दवामें जब ऐसी शक्ति है कि शरीरमें शल्यक्रिया होने पर भी दुःख नही होता, तब फिर सर्वशक्तिमान ईश्वर जिसके साथ हो उसे दुःखका अनुभव हो ही किस प्रकार सकता है ?

सुख दुःखमें भगवान्‌को साथ रक्खो। ऐसा अभ्यास डालो कि प्रभुको साथ रखकर ही मैं सुख भोगूं। परमात्माको साथ रखकर जो दुख सहन करता है उसके मनके ऊपर दुखका बहुत असर नही होता।

सन्तोका चरित्र पढोगे तो पता चलेगा कि हमे तो कोई भी दुःख नहीं है। ठाकुरजीने हमे बहुत सुख दिया है। हमे जैसा सुख है वैसा तो किसीको भी नही मिला होगा। तुम तुकाराम महाराजका चरित्र सुनोगे तो पता चल जाएगा कि महाराजको लोगोने बहुत दुख दिया था। दुर्जनका स्वभाव है कि अकारण दूसरोको दुख देते हैं।

तुकाराम महाराजके चरित्रमे लिखा है कि होलीके दिनोमे तुकाराम महाराजके पास एक गधा लेकर दुर्जन लोग आए। उन्होने महाराजसे कहा कि इस गधे पर तुमको बैठाकर हम लोगोको बरघोड़ा (बरात) निकालना है। तुकाराम महाराज शान्ति निष्ठ थे। महाराजनें विचारा कि मै मनाही करूँगा तो भी ये लोग जबरदस्ती करेंगे। इसकी अपेक्षा तो मैं ही प्रेमसे स्वीकृति क्यो न दे दूं। इसलिए महाराजने कहा—बहुत ठीक। मेरा बरघोड़ा निकालनेकी इच्छा है तो भले ही निकालो।

महाराजको गधेके ऊपर बैठाया। दुर्जन क्या नही करते? महाराजको गाँवमें घुमाने लगे। परन्तु महाराजकी शान्ति भंग नहीं हुयी। महाराजकी शान्ति समानरूपसे स्थिर रही। तुकाराम महाराजके चरित्रमें अनेक बार चमत्कार हुए हैं, परन्तु वे सभी चमत्कार प्रभुने किए है। महाराजने कभी एक भी चमत्कार नही किया। महाराज विचारते थे मुझे अपने पुण्यका नाश करना ही नहीं है।

चमत्कार करनेसे बहुत वर्षोंके पुण्योंका नाश हो जाता है। चमत्कार करनेसे बहुतसे लोग पीछे-पीछे फिरने लगते हैं। इसलिए सच्चे सन्त कभी भी चमत्कार करते ही नही। परन्तु तुकाराम महाराजने जोवनमे एकबार चमत्कार किया है। तुकाराम महाराजको गधेके ऊपर बैठाकर जब बरघोडा निकाला तब लोग उनकी पत्नीसे कहने गये कि तुम्हारे पतिका बरघोड़ा है। लोग महाराजकी पत्नीको बाहर ले आए। पत्नीको बहुत दुःख हुआ कि बिना कारण मेरे पतिदेवको लोग पीड़ा देते हैं। वे रोने लगीं। तब तुकाराम महाराज स्मित हास्य करते हुए बोले—तू किस लिए रोती है? यह गधा नही है। यह विट्ठलनाथजीने मेरे लिए गरुड़को भेजा है। मैं गधेके ऊपर नही, गरुड़के ऊपर बैठा हूँ।

जगतको गधा दिखायी दिया, महाराजकी पत्नीको गरुड़ दिखायी पड़ा। उसने देखा कि प्रभुने अपना सुन्दर हार तुकाराम महाराजको पहना दिया है और महाराज गरुड़के ऊपर विराजे हुए हैं।

जीवनमे सुख-दुःखके, मान-अपमानके प्रसग आवें तब घबराना नही। अरे, जगत खोटा है, तो जगतमे मिला हुआ मान भी खोटा है और कदाचित् कोई अपमान करे तो वह भी खोटा है। जगतका जीव मान दे तो उससे राजी होना नहीं। कदाचित् कोई अपमान करे तो नाराज भी होना नहीं। दोनोंसे मान-पत्र प्राप्त करनेकी अपेक्षा मत रक्खो। कारण कि ये स्वार्थसे भरे हुए होंगे, इसलिए वे सत्य नही होगे। आज मान-पत्र देनेवाला कदाचित् कल अपमान भी कर सकता है।

सच्चा मान-पत्र तो अपने मनके द्वारा मिलता है। तुम्हारा मन ही तुमको सच्ची रीतिसे पहचानता है। इसलिए उसके द्वारा दिया हुआ मान-पत्र ही सच्चा है। मनका मान-पत्र तुम्हारे सद्‌गुणोंके लिए ही होगा, स्वार्थके लिए नहीं। मनके पाससे मान-पत्र मिला हुआ होगा तो प्रभुके दरबारमें भी मान बढेगा। जिसको भगवानके दरबारमे मान मिलता है, वह धन्य है। मृत्युके समय जगतका मिला हुआ मान-पत्र साथ जाएगा नहीं। भगवानके दरबारमें जिसे मान मिलता है उसका मान स्थिर रहने वाला है।

मान अपमानमें मनको शान्त रखने वाला ही महान बन सकता है। अपमानका दुःख मनुष्यको तब होता है, जब वह अभिमानमें होता है। जीव दीन होकर ईश्वरके चरणोंमें रहे तो मान-अपमानका असर उसके मनके ऊपर नही होता।

मान-अपमानका असर मनके ऊपर नहीं होने देना चाहिए, बहुत मान मिले तो लाभ नही और कदाचित् कोई बहुत अपमान करे तो नुकसान नही। चाहे जैसा सुख-दुःखका प्रसंग आवे, परमात्माको साथ रखना। हर प्रसंगमें लोग पैसाका पाकिट तो साथ ही रखते हैं ही, पैसाको तुम साथ रखते ही हो, परमात्माको भी साथ रक्खो।

जीवके ऊपर प्रभुने अनंत उपकार किए है। परमात्माके उपकारोंको भूलना नही। जब-जब तुमको फुरसत मिले, तब-तब तुम प्रभुके उपकारोंको याद करो। अपने मनसे तुम प्रश्न पूछो। तुमको जो धन मिला है, तुमको जो मान मिला है, सुख मिला है—वह क्या तुम्हारी योग्यतासे मिला है? तुम क्या बहुत लायक हो? बहुत शान्तिसे विचार करोगे तो अन्दरसे आवाज आएगी कि निश्चय ही मैं लायक तो नही हूं। मनसे बहुत पाप किया है। मैंने जीभसे बहुत पाप किए है।

तुम पुण्यका हिसाब रखते हो, परन्तु पापका हिसाब भी रखते हो क्या? किसी गरीबको कुछ दिया हो उसे मनुष्य याद रखता है। परन्तु आज तक शरीर और इन्द्रिय सुखमें पैसाका जो दुरुपयोग किया है उसका क्या कभी विचार करता है?

जो लोग दान-पुण्य करते हैं वह कुछ बहादुरीका काम नही करते। वे स्वयके लिए खूब रखते हैं और उससे भी अधिक बढ़े तब वे रामजीकी सेवामें खर्च करते हैं।

इनको विश्वास है कि बहुत है अपनेको कुछ कम पड़ेगा नही। ऐसा विश्वास है, इसीलिए निकालते हैं। क्या कोई ऐसा है कि स्वय दुःख सहन करके परोपकारमें—भगवत सेवामे खर्च करे ?

मनुष्य पुण्यका विचार करता है, पापका विचार नही करता। वह पाप बहुत करता है। परन्तु परमात्मा तो अतिशय उदार हैं। बहुत दयालु है। इसके पापको भगवान भूल जाते हैं। भगवान ऐसा विचार करते हैं कि रामायणकी कथा सुनने बैठा है और अब वह मेरा अच्छा चतुर पुत्र बनेगा। अब रोज मेरी भक्ति करेगा, मेरी सेवा करेगा। अब एकादशीका व्रत करेगा। अब एकादशीकी रात्रिमे 'हरे राम, हरे कृष्ण' का कीर्तन करते हुए जागरण करेगा। परन्तु कथा जहाँ समाप्त हुई कि जीव सब भूल जाता है।

एकादशीका दिन बहुत पवित्र है। इस दिन खूब भक्ति करो। इस दिन जरा भी पाप न हो·········। कितने ही लोग तो ऐसा समझते हैं—एकादशीके दिन मंदिरका प्रसादी पानेको मिले उसे खानेमें कुछ बाधा नही। घरका खाना नही खाना चाहिए, परन्तु प्रसादीका पान खाना चाहिए ? किसी जगह ऐसा नही लिखा कि प्रसादी पान खाना चाहिए। एकादशीके दिन किसी भी प्रकारके पान खानेकी मनाही की है। एकादशीके दिन प्रसादी पान मिले उसको स्वीकार द्वादशीके दिन करे, एकादशीके दिन नही।

मनुष्य शास्त्रसे नही पूछता, मनसे ही पूछता है। मनको अच्छा लगे वही धर्म। मन दगाखोर है। मन दुष्ट है। मन खड्ढेमें फेंक देता है। मन विषयोंकी तरफ दौड़ता है, मन अच्छा भोग माँगता है और वह भोग भोगनेके लिए आतुर रहता है। जीवमात्रको सादा, सात्विक, सदाचारी जीवन जीना अच्छा नहीं लगता, विलासी, स्वेच्छाचारी जीवन बिताना अच्छा लगता है। और इसीलिए मन इन्द्रियोके आधीन हो जाता है। मन उसको विषयोंमें फँसाता है, विलासी जीवनकी तरफ दौड़ाता है। जो विलासी जीवन बिताता है उसको ईश्वरके स्वरूपका ज्ञान नही होता। मनके ऊपर विश्वास नही रखना चाहिए शास्त्रमें विश्वास रखना चाहिए।

ये जीव बारंबार पाप करता है, परन्तु परमात्मा तो भूल जाते हैं। जीवके ऊपर अनुग्रह करते हैं कि अब ये सुधरेगा। परन्तु ये दुष्ट-जीव सुधरता नहीं। सुग्रीव बहुत सुखी हुआ और वह सुखमें भगवानको भूल गया।

तुम्हें भक्ति करनी हो तो भगवानसे कहना कि मेरे जीवनमें एकाध, दो तो दुःख मुझको देना। मुझको बहुत सुख मत देना। भागवतमें कथा आती है कि कुन्तीजीने परमात्मासे दुःख माँगा है।

विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो ।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम् ॥

हे नाथ ! हमको पग-पगपर विपत्तियाँ आती रहे, ऐसा मैं तुमसे माँगती हूँ। कारण कि विपत्तिमे हो तुम्हारा स्मरण होता है। स्मरणसे तुम्हारे दर्शन होते हैं और तुम्हारे दर्शन हों तो जन्म-मृत्युके चक्करमें आना नही पड़ता।

यह जीव सब प्रकारसे सुखी हो—यह ठीक नही। एकाध दुःख तो मनुष्यके जीवनमें होना ही चाहिए जिससे दुःखमे इसको विश्वास हो "भगवानके बिना मेरा कोई नही।" सगे सम्बन्धीका प्रेम कपटसे भरा हुआ है, उसकी खबर दुःखमें ही पड़ती है।

जीवनमें दुःख होवे तो ही मनुष्य दीन बनता है। मनुष्य बहुत सुख पचा नहीं सकता। मनुष्यको बहुत सुख मिले तो ये प्रमादी होता है। बहुत सुखमें ये भान भूल जाता है। सब प्रकारसे सुखी हो तो वह भान जल्दी भूलता है, विलासी हो जाता है, अभिमानी हो जाता है, भगवानको भूल जाता है। अनेक प्रकारके दुर्गुण उसमें आ जाते हैं और अन्तमें उसका पतन हो जाता है।

भगवान किसी समय प्रेमभरी दृष्टिसे जीवका आकर्षण करते है, तो किसी समय मनुष्यके जीवनमें दुःखके प्रसंग खड़े करके उसको स्वयंकी तरफ खींचते हैं। जीवके कल्याणके लिए भगवान दुःख खड़ा करते है। कितने ही लोग ऐसा समझते हैं—मैं वैष्णव हूँ, सेवा करता हूँ, गरीबोंका सम्मान करता हूँ। इसलिए मुझे कभी बुखार नहीं आवेगा, मेरा शरीर नहीं बिगड़ेगा, मुझे कोई दुःख नही होगा। ऐसी समझ सत्य नहीं है।

इस जीवको सजा न हो तब तक जीवन नहीं सुधरता। पुस्तकें पढ़नेसे क्या जीवन सुधरता है? आज-कल ज्ञान तो बहुत बढ़ गया है। हाईस्कूलोंमें और कालेजोंमें खूब पढ़ाई होती है। परन्तु जीवन सुधरा हो ऐसा दिखाई नहीं देता। साधारण मनुष्य ज्ञानसे नहीं सुधर पाता। इस पर मार पड़ती है, तभी सुधर पाता है। अनेक बार ऐसा होता है कि अति दुःखमें शान्तिसे बैठकर परमात्माका स्मरण करे, तब इसकी बुद्धिमें वह ज्ञान स्फुरण होता है—जो अनेक ग्रन्थोंके पढ़नेपर इसे नहीं मिल पाता। दुःखमें चतुरता आती है। साधारण मनुष्यको बहुत सुखमें चतुरता आती ही नही। बहुत सुख मिले यह ठीक नहीं।

कितने लोग ऐसी अपेक्षा रखते है कि भगवान बहुत अनुकूलता करके देवे तो बादमें मैं भगवानकी भक्ति करूँ। घरमें जरा भी प्रतिकूलता नहीं होनी चाहिए। सब प्रकारकी अनुकूलता मुझको मिले तो भक्ति हो। सब प्रकारकी अनुकूलता जगतमें किसीको नहीं मिलती और कदाचित् मिले तो वह ईश्वरकी भक्ति नही करता।

जीव जगतमे आता है तब पाप और पुण्य दोनो लेकर आता है। पुण्यका फल सुख है और पापका फल दुख है। ऐसा कोई जीव नही कि जो अकेला पुण्य लेकरके ही आया हो। सब ही पाप और पुण्य—दोनो लेकर आए होते हैं और इस प्रकारसे सबको सुख और दु.ख—दोनो प्राप्त होते हैं। सभी अनुकूलता मुझको मिलनी चाहिए, ऐसी आशा रखनी व्यर्थ है।

अरे, संसारमें जो आया है उसको रोज किसी न किसी प्रकारकी अड़चन रहती ही है। ससाररूपी समुद्रमें तरंग जैसे प्रतिकूल प्रसग तो रोज आवेंगे। किसीको समुद्रमें स्नान करनेको इच्छा हो और वह ऐसा विचार करे कि तरग शान्त होनेके बाद में इसमे स्नान करूँगा—तो ऐसा होना अशक्य है। समुद्र किसी दिन शान्त होता ही नही। समुद्रमे स्नान करना हो तो तरगोका दुख सहन करना ही पडता है। इस संसार समुद्रमे भी अडचनरूपी तरंगे आती ही हैं। जीवनमे एक अड़चन दूर हुई तभी दूसरी खड़ी दीखेगी, दूसरी दूर होगी, तब तीसरी खड़ी रहेगी।

तुम्हारे जीवनमे ऐसा भी प्रसंग आ सकता है कि तुम जिस मनुष्यके साथ अधिक प्रेम करते हो, जिस जीवमें तुम अतिशय विश्वास रखते हो, वह भी किसी दिन तुम्हारे साथ धोखा कर देगा। प्रारब्धके अनुसार जीवका स्वभाव भी बदलता है। तुम्हारा और उसका लेन-देनका सम्बन्ध पूरा होने पर यह जो कुछ करेगा वह तुमको भला नही लगेगा। तुम्हारी इसके प्रति अरुचि हो जाएगी। जिसके लिए तुम बहुत आशापूर्ण रहते हो कि ये मेरे उपयोगमे आवेगा, मेरा काम करेगा, मेरे साथ रहेगा, मेरी भलाईकी बात बोलेगा—ऐसा तुम्हारा स्नेही साधारणसे किसी कारणपर तुम्हारा शत्रु जैसा हो जाएगा।

समउ फिरे रिपु होहिं पिरीते।

शास्त्रमे लिखा है कि जो मित्र नही, वह यदि शत्रु हो जाय तो बाधा नही। परन्तु जो मित्र है वह यदि शत्रु बन जाता है तब बहुत रुलाता है। दुखसे पापका नाश होता है। निश्चय ही ऐसा विश्वास हो जाता है कि ये ससारके सभी जीव स्वार्थी है। आज तक अनेकोके लिए मैंने शरीर घिसाया, भोग दिया, परन्तु मेरे ऊपर दु.खका प्रसंग आया तब किसीने मेरी ओर देखा भी नही।

अनेक बार भगवान ही कृपा करके दुःख देते है। दुखको प्रभुका प्रसाद मानना। संसारके लोग विषय भोगते हैं उसे देखकर यह जीव अधिकांश भागमें ऐसा चिन्तन करता है कि ये श्रीमत लोग क्यों सुख भोगते हैं। अरे, ये श्रीमत लोग जैसा सुख भोगते है ऐसा तो पशु-पक्षी भी भोगते हैं। ऐसा सुख तो तूने अनेक जन्मोमें भोगा है, परन्तु तुझको

शान्ति कहाँ मिली है ? किसी श्रीमन्तको अथवा कोई विलासी गृहस्थको अपना आदर्श मत बनाओ। बहुत सुख मिले यह ठीक नहीं।

सुग्रीवको बहुत सुख प्राप्त हो गया था। वह रामजीके उपकारको भूल गया। वह रामजीके दर्शन करने भी नहीं गया। श्रीरामचन्द्रजीको आश्चर्य हुआ कि यह जीव कितना कृतघ्न है। उपकारको भी भूल जाता है।

श्रीसीता वियोगमें रघुनाथजी व्याकुल हो गये। रामजी लक्ष्मणजीसे कहने लगे— लक्ष्मण ! मेरी सीता कहाँ है ? मुझे आज कोई खबर दे दे तो मैं अभी वहाँ जाकर उसको ले जाने वालेका विनाश करके सीताजीको ले आऊँ।

एक बार कैसेहु सुधि जानौ। कालहु जीति निमिष महुँ आनौ ॥
कतहुँ रहउ जौं जिवति होई। तात जतन कर आनऊँ सोई ॥
सुग्रीवहुँ सुधि मोरि बिसारी। पावा राज कोस पुर नारी ॥

लक्ष्मण सुग्रीवको सुखी करनेको मैंने बालीको मारा परन्तु सुग्रीव उपकारको भूल गया। अब तुम सुग्रीवको सावधान करो। लक्ष्मणजीने कहा—मैं अभी किष्किन्धा जाता हूँ।

इस ओर श्री हनुमानजीने सुग्रीवको सावधान करते हुए कहा—तुम श्रीरामजी-की सेवाको भूल गये हो, यह ठीक नहीं है। राजसम्पत्ति व राजसुख ऐसा ही है। श्री हनुमानजीने बानर सेना को इकट्ठी करनेकी आज्ञा दी।

लक्ष्मणजी किष्किन्धामें आये। लक्ष्मणजीने अत्यन्त क्रोध किया। उस समय तारा समझाने लगी कि—

बहुकालमनाश्वासं दुःखमेवानुभूतवान् ॥
इदानीं बहुदुःखौघादृभवद्भिरभिरक्षितः।
भवत्प्रसादात्सुग्रीवः प्राप्तसौख्यो महामतिः ॥

आज तक सुग्रीवने बहुत दुःख भोगा है। अब आपकी कृपासे इसे सुख मिला है। ये राम-सेवाको भूले नहीं हैं, आप क्षमा करो।

तारा लक्ष्मणजीको समझाकर अन्दर ले गयी। सुग्रीवने स्वीकार किया कि मेरी भूल हुई। यह रामजीकी माया ही ऐसी है कि अच्छे-अच्छोंको भुलावेमें डाल देती है। भूल करे यह साधारण अपराध है। परन्तु भूल कबूल न करे यह बड़ा अपराध है। सुग्रीव-ने भूल कबूल करली।

सुग्रीवने कहा—मैने बड़ी भूल की है। इस राज्य-सुखमें ऐसा फँस गया, ऐसा कामांध, ऐसा मोहांध हो गया कि रामजीको भूल ही गया।

विषय मोर हर लीन्हेउ ज्ञाना।

× × ×

नाथ विषय सम मद कछु नाहीं। मुनि मन मोह करइ छन माहीं॥

× × ×

विषय बस्य सुर नर मुनि स्वामी। मैं पाँवर पसु कपि अति कामी॥

मै अपराधी हूँ। परन्तु यह तो रामजीकी मायाका अमित प्रभाव है। श्रीरामजीकी माया तो ज्ञानी पुरुषोंको भी नचाती है। मै तो साधारण पशु हूँ और उसमें भी बानर जाति तो अत्यन्त कामी होती है। मेरे अपराधको क्षमा करो। मै तुरन्त ही रामजीकी सेवामें चलता हूँ।

सुग्रीवने लक्ष्मणजीकी पूजा की। क्षमा माँगी। फिर बानर सेना समेत सुग्रीव लक्ष्मणजीके साथ रघुनाथजीके पास गये।

(५४)

सीताजीकी खोजमें

दृष्ट्वा राम समासीनं गुहा द्वारि शिलातले ।
चैलाजिनधरं श्यामं जटामौलि विराजितम् ।।
विशाल नयन शान्तं स्मितचारु मुखाम्बुजम् ।
सीता विरह सन्तप्तं पश्यन्तं मृग पक्षिणः ।।

प्रवर्षण पर्वतपर गुफाके द्वारके आगे एक विशाल शिलापर श्रीरघुनाथजी अकेले विराजे हुए थे । सुग्रीवने साष्टाङ्ग वन्दन करके प्रभुसे क्षमा माँगी । परमात्मा जीवका अपराध भूल जाते है । रामजीने सुग्रीवजीको पास बैठाया और कुशल समाचार पूछा ।

सुग्रीवने कहा—नाथ ! आप चिंता मत करो । वानर आ गये हैं । कितने ही दस हाथियोंका बल धारण करनेवाले है तो कितने ही सो हाथीका बल धारण करनेवाले हैं । कितने ही तो हजार हाथियोंका बल धारण करने वाले है । ऐसे महान वीर वानर जो देवताओंके अंशसे उत्पन्न हुए हैं, आपके लिये प्राण त्यागनेको तैयार हैं । आप चिन्ता न करे ।

तत्पश्चात् सुग्रीवने वानरोंको बुलाकर आज्ञा दी—अब तुम सीताजीको ढूंढ़नेके लिये जाओ । एक महीनेकी अवधि देता हूँ । इतने समयमें सीताजीका समाचार लेकर आओ । अवधि बीतनेपर श्रीसीताजीका समाचार लिये बिना जो आवेगा वह मेरे हाथों मारा जावेगा । यह रामजीका काम है ।

देह धरे कर यह फलु भाई । भजिअ राम सब काम बिहाई ।
सोई गुनग्य सोई बड़भागी । जो रघुबीर चरन अनुरागी ।।

रामायणमें इस स्थलपर चारों दिशाओंका बहुत वर्णन आया है । वानरोंके यूथ बनाकर उनको पृथक् पृथक् चारों दिशाओंमें भेजा गया । नल, नील, जामवन्त और हनुमानजीको दक्षिण दिशामें जानेकी आज्ञा दी गई । अंगदजीको कहा गया कि तुम भी इनके साथ जाओ ।

सभीने श्रीरामचन्द्रजीका वन्दन किया और श्रीसीताजीको खोजने निकल पड़े । श्रीरामचन्द्रजी जानते थे कि मेरा कार्य तो हनुमानजी करनेवाले हैं । इसलिये श्रीरामचन्द्रजीने रामनामांकित सुन्दर मुद्रिका हनुमानजीको दी और कहा कि यह काम तुम्हारे हाथसे होनेवाला है ।

अस्मिन् कार्ये प्रमाणं हि त्वमेव कपि सत्तम ।
जानामि सत्वं ते सर्वं गच्छ पंथाः शुभस्तव ॥

श्रीहनुमानजीके द्वारा श्रीसीताजीको संदेश भेजनेमे रामजीने कहा—

तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा । जानत प्रिया एकु मन मोरा ।
सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं । जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं ॥

भले ही मै आँखसे दूर हूँ । परन्तु मै तुम्हारे मनमें हूँ । तुम्हारा मन मेरे पास है । इस रीतिसे रामजीने सीताजीके लिये सन्देश भेजा । वानरोसे कहा—एक महीनेमें तुम जल्दी श्रीसीताजीके दर्शन करके वापिस आ जाओ ।

वानरोंको लेकर श्रीहनुमानजी श्रीसीताजीको खोजनेके लिये दक्षिणमें गये । वे सब विन्ध्याचल पर्वतके ऊपर आये । उस समय वहाँ एक मोटा राक्षस दिखाई दिया । यही रावण है ऐसा समझकर उसे मारनेके लिये दौडे । पश्चात् चलते-चलते जङ्गलोमे दूर निकल गये । कहीं पीनेको पानी नहीं मिलता था । सबको बहुत प्यास लगी हुई थी । हनुमानजी एक वृक्षके ऊपर चढ़े और वहाँसे देखा कि काफी दूर एक सुन्दर गुफा दिखाई दे रही है और अन्दरसे उसमेसे पक्षी आ रहे हैं । हंस पक्षी जहाँ दीखे, समझ लो कि वहाँ जलाशय होना ही चाहिये ।

हनुमानजी समस्त वानरोको इस गुफाके अन्दर ले गये। अन्दर एक अतिशय दिव्य वन था । फलोंके बोझसे वृक्ष झुक गये थे । एक महायोगिनी वहाँ आसनपर बैठकर परमात्माका ध्यान कर रही थी ।

वानरोंको आश्चर्य हुआ । यह कौन हैं ? उन्होंने योगिनीका वन्दन किया । योगिनीने कहा कि तुम खूब प्रेमसे फल खाओ । यह मधु है, इसका पान करो । पीछे मै अपनी कथा तुमको सुनाऊँगी ।

योगिनीने वानरोका सम्मान किया । फिर अपनी कथा सुनाई—मैं भगवान शंकरकी दासी हूँ । शिवजीकी आज्ञासे यहाँ तपश्चर्या करती हूँ । शिवजीने मुझे आज्ञा की हुई है कि रामजीके सेवक यहाँ आवेंगे । उनका तुम स्वागत करना । श्रीरामजीके दर्शन करना । फिर तुम्हारा उद्धार हो जावेगा । इसलिये मै यहाँ बैठकर तप करती हूँ । आज तुम सब आ गये हो । तुम रामजीके सेवक हो, मेरे लिये पूज्य हो । आज रामसेवकोंकी सेवा करनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है । अब मुझे एकबार रामजीके दर्शन करने हैं । यहाँसे अब मै जहाँ रामजी विराजते हैं वहां जाऊँगी । तुम सब आँख बन्द करो जिससे इस गुफाके बाहर दूर समुद्रके किनारे मै तुमको पहुँचा दूँ ।

सब वानरोंने आँखें बन्द कीं। उस योगिनीने सबको समुद्रके किनारे पहुंचा दिया और पीछे स्वयं भी गुफा छोड़कर जहाँ श्रीरामजी विराजते थे, वहाँ चली गयी।

सापि त्यक्त्वा गुहां शीघ्रं ययौ राघव सन्निधिम्।
तत्र रामम् स सुग्रीवं लक्ष्मणं च ददर्श ह॥

योगिनीने श्रीरामचन्द्रजीके पास आकर साष्टांग वंदन किया। श्रीरघुनाथजीका तपस्वी वेष था। रामजीके दर्शन करने पर योगिनीको आनन्द हुआ। रामजीकी स्तुति करते हुए उसने कहा—नाथ! मैं तुम्हारी हूं। तुम्हारे दर्शनोंके लिये मैंने बहुत वर्षोंसे तप किया है। आज वानरोंके दर्शनोंके प्रतापसे, उनकी कृपासे मैं तुम्हारे दर्शन कर सकी हूं। तुम सर्वव्यापक हो; परन्तु मायाके पर्देमें तुमने स्वरूप छुपाया हुआ है और इस कारणसे अज्ञानी जीव तुमको पहिचान नहीं सकते। तुम्हारे दर्शनोंसे मैं कृतार्थ हो गयी। तुम ऐसी कृपा करो कि मेरी जीभसे 'श्रीराम श्रीराम श्रीराम' ऐसा सतत जप होता रहे।

परमात्माके नाममें निष्ठा होनी कठिन है। पूर्व जन्मोंके पापोंके कारण इस जीवकी प्रभुके नाममें प्रीति नहीं हो पाती। नाम स्मरण करते करते जबान भटक जाती है। इस जबानसे पाप बहुत होते हैं और इस कारणसे वह जप नहीं कर सकती। पाप जबानको पकड़े रखता है। प्रतिक्षण भगवानका नाम लो। यह अति सुलभ है। फिर भी यह हो नहीं पाता। नाममें दृढ़ निष्ठा रखो।

जबानसे सतत जप हो तो जबान सुधरे और मन भी सुधरे। जबान न सुधरे तब तक जीवन सुधरता नहीं। मन न सुधरे तब तक भक्तिमें आनन्द आता नहीं। नाममें निष्ठा हो तो नामीका ईश्वरका स्मरण करते-करते जीवन सुधरता है। इस कलियुगमें नाम निष्ठाके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं।

सगुण-निर्गुण ब्रह्मकी अपेक्षा भी नाम ब्रह्म श्रेष्ठ है। तुलसीदासजी कहते हैं—

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा, अकथ अगाध अनादि अनूपा।
मोरे मत बड़ नाम दुहूँ ते, किये जेहि जुग निज बस निज बूतें॥

नाम जपकी महिमा अनूठी है। वेदान्त समझना मुश्किल है और समझमें आने पर भी अनुभव करना बहुत कठिन है। दुःख शरीरको होता है। आत्मा तो केवल द्रष्टा है। मुझे सुख अथवा दुःख कुछ नहीं है। मैं तो आनन्दरूप हूं। ऐसा बोलना-समझना सरल है, परन्तु इस सिद्धान्तका अनुभव करना कठिन है; जबकि नाम-स्मरण अत्यन्त ही सरल है। जीभको अपने आधीन रखो तो प्रभुके नामका जप करना सरल है। और भगवानका नाम भी अति सुलभ है। जप बिना जीवन सुधरता नहीं। नाम ब्रह्मकी उपासना न करे तब तक मन शुद्ध होता नहीं।

घरमें एक ही दीपक हो लोग उस दीपकको देहरी पर रखते है। देहरीके ऊपर दीपक रखनेसे अन्दर भी उजाला होता है और बाहर भी उजाला होता है। तुम्हारे अन्दर स्थिर रूपसे उजाला रहे ऐसी इच्छा हो तो जीभ रूपी देहरी पर श्रीरामनाम रूपी दीपक रखो। इस दीपकसे तुम्हारे अन्दर और बाहर उजाला रहेगा।

राम नाम मणि दीप धरु, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरेहु, जो चाहसि उजियार॥

यह शरीर ही घर है। शरीर घरके अन्दर जीभ ही देहरी है। इस देहरी पर रामनाम रूपी दीपक रखो।

ठाकुरजीको दीपककी आवश्यकता नही है। भगवान तो स्वय प्रकाश है। दीपक जलानेसे अथवा आरती उतारनेसे भगवानके घर प्रकाश नही होना है। उसका प्रकाश तो तुम्हारे हृदयमे ही होगा। मनुष्यके मनमे अँधेरा है। वासना हो अधकार है। कपट यह अधकार है। स्वार्थ यह अधकार है। प्रभुके पास दीपक जलाओगे तो तुम्हारे हृदयमे उजाला होगा। अत करणमें उजाला करना है।

प्रभुके पास जब दीपक जलाओ तब भगवानसे कहना चाहिये कि मेरे अन्दर अन्धकार है। आप ऐसी कृपा करो कि मेरे अन्दर स्थिर रूपसे प्रकाश रहे। दीपक की आवश्यकता तो मुझे अधिक है। आपको दीपककी आवश्यकता नही। आप तो स्वय प्रकाश हो।

ईश्वरका अग स्वय प्रकाश है। भागवतके दशम् स्कन्धमे कथा आती है कि एक बार गोपियाँ यशोदाजीसे फरियाद करने गईं कि कन्हैया हमारा माखन खा जाता है। यशोदा माँ ने कहा कि तुम अँधेरेमें माखन रखो तो कन्हैयाको दिखाई नही पडेगा। तब गोपियोने कहा—माँ! हमने माखन अँधेरेमे ही रखा था। परन्तु कन्हैयाके आते ही उजाला हो जाता है। इसका श्रीअग दीपक जैसा है, तेजोमय है। ईश्वर परकाश्य नहीं। वह तो स्वयप्रकाश्य हैं। स्वयं-प्रकाश है। परमात्माको दीपककी आवश्कता नही, दीपककी आवश्यकता मनुष्यको है।

मनुष्य मूर्ख नही, परन्तु मनुष्य स्थिर रूपसे चतुर भी नही। यह किस समय पाप कर बैठे यह कहा नही जा सकता। अन्दर सदैव प्रकाश रहे ऐसी इच्छा हो तो जीभ रूपी देहरी पर श्रीरामरूपी दीपक रखो। योगिनीने परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—

त्वद्भक्तेषु सदा संगो भूयान्मे प्राकृतेषु न।
जिह्वा मे राम रामेति भक्त्या वदतु सर्वदा॥

विलासी लोगोंका मुझे कुसंग प्राप्त न हो, आपके भक्तोंका संग प्राप्त हो। जिसकी आपके नाममें प्रीति है, ऐसे वैष्णवोंका सत्सङ्ग मिले। मेरी जीभ सतत 'श्रीराम, श्रीराम' का जप करती रहे।

जीभसे जप करनेमें एक पैसेका भी खर्च नहीं होता। शरीरको तनिक-सी भी कठिनाई नहीं। फिर भी जीभसे जप करना सरल नहीं, बहुत ही कठिन है। मनुष्य जीभसे जप कर सकता नहीं। प्रभुने इसे घना समय दिया है। परन्तु अतिशय पाप किये है वे पाप जीभको पकडे रहते है। पापोंको ऐसा लगता है कि जीभ बहुत जप करेगी तो हमारा नाश हो जायगा। इसलिये पाप उसे जप करनेसे रोकते हैं।

इस जीभको समझाओगे तब यह धीरे-धीरे सुधरेगी। जीभको कहो कि तुझे पेड़ा, बरफी खानेकी इच्छा हो तो मैं बाजारमें जाकर ले आता हूँ और तुझे खिलाता हूँ। तू जो माँगे वही तुझे देनेको तैयार हूँ। परन्तु मैं तुझे रोज कहता हूँ कि श्रीरामका, श्रीकृष्ण नामका जप किया कर। परन्तु मेरा कहा तू मानती नहीं। मैं अनेकबार तुझे प्रेमसे समझाकर कहता हूँ। अब तू नहीं मानेगी तो मुझे तेरे लिये सजा करनी पड़ेगी।

तुम्हारे गाँवमें कहीपर नीमका पेड़ होगा। नीमके थोड़े पत्ते ले आओ। उनको कूटकर रस निकाल लो और बारह एक बजे खूब भूख लगे, उस समय जीभको यह रस पिलादो। लूली (जीभ) थू···थू···थू··· करने लगेगी। कहेगी 'यह क्या ?' तब उससे कहना कि तू कड़वा बहुत बोलती है। तू प्रभुके नामका जप नहीं करती। इसलिए तेरे लिये यह सजा है। पाँच-दस बार जिह्वाको यह नीमका रस पिलाओगे तो यह बिचारी ठिकाने आ जावेगी।

तुम्हारी जीभको तुम्हीं नहीं सुधारोगे, तुम अंकुशमें नहीं रक्खोगे, तो दूसरा कौन सुधारेगा, दूसरा कौन अंकुशमें रखेगा ? खूब ध्यानमें रखो—प्रभुने देखनेके लिये दो आँखे दी है सुननेके लिये कान भी दो दिये हैं, श्वास लेनेके लिये दो नथुने दिये हैं। एक आँखसे भी मनुष्य देख सकता है, एक कानसे भी सुन सकता है, एक नथुनेसे भी श्वास पूरा ले सकता है; फिर भी प्रभुने दो आँख, दो कान, दो नथुने दिये हैं। परन्तु प्रभुने दो काम करनेके लिये जीभ केवल एक ही दी है। जीभको दो काम है एक खानेका और दूसरा बोलने का।

एक आदमीने रामजीसे कहा कि महाराज ! आपने इस सृष्टिकी रचनाकी तब किसीसे कुछ पूछा नहीं; अपने मनमें आया, वैसी ही सृष्टिकी उत्पत्ति आपने करदी। देखनेके लिये मनुष्यको दो आँख दी, सुननेके लिये दो कान दिये। इसी प्रकार बोलनेके लिये और खानेके लिये उसी प्रकार दो जीभ बनायी होतीं तो बहुत अच्छा होता।

प्रभुने कहा—एक बनायी है तो सारे जगतमे प्रलय होती है। एक जीभ ही अनर्थ कर डालती है। दो जीभ होनेपर तो सर्वनाश हो जाता। जीभका विवेकसे उपभोग करो। पशु-पक्षी भगवानके नामका जप कर नही सकते। केवल मनुष्यकी जीभमें ही प्रभुने यह शक्ति स्थापित की है। मनुष्य राम नामका जप कर सकता है।

योगिनीने श्रीरामजीसे कहा—आप ऐसी कृपा करो कि मैं आपके नामका सतत जप करती रहूँ। ज्ञानी होना सरल है, योगी होना सरल है, परन्तु जीभसे प्रभुके नामका जप करना बहुत कठिन है। जप करनेमे जीभको कन्टाला लगता है, कठिनाई होती है। परन्तु सिद्धि जपसे ही मिलती है।

अत्यन्त पापीको भी निराश होने की आवश्यकता नही है। पापी ऐसा विचार न करे कि मेरे अन्दर तो नाम लेने योग्य आवश्यक शुद्धि नही, इसलिये राम नाम लेनेमे फायदा नही है। अरे, हरेक प्रकारकी शुद्धि प्राप्त करनेके लिये राम नाम रटना ही एक उपाय है। अति पापी होनेपर भी प्रभुकी शरण जावे तो उसका उद्धार हो जाता है। श्रीरामचन्द्रजीने कहा है—

> कोटि विप्र बध लागहिं जाहू। आये शरण तजहुँ नहिं ताहू।
> सनमुख होहि जीव मोहि जबहि। जन्म कोटि अघ नासहि तबहि॥

पाप करनेका खूब पछतावा होता है तो पाप भस्म होते हैं। भगवानके नामका जप पापोंको भस्म करता है। जप विना जीवन सुधरना नही। जपसे ही ब्रह्म-सम्बन्ध होता है। भगवानका प्रेमसे जो स्मरण करता है, भगवानके नामका जो जप करता है, उसके पीछे-पीछे भगवान चलते हैं।

जीव ईश्वरसे बिछुड गया है। जीवको परमात्माके साथ परिणय करना है। प्रभुके नाममें यदि जीव तन्मय हो जाये तो ईश्वरके साथ इसका सम्बन्ध हो जाये। व्यवहारमें भी कायदा है कि वेविशाल होनेके पश्चात् ही लग्न होती है। वेविशाल न हो तब तक लग्न नही होती। वेविशालका मतलब होता है 'शब्द सम्बन्ध।' 'अपनी कन्या तुम्हारे घर देते हैं। अर्थात् इस शब्दसे पहले सम्बन्ध होता है। पीछे विवाह होता है। परमात्माके साथ परिणय करना है, तो प्रभुके साथ पहले शब्द-सम्बन्ध जोडना पड़ेगा, प्रभुके नाममें तन्मय होना ही पड़ेगा, दूसरा कोई उपाय नहीं है।

कितने ही लोग ऐसा समझते हैं कि हम 'मनसे जप करते हैं। अरे मनसे जप थोड़े समय ही हो पाता है और पीछे मन उचट जाता है, मन धोखा देता है। अपनी जीभको ऐसी आदत डालो कि वह 'श्रीराम श्रीराम' 'श्रीकृष्ण श्रीकृष्ण' का निरन्तर जप

करे। जगतमें जिन महापुरुषोंको परमात्माका दर्शन हुआ है उन सभी महापुरुषोंने परमात्माके साथ खूब प्रेम किया है।

अरे ! भगवान कहीं दिखाई देते हैं ? भगवान प्रत्यक्ष दिखाई नही देते। इसलिये उस प्रभुकी भक्ति करना बहुत कठिन है। भगवानकी तो यह भावना रखनी पड़ती है कि यह ठाकुरजी है। शास्त्रोमें तो ऐसा लिखा है कि ईश्वर मूर्ति नही है। ईश्वरको मूर्त्ति समझे तो ईश्वरका अपमान है। क्या ईश्वर मूर्त्ति है ? ईश्वरका अर्थ होता है कि जो सर्वशक्तिमान है, जो सबका आधार है। ईश्वर मूर्त्ति नही; मूर्त्ति ईश्वर है। मूर्त्ति पूजामें अलौकिक तत्व है। मूर्ति पूजा सरल नही। जो सर्वव्यापक है उसे एक ही में देखना होता है। मूर्त्तिमें ईश्वरका भाव रखना होता है। मूर्त्ति ईश्वर हो सकती है।

परमात्माके प्रत्यक्ष दर्शन हो जावें तो कदाचित कोई प्रभुके साथ प्रेम कर सके। परन्तु भगवानके प्रत्यक्ष दर्शन होते नही। वहाँ तो भावना रखनी पड़ती है। परमात्माका रूप दिखाई नही देता, प्रभुका नाम दीख पड़ता है, अनुभव होता है।

परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीने योगिनीको आज्ञा दी कि यहाँसे बद्रिकाश्रम जाओ। तुम्हारा जीवन वहाँ नारायणके दर्शन ध्यानसे परिपूर्ण होगा जिससे मेरे धामको प्राप्त करोगी।

बद्रिकाश्रम अति दिव्य भूमि है, तपोभूमि है। जिसको लोग बद्रिकाश्रम कहते है उसका मूल नाम विशाल क्षेत्र है। विशाल राजाने वहाँ तपश्चर्या की थी, इसलिये उसे विशालाक्षेत्र कहते हैं। विशाल राजाको वहाँ प्रभुने जब उनसे वरदान मांगनेको कहा तब राजाने कहा—नाथ ! मैं तुम्हारा सतत् दर्शन करता रहूँ यह वरदान दीजिये। प्रभु प्रसन्न हुए और अन्य अधिक कुछ मांगनेको कहा राजाने कहा—हजारों वर्षों तक मैंने तपश्चर्या की तब आपके दर्शन हुए है। परन्तु प्रभु ! ऐसी परीक्षा सबकी मत करना। इस क्षेत्रमें मैंने तप किया है। यहाँ जो कोई तप करे उसे तुरन्त आपके दर्शन हो जाया करें। प्रभुने कहा—तथाऽस्तु बद्रिकाश्रमकी ऐसी महिमा है।

भारतके प्रधान देव नारायण । सब हैं अवतारोंकी समाप्ति होती है, इन नारायणकी समाप्ति नहीं होती और होनी भी नही है। भारतकी प्रजाका कल्याण करनेके लिये नारायण आज भी तपश्चर्या करते हैं। बद्रीनारायण तप ध्यानका आदर्श जगतको बतलाते है। वे बतलाते है कि मैं ईश्वर हूँ, फिर भी ध्यान तप करता हूँ। तपश्चर्याके विना शान्ति नहीं मिलती।

पीछे फिर शंकराचार्य महाराजने बद्रिकाश्रममें बद्रीनारायण भगवानकी स्थापना की है। शंकराचार्यजीने नर-नारायणके दर्शन किये। शंकराचाय तो महान योगी थे।

उन्होने भगवानसे कहा—मैंने तो आपके दर्शन किए परन्तु कलियुगके भोगी मनुष्य भी आपके दर्शन कर सकें ऐसी कृपा करो।

भगवानने तब शकराचार्यको आदेश दिया कि बद्रीनारायणमें नारायणकुण्ड है, उसमे स्नान करो। वहाँसे तुमको मेरी जो मूर्त्ति मिले उसकी स्थापना करो। मेरी मूर्त्तिका जो दर्शन करेंगे उनको मेरे प्रत्यक्ष दर्शन करने जितना फल मिलेगा। उसीके अनुसार श्रीशंकराचार्यजीने बद्रीनारायण भगवानकी स्थापनाकी है। जो जाय बद्री, उसकी काया सुधरी। बद्री क्षेत्रका भारतमें अखण्ड महत्व रहा है।

श्रुत्वा रघूत्तमवचोऽमृत सार कल्पं गत्वा तदैव बदरीतरुखण्डजुष्टम्।
तीर्थं तदा रघुपति मनसा स्मरन्ती त्यक्त्वा कलेवरमवाप पर पदं सा ॥

श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञ के अनुसार योगिनी बद्रीनारायणाश्रममें जाकर आदि-नारायण परमात्माका आराधन करके कृतार्थ हुई और परमधामको प्राप्त हो गई।

इस ओर समुद्र किनारे पहुँचे हुए वानर विचारमे पडे कि इतना बड़ा समुद्र किस प्रकार पार किया जायगा? इतने ही मे समुद्रके किनारे रहने वाले सम्पातीसे इनकी भेट हुई। सम्पाती वानरोको मारनेके लिये तैयार हुआ तब अगद बोले कि गृद्धराज जटायुने तो राम सेवाके लिये प्राणो तकका त्याग किया। हम तो रामजीकी सेवा करनेके लिये आये हुए हैं और यह तो हमको मारनेके लिये तैयार हो रहा है।

सम्पाती जटायुका भाई था। सम्पातीने कहा—मेरे भाईका तुम नाम ले रहे हो? मेरा भाई कहाँ है? वानरोने सम्पातीको सब कथा सुनायी। उसको सुनकर सम्पाती-ने कहा—मैं अतिशय वृद्ध हो गया हूँ। मैं तुम्हारी मदद तो नही कर सकता परन्तु मुझे दीख रहा है कि लकामे अशोक वनमे सीताजी विराजी हुई है। यहाँसे सौ योजन दूर, समुद्रके बीचमें, चित्रकूट पर्वतके ऊपर लका नामकी नगरी है। वहाँ सीताजी विराजी हुई हैं। तुममेंसे जो कोई इस सौ योजनके समुद्रको लाँघ सके, वह वहाँपर श्रीसीताजीसे मिल-कर वापिस आ सकता है। अब तुम सब मनमे विचार करो कि तुममेंसे कौन ऐसा शक्ति-शाली है।

यन्नामस्मृति मात्रतोऽपरमितं संसार वारांनिधिम्
तीर्त्वा गच्छति दुर्जनोऽपि परमं विष्णोः पदम् शाश्वतम्।
तस्यैवस्थिति कारिणश्चि जगतां रामस्य भक्ताः प्रिया
यूयं किं न समुद्रमात्रतरणं शक्ताः कथं वानराः ॥

हे वानरो ! जिनके नाम स्मरणमात्रसे अतिदुर्जन मनुष्य भी इस अपार संसार-सागरको पार करके परमपद प्राप्त कर लेता है. उन श्रीरामके तुम तो प्रिय भक्तजन हो। फिर तुमको इस क्षुद्र समुद्रको पार करनेमें क्या कठिनाई हो सकती है ?

ऐसा कहकर सम्पाती वहाँसे चला गया। पीछे वानरोंकी सभा जुड़ी। अंगदने पूछा कि तुममेंसे कौन ऐसा शक्तिशाली है जो सौ योजनके समुद्रको पार कर सके ? सभी सेनापति चुप रहे। किसीने कहा—मैं दस योजन पार कर सकता हूँ। किसीने बारह योजनकी बात कही। किसीने कुछ और अधिक जानेको कही। परन्तु सौ योजन पार करनेकी शक्ति तो कोई भी नही बतला सका।

अगदलालने कहा—मैं सौ योजन समुद्र पार तो कर जाऊँगा, परन्तु वापस फिर आ सकूँगा क्या ? यह निश्चितरूपसे नही कह सकता। जब सभी वानर हताश होकर बैठ गये तब जाम्बवानने अंगदलालसे कहा—बेटा ! अपने बीचमें एक ऐसा वीर पुरुष है, जो इस कार्यको सरलतासे कर सकता है। ऐसा कहकर जाम्बवानजी हनुमानजीकी ओर मुड़े और बोले—

कहइ रीछपति सुनु हनुमाना। का चुप साधि रहेउ बलवाना।
पवन तनय बल पवन समाना। बुधि बिबेक बिग्यान निधाना॥
कवन सो काज कठिन जगमाँहीं। जो नहिं होइ तात तोहि पाहीं॥
राम काज लगि तव अवतारा। ....

अरे वीर हनुमान ! तुम चुप क्यों बैठे हो ? तुम तो वायुपुत्र हो; पवनके समान ही बलवान हो। अत्यन्त ही बुद्धिशाली हो, विवेकी हो, ज्ञानी हो। इस पृथ्वीपर ऐसा कौन-सा काम है जो तुम्हारे लिये साध्य न हो ? रामजीके कार्यके लिये ही तो तुम्हारा जन्म हुआ है। जिस समय तुम्हारा जन्म हुआ था, उसी समय तुम सूर्यको फल समझकर खानेके लिये दौड़े। तुम्हारे पराक्रमका वर्णन कौन कर सकता है ? जल्दी उठो। तुम्हारा कार्य करनेका यही समय आया है।

अतस्त्वद् बल माहात्म्यं को वा शक्नोति वर्णितुम।
उत्तिष्ठ कुरु रामस्य कार्य्यं नः पाहि सुव्रत॥

जाम्बवानके वचन सुनकर हनुमानजीको आवेश आ गया। देव बननेकी और दूसरोंको देव बनाने की शक्ति आत्मामें है। परन्तु आत्म-शक्तिको जाग्रत करनेकी आवश्यकता है। हनुमानजी समर्थ थे, परन्तु जाम्बवानने उनको स्वरूपका ज्ञान कराया तब उनको आत्म-शक्तिका ज्ञान हुआ। आत्म-शक्ति सत्सङ्गसे जाग्रत होती है। सत्सङ्गके बिना जीवनमें दिव्यता नही आती।

हनुमानजीने आवेशमें आकर जाम्बवानसे कहा—बोलो तुम्हारी क्या इच्छा है? तुम्हारी इच्छा हो तो लंकाके साथ रावणको उठाकर समुद्रमें डुबो दूं। जाम्बवानने यह आवेश देखा। उन्होंने हनुमानजीसे कहा—जल्दबाजीमें काम करना नहीं। लंकाको समुद्रमें डुबा दोगे तो फिर जानकीजी भी समुद्रमें डूब जायेगी। तुम तो श्रीसीताजी कहां बैठी हुई है इसका समाचार लेकर वापस आ जाओ।

श्रीहनुमानजी सौ योजनके विशाल समुद्रको लाँघ जानेको तैयार हुए। 'सीताराम, सीताराम, सीताराम' का सतत जप करते रहते थे। रामजीकी अलौकिक शक्ति श्रीहनुमानजीको प्राप्त हो गई।

यद् तत् विशुद्धानुभव मात्र मेकं
स्वतेजसा ध्वस्त गुण व्यवस्थम्।
प्रत्यक् प्रशान्तं सुधियोपलम्भनम्
ह्यनामरूपं निरहं प्रपद्ये॥

शांतं शाश्वतमप्रमेयमनघं निर्वाणशान्तिप्रदं
ब्रह्माशम्भुफणीन्द्रसेव्यमनिशं वेदान्तवेद्यं विभुम् ।
रामाख्यं जगदीश्वरं सुरगुरुं मायामनुष्यं हरिं
वन्देहं करुणाकरं रघुवरं भूपालचूड़ामणिम् ॥

(५५)

हनुमानजीकी कुदान

ततः कपीनामृषभेण चोदितः
प्रतीतवेगः पवनात्मजः कपिः ।
प्रहर्षयंस्ता हरिवीरवाहिनीं
चकार रुपं महदात्मनस्तदा ॥

श्रीहनुमानजीने अपने साथी बन्दरोंसे कहा—कि तुम सब यही विराजे रहो। रामजीका बाण जिस वेगसे दौड़ता है उसी वेग से दौड़ता हुआ मैं लंका जाता हूँ। तुम सब मुझे देखो। मैं श्रीसीता माँके दर्शन करके, कार्य परिपूर्ण करके जल्दी वापस आता हूँ।

वानरोंका आशीर्वाद प्राप्त करके श्रीहनुमानजी पासके महेन्द्र पर्वतके ऊपर चढ़े। वहाँ उन्होंने श्रीरघुनाथजीका खूब स्मरण किया।

बार बार रघुवीर सँभारी, तरकेउ पवन तनय बल भारी।
जेहि गिरि चरन देइ हनुमन्ता, चलेउ सो गा पाताल तुरन्ता ॥

श्रीरामनामका जप करते हुए श्रीहनुमानजी तन्मय हो गये। उन्होंने अलौकिक भयंकर स्वरूप धारण किया, और दोनों हाथ लम्बे करके......सियावर रामचन्द्रकी जय......हनुमानजीने जोरसे कुदान लगाई। जिस पर्वत शिखरके ऊपर पग रख कर श्रीहनुमानजीने कुदान लागायी वह पर्वत पाताल में चला गया। घने वृक्ष गिर गये। देवता गंधर्व व्याकुल हो गये। ऋषि भी घबरा गये कि यह क्या हुआ? हनुमानजीका वेग कोई सहन नही कर सका। आकाश मार्गसे हनुमानजी महाराजने प्रयाण किया वानर उनके दर्शन करते रहे। परमानन्द हुआ।

हनुमानजी महाराज विचार करने लगे आज मुझे कृतार्थ होना है। आज मुझे श्रीसीता माँ का दर्शन प्राप्त होगा। श्रीरामचन्द्रजीके मंगलमय नामका जो आश्रय लेते हैं

संसार सागरसे तर जाते हैं। जब कि यह समुद्र क्षुद्र है। सौ योजन विशाल समुद्रको मैं फलांग जाऊँ इसमें क्या आश्चर्य है ?

हनुमानजी महाराज जब समुद्र फलांग कर जाने लगे तो देवताओने सुरसाको आज्ञा दी कि-यह हनुमानजी जा रहे हैं, इसलिये इनकी परीक्षा करो। ये बलावान तो है, परन्तु बुद्धिमान हैं या नही ?

बल और बुद्धि जिसमे एकत्रित होते हैं वही समुद्रको फलांग सकता है। कितनों हो में बल तो होता है परन्तु बुद्धि नही होती। जबकि कितनो ही मे बुद्धि तो होती है परन्तु बलका अभाव होता है।

हनुमानजीमे अतिशय शक्ति है और बुद्धि भी दिव्य है। शक्ति और बुद्धि-इन दोनोका समन्वय हनुमानजी मे है। हनुमानजो जैसा कोई बुद्धिमान हुआ नही और बलवान भी हुआ नही।

देवताओंको आज्ञासे सुरसा श्रीहनुमानजी की परीक्षा करनेके लिये आई। वह आकाश मार्गसे आकर बीचमे खड़ी रही। उसने हनुमानजीसे कहा—हे वानर ! ब्रह्माजी-का वरदान मिला हुआ है उसके अनुसार इस मार्गसे जो जाता है उसे मैं पेटमे उतार लेती हूं, खा जाती हूँ बहुत दिनोमे मुझे भूख लगी है। तू मेरे पेटमें आ जा।

हनुमानजीने हाथजोड़ कर कहा—

राम काजु करि फिरि मैं आवौं, सीता कँह सुधि प्रभुहि सुनावौं।
तब तव वदन पैठिहउ आई, सत्य कहँउ मोहि जान दे माई ॥

माँ ! मैं वन्दन करता हूँ। इस समय मैं रामजीका काम करने जा रहा हूँ। इस राम सेवाको परिपूर्ण करके पीछे मैं तुम्हारे पेटमे आ जाऊँगा। इस समय तो तुम मुझे जाने दो।

सुरसा ने कहा—यह कुछ नही चलेगा। मुझे ब्रह्माजीका वरदान है। वरदान मिथ्या नही होता।

हनुमानजीने सुरसा की अपेक्षा स्वरूप बहुत बढाया पाँच योजन विशाल स्वरूप प्रगट किया। फिर सुरसाने दस योजन विशाल मुँख फैलाया। हनुमानजीने बढते बढते पचास योजन तक विशाल स्वरूप धारण किया, तब सुरसाने सौ योजन विशाल मुख कर लिया। तो हनुमानजीने अतिसूक्ष्म बनकर अचानक इतने वेगसे सुरसाके पेटमें प्रवेश किया कि सुरसा जब तक मुँह बन्द करे उससे पहले ही अन्दर जाकर हनुमानजी बाहर भी निकल आये। हनुमानजी की बुद्धिसे सुरसा प्रसन्न हो गयी।

सुरसा बोली—बेटा ! तू बहुत बुद्धिमान है। तू रामजीका काम कर सकेगा। तेरी जयजयकार होगी।

गच्छ साधय रामस्य कार्यं बुद्धिमतां वर ॥

ससार समुद्रका जो पार करता है उसे सुरसा मिलती है। संसार समुद्र पार करके सामनेके किनारे लकामें पराभक्ति श्रीसीता माँ के जिसे दर्शन होते हैं, ऐसे एक हनुमानजी ही हैं। दूसरा कोई फलांग सका नही। हनुमानजीके पास ब्रह्मचर्यका बल है।

आंखसे, कानसे, जीभसे, अथवा कोई भी इन्द्रियसे ब्रह्मचर्यका भंग नही होना चाहिये। और इसीलिये ऋषि मुनियोंने अपने लिये विशेष नियम बनाया है—

ग्राम्यगीतं न श्रृणुयात्

श्रृंगारके गीत सुनना नहीं। श्रृंगारके चित्र देखना नही। रसनाको लाड लड़ाना नही।

जिसे संयम रखना है वह कानसे भी ब्रह्मचर्यका पालन करे। यह काम ऐसा भयंकर है कि अनेक बार यह कानमें होकर अन्दर घुस जाता है। श्रृंगारके गीत सुने, कोई खराब शब्द सुने, तो कर्ण द्वारा काम अन्दर आ जाता है। कोई खराब चित्र देखे तो आँखमे होकर काम अन्दर आ जाता है।

हनुमानजीने प्रत्येक इन्द्रियसे ब्रह्मचर्यका निरन्तर पालन किया है, इससे हनुमानजी की शक्ति दिव्य है। ये ही समुद्र फलाँग सकते है। दूसरा कोई समुद्र फलांग सकता नहीं।

हनुमानजीके पास रामनामका भी बल है। ब्रह्मचयका बल और रामनामका बल ये दोनो बल हों तो संसार समुद्रको लांघ कर श्रीसीता माँ के दर्शन किये जा सकते हैं। परन्तु संसार समुद्रको लाँघते समय सुरसा विघ्न करती है।

नये नये रस मांगे वही सुरसा है। जीभ नया नया रस माँगती है। जीभ यही सुरसा है। भक्ति यह अलौकिक रस है। परन्तु लौकिक रसमे जिसकी जीभ और मन फँसा हुआ होता है उसे भक्ति रस नही मिलता। प्रेम रस नही मिलता। लौकिक रस कड़ुवा होता है। प्रेम रस ही मधुर होता है। साहित्य शास्त्रमे नव रस बताये गये हैं। भक्ति मार्गमें एक दसवाँ रस और बताया गया है, प्रेम रस। प्रेम रस सबसे श्रेष्ठ रस है। इस प्रेम रसका स्वाद जिसने चाखा है उसे जगतके अन्य स्वाद फीके लगते हैं। जगतके सब रस कड़वाहटसे भरे हुए हैं। आरम्भमें इनमे मिठास लगता है परन्तु पीछे फिर विश्वास होता है कि इनमें मिठास नही है। जगतके सभी रसोंमें कड़वाहट ही अधिक है,

मिठास वहुत ही कम है। एक भक्ति रस ही ऐसा है कि जिसमे पूर्ण मिठास रहता है। प्रेम रस अति मधुर है।

कितने ही लोग भक्तिके वहाने इन्द्रियोका लाड़ करते हैं। भक्ति मार्गमें विलासी लोगोका सग होनेसे भक्ति छिन्न भिन्न होती है। तुम जितेन्द्रिय वनोगे तो भक्ति कर सकते हो। भक्तिके नाम पर जिह्वा पर लाड़ न लड़ाओ। जिह्वा जो मांगती है उसको देनेसे शान्ति नही मिलती। जीभको समझानेसे ही शान्ति मिलती है। आज तक कितने प्रकारके भोजन किये ? लौकिक रस तो जीभ अनेक जन्मोसे अनुभव करती रही है इसको तृप्ति कहाँ मिली है ?

लौकिक रसमे जिसका मन फँसा हुआ है वह भक्ति कैसे कर सकता है ?

कितने ही लोग ऐसे होते है कि द्वादशीका सव कार्यक्रम एकादशीके दिन ही पक्का कर लेते है। आने वाले कलको क्या भोजन वनेगा ? एकादशी की रात पूरी होकर द्वादशीका सूर्योदय हो जाये, उसके वाद ही उसका विचार करो। एकादशीके दिन अन्नका स्मरण करे उसका व्रत भंग हो जाता है। उस दिन अन्नका स्मरण भी नही होना चाहिये। एकादशीका दिन अति पवित्र होता है। पच ज्ञानेन्द्रिय, पंच कर्मेन्द्रिय, और ग्यारहवाँ मन—इन ग्यारह इन्द्रियोसे सतत भक्ति करनेका पवित्र दिन, उसे एकादशी कहते हैं। वाकी आजकल तो लोग एकादशीमे ग्यारह विषय रसोको स्थान देते है। ऐसी एकादशी करनेसे कोई फल मिलता नही। ग्यारहो इन्द्रियोको भक्ति रस दो।

एकादशीके दिन हो सके तो प्रवृति न करो, करना ही पडे तो आति अल्प रूपमे ही करो। मनसे निश्चय करो कि आज पूरे दिन मुझे भक्ति ही करनी है। पूरे दिन मुझे विष्णु सहस्र नामका पाठ करना है। पूरे दिन श्रीकृष्णका स्मरण करना है। श्रीरामका स्मरण करना है। आज मुझे दूसरा कोई काम नही करना।

कितने ही ऐसे होते है कि एकादशी आवे तो ऐसा लगने लगता है कि आज दिवाली ही आई है। एकादशी दिवाली नही है। शास्त्रमे ऐसा लिखा है कि एकादशीके दिन वहुत भूख लगे तो एक-दो वार केवल दूध पियो। अतिशय भूख लगे तो कुछ फल खाओ; अन्य कुछ भी मत खाओ। एकादशीके दिन अन्न नही खाया जाता। एकादशीके दिन उपवास करना यह धर्म है। परन्तु अपने शास्त्र जो कुछ कहते है उसे हम मानते नही डाक्टर कहता है कि टायफाइड हो गया है, 'इक्कीस दिन अनाज वन्द रहेगा' तव उसकी वात मानकर हम उपवास कर लेते हैं। परन्तु शास्त्रकी लिखी मानते नही।

एकादशीका व्रत सभी व्रतोमे श्रेष्ठ है। जो एकादशीका व्रत नही करता उसका जीवन वृथा है। एकादशी भक्ति-मुक्तिको देने वाली है। एकादशी करने वाला कभी यम-

लोकमें नही जाता। एकदशी व्रतकी बहुत बड़ी महिमा है। एकादशीका व्रत तीन दिनका होता है। दशमीके दिन एक समय भोजन करना; बन सके तो हविष्यान्नका भोजन। दूध-भात जैसा सात्विक आहार करना। दशमीके दिन अजीर्ण उत्पन्न हो इतना खाना न खाया जाये। उसके बादके दिन दूध और बहुतसे तो एकादशीके दिन फलाहार करके ही परमात्मा-का स्मरण करते हैं, उनको एकादशीका पुण्य मिलता है। परन्तु दलिया और कढ़ी खाये तो तनिक भी पुण्य मिलता नही, क्या दाल-भात खानेसे पाप और दलिया, कढ़ी खानेसे पाप न लगे ऐसा हो सकता है ?

एकादशीके दिन अन्नका दर्शन नहीं करना। अन्नका स्मरण भी नहीं करना। एकादशीके दिन अन्नमें सभी प्रकारके पाप निवास करते हैं। अन्न खानेवालेके माथे वे पाप चढ़ते हैं, एकादशीके दिन कितने ही लोग जिमीकन्द तथा आलूके ऊपर टूट पड़ते हैं। एका-दशीके दिन जिमीकन्द और आलू खावे उसको अन्न बाधाका दोष तो नहीं लगता। परन्तु एकादशी करनेका पुण्य नही मिलता।

एकादशीके दिन पान, सुपारी भी न खाये। दिनमें सोवे नहीं। रात्रिको नित्यकी अपेक्षा थोड़ा अधिक कीर्तन करना चाहिये। बन सके तो एकादशीके दिन जागरण करके कीर्तन करो। एकादशीकी सम्पूर्ण रात्रि पंढरपुरमें श्रीविट्ठलनाथजी भी जागरण करते हैं। 'उप' अर्थात् समीप और 'वास' अर्थात् रहना। प्रभुके समीप रहे उसका उपवास और उसको एकादशी सच्ची है। उपवासके दिन परमात्माका स्मरण करते-करते सेवामें ऐसा तन्मय हो जाये कि भूख-प्यास न लगे तो वह सच्चा उपवास होता है। अरे ! क्या अमुक वस्तु न खानेसे ही उपवास हो जाता है क्या ? यह तो साधारण प्रकारका उपवास हुआ। केवल देहका ही उपवास हुआ। सच्चा उपवास तो मनका होना चाहिये। शरीरसे नही परन्तु मनसे परमात्माके चरणोमें रहा जाये।

उसके उपरान्त द्वादशीके दिन एक ही बार आहार करो। द्वादशीके दिन ब्राह्मण-का सम्मान करके उसके बाद प्रसाद ग्रहण करो। द्वादशीके दिन दो बार भोजन करे तो उसकी एकादशी भंग हो जाती है। इस प्रकार एकादशी विधिपूर्वक करो।

तुम ऐसी इच्छा रखो कि तुमको सदैव 'एकादशी करनी ही है। मनुष्य पवित्र इच्छा रखे तो भगवान भी उसकी मदद करते हैं। तुम ऐसा निश्चय करोगे तो ठाकुरजी तुमको वैसी ही शक्ति भी प्रदान करेंगे। सत्यनारायणकी कथामें आता है कि एक दरिद्र ब्राह्मण था। उसके पास कुछ भी नहीं था। उसकी ऐसी इच्छा हुई कि मुझे कुछ भी मिल जाय तो मैं सत्यनारायणकी पूजा करूँगा। 'मुझे सत्यनारायणकी पूजा करनी है' ब्राह्मणने ऐसा पवित्र संकल्प किया कि उसे प्रभुने परिपूर्ण किया। सत्संकल्प भगवान पूरा करते हैं।

तुम ऐसा संकल्प करो कि आज मुझे उपवास करना है। तुम निर्जल व्रत करो ऐसा कहनेमें तो मुझे भय लगता है क्योंकि मैं स्वय निर्जल करता नही तो तुमको किस प्रकार कहूँ कि तुम निर्जल करो ? दूध और फल पर रहो। तुम्हारे पाप भस्म होगे।

शास्त्रमें ऐसा लिखा है कि घरमें सब कुछ होने पर विवेकसे दु ख सहन करते हुए जो भक्ति करता है उसके ऊपर भगवान कृपा करते हैं। दु ख सहन करते हुए भक्ति करो। जो दु:ख सहन करता है, भगवान उसको दिव्य-शक्ति देते है। विषय रसका मनसे भी त्याग करोगे तो भक्ति सिद्धि होगी। भोग और भक्तिका परस्पर वैर होता है।

लौकिक रसमें जीव जब तक आधीन रहता है तब तक उसे अलौकिक रस मिलता नही। कितने ही वृद्ध हो जाते है परन्तु उनको पापड़के बिना गुजारा नही होता। वृद्धावस्थामे दांत गिर गये हो, खाना न खा सकता हो, तो भी पापड़का रस छूटता नहीं। वह खलखड़मे कूटकर, पापड़का चूरा करके ही खाना चाहता है, कितने ही को रोज चटपटा अचार चाहिये। ऐसा कब तक चलेगा ? जिह्वाका लाड़ कहाँ तक करोगे ? भक्तिका अलौकिक रस उसीको मिलता है जो षट्-विषयोके पजेसे मुक्त है। इन षट् रसोके जो अधीन होता है उसे प्रेम-रस, भक्ति-रस मिलता नही।

आनन्द किसी वस्तु विशेषमें नही है। आनन्द तो अन्दर ही है। आनन्द ईश्वरके साथ तन्मय होनेमें है। आनन्द ईश्वरकी एकाग्र भक्तिमे है। आनन्द भक्ति-रसमे है। जो षट्रसके ऊपर विजय प्राप्त करले उसे ही भक्ति-रस मिलता है। भक्ति करना सरल नही। भक्ति करनी हो, उसे मनको मारना पडता है, जीभके रसोके ऊपर काबू प्राप्त करना पड़ता है। जो जीभका गुलाम है वह भक्ति नही कर सकता। भक्ति मार्गमे सुरसा विघ्न करती है। लौकिक रसमें जीभ फँसे, मन फँसे—ये भक्तिमे बहुत विघ्नके स्वरूप है।

अनेक बार यहाँ तक होता है कि रसनाका लाड करनेके लिये कितने ही ठाकुरजी-का बहाना करते हैं कि भगवानके लिये कुछ बनाओ न ? भगवानके लिये करानेकी इच्छा हो, 'ठाकुरजी आरोगने वाले हो; मै परमात्माके लिये करता हूँ'—ऐसी भावना हो, तो यह भक्ति कही जाती है। यह बहुत ठीक बात है। परन्तु उस सामग्रीमे, प्रभुको अर्पण करनेके बाद इस प्रसादमें तुम्हारी थोड़ी भी वासना हो तो वह भक्ति नही।

थोड़ा प्रसाद था और अचानक दस-पन्द्रह वैष्णव आकर खडे हो गये। तब कितने ही होशियारी करते हैं कि थालीको अन्दर ढककर रख दो। ये तो पन्द्रह-बीस लोग है। इन सबको देने बैठूं तो फिर अपने लिये कुछ बचेगा ही नही। इन सबको शकरकादी दे देनेसे ही चलेगा। इन सबके जानेके बाद अपने घरके सभी इकट्ठे होकर प्रसाद लेगे। मन्दिरमें मुखियाजी मोहनभोग अन्दर रख लेते है और भक्तोको चरणामृत दे देते है, तुलसी

दे देते है। अरे, तुम मोहनभोग बाहर निकालो न ? परन्तु मुखियाजी समझते हैं कि मोहन-भोग भक्तोंको दे दूँगा तो मेरे लिये क्या रहेगा ?

भगवानका प्रसाद तुम्हारे घर जो आवे उसीको देना। भगवान हजार मुखोंसे आरोगते हैं। गरीबके मुखसे आरोगते हैं, वैष्णवोंके मुखसे आरोगते है, पवित्र ब्राह्मणोके मुखसे आरोगते हैं।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्।

संसार समुद्र लाँघनेवालेको, पराभक्ति श्रीसीता माँके दर्शन करने, जानेवाले-को सुरसा त्रास देती हैं। जिसने सुरसाके ऊपर विजय प्राप्त करली है, वही माताजीके दर्शन कर सकता है। जिसको अच्छा-अच्छा खानेकी इच्छा होती है, उसे भक्तिका रंग नहीं लगा है। उसे भजनानन्द मिला ही नहीं है, क्योंकि वह बाहरके विषयोंमें आनन्द खोजने-को जाता है। जब-जब जीवके पास भजनानन्द आता है तब-तब सुरसा विघ्न करती है। सेवा-पूजा करनेमें, प्रभु भजन करनेमें, मन रसोई घरमें जाय तो मानना कि सुरसा आ गयी। जीव और ब्रह्मका मिलन होनेमें सुरसा रुकावट डालती है।

ईश्वरके लिये लौकिक सुखका त्याग न करे, तब तक जीवके प्रति प्रभुको दया आती नहीं। प्रभुके साथ प्रेम करना हो तो संसारके विषय रसोंका मोह छोड़ना ही पड़ेगा। अपने मनको समझाओ कि संसारके विषय रसोंका सुख यह सच्चा सुख नहीं। संसारके सुख-में दुःख दर्शन करो। संसारका सुख जिसे दुःखरूप लगता है वह परमात्माके साथ प्रेम कर सकता है।

श्रीहनुमानजी तो संयमकी मूर्ति है। हनुमानजीने युक्तिसे सुरसाका पराभव किया। हनुमानजी वहाँसे आगे बढ़े। वहाँ समुद्रमें रहनेवाले मैनाक पर्वतसे समुद्रने कहा— श्रीरघुनाथजीका कार्य करनेके लिये ये रामदूत हनुमानजी जा रहे हैं। ये बहुत भारी काम कर रहे हैं। समुद्रको फलाँगकर जा रहे हैं। तुम बाहर आओ और उनसे कहो कि थोड़ा विश्राम करो, फलाहार करो, पीछे आगे जाना।

समुद्रमें डूबा हुआ मैनाक पर्वत वायुदेवका मित्र था। वह बाहर आया। उसने हनुमानजीसे कहा—तुम्हारे पिताका मैं मित्र हूँ। तुम महान् वीर हो, मेरी बहुत इच्छा है कि तुम थोड़ा विश्राम करो, कन्द मूल फलका भक्षण करो, उसके पश्चात् आगे बढ़ो।

परमात्माके दर्शनोंकी जिसको व्याकुलता है, अन्दरसे जिसको आतुरता जगी हुई है, उसे विश्राम करनेकी कहाँ फुरसत है ? श्रीहनुमानजीने मैनाक पर्वतसे कहा—

गच्छतो रामकार्य्यार्थं भक्षणं मे कथं भवेत्।
विश्रामो वा कथं मे स्याद् गन्तव्यं त्वरितं मया॥

मैं राम-कार्य करनेके लिये जा रहा हूँ। इस समय मुझे विश्राम नही करना है। तुम्हारा वहुत अधिक प्रेम है। मैं वन्दन करता हूँ। हनुमानजीने मैनाक पर्वतका स्पर्श किया और वहाँसे आगे बढ गये।

मार्गमे सिंहिका राक्षसी मिली। उसका उद्धार किया। सायंकालके समय श्रीहनुमानजी लंकाके समीप पहुँचे। लकाके बडे-बड़े परकोटे थे। कोटोके अन्दर कोट और उसके अन्दर फिर कोट। रावणकी लका अति दिव्य थी। लंकाका वैभव अलौकिक था।

कनक कोट विचित्र मणिकृत सुन्दरायतना घना।
चहुहट्ट हट्ट सुवट्ट बीथी चारु पुर वहु विधि बना॥
गज बाजि खच्चर निकर पद चर रथ बरूथन्ह को गनै।
बहुरूप निसिचर यूथ अतिबल सेन वरणत नहिं बनै॥

रामायणमे लकाका पुष्कल वर्णन किया गया है।

श्रीहनुमानजीने वहाँ राक्षसोंके अनेक अखाड़े देखे। लकाका प्रवेशद्वार अतिविशाल था वहाँ लंकिनीका पहरा था। शत्रुके घरमे प्रवेश करते समय पहले बाँया पैर शत्रुके घरमें रखना चाहिये। हनुमानजीने पहले बाँया पैर लकामें रखा। 'सीताराम सीताराम' का जप तो चालू ही था।

लंकिनीने देखा कि सूक्ष्म स्वरूप धारण करके कोई वानर जा रहा है। लंकिनी को यह ठीक नहीं लगा। उसने हनुमानजीसे कहा—अरे बन्दर! तू कौन है? मुझसे पूछे विना तू अन्दर कैसे जा रहा है?

हनुमानजीने कहा—मैं घूमते फिरते यहाँ आया हूँ। मुझे लका देखनी है।

लंकिनीको क्रोध आया। मेरी आज्ञाके विना तू क्यो जा रहा है? उसने हनुमानजी पर मुष्टि प्रहार किया। स्त्री पर जबर्दस्त प्रहार करनेमे तो हनुमानजीको सकोच हुआ; परन्तु अन्य कोई उपाय नही था। बाँये हाथसे हनुमानजीने जोरसे मुष्टि प्रहार किया। लंकिनी रुधिर वमन करने लगी। उसे विश्वास हो गया कि यह वानर कोई साधारण नहीं है। लंकिनीने कहा—

जब रावनहिं ब्रह्म बर दीन्हा। चलत बिरंचि कहा मोहि चीन्हा॥
विकल होसि तैं कपि के मारे। तब जानेहु निसिचर संघारे॥
तात मोर अति पुण्य वहूता। देखेउँ नयन राम कर दूता॥

जब ब्रह्माजी रावणको वरदान देनेके लिये आये हुए थे, तब मुझसे उन्होने कहा था कि एक बन्दर जब आवे, तेरे ऊपर मुष्टि प्रहार करे और तुझे मूर्छा आ जाये

उस समय रावणका विनाशकाल आ गया है ऐसा मानना। आज रामदूतके मुझे दर्शन हो गये। मैं भी भाग्यशालो हूँ कि श्रीरामदूतने मुझ पर प्रहार किया है। अब मैं समझ गई कि रावणका विनाश होना ही है। तुम अन्दर जाओ। अपना कार्य करो। अन्दर अशोक वनमे सीताजी विराजी हुई है। तुम लंकामें जाओ, परन्तु हृदयमें रामको रख कर जाओ।

प्रविसि नगर कीजै सब काजा। हृदय राखि कौशल पुर राजा ॥

कारण, राक्षस राक्षसियोंका विहार देखनेसे कदाचित् तुम्हारी आँखमें बिकार न आ जाये।

एकान्तमें बैठकर ब्रह्मका चिन्तन करना सरल है। परन्तु जनमानसके मध्यमें बिलासी लोगोके बीच निर्विकार रहना अत्यन्त मुश्किल है। विलासी लोगोके संगमें रहने पर पापी शरीरसे नही, आखोसे ही पाप कर बैठता है।

हनुमानजीको ज्ञानकी क्या आवश्यकता थी ? वे तो ब्रह्म विद्याके आचार्य हैं। लंकिनीका उपदेश सच्चा था। हनुमानजीको लगने लगा कि मैंने आँखसे यह दृश्य देखा। नही, नही, मैंने आँखसे भले ही देखा, परन्तु मनसे चिन्तन नही किया। हनुमानजी बाल-ब्रह्मचारी है।

हनुमानजीने रात्रिके समय सूक्ष्म स्वरूप धारण करके लंकामें प्रवेश किया। श्रीसीताजीको खोजते हुए एक एक घरमें फिरने लगे। फिरते फिरते इन्द्रजीतके महलमे गये। इन्द्रजीतकी पत्नी सुलोचना अत्यन्त सुन्दर थी। उसको देखते ही हनुमानजीको ऐसा लगा कि ये ही सोताजी होगी। सुलोचना इन्द्रजीतके साथ बात कर रही थी कि तुम अपने पिताको क्यो नही कहते कि श्रीसीताजीको रामजीके अर्पण करदे ? इस प्रकार रामजीके साथ विरोध करे यह उचित नही। ऐसी सब बातोंको सुनकर हनुमानजीको विश्वास हो गया कि ये सीताजी नहीं हैं।

एकनाथ महाराजने तो वर्णन किया है कि रात्रीके समय हनुमानजीने ऐसी लीला की कि प्रत्येकके घरमें पूँछको जानेकी आज्ञा हुई। हनुमानजोकी पूँछ बहुत विशाल है। श्रीहनुमानजी महाराज शंकर भगवानके स्वरूप हैं। शिवजी महाराज जब श्रीरामजीको सेवा करनेको आने लगे तब पार्वतीजीने पूछा कि तुम अकेले जाओगे ? मुझे भी साथ चलना है।

शिवजीने कहा—मुझे तो ब्रह्मचारी बन कर आना है, तुम्हारी आवश्यकता नही। तब पार्वतीजीने कहा—नही, मेरी बहुत इच्छा है। मुझे भी साथ ले चलो।

शिवजी विचार करने लगे कि इनको किस प्रकार साथ ले जाऊँ? फिर शिवजी महाराजने हनुमानजीका स्वरूप धारण किया और पार्वतीजीसे कहा—तुम मेरी पूँछ हो जाओ। इससे वह योगमाया पूँछ बनी।

श्रीएकनाथजीने वर्णन किया है कि वह पूँछ रावणके अन्त पुरमे गयी और इतने जोरसे पछार लगाई कि जितने दीपक थे वे सभी बुझ गये। 'दीपराजो व्यंलोयत्' अँधेरा हो गया। पूँछ रावणकी चारपाई पर गई और रावणकी नाकमे घुसने लगी। रावण जाग उठा परन्तु अँधेरेके कारण इसे कुछ भी दिखाई नही पडा। 'यह क्या? यह क्या?' करता हुआ रावण बहुत घबराया। अधकारमें रावणकी बहुत फजीहत हुई। यह कौन आया हुआ है, इस बातकी खबर नही पड़ रही थी। दीपकका प्रकाश था ही नही। दीपक जलानेको जाये तो पूँछ फिर जोरसे पछटे, जिससे दीपक फिर बुझ जावे। सारी रात बहुत अनर्थ किया। रावण बहुत घबड़ा गया।

पूँछ लंकाके एक-एक घरमे जाने लगी। घरमे रखे घडाओको ढक्का मार-मार कर उनमें भरा हुआ समस्त जल लुढ़का डाला। किसीके घरमे पानीकी बूंद भी रहने नहीं दी। हनुमानजीने विचार किया कि आने वाले कल मुझे लका जलानी है, इसलिये घरमें पानी नही रहेगा तो ठीक है। पूँछ पानीके प्रत्येक वर्तनको धक्का मारकर फैला देती थी। सभी घबराये कि यह क्या हो रहा है। अँधेरेमें कुछ दीखता ही नही था।

हनुमानजीने सीताजीको प्रत्येक घरमें खोज डाला, परन्तु सीताजीके दर्शन नही हुए। अब तो हनुमानजी बहुत व्याकुल हुए कि सारी रात मे लकामे घूमा, अब कोई जगह बाकी नही रही। परन्तु किसी भी ठिकाने सीताजीके दर्शन नही हुए। इतना बड़ा समुद्र लाँघकर आया, परन्तु यह क्या व्यर्थ ही चला जायेगा? श्रीसीताजीका दर्शन न हुआ तो मेरा जीवन बिगड़ जायगा। मैं वापस जाकर क्या जबाब दूँगा? क्या मैं रामजीसे ऐसा कहूँगा कि श्रीसीताजी मुझे दिखाई नही पड़ी? फिर तो रामजी बहुत दुखी हो जावेगे। मै वहाँ जाऊँगा तो अनर्थ हो जायेगा। मे तो अब यही कन्द मूल, फल खाकर जीवन पूरा करूँगा। हनुमानजी बहुत चिन्तामें पड़ गये।

फिर विचार करने लगे कि मुझे इस प्रकार हिम्मत हारना ठीक नही। उत्साह-मे ही काम करना पड़ेगा। यह सब तो मैंने खोज डाला, परन्तु अभी अशोक वनमे मे नहीं गया। सभी देवता और ऋषियोका मै वन्दन करता हूँ। मै शरणमें आया हूँ। हनुमान-जीके समान कोई बलवान नही, परन्तु हनुमानजीको अभिमानका स्पर्श भी नहीं। हनुमान-जीने सभीको प्रणाम किया।

नमोऽस्तु रामाय सलक्ष्मणाय
देव्यै च तस्मै जनकात्मजायै ।
नमोऽस्तु रुद्रेन्द्रयमानिलेभ्यो
नमोऽस्तु चन्द्राग्निमरुद्गणेभ्यः ॥

मै सूर्य, चन्द्रका वन्दन करता हूँ । मै सप्तर्षियोंका वन्दन करता हूँ । इन्द्र राजाकी मैं वन्दना करता हूँ । ये सब मुझे आशीर्वाद दें जिससे मेरा कार्य सिद्ध होवे । प्रातःकाल होनेकी तैयारी थी । उसी समय हनुमानजी विभीषणके महलमें पहुँचे । ब्राह्ममुहूर्तमें विभीषणजी जागे; जागते ही श्रीराम नामका स्मरण एवं उच्चारण किया । रातको सोनेसे पहिले और सबेरे उठते समय प्रभुके नामका स्मरण करना भूलना नहीं । प्रभुके नामका स्मरण करना और शुभ विचार करना आवश्यक है ।

हनुमानजीको लगा कि इन राक्षसोंकी दुनियांमे यह वैष्णव कौन हो सकता है ? परिचय करलेके लिये हनुमानजीने ब्राह्मणका रूप धारण किया और विभीषणके महलोंमें प्रवेश किया । विभीषणने पूछा—

की तुम हरि दासन्ह महँ कोई । मोरे हृदय प्रीति अति होई ॥
की तुम राम दीन अनुरागी । आयहु मोहि करन बड़भागी ॥

आप कौन हो ? कहीं राम तो नहीं हो ! प्रातःकाल आपका दर्शन हुआ, उससे मेरा कल्याण होनें वाला है । हनुमानजीने समस्त कथा कही । विभीषणजीसे पूछा कि श्रीसीताजी कहाँ है ? विभीषणने सीताजी कहाँ है और किस प्रकार मिलेगी—यह समझाया और कहा—आपके दर्शन हुए इसलिये अवश्य ही मुझे अब श्रीरामके दर्शन होंगे। मैं तो अधम हूँ, परन्तु आपके कारण श्रीराम मुझे अवश्य अपना लेगे ।

विभीषणके यहाँसे चलकर हनुमानजी अशोकवनमें गये। श्रीसीता समाधिमें बैठी हुई थीं, 'श्रीराम, श्रीराम' का सतत जप कर रहीं थीं । ध्वनि प्रतिध्वनि उत्पन्न करती है । शब्द प्रतिशब्दको उत्पन्न करता है । माताजी जहाँ विराजी हुई थीं वहाँ वृक्षोंमेंसे 'श्रीराम, श्रीराम' ऐसी ध्वनि निकलती थी । हनुमानजीको विश्वास हो गया कि ये ही माताजी हैं ।

हनुमानजीने देखा कि राक्षसियाँ सोयीं हुई थीं । अशोकवनमें अशोकके वृक्षके नीचे श्रीसीताजी विराजी हुई थीं । शरीर अति दुर्बल हो गया था ।

कृस तनु सीस जटा एक बेनी । जपत हृदय रघुपति गुन श्रेनी ॥

माताजी राम-प्रेमकी मूर्ति थीं। स्वरूप तेजोमय था। आंखें अति दिव्य थी। माताजी किसीपर दृष्टि-पात नही करती थी। माताजीकी नजर नासिकाके अग्रभागपर रहती थी। माताजी सतत-ध्वनि करती व जप करती थी। माताजीके दर्शनसे हनुमानजी-को अत्यन्त आनन्द हुआ। हनुमानजीने माताजीको मन ही मन प्रणाम किया। श्रीसीताजी-के दर्शन करते हुए विश्वास हुआ कि कितना दिव्य-स्वरूप है! इनका वियोग श्रीरामजी किस प्रकार सहन कर सकते हैं? मुझको आश्चर्य लगता है। इनका दर्शन करनेसे तो मुझे अत्यन्त आनन्द हो रहा है। निश्चय ही मै कृतार्थ हो गया हूँ।

कृतार्थोऽहं कृतार्थोऽहं दृष्ट्वा जनकनन्दिनीम् ॥

इस ओर, उसी रात्रिमें रावणको स्वप्नमे वानर दीखा। स्वप्नमें रावणने देखा कि कोई वानर लंका जला रहा है, रामजीका कोई सेवक लंकामे आया हुआ है। प्रातःकाल जागा कि तुरन्त रावण राक्षसियोके साथ अशोकवनमें श्रीसीताजीके पास आया। सीता-जीको संकोच हुआ।

रावण उनको मनाने लगा कि तुम संकोच क्यो रखती हो? रामजीको खोजनेका मैंने बहुत प्रयत्न किया है, परन्तु किसी समय दीख पाते है तो कोई समय दीख पड़ते ही नहीं।

कदाचिद् दृश्यते कैश्चित्कदाचिन्नैव दृश्यते ॥

राम तो कृतघ्नी हैं, गुणहीन है, अधम हैं।

कृतघ्नो निर्गुणोऽधमः।

वे तुमको भूल ही चुके है। तुम रामजीके साथ प्रेम क्यो करती हो? मैं तुम्हारा दास होनेको तैयार हूँ। तुम मेरे आधीन बनो। रामायणमे रावण रामजीकी निन्दा करता है। उन निन्दाके शब्दोमे से टीकाकारोने स्तुतिपरक अर्थ निकाला है। वाग्देवीके पति श्री-राम हैं। रावण तो अभिमानके आवेशमें मन चाहे जैसा बोलता है, परन्तु वाग्देवी रामजी-की निन्दा कर सकती नही।

रावण कहता है कि राम कोई-कोई समय दिखाई पड़ते हैं और कोई-कोई समय दिखाई पड़ते नही। योगीजन भी परमात्माका ध्यान करते हैं, जप करते हैं, तब किसी-किसी समय दर्शन देते हैं। किसी समय दर्शन नही देते। रावण कहता है—

किं करिष्यसि रामेण निःस्पृहेण सदा त्वयि।

रामजी तुम्हारे प्रति उदास हैं। इसका अर्थ इस प्रकार किया है कि रामजी स्वयं आनन्दस्वरूप हैं, इनको किसीकी आवश्यकता नही। जो प्रेम करता है उसके आधीन ये रहते हैं।

रावण कहता है—

हृदयेऽस्य न च स्नेहस्त्वयि रामस्य जायते।

तुम रामजीपर आसक्त हो, परन्तु रामजी तुमपर आसक्त नही। भक्त भगवानमें आसक्त होते है, परन्तु भगवानके तो अनेक भक्त होते है। भक्तोंके भगवान तो एक होते हैं। इसलिये भक्त एक ही भगवानमें आसक्ति रखते है। जबकि भगवानके जितने भक्त हैं वे सभी भगवानको भले लगते है।

रावण आगे कहता है—

त्वत्कृतान्सर्वभोगांश्च त्वद्गुणानपि राघवः।
भुञ्जानोऽपि न जानाति कृतघ्नो निर्गुणोऽधमः॥

तुमको और तुम्हारे गुणोंको भोगनेवाले अब ये कृतघ्नी और नगुणा (निर्गुण) रामजी थोड़ी-सी याद तक भी करते नही है। रावणकी इस निन्दाका ऐसा अर्थ किया है कि रामजी मायातीत है, मायासे परे है इसलिये मायाके गुणोमें और विषय-भोगोमें नहीं फँसते। मायाका बन्धन रामजीको नही।

रामजी कृतघ्नी है, ऐसा रावण कहता है। परमात्माके साथ जो प्रेम करता है उसके संचित, क्रियमाण और प्रारब्ध तीनों कर्मोका परमात्मा विनाश कर देते हैं। कृत कर्मोंका विनाश करके जीवको अपने चरणोंमें ले आते हैं, इसलिये ये कृतघ्नी है।

'रामजी निर्गुण है'—इसका अर्थ ऐसा किया है कि सत्व, रज और तम इन तीनों गुणोंसे परे हैं, गुणातीत हैं। 'अधम' का अर्थ ऐसा किया है कि न धमति—शब्द-विषयो भवति। जो शब्दके विषय नहीं; अर्थात् जो वाणीसे परे है।

रावणने रामजीके लिये 'मूढ' और 'नराधम' शब्दोंका प्रयोग किया है। मू=शिवः+उः—ब्रह्मा। ताभ्यां ऊढ़—शिव और ब्रह्माके जो ध्येय हैं, अर्थात् जो ध्यानके विषय है वे परब्रह्म।

'नराधम' का पदच्छेद किया है: नराः अधमाः यस्मात् स नराधमः। मनुष्य जिससे अधम है वे; अर्थात् जो पुरुषोत्तम है।

रावण चाहे जैसा बोलता है, परन्तु उस निन्दामें से स्तुतिका अर्थ निकलता है। रावण सीताजीको अनेक प्रकारसे मनाने लगा कि मैं तुम्हारे आधीन हूँ, तुम्हारा दास बननेको तैयार हूँ। ये सभी स्त्रियाँ तुम्हारी सेवा करेंगी। तुम मुझे अंगीकार करो।

श्रीसीताजी नजर भी डालती नहीं थीं। सीताजीने रावणसे कहा—मूर्ख ! तू तो कायर है। तू कैसा वीर है ? श्रीराम लक्ष्मण आश्रममें नहीं थे उस समय तू कपट

करके मुझे ले आया है। श्रीरामजी अब तुझे दाण्डित करेंगे। अपने किये हुए पापोंका फल तुझे यही पर भोगना है।

क्षिप्रं तव स नाथो मे रामः सौमित्रिणा सह।
तोयमल्पमिवादित्यः प्राणाना दास्यते शरैः॥

थोड़ेसे जलका शोषण कर लेने पर सूर्यको कितनी देरी लगती है? उसी प्रकार रामजी अपने तीक्ष्ण बाणोके द्वारा तेरे प्राणोको शीघ्र ही खीच लेगे। राम बाणमे कैसी शक्ति है यह तू जानता नही है। मैं बांये चरणसे भी तुझे स्पर्श करनेको तैयार नहीं। मूर्ख! तू यहां से चला जा। गच्छ गेहे। घर सिधार जा।

सीताजीने रावणका अत्यन्त तिरस्कार किया। रावण क्रोधसे भर गया। अत्यन्त क्रोधमें वह सीताजीको मारनेको दौडा परन्तु मन्दोदरीने निवारण किया। रावणने राक्षसियोसे कहा कि दो महीनेको अवधि देता हूँ, तब तक ये नही मानेगी तो मैं इसे खा जाऊँगा। अत्यन्त क्रोधित होकर रावण दौड़ता हुआ वहाँ से चला गया।

श्रीसीताजी व्याकुल हो गईं अब दो ही महीनोंकी अवधि है। अभी तक कोई वहांसे आया नही है। अब मैं कहां जाऊं? क्या करूँ?

श्रीहनुमानजी यह सब कुछ देख सुन रहे थे—सीताजी जब विलाप करने लगीं तभी वृक्षके ऊपर विराजे हुए श्रीहनुमानजीने श्रीराम कथाका आरम्भ किया।

सूर्यवंशमें महाराज दशरथ प्रगट हुए। महावीर, चक्रवर्ती, सार्वभौम दशरथ महाराजके घर श्रीराम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न-ये चार बालक हुए। श्रीरामचन्द्रजीने विश्वामित्रके यज्ञका रक्षण किया। वहांसे जनकपुरी पधारे, वहां शिव-धनुषका भग किया। श्रीसीताजीने विजयमाला अर्पण की। श्रीसीतारामजी अयोध्यामे विराजते थे। मंथराके कुसंगसे कैकेयीकी बुद्धि बिगड़ी, इस कारण श्रीराम-लक्ष्मण जानकीजी वनमें पधारे। गोदावरीके किनारे पंचवटीमें विराजते थे, उस समय रावण श्रीसीताजीको ले गया। श्रीसीताजीकी खोजमें निकले हुए श्रीराम-लक्ष्मण ऋष्यमूक पर्वत पर आये। वहाँ सुग्रीवके साथ मित्रता की। एक बाणसे बालीको मारा और सुग्रीवको किष्किन्धाका राज्य दिया। सुग्रीवने श्रीसीताजीकी खोजके लिये चारो दिशाओमे वानरोंको भेजा हुआ है।

सुग्रीवका सेवक, रामजीका दूत, हनुमान नामका एक वानर श्रीसीताजीको खोजता हुआ यहाँ आया है। आजमैं कृतार्थ हुआ हूं। मुझे श्रीसीतामांके दर्शन हुए हैं। मेरा जैसा भाग्यशाली कौन है?

♦♦♦♦♦♦♦♦♦♦♦♦♦♦♦♦♦♦♦♦♦♦

(५६)

पराभक्तिके दर्शन

श्रीसीताजीने यह सब कथा सुनी। हनुमानजीने रामनामांकित मुद्रिका, जो रामजीने दी थी, वह ऊपरसे नीचे फेंकी। मुद्रिकाको देखकर माताजीको आनन्द हुआ। तुरन्त ही उन्होंने उठाली। माताजी बोलीं—ऐसा मधुर भाषण करने वाला कौन है? कहाँ है? मुझे प्रत्यक्ष दर्शन क्यों नहीं देता?

हनुमानजी नीचे आये। अत्यन्त दीन होकर श्रीसीता माँको साष्टांग वन्दन किया और कहा—माँ! मैं रामदूत हूँ। तुम मेरी माता हो।

माताजीको प्रथम तो थोड़ी शंका हुई कि कहीं रावण तो माया वानरका स्वरूप धारण करके न आया हो? हनुमानजीने कहा—माँ! तुम शंका न करो, मैं तुम्हारा सेवक ही हूँ। मैं रामजीका दास हूँ।

दासोऽहं कौसलेन्द्रस्य रामस्य परमात्मनः॥

श्रीसीताजी जब-जब एकान्तमें श्रीरामजीसे वार्त्ता करती थीं तब 'करुणानिधान' सम्बोधन करती थीं। श्रीहनुमानजी यह जानते थे। इसलिये बोले—

रामदूत मैं मातु जानकी। सत्य सपथ करुणा निधान की॥

माँ! मैं करुणानिधान श्रीरामजीका सेवक हूँ। यह 'करुणानिधान' शब्द जहाँ सुना कि श्रीसीताजीकी शंका टल गई। पूर्ण विश्वास हो गया। अंतरंगका प्रेम हुआ। हनुमानजीके साथ वार्तालाप किया।

हनुमानजीने कहा—माँ! आप चिन्ता न करो। रामजी तुम्हारी उपेक्षा नहीं करते। रामजी जानते नहीं थे कि तुम कहाँ हो। अब प्रभु शीघ्र ही पधारेंगे। माँ मैंने यह सब देखा है और सुना है। माँ! अब तुम धैर्य रखो। शीघ्र ही श्रीराम-लक्ष्मण पधारेंगें, राक्षसोंका विनाश करेंगे और तुमको श्रीअयोध्याजी ले जायेंगे।

हनुमानजीने श्रीसीताजीको अनेक प्रकारसे अश्वासन दिया।

जानकी प्राह तं वत्स कथं त्वं योत्स्यसेऽसुरैः।
अतिसूक्ष्म वपुः सर्वे वानराश्च भवादृशाः॥

हनुमानजीने बालस्वरूप धारण किया हुआ था इससे माताजीने कहा—बेटा! तू तो बालक जैसा लगता है, सभी वानर भी तेरे जैसे ही होंगे। वे इन विशाल शरीरवाले राक्षसोंके साथ किस प्रकार युद्ध करेंगे?

हनुमानजीने कहा—माँ ! मेरा असली स्वरूप आपको देखना है क्या ? श्रीसीताजीने कहा—हाँ । 'सीताराम, सीताराम, सीताराम' का कीर्तन करते-करते हनुमानजीने स्वरूप बढ़ाया । पर्वत जैसा विशाल स्वरूप धारण करके हनुमानजी खड़े रहे ।

कनक भूधराकार शरीरा । समर भयंकर अति बल बीरा ॥

हनुमानजीने कहा—माँ ! इस स्वरूपसे मैंने समुद्रका उल्लघन किया था। सीताजीको विश्वास हो गया कि हनुमान महावीर है, बलवान हैं । माताजीको अत्यन्त आनन्द हुआ ।

हनुमानजीने माताजीसे कहा—माँ ! तुम विलाप न करो ।

यद्येवं देवि मे स्कन्धमारोह क्षणमात्रः ।
रामेण योजयिष्यामि मन्यसे यदि जानकि ॥

तुम्हारी इच्छा हो तो मेरी पीठपर बैठ जाओ । क्षण-भरमें ही तुमको रामजीके पास ले जाऊँगा । सीताजीने कहा—बेटा ! यह सभी ठीक है । तू मेरा पुत्र है । मैं तेरी पीठपर चढ़ूँ तो बाधा नहीं है, परन्तु जगतको स्त्री धर्म समझानेके लिये मेरा अवतार हुआ है । बेटा ! तू जितेन्द्रिय है, बाल-ब्रह्मचारी है, पवित्र हैं । परन्तु मेरा स्त्री धर्म मुझे मना करता है। आज तक मैंने किसी पुरुषका स्पर्श नहीं किया । रावण बल-पूर्वक मुझे उठाकर ले आया उस समय मेरा कुछ वश नहीं था । बाकी मैंने किसी पुरुषका स्पर्श नहीं किया । बेटा ! मैं तेरा स्पर्श करूँ तो धर्मकी मर्यादा टूटती है । रामजी यहीं पधारें और रावणको मारकर मुझे ले जायें तो रामजीकी कीर्ति बढेगी ।

स्त्री जानकर किसी भी पुरुषका स्पर्श न करे । स्त्रीके लिये परपुरुषका स्पर्श वर्जित है । परपुरुषका स्पर्श करनेसे स्त्रीके पातिव्रत्यका भग होता है । साधुको, ब्राह्मणको स्त्री दूरसे ही वन्दन करे । स्त्रीको किसी साधुका स्पर्श करनेकी आवश्यकता नहीं है । स्त्री-धर्मकी यह मर्यादा है ।

हनुमानजीने कहा—माँ ! तुम्हारी इच्छा नहीं तो मेरी भी इच्छा नहीं है । मैंने तो केवल विवेकसे तुमसे कहा था कि तुमको बहुत परिश्रम होता है, इससे जल्दी ही यहाँसे ले जाऊं ।

सीताजीने कहा—बेटा ! यह ठीक नहीं । मैं दो महीना तक प्राणोंको टिकाकर रखूँगी । तू श्रीराम-लक्ष्मणको शीघ्र ही यहाँपर लिवा ला, परन्तु बेटा ये समस्त वानर किस प्रकारसे यहाँ आ पावेंगे ?

हनुमानजीने कहा—वानरोंकी तुम तनिक भी चिन्ता न करो। माँ! वे तो बहुत बलवान हैं। सुग्रीवकी सेनाके सभी वानर मेरी अपेक्षा अधिक बलवान हैं। संदेश लानेको तो किसी साधारण मनुष्यको ही भेजा जाता है।

न हि प्रकृष्टाः प्रेष्यन्ते प्रेष्यन्ते इतरे जनाः।

जो बलवान होता है उसे दूत बनाकर, संदेशा लानेके लिये रवाना करना ठीक नहीं है। जो हल्का हो उसे ही दूत बनाकर भेजनेकी मर्यादा है। मैं दूत बनकर संदेशा लेने आया हूँ। मैं तो निकृष्ट हूँ, सबसे हल्का हूँ। मेरी अपेक्षा अन्य सभी बलवान है। माँ! तुम तनिक भी चिन्ता न करो। सब यहीपर आ जायेंगे और लंकाको छिन्न-भिन्न कर डालेंगे। माँ! आज मुझे तुम्हारे दर्शनोंसे बहुत आनन्द मिला है। अब मुझे भूख लग रही है, फलाहार करनेकी इच्छा है।

माताजीने कहा—बेटा! फल तो यहाँ वृक्षोंके ऊपर बहुतसे लटक रहे है, परन्तु राक्षसोंके आनेपर यदि झगड़ा हो गया तो? हनुमानजीने कहा—इसकी तुम तनिक भी चिन्ता न करो। मैं अकेला सबके लिये पर्याप्त हूँ। माँ तुम केवल आज्ञा करदो।

श्रीसीताजी विचारमें पड़ीं कि मेरा हनुमान तो अकेला है और राक्षस अनेक है। यदि लड़ाई ठन गई तो यह अकेला सबसे किस प्रकार जीतेगा? इसलिये माताजीने कहा—बेटा! शान्ति रखना। कोई फल तोड़ना नहीं। जो फल नीचे पड़े हों उन्हींको तुम खा लेना।

पतितान्यत्र वै भुवि भुंक्ष्वैतानि फलानि त्वम्।

हनुमानजीने विचार किया कि फल तोड़नेकी माँने मना की है, परन्तु वृक्ष उखाड़नेकी मना नहीं की है। वृक्ष ही उखाड़ डालूं। हनुमाजीने समस्त अशोकवन ही उखाड़ डाला।

राक्षस दौड़ते आये। हनुमानजीने राक्षसोंको पूँछसे बाँधकर समुद्रमें फेंक दिया। कितनों ही को हाथसे मसल डाला। रावणका पुत्र अक्षयकुमार युद्ध करने आया। हनुमानजीने उसके दोनों पैर पकड़कर गड़...गड़...गड़ करके पछाड़ डाला। अक्षयकुमारके प्राण निकल गये। अनेक राक्षसोंका हनुमानजीने विनाश कर दिया।

रावण घबड़ा गया कि एक वानर इतने राक्षसोंका संहार कर दे? ऐसा कौन वानर आया हो सकता है? उसने इन्द्रजीतको आज्ञा दी कि तू वहाँपर जा। इन्द्रजीत अशोकवनमें गया। हनुमानजीके साथ भयंकर युद्ध हुआ। इन्द्रजीतको विश्वास हो गया कि यह अवध्य है। इसका बाल बाँका भी नहीं होता। मैं इतने अधिक प्रहार कर रहा हूँ, इतने बाण मार रहा हूँ, फिर भी इसको तनिक भी वेदना नहीं होती। यह वज्राङ्गी है।

हनुमानजीका श्रीअंग वज्रसे भी कठिन है। ये वज्राङ्गी कहे जाते हैं। वज्राङ्गी-का अपभ्रंश है बजरंग। अन्तमें श्रीहनुमानजीको पकड़नेके लिये इन्द्रजीतने ब्रह्मास्त्र छोड़ा परन्तु ब्रह्मास्त्र भी हनुमानजीको क्या बाँध सकता था ?

तस्यैव रामस्य पदाम्बुजं सदा
हृत्पद्म मध्ये सुनिधाय मारुतिः।
सदैव निर्मुक्त समस्त बन्धनः
किं तस्य पाशैरितरैश्च बन्धनैः॥

हनुमानजी तो सदैव सारे बन्धनोंसे मुक्त ही हैं। ब्रह्मपाश या अन्य कोई भी बन्धनसे इनका क्या होना था ? परन्तु ब्रह्माजीकी शक्तिको मान देना चाहिये। ब्रह्माजीका अपमान न हो इसलिये हनुमानजीने बन्धन स्वीकार किया।

भगवान शंकर माता पार्वतीजीसे कहते हैं—

जासु नाम जपि सुनहु भवानी। भव बंधन काटहिं नर ग्यानी॥
तासु दूत कि बंध तरु आवा। प्रभु कारज लगि कपिहिं बँधावा॥

इन्द्रजीत हनुमानजीको ब्रह्मास्त्रसे बांधकर रावणकी सभामें ले आया। उसने रावणसे कहा—यह कोई साधारण वानर नहीं है।

न लौकिको हरिः रूपमात्रं तु वानरम्।

इसका स्वरूप वानर जैसा दीखता है, परन्तु यह कोई महान, बलवान देवता है। आप विचार करो। हनुमानजीको देखकर रावणको भी आश्चर्य हुआ। उसने हनुमानजीसे पूछा—अरे बन्दर ! तु कहाँसे आया है ?

हनुमानजीने उत्तर दिया—रे दशकंधर ! तू मुझे पहचानता नहीं ? मैं तुझे सावधान करने आया हूँ। वानर तो घूमता-फिरता अनेक देशोंमें जाता है। इसलिये फिरता-फिरता मैं यहाँ चला आया। हमको फल बहुत पसन्द है, मैं फल खा रहा था। तेरे राक्षस मुझे मारने आये। इसलिये मैंने उन्हें मारा।

प्रिय हि देहोऽखिल देहिनां प्रभो।

सभीको अपनी देह अत्यन्त प्रिय होती है। परन्तु रावण ! मैं तो विशेषत. तुम्हारे लिये ही आया हूँ। तुम्हारा जन्म पुलस्त्य ऋषिके वंशमें हुआ है। तुमने बहुत तपस्या करके शक्ति प्राप्त की है। और तू अन्याय करे यह योग्य नहीं है। श्रीरामजीके साथ तुमने विरोध किया है। इसमें तेरा कल्याण नहीं है। तुमने शिवजीको प्रसन्न किया है।

परन्तु सीताजीको इस प्रकार घरमें रखता है ! श्रीसीताजीको तु रामजीके लिये अर्पण करदे । श्रीरामकी शरणमें जायगा तो ही तेरा कल्याण होगा ।

अतो भजस्वाद्य हरि रमापतिं, रामं पुराणं प्रकृतेः परं विभुम् ।
बिसृज्य मौर्ख्य हृदि शत्रु भावनां, भजस्व रामं शरणागतप्रियम् ।
सीता पुरस्कृत्य सपुत्र बान्धवो, राम नमस्कृत्य विमुच्यसे भयात् ।।

यह मूर्खता छोड़ दे । रामजीके साथ वैर छोड दे. और रामजीके चरणोमें पड़जा । श्रीराम तेरे सर्व पापोको क्षमा कर देंगे ।

रावणको क्रोध आया । उसने राक्षसोंसे कहा—यह बन्दर मेरे आगे तपस्वियो की प्रशसा करता है । पकड़ो इसको, मारो ।

उस समय विभीषणने कहा—राजनीति वर्जित करती है परदूतो न हन्तव्य. । शत्रुका दूत है । अगर तुम इसे मारोगे तो उनको खबर कौन देगा ? इसको मारो मत । अन्य कोई सजा कर सकते हो ।

रावण विचार करने लगा कि मुझे ऐसा लगता है कि रात्रिके अँधेरेमें मेरे घरमें इसीकी पूँछ आई होगी । रात्रिमें मुझे बहुत कष्ट दिया था । इसकी आधी शक्ति इसकी पूँछमें हो मालुम होती है । इस पूँछको ही जला डालना चाहिये ।

रावणने राक्षसोंको आज्ञा दो कि इसकी पूँछ तुम जला डालो । रावणकी आज्ञा होते ही राक्षस पूंछमें कपड़ा लपेटने लगे । जैसे जैसे कपड़ा लिपटता गया वैसे वैसे पूंछ बढ़ती गई यह तो योगमाया थो । पूँछ इतनी अधिक लम्बी हुई कि लंकामें किसी कपड़ेके दुकानदारके यहाँ कपड़ा ही नहीं रहा । समस्त कपड़ा पूँछमें लपेटने पर भी कपड़ा कम पड़ गया तब हनुमानजीने रावणसे कहा कि तू अपनी धोती खोल डाल और उसे पूँछमें लपेट । किसीके घरमें वस्त्र रहा ही नही । पूँछ बढती ही जाती थी । तत्पश्चात् तेल-घी मँगाया । उससे कपड़ा भिगोया गया । नगरमें तेल घी भी समाप्त हो गया ।

रहा न नगर बसन घृत तेला, बाढ़ी पूँछ कीन्ह कपि खेला ।

हनुमानजीने ऐसा नाटक किया । अंतमें राक्षसोंने अग्नि लगायी । परन्तु धुँआ अधिक हो गया । अग्नि जल्दी प्रगट न हो सकी ।

हनुमानजीने कहा—रावण यह पुच्छ यज्ञ है और इसके यजमान तुम हो । तुम फूंक मारोगे तो अग्नि प्रगट होगी ।

मूर्ख रावण समझता था कि मैं बहुत चतुर हूँ, बहुत बलवान हूँ । इसलिये वह पूंछके पास गया और दस मुँह थे सो दसों मुँह से जोरसे फु...ऊँ...ऊँ करने लगा । एक

दम जोरसे ज्वाला भड़क उठी। जैसे ही ज्वाला भडकी कि हनुमानजीने रावण की दाढ़ी पर पूंछका प्रहार किया। रावणकी दाढी मूंछ जलने लगी।

यावत्फुत्कारयामास तत्पुच्छानलमाननैः ।
तावत्तच्छिरजाः श्मश्रु कूर्चा दग्ध दशाभवन् ॥

रावण घबड़ा गया। उसने राक्षसोंको आज्ञा दी कि इस वानरको पकडो। राक्षसोने हनुमानजीको बांधा। हनुमानजीने विचार किया कि रात्रिमें लका भली प्रकार देखी नही थी। मुझे अब लंका अच्छी तरहसे देखनी है। कुछ बाकी नही रखनी है। राक्षस हनुमानजीको बांध कर मारने लगे। हनुमानजीने ऐसा नाटक रचा कि मानो पूंछ अब बहुत जल रही है और मुझे बहुत कष्ट हो रहा है। वे मृतकके समान होकर गिर पडे। हनुमानजी की यह दशा देखकर राक्षस बहुत प्रसन्न हुए, ताली बजाने लगे। कोई राक्षस हनुमानजीको लकडी मारने लगा कोई लात मार रहा था। रावण की आज्ञा हुई कि इसको पूरे नगरमे घुमाओ। यह पूंछ हीन होकर ही यहाँसे जाये।

ढोलक बजाते बजाते राक्षस हनुमानजीको लकामें चारो तरफ घुमाने लगे।

बाजहिं ढोल देंहि सब तारी, नगर फेरि पुनि पूँछ प्रजारी ।

हनुमानजी सब सहन करते जा रहे थे। उन्होने मनमे निश्चय किया हुआ था—मुझे सब देख लेना है। पीछे तुमको बताऊँगा।

कुछ राक्षसियाँ श्रीसीताजीके पास गईं और उनसे कहा—जो वानर तुम्हारे साथ बात कर रहा था, जिसने तूफान करके अशोकवन नष्ट कर दिया था और राक्षसोको मारा था, उस वानरकी पूंछ अब जल रही है, वह मृतक जैसा हो गया है। उसे पूरे नगर-में घुमाया जा रहा है।

माताजीने जब यह सुना तब वे बहुत व्याकुल हो गईं। मेरे हनुमानजीकी पूँछ जल रही है! मैंने आज-पर्यन्त पतिव्रता धर्मका पालन किया हो, श्रीराम बिना मैंने किसी पुरुषका स्मरण भी न किया हो, तो हे अग्निदेव! तुम अब शीतल हो जाओ।

उस समय जैसे-जैसे अग्नि प्रदीप्त होने लगी वैसे-वैसे हनुमानजीको ठडक लगने लगी। हनुमानजीका एक बाल तक नही जला। हनुमानजी चारो ओर फिरकर लंका जैसे ही देख चुके, उस समय 'सीताराम, सीताराम' कीर्तन करते-करते सभी बन्धन तोड़ डाले भयंकर पर्वताकार स्वरूप धारण कर लिया। रावणके राजमहलका एक स्तम्भ तोड़ डाला, और उस स्तम्भसे एक-एकपर प्रहार करने लगे। राक्षस घबडाये कि यह तो बहुत जबर्दस्त है। अभी तो ऐसा लग रहा था कि मानो मरनेवाला है; परन्तु यह तो सब नाटक ही कर रहा था।

लंका-दहन

फिर तो हनुमानजीने एकके बाद एक मकानपर छलांग लगाकर लंका जलाना प्रारम्भ किया। चारों ओरसे पवन छूटने लगी। हनुमानजी वायुदेवके पुत्र हैं। वायुदेव अग्निदेवके मित्र हैं। अग्निदेव हनुमानजीके लिये अत्यन्त शीतल हो गये। हनुमानजीने एक-एक राक्षसके घरके ऊपर कुदान लगाकर प्रत्येकके घरमें अग्नि लगा दी। रावणका राजमहल जलाया। इन्द्रजित्, जम्बू, मारीच, कुम्भकर्ण—सबके महल जलने लगे। सारी लंका धक्···धक्···धक् करके जल रही थी। राक्षस, राक्षसियाँ अत्यन्त घबड़ाये, 'हाय, हाय' करके रोने लगे।

हनुमानजी पूँछको चारों ओर घुमाने लगे। जहाँ अग्नि दिखाई न पड़ती वहीं पूँछको जानेकी आज्ञा दे देतें। हनुमानजीको देखकर तो सभी कतरा जाते थे। पहलेवाला आ गया, पहलेवाला आ गया। अब बहुत तूफान मचावेगा। राक्षस, राक्षसियाँ बहुत व्याकुल हो गये। सभी घर छोड़कर बाहर निकल भागे। कुछ लोग तो दूसरी मंजिलसे कूदकर नीचे गिर रहे थे। बाहर आनेके बाद कुछको याद आती थी कि आभूषणोंकी पेटी तो अन्दर ही रह गई है। पीछे मन होता है कि अब जलने दो न; अन्दर तो मकान सुलग रहा है। किसीको याद आता कि बूढी अम्माँ अन्दर ही रह गई है। तो कोई कहता—अब तू तो बाहर आजा। बूढ़ीकी चिन्ता मत कर।

बाहर आने पर एक राक्षसीको याद आया कि बालक तो पलनामें ही लेटा रह गया। उसने अपने पतिसे कहा—तुम अन्दर जाकर बालकको ले आओ। राक्षसने देखा तो सम्पूर्ण मकान धक्···धक्···धक् करके सुलग रहा था। उसने कहा—मैं नहीं जाऊँगा, तू ही चली जा न।

राक्षसीने कहा—मैं किस प्रकार जाऊँ? तुम्हीं जाओ। सभीको अपने प्राण प्यारे होते हैं। लड़का अन्दर रह गया, परन्तु उसको लेनेके लिये अन्दर जानेको कोई तैयार नहीं होता था। पीछे तो दोनोंने विचार किया कि हम तो दोनों बाहर निकल चुके। अब उसका जो कुछ होना हो सो होगा। भगवानकी कृपा होगी तो दूसरा आ जावेगा। अन्दर नहीं जावेंगे।

लंकामें चारों ओर हाहाकार मच गया। राक्षस, राक्षसियाँ रावणको गाली देते थे कि यह सीताजीको ले आया, उसीसे यह अनर्थ हुआ है। यह कोई वानर नहीं, लंकाका काल आया लगता है।

हम जो कहा यह कपि नहिं होई । बानर रूप धरें सुर कोई ॥
साधु अवज्ञा कर फल ऐसा । जरइ नगर अनाथ कर जैसा ॥

जो राम नामका जप करता हो, 'सीताराम, सीताराम' इस पकार कीर्तन करता हो, उसका घर हनुमानजीने छोड़ दिया ! विभीषणका घर छोड़ दिया । इसके अलावा लकामें ऐसा कोई घर बाकी रखा नही जो जला न हो ।

जारा नगर निमिष एक माँहीं । एक विभीषण कर गृह नाँहीं ॥

राक्षस, राक्षसियोंको खबर पडी कि राम नामका जप करनेसे यह प्रसन्न होता है । इस प्रकार हनुमानजीका सत्सङ्ग हुआ तो राक्षस भी 'सीताराम, सीताराम' इस प्रकार कीर्तन करने लगे । तब हनुमानजीको दया आयी । ऊन्होने हुकार करके कहा—रामजीके सेवक चारो ओर घूम रहे है । ऐसे अनेक सेवकोमेसे मै अकेला ही यहाँ आया हूं । मै लंकाका विनाश करूंगा । अब तुम्हारा विनाश होना है । परमात्माके साथ तुम विरोध करते हो ! यह तुम्हारा काल आया है ।

इसके बाद हनुमानजी समुद्रके किनारे गये और पूँछको शान्त किया उन्होंने दूरसे देखा कि सारी लंका धक्...धक्...जल रही थी । यह देखकर हनुमानजीको आनन्द तो हुआ पर पीछे मनमे विचार आया कि यह सब ही जलता दिखाई दे रहा है । कुछ भी बाकी रहा नही । सारी लका जल रही है । इस अग्निमे कदाचित् सीताजी भी जल गयी हों तो ? मैं बन्दर ही तो हूँ इसलिये मैंने क्रोधमे कुछ भी विचार किया नही । मैंने क्रोधमें सम्पूर्ण लंका जला डाली । सभी कुछ जलता दीख रहा है । सीताजीका क्या हुआ ? क्रोधमें कदाचित् अनर्थ हो गया होगा तो मैं रामजीके पास किस प्रकार जाऊँगा ? मैंने क्रोधमें बहुत ही खोटा काम किया । सारी लका जला डाली । तनिक भी विचार नही किया । मैंने रामजीके कार्यका विनाश ही किया ।

धिग्धिङ्मां वानरं मूढं स्वामिपत्न्याश्च दाहकम् ।
निश्चयेन मया दग्धा जानकी रामतोषदा ॥

श्रीसीताजी जल गयी होंगी । तह विचार मनमे आते ही हनुमानजी बहुत व्याकुल हो गये । उन्होने मनमें निश्चय किया कि मैं अब यही पर समुद्रमे प्रवेश करूँगा । मैं अब रामजीके पास किस प्रकार जा सकता हूँ ?

हनुमानजी जैसे ही समुद्रमे प्रवेश करनेको तैयार हुऐ कि सिद्ध, ऋषिगण और महात्माओने आकाशवाणी द्वारा कहा—

मा कुरुष्व कपे खेदं न दग्धा जानकी शुभा ।
आत्मानं दर्शयित्वा तां शीघ्रं गच्छ रघूद्वहम् ॥

आकाशवाणीने हनुमानजीकी प्रशंसा की। हनुमानजीका जय जयकार किया और कहा कि हनुमानजीने सम्पूर्ण लंका जला डाली। परन्तु धन्य है श्रीसीता माँ को। अग्नि अग्निको जला सकती नहीं। अग्निको जलाने की शक्ति देने वालीं तो श्रीसीताजी हैं। आदिशक्ति जगदम्बाको अग्नि किस प्रकार जला सकती है ? वे जगन्माता हैं। सभी कुछ सुलगा हुआ है, परन्तु श्रीसीताजीको तनिक भी परिश्रम नही हुआ है। श्रीसीताजी तो आनन्दमें विराजी हुई है।

हनुमानजीने यह सुना। उनको विश्वास हो गया कि श्रीसीताजीके आशीर्वादसे ही अग्नि मेरा बाल भी जलाती नहीं वह श्रीसीताजीको किस प्रकार जला सकती है ? श्रीसीताजी तो आदिशक्ति जगदम्बा है। ये ही सबको शक्ति देतीं हैं। ये दिव्य लीला करती हैं। हनुमानजीको आनन्द हुआ।

पूँछको समुद्र स्नान कराकर शान्त करके फिर श्रीहनुमानजी श्रीसीतामाँको वन्दन करनेके लिये अशोक वनमें गये। अशोक वनका एक भी वृक्ष जला नहीं था। हनुमानजीने माताजीको साष्टाङ्ग वन्दन किया। माँ ने आशीर्वाद दिया; हनुमानजी की प्रशंसा करते हुए कहा—बेटा ! तेरी बुद्धि तेरा बल अलौकिक है। तेरा कल्याण हो तेरा मार्ग शुभद् होगा, कल्याणमय होगा। तू अब जल्दी जा, और रामजीको लिवा ला।

मास दिवस महुँ नाथ न आवा, तौ पुनि मोहि जीयत नहिं पावा।

एक मास दिवस तक यदि रामजी नहीं आये तो फिर मैं प्राण त्याग दूँगी। माताजीको आश्वासन देकर, उनका आशीर्वाद प्राप्त करके हनुमानजी वहाँ से बिदा हुए। समुद्र किनारे जाकर, 'सीताराम सीताराम' कीर्तन करते हुए अलौकिक बल उन्होंने धारण किया; और वहाँ से जोर से कुदान लगायी।

एक रामायणमें ऐसी कथा आती है कि हनुमानजी जब लंका छोड़ कर निकले उस समय ब्रह्माजीको थोड़ी चिन्ता हुई कि हनुमानजीने जो पराक्रम किया है उसे हनुमानजी तो किसी भी दिन अपने मुख से किसी से कहेगे नहीं। रामजी जब पूँछेगे तो इतना ही कहेगे कि मैं यहाँ से लंका गया। माताजीको प्रणाम किया और आश्वासन देकर वापस लौट आया। इसके अलावा और कुछ नहीं कहेगे। पर लंकामें इन्होंने जो पराक्रम किया है उसकी खबर रामजीको अवश्य पड़नी चाहिये।

हनुमानजी आत्म प्रशंसा कभी करते नहीं। आत्म प्रशंसा यह मरण है। मैंने यह किया, मैंने वह किया—ऐसा जो कहता है उसके पुण्यका नाश होता है। ये तो परमात्मा श्रीराम ही जीवको शक्ति-बुद्धि देकर उसके हाथ से महान कार्य कराते हैं।

एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा ददौ पत्रं सविस्तरम् ॥

ब्रह्माजीने पत्र लिखकर हनुमानजीको दिया और कहा—यह पत्र लक्ष्मणजीको दे देना। लक्ष्मणजी यह पत्र पढ लेगे। पत्रमे ब्रह्माजीने हनुमानजीके पराक्रमका, हनुमानजी की अलौकिक बुद्धि शक्तिका वर्णन किया था।

हनुमानजीने श्रीसीतारामजीके नामका जय-जयकार किया। और यह जय-जयकारका शब्द वानरोंके कानमे आया।

नाघि सिंधु एहि पारहिं आवा। सबद किलकिला कपिन्ह सुनावा॥
हरषे सब बिलोकि हनुमाना। नूतन जन्म कपिन्ह तब जाना॥

शब्द सुनकर वानरोको विश्वास हो गया कि हनुमानजी काम करके आ गये मालूम होते है। सब आतुरतासे हनुमानजीकी प्रतीक्षा करने लगे। इतनेमें तो हनुमानजीके दर्शन हो गये। हनुमानजी समुद्र किनारे पर्वतके ऊपर उतरे। वानर दौड़ते हुए गये। हनुमानजीको कन्द मूल, फल अर्पण किये। कोई वानर हनुमानजीके चरण पकड़ने लगे, तो कोई हाथ। कोई-कोई पुच्छ पकड़ने लगे। सबको ऐसा अनुभव हो रहा था कि हनुमानजीने हमको प्राण दान किया है। इतना काम करके हनुमानजी लौटे है।

हनुमानजीने वानरोको वन्दन करके कहा—माताजी आनन्दमें हैं। मैं सब कुछ देखकर आया हूँ। तुमको आश्वासन देता हूँ। माताजी सतत ध्यान करती हैं, जप करती हैं। माताजीका दर्शन करके मुझे बहुत आनन्द हुआ।

सभी वानर रामजीके पास जानेको निकले। मार्गमे सुग्रीवजीका मधुवन आया। सुग्रीवके मामा दधिमुख इस मधुवनकी रक्षा करते थे। हनुमानजीकी आज्ञासे सभी वानर मधुपान करने लगे। इससे दधिमुखको बहुत खोटा लगा। दधिमुखके साथ वानरोंका भयंकर युद्ध हुआ। दधिमुख सुग्रीवके पास दौडा गया और कहने लगा—कोई मानता ही नही। अनेक वर्षोंसे रक्षित तुम्हारा मधुवन छिन्न-भिन्न हो गया है।

सुग्रीवको विश्वास हो गया कि ये लोग काम करके आये हैं, इसीसे मधुपान कर रहे हैं।

जो न होत सीता सुधि पाई। मधुबन के फल सकहिं कि खाई॥

ऐसा विचार करके सुग्रीवने दधिमुखसे कहा—मै जल्दी बुला रहा हूँ, ऐसा मेरा संदेशा उनसे कह दो। फिर सुग्रीवने लक्ष्मणजीसे कहा—श्रीसीताजीके दर्शन हो गये है; हनुमानजी काम करके आ गये हैं। ऐसा लगता है। परमानन्द हुआ।

दधिमुखने जाकर हनुमानजीसे कहा—रामजी तुमको बुला रहे हैं। सुग्रीव तुमको याद कर रहे हैं। सुनते ही सब दौड़ चले। जाकर श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम किया।

हनुमानजीने श्रीरामचन्द्रजीको सब कथा सुनाते हुए कहा—मै यहाँसे लंकामें गया। वहाँ मैंने श्रीसीताजीके दर्शन किये। श्रीसीताजी अत्यन्त व्याकुल हो रहीं थीं। मैंने उनको आश्वासन दिया कि आप अब शीघ्र ही लंकामें पधारेंगे और राक्षसोंका विनाश करेंगे। महाराज ! श्रीसीताजीके दर्शन करके मुझे बहुत आनन्द हुआ।

श्रीरामचन्द्रजीने जानकीजीकी कुशल पूछी—

कहहु तात केहि भाँति जानकी। रहति करति रच्छा स्वप्रान की॥

'बेटा ! कहो, जानकीजी मेरे विरह में किस प्रकार रहती है और अपने प्राणोंकी रक्षा करती है ? अर्थात् कि जानकीजी रामजीके विरहमें किस रीतिसे जीवित रह सकतीं हैं,?

तब हनुमानजीने कहा—

नाम पाहरू दिवस निसि, ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद यंत्रित, जाहिं प्रान केहि बाट॥

आपका नाम रात-दिन पहरा देनेवाला रक्षक है। आपका ध्यान ही बन्द कपाट है और नेत्रोंको निरन्तर आपके चरणोंमें लगा रखा है, तो फिर प्राण भला कौनसे मार्गसे बाहर निकलकर जा सकते है ? आप पूछ रहे हो कि सीताजी किस प्रकार जीवित रह सकी हैं ? वियोग विरहमें उनके प्राण निकल गये होते, परन्तु प्राणोंको निकलनेका रास्ता ही नहीं मिलता। आपका नाम और ध्यान छूटे तो तुरन्त ही उनके प्राण निकल जावे, परन्तु आपमे उनका ऐसा प्रेम है कि आपका नाम और ध्यान छूटता नहीं।

भागवतमें गोपीगीतमें कथा आती है—गोपियाँ श्रीकृष्णके विरहमें जब अत्यन्त रुदन करती हैं और कहती है—हम तुम्हारी दासी हैं। हम तुम्हारे लिये जीवित रहना चाहती है. जबकि श्रीकृष्ण कहते हैं—अरी सखियो ! तुम बाते तो प्रेमकी करती हो, परन्तु मुझे तुम्हारेमें प्रेमका एक भी लक्षण दिखायी नहीं देता। यदि तुम्हारा प्रेम सत्य है तो वियोगमें तुम किस प्रकार जी सकती हो ? शुद्ध प्रेममें वियोग होता नही और कदाचित् वियोग हो जाय तो विरहीके प्राण भी टिकते नहीं। तुम प्रेमकी बातें करती हो, परन्तु वियोगमें तुम जीवित रहती हो तुम्हारे प्रेममें कुछ कपट है।

उस समय गोपियोने कहा—नाथ ! हमारे प्राण तो हर प्रकारसे जाने ही थे, परन्तु तुम्हारे नाम और तुम्हारी कथाने हमारे प्राण टिकाये हुए हैं। तुम्हारा नामामृत और तुम्हारा कथामृत हमारे जीवनको टिकाये रख रहा है।

हनुमानजीने रामचन्द्रजीसे कहा कि आपके नाम और ध्यानके कारण ही श्री-सीताजीके प्राण टिक रहे है। तदुपरान्त लक्ष्मणजीने ब्रह्माजीकी पत्रिका पढी। पत्रमे श्री-हनुमानजीके पराक्रमका वर्णन था। रघुनाथजी उसे सुन रहे थे। सुनकर रघुनाथजीको बहुत आनन्द हुआ कि हनुमानजीने अलौकिक कार्य किया है। ऐसा कोई कर नही सकता। मैं अपने हनुमानको क्या दूं ? हनुमानके अनन्त उपकार हैं।

मालिककी आँखें भीनी हो गई। उन्होने हनुमानजीसे कहा—

सुन कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनु धारी॥
प्रति उपकार करौं का तोरा। सन्मुख होइ न सकत मन मोरा॥
सुन सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि विचार मन माँहीं॥

हनुमान ! तेरा उपकारका बदला मैं किस प्रकार चुकाऊँ ? ऐसा लगता है कि कभी भी तेरे ऋणको नही चुका सकूँगा। श्रीरामचन्द्रजीने हनुमानजीकी इस प्रकार प्रशंसा की, तब हनुमानजीने कहा—महाराज ! मैं प्रशंसाके योग्य नही। यह तो आपकी कृपासे हुआ है। वानरमें अक्कल ही कितनी होती है ? केवल एक वृक्षसे दूसरे वृक्षपर कुदान लगानेकी। मेरे पास जो कुछ भी बुद्धि है, शक्ति है, वह आपकी कृपा-प्रसादी है।

सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछू मोर प्रभुताई॥

हनुमानजी महाराज समुद्र उल्लंघन करके गये। उन्होने लंकामें राक्षसोंका विनाश किया। हनुमानजीको यह सब शक्ति कहाँसे मिली है ? श्रीराम नाममेसे ही यह शक्ति मिली है।

परमात्मा श्रीराम कृपा करते हैं तभी श्रीराम नाममे प्रीति होती है। मनुष्यके अनेक जन्मोके इतने पाप हैं कि उसकी राम नाममें प्रीति होती ही नहीं। श्रीराम नाम अतिशय सरल है। साढ़े बारह एक बजे यहाँसे घर गया और पाँच बजेके उपरान्त आया, उस समयमे राम नामका कितना जप किया ? घर जाकर जिमीकन्द और आलूका जप किया है।

मनुष्य खाये यह खोटा नहीं। मनुष्य भूखा रहे यह भगवानको सुहाता नहीं। गीताजीमें प्रभुने आज्ञा की है—

कर्षयन्तः मां चैवान्तः शरीरस्थम्।

अतिशय उपवास करके शरीरको और मनको अधिक पीड़ित करना नही, पर खानेमें अतिशय मन भी रखना नही। मन परमात्मामें रखो, परमात्माके नाम जपमें मनको सतत् पिरोये रखो। मनुष्य परमात्माके नामके साथ प्रीति करे तो ही उसके पाप

छूटते हैं। पाप अधिकतर सभी करते हैं। पढ़े-लिखे भी पाप करते है और विना पढ़े-लिखे भी पाप करते हैं। गरीब भी पाप करते हैं और श्रीमंत भी पाप करते हैं। अधिक तो क्या कहूँ ? कथा सुननेवाला भी पाप करता है और कथा कहनेवाला भी पाप करता है। पाप उसका छूटता है जो परमात्माके नामके साथ प्रीति करता है।

पुण्य करना यह थोड़ा सरल है, परन्तु पाप छोड़ना यह अत्यन्त कठिन है। मनुष्य एक ओर पुण्य करता है और दूसरी ओर पाप भी चालू रखता है। सब कुछ करते हुए हाथमें कुछ नही आता। बहुत-सी पुस्तकें पढ़ोगे उससे पाप छूटेगा नही, चारों धामकी तुम यात्रा करो, विष्णुयाग करो, धर्मशाला बनाओ, पाप नहीं छूटेगा। पाप तो परमात्माके नामके साथ प्रीति करनेसे ही छूटता है।

पाप पहिले मनमें आता है, पीछे वाणी में और उसके उपरान्त आचरणमें आता है। पाप जब मनमें आवे उस समय ठंडे जलसे स्नान करो और फिर परमात्माका नाम स्मरण करो, कीर्तन करो। प्रभुसे प्रार्थना करो कि हे नाथ ! मेरा मन मेरे वशमें रहता नही। कृपा करो, मुझे बचाओ। सच्चे हृदयसे प्रार्थना करोगे तो प्रभु रक्षा करेंगे। मनसे, शरीरसे पाप होनेवाला है ऐसा लगे तभी भगवानके नामका कीर्तन करो। परमात्माको साथ रखकर पाप करे उसको पापकी वासना छूटती है, पापकी आदत धीरे-धीरे छूटती है। पापकी आदत छोड़नेका यह एक ही उपाय है। मनमें पाप आवे, खोटा विचार आवे, आंखमें विकार आवे उस समय परमात्माके नामामृतका पान करोगे तो विषय तुमको नही पकड़ सकेंगे।

भोगी मनुष्य किसी दिन योगी नहीं हो सकता, कलिकालका मनुष्य भोगी है। वह योगी होना चाहे तो उसे जल्दी सफलता नहीं मिलेगी। कलियुगके मनुष्योंके लिये नामामृत ही एक सरल उपाय है।

रामनाम कलि अभिमत दाता। हित परलोक लोक पितु माता॥
नहिं कलि करम न भगति बिबेकू। राम नाम अवलम्बन एकू॥

परमात्माकी अपेक्षा भी प्रभुका नाम श्रेष्ठ है। जगत रामजीके आधीन है, परन्तु श्रीराम नामके आधीन हैं। जहाँ नाम है वहाँ प्रभुको प्रगट होना पड़ता है। रूप तो परतंत्र है, परन्तु नाम स्वतंत्र है। जहाँ वैष्णव प्रेमसे श्रीराम नामका जप करते है वहाँ भगवानको प्रगट होना ही पड़ता है।

थोड़ा विचार करोगे तो ध्यानमें आवेगा कि परमात्माका स्वरूप जब नामसे प्रगट होता है तभी जीवको लाभ है। ईश्वर तो सर्वव्यापक है, सर्व-कालमें और सब

ठिकाने विराजा हुआ है। परन्तु जीवके लिये इसका अधिक उपयोग नही। इस सर्व-व्यापक परमात्माको महापुरुष नामसे प्रगट करते है।

निर्गुण निराकार ईश्वर सर्वकालमें है और सबमे हैं। देश-कालकी उपाधि ईश्वरके लिये नही। अमुक स्थानमें ईश्वर है अमुकमें नही, ऐसा नही है। परमात्मा अन्दर बाहर सर्वत्र है। ईश्वर अपने अन्दर है, फिर भी जीव अज्ञानी है, अन्दर भगवान विराजे हुए हैं फिर भी जीव अत्यन्त दु खी होता है। किसीकी छातीमे बहुत दर्द हो तो अन्दर विराजे हुए परमात्माको दया क्यो नही आती? कोई बहुत रोता हो तो अन्दर जा ईश्वर है वह उसका दु ख क्यो नही दूर करता? निर्गुण निराकार ईश्वर न तो दयालु है न निष्ठुर ही है।

ईश्वर अन्दर है फिर भी जीव दु खो है। जो भगवान अपना दु ख दूर न करे वह भगवान किस कामका? निर्गुण निराकार ईश्वर अन्दर है, बाहर है, सर्व-व्यापक है। वह किसीको सुख देता नही और किसीका दु ख दूर कर सकता नही। वह है केवल यही बात है। दीपकके प्रकाशमें कोई बहुत रोता हो तो दीपकको दया आती है क्या? दीपक निष्ठुर भी नही दयालु भी नही। वह प्रकाश देता है। दीपकके प्रकाशमे कोई पाप करता है या कोई पुण्य करता है, दीपकके प्रकाशमे कोई हँसता है या कोई रोता है, दीपक कहता है कि मेरा इससे कोई सम्बन्ध नही। मेरा कोई मित्र नही, मेरा कोई शत्रु नही। अन्दर जो भगवान विराजा हुआ है वह दीपक जैसा है। वह केवल प्रकाश देता है। वह तेजोमय है। मन, बुद्धि, इन्द्रियोको प्रकाश देता है। निर्गुण, निराकार ईश्वर द्वारा कोई भी क्रिया नही होती। निर्गुण, निराकार अन्तर्यामी परमात्मा किसीका दु ख दूर करता नही।

जब कि सगुण भगवान तो दयालु हैं। पर सगुण परमात्मा अधिकारी जीवके ऊपर ही कृपा करते हैं। रामजी जब प्रत्यक्ष विराजते थे तब हम भी किसी न किसी स्थानमें अवश्य थे ही। और होने पर भी अब वर्तमानमें इस भवाटवीमे भटक रहे हैं। रामजीका दर्शन अनेक जीवोको हुआ, परन्तु सबके सब नही सुधर गये, सभीको मुक्ति नही मिल गई। अधिकारी जीवोको ही रामजी अपनाते हैं।

सगुण परमात्मा कृपा तो करते हैं, परन्तु कृपा करनेसे पहले थोड़ी कसौटीपर कसते हैं कि यह लायक है कि नही? सेर-दो-सेर साग खरीदना हो तो बहुतसे आदमी पूरा बाजार घूमते हैं। एक साधारण वस्तु भी मनुष्य कसौटी कसे बिना नही लेता। तब सगुण परमात्मा कृपा करनेसे पहले थोड़ी कसौटी तो कसता ही है कि यह जीव कितना लायक है? लायक है कि नही?

निर्गुण निराकार ईश्वर तो कृपा करता ही नहीं, सगुण परमात्मा जो अधिकारी जीव है उसके ऊपर ही कृपा करते है। जब कि श्रीराम नाम तो अनधिकारीको भी अधिकारी बनाता है। परमात्माका नाम स्वरूप सबकी अपेक्षा श्रेष्ठ हैं। निर्गुण, निराकार ईश्वर और सगुण साकार परमात्मा—इन दोनोंकी अपेक्षा भी नाम-स्वरूप श्रेष्ठ है।

निर्गुण स्वरूप सूक्ष्म होनेके कारण आंखोंको दीखता नही, हाथमे आता नहीं। उसका अनुभव बुद्धिसे होता है। भगवानका सगुण स्वरूप इतना तेजोमय होता है कि उस तेजको सहन करनेकी शक्ति अपनेमें नही है। निर्गुण सूक्ष्म है, सगुण तेजोमय है। इसलिये अपने जैसोंको तो भगवानका नाम-स्वरूप ही अति उत्तम है। भगवान स्वयंके स्वरूपको छुपा सकते हैं, परन्तु अपने नामको छुपा सकते नही। नाम-स्वरूप प्रगट है।

सुमरिअ नाम रूप बिनु देखे। आवत हृदय सनेह बिसेषे॥
नाम-रूप गति अकथ कहानी। समुझत सुखद न परति बखानी॥
अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी। उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी॥

तुलसीदास महाराजने तो रामायणमें श्रीराम नामको खूब प्रणाम किया है। रामजीने अहल्याका उद्धार किया; परन्तु अहल्याजी लायक थी, श्रीरामचरणका स्मरण करती थी, श्रीराम नाम दुर्बुद्धि अहल्याका विनाश करता है।

राम एक तापस तिय तारी। नाम कोटि खल कुमति सुधारी॥

रामजीने तो एक अहल्याका उद्धार किया, परन्तु आज हजारों वर्ष हो गये राम नामसे अनेक जीवोंका उद्धार हुआ है। रामजी विराजते थे तब तो बहुत थोड़े जीवोंका प्रभुने कल्याण किया है; जब कि आज प्रत्यक्ष श्रीराम नहीं है, परन्तु राम-नामका आश्रय ग्रहण करनेसे तो घने जीवोंका जीवन सुधर रहा है।

नाम अधारे अमित खल, वेद विदित गुन गाथ।

एक बार राजमहलमें एक नोकर काम करता था। उसकी नजर राज-कन्याके ऊपर पड़ गई। राज कन्या बहुत सुन्दर थी। एक बार ही राज-कन्याको देखनेके बाद वह नोकर अपने मनकी शांति रख नही सका। उसका मन चंचल हो गया। पूरे दिन वह राजकन्या ही का चिन्तन करने लगा। उसको खाना ही अच्छा नही लगने लगा, रातको नीद नही आती थी। उसकी पत्नी रानीकी दासी थी। वह रानीकी खास सेवा करती थी। रानीका उसके ऊपर स्नेह भी था।

दासी पतिव्रता थी। वह पतिदेवको दुःखी देखकर बारम्बार पूछती कि तुम मुझे इस समय उदास क्यों लग रहे हो? पतिने कहा—मेरा दुःख दूर कर सके ऐसा कोई नही। पत्नीने पूछा—ऐसा तुमको कौनसा दुःख है?

पतिने कहा—राजकन्याको मैंने जबसे देखा है तभीसे मेरा मन हाथमे नही रहा, । किसी भी प्रकारसे राजकन्या मुझे मिले तो ही मैं सुखी हो सकूँगा, परन्तु यह सम्भव ही नही । पत्नीको दया आयी । उसने कहा—मैं युक्ति करूँगी ।

दासीने रानीकी भारी सेवा करनी आरम्भ करदी । सेवामें वशीकरण होता है । एक दिन रानीने दासीसे पूछा—आज तू क्यो उदास लग रही है ?

दासीने कहा—मैं क्या कहूँ ? पतिका सुख यही मेरा सुख है । पतिका दुःख ही ही मेरा दु.ख है । मेरे पतिदेव दु.खी है ।

रानीने पूछा—दुखका कारण क्या है ? दासीने कहा—महारानीजी ! कारण कहनेमे मुझे बहुत दुःख होता है, संकोच होता है । राजकन्याको देखा है तबसे उनका मन चचल हो गया है । उनकी ऐसी इच्छा है कि राजकन्या उनको मिल जावे ।

रानीने सत्सग किया हुआ था ही । उसने विचार करके कहा—तेरे पतिको मैं अपनी कन्या देनेको तैयार हूँ । परन्तु तू उससे एक काम करने को कह । गाँवके बाहर बगीचेमें बैठकर वह नकली साधुका वेष धारण करे । साधु बन कर वहाँ श्रीराम-श्रीराम जप करे । आँख उघाडे नही । आँख बन्द करके ही जपकरे । मै राजमहलमे से जो कुछ भेजूँ उसीको खाना है दूसरा कुछ भी खाना नहीं, बोलना भी नहीं । किसी पर दृष्टि डालनी नही है । छह महीना तक इस प्रकार अनुष्ठान करे तो मै अपनी कन्या उसको देनेको तैयार हूँ ।

दृष्टांतको अधिक लम्बानेकी आवश्यकता नही हुआ करती । वह नकली साधु बना । गाँवके बाहर बगीचेमे बैठकर रामनामका जप करने लगा । रानीने इस प्रकार व्यवस्था की जिससे राजमहलमे से उसे बहुत सादा भोजन दिया जाने लगा । भक्तिमे अन्नदोष विघ्न-कारक होता है । राजसी तामसी अन्न खाने वाला बराबर भक्ति नही कर सकता । और कदाचित् वह करे भी तो उसे भक्तिमे आनन्द आता नही । जिसका भोजन अत्यन्त सादा है, सात्विक है, वही भक्ति कर सकता है । रानीने विचार किया हुआ था कि छह महीने तक सादा, सात्विक, पवित्र अन्न खाय और रामनामका जप करे तो आज जो इसकी बुद्धि बिगडी हुई है, वह छह महीनोमे सुधर जायेगी ।

नकली साधु होकर, आँख बन्द रखकर, राज-कन्याके लिये वह रामनामका जप करता था । रामनामका निरन्तर जप करनेसे इसको परमात्माका थोड़ा प्रकाश दीखने लगा था । दो महिना व्यतीत हुये, चार महीना व्यतीत हुये । धीरे धीरे उसका मन शुद्ध होने लगा । पीछे तो मन इतना अधिक शुद्ध हो गया कि राज्य-कन्याके बारेमें इसको जो मोह हुआ था वह अब छूट गया ।

अन्नसे मन बनता है। अन्नमयं सौम्य मनः। पेटमें जो अन्न जाता है उसके तीन भाग होते हैं। अन्नका स्थूल भाग मलरूपसे बाहर आता है। अन्नके मध्य भागसे रुधिर और मांस उत्पन्न होता है। अन्नके सूक्ष्म भागसे मन बुद्धिका संस्कार बनता है। जिसके चरित्र पर तुमको पूर्ण विश्वास नही उसे अपनी रसोईमें मतआने दो। कदाचित् रसोई घरमें आ भी जावे तो उसको अन्न-जलको छूने न दो।

पूर्व साधुने छह महीने तक नियमसे सादा भोजन किया। आँख बन्द रखकर, नक़ली साधु होकर रामनामका जप किया। छह महीनोंके उपरान्त वह सच्चा साधु बन गया। उसके हृदय और स्वभावका परिवर्तन हो गया। रानी राजकन्याको लेकर वहाँ आयी। उसने कहा कि महाराज! अब आँख खोलिये। मैं अपनी कन्या तुमको देने आयी हूँ। उस व्यक्तिने कहा—अब मुझको देखने की इच्छा होती नही। किसी सुन्दर राजकुमार के साथ इसका विवाह करदो। मैं इसको प्रणाम करता हूँ। मुझसे भूल हुई थी।

राम नामसे अनेकों की बुद्धि सुधरती है। दुर्बुद्धि ही राक्षसी है। रामचन्द्रजीने अहल्याका उद्धार किया इसमें क्या आश्चर्य्य है? राम नाम अनेक जीवो की दुर्बुद्धि सुधारता है। रामजी की तुलनामें भी रामनाम की महिमा विशेष है।

श्रीराम नामके साथ प्रीति करोगे तो पाप छुटेगा। श्रीराम-नामके साथ प्रीति करोगे तो मनका मैल धुलेगा। एक पैसाका भी खर्च नहीं है। 'श्रीराम श्रीराम श्रीराम' जप करो। तुम्हारा कल्याण होगा। तुम खूब जप करोगे न तो तुमको ऐसा अनुभव होगा कि ठाकुरजी मेरे साथ हैं। नाममें से रूप प्रगट होता है। परमात्माके जिस नामका तुम सतत जप करोगे, प्रभुका वही स्वरूप तुम्हारे साथ रहेगा। नाम ही रूपको प्रगट करता है। भगवान् शंकर माता पार्वती को यह कथा सुना रहे हैं—

यत्पाद पद्म युगलं तुलसीदलाद्यैः सम्पूज्य विष्णुपदवीमतुलां प्रयान्ति।
तेनैव किं पुनरसौ परिरब्ध मूर्तिं रामेण वायुतनयः कृतपुण्य पुंज॥

प्रभुने हनुमानजीको आलिगन किया। फिर हनुमानजीने लंकाका समस्त वर्णन किया। तब रामजीने कहा—लंका इस प्रकार की है तो फिर किस प्रकारसे वहाँ जाना सम्भव हो सकेगा? सुग्रीवने कहा—आपचिंता न करो। ये वानर आपके लिये प्राणों की भी आहुति देने को तैयार हैं। ये समुद्र कूद जायेंगे। समुद्रको लाँघ कर लंकामें जावेंगे। शीघ्र ही मंगल मुहूर्त आने वाला है।

आश्विनी शुक्ल दशमी श्रवणर्क्ष समन्विता।

विजय दशदमीके इस शुभ मुहूर्तमें प्रयाण करे यही योग्य है। वानर सेनाके साथ प्रभुने विजयादशमीके दिन प्रयाण किया।

रामं कामारि सेव्यं भवभयहरणं कालमत्तेभसिंहं
योगीन्द्रं ज्ञानगम्यं गुणनिधिमजितं निर्गुणं निर्विकारम् ।
मायातीतं सुरेशं खलवध निरतं ब्रह्मवृन्दैकदेवं
वन्दे कन्दावदात सरसिजनयन देवमुर्वीशरूपम् ॥

(५८)

राघवं शरणं गतः

श्रीरामचन्द्रजीने वानर सेनाके सहित प्रयाण किया उसी समय हनुमानजीने इस प्रकारसे गर्जना की कि उसे सुनकर सब राक्षस राक्षसी घबडा गये ।

जय जय राजाराम की, जय लक्ष्मण बलवान ।
जय कपीश सुग्रीव की, कहत चले हनुमान ॥

सियावर रामचन्द्रकी जय............
पवनसुत हनुमान की जय............
बोलो भाई सब सन्तन की जय......

प्रभु समुद्रके किनारे आये । श्रीरामचन्द्रजी सर्व समर्थ है ऐसा होवे पर भी उन्होंने समुद्रको मान दिया । समुद्रका वन्दन करके श्रीराम किनारे पर विराजे । श्रीरामचन्द्रजीने कहा—अब समुद्रदेव हमको कोई मार्ग देवे तो हम लंकामे जायगे ।

इस ओर, रावणने लंकामें सभा की । सभामें उसने मन्त्रियो से पूछाकि अब क्या करना चाहिये ?

तब मन्त्रियोने कहा—आप तनिक भी चिन्ता मत करो। हनुमान आया उस समय हम गाफिल थे । ये वन्दर क्या कर सकेगे ? ऐसा मानकर हम सावधान नहीं रह सके नर और वानर तो हमारे आहार है । आप तनिक भी चिन्ता मत करिये । हम सबका विनाश कर देंगे ।

जितेहु सुरासुर तब श्रम नाहीं, नर वानर केहि लेखे माँही ।

सभी देवता और राक्षसोको खेल-खेलमे ही जीत लिया तो इन विचारे नर वानरोकी क्या बिसात है ?

उसी समय विभीषण सभामे आये। विभीषणने रावणको ज्ञान दिया कि रामजीके बाण जिस समय लंकाको छिन्न-भिन्न करेंगे उस समय इन्द्रजित अथवा कुम्भकर्ण भी तुम्हारा रक्षण नही कर सकेगे ।

स्थातुं न शक्ता युधि राघवाग्रे ।

रामजीके आगे खड़ा रह सके ऐसा कौन है? ये सब तुमको अच्छा लगे इसलिये ऐसा बोलते हैं। परन्तु श्रीराम तो परमात्मा हैं।

तात राम नहिं नर भूपाला, भुवनेश्वर कालहु के काला ।
ब्रह्म अनामय अज भगवन्ता, व्यापक अजित अनादि अनन्ता ।

अकारण ही रामजीके साथ आपने विरोध किया है यह योग्य नहीं। रामजीका एक सेवक हनुमान यहाँ पर आया और वह सम्पूर्ण लंका जला कर गया। कोई भी उसको पकड़ न सका, मार न सका। ये सब जो बातें करते हैं वे विश्वास करने योग्य नहीं। मेरी सम्मति है कि आप रामजीकी शरणमें चले जाओ।

विभीषणने सुन्दर ज्ञान दिया, परन्तु वह रावणको नहीं सुहाया। रावणने सभामें विभीषणका अपमान करते हुए कहा—मेरे घरका खाकर पड्डा पुष्ट हुआ है और मेरे शत्रुकी तू प्रशंसा कर रहा है।

जिअसि सदा शठ मोर जिआवा, रिपु कर पक्ष मूढ़ तोहि भावा ।

मेरा खाकर मेरे शत्रुको श्रेष्ठ समझता है! ज्ञाति भाई ही ऐसे होते हैं कि अपने भाईके ही विनाश की अपेक्षा रखते।

विनाशमभिकाङ्क्षन्ति ज्ञातीनां ज्ञातयः सदा ।

तू मेरा भाई होकर तपस्वियोंका बखान करता है। मेरे विनाशकी इच्छा रखनेवाला तू लंकामें क्यों रह रहा है? तू चला जा यहाँसे। तू मेरी लंकामें मत रह।

रावणने विभीषणका अपमान किया। विभीषणने वन्दन किया तब रावणने उसको लात मारी। जिस घरमें संतका अपमान होता है उस घरका जल्दी विनाश होता है। रावणकी लंकामें संत विभीषण विराजता था। विभीषणका पुण्य रावणका रक्षण करता था। प्रत्येक घरमें एक-एक पुण्यात्मा, दैवी जीव होता है। उसके पुण्य-प्रतापसे वह घर सुखी होता है। उसको विदायगी होनेसे सभी दुःखी हो जाते हैं।

भागवतमें कथा आती है—दुर्योधनने विदुरजीका अपमान किया। दुर्योधनने विदुरजीसे कहा—तू दासी पुत्र है। मेरे घरका अन्न खाकर पड्डा जैसा पुष्ट हुआ है और मेरी निन्दा करता है! मेरे घरका खाकर मेरे विरूद्ध काम करता है। दुर्योधनने नौकरोंको हुक्म दिया कि इस विदुरको धक्का मारकर बाहर निकाल दो। विदुरजीने विचार किया कि दुर्योधनके नौकर मुझे धक्का मारेंगे तो उनको पाप लगेगा, मैं ही सभा छोड़ कर

चला जाऊँ। सेवक लोग धक्का मारकर बाहर निकाले उससे पहिले विदुरजीने ऐसा समझ कर ही घरका त्याग कर दिया। विदुरजीके चले जानेसे कौरवोका नाश हुआ। रावणकी भी बुद्धि बिगड गयी थी। उसका विनाश-काल समीप आ गया था।

काल दण्ड गहि काहु न मारा। हरइ धर्म बल बुद्धि बिचारा ॥

जिसका काल समीप आता है उसकी बल-बुद्धिका हरण हो जाता है। रावणने विभीषणका तिरस्कार किया। विभीषणने वन्दन किया उस समय रावणने लात मारी। तब विभीषणने कहा—बड़ेभ्राता !

धिक्करोपि तथापि त्वं ज्येष्ठो भ्राता पितु समः।

बड़ा भाई पिता समान होता है। तुम मेरे पिताके समान हो। भले ही तुम मुझे लात मारो, मेरा तिरस्कार करो, परन्तु मैं तुम्हारे चरणोमे वन्दन करता हूँ। मैं तुम्हारा भाई हूँ। मुझे तुमसे स्नेह है। बड़े भ्राता! फिरसे तुम्हारे हाथ जोड़कर कहता हूँ कि जो यह पाप करते हो वह ठीक नही। तुमको पीछे पछताना पड़ेगा। रामजी परमात्मा हैं। परमात्माके साथ विरोध करो यह उचित नही। रामजीके साथ वैर करोगे तो वंशका विनाश हो जावेगा। फिर जैसा तुमको उचित जान पड़े वैसा करो। मुझे तुम चले जानेको कहते हो तो मैं अब तुम्हारी लकामे रहूँगा नही। मैं रघुनाथजीकी शरण जा रहा हूँ।

विभीषण लंका छोड़ गया। विभीषण जिस समय लकामेसे गया उसी क्षण सभी राक्षस आयु-हीन हो गये। साधु-पुरुषका अपमान सर्वनाश करता है। विभीषण श्रीरामजी-के पास आकाश मार्गसे गये। उस समय सम्पूर्ण रास्तेमे वे श्रीरामजीके चरणोका स्मरण करते रहे। तुम घरसे मन्दिरके दर्शन करने जाओ, उस समय किसीका मकान आदि मत देखो, किसीका मुख देखनेकी इच्छा मत रखो। घरसे मन्दिर जाओ तब तक मार्गमे भगवत्-स्मरण करते हुए चलो।

मार्गमें विभीषण पवित्र विचार करते। भगवान शकरने जिसके स्वरूपको हृदय-में रखा है उसका ध्यान करते हुये परमात्माका ही विचार करते थे—

हर उर सर सरोज पद जेई। अहोभाग्य मैं दिखिहँउ सोई ॥

आज मैं धन्य हो गया हूँ। मेरा अहोभाग्य है कि आज मैं परमात्माकी शरणमे जा रहा हूँ। क्षणभर विभीषणको शका हुई कि रामजी मुझको शरणमे लेगे या नही ? रावणका भाई समझकर मेरा तिरस्कार करेगे तो ? फिर विचारते कि वे तो अन्तर्यामी हैं। मेरा शुद्ध भाव है। परमात्मा मुझे अपनावेगे।

विभीषण समुद्रके किनारे आये और हाथ जोड़कर वानरोंसे कहा—

सोऽहं परुषि तस्तेन दासवच्चावमानितः ।
त्यक्त्वा पुत्रांश्च दारांश्च राघवं शरणं गतः ॥

मैंने रावणको बहुत समझाया परन्तु उसने माना नही । उसने मेरा तिरस्कार किया, मुझे लात मारी । मैं रामजीकी शरणमें आया हूं । वानरोंने रामजीको समाचार दिया । भगवान श्रीराम तो सभी कुछ जानते थे । फिर भी रामजीने सुग्रीवसे पूछा कि यह कौन आया है ?

सुग्रीवने कहा—यह रावणका भाई विभीषण है। रामजीने फिर पूछा—यह क्या कहता है ? सुग्रीवने कहा—शरणं गतः—शरणमें आया है ऐसा कहता है । रामजीने पूछा—तुम्हारा क्या विचार है ?

सुग्रीवने कहा—महाराज ! आप मुझसे पूछते हो ? मुझे तो ऐसा लगता है कि यह युद्धका समय है । राजनीति ऐसा कहती है कि शत्रुका विश्वास नहीं रखना चाहिये । यह रावणका भाई है, शत्रुका भाई है । इसपर विश्वास रखना उचित नही ।

भेद हमार लेन सठ आवा । राखिअ बाँधि मोहिं अस भावा ॥

यह कोई भेद लेने आया हुआ है । कुछ कपट करने आया होगा ऐसा लगता है। आप आज्ञा करो, तो मैं इसको बाँधकर कैद करलूं । दूसरोंकी भी यही सलाह मिली । विलक्षण बुद्धिवाले हनुमानजी महाराज वही विराजे हुए थे । हनुमानजीने कहा—यह कपटसे नही बोलता है । इसका स्वर आर्त है । स्वरेण जायते आर्तः । इसके उच्चारणसे ऐसा लगता है कि यह दुःखी होकर आया है ।

हनुमानजीने कृपा की । विभीषणकी शरणागति सिद्ध करनेवाले श्रीहनुमानजी थे। प्रभुने कहा—सद्भावसे बोलता हो अथवा कुभावसे बोलता हो, परन्तु कहता है 'शरणं गतः' । कोई भी जीव मेरे सन्मुख आवे और कहे कि मैं शरणमें आया हूँ; नाथ ! मैं तुम्हारा हूँ; उसको अभयदान करना मेरा दृढ व्रत है ।

सकृदेव प्रपन्नाय मयि तवास्मीति याचते ।
अभयं सर्व भूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ॥

एक बार जीव परमात्माके सन्मुख जाकर कहे कि नाथ ! मे तुम्हारा हूँ, तो मालिक तो अति उदार हैं, दयालु हैं, जीवके अपराधको भूल जाते हैं। अपराध करना यह जीवका स्वभाव है, जीवके अपराधको भूल जाना यह प्रभुका स्वभाव है । शरणागति यह जीवका धर्म है, शरणमें आये हुए की रक्षा करनेका धर्म परमात्माने अपनाया है । सब

प्रकारका अभिमान छोडकर जीव हृदयसे दीन बनकर परमात्माको साष्टांग वन्दन करे, शरणमे जाये, तो शरण आये हुए जीवको परमात्मा उपेक्षा नही करते, चाहे भले ही वह जीव कितना ही पापी क्यो न हो। जिसको किये हुए कर्मोंका पछितावा होता है, जो हृदयसे दीन होकर परमात्माकी शरणमें जाता है, दोषो यद्यपि तस्य स्यात्, उसके दोष परमात्मा देखते नही। प्रभु कहते है—उसके समस्त दोषोको, उसके समस्त पापोको में नष्ट कर देता हूँ।

सन्मुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहि तबहीं॥

सुग्रीव ! तुम राजनीतिमे निष्णात हो। तुम कहते हो वह बात सत्य है शत्रुपर विश्वास न किया जाय। परन्तु मै क्या करूँ ? शरणमें आये हुएका त्याग न करना मेरा नियम है। फिर यह कपट भी करेगा उससे क्या हो सकेगा ? यह अपना भेद लेकर क्या कर सकेगा ? मेरा लक्ष्मण इतना समर्थ है कि अकेला ही सब राक्षसोका विनाश करनेमे शक्य है। मेरी इच्छा है कि तुम विभीषणका सम्मान करो। उसको सम्मानके साथ मेरे पास ले आओ।

प्रभुने विचार किया कि मै अब विभीषणको शीघ्र ही राजा बनानेवाला हूँ। सुग्रीव किष्किन्धाके राजा हैं। राजाका स्वागत करने राजा जाये यही योग्य है। सुग्रीवने विभीषणका सम्मान किया और उसे श्रीरामचन्द्रजीके पास ले आये।

कोई भी जीव परमात्माकी शरणमें आवे तो जीवको मान देनेके लिये मालिक खडे हो जाते है। श्रीराम सर्वेश्वर है। उनको खडा होनेकी आवश्यकता नहीं, परन्तु परमात्मा सभी जीवोको मान देते हैं। वे किसी भी जीवका तनिक भी अपमान नहीं करते। विष्णुसहस्रनाममे परमात्माका एक नाम आता है—मानदा। परमात्मा सभीको मान देने वाले है।

विभीषण सम्मुख आये उस समय मालिक बैठे हुए थे। जैसे ही विभीषणने 'राघव शरण गत। राघव शरण गत.।' कहते हुए परमात्माको साष्टांग वन्दन किया वैसे ही प्रभु उठकर खडे हो गये। विभीषणको आलिंगन किया। कोई जीव ईश्वरके सम्मुख आवे तो ठाकुरजी उसे भुजाओमे भरकर भेंट करते है कि मेरा अंश है, मुझसे बिछुड़ा पड़ा था। आज मेरे पास वापस आ गया। श्रीरामचन्द्रजीने विभीषणको अपनाया, उसको पास बैठाया। विभीषणने परमात्मासे कहा—

भवन्तं सर्वभूतानां शरण्यं शरणं गतः।
परित्यक्ता मया लंका मित्राणि च धनानि च॥
भवद्गतं हि मे राज्यं जीवितं च सुखानि च।

मैं लंकाका, मित्र, परिवार, धन, सम्पत्ति, आदिका त्याग करके आपकी शरणमे आया हूँ। अब आप ही मेरी गति हो। परमानन्द हुआ। श्रीरामचन्द्रजीने विभीषणका उसी समय राज्याभिषेक कर दिया।

इसके पश्चात् सुग्रीवने कहा—विभीषण! तुमको इनकी सहायता करनी है। विभीषणने कहा—रामजीकी मैं क्या सहायता कर सकूँगा? ये तो परमात्मा हैं। इनकी तो मैं सेवा कर सकता हूँ। मैं बिल्कुल निष्कपट होकर प्रभुकी सेवा करूँगा।

भगवान शंकर माता पार्वतीजीको यह कथा सुना रहे हैं।

विनय न मानत जलधि जड़, गए तीन दिन बीत।
बोले राम सकोप तब, भय बिनु होइ न प्रीत॥

तीन-तीन दिनसे श्रीराम समुद्रको मना रहे थे, परन्तु समुद्र मानता नही था। तब प्रभुने लक्ष्मणजीसे कहा—लक्ष्मण तुम धनुषबाण लाओ। यह समुद्र मुझको क्या समझता है? मेरा अपमान करता है! धनुषके ऊपर बाण चढ़ाकर आग्नेयास्त्रका प्रयोग करके मैं शीघ्र ही समुद्रको सुखा डालता हूँ।

श्रीरामचन्द्रजी धनुषबाण लेकर तैयार हुए, उस समय समुद्रदेव घबड़ाया। सुवर्णकी थालीमें अनेक रत्नोंकी भेंट लेकर सम्मुख उपस्थित हुआ। रघुनाथजीको प्रणाम किया। प्रभुसे क्षमा माँगी।

श्रीरामचन्द्रजीने उससे कहा—एक बार धनुषके ऊपर चढा हुआ मेरा बाण मैं वापस तरकसमे रखता नही, इस बाणका मैं अब क्या करूँ? यह मुझे बतलाओ। समुद्रने कहा—महाराज! मेरे उत्तर किनारेपर अनेक राक्षस है। वे मुझे कष्ट पहुँचाते हैं। इनका आप विनाश कर दीजिये। वानर सेनामें नल और नील है वे पुल बाँधेंगे। वे शिल्प-शास्त्रके ज्ञाता है। आप पुल बाँधोगे तो आपकी कीर्ति अखण्ड रहेगी।

श्रीरघुनाथजीकी आज्ञा हुई जिससे वानर पर्वतोंसे मोटे-मोटे पत्थर ले आये। नल और नीलने समुद्रके ऊपर सेतु-बन्धन आरम्भ कर दिया। उस समय—

सेतुमारभमाणस्तु तत्र रामेश्वरं शिवम्।
संस्थाप्य पूजयित्वाह रामो लोक हिताय च॥

श्रीरामचन्द्रजी नित्य नियमसे भगवान शंकरकी पूजा करते थे। समुद्र किनारेकी दिव्य भूमि देखकर श्रीरामचन्द्रजीको आनन्द हुआ और उन्होने संकल्प किया कि इस स्थानपर मैं शिवजीकी स्थापना करूँगा। परन्तु वहाँ कोई शिवलिंग मिला नही। हनुमानजीको शिवलिंग लेनेके लिये काशी भेजा। हनुमानजीको लौटनेमें विलम्ब हो गया। तब तक

रघुनाथजीने रेतीका शिवलिंग बनाकर वहाँ रामेश्वरकी स्थापना कर दी। अनेक ऋषि वहाँ आये थे। श्रीराम शिवजीकी पूजा करने लगे। भगवान शंकरको आनन्द हुआ। लिंगमेंसे शिव पार्वतीजी प्रगट हुए।

ऋषियोने रामजीसे पूछा—महाराज! रामेश्वरका अर्थ समझाइये। श्रीरघुनाथजीने कहा—

रामस्य ईश्वरः यः सः रामेश्वरः।

जो रामके ईश्वर हैं उन्हें रामेश्वर कहते हैं। मै शिवजीका सेवक हूँ। शिवजी मेरे स्वामी हैं। तब शिवजीने कहा—रामेश्वरका अर्थ ऐसा नही। मै रामका ईश्वर नही। मै तो रामजीका सेवक हूँ। रामेश्वरका अर्थ तो यह है—

रामः ईश्वरो यस्य सः रामेश्वरः।

राम जिसके स्वामी है उनको रामेश्वर कहते हैं। मे रामदास हूँ। मै सब दिन राम-नामका जप किया करता हूँ, रामजीका ही ध्यान धरता हूँ। शिवजी कहते है—राम जिसके स्वामी हैं उनको रामेश्वर कहते हैं, और रामजी कहते हैं—रामके जो स्वामी हैं उन्हें रामेश्वर कहते हैं। दोनोमे मूल रूप झगड़ा खड़ा हो गया। भगवान शकर कहते हैं कि तुम मेरे स्वामी हो, मै तुम्हारा सेवक हूँ। रामजी कहते हैं कि नही, नहो ऐसा नही। तुम मेरे स्वामी हो, मै तुम्हारा सेवक हूँ।

ऋषियोने पीछे निर्णय किया कि तुम दोनो एक ही हो, इसलिये ऐसा कहते हो।

रामस्तत्पुरुष ब्रूते बहुव्रिहिर्महेश्वर.।
रामेश्वर पदे प्राप्ते ऋषयः कर्मधारयः॥

शिव और राम दोनों एक ही हैं। हरि-हरमे भेद रखने वालेका कल्याण नहीं होता, रामायणका यह दिव्य सिद्धान्त है।

सिव पद कमल जिन्हहिं रति नाहीं। रामहिं ते सपनेहु न सुहाहीं॥
बिनु छल बिस्वनाथ पद नेहू। राम भगत कर लच्छन एहू॥

भागवतमें भी अनेकवार इस सिद्धान्तका वर्णन किया गया है। कितने ही वैष्णवोको शिवजीकी पूजा करनेमे सकोच होता है। अरे वैष्णवोके गुरु तो शिवजी हैं। जगतमें जितने धर्म हैं उस प्रत्येक धर्मके—सम्प्रदायके प्रवर्तक शिवजी महाराज हैं। शिवजीकी पूजासे श्रीकृष्ण-श्रीराम क्या नाराज हो जायेंगे? उन्होने तो कहा है कि शिव और हममें जो भेद रखता है वह नरकगामी बनता है।

शंकर प्रिय मम द्रोही, शिव द्रोही मम दास ।
ते नर करिहहि कल्प भरि, घोर नरक महुँ वास ॥

श्रीएकनाथ महाराजने 'भावार्थ रामायण' मे हरि-हरको अभेद बताया है। सत्व रज, और तम—इन तीन गुणोके तीन मालिक देव माने गये है। सत्वगुणका रंग श्वेत है। रजोगुणका रग लाल है। तमोगुणका रग काला है। विष्णु भगवान सत्वगुणके मालिक हैं इसलिये उनका रंग गोरा होना चाहिये, परन्तु है श्याम। शिवजी तमोगुणके मालिक हैं इसलिये उनका श्यामवर्ण होना चाहिये, परन्तु सफेद है। शिवजी गोरे और विष्णुजी काले—ऐसा क्यों हुआ? एकनाथ महाराज कहते हैं कि विष्णु गोरे ही थे और शिवजी श्याम थे। परन्तु शिवजी सब दिन नारायणका ध्यान करते हैं, वे नारायण रंगके बन गये और वे गोरे हो गये। नारायण शिवजीका ध्यान करते है उनको शिवजीका रंग आ गया और वे श्याम हो गये।

ध्यान करनेवालेमे, वह जिसका ध्यान करता है उसका स्वरूप, आकृति और स्वभाव आ जाता है। शिवजी और विष्णु परस्पर एक-दूसरेका ध्यान करते हैं इसलिये दोनोंमें अभेद हैं। शिवजी और विष्णु परस्पर प्रेम रखते हैं; परन्तु उनके भक्त परस्पर प्रेम रखते नहीं। हरि-हरमें भेद रखकर भक्तिको विगाड़ो नहीं। हरि-हर एक है।

श्रीरामचन्द्रजीने कहा है—मेरे इष्टदेव शिवजीकी जो पूजा करेंगे, भगवान शंकरका गंगाजलसे जो अभिषेक करेंगे, वे मेरी कृपासे ब्रह्महत्यादि पापोसे मुक्त होंगे। मुक्ति शिवजी देते है।

प्रणमेत्सेतुबन्धं यो दृष्ट्वा रामेश्वरं हरं ।
ब्रह्म हत्यादि पापेभ्यो मुच्यते मदनुग्रहात् ॥
सेतुबन्धे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा रामेश्वरं हरम् ।
संकल्पनियतो भूत्वा गत्वा वाराणसीम् नरः ॥
आनीय गङ्गा सलिलं रामेशमभिषिच्य च ।
समुद्रे क्षिप्ततद्भारो ब्रह्म प्राप्नोत्यसंशयम् ॥

रामेश्वरमें शिवजीका निवास है और रघुनाथजी भी वहाँ विराजे हुए हैं। हरि-हरका दिव्य स्वरूप है। प्रभुने रामेश्वरकी स्थापना की।

वानरोको आज्ञा दी जिससे वानर पत्थरके ऊपर रामनाम लिखकर पत्थरोंको समुद्रमें डालने लगे। राम-नामके ऊपर पैर न आवे इस रीतिसे पत्थरको उलटा कर समुद्रमें डालते थे। राम नामसे पत्थर भी तैरने लगे।

श्रीराम नामसे जड पत्थर तर जाय तो फिर मनुष्य क्यो न तरेगा ? श्रीराम नामसे क्या मनुष्य इस भव-सागरसे नही तर सकेगा ? विश्वास रखो, श्रद्धासे श्रीरामनामका जप करो।

ये मज्जन्ति निमज्जयन्ति च परान् ते प्रस्तरा दुस्तरे,
वार्धौ येन तरति वानर भटान् संतारयंतेऽपि च।
नैते ग्राव गुणा न वारिधि गुणा नो वानराणां गुणाः,
श्रीमद्दाशरथेः प्रतापमहिमा सोऽय समुज्जृम्भते ॥

जो पत्थर स्वय तो डूबता ही है और दूसरोको भी डुबा देता है वह पत्थर आज तैरने लगा और अनेकोको तारने लगा। यह गुण न तो पत्थरका था न समुद्रका था, न वानरोका था अथवा न नलनीलका था। यह प्रभाव तो श्रीरामका था, श्रीरामनामका था।

नलनील समुद्र पर पुल बाँध रहे थे। पहले दिन चौदह योजन पुल बांधा, दूसरे दिन बीस योजन, तीसरे दिन तीस योजन, चौथे दिन बाईस योजन और पाँचवे दिन तेईस योजन पुल बाँधा। पाँच दिनमे सेतु वन्ध हुआ। सौ योजनका विशाल पुल बँधकर तैयार हो गया।

समस्त वानर पुलपरसे समुद्र पार कर गये। लंकाके पास सुबेल पर्वत था। इस सुवेल पर्वत पर श्रीरघुनाथजी विराजे।

लकाके राजमहलकी आगासी में सिहासनके ऊपर बैठकर रावण वानर सैना को निहारने लगा। भयंकर वानर सेना थी। रावणका एक खास मत्री था। वह वानरी सेनाके एक-एक महारथीका परिचय दे रहा था, एक-एक के पराक्रमका वर्णन कर रहा था। श्रीरामचन्द्रजीसे सुग्रीवने कहा—रावण देख रहा है।

रामजीने सुबेल पर्वत परसे एक बाण छोड़ा। रावणके दस मस्तकोके ऊपरके दसो मुकुटोको उठाकर और उसके सिंहासनके सोनेके छत्रको भग करके वह बाण श्रीरामजीके तरकसमे वापस आ गया। रावणको अपशकुन हुआ। वह थोड़ा शर्माया और घरमें जा बैठा। उस समय माल्यवंत नामका राक्षस रावणके पास आया।

ततः समागमद् वृद्धो माल्यवान राक्षसो महान्।
बुद्धिमान्नीति निपुणो राज्ञो मातुः प्रियः पिता ॥

माल्यवान् रावणका नाना होता था। रावणकी माताका पिता था। वह आकर रावणको समझाने लगा कि अब तुम मेरी बात मानो। श्रीसीताजी लकामें आयी हैं तभीसे

लंकामें अनेक अपशकुन हो रहे हैं। कुछ खबर नहीं पड़ती। ऐसा लगता है कि क्या श्रीसीताजी लंकाका विनाश करनेके लिये ही पधारी है? अब राक्षसोंका विनाश होने वाला है। अब भी तुम मान जाओ। आज तो माथेके मुकुट ही गिरे है। अभी दस मस्तक नहीं गिरे। अभी समय है।

रामं नारायणं विद्धि विद्वेषं त्यज रावण।

राम ये मनुष्य नहीं हैं, परमात्मा हैं। श्रीसीताजी जगन्माता हैं। तुम वैरका त्याग करो। रावण! आज पर्यन्त तुमने संसारके समस्त सुख अनेक बार भोगे हैं। तुमको कहाँ शान्ति मिली है? संसारके सुख तो पशु-पक्षी भी भोगते हैं। आत्मा, शरीर और इन्द्रियोंसे पृथक है। अब भजनानन्द - आत्मानन्द प्राप्त करने के लिये यह सब छोड़कर वनमें जाओ, यही योग्य है।

माल्यवानने रावणको ज्ञान दिया, परन्तु यह जीव ऐसा है कि जहाँ इसका जन्म होता है, वहीं यह सुख मानता है। उसको इसे छोड़ने की इच्छा नहीं होती। मनुष्य समझकर धीरे-धीरे थोड़ा त्याग करे, यह बहुत उचित है। काल धक्का मारता है, उस समय सब माया छोड़नी पड़ती है। रावणको छोड़ना सुहाता न था।

रावणसे माल्यवानने कहा—पुलस्त्य ऋषिके वंशमें तुम्हारा जन्म हुआ। तपके प्रभावसे तुम्हें शक्ति मिली; देवताओंका पराभाव किया। तुमने बहुत सुख भोग लिया। अब बहुत हो चुका। अब तुम यह सब छोड़कर वनमें जाओ और वहाँ आदि नारायण परमात्माकी अराधना करो।

रावणने क्रोधमें भरकर कहा—तू बुढ्ढा है, इस कारण तुझे दण्ड नहीं दे रहा हूँ।

बूढ़ भएसि न तु मरतेउँ तोही, अब जनि नयन देखावसि मोही।

मुझे समझाने आया है, चला जा यहाँ से। अपना मुख न दिखा। रावणने बूढ़ेका अपमान किया। तुम कभी भी किसीका अपमान न करना। विशेषकर किसी भी वृद्धका तनिक भी अपमान करना नहीं। वृद्धोंको सदैव मान देना। जिसकी मृत्यु समीप है ऐसे वृद्ध मनुष्यको कोई सन्मुख उत्तर दे, उसका कोई अपमान करे, तो उसे बहुत दुःख होता है।

परन्तु रावणकी बुद्धि बिगड़ चुकी थी। रावणने माल्यवानका बहुत तिरस्कार किया और कहा—तू मेरे आगे तपस्वियोंकी प्रशंसा करता है। मैंने जगत्को जीता है। मुझे कौन मार सकता है? मुझे लगता है कि रामजीने तुझे यह शिक्षा दी है और

तू मुझे समझाने आया है। नर और वानर – ये तो राक्षसोके आहार है। ये क्या कर सकते हैं ?

माल्यवान समझ गया। मृत्युकी छाया पडनेपर बुद्धि विपरीत बन जाती है। रावण किसीकी मानता नही। जो मनुष्य दुराग्रही होता है, वह परिणाममे अतिशय दुःखी हो जाता है। दुःखका कारण दुराग्रह है। रावणने अपना दुराग्रह छोडा नही।

उसके उपरान्त अङ्गद संवादका प्रसङ्ग वर्णन किया गया है। अङ्गदलाल सन्धि करने रावणके दरबारमे गये। अङ्गदलालने रावणको अनेक प्रकारसे समझाते हुए कहा—

सुन रावण परिहरि चतुराई। भजसि न कृपासिंधु रघुराई ॥
जो खल भएसि राम कर द्रोही। ब्रह्म रुद्र सक राखि न तोही ॥

रावण ! तुम यह सब चतुराई छोड़कर रामजीकी शरणमें जाओ। जो रामजीका विरोध करता है, उसे ब्रह्मा, शिवजी या अन्य कोई भी देवता बचा नही सकता। परन्तु रावण माना नही। अनन्तर रावणने राक्षसोको युद्धकी आज्ञा देते हुए कहा—

मर्कटहीन करहु महि जाई, जियत धरहु तापस द्वौ भाई।

जाओ ! इस पृथ्वीको वानर हीनकर डालो और इन दोनो तपस्वी भाइयोको कैद करके ले आओ। राक्षस युद्ध करने निकल पडे। भयंकर युद्धका आरम्भ हो गया।

लंका-युद्ध

रामोजयत्यति बलो लक्ष्मणश्च महाबलः ।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणानुपालितः ॥

रामजीकी जय हो, लक्ष्मणजीकी जय हो, राजा सुग्रीवकी जय हो । इस प्रकार जय-जयकार करते हुए वानरोंने राक्षसोंको घेर लिया । वानरोंके पास अस्त्र-शस्त्र नहीं थे, वे जङ्गलमें-से बड़े-बड़े पत्थर लेकर आने लगे, वृक्ष उखाड़कर लाने लगे । वे उनसे बड़े राक्षसोंको मारने लगे, अपने नखोंसे राक्षसोंको फाड़ डालने लगे । रामजीकी दृष्टि वानरों पर थी, इस कारण वानरोंको अलौकिक बल प्राप्त था ।

रामतेजः समाविश्य वानरा बलिनोऽभवन ।

श्रीरामजीका बल वानरोंको प्राप्त होने से वानरोंकी जीत होने लगी और राक्षसोंका बहुत संहार हुआ । परम आश्चर्य हुआ । रावणको क्रोध आया; जिससे वह स्वय युद्ध करनेको निकल पड़ा । अनेको राक्षस उसके साथ थे । वह चार घोड़ों वाले रथमें बैठा हुआ था । रामजीके पास विभीषणको देखते ही रावणको अतिशय क्रोध आया कि मेरा भाई होकर मेरे शत्रुकी सहायता कर रहा है । रावणने विभीषण पर शक्तिका प्रहार किया । उसी समय लक्ष्मणजीने आगे बढकर बाण छोड़ा । इस बाणने शक्तिको छिन्न-भिन्न तो कर दिया, परन्तु उसमें-से एक बाण आया, जो लक्ष्मणजीकी छातीमें लगा ।

सा शक्तिर्लक्ष्मण तनुं विवेशामोघ शक्तितः ।

सर्व शक्तियोंके आधार तो श्रीलक्ष्मणजी है । लक्ष्मणजी शेषनागके अवतार हैं । यह साधारण शक्ति लक्ष्मणजीका क्या कर सकती थी ? परन्तु लक्ष्मणजीने लीला की । शक्तिका प्रहार होते ही लक्ष्मणजी मूर्च्छित हो गये ।

मूर्च्छितः पतितो भूमौ तमादातुं दशाननः ।
हस्तै तौलयितुं शक्तो न बभूवाति विस्मितः ॥

रावणने देखा कि लक्ष्मणजी मूर्च्छामे पड़े हैं । रावण दौड़ता गया और लक्ष्मणजीको उठानेका प्रयत्न करने लगा । परन्तु सम्पूर्ण जगत् जिस पर आधारित है, ऐसे शेषनारायण-स्वरूप लक्ष्मणजीको किस प्रकार उठा सकता है ? रावण लक्ष्मणजीका भार सहन न कर सका । हनुमानजीने देखा कि रावण लक्ष्मणजीको उठानेमें लगा हुआ

है। उन्होंने दौड़ते हुए जाकर रावणकी छातीमें मुष्ठि प्रहार किया। रावणको चक्कर आ गया। वह रुधिर वमन करने लगा।

हनुमानजीने लक्ष्मणजीको उठा लिया। हनुमानजी जब उठाने लगे तब लक्ष्मणजी हल्के हो गये। रावण उनको उठा न सका, परन्तु हनुमानजी तो अनायासमें ही उनको उठाकर रामजीके पास ले आये। लक्ष्मणजीको मूर्च्छामें पड़ा हुआ देखकर रामचन्द्रजी विलाप करने लगे। रामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीका मस्तक गोदमे रख लिया। विलाप करते हुए रामचन्द्रजी कहने लगे—जगत्‌में मेरा लक्ष्मण जैसा भाई हुआ नही। हे भाई ! तुम क्यो नही बोलते हो ?

मम हित लागि तजेउ पितु माता। सहेउ विपिन हिम आतप बाता॥
सो अनुराग कहाँ अब भाई। उठउ न सुनि मम बच बिकलाई॥

मुझको देखकर तुम बहुत प्रसन्न होते थे, आज तुम क्यो रुष्ट हो गये हो ? मेरी तुमने बहुत सेवा की है। मेरे लिये तुमने माताका त्याग किया, पत्नीका भी त्याग कर दिया। वनमें आते समय जिस प्रकार तुमने मेरा अनुसरण किया उसी प्रकार अब मे भी तुम्हारे साथ यमलोकमें जाऊँगा।

उस समय सुषेन वैद्यने श्रीरामचन्द्रजीको आश्वासन देते हुए कहा—द्रोणाचल पर्वतपर सञ्जीवनी बूटी है। उसका रस लक्ष्मणजीको दिया जाय तो लक्ष्मणजीकी मूर्च्छा नष्ट हो जायेगी। परन्तु शीघ्र ही उस वनस्पतिको ले आना चाहिये। सूर्योदयसे पूर्व ही वह वनस्पति यहाँ आ जानी चाहिये।

रघुनाथजीने हनुमानजीको सामने खड़ा देखा और कहा—तुम यह दिव्य वनस्पति ले आओ। हनुमानजी द्रोणाचल पर्वतपर जानेको तैयार हुए। रावणको खबर पड़ी। रावण दौड़ता हुआ कालनेमि राक्षसके पास पहुँचा। उसने कालनेमिसे कहा—हनुमानजी सञ्जीवनी वनस्पति लेने जा रहे हैं। तू वहाँ जाकर कोई भी कपट करके विघ्न उत्पन्न कर। हनुमानजीको लौटनेमें विलम्ब हो ऐसी युक्ति कर।

कालनेमिने कहा—भाई ! तुम्हारे पुत्र मारे गये। राक्षसी सेना भी मरी है। अब तू जीकर क्या करेगा ? अब कदाचित युद्धमें जीत भी हो जाय तो क्या लाभ ? अरे ! रामजीसे युद्धमें कौन जीत सकता है ?

भजि रघुपति करु हित आपना, छाँड़हु नाथ मृषा जल्पना।

× × ×

काल ब्याल कर भच्छक जोई, सपनेहुँ समर कि जीतिअ सोई॥

श्रीराम परमात्मा है, कालके भी काल हैं। तू मेरी मान जा, रामजीकी शरणमें चला जा। रावण तलवार निकालते हुए कालनेमिसे बोला—मुझे तू चतुराईकी बात सुना रहा है ? तू मुझे उपदेश करने वाला गुरु बन रहा है। मैं तुझे मार डालता हूँ।

कालनेमिने विचार किया कि रावणके हाथसे मरूँगा तो मेरा मरण बिगडेगा। मैं हनुमानजीके हाथसे मरूँगा तो मेरा मरण सुधर जावेगा। हनुमानजीके मार्गमें विघ्न करूँगा।

कालनेमिने द्रोणाचल पर्वतके पास मायासे एक आश्रम खड़ा किया और उसमें ऋषिका वेष धरण करके बैठ गया। हनुमानजी दौड़ कर जा रहे थे। उनको प्यास लग रही थी। यह कोई ऋषिका आश्रम है ऐसा समझ कर हनुमानजीने इस आश्रममें प्रवेश किया।

ऋषिका वेष धारण करके बैठे हुए कालेनमिने कहा—बेटा आओ, यहाँ बैठो। तुम चिन्ता मत करो।

जानामि ज्ञानदृष्ट्याहं लक्ष्मणश्चोत्थितस्त्वति ।

लक्ष्मण वहाँ जाग चुके है। यहाँ बैठे मुझे सब कुछ दिखाई देता है। अब औषधिकी आवश्यकता नही है। रामजीकी जीत होनी है।

कालनेमिकी इच्छा हनुमानजीको बातोंमें रोक रखनेकी थी। हनुमानजीने कहा—मुझे प्यास लगी है। कालनेमिने कमंडलका जल दिया। हनुमानजीने कहा—यह तो बहुत थोड़ा है। मुझे प्यास ज्यादा लगी है।

कालनेमिने एक नकली शिष्यको आज्ञा दी कि हनुमानजीको सरोवरके पास ले जाओ। हनुमानजी ! तुम वहाँ स्नान करके आना। उसके बाद मैं तुमको मन्त्र दूँगा। इस मंत्रके बल पर मुझे यहीं बैठे-बैठे सब कुछ दिखाई पड़ जाता है।

हनुमानजी महाराज जल पीनेके लिये सरोवरमें घुसे। वहाँ जलमें एक मगरी ने आकर उनका पैर पकड़ लिया। हनुमानजीने प्रहार करके मगरीका विनाश कर दिया। उस समय मगरीमे से एक अप्सराका दिव्य स्वरूप प्रगट हुआ। उस अप्सराने हनुमानजीसे कहा कि ऋषिके श्रापसे मैं मगरी बन गई थी। तुम अब शीघ्र ही द्रोणाचल पर जाओ। यह जो ऋषि तुमको मिला है वह ऋषि नही है, बल्कि कालनेमि राक्षस है।

यह सुनकर हनुमानजी दौड़ते हुए आश्रममें लौटे। कालनेमिने नाटक किया। उसने हनुमानजीसे कहा—बेटा ! तू यहाँ आकर बैठ। मैं तुझे मंत्र देता हूँ।

हनुमानजीने कहा—मत्र लेनेसे पहिले गुरुदक्षिणा तो देनी ही पड़ती है न? उन्होंने जोरसे कालनेमि पर मुष्टि प्रहार किया।

कहु कपि मुनि गुरूदछिना लेहू, पाछें हमहि मंत्र तुम देहू।
सिर लंगूर लपेटि पछारा, निजतनु प्रगटेसि मरती बारा॥

कालनेमिने राक्षसी रूप प्रगट किया। हनुमानजीके साथ उसका युद्ध हुआ। हनुमानजीने उसका विनाश किया। फिर वहांसे हनुमानजी द्रोणाचल पर्वत पर दौडते हुए गये। परन्तु वहां संजीवनी औषधिको एक बारगी पहिचान न सके। तब हनुमानजीने सम्पूर्ण द्रोणाचल पर्वत उठा लिया। देवता और गन्धर्व हनुमानजीकी जयजयकार करने लगे।

इस ओर रामचन्द्रजी वडी आतुरतासे प्रतीक्षा कर रहे थे कि हनुमानजी अब तक क्यो नही आये? रात अब पूरी होने ही वाली है। सूर्योदयका समय होने आया है॥ रामचन्द्रजी मनुष्य जैसी लीला कर रहे थे। इतने ही मे हनुमानजी द्रोणाचल पर्वत लेकर आ पहुंचे। आनन्द हुआ। श्रीरामचन्द्रजीने हनुमानजीका आलिगन करते हुए कहा कि हनुमान! आज तुम मेरे लक्ष्मणको प्राण दान देने वाले हो।

मारुतिं प्राह वत्साद्य त्वत्प्रसादान्महाकपे।
निरामयं प्रपश्यामि लक्ष्मण भ्रातरं मम॥

सुखेण वैद्यने सजीवनी बनस्पति ढूढ निकाली, उसका दिव्य रस बना कर लक्ष्मणजीके मुखमे डाला। किसी-किसी रामायणमें ऐसा भी वर्णन आता है कि हनुमानजी-को थोडा सा अभिमान हो गया कि इतना भारी पर्वत इस समय मैं ही ला सका और इसी कारणसे इसके परिणाम स्वरूप ही लक्ष्मणजी जीवित होने वाले हैं। हनुमानजीने सुखेन वैद्यराजसे पूछा कि लक्ष्मणजी कितनी देरमें जागेंगे। सुखेनने कहा—इस वनस्पतिका रस पेटमे पहुँचनेके दस पन्द्रह मिनिटमे जग जाने चाहिये। यह सजीवनी वनस्पति है।

लक्ष्मणजीके मुखमें यह रस डालनेके उपरान्त ठीक ठीक समय हो गया, परन्तु लक्ष्मणजी जागे नही। पुनः, रस दिया गया। परन्तु लक्ष्मणजीकी मूर्च्छा नष्ट नही हुई। उस समय वयोवृद्ध जाम्बवान बोले कि वैद्यराज! औषधि तो तुम्हारी ठीक है; परन्तु अनुपान बराबर नही है।

वैद्यराजने पूछा—अनुपानमे क्या करना है?

जाम्बवानने कहा—रामजीके चरणोंकी रज इस रसमे मिला कर दोगे तब लक्ष्मणजी जागेंगे। श्रीरामचरणरज ही अनुपान है।

हनुमानजीको विश्वास हो गया कि यह तो प्रभु है जो मुझे यश देते हैं। यह सब कुछ तो श्रीराम ही कर सकते थे, परन्तु मेरी कीर्ति बढ़ानेके लिये यह लीला करते हैं।

श्रीराम-चरणकी रज रसमें पंचरायी और लक्ष्मणजीके मुखमें उसके जाते ही लक्ष्मणजी जाग गये। परमानन्द हुआ। प्रभुने लक्ष्मणजीका आलिंगन किया। तत्पश्चात् भयंकर युद्ध हुआ। युद्धमें रावण थक गया। उसका कवच टूट गया। वह अत्यन्त घायल हो गया। उसे मूर्छित पड़नेकी तैयारीमें देखा, उस समय श्रीरामचन्द्रजीने कहा—आज तुम बहुत श्रमित हो गये हो। अब घरको जाओ। भोजन और विश्राम करो। अब, आज मुझे युद्ध नहीं करना, कल देखेंगे।

अनुजानामि गच्छ त्वमिदानीं बाण पीडितः।
प्रविश्य लंकामाश्वास्य श्वः पश्यसि बलं मम॥

शत्रु घायल होता है, तभी उसको मारा जाता है। परन्तु रावण घायल हुआ उस समय रामजीने युद्ध बन्द कर दिया। संसारके इतिहासमें ऐसा उदाहरण कहीं भी मिलेगा नहीं। श्रीराम अति सरल हैं, शत्रुके साथ भी सरल हैं।

रावणको आश्चर्य हुआ कि लोग जितनी रामजीकी प्रशंसा करते हैं वह कम ही है। रावण, रामजीकी शक्ति देखकर अत्यन्त घबड़ाया। उसने कुम्भकर्णको जगानेकी आज्ञा दी। राक्षस, कुम्भकर्णके पास गये। वह निद्रामें था। राक्षसोंने उसे जगाया, मदिरा पिलायी, मांस खिलाया। कुम्भकर्ण रावणके दरबारमें आया।

दरबारमें आकर कुम्भकर्णने रावणसे कहा—मैंने तुझसे पहिले ही कहा था, तू युद्ध मत कर। परन्तु तू माना नहीं इसलिये आज यह प्रसंग उपस्थित हुआ। राम देवता नहीं, परमात्मा हैं। तू परमात्माके साथ विरोध करता है। मैं तेरी सहायता करनेको तैयार नहीं।

सहायं न करिष्यामि सर्वावस्थां यदुच्यते।

तू मूर्ख है, ईश्वरके साथ विरोध करता है।

जगदम्बा हरि आन अब, शठ चाहत कल्यान।

भल न कीन्ह तैं निश्चर नाहा, अब मोहि आइ जगाएहि काहा।
अजहूँ तात त्याग अभिमाना, भजहु राम होइहि कल्याना॥

ईश्वरके साथ जो विरोध करे, उसकी सहायता कौन करे? मैं तेरी सहायता नहीं करूँगा। मैं विभीषणकी भाँति राम-चरणोंमें आश्रय लूँगा। आज भी मैं तुमसे कहता

है कि रामजीके साथ तू वैर मत कर। अहकार छोड़ दे। रामजीको शरण स्वीकार कर ले। उसीमे तेरा कल्याण है।

रावणने क्रोधमे भरकर कहा—कुम्भकर्ण ! मैने तुझे उपेक्षा करनेके लिये नही जगाया, युद्ध करनेके लिये जगाया है। निद्रा आ रही है तो चला जा यहांसे। मुझे उपदेशकी आवश्यकता नही है।

कुम्भकर्णको विश्वास हो गया कि रावण मानने वाला नही। उल्टा वह नाराज हो गया है। तब कुम्भकर्ण युद्ध करनेके लिये रण-भूमिमे गया। उनका ऐसा भयकर स्वरूप था कि वानरोको भी आश्चर्य हुआ। विभीषणने देखा कि कुम्भकर्ण युद्ध करने आया है। वह दौडता हुआ कुम्भकर्णके पास गया। उसको प्रणाम करके कहा—तुम्हारा छोटा भाई तुमको प्रणाम कर रहा है। भाई ! मे क्या करूँ। रावणको मैने बहुत समझाया परन्तु उसने माना नही। मुझे लात मारी। मेरा उसने तिरस्कार किया। इसलिये मै रामजीकी शरणमे आ गया।

कुम्भकर्णने विभीषणको उठाकर आलिगन किया और कहा—भाई ! तुमने बहुत ही अच्छा किया। हमारे वशमे तु ही एक पुण्यात्मा है। रामजीकी शरणमें तू चला गया यह बहुत उत्तम किया।

सम्यक्कृत त्वया वत्स मदग्रे मा स्थिरो भव।
युद्धे स्वीयः परो वाऽत्र ज्ञायते न मयाऽद्य हि ॥

परन्तु भाई अब मुझे कुछ भी ठीक दीखता नही, मेरा कौन है और पराया कौन है—कुछ खबर पड़ती नही। अब तू शीघ्र ही यहाँ से जा।

फिर तो रामजीने धनुष प्रत्यन्चा चढाई। कुम्भकर्णके साथ भयकर युद्ध हुआ. रामजीने कुम्भकर्णका हाथ काट डाला। वह हाथ भयंकर था। काटा हुआ हाथ वानर-सेनामे गिरा। उस समय बहुतसे वानरोने उसे कुचल डाला। कुम्भकर्ण बिना हाथके हो गया। उस समय उसने माया करके भयकर रूप धारण कर लिया। रामजीने उसके मुखपर प्रहार किया। देवता गन्धर्व रघुनाथजीको मनाने लगे कि अब इसको अधिक मत खिलाओ, जल्दी मारो।

रघुनाथजीने इन्द्रास्त्रका प्रयोग करके कुम्भकर्णका माथा काट डाला। कुम्भकर्ण गिर गया। देव गन्धर्वोने रघुनाथजीकी स्तुति करते हुए कहा—यह देवताओको अत्यन्त कष्ट देता था। आज आपने इसका उद्धार कर दिया। आज हम निर्भय हो गये। आज पृथ्वीका भार उतर गया।

रावणको जब समाचार मिला कि कुम्भकर्ण मारा गया तो वह बहुत व्याकुल हुआ ।

भ्रातरं निहतं श्रुत्वा कुम्भकर्णं महाबलम् ।
रावणः शोकसन्तप्तो रामेणा क्लिष्ट कर्मणा ॥
मूर्च्छितः पतितो भूमावुत्थाय विललाप ह ।

रावण मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा । फिर उठकर विलाप करने लगा। उस समय इन्द्रजित वहाँ आया । रावणको आश्वासन देते हुए उसने कहा—पिताजी ! आप चिन्ता न करो । मैं बैठा हूँ । मैं शीघ्र ही राम-लक्ष्मणको मारूँगा । सब शत्रुओंका विनाश करूँगा । इसी समय मैं निकुंभला गुफामें जाकर यज्ञ करता हूँ । यज्ञ कुंडमें-से जो रथ निकलेगा उसमें बैठकर मैं युद्ध करने जाऊँगा, जिससे मुझे कोई नहीं मार सकेगा ।

शत्रुओका विनाश करनेके लिये इन्द्रजित यज्ञ करने बैठा ।

रक्तमालाम्बरधरो रक्तगन्धानुलेपनः ।
निकुम्भिलास्थले मौनी हव नायोपचक्रमे ॥

अभिचार विधिसे शत्रुका वध करनेके लिये ऐसा यज्ञ होता है । विभीषणको खबर पड़ी कि इन्द्रजित इस विधिसे यज्ञ करने बैठा है । विभीषणने रामचन्द्रजीसे कहा— इन्द्रजितका यह यज्ञ परिपूर्ण हो गया तो फिर उसे कोई मार नहीं सकेगा ।

जो प्रभु सिद्ध होइ सो पाइहि । नाथ बेगि पुनि जीत न जाइहि ॥

श्रीरामचन्द्रजीने कहा—मैं आता हूँ । इन्द्रजितका संहार करता हूँ । परन्तु बिभीषणजी जानते थे कि इन्द्रजितको ब्रह्माजीका बरदान था कि बारह वर्ष तक जिसने निद्रा और आहारका त्याग किया हो उसीके हाथसे इसका मरण होगा । जो पूर्ण इन्द्रिय-जित है वही इन्द्रजितको मार सकता है । रावण ! यह कामका स्वरूप है । इन्द्रजित यह मोहका स्वरूप है । मोह मरे तो ही काम मरता है । जब तक मोह है तब तक काम-को मारना यह बहुत कठिन नहीं है । मोहको मारना यह अत्यन्त कठिन है । बारह वर्ष तक जिसने अन्नका त्याग किया हो, आहारका त्याग किया हो, निद्राका त्याग किया हो, वही मोहको मार सकता है ।

वनमे पधारनेके उपरान्त लक्ष्मणजी किसी भी दिन सोये न थे । श्रीराम शयन करते, उस समय लक्ष्मणजी रामजीकी सेवामें जागते रहते । विभीषणने रामजीसे कहा—

लक्ष्मणस्तु अयोध्याया निर्गम्यायात्वया सह ।
तदादि निद्राहारादीन्न जानाति रघूत्तम ॥

लक्ष्मणजी उसे मार सकेंगे। दूसरा कोई उसे मार नही सकेगा। रघुनाथजीने आज्ञा की—लक्ष्मण! अब तुम इन्द्रजितको मारो। रामजीका वन्दन करके लक्ष्मणजी चल दिये। वानर सेना साथ थी। निकुंभिलामे प्रवेश किया। अनेक राक्षस वहाँ इन्द्रजितकी सुरक्षा कर रहे थे। उन सब राक्षसोका विनाश किया। इन्द्रजितका यज्ञ छिन्न-भिन्न कर डाला। इन्द्रजित क्रोधसे भर गया। वह यज्ञ-क्रियासे विमुख होकर, हाथमे धनुष-बाण लेकर लक्ष्मणजीके साथ युद्ध करनेको निकल पड़ा। भयकर युद्ध हुआ। लक्ष्मणजीके प्रत्येक रोम-रोम पर उसने बाण मारे।

वाल्मीकि रामायणमे ऐसा वर्णन आता है कि अनेक बाण लगनेपर भी लक्ष्मण-जीको तनिक भी पीडा अनुभव नही होती थी।

व्रणानि सन्ति देहे मे पीड़ां जानाति राघवः।

बाण लगते हैं लक्ष्मणजीको और पीड़ा होती है रामजीको। भक्त और भगवान इस प्रकार एक ही होते हैं। इन्द्रजित महान् वीर था। उसने लक्ष्मणजीको अतिशय बाण मारे। लक्ष्मणजीका सम्पूर्ण शरीर बाणमय हो गया। बहुत रुधिर निकलने लगा। सुग्रीवने लक्ष्मणजीसे कहा—आपको बहुत परिश्रम हो गया है। तब लक्ष्मणजीने कहा—मुझे तनिक भी पीड़ा नही होती। बाण मेरे शरीरमे लगे तो हैं, परन्तु इसकी पीड़ा मुझे नही होती। लक्ष्मणजीके रोम-रोममे-से 'श्रीराम-श्रीराम' ऐसी ध्वनि निकलती थी और उससे अनेक बाण लगने पर भी लक्ष्मणजीको उसका दुःख अनुभव नही होता था। यदि उसका दुःख होता होगा तो रामजीको होता होगा। लक्ष्मणजी रामजीके अन्तर्यामी थे।

लक्ष्मण और इन्द्रजितका भयंकर युद्ध हुआ। लक्ष्मणजीने इन्द्रजितका हाथ काट डाला। फिर तो लक्ष्मणजीने प्रतिज्ञा की—

धर्मात्मा सत्यसन्धश्च रामो दाशरथिर्यदि।
त्रिलोक्यामप्रतिद्वन्द्वस्तदेनं जहि रावणिम्॥

श्रीराम धर्मनिष्ठ हैं। एक पत्नीव्रतका पालन करने वाले हैं। यह सिद्धान्त यदि सत्य हो तो यह बाण इन्द्रजितका मस्तक उड़ा देगा। लक्ष्मणने दिव्य बाणपर धनुष चढाकर 'श्रीराम-श्रीराम-श्रीराम' का जप किया। प्रतिज्ञा करके जैसे ही बाण छोड़ा कि इन्द्रजितका मस्तक कट गया। इन्द्रजित गिर पडा। गिरते-गिरते भी उसने अनेक वानरों-को घायलकर दिया। लक्ष्मणजीका जयजयकार हुआ। देव-गन्धर्वोंने पुष्प वृष्टि की।

लक्ष्मणजीने हनुमानजीके साथ रामचन्द्रजीके पास आकर प्रणाम किया। हनुमानजीने इन्द्रजितका मस्तक दिखाया। प्रभुने लक्ष्मणजीका आलिंगन करते हुए कहा—मेरे लक्ष्मणने इन्द्रजितको मारा है। इन्द्रजित मर गया अर्थात् रावण भी मरा जैसा ही है। अब रावणको मारना, यह बहुत कठिन नहीं है। इन्द्रजितको मारना ही बहुत कठिन था। रावणकी अपेक्षा भी इन्द्रजित अधिक प्रबल था।

रामजीने लक्ष्मणजीकी अत्यन्त प्रशंसा की। उस समय इन्द्रजितका मस्तक लेनेके लिये उसकी पत्नी सुलोचना वहाँ आयी। उसके विलापसे रामजीका हृदय पिघल गया। रामजी तो बड़े दयालु थे। रामजीने सुलोचनासे कहा—

कृपया तव भर्तारं करोम्यद्य सजीवितम्।

तुम कहो तो तुम्हारे पतिको मैं जीवित कर दूं। उसको एक हजार वर्षकी आयु दे दूं। रामजी इन्द्रजितको जीवित करनेको तैयार हो गये। तब सुलोचनाने मना किया। कहा—मेरे पति युद्ध करते-करते मरे है, इसलिये उन्हें वीरगति प्राप्त हुई है। आप इन्हें जीवित करेंगे तो ये मुझे उलाहना देंगे। सुलोचना सती हो गयी।

मेरे सभी राक्षसोंको मुक्ति मिले

इन्द्रजितकी मृत्यु होनेसे रावण पुत्र-वियोगमे रोने लगा। उस समय मन्दोदरी रावणको समझाने लगी कि मेरा बडा पुत्र चला गया। परन्तु अब भी तुम नहीं मानते। श्रीराम परमात्मा हैं। उनके साथ तुम विरोध करना छोड दो।

रावणने कहा—मैं जानता हूँ कि राम परमात्मा है। मन्दोदरीने कहा—राम परमात्मा हैं, यह तुम जानते हो, फिर वैर क्यो करते हो?

रावणने कहा—मैंने विचार किया है कि मैं अकेला बैठकर रामजीका ध्यान करूँ और प्रेमसे स्मरण करूँ तो मुझ अकेलेको ही मुक्ति मिलेगी। परन्तु मैं यदि रामजीके साथ विरोध करता हूँ तो मेरे सम्पूर्ण वंशका कल्याण होता है। इन राक्षसोका आहार तामसी है। ये भक्ति कर सके इस योग्य नही। ध्यान, तप, जप कर सकें इस लायक नही हैं। परन्तु यदि रामजीके साथ मैं विरोध करता हूँ तो ये सब राम-बाण-गगामे स्नान करके, अन्तकालमें रामजीके दर्शन करते-करते प्राण छोडेंगे और इस प्रकार मेरे समस्त राक्षसोंको भी मुक्ति मिलेगी।

रावण कोई बहुत मूर्ख नही था। उसने मन्दोदरीसे कहा—मैंने जान-बूझकर वैर किया है।

> रामो विष्णुश्च मा सीता जानामि प्राणवल्लये ॥
> राम हस्ता द्वयं लब्धुं हृता सीता पुरा मया ॥
> राम हस्तात्त्यक्तदेहो गच्छामि परमं पदम् ॥

मेरा भी अब उद्धार होनेको है। तू चिन्ता मत कर। मन्दोदरीको आश्चर्य हुआ। तदुपरान्त रावण युद्ध करनेके लिये निकला। रावण रथमे था और रामचन्द्रजी पृथ्वी पर थे। उसको देखकर विभीषण अधीर हो गये। उन्होने रामचन्द्रजीसे कहा—प्रभो! आपके पास रथ नही है, पगमें जूती भी नही हैं। बलवान शत्रुको किस प्रकार जीत सकेंगे? तब प्रभुने विभीषणको जो उपदेश दिया वह तुलसीदासजीकी रामायणमें आता है। उसका नाम धर्मगीता है।

धर्मरूपी रथके पहिये क्या हैं? इस रथके घोड़े कैसे हैं? उसका कवच क्या है? सारथी कौन है? इस समस्तका वर्णन धर्मगीतामें है। प्रभुने विभीषणसे

कहा—

सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य शील दृढ़ ध्वजा पताका॥
बल विवेक दम परहित घोरे। क्षमा कृपा समता रजु जोरे॥
ईस भजनु सारथी सुजाना। विरति चर्म सन्तोष कृपाना॥
दान परसु बुध शक्ति प्रचण्डा। वर विज्ञान कठिन कोदण्डा॥
अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम शिलीमुख नाना॥
कवच अभेद विप्र गुरु पूजा। एहि सम्र बिजय उपाय न दूजा॥
सखा धर्ममय अस रथ जाके। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताके॥

ऐसे धर्मरूपी रथमें जो बैठते है उन्हे कोई मार नहीं सकता। यह लौकिक रथ सच्चा रथ नहीं है। महापुरुष धर्मरूपी रथमें बैठते हैं। फिर उन्हें कोई भी मार नहीं सकता।

परन्तु प्रभुको पैदल देखकर देवताओंको क्षोभ उत्पन्न हुआ। इन्द्रराजाने विचार किया और अपने सारथि मातलिको आज्ञा दी कि रामजीके लिये यह रथ तुम ले जाओ। मातलि सारथि रथ लेकर श्रीरामचन्द्रजीके पास गया। देवताओंने प्रभुसे प्रार्थना की कि आप इस रथमे विराजो। रघुनाथजी रथमें विराज गये।

श्रीराम रावणका भयंकर युद्ध हुआ। इस युद्धका वर्णन कौन कर सकता है? आकाशमें देवता और ऋषि भी इस युद्धको देखने आये। रावण अनेक प्रकारकी माया करता था। रघुनाथजी रावणकी मायाको छिन्न भिन्न कर देते थे।

मूर्धानो रावणस्याथ बहवो रुधिरोक्षिताः।
गगनात्पतन्ति स्म तालादेव फलानि हि॥

रामजी वारम्बार बाण छोड़ते थे। जैसे वृक्ष परसे फल गिरता है उसी प्रकार रावणके मस्तक कट कर नीचे गिर पड़ते थे, परन्तु इसके फिर नये मस्तक निकल आते थे। रावणको ब्रह्माजीका वरदान था। इस कारण वह जल्दी मरता नही था। भयंकर युद्ध हुआ और उस समय विभीषणने रघुनाथजीसे कहा कि इसकी नाभिमें अमृत है।

नाभिकुंड पियूप वस जाकें, नाथ जियत रावण बल ताकें।

और इसलिये रावण मरता नही है। इसकी नाभिके अमृतको आग्नेयास्त्रसे सुखा डालिये फिर इसका मरण होगा। रावणको बरदान होनेसे इसके मस्तक अनेक बार काटे जाने पर भी नये नये उत्पन्न हो जाते हैं। नाभि वाला अमृत सूख जायगा तो फिर इसके मस्तक उत्पन्न नही होगे। तदुपरान्त रामजीने आग्नेयास्त्रका प्रयोग किया।

पावकास्त्रेण संयोज्य नाभिं विव्याध रक्षसः ।

श्रीरामचन्द्रजीने रावणकी नाभिमें आग्नेयास्त्रका प्रहार किया और फिर रावणके मस्तक और भुजाओंको काट डाला। मस्तक कट जानेसे रावणका तेज चला गया। अब इसका विनाशकाल आया हुआ था। एक मुख्य सिर और दो हाथ केवल शेष रह गये थे। उस समय मातलिने रघुनाथजीसे कहा—इसके मस्तकके ऊपर प्रहार मत कीजिये। इससे यह मरेगा नहीं। इसके हृदयमें प्रहार कीजिये। आप जल्दी ही ब्रह्मास्त्र छोड़ कर इसका मर्मस्थल बीध डालिये।

अगस्त्य ऋषिने ब्रह्मास्त्रका दान किया हुआ था। प्रभुने उस ब्रह्मास्त्रसे रावणके हृदयमें प्रहार किया और जैसे ही मर्मस्थानमें प्रहार हुआ कि ब्रह्मास्त्रके प्रतापसे रावण गिर पड़ा और मर गया।

बिभेद हृदयं तूर्णं रावणस्य महात्मनः ।
रावणस्याहरत्प्राणान्विवेश धरणीतले ॥

रावण धरातल पर गिरा उस समय देवता अत्यन्त प्रसन्न हुए। देवता और गन्धर्वोंने जयजयकार किया—सियावर रामचन्द्रकी जय। रावणके शरीरमें-से निकला हुआ दिव्य तेज रामचन्द्रजीके चरणोंमें लीन हो गया।

पश्यत्सु सर्वभूतेषु राममेव प्रविष्टवान् ।

रावण रामजीके चरणोंमें लीन हो गया। रावणको दिव्य गति प्राप्त हुई। देवताओंको आश्चर्य हुआ कि यह तो दुष्ट है, पापी है, उसपर भी बड़े-बड़े योगियोंको मिलने वाली गति इसको प्राप्त हुई है। उस समय नारदजीने सबको समझाया कि इसका यही कारण है कि भले ही वैरसे, रावण रामजीका ही ध्यान करता था। कोई भी निमित्त जीव ईश्वरके साथ सम्बन्ध रखे और ईश्वरका ध्यान करे तो उसका कल्याण ही होता है। रामजीका प्रेमसे ध्यान करे उसीका कल्याण हो उसमें क्या आश्चर्य है?

पापिष्ठो वा दुरात्मा परधन परदारेषु सक्तो यदिस्यात्
नित्यं स्नेहाद्भयाद्वा रघुकुलतिलकं भावयन्सम्परेतः ।
भूत्वा शुद्धान्तरङ्गो भवशत जनितानेकदोषैर्विमुक्तः
सद्यो रामस्य विष्णोः सुरवरविनुतं याति वैकुण्ठमद्यम् ॥

रावण वैरसे ध्यान करता था। परन्तु उस वैरसे भी परमात्माका ही चिन्तन करता था। श्रीरामका चिन्तन करते-करते प्राण त्याग करने वाला श्रीराममें लीन हो जाता है, फिर चिन्तन भले ही किसी भी भावसे हो।

भागवतमें वर्णन आया है कि निष्काम श्रीभगवानका चिन्तन कामभावसे करनेवाली गोपियाँ भगवानमय बन गई थी। शिशुपाल क्रोधसे भगवानका चिन्तन करता हुआ भगवानमय बन गया था। काम भावसे, वैरद्वेष भावसे, भय भावसे अथवा शुद्धप्रेम भावसे किसी भी भावसे मनुष्यको परमात्मामें अपने मनको सम्पूर्णरूपसे जोड़ना चाहिये, किसी भी प्रकार भगवानमें तन्मयता होनी चाहिये।

रावणको सद्‌गति प्राप्त हुई। रावणकी मृत्यु होनेपर रावणकी स्त्रियाँ रोने लगीं। उस समय विभीषणको भी दुःख हुआ। लक्ष्मणजीने विभीषणको उपदेश दिया और फिर आज्ञा दी कि रावणके शरीरका अब तुम अग्नि-संस्कार करो। विभीषणके हाथसे अग्नि-संस्कार कराया।

विभीषणने रामजीसे प्रार्थना की कि आप लंकामें पधारिये। यह समस्त राज्य आपका ही है। रामजीने कहा—मेरा नियम है कि चौदह वर्ष तक किसी ग्राममें प्रवेश नहीं करूँगा। मैं तो बाहर वनमें ही रहता हूँ। मेरी माँकी आज्ञा है कि मैं चौदह वर्ष पर्यन्त वनमें ही रहूँ। मैं यदि किसी ग्राममें प्रवेश करूँगा तो वनवासकी प्रतिज्ञा भंग होगी। लक्ष्मणजी आवेंगे।

रामचन्द्रजीने आज्ञा दी। लक्ष्मणजीने विभीषणको लंकाकी गद्दीपर बैठाकर राज्याभिषेक किया। लंकाका राज्य मिला, परन्तु प्रभुने ग्रहण नहीं किया। विभीषणको लंकाका राज्य दे दिया। प्रभुने लंकामें से एक पैसा भी लिया नहीं। लंकामें अतिशय सम्पत्ति थी। लंकाकी सम्पत्ति लंकामें ही छोड़ दी। उसमें से कुछ भी अयोध्यामें लेकर नहीं गये।

लंकाका राज्य प्राप्त हो जानेपर विभीषण दौड़ते हुए जाकर रामचन्द्रजीके चरणोंमें गिर पड़े। रामचन्द्रजीका वन्दन किया। विभीषणजी राजा हुए—ऐसा देखकर रामचन्द्रजीको अत्यन्त आनन्द हुआ। विभीषणने कहा—नाथ! यहाँका सब कुछ आपके चरणोंमें अर्पण है।

रामजीने कहा—यह सब कुछ मेरा ही है, परन्तु यह मैंने तुमको दिया है। तुझे कुछ सेवा करनी हो इन वानरोंका तू सन्मान कर।

विभीषणने वानरोंको वस्त्राभूषण दिये। तदुपरान्त विभीषणकी आज्ञासे मांगलिक स्नान कराया गया। जानकीजीने सुन्दर श्रृंगार किया। जानकीजी पालकीमें विराजीं और धीरे-धीरे पधारीं। वानरोंको श्रीसीता माँके दर्शनोंकी बहुत इच्छा थी कि माताजी कैसी हैं? हमको दर्शनकी इच्छा है। वे लोग दर्शनोंके लिये शीघ्रता करते हुए

धक्का-मुक्की करने लगे। पालकीके साथके सेवक 'हटो-हटो' बोलते हुए सभीको हटाने लगे। वानर थोड़े नाराज हुए कि हमने श्रीसीताजीके लिए प्राणो तकका त्याग किया है। हमको ये लोग दर्शन भी नही करने देते।

यह सब देखकर रामजीने कहा—ये सब प्रेमसे दर्शन करनेके लिये अत्यन्त आतुर हैं। इसलिये अब श्रीसीताजी चलकर आवें यही उचित है।

पादचारेण सायातु जानकी मम सन्निधिम्।

श्रीसीताजी पालकोमें-से उतरकर धीरे-धीरे पैदल चलने लगी। वानर श्रीसीता-माँका जय-जयकार करते हुए उनको प्रणाम करने लगे। सीताजी पधारी तब प्रभुने थोड़ी लीला की। छाया जानकीको अग्निमें दग्ध करके प्रत्यक्ष जानकीको स्वीकार करना था इसलिये प्रभुने श्रीसीताजीसे कुछ कड़वे शब्द कहे।

माताजीने लक्ष्मणजीसे कहा—लक्ष्मण! शीघ्र ही अग्नि प्रगट करो। अग्नि प्रगट होनेपर श्रीसीताजीने दोनो हाथ जोड़कर कहा—

जौं मन बच क्रम मम उर माँही। तजि रघुबीर आन गति नाँही॥
तौ कृसानु सब कै गति जाना। मोहि कहुँ होउ श्रीखण्ड समाना॥

श्रीरामके बिना अन्य किसी भी पुरुषका मैंने कभी स्मरण भी किया न हो, मैंने पतिव्रता धर्मका बराबर पालन किया हो, तो हे अग्निदेव! तुम चन्दन जैसे शीतल हो जाओ।

श्रीसीताजीने अग्निमें प्रवेश किया। सभी रुद्ध श्वास गतिसे देखते रह गये। कितने ही वानर रोने लगे कि यह क्या हो रहा है? ऐसा अनर्थ! श्रीसीताजीके लिये रामजीने इतना विशाल युद्ध किया और अब रामजी ऐसा क्यो कर रहे हैं? उसी समय साक्षात् अग्नि नारायण श्रीसीताजीको लेकर बाहर आये। कहा—

एषा ते राम वैदेही पापमस्यां न विद्यते॥

श्रीसीता महान् पतिव्रता हैं। देवता, ऋषि—सभी वहाँ प्रगट हो गये। सभीने साक्षी दी। श्रीरामचन्द्रजीने श्रीसीताजीको स्वीकार किया। श्रीसीताजी श्रीरामजीके साथ विराजी। श्रीसीतारामजीके दर्शन करते हुए ब्रह्माजीको आनन्द हुआ। ब्रह्माजीने परमात्माकी सुन्दर स्तुति की—

जय राम सदा सुखधाम हरे। रघुनायक सायक चाप धरे॥
भव वारन दारन सिंह प्रभो। गुन सागर नागर नाथ बिभो॥

उनके उपरान्त इन्द्रराजाने स्तुति की—

दे भक्ति रमानिवास त्रास हरण शरण सुखदायकं।
सुख धाम राम नमामि काम अनेक छवि रघुनायकं॥
सुर वृंद रंजन द्वंद भंजन मनुज तनु अतुलित बलं।
ब्रह्मादि संकर सेव्य राम नमामि करुना कोमलं॥

फिर राजा इन्द्रने रामचन्द्रजीसे कहा—आपने हमारे लिये अनेक कष्ट सहन किये है। यह रावण हमको बहुत कष्ट देता था। आपने बहुत कृपा की है। मैं आपकी क्या सेवा करूँ ?

तब प्रभुने राजा इन्द्रको आज्ञा दी कि इस युद्धमें राक्षसोंने अनेक वानरोंको मार डाला है।

मम हित लागि तजे इन प्राना, सकल जिआउ सुरेश सुजाना।

तुम आकाशमें खड़े होकर अमृतकी वृष्टि करो जिससे मरे हुए वानर पुनः जीवित हो जायें। इन्द्रराजाने प्रभुकी आज्ञाके अनुसार आकाशमें-से अमृतकी वर्षा की। मृत्युको प्राप्त हुए सभी वानर जीवित हो गये। युद्ध भूमिमें वानर तथा राक्षस दोनोंका मरण हुआ था, परन्तु वानर ही जीवित हुए और राक्षस जीवित नहीं हुए। इसका कारण बताया है कि वानर युद्धकर रहे थे उस समय उनकी दृष्टि राक्षसोंपर थी। श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन करते-करते राक्षसोंने प्राणोंका त्याग किया था। अतः उनपर अमृत की वर्षा होनेपर भी राक्षस पुनः जीवित नही हुए, राक्षस तो प्रभुके धाममें चले गये थे।

रामाकार भये तिनके मन। मुक्त भये छूटे भव बन्धन॥

अन्तकालमें जो श्रीराम-दर्शन करते है, श्रीराम-स्मरण करते है, उन्हें पुनः संसारमें नहीं आना पड़ता। तत्पश्चात् भगवान शंकरने आकर रामजीकी स्तुति करते हुए कहा—

स्यामगात राजीव विलोचन। दीनबन्धु प्रनतारति मोचन॥
अनुज जानकी सहित निरंतर। बसहु राम नृप मम उर अन्तर॥

× × ×

नाथ जबहिं कौशलपुरी। होइहि तिलक तुम्हार॥
कृपासिंधु मैं आउब देखन चरित उदार॥

अब शीघ्र ही अयोध्यामें आपका राज्याभिषेक होगा। वहाँ मैं आपके दर्शन करने आऊँगा। परमानन्द हुआ। विभीषणने श्रीरामचन्द्रजीसे बहुत आग्रह किया कि आप कुछ दिनोंके लिये यही पर आनन्दमें विराजें।

श्रीरामचन्द्रजीने कहा—अब चौदह वर्षकी अवधि पूरी हो रही है। मेरे भरत भैयाकी मुझे याद आती है। भगवानका जो सतत स्मरण करता है उसे भगवान किसी भी दिन भुलाते नही। भरतजी रामजीके स्मरणमें तन्मय रहते थे, इसी कारणसे रामचन्द्रजीको भरत याद आते थे। रामजीने कहा—मुझे अब शीघ्र ही अयोध्या जाना है। मैने सुना है कि मेरे भाईने अन्नका त्याग किया हुआ है। कन्द-मूल-फल खाता है, जटा धारण करता है। वह मेरी जैसी तपस्या करता है।

सुकुमारोऽतिभक्तो मे भरतो मामवेक्षते।
जटावल्कलधारी स श्चद्मत्र समाहित ॥

भरत मेरी प्रतीक्षा कर रहा है। मुझे शीघ्र ही जाना चाहिये। उसके उपरान्त रघुनाथजीने वानरोसे कहा—तुम लोगोने मेरी बहुत सहायता की है। मैं तुम्हारे किये हुए उपकारोको नही भूल सकता।

रामजी वानरोंके उपकारको भूले न थे। कृष्णावतारमे इन्होने वानरोके इस उपकारका स्मरण करके खूब ही माखन खिलाया है। जीवका ऐसा स्वभाव होता है कि किसीके भी द्वारा उसके लिये किये गये उपकारको वह भूल जाता है और अपकारको वह याद रखता है। भगवान थोड़ेसे भी उपकारको नही भूलते। शास्त्रमें प्रत्येक पापका प्रायश्चित बताया है, परन्तु जो कृतघ्नी है, जो किये उपकार को भूल जाता है, उसका कोई प्रायश्चित नही है; इसलिये दूसरोके उपकारको कभी न भूलो।

रामजी विचारते थे इन वानरोने मेरी बहुत सेवा की है। ये मेरे परम भक्त हैं। इन्होने पेड़के पत्ते चबाकर मेरी सेवा की है। इस समय तो मैं तपस्वी हूँ इस कारण कुछ दे सकता नहीं। परन्तु कृष्णावतारमे इनके उपकारोका स्मरण रख कर इनको खूब माखन खिलाऊँगा। रामावतारमे वानरोके द्वारा की गई सेवाका फल प्रभुने कृष्णावतारमें दिया है। कन्हैयाने वानरोंको खूब ही माखन खिलाया है।

लकायुद्ध समाप्त हो जाने पर रामजीने वानरोंसे कहा—मैं तुम्हारे उपकारोंको कभी नही भूलूंगा। अब तुम यही से अपने-अपने घर पधारो।

रामजीका वियोग किसी से भी सहन हो सके ऐसा नहीं था। इससे वानरोंने कहा—महाराज। हमको अयोध्या चलना है।

अयोध्यां गन्तुमिच्छामिस्त्वया सह रघूत्तमः ॥

हमको माता कौशल्याका दर्शन करना है। पुष्पक विमानमें श्रीसीता रामजी विराजे। रामजीने सभीको विमानमे बैठ जानेकी आज्ञा की। जैसे-जैसे वानर सेना विमानमे भरती गई वैसे-वैसे ही विमान विशाल होता गया। अयोध्या जानेकी इच्छा सभी वानरोकी थी। विमान अति विशाल बन गया। सभीने श्रीरामचन्द्रजीका जय-जयकार किया। विमान सकुशल अयोध्याको चल दिया।

पातयित्वा ततश्चक्षुः सर्वतो रघुनन्दनः।
अब्रवीन्मैथिलो सीतां रामः शशिनिभाननाम् ॥

पुष्पक विमानमे विराजे हुए श्रीरघुनाथजी श्रीसीताजीको बतलाने लगे कि यहाँ पर रावणका वध किया...... तथा यहाँ पर कुम्भकर्णको मारा... एवं यहाँ पर सेतु-बन्धन हुआ। यहांपर मैंने रामेश्वरजीकी स्थापना की है।

श्रीसीताजीने कहा—मुझे रामेश्वरजीकी पूजा करनी है।

रामजीने कहा—इस समय नही। हम अयोध्या जाकर फिरसे यात्रा करने निकलेंगे उस समय यहां पर भी आवेंगे। इस समय तो भरत प्रतीक्षा कर रहे हैं।

दूरसे ही रामेश्वर भगवानके दर्शन किये। उसके उपरान्त सुग्रीवकी नगरी किष्किन्धा दिखायी। किष्किन्धामें विमान उतरा। वहाँ अनेक वानर-अपनी वानर पत्नियोके साथ श्रीसीतारामजीके दर्शन करनेके लिये आये, आनन्द हुआ। वहाँसे विमान आगे बढ़ा।

रामजी सीताजीको बताने लगे—यहाँ मैंने बालीका वध किया, यही पर सुग्रीवके साथ मित्रता हुई?

मार्गमें आगे बढ़ते फिर पचवटीके दर्शन हुए। अगस्त ऋषि, सुतीक्ष्ण ऋषि आदि ऋषियोके आश्रम बतलाये। माताजीको स्मरण कराया—याद है तुमको हम यहींसे गये थे? तब माताजीको याद आया। रामजीने कहा—

अत्र माम् कैकयीपुत्रः प्रसादयितुमागतः।
भरद्वाजाश्रमं पश्य दृश्यते यमुना तटे ॥

यह चित्रकूट दिखायी देता है। यहीं पर भरतजी हमसे मिलने आये थे...यह भरद्वाज ऋषिका आश्रम दिखायी दे रहा है।

प्रयागराजमें विमान उतारा। रघुनाथजीने कहा—आजकी रात्रि यहीं रहेंगे। अवधि परिपूर्ण होगी तभी अयोध्यामें प्रवेश करेंगे।

प्रभुने हनुमानजीको आज्ञा की कि जल्दी दौडते हुए अयोध्या जाओ। भरतजीको समाचार दे दो कि हम प्रात.काल आ रहे हैं। हनुमानजी समाचार देने चल पड़े।

श्रीरघुनाथजीको वापस पधारे हुए देखकर ऋषि भरद्वाजजीको अतिशय आनन्द हुआ। इन्होंने सभीका स्वागत किया। रघुनाथजीने गुरुदेवसे पूछा—मेरा भरत तो आनन्दमें है न? अनेक वर्षोंसे मैंने भरतकी कोई कथा नही सुनी।

भरद्वाज ऋषिने कुशल-समाचार विवेदन किया। रघुनाथजीने रात्रि वहाँ विश्राम किया।

दूसरे दिन विमानमे बैठकर आगे जाते हुए मार्गमे श्रीसीताजीने गंगा मैयाकी पूजा की। जिस समय वनवास पधारे थे उस समय गंगाजीकी साध रखी हुई थी कि लक्ष्मणजीके साथ चौदह वर्षका हमारा बनवास परिपूर्ण हो जावे तो माँ! मै आपकी पूजा करूँगी। श्रीगंगाजीने आशीर्वाद दिया और कहा—यह तो आप मेरी महिमा बढानेके लिये ऐसी लीला कर रही हो।

तुम जो हमहिं बड़ि विनय सुनाई, कृपा कीन्हि मोहि दीन्हि बड़ाई।

गुह राजने आकर प्रभुका साष्टांग वन्दन किया। रामजीने उसे उठाकर आलिंगन किया। परमानन्द हुआ। विमानमे बैठकर सब अयोध्याके मार्ग पर आगे बढ़े।

केकीकण्ठाभनीलं सुरवरविलसद्विप्रपादाब्ज चिह्नं
शोभाढ्यं पीतवस्त्रं सरसिजनयनम् सर्वदा सुप्रसन्नम् ।
पाणौ नाराचचापं कपिनिकरयुतं बन्धुना सेव्यमानम्
नौमीढ्य जानकीशं रघुवरमनिशं पुष्पकारूढरामम् ॥

(६१)

राम राज्य

अयोध्याके समीप नन्दिग्राममें भरतजीका निवास था। श्रीहनुमानजी महाराज वहाँ गये। भरतजीका श्रीअंग बहुत दुर्बल हो गया। चौदह वर्ष तक अन्न नहीं ग्रहण किया था। रामजीका जैसा ही वेष था। वल्कल वस्त्र पहिने हुए थे। माथेपर जटाओंका मुकुट था। सिंहासनपर पादुकाओंकी स्थापना की हुई थी। भरतजी 'सीताराम-सीताराम' का कीर्तन करते हुए तन्मय हो रहे थे।

भरतजी रामजीका स्मरण करते। मुझे प्रभुने अपनी सेवामें नहीं रखा। मैं अभागा हूँ। मेरा लक्ष्मण भाग्यशाली है। अब तो अवधि परिपूर्ण हो रही है। परन्तु अभी तक कोई समाचार मिला नहीं। उसी समय भरतजीको अनेक शुभ शकुन होने लगे।

उसी समय तपस्वी ब्रह्मचारीके वेषमें हनुमानजी वहाँ आये। भरतजीका दर्शन करते ही हनुमानजीकी आखें भीनी हो गयीं। राम-प्रेमकी मूर्ति ही हैं श्रीभरत। वियोगमें श्रीरघुनाथजीकी सेवा-स्मरण किस रीतिसे करना चाहिए, इसका आदर्श भरतजीने संसारको बतलाया है। हनुमानजीने भरतजीका वन्दन किया।

भरतजीने पूछा—आप कौन हो? हनुमानजी बोले—जिन रामजीका आप सतत ध्यान करते हो, उन्हीं रामजीका दूत आपको प्रणाम करता है।

जासु बिरह सोचहु दिन राती। रटहु निरन्तर गुन गन पाती।
रघुकुल तिलक सुजन सुख दाता। आयहु कुसल देव मुनि त्राता।
रिपु रन जीति सुयश सुर गावत। सीता अनुज सहित प्रभु आवत॥

हनुमानजीने संक्षेपमें सब कथा सुनायी। प्रभुने रावणका विनाश किया। राक्षसको मारकर हमारे श्रीराम, लक्ष्मण और जानकीजीके साथ अब जल्दी पधार रहे हैं। आज रात्रि प्रयागराजमें भरद्वाज ऋषिके आश्रममें विश्राम है। कल प्रभु यहाँ पधारने वाले हैं।

भरतजीने हनुमानजीका आलिंगन किया। भरतजीको अतिशय आनन्द हुआ। कौशल्या माँको दौड़ते हुए समाचार देने गये। माँ कौशल्या आँगनमें बैठी हुई थी। एक कौआ आया और 'काँउ-काँउ' करने लगा। माताजीको लगा मेरा राम आने वाला है ऐसा लगता है। माताजी प्रतीक्षा करती हुई बैठी थी। उसी समय भरतजीने आकर प्रणाम करके कहा—माँ! प्रभु पधार रहे हैं।

आनन्द ही आनन्द हो गया। सम्पूर्ण अयोध्या भली प्रकार सजायी गयी। भरतजीको तनिकभी निद्रा नही आयी। आजकी रात्रि किस प्रकार पूरी होगी ? सभी अधीर हो रहे थे। प्रातःकालमे भरतजीने पादुकाकी पूजाकी और इन श्रीराम-चरण पादुकाओको मस्तकपर धारण करके भरतजी सरयूजीके किनारे आये। भरतजीने विचार किया कि यहींपर विमान आवेगा ऐसा लगता है।

अयोध्याकी प्रजाभी वहाँ आयी।

नर अरु नारि हरषि सब धाये ॥
दधि दूर्बा रोचन फल फूला। नव तुलसी दल मंगल मूला ॥
भरि भरि हेम थार भामिनी। गावत चलीं सिंधुर गामिनीं ॥

सभीको दर्शनोंकी अत्यन्त आतुरता थी। दूरसे विमान दिखाई देने लगा। अयोध्याकी प्रजा आनन्दमे आकर कहने लगी, यह रामजीका विमान आ रहा है। अब दर्शन होगे। विमान पास आया कि अन्दर विराजे हुए श्रीसीतारामजीको अयोध्याकी प्रजाने साष्टाग वन्दन किया। श्रीसीतारामजीका दर्शन करते हुए प्रजाने जय-जयकार किया—सियावर रामचन्द्रकी जय······ अतिशय आनन्द हुआ। सरयूजीके किनारे विमान उतरा।

भरतजीने चरणपादुका पधरा कर साष्टाग वन्दन किया।

गहे भरत पुनि प्रभु पद पंकज। नमत जिन्हहिं सुर मुनि शंकर अज ॥
परे भूमि नहि उठत उठाये। बर करि कृपासिंधु उर लाये ॥
स्यामल गात रोम भये ठाढ़े। नव राजीव नयन जल बाढ़े ॥

भरतजीको देखकर मालिककी आँखे सजल हो गयी। मेरे वियोगमे मेरे भाई-की दशा ऐसी हो गयी ? यह अत्यन्त ही दुर्बल हो गया है। भरतजीको उठाकर प्रभुने आलिंगन किया। भरत और श्रीराम परस्पर मिल रहे थे, उस समय लोगोको खबर नहीं पड़ रही थी कि इसमे श्रीराम कौन-से हैं ? और भरत कौन-से हैं ? दोनोका वर्ण श्याम था। दोनोके समान वल्कल वस्त्र थे, शरीर कृष था।

पीछे रामजी शत्रुघ्नजीसे मिले। आनन्द हुआ। अयोध्याकी प्रजाको दर्शन मिलनेकी अतिशय आतुरता देखकर प्रभुने अनेक स्वरूप प्रगट कर लिये।

अमित रूप प्रगटे तेहि काला। जथा जोग मिले सबहिं कृपाला॥
कृपा दृष्टि रघुबीर बिलोकी। किए सकल नर नारि बिसोकी॥
छन महिं सबहिं मिले भगवाना। उमा मरम यह काहुँ न जाना॥

सभीको प्रेम था इसलिये श्रीराम एक ही क्षणमें सभीसे मिले।

गुरु वसिष्ठजीका वन्दन करनेके उपरान्त श्रीराम-लक्ष्मण-जानकीजीने कौशल्यादि माताओंका वन्दन किया। माताओंको आनन्द हुआ। अत्यन्त दुःख सहन किया था। परन्तु मनुष्य धैर्य रखे तो सौ वर्षके बाद भी इसके आनन्दका समय आता है। आज सीतारामजीको देखकर माताओंको अत्यन्त आनन्द हुआ। श्रीसीताजीका तपस्वी वेष था। अयोध्याकी स्त्रियाँ उनका बारम्बार वन्दन करती थीं।

परमानन्द हुआ। फिर सुन्दर रथ सजाया गया। रथमें श्रीसीतारामजी विराजे। लक्ष्मणजी हाथमें चमर लेकर खड़े हुए। भरतजीने निश्चय किया कि आज मैं ही रथ चलाऊँगा। इसलिये भरत-शत्रुघ्न रथ चला रहे थे। अयोध्याकी प्रजा नेत्र भरकर दर्शन कर रही थी।

कैकेयीके महलसे वनवास आरम्भ हुआ था। प्रभुने वनवासकी समाप्ति वहीं पर की। प्रथम कैकेयी माँका वन्दन किया। कैकेयी माँको आश्वासन देते हुए कहा—माँ! तनिक भी ग्लानि न करो। तुमने कुछ भी खोटा नहीं किया।

न त्वया मेऽपराधितम्।

यह तो सभी ईश्वरकी लीला है। परमात्माकी इच्छाके अनुसार ही सब कुछ होता है। बैसाख सुदी पंचमीके दिन श्रीरामचन्द्रजी अयोध्यामें पधारे। लोगोंकी बहुत इच्छा थी राम-राज्याभिषेक जल्दी हो। इसलिये वसिष्ठजीने बैसाख सुदी सप्तमीका मुहूर्त निकाला। वशिष्ठजीने कहा—राज्याभिषेकके लिये चारों समुद्रोंका जल चाहिए। तीर्थ जलकी भी आवश्यकता होती है।

भरतजीने कहा—मैंने सभी तैयारीकी हुई है। इस समय किसीको भी भेजनेकी आवश्यकता नहीं है। भरतजीने पहिलेसे ही समस्त तैयारी कर रखी थी।

सर्वप्रथम प्रभुकी आज्ञासे वन्दरोंको मांगलिक स्नान कराया। भरतजीने एक-एकका पूर्ण सन्मान किया। सभीको वस्त्र आभूषण दिये वानर-रूप रहे तो कदाचित् किसीको आश्चर्य हो, इसलिये प्रभु वानरोंको दिव्य स्वरूप प्रदान करके अयोध्यामें लाये

थे। तत्पश्चात्—

पुनि करुणानिधि भरत हँकारे। निज कर राम जटा निरुआरे ॥

भरतजीकी जटा प्रभुने अपने हाथोसे उतारी। लक्ष्मणजीका मागलिक स्नान हुआ। प्रभुने स्वयकी जटाएँ उतारी। फिर सुवर्णके पट्टे पर श्रीरामचन्द्रजीको बिठाकर वसिष्ठ ऋषिने ऋग्वेद, यजुर्वेदके अनेक मंत्र बोलकर तीर्थ जलसे अभिषेक किया। श्री-सीताजीका भी तीर्थाभिषेक हुआ। फिर दिव्य श्रृङ्गार किया। श्रीसीताजीकें इस श्रृङ्गार-का वर्णन कौन कर सकता है? साक्षात् महालक्ष्मी वही श्रीसीताजी तो है।

सुवर्णका दिव्य सिंहासन बनाया गया। ब्राह्मणोने वेदमन्त्रोसे आशीर्वाद दिया।

वेद मंत्र तब द्विजन्ह उचारे। नभ सुर मुनि जय जयति पुकारे ॥

प्रभुने ब्राह्मणोकी पूजा की। वैष्णव जय-जयकार करने लगे। शुभ मुहूर्तमें श्रीसीताजीके साथ सुवर्ण सिंहासनमे सियावर रामचन्द्रकी जय······ प्रभुजी विराजे। भरतजी और लक्ष्मणजी हाथमे चमर लेकर खडे हुए। शत्रुघ्न भी सेवामे थे। श्रीहनुमान-जी हाथ जोड़कर सन्मुख सेवामें उपस्थित हुए।

श्रीगुरु वसिष्ठजीने श्रीरामचन्द्रजीका जैसे ही तिलक किया वैसे ही सभी वैष्णवोंने श्रीरामचन्द्र भगवानकी जय—जय जयकार किया। परमानन्द हुआ। देश-देशके राजा वहाँ उपस्थित हुए। इन राजाओने अनेक प्रकार की भेंट समर्पणकी।

श्रीरामचन्द्रजीका सुन्दर व्याख्यान हुआ। प्रजाने मुझे गद्दी पर बिठाया है। मेरी तो ऐसी भावना है कि प्रजाको राजी करनेके लिये ही राजाकी गद्दी होती है। राजा की गद्दी भोग विलासके लिये नही होती। रजयति इति राजा। प्रजाको जो राजी करे वही राजा कहलाता है।

श्रीरामचन्द्रजीका भाषण पूरा हुआ। उस समय चारो वेद दरबारमें आये। उन्होने प्रभुकी स्तुति की।

जो चरन शिव अज पूज्य रज शुभ परसि मुनि पतिनी तरी
नख निर्गता मुनि वन्दिता, त्रैलोक्य पावन सुरसरी।
ध्वज कुलिश अंकुश कुंज युत बन फिरत कंटक किन लहे
पद कंज द्वंद मुकुन्द राम रमेश नित्य भजामहे ॥

× × ×

जे ब्रह्म अजमद्वैत अनुभवगम्य मन पर ध्यावहीं
ते कहहुँ जानउँ नाथ हम तव सगुण यश नित गावहीं।

करुणायतन प्रभु सद्गुणाकर देव यह वर माँगहीं
मन वचन कर्म विकार तजि तव चरण हम अनुरागहीं ॥

उसी समय भगवान शंकर पधारे। सुवर्ण सिंहासन पर विराजे हुए श्रीसीता-रामजीके दर्शन करके उनको अतिशय आनन्द हुआ। शिवजीने सुन्दर स्तुति की।

त्वमादि मध्यान्त विहीन एकः, सृजस्यवस्यत्सि च लोक जातम्।
स्वमायया तेन न लिप्यसे त्वं, यत्स्वे सुखेऽजस्ररतोऽनवद्यः ॥

× × ×

अहं भवन्नाम गुणैःकृतार्थो, वसामि काश्यामनिशं भवान्या।
मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं, दिशामि मंत्रं तव राम नामः ॥

श्रीरामजीकी स्तुति करते हुए शिवजीने कहा—आज आप आनन्दमें हो। मुझे इतना वरदान दो।

बार बार वर माँगऊँ, हरषि देहु श्री रंग।
पद सरोज अनपायनी, भगति सदा सतसंग ॥

सियावर रामचन्द्रकी जय

शिवजीने वरदान माँगा कि अपने चरणोंमें अनन्य भक्ति दीजिये और उस भक्तिको बढ़ानेके लिये सत्सग भी दीजिये।

तुम जिसका संग करते हो उसीके समान बनते हो। विरक्त भजनानन्दी साधु सन्तोंका सत्सग मिले तो वैराग्य और भक्तिका रंग लगता है। कितनों ही में भक्ति होती है, परन्तु उनको यदि सत्संग न मिले तो धीरे धीरे भक्तिमें न्यूनता आ जाती है। सत्संगसे भक्ति बढ़ती है। भक्तिको सत्संगकी आवश्यकता है। कितने ही सत्संग करते हैं, परन्तु उनके हृदयमे प्रेम होता नही—भक्ति होती नही। ऐसा सत्संग भी सार्थक नहीं। भक्ति होनी चाहिये और भक्ति बढ़नेके लिये विरक्त भजनानन्दी संतोंका सत्संग भी आवश्यक है। इसी कारण शिवजीने वरदानमें सत्संग माँगा।

तदुपरान्त श्रीरामचन्द्रजीने एक-एकका सन्मान किया, एक-एकको वस्त्र आभूषण दिये। श्रीसीताजीके गलेमे सुन्दर चन्द्रहार था। सीताजी विचारती थी कि यह दिव्य हार मै किसको दूं? उस समय रामचन्द्रजीने कहा—

वैदेहि यस्य तुष्टासि देहि तस्मै वरानने।

देवी! तुम जिस पर प्रसन्न हो उसे यह हार पहिना दो।

माताजीने गलेमें से हार उतारा। हनुमानजी हाथ जोडे ही थे। माताजीने विचार किया कि हनुमानजीने मेरी बहुत सेवा की है। श्रीसीता माँने हनुमानजीके गलेमे वह प्रसादी हार पहिना दिया। हनुमानजीका जय-जय-कार हुआ।

श्रीरामजीके गद्दी पर बैठनेसे प्रजा बहुत सुखी हुई। रामराज्यमें कभी अकाल नही पडता था। रामराज्यमें आवश्यकता होने पर वृष्टि हो जाती थी। राम-राज्यमे कोई दुःखी न था। कोई भिखारी न था। रामराज्यमे किसीके घर झगडा नही होता था। रामराज्यमे प्रभुका ऐसा प्रभाव था कि जिसकी मृत्युकी इच्छा होती थी उसीको मौत आती थी। बिना इच्छा किसीकी मृत्यु भी नही होती थी। काल भी रामराज्यमें किसीको पकड़ नही सकता था। माता पिताके जीतेजी रामराज्यमे उनके बालकका मरण नही होता था, कोई स्त्री विधवा नही थी। रामराज्यमें सब धर्मसे—नीतिसे ही अर्थोपार्जन करते थे। किसीको भी कम परिश्रम करके अधिक कमानेकी इच्छा नही होती थी। सभी धनको धर्मकी मर्यादामे रखते थे। सभीके घर नित्य सत्संग होता था। प्रत्येक घरमें रोज राम नामका जप होता था। सभी एकादशीका व्रत करते थे। रामराज्यमे प्रजा बहुत ही सुखी थी।

पार्वती माँ ने शिवजीसे पूछा कि महाराज ! रामराज्यमे क्या सभी सुखी थे ? किसीको भी दु.ख न था ?

शिवजी महाराजने कहा—दो जने दु.खी थे। जितने डाक्टर थे वे सभी बिचारे निष्क्रिय बैठे रहते थे। किसीको बुखार ही नही आता था। रोग नहीं होता था। सभी लोग सदाचार और संयमकी मर्यादामे रहते थे।

लोगोने संयम छोड़ा है, सदाचारकी मर्यादा भंगकी है इसीसे रोग बढ़ा है। मानव जीवनमें संयम, सदाचार और सूर्यकी उपासना हो तो रोग न होवे। रामराज्यमे किसीको रोग नही था।

शिवजीने कहा—महाराज्यमे दूसरे जो दु.खी थे वे थे वकील। वकीलोका धन्धा नही चलता था। बेकार बैठे रहते थे। रामराज्यमे किसीके घर झगड़ा नही होता था। किसीका मन अशात नही था। इससे वकीलोंकी बहुत अवनति थी। परन्तु आज-कलके राज्यमें तो इनकी बहुत चढती हो गई है। संसारका ऐसा नियम है कि एक समयमें जिसकी अवनति है और समय बदले तो उसीकी उन्नति हो जाती है।

रामराज्यमे प्रजाको जैसा सुख मिला वैसा सुख तो स्वर्गमें देवताओंको भी नही था।

श्रीसीतारामजी सुवर्ण सिंहासन पर विराजे हुए थे। अयोध्याकी भाग्यशाली प्रजाका मन श्रीसीतारामजीके दर्शन करते-करते अघाता न था। भाटजन, बन्दीजन श्रीरामचन्द्रजीकी स्तुति करते थे। एक बंदीजनने आकर श्रीसीतारामजीका बारम्बार वन्दन करते हुए कहा—महाराज ! आप बुरा न मानें तो आज मुझे कुछ सुनाना है।

श्रीरामचन्द्रजीने कहा—मुझे कभी खोटा नही लगता। तुम्हें जो कुछ कहना हो, कहो।

वन्दीजनने कहा—महाराज ! मैं क्या कहूँ ? मैं यही आ रहा था तभी मार्गमें मुझे आपकी एक स्त्री मिली। वह बहुत भटकती है। आप उसकी रक्षा कीजिये।

रामजीने स्मित हास्य करते हुए कहा—मैं तो एक पत्नीव्रतका पालन करता हूँ। रावण श्रीसीताजीको ले गया था तो रावणको मार कर श्रीसीताजीको ले आया। तुझे मार्गमे किसी अन्यकी स्त्री मिली होगी।

भाटने कहा—नही, नही। मुझे आपकी ही पत्नी मिली। महाराज ! आपकी तो अनेक स्त्रियाँ है यह मैं जानता हूँ। लक्ष्मी आपके चरणमे रहती हैं। आप लक्ष्मीके पति हो। सरस्वती आपके मुखमे रहती है। इससे कीर्तिदेवीको रहनेको कोई स्थान ही नही मिला कि घर मे रह सके। इससे वह संसारमें बहुत भटकती है। आपकी कीर्ति जगतमें फैली हुई है।

ग्रहे तिष्ठति ते लक्ष्मी वाग्देवी च सरस्वती।
तस्मात्कुपिता तु राम कीर्तिर्याता दिगन्तरम् ॥

आपने लक्ष्मीको चरणोंमे वास दिया, सरस्वतीको मुखमें वास दिया। तब निवासको कोई जगह न मिलनेके कारण बिचारी कीर्ति सम्पूर्ण जगतमें भटक रही है। इस प्रकार भाटने युक्तिपूर्वक रामचन्द्रजीकी स्तुति करते हुए कहा कि आपकी कीर्ति अब दिगंतमें—जगत भरमें फैल गई है। जगतको त्रास देने वाले रावणको आपने मारा है। आज प्रजा अत्यन्त सुखी है। नाथ ! कृपा करो। आपकी सदा जय-जयकार हो। श्रीरामचन्द्र भगवानकी जय। भगवान शंकर माता पार्वतीसे कहते हैं—

कल्याणानां निधानं कलिमल मथनं पावनं पावनानाम्
पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परिपदप्राप्तये प्रस्थितस्य।
विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानाम्
बीजं कल्पद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनामम् ॥

श्रीराम बिना आराम नही। जगतमे जितने महापुरुषोको पूर्ण शान्ति प्राप्त हुई है उन सब महापुरुषोने श्रीरामचन्द्रजीकी सेवा की है। श्रीरामदर्शनसे ही शान्ति मिलती है।

रामकृपा बिन सपनेहुँ, जीव न लह विश्राम ।

तुम किसी भी धर्मको मानो, तुम्हारा इष्ट देव कोई भी हो, श्रीरामचन्द्रजीकी सेवा तुमको करनी ही पडेगी। श्रीराम सेवाके बिना किसीका भी मन शुद्ध नही होता। श्रीरामचन्द्रजीको तुम पुष्पोकी माला अर्पण करो, भोग धरो। आरती उतारो यह रामचन्द्रजीकी साधारण सेवा है। श्रीरामचन्द्रजीकी उत्तम सेवा तो वह है कि रामजीकी मर्यादाका तुम बराबर पालन करो, आचरण रामजी जैसा ही रखो।

पुरुषका जीवन रामजीका जैसा होना चाहिये। स्त्री धर्म जगत्को श्रीसीता मां ने बताया है। श्रीसीताजीका चरित्र आँखोके सामने रखकर स्त्रियां श्रीसीताजीका जैसा जीवन व्यतीत करें। मानव स्वधर्मका पालन करे तो उसे बहुत शान्ति मिलती है। मनुष्यका स्वयका क्या कर्तव्य है, उसको यह जानने की इच्छा होती नही। कितने ही अपना कर्तव्य जानते हैं परन्तु उसका पालन नही करते।

हम आकाशमेंसे धरती पर उतर कर नही आये। कोई कुलमे, गोत्रमे, जातिमे हमारा जन्म हुआ है। हमारा धर्म प्रभुने निश्चित किया है। धर्म धनकी अपेक्षा, प्राणोकी अपेक्षा भी श्रेष्ठ है। अन्य सब जाये तो भले ही जाये, परन्तु धर्म नही जाये, इसकी सदैव सावधानी रखो। स्वधर्मका बराबर पालन करोगे तो तुम्हारी भक्ति भगवानको अच्छी लगेगी।

लोग भक्तिका कुछ ढोग कर लेते हैं। पुस्तकोको पढकर कुछ ज्ञानकी बाते भी करने लगते हैं, परन्तु आजकल अधिक लोग धर्मका पालन करते नही। कितने ही तो ऐसा समझते हैं हम तो भक्ति करते हैं, इसलिये भगवान हमारे पापोको भस्म कर देंगे। हम धर्मका पालन न करे तो कोई बाधा नहीं है। अरे स्वधर्मका त्याग महा पाप है। धर्म परिवर्तनशील नही। प्राण जाये परन्तु धर्म छोड़ना नही।

श्रीराम धर्मके मूर्त्तिमान स्वरूप हैं। श्रीसीतारामजीका जैसा पवित्र जीवन व्यतीत करो। जगत्मे रामराज्य कब होगा, यह तो रामजी ही जानें। अब जगतमे राम राज्य हो ऐसी आशा नही। तुम अपने घरमे रामराज्य बनाओ। तुम सभी प्रभुके प्यारे हो, रामायणकी कथा सुनते हो। तुम्हारा रामजीके साथ सम्बन्ध हो चुका है। श्रीसीतारामजी-को घरमें पधराओ। श्रीसीतारामजीकी प्रेमसे सेवा करो। श्रीरामजीमे सभी सद्गुण

एकत्रित हैं। रामजीका एक-एक सद्गुण जीवनमें उतारो। इस प्रकारकी रामजीकी सेवा-से ही मन शुद्ध होता है। रामजीकी मर्यादा पालन करनेसे ही पाप जलते हैं।

जिस घरमें रामजीकी मर्यादाका पालन होता है उसी घरमें रामराज्य होता है। जिस घरमें रामराज्य है, उस घरमें बहुत शान्ति होती है। जिस घरमें रामराज्य है, उस घरमें कलियुग आता नहीं। रामराज्य अर्थात् धर्मका राज्य। जिस घरमें धर्मका-नीतिका धन आता है, जिस घरके सभी लोग संयम और सदाचार रखकर परमात्माके नामका जप करते हैं, उस घरमें कलियुग आता नहीं।

इस कलियुगमें भी कितने हो वैष्णव ऐसे हैं, जिनके घरमें कलियुग नहीं है। जिस घरमें प्रभुके नामका कीर्तन होता है, जिस घरमें गरीबका सम्मान होता है, जिस घरमें परमात्माकी सेवा पूजा होती है, जिस घरमें वृद्धोंको मान मिलता है, जिस घरमें सभी माता-पिताकी आज्ञामे रहते हैं, उस घरमें किसो दिन भी कलियुग आता नहीं।

(६२)

काकभुसुंडिजी और गरुड़जी

शिवजी महाराज देवी पार्वतीजीको यह राम-कथा सुना रहे थे। शिवजीने कहा—देवी! जिस कथाको काकभुसुंडिजीने गरुड़जीको सुनाया था, वही मैंने तुमको सुनायी है। इस दिव्य कथाको सुनकर गरुड़जीका मोह नष्ट हुआ था।

परन्तु राम-कथा सुनते-सुनते माता पार्वतीजीकी तृप्ति नहीं होती थी। उनकी अब और अधिक सुननेकी इच्छा हुई। माताजीने प्रश्न किया। महाराज! काक-भुसुडिजीको यह रामकथा किसने सुनायी थी? गरुड़जीको मोह किस प्रकार हुआ? गरुड़जी तो परमात्माके वाहन हैं।

गरुड़ महाज्ञानी गुनरासी। हरि सेवक अति निकट निवासी॥
तेहिं केहि हेतु काग सन जाई। सुनी कथा मुनि निकर बिहाई॥
कहहु कवन बिधि भा संवादा। दोउ हरि भगत काग उरगादा॥

माताजीका प्रश्न सुनकर भगवान शंकरको आनन्द हुआ। शिवजीने पार्वतीमांसे काकभुसुंडिजीकी कथा कहना आरम्भ किया। काकभुसुडिजीकी महिमाका कौन वर्णन कर सकता है। हिमालयके पास नीलाचल नामका पर्वत है। वहाँ काकभुसुडिजी विराजते थे। उनका आश्रम इतना दिव्य था कि वहाँ कलियुगका प्रवेश नही था। नील पर्वतके चार शिखर थे। प्रत्येक शिखरपर एक-एक वृक्ष था। एक शिखर पर वट, दूसरे पर पीपल, तीसरे पर पापरी और चौथे शिखरपर आमका वृक्ष था।

पीपलके वृक्ष तले बैठकर काकभुसुडिजी तीन घण्टे रामजीका ध्यान करते। उसके उपरान्त आमके वृक्ष तले बैठकर तीन घण्टे श्रीसीतारामजीकी मानस सेवा करते। मानसी सेवामें विशेष ध्यान रखना चाहिये कि मन कोई लौकिक विचार न करे। मनकी धारणा निरन्तर भगवानके चरणोमे रहनी चाहिये। भुसुडिजी मानसी-सेवामे ठाकुरजीका शृंगार करते, माला अर्पण करते, सहस्र नामका पाठ करते हुए तुलसीजो अर्पण करते। प्रथम तीन घण्टा ध्यान तदुपरान्त तीन घण्टे मानसी सेवा।

इसके उपरान्त तीन घण्टे पापरीके वृक्षके नीचे श्रीराम नामका जप करते। उसके पश्चात् तीन घण्टे वट वृक्षके नीचे बठकर राम-कथा कहते थे। अनेक प्रकारके पक्षी-कथा-श्रवण करनेको आते। काकभुसुडिजो सम्पूर्ण दिन भक्तिमे लीन रहते। कथा, कीर्तन, ध्यान जप और सेवामे ही रहते थे। मायाका प्रवेश इनके आश्रममे नही था।

भक्तिमे आनन्द न आवे तो भी भक्ति छोडनी नहीं चाहिये। भक्तिमे आनन्द न आवे तो यह जीव भक्ति छोडकर विषयानन्द भोगने जाता है। भक्तिमें जल्दी आनन्द नहीं आता। परन्तु एक बार यदि आनन्द आ जाता है तो वह स्थिर हो जाता है। विषयानन्द जल्दी मिलता है, परन्तु उसका विनाश भी शीघ्र ही होता है।

काकभुशुडिजी चार वृक्षोकी छायामे चारों युगका धर्म-आचरण करते थे।

कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्य्यायां कलौ तद् हरिकीर्तनात्॥

सतयुगका धर्म ध्यान, त्रेता युगका धर्म यजन-पूजा, द्वापर युगका धर्म-सेवा और कलियुगका धर्म हरि कीर्तन। काकभुसुडिजी ध्यान करते, पूजा करते, सेवा करते, जप यज्ञ करते और कथा-कीर्तन करते थे। यज्ञसे मन्त्र-शुद्धि, द्रव्य-शुद्धि, देश-शुद्धि, आसन-शुद्धि और देह शुद्धि होती है। प्रत्येक यज्ञमे कुछ-न-कुछ भूल हो ही जाती है, उस कारणसे प्रायश्चित करना पड़ता है। जप-यज्ञमे प्रायश्चित नहीं होता। रामनामका जप—यह महान् यज्ञ है।

काकभुसुंडिजी नीलाचल पर्वतपर विराजते थे। दक्ष प्रजापतिके यज्ञमें सतीजी-ने शरीर भस्मकर दिया था, उस समय भ्रमण करते-करते शंकर भगवान हंसके स्वरूपमें काकभुसुंडिजीके आश्रममें गये थे और वहाँ राम-कथा श्रवणकी थी।

गिरिजा कहउँ सो सब इतिहासा। मैं जेहि समय गयउँ खग पासा॥
अब सो कथा सुनहु जेहि हेतु। गयउ काग पहँ खग कुल केतू॥

एक बार गरुड़जीको मोह हो गया, यह प्रसंग पूर्वमें आ चुका है। लंका युद्धमें इन्द्रजितने श्रीराम-लक्ष्मणको नागपाशमें बाँध लिया था। नारदजीके कहनेसे गरुड़जीने संग्राम-भूमिमें जाकर श्रीराम-लक्ष्मणको नाग पाशसे छुड़ाया था। उस समय गरुड़जीको शंका हो गई कि रामजी कैसे परमात्मा हैं? ये यदि परमात्मा होते तो बन्धनमें कैसे आ जाते?

सगुण साकार परमात्माकी लीला देखकर देवताओंको भी मोह हो जाता है। गरुड़जीको ऐसा लगा कि रामजी परमात्मा नहीं हैं। इनको तो मेरी आवश्यकता पड़ी।

मनुष्योंको आकर्षित करनेके लिये ही परमात्मा मनुष्य जैसी लीला करते हैं। रामजीकी लीला यह रामजीका अनुग्रह है। परन्तु पूर्वकालमे सतीजीको जैसा मोह हुआ था, वैसा ही मोह गरुड़जीको भी हो गया। गरुड़जी नारदजीके पास गये और शंका रखी कि रामजी परमात्मा नहीं हैं ऐसा प्रतीत होता है। नारदजी यह सुनकर हँसने लगे। सगुण परमात्माकी अटपटी लीलाओंका विचार जीव अपनी अल्प बुद्धिसे करता है। अपनी बुद्धि-दोषका आरोप वह परमात्मा पर करने लगता है।

नारदजीने गरुडजीसे कहा—तुम ब्रह्माजीसे पूछो। गरुड़जी ब्रह्माजीके पास गये और पूछा। ब्रह्माजी हँसने लगे कि आज गरुड़की बुद्धि बिगड़ गई है। ब्रह्माजीने कहा—रामजीका स्वरूप तो भगवान शंकर भली प्रकारसे जानते हैं। तुम शंकरजीके पास जाओ।

फिर गरुड़ महाराज कैलाशपर गये। शिवजीको प्रणाम करके अपनी शंका पूछी। शिवजी महाराजने विचार किया इनको अभिमान जन्य मोह हो गया है। गरुड़जी पक्षी हैं और काकभुसुंडिजी भी पक्षी हैं। पक्षीकी भाषा पक्षी ही समझ सकता है।

होइहि कीन्ह कबहुँ अभिमाना। सो खोवै चह कृपानिधाना॥
कछु तेहि ते पुनि मैं नहिं राखा। समुझै खग खग ही की भाषा॥
प्रभु माया बलवन्त भवानी। जाहि न मोह कवन अस ज्ञानी॥

इस कारणसे शिवजी महाराजने गरुडजीसे कहा—नीलाचल पर्वतपर काकभुसुडिजी महाराज राम-कथा कहते हैं। तुम वहाँ जाओ। तुम्हारा सन्देह दूर होगा। गरुड़ महाराज काकभुसुंडि महाराजके आश्रममे आये। आश्रममे जैसे ही प्रवेश किया कि हृदय द्रवित हो गया। गरुड़जीके अन्तरमे विश्वास हो गया कि रामजी परमात्मा ही हैं। मेरी ही बुद्धि बिगड़ गई थी। काकभुसुडि महाराजके आश्रममें प्रवेश करते ही अज्ञान दूर हो गया। आश्रम ऐसा ही दिव्य था। गरुडजीको रामजीके प्रति प्रेम जग गया। गरुडजीके हृदयमे विवेक उदित हो गया। अरे! जो रामके नामका जप करता है उसके हृदयके अज्ञानका नाश हो जाता है तो फिर रामजीमे अज्ञान किस प्रकार हो सकता है?

गरुड़जी पक्षियोके राजा हैं। सबने गरुड़जीका सन्मान किया। काकभुसुडिजीने पूछा—आपकी क्या सेवा करूँ?

गरूड़जीने हाथ जोड़कर कहा—तुम्हारे आश्रममे प्रवेश करते ही मेरा मोह दूर हो गया। रामजीमें प्रेम जग गया। मुझे अब कुछ पूछना बाकी नही। अब राम कथा श्रवण करनी है। ऐसी कथा कहो कि राम-प्रेम बढ़े।

कथा मनोरंजनके लिये नही है, कथा हँसनेके लिये नहीं है। जो मनुष्य बहुत हँसता है उसका मन बिगड़ता है। जो बहुत हँसता है उसको रोने की तैयारी हो जाती है। हास्य-रसको तुच्छ माना गया है। ससारके विषयोमे अरुचि आवे और प्रभुमें प्रेम जगे तो ही कथा सुनना सार्थक है। कथा सुननेके उपरान्त, तुमको परमात्माके चरणोंमे आनेकी इच्छा हो, पाप छोड़ने की इच्छा हो, स्वभाव सुधरे तो मानना कि तुमने कथा सुनी है। कथा सुननेके पश्चात् नया जन्म होता है।

गरुड़जीने कहा—मुझे रामायणकी कथा सुननी है। काकभुसुडिजीने राम-कथा श्रवण कराई। तुलसीदास महाराजने समाप्तिमे फिरसे संक्षेपमें समस्त कथा श्रवण कराई है। एक ही सिद्धान्तको बुद्धिमें बैठानेके लिये बारम्बार कहना पड़ता है। भक्तिमें पुनरुक्ति आवश्यक है।

रामावतारका कारण क्या है? जय विजयको शाप, स्वायम्भुव मनु और रानी शतरूपाको वरदान, नारदजी द्वारा दिया गया शाप, ये समस्त साधारण कारण हैं। परमात्माके अवतारका कारण परमात्माकी इच्छा है। परमात्मा स्वेच्छासे प्रगट होते है।

दशरथ महाराजने पुत्र कामेष्टि यज्ञ किया। प्रसादी पायस रानियोंको बाँट दी। उससे चार बालक हुए। बालक बडे होने लगे। वशिष्ठजीके यहाँ विद्याध्ययन किया। रामजीमें वैराग्य जागा। वशिष्ठजीने उपदेश किया। नया प्रारब्ध उत्पन्न न हो इसके लिये सावधान रहनेका ज्ञान दिया। मोक्ष-मन्दिरके चार द्वार बतलाये।

उसके उपरान्त श्रीराम-लक्ष्मणने श्रीविश्वामित्रजीके यज्ञका रक्षण किया। जनकपुरीमें रामजीने धनुष भंग किया। श्रीसीताजीके साथ विवाह हुआ। सीताजीके साथ अयोध्यामें पधारे। कुछ समयके बाद दशरथ महाराजने रामजीके राज्याभिषेक करने की तैयारी की। मथराके कुसंगसे कैकेयीकी बुद्धि बिगड़ी। जीवनमें हलके मनुष्यका संग करना नही। हल्का वह है जो शरीर और इन्द्रियोंके सुखमें ही फँसा हुआ है, जिसको पापका भय नहीं है, जो परमात्माके साथ प्रेम नही करता है।

कैकेयीने दो वरदान मांगे। भरतको राज्य और रामजीको वनवास। रामजी वनमें पधारे। दशरथ महाराजने प्राण त्याग किये। भरतजीको ननसालसे बुलाया गया। भरतजीने आकर श्राद्धादिक विधि की। भरतजीने राज्य करना अस्वीकार कर दिया। राजा पुण्यशाली हो, जितेन्द्रिय हो तो ही प्रजा सुखी रहती है। भरतजीके प्रेमका वर्णन कौन कर सकता है ? चित्रकूटके पत्थर भी भरत प्रेमको देखकर पिघल गये। रामजीका और भरतजीका मिलन हुआ। रामजीने पादुकाएं दीं। भरतजीको राज्य करनेकी आज्ञा दी। भरतजीने पादुकाएँ अयोध्याकी गद्दी पर पधरायी। आज्ञानुसार चौदह वर्ष तक भरतजीने राज्य-भार वहन किया। भरतजीकी भक्ति अलौकिक थी। संसारका सुख जिसको नीरस लगता है वह भक्ति कर सकता है। श्रीराम नाम सुन्दर है। रामजीका स्वरूप मंगलमय है।

श्रीराम-लक्ष्मण-जानकी अनेक ऋषियोंको कृतार्थ करते हुए पंचवटी पधारे। लक्ष्मणजीको राम-गीताका उपदेश किया। छाया सीताको रावण उठाकर ले गया। रावणका जटायुके साथ युद्ध हुआ। रामजीने जटायुका अग्नि-संस्कार किया। उसका श्राद्ध किया। शबरीजीका उद्धार किया। हनुमानजीने सुग्रीवके साथ रामजीकी मित्रता सिद्ध करायी। उसके उपरान्त हनुमानजीने लंका-दहन किया। रामजीने वानर सेना सहित प्रयाण किया। समुद्र पर सेतु बन्धन किया। लंका युद्धमें रावणका विनाश हुआ। रामजी, लक्ष्मणजी तथा सीताजी एवं वानर सेना सहित पुष्पक विमानमें अयोध्या पधारे। वहाँ रामजीका राज्याभिषेक हुआ। सीताजीके साथ रामजी सुवर्ण सिंहासन पर विराजे।

राम-कथा सुनकर गरुड़जीको अत्यन्त आनन्द हुआ। राम-कथाका एक-एक अक्षर पापोंको भस्म करने वाला है।

गरुड़जीने कहा—मुझको मोह हुआ यह अच्छा हुआ। राम-कथा सुननेका मुझे परम लाभ मिला।

काकभुसुंडिजीने कहा—गरुड़जी ! तुम तो प्रभुके लाड़िले हो। तुमको कभी मोह नहीं उत्पन्न हो सकता। यह तो समस्त श्रीरामजीकी लीला है। मेरे जैसोंका मान बढ़ाने-

के लिये उन्होंने यह लीलाकी है। गरुडजी! यह संसार मायामय है। इस संसारमे जो आता है माया उसको कलंक लगाती है। माया भयकर है। ऐसा कौन है जिसको एक बार भी कामदेवने पागल न किया हो? ऐसा कौन है जिसको एक बार भी क्रोधमें हृदय न जला हो? पुत्रैषणा, द्रव्यैषणा, लोकैषणा किसको मलिन मति नही बनाती? चिताऱूपी सर्पिणी किसको नही डसती? काम, क्रोध, लोभ, मत्सर—ये सब मायाके परिचारक हैं। ज्ञानको माया गिनती नही। बड़ों-बड़ोंको वह भुलावेमे डालती है। यह माया रामजीकी दासी है। जो रामजीकी सेवा करते हैं उनको माया त्रास देती नही। माया स्त्री है। ज्ञान पुरुष है, ज्ञानको माया गांठती नही। ज्ञानीनां...महामाया प्रयच्छति। ज्ञानीनां इति शब्देन भक्तानां व्यवच्छेदः। ज्ञानियोंको माया सताती है।

परन्तु माया और भक्ति दोनों स्त्रियां है। स्त्री-स्त्री पर मोहित नही होती। भक्ति मायासे मोहित नही होती। माया भक्तिसे डरती है। जो भक्ति करता है, माया उसको त्रास देती नही। कारण भक्ति रामजीको अति प्रिय है। जबकि माया रामजीकी बिचारी दासी है।

मोह न नारि नारि के रूपा। पन्नगारि यह नीति अनूपा॥
माया भगति सुनहु तुम दोऊ। नारि वर्ग जानइ सब कोऊ॥
पुनि रघुबीरहि भगति पिपारी। माया खलु नर्तकी बिचारी॥
भगतिहि सानुकूल रघुनाथा। ताते तेहि डरपत अति माया॥

माया भक्तको कष्ट देती नही, ज्ञानीको सताती है। गरुड़जी! तुमको ही मोह हुआ हो ऐसा नही। एक बार मायाने मुझे भी ग्रसित किया था, मुझे अपने अनेक जन्मोंकी कथा याद है,

मेरे इष्ट देव बालक राम थे।

इष्ट देव मम बालक रामा

बालक जल्दी राजी हो जाता है। उसको तनिक सा देने पर ही वह प्रसन्न हो जाता है। मैं पूजा तो सीतारामजीकी करता हूँ, परन्तु मुझे तो बालक स्वरूप ही बहुत अच्छा लगता है। इनकी बाल-लीला मुझे बहुत सुहाती है। राम लला छम-छम करके नाचते हैं। चार वर्षका सुन्दर स्वरूप है। मैंने पीला झगला पहिनाया हुआ है। मुझे इस स्वरूपके साथ खेलना बहुत अच्छा लगता है। प्रभुने एक बार मेरे साथ लीला की थी।

रामनवमीके दिन मैं अयोध्या जाता हूँ। आँगनमे रामजीकी जूंठन पड़ी हुई मिले उसे मैं खा जाता हूँ। रामजीको वन्दन करने उनके पास जाता हूँ तो रामजी दूर

भागने लगते हैं। मैं दूर जाने लगता हूँ तो रामजी रोने लगते हैं और मुझे मालपुआ दिखाने लगते हैं। मेरे साथ रामजी इसी प्रकारकी लीला करते रहते। मैं रामजीके साथ ही खेलता। मेरे ऊपर रामजीकी अत्यन्त कृपा थी, परन्तु किसीको भी इसका पता नहीं लगता था। महाराजा दशरथ अथवा कौशल्या माता, किसीको भी इसका भेद पता न था।

मैं नित्यप्रति रामजीके साथ इस प्रकार खेलता। एक दिन मुझे शंका हुई कि "यह राम बालक है अथवा परमात्मा ? मैं आकाश में उड़कर जाता हूँ तो राम रोने क्यों लगते हैं ?" मुझे शंका हुई कि रामजी परमात्मा नहीं हैं। उसी समय मैं आकाशमें उड़ा, तो रामजीने मुझे पकड़नेको अपने हाथ लम्बे किये। मैं आकाशमें उड़ता ब्रह्मलोक तक गया, मेरे पीछे-पीछे रामजीकी भुजाएँ आती रहीं। मैं जहाँ जाता था वहीं रामजीकी भुजाएँ मेरे पीछे आ रही थीं। रामजीकी भुजाएँ और मुझमें दो अंगुलका अन्तर था। यह जीव निर्मान अथवा निर्मोह बनता है, तभी प्रभुके हाथोंमें आ पाता है। रामजीके अलौकिक ऐश्वर्यका मुझे ज्ञान हुआ। रामजीकी अँगुलियाँ अत्यन्त कोमल थीं। हाथमें कंकण धारण किया हुआ था। इस दृश्यसे मैं बहुत घबराने लगा और ब्रह्मलोक तक गया हुआ वहींसे सीधा अयोध्यामें रामजीके आँगनमें नीचे आकर गिरा। रामजी मुझे देखकर हँसने लगे। मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि में रामजीके पेटमें चला गया हूँ। ब्रह्मलोक, कैलाश, मेरा नीलाचल पर्वत—सभी स्थानोंको मैंने रामजीके पेटमें देखा। दो घड़ीमें ही समस्त ब्रह्माण्डोंके दर्शन मुझे रामजीके पेटमें हो गये। इस सबको देखकर मुझे अत्यन्त आश्चर्य हुआ।

सभी लोक भिन्न-भिन्न दिखाई पड़े। परन्तु सबमें मुझे बालक राम एक ही दीखे। मैं थक गया, घबराया। उसी समय प्रभुने स्मित हास्य किया और मैं रामजीके मुखमें-से बाहर आ गया। मैं उनके चरणोंमें गिर पड़ा। रामजीने अपना हाथ मेरे मस्तक पर पधराया। मुझे अतिशय आनन्द हुआ। उस आनन्दका वर्णन करनेकी शक्ति सरस्वतीके किसी शब्दमें नहीं।

प्रभुने कहा—काकभुसुंडिजी ! तुम मुझे बहुत प्रिय हो। तुम्हारी जो इच्छा हो वह माँग लो।

> ग्यान बिबेक बिरति बिग्याना। मुनि दुर्लभ गति जे जग नाना।
> आजु देउँ सब संसय नाहीं। माँगु जो तोहि भाव मन माहीं॥

आज तुझे मुक्ति दे दूँ, ब्रह्मलोकका राज्य दे दूँ; ज्ञान, वैराग्य आदि जो कुछ माँगे वह सभी देनेको तैयार हूँ। मैंने विचार किया, प्रभुने सब कुछ देनेको कहा, परन्तु ऐसा नहीं कहा कि अनन्य भक्ति दे दूँ। भक्ति रहित—राम प्रेम रहित ज्ञान किस काम का ? जिस ज्ञानमें भक्ति नहीं, वह ज्ञान अन्तकालमें धोखा देता है।

भक्तिके बिना सब कुछ व्यर्थ है। सभी सद्गुणोंकी जननी तो भक्ति ही है। जहां भक्ति है वहीं समस्त सद्गुण आते हैं। जहां भक्ति नहीं होती, वहीं समस्त दुर्गुण आते हैं।

मैंने रामजीसे मांगा कि मुझे अनन्य भक्ति दीजिए। राम-चरणोंमे मेरी प्रीति रहे।

सीता राम चरन रति मोरे। अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरे॥

रामजीने मेरे मस्तकपर हाथ फेरा। बोले—तू मेरे स्वरूपको अच्छी तरह जानता है। मेरे स्वभावको भी जानता है। जो मेरे स्वरूपको ठीक-ठीक जानते हैं वे भक्तिके अतिरिक्त और कुछ नहीं मांगते। भक्ति भगवानके लिये करो। भगवानसे अन्य कुछ मांगना नहीं, भक्ति रहित ज्ञान व्यर्थ है। ऐसा मुझे विश्वास हो गया, इसलिये मैंने केवल भक्ति ही मांगी।

रामजीने कहा—तू जहां भी रहेगा, वहां मेरी माया नहीं आवेगी। तू निरन्तर मेरी भक्ति करेगा।

तत्पश्चात् मैं नीलाचल पर्वतपर चला गया। कौआ तो अति हीन पक्षी है, परन्तु मेरे रामजीने मुझपर कृपा करके मुझे अपनाया। मुझे जो आनन्द मिला, वह किसी राजाको तो क्या, देवताको भी मिल नहीं सकता। गरुड़जी! प्रभुजीकी लीला ही ऐसी है, जिसको देखकर देवता भी भूलमें पड़ जाते हैं।

गरुड़जीको आनन्द हुआ। नेत्र सजल हो गये। धन्य है आपको। आपके सत्संगसे आज मैं भी धन्य हो गया। आप यदि आज्ञा करें तो मुझे कुछ प्रश्न करनेकी इच्छा है। महाराज! आप राम-भक्त हो, महान् ज्ञानी हो, समर्थ हो, भगवान शंकर आपकी प्रशंसा करते थे। आप ऐसे श्रेष्ठ हो फिर भी आपको यह काग शरीर क्योंकर मिला है? इस देहको क्यों आप नहीं छोड़ देते हैं? कल्पमें सृष्टिका विनाश होता है, फिर भी आप अपना यह शरीर छोड़ते नहीं, इसका कारण क्या है?

काकभुसुंडिजीने कहा—अपने अनेक जन्मोंकी कथा मुझे याद है। कौआका शरीर भले ही नीच गणनामें हो, परन्तु मुझे इसी शरीरसे राम-भक्ति मिली है। इसलिये मुझे यह शरीर छोड़ना अच्छा नहीं लगता।

जप तप मख सम दम ब्रत दाना। बिरति बिबेक जोग बिग्याना॥
सब कर फल रघुपति पद प्रेमा। तेहि बिनु कोउ न पावइ छेमा॥

× × ×

सोइ पावन सोइ सुभग शरीरा। जो तनु पाय भजइ रघुवीरा॥

× × ×

राम भगति एहि तन उर जामी। ताते मोहि परम प्रिय स्वामी॥
तजउँ न तन निज इच्छा मरना। तनु बिनु वेद भजन नहिं बरना॥

चाहे जैसा शरीर हो, वह भक्ति युक्त होनेसे ही शोभित होता है, सत्कर्मसे ही शोभित होता है। मेरे रामजी अत्यन्त प्रेमालु हैं, अत्यन्त उदार हैं।

मुझे कौआका शरीर मिला, उसका भी एक कारण है। हजारों वर्ष पहिले कलियुगमें मेरा जन्म अयोध्यामें एक शूद्रके घरमें हुआ था। अयोध्याकी महिमा मैं उस समय जानता नहीं था। मैं भगवान शंकरकी भक्ति करता था। परन्तु बुद्धि बिगड़ गई, उस कारण अन्य देवताओंकी निन्दा करता था। विष्णु भगवान्के लिये खोटे वचन बोलता था।

अनन्य भक्तिका अर्थ है इष्टदेवका ध्यान करते हुए देहकी सुधि भुला दी जाय। अन्य देवताओंके न माननेसे अनन्य भक्ति नहीं हो सकती। काकभुसुंडिजीका जन्म उस कल्पके कलियुगमें अयोध्यामें हुआ था। तुलसीदास महाराजने कलियुगका वर्णन किया है। कलियुगमें लोगोंका जीवन अर्थ और काममें ही पूरा हो जाता है। जीव इससे आगे बढ़ता ही नहीं। धर्म और मोक्ष गौण हो गये हैं, भक्ति गौण हो गयी है। ब्राह्मण धर्म भूले हुए हैं। संन्यासी गृहस्थोंका सा जीवन बिताते हैं। कलियुगके ज्ञानी पुरुष स्वेच्छाचारी होते हैं। बातें अभेदकी करते हैं, परन्तु आंखोंमें भेद-भाव भरा हुआ है। कलियुगके भोगी भी योगी होने लगे हैं। भोगी कभी योगी हो सकते नहीं। कलियुगमें सभी ब्रह्मज्ञानकी बातें करते हैं और पैसाके लिये झगड़ा करते हैं। मनके विकार गये नहीं, परन्तु बात ब्रह्मज्ञानकी करते हैं। सभी पुरुष-स्त्रियोंके आधीन रहने लगे हैं। कलियुगके ब्रह्मचारीभी विलासी हो गये हैं। स्त्रियाँ बहुत कामी तथा झूँठ बोलने वाली हो गई हैं। लोग माता-पिताकी सेवा करते नहीं। भयंकर कलियुग आया। अयोध्यामें अकाल पड़ गया।

काकभुसुंडिजीने कहा—उस समय मैं अयोध्या छोड़कर उज्जयिनी चला गया। वहाँ एक ब्राह्मणसे दीक्षा ली। व्यवसायमें अच्छा पैसा मिला। मुझे अभिमान हो आया। मुझे केवल शिवजीमें ही प्रीति थी, अन्य देवताओंकी निन्दा करता रहता था। मेरे गुरुजी कहते थे कि शिवजी तो रामजीका जप किया करते हैं।

शिव सेवा कर फल सुत सोई। अविरल भगति राम पद होई॥
रामहिं भजहिं तात शिव धाता। नर पाँवर कहँ केतिक बाता॥
जासु चरण अज शिव सनकादी। तासु द्रोह सुख चहसि अभागी॥

मेरे मनमे शिवजी ही सबसे श्रेष्ठ होनेके कारण, मै गुरुदेवसे वाद-विवाद करता था। मैंने अनेक बार गुरुदेवका अपमान किया, परन्तु गुरुदेवको कभी क्रोध नही आया।

तत्पश्चात् तो मेरा अभिमान इतना बढ़ गया कि मै गुरुदेवमे ईर्ष्या करने लगा। एक बार मैं शिव-मन्दिरमे बैठा था। पञ्चाक्षर शिव मन्त्रका जप कर रहा था। उसी समय गुरुदेव मन्दिरमें पूजा करने आये। अभिमानके कारण मैं उठा नही। बैठा ही रहा। गुरुदेवको प्रणाम भी नही किया। मैने गुरुदेवजीका अपमान कर दिया। गुरुजीको तो बुरा लगा नही। परन्तु शिवजीको यह सहन न हुआ। आकाशवाणी हुई—तू अजगरकी तरह बैठा रहा, तैंने धर्मकी मर्यादाको भग किया है। तू अजगर हो जा।

शिवजीने शाप दिया तो मै बहुत घबडाने लगा। उस समय गुरुदेवने शकरकी स्तुति की—

> नमामीशमीशान निर्वाण रूपं, विभुं व्यापकं ब्रह्म वेद स्वरूप।
> निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं, चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहम्॥
> निराकारमोंकार मूलं तुरीयं, गिराज्ञानगोतीत मीशं गिरीशम्।
> करालं महाकालकालं कृपालं, गुणागार संसार पारं नतोऽहम्॥

व्यापक ब्रह्म ही शिव हैं। यह जीव अनन्य-भावसे शिवकी भक्ति न करे, पूजा न करे, जब तक उसे शिवजीकी कृपा न मिले, तब तक जीवको ज्ञान-भक्ति नही मिलती, योग नही प्राप्त होता, मोक्ष नही मिलता।

> कलातीत कल्याण कल्पान्तकारी, सदा सज्जनानन्द दाता पुरारी।
> चिदानन्द सन्दोह मोहापहारी, प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी॥
> न यावत् उमानाथ पादारविन्दं, भजंतीह लोके परे वा नराणाम्।
> न तावत्सुखं शान्ति संताप नाशं, प्रसीद प्रभो सर्वभूताधिवासम्॥

शिव-कृपासे जीव कामनाओंपर विजय प्राप्त कर सकता है। मेरे गुरुदेवने भगवान शिवको अनेक प्रकार स्तुति की। शिवजी महाराज प्रसन्न हो गये। मेरे गुरुजीसे कहा—मांगो! मांगो!

गुरुदेवने कहा—मै सतत् आपकी भक्ति करता रहूँ। आपसे मै अनन्य भक्तिका वरदान मांगता हूँ। दूसरे यह भी मांगता हूँ कि मायाके प्रवाहमें पडा जीव चाहे जैसा कहता फिरता है, चाहे जो कुछ करता है। कारण! जीव दुष्ट है, कृतघ्नी है। आप श्रेष्ठ हैं; आप कृपा करो। मेरे शिष्यसे भूल हुई, इसकी बुद्धिमे वैराग्य उदय हो, रामजीमें प्रेम हो, इसका कल्याण हो वही कीजिये।

शिवजीने कहा—यह दुष्ट है, अत्यन्त दुःखी होगा। एक हजार बार अजगर बनेगा। मेरा शाप व्यर्थ तो हो नहीं सकता। परन्तु तुम माँगते हो इस कारणसे यह देता हूँ कि इसे जन्म-मरणका दुःख होगा नहीं। एक हजार जन्मोंके बाद अयोध्यामें ब्राह्मणके घर इसका जन्म होगा। तब इसकी रामजीमें प्रीति होगी।

गरुड़जी! मेरे हजार जन्म हुए। अनेक देशोंमें भ्रमित रहा। परन्तु अपने गुरुदेवकी शान्त मूर्ति मैं भूल नहीं सका। एक हजार बार अजगर योनिमें जन्म मिला, परन्तु गुरुदेवकी कृपासे जन्म-मरणका कुछ भी दुःख मुझे प्राप्त नहीं हुआ।

हजार जन्मोंके पश्चात् अयोध्यामें एक ब्राह्मणके घर जन्म हुआ। जन्मसे ही सीतारामजीमें मेरा प्रेम था। बाल्यावस्थासे ही मुझे भक्तिका रंग लग गया। मेरे मनमें ऐसी भावना जाग्रत हुई कि अपने रामजीके दर्शन प्राप्त हों। अपने रामजीकी भक्ति करूँ। मेरे पिताने मुझे पढ़ानेका बहुत प्रयत्न किया, परन्तु मुझे पढ़ने-लिखनेसे प्रेम नहीं होता था, प्रत्येक अक्षरमें मुझे रामजी ही दिखाई देते।

भक्तिका अर्थ है भगवानके स्वरूपमें आसक्ति। लौकिक रूपमें आसक्ति यही माया है।

मैं बालक था तबसे ही रामजीमें मेरी आसक्ति थी। मैं पढ़ लिख न सका।

मन ते सकल वासना भागी, केवल राम चरन लय लागी।
कहु खगेस अस कवन अभागी, खरी सेव सुर धेनुहि त्यागी।
प्रेम मगन मोहि कछु न सोहाई, हारेउ पिता पढ़ाइ पढ़ाई।

मेरे माता पिताने शरीर त्याग किया। फिर तो मैं रामजीका हो लिया। आसक्तिका एक धागा था वह भी टूट गया। फिर तो मैं ऋषियोंके आश्रममें जाता था। निरन्तर रामनामका जप करता, रामजीका ही ध्यान करता। एक बार मेरु पर्वत पर गया। वहाँ लोमष ऋषि विराजते थे। लोमष ऋषिने मेरा स्वागत किया। मैंने उनसे निवेदन किया—आप मुझे रामजीकी कथा सुनावें।

लोमष ऋषि ज्ञानी थे। थोड़ी सी राम-कथा कहकर फिर ब्रह्मज्ञानकी बात करने लगते। मुझे वह ठीक लगती न थी। परन्तु लोमष ऋषि 'यह ब्राह्मण ज्ञान-का अधिकारी है' ऐसा समझ कर मुझे ब्रह्मज्ञानका उपदेश करते थे।

मैंने कहा—मुझे निरंजन निराकारकी बातें सुननी नहीं। मुझसे मेरे रामजीकी कथा कहिये।

लोमष ऋषिके ब्रह्मज्ञानका मैं खण्डन करने लगा। ज्ञानकी अपेक्षा भक्ति श्रेष्ठ है इस प्रकार मैं उनसे वाद-विवाद करने लगा। लोमष ऋषिको मेरी बात पर क्रोध आ गया। मैंने कहा—क्रोध तो द्वैतमें उत्पन्न होता है। अद्वैतमें क्रोध किस प्रकार हो सकता है? आप बात तो अद्वैतकी करते हैं, परन्तु तुम्हारे रोमरोममें द्वैत भरा हुआ है। आप रामजीकी कथा कहो, रामजीके साथ प्रेम करो। आपका हृदय पिघलेगा।

उस समय ऋषिका क्रोध बढ गया। उन्होने मुझे शाप दे दिया। तू कौआ की तरह बोलता है, तू कौआ होजा।

इस कारणसे मैं कौआ बना। परन्तु शाप दिये जाने पर भी मुझे लोमष ऋषिके प्रति कुभाव जाग्रत न हुआ। मेरे राम लोमष ऋषिमें भी हैं। मेरा कल्याण करनेके लिये मेरे रामजीने ऐसा किया है। ऐसा ही भाव मेरे मनमें रहा। मैंने ऋषिको प्रणाम किया और कहा—भले ही मैं कौआ हो जाऊँ, परन्तु मेरी भक्ति रामजीमें ही रहे ऐसी कृपा कीजिए। मुझे रामजीकी कथा सुनाइये। मुझे रामजीका दर्शन हो सके ऐसा उपाय समझाइये।

ऋषिका हृदय पिघल गया। उन्होंने सोचा—मैंने इसे शाप दिया, उस पर भी यह मुझे प्रणाम कर रहा है।

भक्ति बिना ज्ञानमें स्थिरता आती नहीं। लोमष ऋषिको पश्चाताप हुआ कि मैं बात अद्वैतकी करता हूँ परन्तु फिर भी मुझे क्रोध आ गया! धन्य है यह जीव।

ऋषिने मुझे राम-मंत्रकी दीक्षा दी और मुझे रामकथा सुनायी। लोमष ऋषिने कहा—शिवजीकी कृपासे यह रामायण मैंने तुम्हें सुनाई है। शिव सद्‌गुरु हैं। सबके आचार्य सदाशिव हैं। जो कथा जिस प्रकार शिवजीने लोमष ऋषिको सुनायी थी, वही कथा उन्होंने मुझे सुनायी।

गरुड़जीने प्रश्न किया—कितने ही लोग ज्ञानको श्रेष्ठ मानते हैं, कितने ही भक्तिको श्रेष्ठ मानते हैं।

तरति शोकं आत्मवित्।

ज्ञानमें और भक्तिमें क्या भेद है, वह मुझे बतलाइये।

कहहिं सन्त मुनि वेद पुराना। नहिं कछु दुर्लभ ज्ञान समाना॥
सोइ मुनि तुम्ह सन कहेउ गोसाँई। नहिं आदरेहु भक्ति की नाईं॥
ज्ञानहि भगतिहि अन्तर केता। सकल कहहु प्रभु कृपा निकेता॥

तब काकभुसुडिजीने गरुड़जीसे कहा—परमात्माके साथ जो अत्यन्त प्रेम करता है उसे ही ज्ञान प्राप्त होता है। जिसको प्रभुके स्वरूपका ज्ञान है वही भगवानके साथ प्रेम करता है। ज्ञानका फल भक्ति है। भक्ति की अंतिम अवस्था ज्ञान है। ज्ञान और भक्ति तत्व से एक ही हैं। फिर भी थोड़ा सा भेद है। यह जीव चैतन्य है। माया जड़ है। जड़ चैतन्य दोनोंमें ग्रन्थि पड़ गई है। जड़ चैतन्यको बाँध सकता नहीं। यह गाँठ है तो मिथ्या, परन्तु मिथ्या गाँठ भी अत्यन्त दुःख देने वाली है। सतत् भक्ति की जाय तो ही यह गाँठ खुलती है।

ईश्वर अंश जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी ॥
सो मायावश भयउँ गोसाँई। बँध्यो कीर मर्कट की नाई ॥

जीव ईश्वरका अंश है। आत्मा आनन्द रूप है। सुख दुःख मनको होते हैं। मनकी कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं। वह आत्माकी सत्ता लेकर काम करता है। आत्मा तो साक्षीरूप है फिर भी मायाके कारण, अज्ञानके कारण आत्मा सुख दुःखका आरोप स्वयंमें करता है। जीव तो परमात्माका अंश है, शुद्ध है, चैतन्य है। जो राजाका पुत्र है उसे कौन बाँध सकता है। यह जीव परमात्माका पुत्र है। इसका किसीने बन्धन नहीं किया। बन्धनमें सत्यता भी नहीं, झूँठ है। माया ठूँठी है, झूँठी माया जीवको किस प्रकार बाँध सकती है? जीवको किसीने बाँधा नहीं। यह अज्ञानसे ही ऐसा समझता है कि मैं बद्ध हूँ।

तुलसीदासजी महाराजने बन्दर और तोतेका दृष्टान्त दिया। शिकारी लोग तोता और बन्दरको पकड़ने की युक्ति करते हैं। तोतेको पकड़नेके लिये वे जमीनमें थोड़ी दूरीके अन्तरसे दो खूँटियाँ गाड़ते हैं और जमीनसे थोड़ी ऊँचाई पर इन दोनों खूँटियोंके बीच तार बाँध देते हैं। तारमें बाँसकी पोली नरसल डाल देते हैं जिससे वह घूमती रहे। फिर उसके आगे अनाजके थोड़े दाने बखेर देते हैं। तोता वह दाना खानेके लिये आता है। स्वाभाविक रीतिसे वह ऊँचाई पर बैठनेके लिये तारमें डाली हुई पँगोलीके ऊपर जाकर बैठता है। उसी समय पँगोली उसके भारसे तुरन्त घूम जाती है और तोता उल्टा लटक जाताहै। तोता स्वयंके पंजेसे पँगोलीको पकड़े रखता है। पकड़ उसकी स्वयंकी है, परन्तु वह छोड़ सकता नही और अन्तमें शिकारी उसको पकड़ लेता है।

बन्दर भी उसी प्रकारसे पकड़ लिया जाता है। शिकारी सकड़े मुंह वाली हाँडी जमीनमें गाढ़ देता है। हाँडीमें थोड़ेसे चने पटक देता है और स्वयं दूर जाकर खड़ा हो जाता है। वानरको हाँडीमें चना देखकर आनन्द होता है। वह जल्दीमें चना लेनेके लिये दोनों हाथ हाँडीमें डालता है और चनोंकी मुठ्ठीभर लेता है। मुठ्ठीमें चना होनेसे मुठ्ठी फूल जाती है, इस कारणसे वह हाथ बाहर निकाल नहीं सकता। वानरको भ्रम हो जाता है

कि हांडीमें भूत है जिसने अन्दरसे उसका हाथ पकड़ रखा है। वास्तवमें वानरको पकडा किसीने भी नही है। वानरको चना अत्यन्त प्रिय है इसलिये मुठ्ठीमें-से चना छोड़ देनेकी इच्छा उसमे होती ही नही। चना मुठ्ठीमे-से छोड़ दे तो तुरन्त उसके हाथ बाहर निकल आवें और वानरका बन्धन छूट जाये। वानर अपने हाथो ही बन्धनमे पड़ा है, फिर भी ऐसा मानता है किसीने उसके हाथ पकड़ रखे हैं।

इसी प्रकार यह ससार भी एक हांडीके समान है। मायाने विषय रूपी चने उसमे भर रखे हैं। अहंता और ममता रूपी चने उसमे भरे हैं। मन वानरके समान है। मनने विषयोको पकड़ रखा है। मनुष्य ! ये विषय रूपी चने छोड़ता नहीं, इस कारणसे वह बन्धनमें पड जाता है। मनुष्यका बन्धन वानरके ही समान है। मनुष्यको बांधा किसने है ? वासनाओके अधीन होनेसे स्वय ही अपनेको बांध लेता है। जीवका जो बन्धन हैं वह अज्ञानके कारण ही है। जीव प्रभुकी शरणमें चला जाय तो मुक्त हो जाय। परन्तु वह विषयोको छोडता नही।

मनुष्य वाणीमें जितना चतुर है उतना आचरणमें नही। इस जीवको संसार मीठा ही लगता है। संसार-सुखसे इसके मनमे घृणा आती ही नही। काल धक्का मारे उससे पहिले ही समझकर संसारको छोड़ दे तो क्या बुराई है ?

जीव मुक्त है, ईश्वरका अंश है, आनन्द-रूप है। इसे किसीने बांधा नही। यह स्वय ही विषयोको छोड़ सकता नहीं। अज्ञानके कारण स्वयंने ही स्वयको बांध लिया है। चैतन्य जीव जड़ मायाकी गांठमें फँसा हुआ है। वासनाके वशमें हुआ जीव जैसे-जैसे सुख भोगता है, वैसे-वैसे यह गांठ अधिक मजबूत होती जाती है। इस गांठको छुड़ानेके लिये ज्ञानी पुरुष ज्ञान रूपी दीपक प्रगट करते है और उसके प्रकाशमे इस सूक्ष्म गांठको छुड़ाते हैं। अत्यन्त परिश्रम करनेके उपरान्त ज्ञान रूपी दीपक प्रगट हो पाता है।

सात्विक श्रद्धा—यही गाय है। इस गायको जप, तप, स्वाध्याय, सत्कर्म रूपी घास चरानी होती है। भाव रूपी बछड़ा गायको लगे तब दूध निकल पाता है। विश्वास रूपी पात्रमे शुद्ध मन रूपी ग्वाला इस गायका दोहन करता है। निवृत्ति रूपी नोमनेसे गायके पैर बांधे जाते हैं। इस धर्ममय दूधको निष्कामता रूपी अग्निमें तपाया जाता है। संतोष रूपी पवनसे इसे ठण्डा करना होता है। धैर्य रूपी जामुन दूधमें डालकर दही जमाया जाता है। सद्विचार रूपी रईसे और प्रसन्नता रूपी रस्सीसे इसका मन्थन करना होता है। चाहे कुछ भी हो, मनकी शान्ति कभी भंग न हो, मनको प्रसन्न और शात रखना आवश्यक है। इस प्रकार मंथन करके माखन निकाला जाय। किये हुए कर्म की लकड़ी हैं। इनको जलाकर योगाग्नि प्रगट करके इस माखनको गरम किया जाय। सब कुछ भगवान-

के अर्पण किया जाय। माखन गरम करनेके पश्चात् ममता रूपी छाछ उसमें-से अलग कर दी जाय। तब ज्ञान-वैराग्य रूपी घी हृदय रूपी दीवटमें रखकर (सत्व, रज, तम) तीन गुणकी बत्ती बनाकर उससे ज्ञान ज्योति प्रगट करके इस दीपकको प्रज्वलित किया जाता है।

मैं शरीर नहीं हूँ। प्राण नहीं हूँ, मन नहीं हूँ। मैं चैतन्य आत्मा हूँ, ब्रह्म हूँ। इस प्रकार अनुसंधान रखकर यह ज्योति प्रगटकी जाती है। इसके प्रकाशमें यह सूक्ष्म गाँठ खोली (छोड़ी) जाय। जड़ शरीरसे चेतन आत्मा पृथक हो तभी गाँठ छूट पाती है। परन्तु माया उस समय अनेक विघ्न उपस्थित करती है।

तब सोइ बुद्धि पाइ उजियारा। उर गृह बैठि ग्रन्थि निरुवारा॥
छोरन ग्रन्थि पाव जो सोई। तव यह जीव कृतारथ होई॥
छोरत ग्रन्थि जानि खगराया। विघ्न अनेक करइ तब माया॥

विषय रूपी पवन छूटती है और दीपकको बुझा देती है। दीपक बुझ जानेपर जड़-चेतनकी गाँठ छूट पाती नहीं। ज्ञानकी बात समझमें आनी कठिन है। कदाचित समझमें आ जावे तो अनुभव करना कठिन है। अन्तकालमें यह अनुभव ठहर पाता नहीं। शरीर बिगड़नेके बाद ज्ञानमें स्थिर रहना कठिन है। अपने ऋषियोंने लिखा है कि पूर्ण वैराग्य होनेपर ही ज्ञान टिक पाता है। जो जितेन्द्रिय है, जिसके जीवनमें पूर्ण वैराग्य है, वही ज्ञानको पचा सकता है। वैराग्यके बिना ज्ञान पचता नहीं। ज्ञान-मार्ग अत्यन्त दुःसाध्य है। इसमें पतन हो जानेकी अधिक सम्भावनाएँ हैं।

भक्ति यह चिन्तामणि है। यह ऐसा प्रकाश है जिसमें दीवट, बत्ती, घी आदिकी कुछ भी आवश्यकता नहीं है। रत्न रूपी प्रकाशमें किसीकी जरूरत होती नहीं। भक्ति रूपी रत्नदीप जिसके हृदयको प्रकाशित करता है, मैं रामजीका सेवक हूँ—ऐसी भावनासे हो जो निरन्तर भक्ति करता है, उसीकी बुद्धिको सतत प्रकाश मिलता है।

चतुर शिरोमनि तेइ जग माँहीं। जे मनि लागि सुजतन कराहीं॥
सो मनि जदपि प्रगट जग अहई। रामकृपा बिनु नहिं कोउ लहई॥
सुगम उपाय पाइबे केरे। नर हत भाग्य देहिं भटमेरे॥

कलियुगका मनुष्य स्वार्थी, कामी और विलासी है। वह व्यसनोंमें फँसा हुआ है। मन्द बुद्धि वाला है। लोग ऐसा समझते हैं कि हम बहुत बुद्धिमान हैं, परन्तु ऋषियोंने ऐसा वर्णन किया है कि कलियुगका मनुष्य मन्द बुद्धि वाला है। जिस कामको करनेकी आवश्यकता है, उसे करता नहीं एवं जिसको करनेकी आवश्यकता नहीं, उसे करता है।

भगवद् सेवा-पूजा करनेकी बहुत आवश्यकता है, परन्तु भक्ति करता नहीं"। यह अभागा है। इसको मन्द बुद्धि वाला कहा गया है। व्यवहारका काम करनेमे यह अत्यन्त सावधान रहता है, एकाग्र चित्तसे करता है। माता लोग रसोई बनानेमे अत्यन्त सावधान रहती हैं। दालमें नमक कम या ज्यादा न पड़ जावे। मनुष्य नोट गिनने बैठे उस समय बिल्कुल एकाग्र चित्त होता है परन्तु माला जपने बैठे उस समय चित्त एकाग्र ठहरता नही। भोगे हुए सुखका चिन्तन करनेसे मन बहुत बिगड़ता है। बिगड़े हुए मनको सुधारनेका एक ही उपाय है। श्रीराम-नामके साथ प्रेम करो। जगत् श्रीरामके आधीन है। श्रीराम भी राम-नामके आधीन हैं।

जहाँ भक्ति है वहाँ ज्ञानका स्फुरण होता है। भक्ति रहित ज्ञान-मार्ग निराधार है। पतन होते देर नही लगती। काकभुसुडिजी गरुड़जीसे कहते हैं—इसलिये मैं मानता हूँ कि ज्ञानकी अपेक्षा भक्ति श्रेष्ठ है। राम-कृपाके बिना किसीका अभ्यन्तर शान्त होता नही। रामजीके साथ अतिशय प्रेम न करो तब तक मन शुद्ध होता नही, जड़ चेतनकी गाँठ छूटती नही।

गरुड़जीको अत्यन्त आनन्द हुआ। गरुड़जीने कुछ अन्य प्रश्न पूछनेकी इच्छा प्रगटकी। काकभुसुंडिजीने सहर्ष अनुमति दी। गरुडजीने पूछा—इस संसारमे बड़े-से-बड़ा लाभ कौन-सा है। काकभुसुडिजीने कहा—सच्चे सन्तोका सत्संग।

नहिं दरिद्र सम दुख जग माँही। सन्त मिलन सम सुख जग नाहीं॥
पर उपकार वचन मन काया। सन्त सहज सुभाव खगराया॥

गरुड़जीने पूछा—सबसे बड़ी हानि कौन-सी है? काकभुसुडिजीने उत्तर दिया—कुसंग। गरुड़जीने पुनः प्रश्न किया—बड़े-से-बडा तप कौन-सा है? काकभुसुडिजीने कहा—मनमें कामनाओंका प्रवेश न हो, मनसे उनका त्याग कर दे वह महान तपस्वी है।

गरुड़जीने पूछा—वीर किसे कहते हैं? काकभुसुडिजी—अन्दरके शत्रुओको जो मारे वही वीर है। गरुड़जी—नरक किसे कहते हैं? काकभुसुडिजी—तमोगुण जागे, छल-कपट करनेकी इच्छा हो उसे ही नरक कहते है।

गरुड़जी—स्वर्ग किसे कहते हैं? काकभुसुडिजीने कहा—सबमे सद्भाव जागे और सतत् परमात्माका स्मरण रहे, वही स्वर्ग है। गरुड़जी—जीव और ईश्वरमें क्या भेद है? काकभुसुंडिजी—जो मायाके आधीन है जीव तथा माया जिसके आधीन है, वह ईश्वर है।

माया वस्य जीव अभिमानी। ईस वस्य माया गुन खानी॥
परबस जीव स्ववश भगवन्ता। जीव अनेक एक श्रीकंता॥
मुधा भेद यद्यपि कृत माया। बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया॥

जीव अनेक है, ईश्वर एक है। जीव परतन्त्र है, ईश्वर स्वतन्त्र है। मायाके द्वारा खड़ा किया गया यह भेद यद्यपि मिथ्या है तथापि परमात्माकी कृपा बिना करोड़ों उपायों द्वारा भी दूर होता नहीं है।

गरुड़जीका संशय दूर हो गया। गरुड़जीका रामजीमें प्रेम उत्पन्न हो गया। रामजी देव नहीं, सब देवोंके देव हैं, आदिनारायण परमात्मा हैं। उनको यह विश्वास हो गया।

तुलसीदासजी महाराजका उत्तरकाण्ड बहुत सुन्दर है। उसमें उन्होंने सभी शास्त्रोंका सार भर दिया है। रामचरितमानसका उत्तरकाण्ड एक-दो बार नहीं, दस-पन्द्रह बार पढ़ना चाहिये। अन्दरके राक्षस मरे तो जीवनका उत्तरकाण्ड सुधरता है। मुक्ति मिलती है। तन मरनेसे मुक्ति मिलती नहीं। जिसका मन मरता है, उसे मुक्ति मिलती है। तन बदल जाता है, मन बदलता नहीं। मरनेके बाद भी मन साथ रहता है, इसलिये मनकी पूरी चौकसी रखो। तनकी सँभाल रखता है वह संसारी, मनकी सम्भाल रखे वह सन्त। सेवा-स्मरणको ही जीवनका लक्ष्य रखो। सेव्यमें अपने मनको पिरोये रखना, इसीको सेवा कहते है। श्रीराम-सेवा बिना जीवन सफल होता नहीं।

(६३)

तुम कौन हो ?

श्रीराम-सेवा बिना जीवन सफल होता नहीं।

श्रीहनुमानजी महाराज श्रीरामकी अत्यन्त सेवा करते थे। सेवा वह कर सकता है, जिसने सेव्यके मनके साथ अपना मन मिला दिया है। प्रभुमे मनको पिरोये रखनेको सेवा कहते हैं। श्रीहनुमानजी महाराज निरतर इसी बातका स्मरण रखते थे कि मेरे रामको क्या अच्छा लगता है ? मेरे रामको क्या अच्छा नही लगता ? श्रीहनुमानजी महाराज इस रीतिसे सेवा करते हैं कि प्रभुको कुछ कहनेका अवसर ही न आवे। उत्तम सेवक वही है जो स्वामीकी आज्ञासे पहिले ही उस सेवाको सम्पन्न रखे। हनुमानजी जानते हैं कि प्रभुके मनमे इस समय क्या है। रामजीकी क्या इच्छा है।

श्रीराम और हनुमान दोनो अन्दरसे एक ही हैं। भक्त और भगवान बाहरसे जुदा होते हैं, पर अन्दरसे एक ही होते हैं। व्यवहारमे, पति-पत्नी बाहरसे अलग लगते है, परन्तु वे मनसे एक ही होते है।

श्रीहनुमानजी महाराज ऐसी सेवा करते हैं कि दूसरे किसीको सेवाका अवसर मिल ही नही पाता। भरतलाल, लक्ष्मणजी और शत्रुघ्नजीको थोड़ा खोटा लगने लगा कि हनुमानजी जबसे आये हैं तबसे हमको प्रभुकी सेवा मिलती ही नही। श्रीराम सेवा ही इनका जीवन था। तीनों मिलकर श्रीसीताजीके पास गये और उनसे कहा कि माताजी ! आप थोड़ी कृपा करो। रामजीकी सेवा हमको भी थोडी करनी है, परन्तु हनुमान समस्त सेवा कर रखते हैं।

श्रीसीताजीने कहा—तुम मुझसे कहते हो, परन्तु जबसे हनुमान्न आया तबसे वह मुझे भी सेवा करने देता नहीं। इनको वह बहुत अच्छा लगता है। मेरी भी सेवा चली गई है। इन चारो जनोने मिल कर निश्चित किया कि अपनेको समस्त सेवा छीन लेनी चाहिये। हनुमानजीके लिये कोई भी सेवा रखनी नहीं है। इन्होने रामचन्द्रजीसे कहा—आने वाले कलसे हम लोगोको सेवा करनी है।

श्रीरामचन्द्रजीने कहा—भले ही तुम करो। मैं क्या मना करता हूँ ?

सभीने कहा—महाराज ! हनुमानजी सेवा करते हैं। इस कारणसे हमको किसीको लाभ मिलता ही नही। हम सब की इच्छा है कि हनुमानजी सेवा न करे, हम चारो ही सेवा करेंगे।

प्रभुने कहा—तुम भी सेवा करो और हनुमानजीके लिये भी थोड़ी सेवा रखो। तब उन्होंने कहा—आज तक तो वानरोंने बहुत सेवा की है। श्रीहनुमानजी महाराज क्या वानर हैं ? अरे

रूप मात्रं तु वानरम् ।

श्रीहनुमानजीके लिये 'वानर' शब्दका प्रयोग किया वह प्रभुको सुहाया नहीं। प्रभुने दृष्टि नीचेकी ओर करली। उनको लगा कि मेरे हनुमानजीको ये लोग अभी पहिचानते ही नहीं। हनुमानजी मेरी आत्मा हैं। हनुमान मेरेसे पृथक नहीं हैं।

इन चारोंने इधर निश्चय किया कि कलसे समस्त सेवा हम सब ही करेंगे।

दूसरे दिन, श्रीहनुमानजी महाराज नित्य नियमके अनुसार, सूर्योदयके पूर्व ही स्नान संध्यादि नित्य कर्म परिपूर्ण करके अन्तःपुरमें सेवा करनेके लिये आये। जैसे ही रामजीकी चरण-पादुका उठाने लगे कि भरतजी आ गये, उन्होंने उनसे कहा—हनुमानजी! यह सेवा बड़े भ्राताने मुझे सौंपी है ! अब पादुकाओंसे हाथ लगानेकी तुमको आवश्यकता नहीं। जब जब आवश्यकता होगी तभी बड़े भाईको पादुका मैं अर्पण करूंगा। तुम पादुकाओंसे हाथ लगाना नहीं। पादुका-सेवा मेरी है। भरतजीने हनुमानजीको सेवा करनेको मना कर दिया।

श्रीरामचन्द्रजी स्नान करनेको विराजे हुए थे तो हनुमानजीने विचार किया कि मैं पीताम्बर ले जाकर रामजीके हाथमें दूं। उसी समय सीताजीने आकर कहा कि 'ए हनुमान ! पीताम्बर क्यों लेते हो ? यह सेवा मेरी है। पीताम्बर प्रभुके हाथमें मैं दूंगी। इस प्रकार, किसी समय माताजी निवारण करतीं, किसी समय लक्ष्मणजी निवारण करते, किसी समय भरतजी मना कर देते तो किसी समय शत्रुघ्नजी मना करते हुए कह देते कि यह सेवा मुझे दी हुई है। हनुमानजी जो भी सेवा करने जाते कि उसी समय चारोंमेंसे कोई एक जना मना करके कह देता कि यह सेवा मेरी है।

हनुमानजी तो रामजीकी सेवाके लिये ही जीवित थे। सच्चा वैष्णव वह है जिसे ठाकुरजीकी सेवा बराबर न हो तो भूख लगती नहीं; जिसे परमात्माकी सेवा किये बिना पानी पीनेकी भी इच्छा होती नहीं। सेवा और स्मरणके लिये ही जीवित रहे वही वैष्णव। वेषसे वैष्णव होना थोड़ा सरल है, वैष्णव कहलवाना यह सरल है, वैष्णव होना कठिन है। वैष्णव तो वह है कि जिसे प्रभुकी सेवा बिना एक क्षण भी सुहाता नहीं। हनुमानजी महाराज तो भक्ति सम्प्रदायके आचार्य हैं, सर्व वैष्णवोंके आचार्य हैं। श्रीराम-सेवा ही उनका जीवन है। श्रीराम-सेवाके बिना रह सकते नहीं।

हनुमानजीने हाथ जोड़े और माताजीसे कहा—तुम सब मुझको सेवा करनेसे क्यों मना करते हो ? तुम अप्रसन्न हो गये हो अथवा मुझसे कोई भूल हो गई है ? मुझे सेवा क्यों नहीं करने देते ?

श्रीसीताजीने कहा—भाई ! यह तो कल तीनों भाइयोंने निश्चय किया और प्रभुने उनको सेवा दी है। हनुमानजीने पूछा—माताजी मेरे लिये कोई सेवा रखी है या नहीं? श्रीसीताजीने कहा—तुम्हारे लिये कोई सेवा नही रखी है। आज पर्यन्त तुमने बहुत सेवा की है। अब तुम्हारे लिये कोई सेवा नही। अमुक सेवा लक्ष्मणजीकी है, यह भरतजी-की है, यह सेवा शत्रुघ्नको है। यह सेवा मैंने अपने लिये रखी है।

श्रीसीताजीने समस्त क्रम बतला दिया। हनुमानजीके लिये कोई सेवा बाकी ही रही नही। हनुमानजी व्याकुल हुए। वन्दन करके बोले—माँ ! मेरे रामजीको जिस समय जँभाई आवे उस समय चुटकी बजानेकी सेवा किसकी है ?

श्रीसीता माँने कहा—भाई ! तुम्हारे लिये कोई सेवा रही नही। यह सेवा तुम्हें करनी हो तो करना। प्रभुको जँभाई आवे तो चुटकी बजाना। जँभाई आवे उस समय चुटकी बजाना, यह सनातन धर्मको एक मर्यादा है। जँभाई आवे अर्थात् आयुष्य घटती है। चुटकी बजावे, प्रभुका स्मरण करे तो आयुष्यका नाश होता नही।

हनुमानजीने निश्चय किया कि यह सेवा मुझे मिल गयी है। इसलिये जिस समय स्वामीको जँभाई आवेगी, उसी समय चुटकी मैं बजाऊँगा।

आज तक तो हनुमानजी महाराज दरबारमे पधारते थे उस समय स्वामीके चरणोमे दृष्टि रखकर खड़े रहते थे, आँख ऊँची करके सन्मुख कभी देखते ही नही थे। दास्य-भावसे हृदय दीन बनता है। उसमें ऐसी निष्ठा होती है कि अपने स्वामीको सन्मुख दृष्टिसे देखनेकी मेरी हिम्मत नही। ये मेरे अन्नदाता हैं, मेरे रक्षक हैं। मैं तो इनका सेवक हूँ। दासकी नजर तो चरणोमे ही होती है। दास्य-भक्ति अधिकारी महात्माको ही प्राप्त होती है। दास्य-भक्तिमे चरणोपर ही दृष्टि स्थिर करनी पड़ती है। वात्सल्य-भाव-मे मुखार-बिन्दपर दृष्टि स्थिर करनी पड़ती है। मर्यादा भक्तिमें दास्य-भाव मुख्य है। दास्य-भक्तिके आचार्य श्रीहनुमानजी हैं।

हनुमानजीने विचार किया कि आजतक तो मैं चरणोमें नजर रखता था, मुझे अब मुखारबिन्दपर नजर रखनी पड़ेगी। कारण कि माताजीने कहा है कि जँभाई आवे उसी समय चुटकी बजाना। इसलिये चरणोमे दृष्टि रखूंगा तो जँभाई आनेकी खबर पडेगी नही।

इस कारण, हनुमानजी महाराज आँख ऊँची करके, श्रीरामजीके मुखारबिन्दको निहारते रहे। प्रभुका मुखारबिन्द तो अति मंगलमय और सुन्दर है। हनुमानजीको अतिशय आनन्द होता, दर्शनमें तृप्ति होती ही नही थी। दर्शनमे जिसकी तृप्ति हो, दर्शनसे जिसका मन भर जाय वह वैष्णव नही। हनुमानजी महाराज प्रतिक्षण दर्शन करते है। हनुमानजी तत्पर रहते। कब जँभाई आवे और कब मै चुटकी बजाऊँ।

दरबारमें तो मुखारबिन्दपर नजर रखी है, परन्तु हनुमानजीने विचार किया कि चलते-चलतेमें भी कभी जँभाई आ जाती है। रामजी चलते हों उस समय जँभाई आ जाय तो? इसलिये रामजी चलते उस समय हनुमानजी हाथ जोड़कर, उनके आगे चलते-चलते, मुखारविन्द देखते रहते। श्रीरघुनाथजी अब महलोंमे पधारे, भोजन करनेके लिये विराजे। हनुमानजी सामने बैठकर रामजीका मुखारबिन्द निहारते रहे। श्रीसीता माँ परोसनेके लिये आई। उन्होने कहा—हनुमान! अब जा न यहाँ से।

हनुमानजीने कहा—माँ! जीमते हुए यदि जँभाई आ जावे तो चुटकी कौन बजावेगा? मैं तो यहाँसे जाऊँगा नही।

श्रीसीताजीने सोचा कि इसको मैने यह सेवा क्यो दे दी? सम्पूर्ण दिन हनुमानजीने यह लीला की। माताजीको एकान्तमे रामजीके साथ पाँच-दस मिनिट बात करनी हो तो भी हनुमानजी बातोंमे खड़े रहे। सीताजी बारम्बार कहने लगी, जा न अब। तब हनुमानजीने कहा—किस प्रकार जाऊँ? आपने मुझसे कहा हुआ है कि जँभाई आते ही चुटकी बजाना है। इसलिये कदाचित् बोलते-बोलते जँभाई आ जावे तो? मैं तो यहाँसे नहीं जाऊँगा। सम्पूर्ण दिवस निष्ठापर अडिग रहे। रामजीको आनन्द हुआ। बगलमें हनुमान हों तो मुझे ठीक शोभा देता है। इसके बिना मुझे शोभा नहीं देता।

रात्रिको श्रीरघुनाथजी शैय्यापर शयन करने गये। श्रीसीताजीके आनेके पहिले ही श्रीहनुमानजी वहाँ आकर खड़े हो गये। श्रीसीताजी आयी। उन्होंने रामजीसे कहा—यह तुम्हारा भगत किसीको समझता ही नहीं। तुम इसको बहुत मान देते हो इस कारण किसीकी मानता ही नही। अब तुम इसको कहो कि यहाँसे जाये।

रामजीने कहा—मै सबसे कह सकता हूँ, परन्तु हनुमानसे कहनेका मुझे अधिकार नहीं। हनुमानने मेरी बडी सेवा की है। मै हनुमानका ऋणी हूँ।

एकैकस्योपकारस्य प्राणान्दिास्यामि ते कपे।
शेषस्येहोपकाराणां भवाम ऋणिनो वयम्॥

जगत रामजीके आधीन है, श्रीराम हनुमानजीके आधीन है। भगवान रामावतारमे श्रीहनुमानजीके ऋणी रहे हैं और कृष्णावतारमें गोपियोके ऋणी रहे हैं। गोपियोसे श्रीकृष्ण भगवानने कहा था—

न पारयेऽहं निरवद्य संयुजां
स्व साधु कृत्यं विबुधायुषापि व:।
या माभजन् दुर्जर गेह श्रृखला:
संवृश्च्य तद् व: प्रतियातु साधुना ॥

अरी सखियो ! तुमने मेरे लिये घर-बारकी बेडियाँ तोड़ डाली है। ये बेडियाँ तो बडे-बडे योगीजन भी जल्दी तोड सकते नही। मेरा और तुम्हारा यह मिलन, निर्मल और निर्दोष है। यदि मै अमर जीवनसे अनन्त कालतक तुम्हारे प्रेम, सेवा और त्यागका बदला चुकाना चाहूँ तो भी चुका नही सकता। मै जन्म-जन्मांतर तुम्हारा ऋणी हूँ।

श्रीरामचन्द्रजीने हनुमानजीसे कहा—

तवोपकारिणश्चाहं न पश्याम्यद्य मारुते।
कर्तुं प्रत्युपकारं ते धन्योऽसि जगतीतले ॥

सेवा स्मरणके अतिरिक्त अन्य कोई वशीकरण नही है। हनुमानजीने रामजीकी ऐसी ही सेवा की है। हनुमानजीने बदलेमे कुछ भी लिया नही। केवल निष्काम भावसे उन्होने सेवा की है।

कितने ही लोग भक्ति करते हैं, परन्तु वे कुछ मांगते हैं। भोग यह भक्तिका फल नही। भक्तिका फल पैसा नहीं, प्रतिष्ठा नही। भक्तिका फल तो भगवान है। सेवाका फल सेवा ही है, मेवा नही। भोगके लिये भक्ति नही, भगवानके लिये भक्ति करो। कितने ही लोग समझते है कि भक्ति करूँगा तो बहुत पैसा प्राप्त होगा। भक्ति करूँगा उससे मै सुखी हो जाऊँगा। क्या भक्तिका फल लौकिक सुख है ? भक्तिका फल तो अलौकिक भजनानन्द है। ब्रह्मानन्द भक्तिका फल है।

जहाँ भोगनेकी इच्छा है वहाँ भक्ति रहती नही। भोगके लिये भक्ति करे उसको भगवान अच्छे नहीं लगते, उसे तो संसार अच्छा लगता है। लौकिक सुखके लिये भगवानकी प्रार्थना मत करो। संसारका लौकिक सुख तो प्रारब्धके अनुसार मिलता ही

है। जिस जीवके ऊपर भगवान कृपा करते हैं उसको अधिक लौकिक सुख नहीं देते। लौकिक सुख मिले तो जीव ईश्वरसे विमुख होता है। कई बार तो प्रभु ऐसी भी लीला करते हैं कि वैष्णवकी भक्तिमें विघ्न करने वाले सुखको खींच लेते हैं और वैष्णवको अनेक दुःख होते हैं। इसके पापोंका विचार करके भगवान निश्चय करते हैं कि इस एक जन्ममें इसके समस्त पापोंका भोग पूरा कराकर में इसको अपने धाममें ले जाऊँ, इसको परमानन्द देना है। इस कारण इसके पापोंको भस्म करनेके लिये और इसकी भक्तिका विघ्न टालनेके लिये प्रभु इसको अनेक कष्ट सहाते हैं।

एक वैष्णव दम्पति थे। दो ही प्राणी थे। घरमें तीसरा कोई भी नही। समस्त दिन ठाकुरजीकी सेवा स्मरण करते, ठाकुरजीकी मंगलमय लीलाओंका चिन्तन करते और मन द्वारा जैसे गोकुलमें ही निवास करते। सम्पूर्ण दिन मनको भक्ति-रसमें सराबोर रखते। प्रभुको भी खूब आनन्द आता था। ठाकुरजी इसके घर अत्यन्त आनन्दमें विराजते थे।

बारह पन्द्रह वर्ष सेवा करनेके उपरान्त इनके घरमें बालकका जन्म हुआ। बालकका जन्म होनेसे दोनों बहुत राजी हुए कि ठाकुरजीने बड़ी कृपा की है। परन्तु बालकमें स्नेह इतना अधिक बढ़ गया कि सारा दिन बालकके चिन्तनमें ही लगने लग गया। बालकका लालन पालन करते थे। बालक तोतली बोली बोलता था। माँ बाप बहुत प्रसन्न होते थे। बालकको खिलाते थे। एक क्षण भी उसको छोड़ते नही थे।

धीरे धीरे भक्तिका जो नियम था छूटने लगा। अनेक बार अन्दरसे आवाज आती कि इस बालकके जन्म लेनेके उपरान्त पहिले जैसी भक्ति नही हो पारही है—यह ठीक नहीं है। परन्तु पीछे वे मनको समझाते कि इस बालकमें भी भगवान तो है हो। इसकी सेवा भी भगवानकी ही सेवा है।

मनुष्यके मनमें अनेक प्रकारकी वासनाएँ भरी हुई है। मन ऐसा ही प्रयत्न करता है जिससे जीव ईश्वरसे विमुख रहे। मन खोटी सलाह देता है।

बालकमें भी भगवान हैं। बालकमें भगवद्भाव रखना यह ठीक है, खोटा नहीं। परन्तु बालककी सेवामें भगवान बिल्कुल भुला दिये जांय, भक्तिको भूल जाये और मन निरन्तर बालकमें पिरोया हुआ रहे वह भगवानको किस प्रकार सुहावेगा? प्रभुने विचार

किया कि इस प्रकार तो इनका पतन हो जावेगा। मुझे इनको अब पुत्रका सुख अधिक नही देना है। मुझे अपना वास्तविक आनन्द देना है।

संसारका समस्त सुख संयोग पर्यन्त ही है। वियोगमे दुःख है। प्रभुने सी लीला की कि उस बालकको उठा लिया। पहले तो माता पिताको दुःख हुआ। परन्तु पीछे भगवद्कृपासे उनका भगवद्भाव दृढ हुआ कि प्रभुने जो कुछ किया वह ठीक किया है। आज तक बहुतसे छोकरोंको (पुत्रोको) मैंने गोदमें खिलाया है। ये सब पुत्र कहाँ गये? इस जीवने अनेक जन्मोंमें अनेक सम्बन्ध किये। सब सम्बन्धी कहाँ गये? मेरा सम्बन्ध तो ईश्वरके साथ ही सच्चा है। प्रभुने इनको अलौकिक आनन्दका दान किया। नित्य-लीला-सेवामें इनको बुला लिया।

सुखमें विघ्न आवे तो समझना कि प्रभु मुझे अलौकिक सुखका दान देने वाले हैं इसी कारण विघ्न आया है। प्रभुका सेवा स्मरण लौकिक सुखके लिये करना नही, ईश्वर से कुछ माँगना नही। माँगना तो व्यापार जैसा गिना जाता है। प्रभुकी सेवा करे और बदलेमें लौकिक स्वार्थ माँगे, यह तो एक प्रकारका व्यापार ही है। लौकिक स्वार्थके लिये भक्ति करे वह भक्ति नही, वणिक बुद्धि है। वणियाँ वह जो थोड़ा देकर अधिककी अपेक्षा रखता है। अपने लिये ठाकुरजीको कोई परिश्रम न दो। मेरा कोई काम करने ठाकुरजी आवें ऐसा विचार जो करे वह वैष्णव किस प्रकार कहा जा सकता है? वैष्णव तो विचार करता है कि मेरा काम आप करो, यह भगवानसे किस प्रकार कहा जा सकता है? अपने लिये प्रभुको परिश्रम क्यों हो? मै तो प्रभुका दास हूँ।

कामके लिये राम नहीं, वरन् रामके लिये ही राम हैं। प्रभु किसीको सुख भी देते नहीं और दुःख भी देते नही। मनुष्यके खोटे खरे कर्म ही मनुष्यको सुखः-दुःखके कारण रूप होते हैं। फिर भी अज्ञानी जीव सुख प्राप्त होने की अथवा दुःखसे मुक्त होनेकी लालसासे ही प्रभुके पास जाता है। ऐसी स्वार्थ वृत्तिसे प्रभु बहुत अप्रसन्न होते हैं? प्रभुके पास सुख प्राप्त करने नही, अपितु प्रभुको प्राप्त करने ही जाना चाहिये। सच्चा भक्त प्रभुसे कुछ माँगता नहीं, अपना सर्वस्व प्रभुको अर्पण करता है। उससे भगवान ऋणी बन जाते हैं।

श्रीरामचन्द्रजी विचारते हैं कि हनुमानजीने मुझे ऋणी बनाया है। इनके एक-एक उपकारके प्रति एक-एक प्राण दूँ तो भी इनका ऋण चुक सके ऐसा सम्भव नहीं है।

प्राण पाँच है, परन्तु हनुमानके उपकार अनन्त हैं। मैं सबको कह सकता हूँ, पर इनको कुछ भी कह सकता नही।

श्रीसीताजीने हनुमानजीसे कहा—हनुमान ! बहुत हो गया। तू अब यहाँसे चला जा। हनुमानजीने कहा—माताजी मैं किस प्रकार जाऊँ ? रात्रिमें निद्रामें यदि किसी समय जँभाई आ गई तो ? मुझे तो पूरी रात्रि यहीं पर रहना है।

अन्तमें सीताजीने आज्ञा दी कि अब तू यहाँसे चला जा। इनको जँभाई आवेगी तो तेरे बदले मैं चुटकी बजा लूंगी। परन्तु तू अब यहाँसे जा।

माताजीकी आज्ञा हुई इसलिये हनुमानजी कुछ बोले नहीं, बाहर आये। हनुमानजीको सेवा करने नही दी, इनको बाहर किया, इसलिये प्रभु आज नाराज हो गये। हनुमानजीको भी दुःख हुआ कि मेरे लिये कोई सेवा छोड़ी नही। जँभाई आवे उस समय चुटकी बजानेको सेवा मिली, इसीमे मैं सन्तोष मानता था पर इस सेवाको भी मुझे करने नही देते। अब मे कहाँ जाऊँ ? सेवा बिना मेरा जीवन वृथा है।

वैष्णव परमात्माके लिये ही जीवन धारण करते हैं, परोपकारके लिये जीते हैं। हनुमानजी इसके उपरान्त राजमहलकी अगासी (गोखों)में पधारे। उन्होने निश्चय किया कि कल प्रातःकाल मंगलाके दर्शन हों तब तक, सम्पूर्ण रात्रिमें 'सीताराम-सीताराम-सीताराम' कीर्तन करता-करता चुटकी बजाता रहूँगा। अन्दर किसी भी समय प्रभुको जँभाई आ सकती है, इसलिये मेरी सेवा तो रात भर चालू ही रहेगी।

भक्त जागता है तो भगवान सो सकते नहीं। भक्तकी चिन्ता भगवानको सदैव ही रहती है।

प्रभुने विचार किया कि मेरा हनुमान जागे और मैं सो जाऊँ यह उचित नही। मेरा हनुमान आजकी सम्पूर्ण रात्रि जागरण करने वाला है, इसलिये मैं भी सारी रात्रि जागरण करूँगा और सीताजीको भी जागरण कराऊंगा।

श्रीसीताजी चरणोंकी सेवामें थीं। रामजीने विचार किया कि मुझे किसी भी समयमें जँभाई आ जाय केवल इस कारणसे हनुमानजी निरन्तर चुटकी बजा रहे हैं और कीर्तनकर रहे हैं, तो मैं भी अब बारम्बार जँभाई लेता रहूँ।

रामजीने बारम्बार जँभाई लेना आरम्भ कर दिया। मुंह तनिक भी बन्द रहता ही न था। श्रीसीताजी पूछने लगी—आपको कुछ हो गया है ?

रामजीका मुख खुला हुआ था और आँख भी खुली हुई थी। गोखोंमें हनुमानजी कीर्तन कर रहे थे, उसे रामजी सुन रहे थे।

सीताराम सीताराम सीताराम जय सीताराम।
सीताराम सीताराम सीताराम जय सीताराम ॥

श्रीसीतारामजीका कीर्तन करते-करते, अति आनन्दमे हनुमानजी नाच रहे थे। कीर्तन करते-करते हनुमानजी श्रीसीतारामजीके दर्शन कर रहे थे। अत्यन्त आनन्दमें जीव नाचता है। कुछ लोगोके लक्ष्मी हाथमे आती है तो नाचने लगते हैं। तो लक्ष्मीपति जिसके हाथमें आ जावे, वह अति आनन्दमे नाचने लगे, इसमें क्या आश्चर्य है। हनुमानजीको देह-भान भी नही था। अति आनन्दमे रामजीका कीर्तन करते-करते थेई-थेई नाचते रहे। हनुमानजीका कीर्तन सुनकर रामजीको आनन्द हो रहा था। वैष्णव प्रेमसे कीर्तन करे, उसको परमात्मा निश्चय सुनते है।

श्रीसीताजी रामजीसे बारम्बार पूछती थी, आपको कुछ परिश्रम हुआ है क्या ? आपको क्या हो गया है ? रामजी एक भी अक्षर बोलते न थे। श्रीसीताजी घबरा गई। उन्होने दौडते हुए जाकर कौशल्या माँको कहा—उनका कोई श्वास चढ़ गया मालुम होता है, इससे बोलते ही नही हैं। मुख बन्द ही नही हो रहा।

कौशल्या माँ दौड़ती हुई आई। उन्होने रामजीके मस्तकपर हाथ फेरा और पूछा—बेटा ! तुम्हें क्या हो गया है ?

बडोका ऐसा स्वभाव होता है कि इनको कुछ खोटा लगे अथवा दुःख हो जाये तो ये सहनकर लेते है, परन्तु बोलते नही। प्रभु कुछ भी बोलते ही नही थे। उनको शान्तिसे निद्रा भी नही आ रही थी। कौशल्या माँको भ्रम हो गया कि किसी राक्षसकी नजर न लग गई हो ? मध्य रात्रिके समय सेवक दौडते हुए वशिष्ठजीके आश्रममें गये। वशिष्ठजीसे कहा—रामचन्द्रजी महाराजको निद्रा नही आ रही और श्वास चढ़ा हुआ है।

वशिष्ठजी दौड़ते हुए आये, श्रीरामचन्द्रजीसे पूछने लगे—क्या हो गया है ? रामजी तो जँभाई ले रहे थे। मुख बन्द होता ही नही था, बोले किस प्रकार ? परमात्माके

लाड़िले भक्तको कोई अकारण त्रास दे, वह प्रभुको सुहाता नहीं। भगवान विचार करते हैं कि यह भोला है। इसका हृदय शुद्ध है। यह मेरे लिये जीता है। अपने किसी भक्तका अपमान हो तो प्रभुको बहुत दुःख होता है। भक्तके कारण भगवान दुःखी हो जाते हैं। आज स्वामी की आँखे बन्द नही हो रही थीं, मुख बन्द नही हो रहा था। स्वामीको तनिक भी निद्रा नही आ पाती थी। वशिष्ठने विचार किया कि आज किसी भक्तका अपराध हो गया मालुम होता है।

उन्होंने सीताजीसे पूछा—आज कुछ गड़बड़ तो नहीं? श्रीसीताजीने कहा—महाराज! अन्य तो कुछ गड़बड़ी नहीं हुई, परन्तु ये तीनों भाई कल एकत्रित हुए और इन्होंने, जैसा निश्चय किया उसी प्रकार समस्त सेवाका आपसमें बटवारा कर लिया। हनुमानके लिये कोई सेवा छोड़ी नहीं। इसलिये प्रातःकालसे ही नाराज हो गये हैं। आज प्रेमसे भोजन भी नहीं किया। उदास हो गये हैं।

वशिष्ठजीने पूछा—हनुमान कहाँ हैं? श्रीसीताजीने कहा—वह आया था। उससे मैंनेकहा—प्रभुको जब जँभाई आवे तो तू चुटकी बजानेकी सेवा करना। इस समय तू यहाँ से जा।

वशिष्ठजी नेत्र मूँदकर हनुमानजीका ध्यान करने लगे। ध्यानमें वशिष्ठजीको दर्शन हुआ कि राजमहलके बरामदेमें 'सीताराम-सीताराम-सीताराम' इस प्रकार कीर्तन करते हुए हनुमानजी आनन्दमें नाच रहे हैं। वैष्णवोंको ध्यानमें, दर्शनमें, जितना आनन्द होता है उतना हो आनन्द कीर्तनमें भी होता है। कीर्तन करते हुए हृदय पिघले, आँखें भीनी हों तो जगत्की विस्मृति होती है।

वशिष्ठजी दौड़ते हुए बरामदेमें गये और हनुमानजीको साष्टाङ्ग वन्दन किया।

पवनसुत हनुमानकी जय।

हनुमानजीका जय-जय-कार किया। फिर वशिष्ठजीने हनुमानजीसे कहा—महाराज! आप चुटकी न बजाओ। आप चुटकी बजाते हो उससे प्रभुकी आँखें बन्द नहीं होतीं, मुख बन्द नहीं होता। उनको बहुत जँभाई आ रही हैं। वे तुम्हारे आधीन हो गये हैं। तुम कौन हो? हनुमानजीने कहा—

देहबुद्धया तु दासोऽहं जीवबुद्धया त्वदंशकः।
आत्मबुद्धया त्वमेवाहं इति मे निश्चिता मतिः॥

देह बुद्धिसे तो मैं श्रीसीतारामजीका दासानुदास हूँ। जीव बुद्धिसे मै रामजीका अंश हूँ। मेरे भगवान अति उदार हैं, इसलिये कृपा करके उन्होने मुझे अपनाया हुआ है। आत्म-दृष्टिसे विचार करनेपर रामजीसे मै पृथक नही हूँ। मेरेमे और श्रीराममें भेद नही।

अतिशय भक्ति बढ़ती है तो भक्त और भगवान एक हो जाते हैं। भक्ति भेदका विनाश कर देती है। श्रीहनुमानजी और श्रीरामचन्द्रजी एक ही हैं।

शिवजी महाराज माता पार्वतीजीको यह राम-कथा श्रवण कराते हैं। रामजीके गुण अनन्त है। रामजीकी कथाका पारावार नही है।

राम-चरित्रका एक-एक अक्षर वक्ता-श्रोताके पापको भस्म करने वाला है।

श्रीराम कथाका वर्णन कौन कर सकता है? जीव अल्प बुद्धि है; परमात्माके गुण अनन्त हैं। यथामति सक्षेपमें श्रीराम-कथा श्रवण करायी है।

इस कथामे जो किन्ही दिव्य तत्वोका समावेश हुआ है वह श्रीसद्गुरुदेवका प्रसाद है। कथा कहनेमें अनेक त्रुटि हुई है। तुम सब श्रीसीतामराजीके ही स्वरूप हो। एक श्रीराम ही अनेक रूपोमें विराजे हुए है। एक श्रीराम ही सबमे रमण करते है। आप सबके चरणोमें बारम्बार प्रणाम करता हूँ।

महापुरुष किसी भी दिन सत्कर्मोकी समाप्ति नही करते। जिस क्षण इस शरीर-की समाप्ति हो उस क्षण भले ही सत्कर्म की समाप्ति होवे। सत्कर्म जीवनके अन्तिम श्वास तक करते रहना है। जीवनमें अन्तिम श्वास तक प्रेमसे श्रीरामजीकी सेवा करो, श्रीराम-नामका जप करो, परोपकारमे शरीरको घिसाओ।

परमात्माकी कृपासे अपना यह ज्ञान-यज्ञ आज अब परिपूर्ण होता है। ज्ञान-यज्ञ में वक्ता पाप करता है, श्रोता भी पाप करता है। इसीलिये ज्ञान-यज्ञ परिपूर्ण सफल नही होता।

एक आज्ञा की गई है। ज्ञान-यज्ञमे जो पाप हुआ हो, उसका विनाश करनेके लिये वक्ता श्रोता प्रायश्चित करे। प्रायश्चित दूसरा कोई नही करना। अपने इष्टदेवका प्रेमसे स्मरण करो। परमात्माके चरणोमे भावपूर्वक प्रणाम करते हुए 'हरये नम:' बोलो। यह पाँच अक्षरोका मंत्र हैं। सद्भावसे वन्दन करके इस 'हरये नम.' मन्त्रको तीन बार, मनमें नही, जोरसे बोलनेकी आज्ञा की गई है।

हरये नमः इति उच्चै विमुच्यते सर्वपातकात् ।

यह महामंत्र भगवानके चरणोंमें भावपूर्वक वन्दन करते करते तीन बार बोलोगी, तो जाने अनजानेमें यज्ञमें कुछ भी प्रमाद हो गया होगा, भूल हुई होगी उस सबको परमात्मा क्षमा कर देंगे, अपना ज्ञान-यज्ञ परिपूर्ण सफल होगा। श्रीसीताराजी सबका मंगल करेंगे ।

हरये नमः ।
हरये नमः ।
हरये नमः ।

सियावर रामचन्द्र भगवान की जय ।
श्रीगोवर्धन नाथ की जय । श्रीगिरिराजधरण की जय ।
द्वारिकाधीश की जय । श्रीबालकृष्ण लाल की जय ॥
सद्‌गुरुदेव की जय ।

ॐ नमः पार्वतीपतये हर हर महादेव ॥

एवं कृता येन विचित्र लीला मायामनुष्येण नृपच्छलेन ।
तं वै मरालं मुनिमानसानां, श्रीजानकी जीवनमानतोऽस्मि ॥